श्री

श्री भाव मिश्र विरचितः

राय भवानी प्रसादस्य

[illegible]

वैद्य (पण्डित) राव श्री कृष्ण चन्द्र

कृतया भाषा टीकया सहितः

[illegible]

BHAVAPRAKASHA

SATIK—VOL I

इन्द्रप्रस्थ नगरे

यन्त्रे मुद्रितः

सं १९४४

श्री गणेशाय नमः॥

सूची पत्र
भाव प्रकाश के पूर्व खंडका
प्रथमोभागः

सूचीपत्र

भाव प्रकाश के पूर्व खंडका।

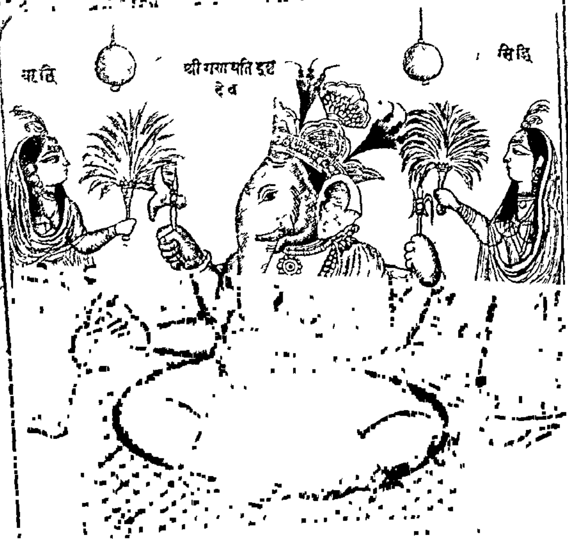
द्वितीयो भागः

अथ मांस वर्गः

सूचीपत्र
भावप्रकाश के मध्यखण्ड का
प्रथमोभागः

श्रीः

गणेश जी १





श्रीगणेशाय नमः।

भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डे

प्रथमोभागः।

प्रणम्य परमात्मानं भिषजां सुखहेतवे ।
क्रियते रामकृष्णेन भाषा भावार्थबोधिनी ॥१॥
गजमुखममरप्रवरं सिद्धिकरं विघ्नहर्त्तारम् ।
गुरुमवगम नयनप्रद मिष्टकरी मिष्टदेवतां वन्दे ॥१॥
आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाभवद्भुवि ।
प्रथमं लिखामि तमहं नानातन्त्राणि संदृश्य ॥२॥

भाषा- मैं भावमिश्र सिद्धि के करनेवाले और विघ्नके हरनेवाले गजके समान मुख ऐसे देवताओं मे श्रेष्ठ श्रीमहाराज गणेशजी को नमस्कार करता हूं और ज्ञानरूपी नेत्रको देनेवाले गुरुजीको यथा वांछित फलको देनेवाली कुलदेवता को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

पृथ्वीपर आयुर्वेद का आगमन अर्थात् वैद्यशास्त्र का आना जिस क्रमसे भया उसको पहिले मैं बहुत से तन्त्रों को देखकर लिखता हूँ ॥२॥

आयुर्वेदस्य लक्षणमाह

आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा ॥
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥३॥

भा० आयुर्वेद का लक्षण । आयु के हित और अहित वस्तु का कथन रोग का निदान तथा रोग की शान्ती जिसमें है उसको विद्वान् पुरुष आयुर्वेद कहैंहैं

आयुर्वेदस्य निरुक्तिमाह

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥४॥

(क) शरीर जीवयोर्योगो जीवनं तेनावच्छिन्नः काल आयुः। आयुर्वेद द्वारायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि ज्ञात्वा तेषां सेवनत्यागाभ्यामारोग्येणायुर्विन्दति। तेनैव हेतुना परस्याप्यायुर्वेत्ति च क्रम माह तत्रादौ ब्रह्मणः प्रादुर्भावः॥(क)

आयुर्वेद की निरुक्ति।

भा० जिस कारण मनुष्य इससे आयु पाताहै अथवा जानताहै उस कारण बड़े मुनियोंने इसको आयुर्वेद ऐसा कहाहै ॥४॥

(क) शरीर और जीवके संयोग को जीवन कहते हैं उससे घिरेहुवे समय को आयु कहतेहैं। आयुर्वेद के द्वारा आयुके हित और अहित द्रव्य गुण कर्मों को जानकर उनके सेवन और त्यागसे अर्थात् हित द्रव्य हितगुण हितकर्म इनका सेवन और अहितद्रव्य अहितगुण अहितकर्म इनका त्याग इन दोनों से आरोग्यके साथ आयु पाताहै। और इसी हेतु से दूसरे की भी आयु जानताहै (क)

विधाताऽथर्वसर्व्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् ।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयी मृजुम् ॥५॥
ततः प्रजापतिं दक्षं दक्षं सकलकर्म्मसु ।
विधिर्धीनीरधिं साङ्गमायुर्वेदमुपादिशत् ॥६॥

भा० क्रमको कहतेहैं। उसमें प्रथम ब्रह्मासे निकला॥ ब्रह्माजीने अथर्वके सार आयुर्वेद को प्रगट करके अपने नामसे लाखश्लोक की सरल संहिता बनाई ॥५॥ उसके अनन्तर सब कामोंमे चतुर ऐसे दक्षप्रजापति को ब्रह्माजी ने बुद्धिरूपी समुद्र ऐसे साष्टाङ्ग आयुर्वेद को पढ़ाया ॥६॥

अथ आयुर्वेद॰लक्षण चित्र १

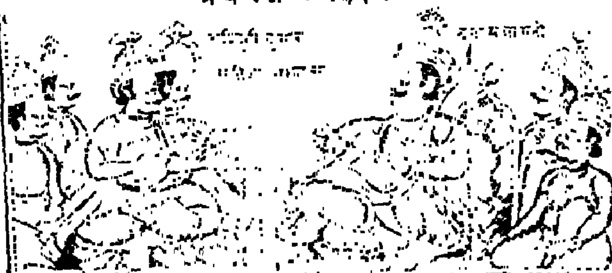


अथ ब्रह्म संहिता प्रादुर्भाव० चित्र २

दक्ष प्रजापति

श्री ब्रह्मा

अथ दक्ष प्रा० चित्र ३



[अथदत्तप्रादुर्भावः॥] अथ दत्तः क्रियादक्षः सर्वै-
द्योवेदमायुषः। वेदयामास विद्वांसौ सूर्य्यांशौ सुर
सत्तमौ ॥७॥

अथाश्विनी सुत प्रादुर्भावः।

दक्षादधीत्य दस्रौ वितनुतः संहितां स्वीयाम्।
सकल चिकित्सक लोक प्रतिपत्ति विवृद्धये धन्याम्॥८
स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेण रुषाऽथ तत्।
अश्विभ्यां संहितं तस्मात्तौ यातौ यज्ञभागिनौ॥९॥

भा० अनन्तर दक्ष प्रजापति से निकला। अनन्तर जो संपूर्ण क्रिया में च
तुर ऐसे दक्षप्रजापति ने सूर्य के पुत्र देवताओं में श्रेष्ठ विद्वान् अश्विनी
कुमारों को पढ़ाया ॥७॥
अनन्तर अश्विनीपुत्र से प्रगट हुवा। अश्विनी कुमारों ने दक्ष प्रजापति
से पढकर सब वैद्य लोगों की क्रिया चातुर्यकी वृद्धि के अर्थ बहुत अच्छी अ
पनी संहिता बनाई ॥८॥ ब्रह्मा का सिर क्रोधरूपी भैरव नें काटा उसको अ
श्विनी कुमारों ने जोडा उस कारण वे यज्ञ के भागिहुवे ॥९॥

देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः।
अक्षतास्ते कृताः सद्योदस्राभ्यामद्भुतं महत्॥१०॥
वज्रिणोऽभूत् भुजस्तम्भः स दस्राभ्यां चिकित्सितः।
सोमाभिपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः॥११॥

भा० देवता और दैत्यों की लड़ाई में दैत्यों से जो देवता घायल हुवे थे उनको
उसी समय में बडी अद्भुतता के साथ अश्विनी कुमारों ने अच्छा कर दिया॥१०॥
इन्द्र का हात जकड़ गयाथा वह अश्विनीकुमारों ने अच्छा किया। चन्द्र
अपने तेज विशेष से गिरगया अर्थात् हीनतेज हुवा था अश्विनी कुमारों ही ने

आरम्भ किया ॥ ११ ॥

विशीर्णा दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च ।
शशिनो राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यान्ते चिकित्सिताः ॥१२॥
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः ।
वीर्य्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यां पुनर्युवा ॥ १३॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्म्मभिर्भिषजां वरौ ।
बभूवतुर्भृशं पूज्या विन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥१४॥

भा॰ सूर्य्यके दांत गिरगये थे इन्द्रकी आंखें नष्ट होगईथीं, चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग होगया था वे अश्विनीकुमारों से अच्छे कियेगये ॥ १२॥ भोगकी इच्छावाला भार्गवच्यवन वृद्ध होनेसे बुराकुरूप होगयाथा उसको अश्विनीकुमारों ने फिरसे सामर्थ्य और रंगरूप स्वर से युक्त तरुण किया ॥१३॥ ये और बहुतसे कामोंके करनेसे वैद्यों में श्रेष्ठ अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवताओं के अत्यन्त पूज्य हुवे ॥ १४ ॥

अथेन्द्रप्रादुर्भावः।

संदृश्य दस्रयोरिन्द्रः कर्म्माण्येतानि यत्नवान् ।
आयुर्वेदं निरुद्वेगं तौ ययाचे शचीपतिः ॥ १५॥
नासत्यौ सत्यसन्धेन शक्रेण किल याचितौ ।
आयुर्वेदं यथाधीतं ददतुः शतमन्यवे ॥ १६ ॥

भा॰ अनन्तर इन्द्रसे प्रगट हुवा। यत्नवाले इन्द्रने अश्विनीकुमारों के इन कामों को देखकर बहुत चमत्कारी वैद्यशास्त्र को उनसे मांगा (अर्थात् पढ़ने केवास्ते प्रार्थनाकी ॥ १५॥ सत्य के प्रणवाले इन्द्र से प्रार्थना कियेगये अश्विनीकुमारों ने जैसे आयुर्वेद पढ़ाथा वैसे इन्द्रको देदिया अर्थात् पढ़ाया ॥ १६ ॥

अथ अश्विनीकुमारप्रा० चि० ५



अथ इन्द्र प्राद्दु० चित्र० ५



नासत्याभ्यामधीत्यैष आयुर्वेदं शतक्रतुः।
अध्यापयामस बहूनात्रेय प्रमुखान् मुनीन् ॥१७॥

अथात्रेय प्रादुर्भावः।

एकदा जगदालोक्य गदाकुल मितस्ततः। चिन्तया
मास भगवानात्रेयो मुनिपुङ्गवः ॥ १८ ॥ किं करोमि
क्व गच्छामि कथं लोकाःनिरामयाः। भवन्ति साम
याश्चैतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम् ॥ १९ ॥
दयालु रहमत्यर्थं स्वभावो दुरतिक्रमः।
एतेषां दुःखतो दुःखं ममापि हृदयेऽधिकम् ॥२०॥

भा० ——— इन्द्र ने आयुर्वेद को अश्विनीकुमारों से पढके ही आत्रेया
दि बहुत से मुनियों को पढाया ॥१७॥ अनन्तर आत्रेय से प्रगट हुवा। एक
समय में मुनि श्रेष्ठ भगवान् आत्रेयजी सब जगह पर रोगसे पीड़ित संसार
को देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १८ ॥ क्या करूं कहां जाऊं कैसे लोग निरोग
होवेंगे। इन रोगियों को देख नहीं सक्ता ॥ १९ ॥ मैं बहुत दयाल हूं स्वभाव बद
ल नहीं सक्ता। मेरे मन में इनके दुःख से अधिक दुःख होता है ॥ २० ॥

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम्।
इति निश्चित्य गतवान् आत्रेयस्त्रिदशालयम् ॥२१॥
तत्र मन्दिर मिन्द्रस्य गत्वा शक्रं ददर्श सः। सिंहास
न समासीनं स्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥ २२ ॥

भा०-मनुष्यों के निरोग होने के वास्ते वैद्यशास्त्र को पढूंगा। ऐसे निश्चय क
र के आत्रेयजी स्वर्ग में गये ॥ २१ ॥ वहां पर इन्द्र के मन्दिर में जाकर आत्रेयजी
ने आयुर्वेद के बडे आचार्य- देवताओं के सिरताज- तेज में सूर्य के समान

अपनी कान्तीसे दिशाओंको प्रकाशकरनेवाले-देवता और ऋषियोंसे स्तुति कियेहुवे इन्द्र को सिंहासनपर बैठे हुवे देखा ॥ २२ ॥

भासयन्तं दिशो भासा भास्करप्रतिमत्विषा ।
आयुर्वेदं महाचार्य्यं शिरोधार्य्यं दिवौकसाम् ॥२३॥
शक्रस्तु तं निरीक्ष्यैव त्यक्तसिंहासनो ययौ । तद
ग्रे पूजयामास भृशं भूरितपःकृशम् ॥ २४ ॥
कुशलं परिपप्रच्छ तथा गमनकारणम् । स मुनि
र्वक्तुमारेभे निजागमनकारणम् ॥२५॥

भा० इन्द्र उनको देखतेही सिंहासन छोड़कर उनके आगे गया और बहुत तपसे दुर्बलहुवे अत्रियजी का बड़ा सत्कार किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ कुशल और आगमन का कारण पूंछा। उस मुनिने अपने आगमन का कारण कहना आरम्भ किया ॥ २५ ॥

देव ! राजन्राजासि दिवएव यतो भवान् । विधा
त्रा विहितो यत्नात् त्रिलोकीलोकपालकः ॥२६॥
व्याधिभिर्व्यथिता लोकाः शोकाकुलितचेतसः ।
भूतले सन्ति सन्तापं तेषां हन्तुं कृपां कुरु ॥२७॥
आयुर्वेदोपदेशं मे कुरु कारुण्यतो नृणाम् । तथे
त्युक्त्वा सहस्राक्षोऽध्यापयामास तं मुनिम् ॥२८॥

भा० हे देवताओं के राजा तुम स्वर्गहीके राजा नहीं हो। क्योंकि ब्रह्माजीने यत्न के साथ आपको तीनों लोकोंके लोगोंका पालन करने वाला बनाया है ॥ २६ ॥ शोक से व्याकुल चित्तवाले और रोगसे पीड़ित लोग संसार में हैं इनके सन्तापको दूर करनेके अर्थ कृपा कीजिये ॥ २७ ॥

मनुष्योंपर दयाकरके मुझे आयुर्वेद का उपदेश कीजिये । बहुत अच्छा यह कहकर इन्द्र ने उस मुनिको पढ़ाया ॥ २८ ॥

मुनीन्द्रः इन्द्रतः साङ्गमायुर्वेद मधीत्य सः । अभिनन्द्य क्रमाशीर्भिराजगाम पुनर्म्महीम् ॥ २९ ॥ अथात्रेयो मुनिश्रेष्ठो भगवान् करुणाकरः । स्वनाम्ना संहितां चक्रे नरचक्रानुकम्पया ॥ ३० ॥ ततोऽग्निवेशो भेडश्च जातूकर्णः पराशरः ॥ क्षीरपाणिश्च हारीत मायुर्वेदं मपाठयत् ॥ ३१ ॥

भा० उस मुनिराज ने इन्द्रसे अष्टाङ्ग सहित आयुर्वेद को पढ़कर आशीर्वादों से इन्द्रको प्रसन्न करके फिरसे पृथ्वीपर आये ॥ २९ ॥ दयावान् मुनिवर भगवान् आत्रेयजी ने [illegible] करके अपने नामसे संहिता बनाई [illegible] जातूकर्ण पराशर क्षीर पाणि और [illegible] ॥ ३१ ॥

तन्त्रस्य कर्त्ता प्रथममग्निवेशोऽभवत्पुरा ॥ ततो भेडादयश्चक्रुः स्वं स्वं तन्त्रं कृतानि च ॥ ३२ ॥ श्रावयामासु रात्रेयं मुनिवृन्देन वन्दितम् ॥ श्रुत्वा च तानि तन्त्राणि हृष्टोऽभूदभिनन्दनः ॥ ३३ ॥ यथावत् सूत्रितन्तस्मात् प्रहृष्टा मुनयोऽभवन् ॥

भा० पूर्वकाल में प्रथम तन्त्र के करनेवाले अग्निवेश हुवे ॥ उसके अनन्तर भेडादिकों ने अपने २ तन्त्र बनाये ॥ ३२ ॥ मुनि वृन्दों से नमस्कार कियेगये आत्रेयजी को सुनाया ॥ उन तन्त्रों को सुनकर आत्रेयजी प्रसन्न हुवे ॥ ३३ ॥ ठीक ठीक बनी इस कारण मुनिलोग प्रसन्न हुवे ॥

दिवि देवर्षयो देवाः श्रुत्वा साध्विति तेऽब्रुवन् ॥ ३४॥

भरद्वाजप्रादुर्भावः।

एकदा हिमवत्पार्श्वे दैवादागत्य सङ्गताः ॥ मुनयो बहवस्तेषां नामभिः कथयाम्यहम् ॥ ३५॥ भारद्वाजो मुनिवरः प्रथमं समुपागतः ॥ ततोऽङ्गिरास्ततो गर्गो मरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ ३६॥ पुलस्त्योऽगस्तिरसितो वसिष्ठः सपराशरः ॥ हारीतो गौतमः सांख्यो मैत्रेयश्च्यवनोऽपि च ॥ ३७॥

भा० स्वर्ग में देव ऋषि और देवता लोगोंने सुनकर वे लोग बहुत अच्छा ऐसा कहने लगे ॥ ३४॥ भरद्वाज से प्रगट हुवा। एक समय में हिमालय के पास दैवयोगसे बहुतसे मुनिलोग आकर मिले ॥ उनके नाम मैं कहता हूं ॥ ३५॥ पहिले मुनिवर भारद्वाजजी आये ॥ अनन्तर अङ्गिरा और उसके अनन्तर गर्ग मरीचि भृगु भार्गव ॥ ३६॥ और पुलस्त्य अगस्ति असित वसिष्ठ पराशर सहित ॥ हारीत गौतम सांख्य मैत्रेय और च्यवन भी आये ॥ ३७॥

जमदग्निश्च गार्गश्च काश्यपः कश्यपोऽपि च ॥ नारदो वामदेवश्च मार्कण्डेयः कपिञ्जलः ॥ ३८॥ शाण्डिल्यः सहकौण्डिन्यः शाकुनेयश्च शौनकः ॥ आश्वलायन सांकृत्यौ विश्वामित्रः परीक्षकः ॥ ३९॥ देवलो गालवो धौम्यः काम्य कात्यायनावुभौ ॥

और जमदग्नि गार्ग काश्यप कश्यप ॥ नारद वामदेव मार्कण्डेय कपिञ्जल कौण्डिन्य के साथ शाण्डिल्य शाकुनेय शौनक ॥ आश्वलायन सांकृत्य ॥ ३९ ॥ देवल गालव धौम्य काम्य कात्यायन दोनों॥

कुशिको बादरायणः ॥ ४०॥

अथ आत्रेय प्रादु० चित्र ६



अथ भारद्वाज प्रादु० चित्र ७



हिरण्याक्षश्च लौगाक्षिः शरलोमा च गोभिलः ॥ वै
खानसा वालखिल्या स्तथैवान्ये महर्षयः ॥ ४१ ॥ ब्र
ह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च ॥ तपतस्ते
जसा दीप्ता हूयमाना इवाग्नयः ॥ ४२ ॥ सोपविष्टा
स्ते तत्र सर्वे चक्रुः कथामिमाम् ॥ धर्मार्थ काम
मोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ॥ ४३ ॥

भा० और काङ्कायन वैजपाय कुशिक बादरायण ॥ ४० ॥ हिरण्याक्ष लौगा
क्षि शरलोमा गोभिल ॥ वैखानस बालखिल्य वैसेही और महर्षि लोग।
॥ ४१ ॥ जो ब्रह्मज्ञान के और यम नियम के भी समुद्र ॥ प्रज्वलित अग्नि के
समान तप और तेजसे दीप्त अर्थात् प्रकाशवाले ये सब आये ॥ ४२ ॥ वहांपर
बैठेहुवे वेसब इस कथा को कहने लगे । कि धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकी जड़
देह कही गई है ॥ ४३ ॥

तपःस्वाध्याय धर्माणां ब्रह्मचर्य्यव्रतायुषाम् ॥
हर्त्तारः प्रसृता रोगाःयत्र तत्र च सर्वतः ॥ ४४ ॥ रो
गाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहराः दृ
ष्टा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः ॥
धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बला
त् प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणि
नाम्?॥ ४५ ॥ ४६ ॥

भा० तप वेदपाठ और धर्मों का तथा ब्रह्मचर्य्य व्रत आयु इनके हरण क
रनेवाले रोग यहां वहां सब जगह फैलेहुवे हैं ॥ ४४ ॥ रोग दुबलापन कर
नेवाले, और बलका क्षयकरनेवाले, तथा शरीर की चेष्टा हरनेवाले, और इन्द्रि
य की शक्ति नष्टकरनेवाले देखे, और संपूर्ण शरीर में पीड़ा करनेवाले ॥ तथा
धर्म अर्थ और संपूर्ण काम मुक्ति इनमें बड़े विघ्नरूप ये रोग बलात्कार से प्राणों
को शीघ्र हरतेहैं जब ये रोग विद्यमान हैं तब प्राणियों को सुखकहां अर्थात् नहीं

मिल सका ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

तत्तेषां प्रशमाय कश्चन विधि श्चिन्त्यो भवद्भिर्बुधै योग्यैरित्यभिधाय संसदि भरद्वाजं मुनिं तेऽब्रुवन् ॥ त्वं योग्यो भगवन् । सहस्रनयनं याचस्व लब्धं क्रमा दायुर्वेद मधीत्य यं गदभयात् मुक्ता भवामो वयम् ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इत्थं स मुनिभिर्योग्यैः प्रार्थितो विनयान्वितैः ॥ भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठो जगाम त्रिदशालयम् ॥ ४९ ॥

भा० तिस्से उनके दूर होने के वास्ते आप ऐसे विद्वान् और योग्य पुरुषों से कोई प्रकार सोंचा जाना चाहिये इस तरह सभामें वे ऋषिलोग नाम लेकर भरद्वाज मुनिसे बोले ॥ ४७ ॥ हे भगवन् तुम योग्यहो । इन्द्र से प्रार्थना करोकि प्राप्त कियेहुवे आयुर्वेद को क्रमके साथ पढ़कर इन रोगोंसे हमलोग छूट जावें ॥ ४८ ॥ इस तरहपर विनयकरके युक्त और योग्य मुनियोंसे प्राथना किये गये वह मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी महाराज स्वर्ग को गये ॥ ४९ ॥

तथेन्द्र भवनं गत्वा सुरर्षि गणमध्यगम् ॥ दृष्टवान् वृत्रहन्तारं दीप्यमान मिवानलम् ॥ ५० ॥ दृष्ट्वैव स मुनिं प्राह भगवान् मघवा मुदा ॥ धर्म्मज्ञ ! स्वागतन्तेऽथ मुनिं तं समपूजयत् ॥ ५१ ॥ सोऽभिगम्य जयाशीर्भिरभिनन्द्य सुरेश्वरम् ॥ ऋषीणां वचनं सम्यक् श्रावयन् मुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥

भा० उसी प्रकार इन्द्रके भवनमें जाकर देवता और ऋषियोंके बीचमें बैठे हुवे वृत्रासुरके मारनेवाले तथा अग्निके समान प्रकाशमान् इन्द्रको देखा ॥ ५० ॥ उस भगवान् इन्द्रने मुनिको देखतेही आनन्द पूर्वक कहा ॥ हे धर्मके जानने

बोले ॥ तुम्हारा आना कुशल क्षेमके साथ हुवा इसप्रकार कुशल पूंछने के अनन्तर उस मुनीकी पूजा की ॥ ५१ ॥ उस मुनि श्रेष्ठ भरद्वाजजी ने इन्द्र से मिलकर और आशीर्वाद से प्रसन्न करके ऋषियों का कहना अच्छी तरह सुनाया ॥ ५२ ॥

व्याधयो हि समुत्पन्नाः सर्व्वप्राणिभयङ्कराः ॥ तेषां प्रशमनोपायं यथावद्वक्तु मर्हसि ॥ ५३ ॥ तमुवाच मुनिं साङ्ग मायुर्वेदं शतक्रतुः ॥ जीवेद् वर्षसहस्राणि देही नीरुङ् निशम्य यम् ॥ ५४ ॥ सोऽनन्तपारन्त्रिस्कन्ध मायुर्वेदं महामुनिः ॥ यथावदचिरात् सर्वं बुबुधे तन्मना शुचिः ॥ ५५ ॥

भा॰ संपूर्ण जीवोंको भयदेनेवाले रोग उत्पन्न हुवे हैं ॥ उनके शमन होने का उपाय आप ठीक ठीक कह सक्तेहो ॥ ५३ ॥ इन्द्रने अंगसहित आयुर्वेद उस ऋषिको पढ़ाया ॥ जिस को सुनकर देही निरोगहोकर सहस्र वर्ष जीताहै ॥ ५४ ॥ पवित्र और एकाग्रचित्त हुवे उस महामुनि भरद्वाजने तीन कांडवाले अपार आयुर्वेद को अच्छीतरह पर थोड़े दिनों में सब जान लिया ॥ ५५ ॥

तेनायुः सुचिरं लेभे भरद्वाजो निरामयम् ॥ अन्यानपि मुनीं श्चक्रे निरुजः सुचिरायुषः ॥ ५६ ॥ ततन्स्तज्जनित ज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः ॥ गुणान् द्रव्याणि कर्म्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥ ५७ ॥ आरोग्यं लेभिरे दीर्घमायुश्च सुखसंयुतम् ॥ आयुर्वेदोक्तविधिनाऽन्येऽपि स्युर्मुनयो यथा ॥ ५८ ॥

चरकप्रादुर्भावः ।

यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः॥ तदा शे.
षश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ ५९ ॥ अथर्वा
न्तर्गतं सम्यक आयुर्वेदञ्च लब्धवान् ॥ एकदा
स महीवृत्तं द्रष्टुञ्चर इवागतः ॥ ६०॥

भा० उस से भरद्वाजजी ने आरोग्यता के साथ बहुत दिनतक आयु पाई। और मुनियों को भी निरोग और दीर्घायु किया ॥ ५६ ॥ सम्पूर्ण ऋषियों ने उस तन्त्र द्वारा उत्पन्न हुवे ज्ञानरूपी नेत्रों से गुण द्रव्य और कर्मों को देखकर उसकी विधिको स्वीकार किया ॥ ५७ ॥ आरोग्य और सुखके सहित दीर्घ आयुको पाया ॥ और भी मुनिलोग आयुर्वेद की कही विधिसे सुखी और दीर्घ आयु हुवे ॥ ५८ ॥ ॥ चरक का प्रादुर्भाव । जब भगवान ने मत्स्यावतार लेकर वेद निकाला । तब वहीं पर शेषजी ने अंग सहित वेद को पाया ॥ ५९ ॥ अथर्वण वेदके अन्तर्गत आयुर्वेद को अच्छे प्रकार हासिल किया ॥ एक समय में वह शेषजी पृथ्वीका समाचार देखने को जासूस के मानिंद आये ॥ ६० ॥

तत्र लोकान् गदैर्ग्रस्तान् व्यथया परिपीड़ितान्॥
स्थलेषु बहुषु व्यग्रान् म्रियमाणांश्च दृष्टवान् ॥
॥ ६१ ॥ तान् दृष्ट्वा तिदयायुक्त स्तेषां दुःखेन दुःखितः
॥ अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ॥ ६२॥
सञ्चिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूवह ॥

भा० वहां पर बहुतसे स्थानों में रोगोंसे ग्रसित और दुःख से पीड़ित । व्याकुल मरे से लोगों को देखा ॥ ६१ ॥ उनको देखकर बहुत दयावाले और उनके दुःख से दुःखित शेषजी रोग के शमन होनेका उपाय सोंचने लगे ॥ ६२ ॥ बाद अच्छी तरह पर सोंच कर शेषजी ने खुद वहांपर वेद और वेदांग के जानने वाले प्रसिद्ध और विशुद्ध


भार्गव·
भृगु
अंगिरा
भारद्वाज·
यमद
नारद
कश्यप
चरक माद॰ चित्र॰ ६
चरक मुनी

प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्ग वेदिनः ॥ ६३ ॥ यत
श्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः ॥ तस्माच्चरक
नाम्नाऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले ॥ ६४ ॥ स भा
ति चरकाचार्य्यो वेदाचार्य्यो यथा दिवि ॥ सहस्र
वदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजां कृतः ॥ ६५ ॥ आत्रेय
स्य मुनेः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन् ॥

भा० मुनिके पुत्र हुवे ॥ ६३ ॥ क्यों कि जिस कारण जासूस के से आये और किसीसे नहीं जाना उस कारण यह चरक नाम से संसार में प्रसिद्ध हुवा ॥ ६४ ॥ जिसने रोगों का नाश किया वह शेषजीका अंश चरकाचार्य्य पृथ्वी में शोभते हैं जैसे स्वर्ग में वेदाचार्य्य शोभते हैं ॥ ६५ ॥ अग्निवेशादिक बहुतसे मुनि आत्रेयजी के शिष्य हुवे ॥

मुनयो बहवस्तैश्च कृतं तन्त्रं स्वकं स्वकं ॥ ६६ ॥
तेषां तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता ॥ च
रकेनात्मनो नाम्ना ग्रन्थोऽयं चरकः कृतः ॥ ६७ ॥

धन्वन्तरिप्रादुर्भावः ।

एकदा देवराजस्य दृष्टिर्निपतिता भुवि ॥ तत्र तेन न
रा दृष्टा व्याधिभिर्भृशपीड़िताः ॥ ६८ ॥ तान् दृष्ट्वा
हृदयं तस्य दयया परिपीड़ितम् ॥ दयार्द्रहृदयः श
क्रो धन्वन्तरिमुवाच ह ॥ ६९ ॥

भा० उन्होंने भी अपने अपने ग्रन्थ किये ॥ ६६ ॥ बहुत अच्छी बुद्धिवाले चरक ने उनके ग्रन्थों को लाकर और ठीक करके अपने नामसे यह चरक

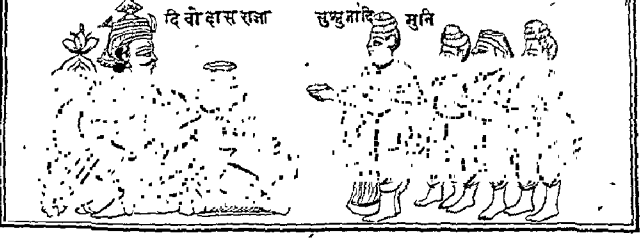
ग्रन्थ बनाया ॥ ६७ ॥ धन्वन्तरी का प्रादुर्भाव । एक समय में इन्द्र की दृष्टी पृथ्वीपर पड़ी ॥ उसमें उसने रोगसे अत्यन्त पीड़ित मनुष्य देखे ॥ ६८ ॥ उनको देखकर इन्द्रका हृदय दयासे अत्यन्त क्षोभित ऊवा ॥ दयासे सींचे ऊवे चित्तवाले इन्द्र ने धन्वन्तरि से कहा ॥ ६९ ॥

धन्वन्तरे । सुरश्रेष्ठ । भगवन् । किञ्चिदुच्यते ॥ योग्यो भवसि भूतानामुपकारपरो भव ॥ ७० ॥ उपकाराय लोकानां केन किन्न कृतं पुरा ॥ त्रैलोक्याधिपतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादि रूपवान् ॥ ७१ ॥ तस्मात्त्वं पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव ॥ प्रतीकाराय रोगाणामायुर्वेदं प्रकाशय ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वा सुरशार्दूलः सर्वभूतहितेप्सया ॥ समस्तमायुषो वेदं धन्वन्तरिमुपादिशत् ॥ ७३ ॥ अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्रात् धन्वन्तरिः पुरा ॥ आगत्य पृथिवीं काश्यां जातो बाहुज वेश्मनि ॥ ७४ ॥

भा० हे देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् धन्वन्तरि कुछ कहता हूं ॥ आप योग्य हो प्राणियोंके उपकार में तत्पर हूजिये ॥ ७० ॥ पहिले लोगोंके उपकारके वास्ते किसने क्या नहीं किया ॥ तीन लोक के मालिक भगवान ने मत्स्यादि रूपोंको धारण किया ॥ ७१ ॥ तिस्से तुम पृथ्वी पर जाओ और काशीके बीच में राजा बनो ॥ रोगों के दूर होने के वास्ते आयुर्वेद को प्रकाश करो ॥ ७२ ॥ इस प्रकार से कहकर इन्द्र ने सम्पूर्ण जीवों के हित की इच्छासे समस्त आयुर्वेद धन्वन्तरि को पढ़ाया ॥ ७३ ॥ पहिले धन्वन्तरि ने आयुर्वेद को इन्द्र से पढ़कर अनन्तर पृथ्वीपर आकर काशी में बाहुज के घर में जन्म लिया ॥ ७४ ॥

नाम्ना तु सोऽभवत् ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ ॥


सुश्रुत
विश्वामित्र


दिवोदास राजा
मुनि

वालएव विरक्तोऽभूच्चचार सुमहत्तपः ॥ ७५॥ यत्ने न महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोन्नृपं ॥ ततो धन्वंतरिर्लोके: काशीराजोऽभिधीयते ॥ ७६॥ हिताय देहिनां स्वीया संहिता विहिताऽमुना ॥ अयं विद्यार्थिनो लोकान् संहितान्ता मपाठयत् ॥ ७७॥

सुश्रुत प्रादुर्भावः।

अथ ज्ञानदृशा विश्वामित्र प्रभृतयोऽविदन्।

अयं धन्वन्तरिः काश्यां काशिराजो ऽयमुच्यते ॥ ७८॥
विश्वामित्रो मुनिस्तेषु पुत्रं सुश्रुत मुक्तवान्॥
वत्स: वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वे श्वर वल्लभाम् ॥ ७९॥
तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति वाहुजः॥
स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेद विदां वरः ॥ ८०॥

भा० वह पृथ्वीमें दिवोदास इस नामसे प्रसिद्ध हुवा। बालक पने में ही विरक्त हुवा और बहुत बड़ा तप किया ॥ ७५॥ ब्रह्माजी ने बड़े यत्न से उनको काशी का राजा बनाया ॥ तब से लोग धन्वन्तरिको काशीराज कहने लगे ॥ ७६॥ अनन्तर उन्होंने लोगोंके हितार्थ अपनी संहिता बनाई ॥ और विद्यार्थि लोगों को वह संहिता पढ़ाई ॥ ७७॥ सुश्रुत का प्रादुर्भाव। अनन्तर ज्ञान चक्षुसे विश्वामित्रादि मुनियोंने जाना। कि यह धन्वन्तरी है जिसको काशीमें लोग काशीराज कहते हैं ॥ ७८॥ उन मुनियों में से विश्वामित्र मुनिने अपने पुत्र सुश्रुत से कहा ॥ कि हेपुत्र तुम विश्वेश्वर की प्यारी काशी को जाओ ॥ ७९॥ वहां पर बाहुज का पुत्र दिवोदास इसनाम से काशिराज है ॥ वह आयुर्वेद जाननेवालों में श्रेष्ठ साक्षात् धन्वन्तरी है ॥ ८०॥

आयुर्वेदं ततोऽधीष्व लोकोपकृतिहेतवे ॥ सर्वे

प्राणिदयातीर्थमुपकारो महामखः ॥ ८१॥ पितुर्वचनमाकर्ण्य सुश्रुतः काशिकां गतः ॥ तेन सार्द्धं समध्येतुं मुनिसूनुशतं ययौ ॥ ८२ ॥ अथ धन्वन्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम् ॥ भगवन्तं सुरश्रेष्ठं मुनिभिर्बहुभिः स्तुतम् ॥ ८३ ॥ काशिराजं दिवोदासं तेऽपश्यन्विनयान्विताः ॥ स्वागतञ्च । इतिस्माह दिवोदासं यशोधनः ॥ ८४ ॥ कुशलं परिपप्रच्छ तथागमनकारणम् ॥

भा० सम्पूर्ण जीवों की दयाहै वह तीर्थ है और उपकार बड़ा यज्ञहै तिस्से लोगों के उपकार के अर्थ आयुर्वेद को पढ़ो ॥ ८१ ॥ पिताका वचन सुनकर सुश्रुत काशी को गया ॥ उस के साथ पढ़नेके अर्थ सौ मुनियों के पुत्र गये ॥ ८२ ॥ अनन्तर विनय युक्त उन सब मुनियों के पुत्रों ने वानप्रस्थाश्रम में स्थित देवताओं में श्रेष्ठ और बहुत से मुनियों से । स्तुति किये हुवे दिवोदास नाम काशिराज धन्वन्तरि को देखा ॥ ८३ ॥ यश है धन जिनका ऐसे दिवोदास नें अच्छा आनाहुवा अर्थात् बड़ी कृपाकी ऐसा कहा और कुशल तथा आगमन का कारण पूंछा ॥

ततस्ते सुश्रुतद्वारा कथयामासुरुत्तरम् ॥ ८५ ॥ भगवान्मानवान्दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीड़ितान् ॥ क्रन्दतो म्रियमाणांश्च जाताऽस्माकं हृदि व्यथा ॥ ८६ ॥ आमयानां शमोपायं विज्ञातुं वयमागताः॥

भा० तब उन्ह ने सुश्रुत के द्वारा अच्छी तरह पर कथन किया ॥ ८४ ॥ ८५ हे भगवान रोगोंसे दुखी और रोतहुवे मरते मनुष्यों को देखकर हमारे हृदय में पीड़ा उत्पन्नहुई ॥ ८६ ॥ रोगों का उपाय जानने के वास्ते हमलोग आये हैं ॥

आयुर्वेदं भवान् अस्मानध्यापयतु यत्नतः ॥ ८७ ॥ अङ्गीकृत्य वचस्तेषां नृपतिस्तानुपादिशत् ॥ व्याख्यातन्तेन ते यत्नाज्जगृहुर्मुनयो मुदा ॥ ८८ ॥ काशिराजं जयाशीर्भिरभिनन्द्य मुदान्विताः ॥ सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्था जग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् ॥ प्रथमं सुश्रुतस्तेषु स्वतन्त्रं कृतवान् स्फुटम् ॥ सुश्रुतस्य सखायोऽपि पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ॥ ९० ॥ सुश्रुतेन कृतं तन्त्रं सुश्रुतं बहुभिर्यतः ॥

भा॰ आप यत्न के साथ आयुर्वेद हमलोगों को पढ़ाइये ॥ ८७ ॥ उनका कहना स्वीकार करके राजाने उनको पढ़ाया ॥ उनसे पढ़ायेहुवेको उन मुनियों ने यत्नके साथ खुशीसे ग्रहण किया ॥ ८८ ॥ अच्छी तरह पर सिद्धहुवे प्रयोजनवाले आनंदयुक्त सुश्रुतादि मुनियोंने काशिराजको जयाशीर्वादोंसे प्रसन्न करके अपने अपने घरको गये ॥ ८९ ॥ उनमें पहिले सुश्रुतने अपने तन्त्रको स्पष्ट किया ॥ सुश्रुतके मित्रोंने भी अपने तन्त्रोंको अलग बनाया ॥ ९० ॥ सुश्रुत के बनायेहुवे तन्त्र को बहुतों ने अच्छी तरह पर सुना इसवास्ते ॥

तस्मात्तत्सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षितिमण्डले ॥ ॥ ९१ ॥

इत्यायुर्वेदप्रकरणे नृणां प्रादुर्भावः

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयो योगरत्नानि यत्नाल्लब्ध्वा स्वे स्वे निबन्धे दधुरखिलजनव्याधिविध्वंसनाय ॥ तत्तद्ग्रन्थाद्गृहीतैः सुवचनमणिभिर्भावमिश्रश्चिकित्साशास्त्रे जाड्यान्धकारं

प्रशमयितुमिमं स विधत्ते प्रकाशम् ॥१॥ ॥

श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भि र्भूमिदेवानाम् ॥

भावप्रकाशनाम्ना ग्रन्थोऽयं पठ्यतां सर्वैः ॥२॥

एतस्य निबन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्य पुरुषस्तु च

तुर्विंशति तत्त्वजीवात्म समवायस्तस्मा चतुर्विंशति तत्त्वा

नां जीवात्मनश्च स्वरूप निरूपणाय सृष्टिक्रम माह। (ख)

भा० सुश्रुत नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुवा ॥ ८१ ॥ इस तरह पर आयुर्वेद के प्रकरण में मनुष्यों का प्रादुर्भाव हुवा है ॥

बहुत बुद्धिवान् मुनियों ने आयुर्वेद रूपी समुद्र के बीच में से योगरूपी रत्नों को यत्नसे पाकर सब लोगोंके रोग दूर होने के वास्ते अपने २ ग्रन्थों में स्थापन किया ॥ उन २ ग्रन्थों से लियेहुवे अच्छे २ वचनरूपी मणियों से भाव मिश्र के चिकित्सा शास्त्र में जो अज्ञरूपी अन्धकार है उसको दूर करने के वास्ते इस प्रकाश को बनाया है अर्थात् भावप्रकाश नाम ग्रन्थ को बनाया है ॥ १ ॥

श्रीभगवान के चरणों के प्रसाद से और ब्राह्मणों की आशीर्वाद से इस ग्रन्थको भाव प्रकाश नाम से सब पढ़ें ॥ २॥

इस ग्रन्थके सन्दर्भ का प्रयोजन पुरुषकी चिकित्सा अर्थात् रोगका प्रतीकार है। और पुरुष जो चौबीस तत्त्व जीव आत्मा इनका समवाय अर्थात् मेल है तिस्से चौबीसु तत्त्वों का और जीवात्मा के स्वरूप निरूपण के वास्ते सृष्टिका क्रम कहते हैं ॥ (ख) ॥

आत्माज्योतिश्चिदानन्द रूपो नित्यश्च निस्पृहः ॥

निर्गुणः प्रकृतेर्योगा त्सगुणः कुरुते जगत् ॥ १ ॥

सगुण इच्छादि युक्तः ॥ (ग)

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतेः समाः ॥ सा ज

ड़ापि जगत् कर्त्री परमात्म चिदन्वयात् ॥ २॥

सतः साधोर्भावः. सत्त्वं प्रकाशकं ज्ञानं सुखहेतुः रजोरागा

त्मकं दुःखहेतुः ताम्यति ग्लानिं प्राप्नोति अनेनेति तमः आव
रकं मोहहेतुः। ते गुणाः समाः प्रकृति रित्यर्थः तथा स
ति न्यूनाधिकगुणाः विकृतिः अथ सुश्रुत मुपदिशन् धन्व
न्तरिः (ख)॥ [प्रकृतेःस्वरूपविशेषणमाह।]

भा० आत्मा प्रकाश और ज्ञानरूप तथा नित्य निरिच्छ निर्गुण है परंतु प्रकृति के योगसे सगुण होकर जगत् को करता है॥१॥ सगुण अर्थात् इच्छादिकर के युक्त (क)॥ सत्व रज तम इस तरह पर प्रकृति के वे सम गुण हैं। वे प्र कृति जड़ हुई भी अविनाशी ज्ञानरूप परमात्मा के चिदाभास से जगत को उत्प न्न करने वाली है॥२॥ साधु नाम उत्तम जो भाव अर्थात् धर्म को सत्व कह ते हैं वह प्रकाश करने वाला ज्ञान सुख का हेतु है॥ रज इच्छा प्रीति वाला दुःखका हेतु है। तम ग्लानि को देनेवाला और बुद्धिको आच्छादन करने वाला मोहका कारण है। वे गुण समहुवे प्रकृति कहलाते हैं। और जो न्यूना धिक हुवे विकृति कहलाते हैं॥ (क)॥
अनन्तर सुश्रुत को उपदेश करते हुवे धन्वन्तरि ने॥ (ख)॥
प्रकृतिके स्वरूप विशेष को कहा है॥

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षण मष्टरू
पमखिलस्य जगतःसम्भवहेतुरव्यक्तं नामेति॥ (ग)
अस्यायमर्थः। (घ) अव्यक्तं न व्यज्यतेस्मेति अव्यक्तं
मूलप्रकृत्यपरपर्य्यायं ततः सर्वभूतानां कारणं समवा-
यिकारणं अकारणं न विद्यते कारणं यस्य तत् सत्त्वरज
स्तमोलक्षणं सम सत्त्वरजस्तमः स्वरूपं अष्टरूपं, अव्यक्तं
महान् अहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीत्यष्टौ रूपाणि यस्य तत्
यत इन्द्रियाणां महाभूतानाञ्च कारणतया महदादयोऽ
पि सप्त प्रकृतयः एवमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्त

मित्युपसंहार : ॥ (ङ)

भा० सम्पूर्ण जीवों का कारण और अकारण अर्थात् आप सबका कारण और अपना कोई कारण नहीं और सत्व रज तम लक्षणवाला अष्टरूप संम्पूर्ण जगत का उत्पत्तिहेतु अव्यक्त नाम है ॥ (ग) ॥

इसका अर्थ यह है कि (घ)। जो प्रगट नहीं होता वह अव्यक्त है अर्थात् मूल प्रकृति का दूसरा पर्य्याय है। जिस्से सब भूतोंका कारण अर्थात् समवायि कारण नय्यायिकोंके मत में द्रव्य गुणों का सम्बन्ध समवाय होता है। और यहां सांख्यके मत में द्रव्य द्रव्य का सम्बन्ध जिसको संयोग सम्बन्ध कहते हैं वह समवाय है ॥ अकारण,नहीं है कारण जिसका वह अकारण सम सत्व रज तम स्वरूप और अष्टरूप नाम अव्यक्त महान् अहंकार और पंच तन्मात्रा अर्थात् रूप रस गंध शब्द स्पर्श यह आठ रूप हैं जिसके वह अष्टरूप जैसे इन्द्रियों का अर्थात् चक्षु श्रोत्र जिव्हा नासिका और त्वचा इनका तथा महा भूतोंका अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायु आकाश इनके कारण रूपसे महदादिकभी सातप्रकृति होतेहैं ॥

इस प्रकार संपूर्ण जगत के उत्पत्त का हेतु अव्यक्त है ॥ (ङ)

[प्रकृतिपुरुषयोः साधर्म्यमाह।]

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्यलिङ्गा वुभावपि नित्या वुभावप्यपरा वुभावपि सर्वगतौ इति उभावपि नित्यौ लयं क्वचिदपि न यातः उभावप्यपरौ न विद्यते परोऽपरो याभ्यान्तावपरौ (च)

अथातो नयो वैधर्म्यमाह।

एकातु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा वीजधर्म्मिणी प्रसवधर्म्मिराय मध्यस्थधर्म्मिणी चेति अचेतना जड़ा त्रिगुणा तुल्यगुणत्रयात्मिका वीजधर्म्मिणी सर्वेषां महदादीनां विकाराणां वीजत्वेनावस्थित प्रसवधर्म्मिणी पुरुषे

णाक्रान्ताक्षोभंप्राप्य सम्यगतिक्रम्य महदहङ्कारा
दि क्रमेण जगतः प्रसवित्री अमध्यस्थधर्म्मिणी सुख
दुःख भोग भोगिनी ॥ (छ) ॥

न तु सुखदुःख भोगादुदासीना पुरुषस्तु चेतनावान्
निर्गुणोऽप्रसवधर्म्मा वीजधर्म्मा मध्यस्थधर्म्मा चेति (ज)

भा० प्रकृति और पुरुष का साधर्म्य अर्थात् समान धर्मता कहते हैं।
दोनों अनादि दोनों अनंत दोनों अलक्षण दोनों नाश रहित दोनों अप
र अर्थात् जिनके परे कोई नहीं और दोनों सबमें व्याप्त इस प्रकार सा
धर्म्य है। दोनों नित्य अर्थात् कभी भी नाश को नहीं प्राप्त होते दोनों अ
पर, अर्पत नहीं है परे जिन्होंसे ॥ (च) ॥
साधर्म्य कथन करनेके अनन्तर विरुद्ध धर्म के देखने से उन का वै
धर्म्य कहते हैं। प्रकृति तो एक और जड़ तीन गुण वाली बीज ध
र्म वाली अर्थात् सब महदादि कों की बीजरूप होकर रहने वा
ली तथा प्रसवधर्मवाली अर्थात् महत्तत्त्व अहंकारादि
क्रमसे जगत को उत्पन्न करनेवाली अमध्यस्थ धर्मवाली अर्थात् सुख
दुःख के भोगको भोगनेवाली इस प्रकार प्रकृति पुरुषों का वैधर्म्य है।
अचेतना नाम जड़ा अर्थात् ज्ञान से रहित त्रिगुणा तीनगुणवाली वीजधर्म्मि
णी अर्थात् सब महदादि विकारों के बीजरूप होके रहनेवाली प्रसव धर्म्मि
णी अर्थात् पुरुष से आक्रान्त हुई क्षोभ को पाकर महत्तत्व अहंकारादि
क्रमसे जगत को उत्पन्न करनेवाली अमध्यस्थ धर्म्मिणी सुखदुःख के
भोग को भोगनेवाली ॥ (छ) ॥
न कि सुखदुःख के भोगसे तटस्थ होनेवाली। पुरुष तो चेतना वाला औ
र निर्गुण तथा अप्रसव धर्मवाला अवीज धर्मवाला और मध्यस्थ ध
र्मवाला इस प्रकार वैधर्म्य है ॥ (ज)

निर्गुणः अविद्यमान् सत्त्वादि गुणः। (क) ॥
अवीजधर्म्मा महाप्रलये महदादीनां विकाराणां प्रकृता

विव तस्मिन्नवस्थानात् मध्यस्थधर्म्मा सुखदुःखे
च्छाद्वेषादिभ्यःउदासीनः ॥ (ञ)॥

[प्रकृतेर्नामानि आह।]

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ॥
एतानि तस्या नामानि पुरुषं या समास्थिता ॥ ३॥

गुणानाह।

सत्त्वं रजस्तमस्त्रीणि विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तैश्च
युक्तस्य चित्तस्य कथयाम्यखिलान् गुणान् ॥ ४॥

अथ सत्त्वादियुक्तस्य मनसो गुणानाह।

आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनुत्तापश्च तथ्यं वचो।
मेधाबुद्धि धृतिक्षमाश्च करुणा ज्ञानञ्च निर्दम्भता॥
कर्मानिन्दितमस्पृहञ्च विनयो धर्म्मः सदैवादरा।
देते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो गीता गुणा ज्ञानिभिः॥ ५॥

भा॰ निर्गुणः सत्व रज तम इन तीन गुणों से रहित ॥ (क) ॥ अवीच धर्म्मा महाप्रलय में महदादि विकारोंको प्रकृतिके मानिंद उसमें नरहनेसें मध्यस्थ धर्म्मा सुखदुःख इच्छा द्वेषादिकों से उदासीन अर्थात् बेप्रयोजन ॥ (ञ) ॥ ॥ प्रकृतिके नाम कहतेहैं ॥ प्रधान प्रकृति शक्ति नित्या अविकृति ये उसके नामहैं जो पुरुषका आश्रय करके रहती है ॥ ३॥ ॥ प्रकृतिके गुण कहते हैं ॥ सत्व रज तम ये तीन प्रकृति के गुण जाने गयेहैं। उन से युक्त चित्तके सब गुण कहताहूं ॥ ४॥

सत्त्वादि युक्त मनके गुण कहते हैं ।

आस्तिकता अच्छीतरह विभागकरके अर्थात् देवदेव बलि अतिथि इनको दे करके भोजन और क्रोधसे रहितहोना सचबोलना तथा मेधा बुद्धि धृति क्षमा करुणा ज्ञान और दम्भसे रहितहोना तथा निन्दासे रहितकर्म और नि

स्पृह विनय तथा सर्वदा आदरसे धर्म्माचरण करना ये सत्वगुण से युक्त हुवे मन के गुण ज्ञानियों से कहे गये हैं ॥ ५॥

अस्ति धर्म्ममोक्ष परलोकादिक मिति बुद्ध्या चरतीत्यास्तिकः स्तस्य भाव आस्तिक्यं अनुतापः अक्रोधः धृतिः भूतप्रेतस्म रक्रोध लोभाद्यावेशराहित्यं ज्ञानमात्मज्ञानम् । निर्दम्भ ता कपटाभावः कर्म्म अनिन्दितं अस्पृहं निष्कामं च। (क)

भा० धर्म्म मोक्ष परलोकादिक है इस बुद्धि से जो आचरण करता है वह आस्तिक उसका जो धर्म्म वह आस्तिक्य अनुताप सन्ताप रहित अर्थात् क्रोधका अभाव धृतिः भूत प्रेत काम क्रोध लोभादियों के आवेश से रहित होना ज्ञानं आत्माका ज्ञान निर्दम्भता कपटका न होना निन्दासे रहितकाम अस्पृहं इच्छासे रहित होना ॥ (क) ॥

रजोगुणयुक्त मनसो लक्षणं।

क्रोधस्ताडन शीलता च बहुलं दुःखं सुखेच्छाधिका
दम्भः कामुकताऽप्यलीक वचनं चाधीरताहङ्कृतिः ।
ऐश्वर्य्यादभिमानितातिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं
प्रख्याता हि रजोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः॥ ६॥

(ख) अलीकवचनं मिथ्या कथनं अटनं पृथ्वी परिभ्रमणम् (ख)

भा० रजोगुण से युक्तहुवे मन का लक्षण ॥ क्रोध मार पीट करने का स्वभाव बहुत दुःख सुखकी अधिक इच्छा दम्भ स्त्री भोग करने की इच्छा झूठ बोलना धीरज न धरना (अहंकार) ऐश्वर्य्य से बहुत अभिमान होना और बहुत आनंद होना तथा घूमना रजोगुणवाले मन के यह लक्षण कहे गये हैं ॥ ६॥ अलीकवचनं मिथ्याभाषणकरना अटनं पृथ्वीपर घूमना। ॥ (ख) ॥

अथ तमोयुक्तमनसो लक्ष०

नास्तिक्यं सुविषण्णताति शयितालस्यं च दुष्टा मतिः
प्रीतिर्निन्दितकर्मे शर्मणि सदा निद्रालुताऽहर्निशम्।
अज्ञानं किल सर्वतोऽपि सततं क्रोधान्धता मूढता
प्रख्याता हि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः॥७॥
तत्र प्रभूतसत्त्वस्तु सात्त्विकः पुरुषः स्मृतः। राज
सस्तामसश्चैव त्रिविधस्तेन मानवः॥८॥ ततो
ऽभवन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वापराभिधम्॥

भा० अनन्तर तमसे युक्त ज़वे मनका लक्षण॥ नास्तिकता अत्यन्त विषण्णता बक़्त आलस्य और दुष्टमति बुरे कामोंमे प्रीति और आराम में प्रीति सर्वदा रात्रि दिवस निद्रालुता और चारों तरफ़से निरंतर आज्ञान तथा क्रोधके मारे अन्धा होना और मूर्खता तमोगुण से युक्त ज़वे मनके यह गुण कहे गये हैं॥७॥ उसमें बक़्त सत्ववाला सात्त्विक पुरुष कहलाता है उसी तरह से रजोगुण अधिक वाला राजस तमोगुण अधिक वाला तामस इस प्रकार तीन तरह के मनुष्य कहे गये हैं॥८॥ उसके अनंतर दूसरे बुद्धि तत्त्व नामवाला॥ तीनों गुणों से युक्त सत्वाधिक स्फटिक समान महत्तत्त्व उत्पन्न ज़वा॥९॥

त्रिगुणं सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम्॥९॥
चिच्छाया प्राप्तचैतन्यं तदिच्छामयमीरितम्॥

ततः प्रकृतेस्त्रिगुणं त्रयोगुणा यत्र तत् तत्र सत्त्व बक़लं अत्राय मभिप्रायः। (क)॥ यथा निर्म्मले ह्रदादौ बहुद्रव्यपाता त्तदीयं जलं वर्द्धते तथा चिद्रूपपुरुषेणाक्रमणं तुल्यगुणत्रयात्मिकायाः प्रकृतेर्ज्ञानहेतुः प्रकाशः सत्त्वगुणोद्रेकः प्रवृद्धः सत्त्वतः प्रकृतेः सत्त्वबक़लं बुद्धितत्त्व

मभवत् ॥ (ख) ॥ महतस्त्रिगुणाज्जातो ऽहङ्कारस्त्रिगुणान्वितः ॥ सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चेति स त्रिधा ॥ १० ॥

भा० चित् छाया से प्राप्तहुवा चैतन्य उसकी इच्छावाला कहा गया ॥ उस के अनंतर प्रकृति के त्रिगुण तीनहैं गुण जिसमें वह त्रिगुण इससे यहांपर यह अभिप्रायहै कि । (क) । वह सत्त्वाधिक है । जैसे निम्मलजलाशय के बीच मे बहुतसी वस्तु गेरने से उसका पानी बढ़ताहै उसी प्रकार चिद्रूप पुरुष से घिरीहुई बराबर गुणवाली प्रकृति के ज्ञानका कारण प्रकाशरूप सत्वगुण बढ़ा । प्रकृति के सत्वगुण से बहुत बढ़ाहुवा सत्वाधिक बुद्धि तत्व हुवा ॥ (ख) ॥

महत्तत्व के त्रिगुण से त्रिगुणयुक्त अहंकार उत्पन्न हुवा । वह अहंकार सात्त्विक राजस तामस इस तरह से तीन प्रकार का हुवा ॥ १० ॥

महतः बुद्धितत्त्वात् त्रिगुणात् त्रयोगुणाः यत्र ततः ननुमहत्तत्वं त्रिगुणमुक्तमेव किमर्थं महतस्त्रिगुणादिति विशेषणं सत्यम् । (क) ॥ त्रिगुणादिति पुन विशेषणादुक्तं सत्त्वबहुलमिति विशेषणमत्र नानुवर्त्तते तेनाहङ्कारोत्पादकं महत्तत्वं त्रिगुणमपि रजोबहुलं बोद्धव्यम् (ख)

भा० त्रिगुणवाली महत् बुद्धितत्त्व से तीन गुण हैं जिसमें वह त्रिगुणी । यहां पर शंका करतेहैं कि महत्तत्व तीनगुणवाला कहाही गया था तव महत. त्रिगुणात्, यह विशेषण फिरसे किसवास्ते दिया । सचहै (क)

त्रिगुणात् यह फिरसे विशेषण देने से सत्त्वाधिक मालूम होताहै परन्तु यहांपर विशेषण पीछे नहीं जाता जिस्से अहंकार का उत्पन्नकरनेवाला महतत्व तीनगुणवाला भी रजोगुण अधिक जानना चाहिये ॥ (ख) ॥

अहङ्कारस्य रजो गुणान्वितस्य मनोधर्म्मत्वात् (ग)

अहंकारोऽभिमानव्यापार लक्षणमाह.

अहङ्कार स्त्रिविधस्तानाह सात्त्विक इत्यादि ।

तस्य त्रिविधस्य कार्य्यमाह।

जातानि सात्त्विकात्तस्मादिन्द्रियाणि स राजसात् ।

तानि श्रोत्रं त्वचो नेत्रं रसना नासिका तथा ॥ ११॥

वाग्घस्त चरणोपस्थं गुदान्येकादशो मनः ॥ पञ्च

बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥ १२ ॥

कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चितः ॥

भा० रजोगुण के युक्त अहङ्कार का मनोधर्म होनेसे । (ग) ॥ अहंकार अभिमान व्यापार वाला उसका लक्षण कहेहैं ॥ अहंकार तीन प्रकार का है उनको कहते हैं । सात्त्विक राजस तामस । उन तीन अहङ्कारों के काम कहते हैं । उस राजस के सहित सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रियां उत्पन्न हुईं । वह कान त्वचा आँख जीभ नाक ॥ ११ ॥ वाणी हाथ पैर शिश्न गुदा ये दस, और ग्यारहवाँ मन । पण्डित लोग पहिली पांच को बुद्धिन्द्रिय कहतेहैं॥और दूसरी पांच को कर्म्मेन्द्रिय कहतेहैं ॥ १२ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि बुद्धेराश्रयत्वात् कर्म्मेन्द्रियाणि क कर्म्माश्रयत्वात् सात्त्विकाहङ्काराज्जातत्वादिन्द्रियाणि प्रकाश लक्षणानि सत्त्वस्य प्रकाशकत्वात् ॥ (क) ॥

मनो बुद्धीन्द्रियं विज्ञैः कर्मेन्द्रिय मपि स्मृतम् ॥

मनोऽधिष्टितमेवेद मिन्द्रियं यत् प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

भा० बुद्धीन्द्रिय अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय बुद्धीके आश्रय होनेसे और कर्मेन्द्रिय कर्म्मों के आश्रय होनेसे सात्त्विक अहंकार के उत्पन्न होने से इन्द्रियप्रकाश

लक्षण वाली हैं क्योंकि सत्त्व गुण का प्रकाश धर्म्म होने से ॥ (क) ॥ बुद्धिवान् लोग मन और बुद्धीन्द्रिय को कर्म्मेन्द्रिय भी कहते हैं ॥ यह इन्द्रियां मनके मिलनेही से अपने अपने कर्म्मों में प्रवृत्त होती हैं ॥

[तत्र इन्द्रियाणां विषयानाह]

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धो ह्यनुक्रमात् ॥
बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः समाख्याता महर्षिभिः॥१५॥
वाच्यं ग्राह्यञ्च गन्तव्य मानन्दं त्याज्यमेव च ॥
कर्म्मेन्द्रियाणां विषया ज्ञातव्याः विषयो हृदः॥१६॥
तामसादप्यहङ्कार स्तन्मात्राणि सराजसात्। (हृदः मनसः॥ (ख) ॥ पञ्चाल्पसत्त्वसम्बन्धात् तल्लिङ्गानि भवन्ति हि ॥ शब्द तन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ॥ १७॥

भा० अव उस्में इन्द्रियों के विषय कहते हैं ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह अनुक्रम से अर्थात् एकके पीछे एक इस क्रमसे बुद्धीन्द्रियों के विषय अर्थात आकाश का शब्द वायु का स्पर्श अग्निका रूप जलका रस पृथ्वीका गन्ध । इस क्रम से महर्षियों ने कहे हैं ॥ बोलना लेना चलना आनंद और छोड़ना यह कर्म्मेन्द्रिय के अर्थात् वाणी का बोलना हातका लेना पैर का चलना शिश्न का आनन्द और गुदा का मलत्याग इस क्रमसे ये कर्म्मेन्द्रियों के विषय जानने चाहियें और मनके विषय भी जानने चाहियें ॥ राजस के साथ तामस अहंकार से भी और थोड़े से सत्त्व संबंधसे उसी लक्षण वाली पांच तन्मात्रा उत्पन्नहुई ॥ वह शब्द तन्मात्रा के स्पर्श तन्मात्रक रूप तन्मात्रक रस तन्मात्रक गन्ध तन्मात्रक ये उत्पन्नहुई ॥ १७ ॥

रस तन्मात्रकं गन्ध तन्मात्रमिति तानि तु ॥

तल्लिङ्गानि मोहादि लिङ्गानि तान्यद्भुतस्वभावानि बाह्ये न्द्रिय ग्राह्याणि सा सा मात्रा यस्मिन् तत्तन्मात्रकम् (क)

तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुवन्हि वारि वसुन्धरा ॥ (ग)
तानि पञ्च जायन्ते महाभूतानि तत्क्रमात् ॥ १०॥

एकोत्तर परिवृद्ध्या वियदादयो जायन्त इत्यर्थः। (ख) तद्यथा। शब्द तन्मात्राच्छब्द गुणं वियज्जायते; शा ब्द तन्मात्र सहितात् स्पर्श तन्मात्राच्छब्द स्पर्शगुणो वायुर्जायते। (घ) ॥

भा० तल्लिङ्गानि अर्थात् मोहादि लक्षणवाली वोह अद्भुत स्वभाववाली और बाह्येन्द्रियों से अर्थात् कान नाक इत्यादिकों से गृहण करने योग्य शब्दादिक तन्मात्राही है वोह योगियों से ही गृहण की जाती है वोह वो मात्रा है जिसमे वह तन्मात्रक हैं। (क) ॥ तन्मात्राओं से आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ये पञ्च महाभूत क्रमसे अर्थात् शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी, इसतरह उत्पन्न हुवे ॥ १० ॥
एक एक के उत्तर उत्तर बढ़नेसे आकाशादिक उत्पन्न हुवे। (ख) ॥
(ग) वह जैसे। शब्द तन्मात्रा से शब्दगुणवाला आकाश उत्पन्न हुवा। और शब्द तन्मात्रा के सहित स्पर्श तन्मात्रासे शब्दस्पर्श गुणवाला वायु उत्पन्न हुवा ॥ (घ) ॥

शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र सहितात्रूप तन्मात्राच्छब्द स्पर्श रूप गुणो वन्हिर्जायते। (ङ) ॥
शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्ररूप तन्मात्र सहिताद्रस तन्मात्राच्छब्द स्पर्शरूप रसगुणं वारि जायते। (च) शब्द तन्मात्र स्पर्श तन्मात्र रूपतन्मात्र रसतन्मात्र

भा० शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्र के सहित रूप तन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप गुणवाली आग उत्पन्नहुई ॥ (ङ) ॥ शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र रूपतन्मात्र सहित रस तन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप रस गुणवाला जल उत्पन्नहुवा (च)

सहितागंध तन्मात्राच्छब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुणा वसुन्धरा जायते । (छ) ॥

[अथ महाभूतानां गुणानाह]

शब्दः श्रोत्रेन्द्रियं चापि छिद्राणि च विविक्तता ।
वियतः कथिता एते गुणागुण विचारिभिः ॥ १९॥
विविक्तताः शरीराणां भावानां शिरास्नाय्वस्थिपेशी प्रभृतीनां जातिव्यक्तिभ्यां मिथः पृथक्त्वम् ॥ (क)

भा० शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्र रूपतन्मात्र रसतन्मात्र सहित गन्ध तन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप रस गन्धवाली पृथ्वी उत्पन्नहुई ॥ (छ) ॥
अनन्तर भूतोंके गुण कहते हैं] शब्द श्रोत्रेन्द्रिय छिद्र अर्थात् छेक और विविक्तता अर्थात् असंयुक्तता ये आकाश के गुणके विचार करने वालों ने कहे हैं ॥ १९ ॥ विविक्तता अर्थात् शरीरोंके भाव (शिरा) छोटीनसें, (स्नायु) मोटी नसें, हड्डी मांस की थैली इत्यादिकों की जाति और व्यक्तियों से दोनों का अलगपन। (क) ॥ गुण

स्पर्शस्त्वगिन्द्रियञ्चापि लघुता स्पन्दनन्तनोः ॥
चेष्टाः सर्वशरीरस्य वायोरेते गुणाः स्मृताः॥ २०॥
रूपं नेत्रेन्द्रियं पाकः सन्तापस्तीक्ष्णता तथा ।
वर्णो भ्राजिष्णुताऽमर्षः शौर्य्यं वन्हे गुंणा अमी ॥२१
रूपंलावण्यम् (ख) । पाकः उदराग्निनाहार पाकः

सन्तापः औष्ण्यम् । (ग) ॥ तीक्ष्णता आशुकारिता वर्णो गौरादिः । (घ) ॥ भ्राजिष्णुता दीप्तिः अमर्षः क्रोधः (ङ)

रसो रसेन्द्रियं शैत्यं स्नेहश्च गुरुता तथा ॥ सर्व्वं द्रव समूहश्च मुक्तं वारि गुणाः स्मृताः ॥ २२ ॥

भा० स्पर्श और त्वगेन्द्रिय भी तथा हलकापन शरीर का हिलना और सब शरीर की चेष्टा ये वायु के गुण कहे गये ॥ २० ॥ रूप और चक्षुरिन्द्रिय पाक संताप तीक्ष्णता वर्ण कान्ति क्रोध शूरता ये अग्नि के गुण कहे गये हैं ॥ २१ ॥ रूप सुन्दरता (ख) ॥ पाक जठराग्नि से आहार का परिपाक संताप (ग) ॥ गरमी तीक्ष्णता तेज़ी वर्ण गोरा रंग इत्यादि (घ) ॥ भ्राजिष्णुता दीप्ति अमर्षः गुस्सा । (ङ) ॥ रस और रसनेन्द्रिय ठंडापन तैलादिकों का चिकनापन भारीपन सब बहजानेवाली वस्तु का समूह और घाम ये सब पानी के गुण हैं ॥ २२ ॥

गन्धो घ्राणेन्द्रियं चापि काठिन्यं गौरवं तथा ॥ वसुन्धरा गुणा एते गदिता गुण वेदिभिः ॥ २३ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तत् क्रमात् ॥ तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभाव मुपागताः ॥ २४ ॥

भा० गन्ध और नासिकेन्द्रिय भी तथा कठिनता भारीपन ये गुण पृथ्वी के गुण के जानने वालों ने कहे हैं ॥ २३ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये क्रम से स्थूल भावको प्राप्त हुवे तन्मात्रों के विशेषण हैं ॥ २४ ॥

तत् क्रमात् शब्द तन्मात्रादि क्रमात् विशेषाः अनुभव योग्यैः सुख दुःख मोह रूपैर्धर्मै र्विशेष्यन्त इति विशेषाः अत्र कर्म्मणि घञ प्रत्ययः तन्मात्राणि त्वविशेषाणि य स्तान्यनुभवयोग्यैः सुखादिभि र्विशेष्टुं न शक्यन्ते सूक्ष्मत्वात् ॥ (च) ॥

प्रकृते: कारणायोगान्मता प्रकृति रेवसा ॥ मह
त्तत्वादय: सप्त प्रोक्ते विकृतय: स्मृता: ॥ २५॥
प्रकृति रेव कारणमेव नतु कस्यचित् कार्य्यमितर्थ: का
र्य्याणि इन्द्रियाणां सर्व्वभूतानां कारणत्वान्महर्षिभि
र्महत्तत्वादय: सप्त महानहङ्कार: पञ्चतन्मात्राणीति
॥ (क) ॥ प्रोक्ते: प्रकृते विकृतय: कार्य्याणि। (ख)

भा० तत्क्रमात् अर्थात् शब्द तन्मात्रादि क्रमसे विशेषा: अनुभव यो
ग्य सुख दुःख रूप धर्म्मोंसे प्रभेद कियेगये वह विशेष कहलाते हैं।
यहांपर कर्ममें घञ प्रत्यय है। तन्मात्रा तो अविशेषहैं क्योंकि उन
को अनुभव योग्य सुखादिकोंसे अलग नहीं कर सक्ते क्योंकि सूक्ष्म
होनेसे। (च) ॥

प्रकृति का कारण योग न होनेसे वही प्रकृति कारण कही गई है और
महत्तत्वादिक सात प्रकृतिके विकार कहे गये हैं ॥ २५॥ प्रकृति ही
कारणही अर्थात् किसीका कार्य्य नहीं और कार्य्य सब भूतों के अर्था
त् प्राणिमात्रों के और इन्द्रियों के कारण होने से महर्षियों ने महान्
अहंकार और पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार। (क) ॥ महत्तत्वादि सात
शक्ति के अर्थात् प्रकृति के विकार कार्य्य कहेहैं ॥ (ख) ॥

इन्द्रियाणां च भूतानां कारणत्वान्महर्षिभि: ॥
महत्तत्वादय: सप्त प्रोक्ता प्रकृतयोऽपि च ॥ २६॥
तथा सति प्रकृति र्महानहङ्कार: पञ्च तन्मात्राणीत्ये
त्यष्टौ प्रकृतय: ॥ (ग) ॥

भा० महर्षियों ने इन्द्रिय और भूतोंके कारण होने से महत्तत्वादि सा
तों को प्रकृति कहाहै ॥ २६॥ इसवास्ते प्रकृति महान् अहंकार और
पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार आठ प्रकृतियाँ हैं ॥ (ग) ॥

दशेन्द्रियाणि चित्तञ्च महाभूतानि पञ्च च ॥ एता
नि सृष्टिं जानद्भिर्विकाराः षोड़श स्मृताः ॥ २७ ॥

[विकाराः कार्य्याणि।]

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्वे सिद्धे वपुर्गृहे ॥ जीवा
त्मा नियते निघ्नोवसति स्वान्तदूतवान् ॥ २८ ॥

अत्र शब्दादीनां वियदादि महाभूतगुणानां धर्म्मिभ्यो
ऽभिन्नतया पृथकत्वं निरस्यन्नुक्तानाम् तत्वानामुप
संहारमाह । (क) ॥

भा॰ दशइन्द्रियां पांच महाभूत और चित्त इनको सृष्टि के जानने
वालोंने सोलह विकार ऐसा कहा है ॥ २७ ॥ सोलह विकार औ
र आठ कार्य्य इस प्रकार चौवीसों से सिद्ध हुवे तत्व ऐसे शरीर रूपी घर
में जीवात्मा शुभाशुभ कर्म्मों के स्वाधीन मन दूत के साथ रहता है ॥ २८ ॥
यहांपर आकाशादि महाभूतों के गुण शब्दादिकों का धर्म्मसे अर्थात् आ
काशादिकों से भिन्नता करके अलग निकाल कर कहे हुवे तत्वों का उपसं
हार कहते हैं ॥ (क) ॥

चतुर्विंशतिभिरिति तानि च प्रकृतयोऽष्टौ विका
राः षोड़शेति । महत्त्वत्तनि प्रकृत्यादीनां भावाः
नियतः शुभाशुभ कर्म्मणः । (ख) ॥ निघ्नः
आयत्तः स्वान्तदूतवान् मनोदूतयुक्तः संदेही क
थ्यते पाप पुण्य दुःख सुखादिभिः व्याप्तो वद्धश्च.
मनसा कृत्रिमैः कर्म्मबन्धनैः स जीवात्मा तस्य देहिनः
शरीरजीवात्मनोः संयोगकारकेण मनसा संयोगे ये
ये गुणा उत्पद्यन्ते । (ग) ॥

भा० चौह प्रकृतियां आठ और सोलह विकार इसप्रकार चौबीस तत्त्व हैं ॥ आत्मा और प्रकृत्यादियों के धर्म्म शुभाशुभ कर्मों के स्वाधीन मनो दूत के युक्त वह देही कहाता है। पाप पुण्य सुख दुःखादिकों से घिरा हुवा मन और कर्म बन्धनों से बन्धा वह जीवात्मा कहाता है उस देही के अर्थात् शरीर जीवात्मा का संयोग कराने वाले मन के संयोग में जो जो गुण उत्पन्न होते हैं ॥ (ग) उनको कहते हैं। इच्छा द्वेष दुःख सुख विषय का ज्ञान मन का प्रयत्न और संकल्प विचारणा स्मृति बुद्धि कला विद्या का जानना ॥ (घ) ॥

[तानाह] इच्छा द्वेष दुःख सुखानि विषय ज्ञानं प्रयत्नो मनः सङ्कल्पश्च विचारणा स्मृति स्था बुद्धिः कलाविज्ञता। (घ) ॥ प्राणस्योपरि यापनं गुद वक्षा दायो रधः प्रेरणम् ॥ नेत्रोन्मेष निमेष कृत्यकरणोत्साहाश्च जीवे गुणाः ॥ २६ ॥

इच्छा सुखहेतु रभिलाषः द्वेषो दुःखहेतुर्मनः प्रवृत्तिः। (क) ॥ सुखं प्रीतिः दुःखमप्रीतिः विषय ज्ञानं शब्दादि ज्ञानम् प्रयत्नः कार्य्ये तात्पर्य्यं मनः संशयात्मकं तस्य कर्म्म संकल्पः। (ख) ॥ विचारणा ऊहापोहाभ्यां वस्तुविमर्शः। (ग) ॥

भा० प्राण का ऊपर की तरफ निकालना और गुदा के मार्ग के वायु का नीचे निकालना नेत्र का निमेष और उन्मेष अर्थात् आंख का खुलना मिचना और काम करने का उत्साह ये जीव के गुण हैं ॥ २६ ॥

इच्छा सुख के अर्थ अभिलाषा द्वेष दुःख के हेतु मन की प्रवृत्ति। (क) ॥ सुख प्रीति अर्थात् आनंद दुःख प्रीति का न होना विषय ज्ञान शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनका ज्ञान प्रयत्न कार्य में तात्पर्य्य मनः संशयात्मक अर्थात् है या नहीं इस प्रकार के संशय वाला उसका कर्म्म सङ्कल्प। (ख) ॥

विचारणा तर्क वितर्क द्वारा वस्तूका निश्चय करना ॥ (ग) ॥

स्मृतिः पूर्व्वानुभूतस्यार्थस्य स्मरणम् ॥ (घ) ॥ बुद्धिः निश्चयात्मिका कलाविज्ञता शिल्प शास्त्रादिबोधः प्राणस्य हृदय स्थितस्य वायोः उपरियापनम्। (ङ) ॥ मुखादिप्रति नयनम् गुदवर्त्मा वायोरधः प्रेरण मपानस्याधः प्रेरणं नेत्रोन्मेष निमेषो नेत्रयोरुन्मीलननिमीलने कृत्य करणोत्साहः कार्यारम्भे सामर्थ्ये नोत्साहः। (च) ॥ जीवे मनो युक्तस्य जीवात्मनोऽमी इच्छादयो गुणाः॥ (छ)

इतिश्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भावप्रकाशे सृष्टि प्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥ १ ॥

भा० स्मृतिः पहिल अनुभव किये हुवे वस्तुका स्मरण। (घ) ॥ बुद्धिनिश्चयात्मिका अर्थात् निश्चयरूप कला विज्ञता शिल्प शास्त्र का जानना प्राणका हृदय में रहनेवाली वायू का ऊपरकी तरफ़ निकालना ॥ (ङ) ॥ अर्थात् मुख नासिकादि में लेजाना। गुदा के मार्ग से वायु का नीचे निकालना अर्थात् अपानवायु का नीचे निकालना ॥ नेत्रका निमेष और उनिमेष अर्थात् आँखका खोलना ढकना काम के करने में उत्साह काम के प्रारम्भ में सामर्थ्य द्वारा उत्साह। (च) ॥

इति श्री मिश्र लटकनके पुत्र श्री भाव मिश्र का निर्मित भाव प्रकाश ग्रन्थ में पहिला सृष्टि प्रकरण समाप्त हुवा ॥ १ ॥

चिकित्सायां शरीरी ह्यधिकृतः स शरीरी यथोत्पद्यते न द्बोधयितुं गर्भोत्पत्ति क्रममाह ॥ (क) ॥

गर्भोत्पत्ति भूमिस्तु रजस्वला स्त्री। (ख) ॥
[ततोरजस्वला स्वरूपमाह]

द्वादशाद्वत्सरादूर्द्ध मापञ्चाशत्समाःस्त्रियः ॥
मासि मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तवं स्रवेत् ॥१॥
आर्त्तवस्रावदिवसादृतुःषोडशरात्रयः॥ गर्भग्रह
णयोग्यस्तु स एव समयः स्मृतः॥२॥

भा० चिकित्सा में अर्थात् रोग के प्रतीकार में देही मुख्य किया गया है इस वास्ते वह देही जिस प्रकार उत्पन्न होता है उसको जानने के वास्ते गर्भ की उत्पत्ति का क्रम कहते हैं ॥ (क) ॥ गर्भ के उत्पत्ति की भूमि रजस्वला स्त्री हैं ॥ (ख) ॥ तिस्से रजस्वला का लक्षण कहते हैं ॥
बारह बरस के ऊपर से पचास बरस तक औरतें महीने २ स्वभाव से ही योनि द्वारा आर्तव को निकालती हैं अर्थात् कपड़े से बैठती हैं ॥१॥
कपड़े से बैठे हुवे दिन से सोलह दिन ऋतु कहलाता है और वही समय गर्भ धारण करने योग्य कहा गया है ॥२॥

सर्व्वासामेव चतुःवर्ण स्त्रीणां सर्ववादि सम्मतः (क)।
पूर्व्वोक्तःसमयः, ग्रन्थान्तरेतु विशेषः ॥ (ख) ॥
तद्यथा। (ग) ॥ स्नान दिवसादूर्द्ध द्वादशरात्रावधि
ब्राह्मण्याः दशरात्रावधि क्षत्रियायाः। (घ)
अष्टरात्रावधि वैश्यायाः षड्रात्रावधि शूद्रायाः गर्भधा
रणे शक्तिः॥ (ङ) ॥

भा० चारों वर्णों की सब स्त्रियों का यही ऋतुकाल सब वादियों के संमत है ॥ (क) ॥ पूर्वोक्त समय और ग्रन्थों में कुछ विशेष कहा है ॥ (ख) ॥ वह जैसे ॥ (ग) ॥ स्नान के दिन के ऊपर बारह दिन तक ब्राह्मणी का दस दिन तक क्षत्रिया की ॥ (घ) ॥ आठ दिन तक

[अथ रजस्वलाया नियमानाह]

आर्त्तवस्त्राव दिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी ॥ शयीत दर्भशय्यायां पश्येदपि पतिन्न च ॥ ३॥ करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाहरेत् ॥ अश्रुपातं न खच्छेद मभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥ ४॥ नेत्रयो रञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम् ॥ अत्युच्च शब्द श्रवणं हसनं बहु भाषणम् ॥ ५॥ आयासं भूमि खननं प्रवातञ्च विवर्ज्जयेत् ॥

भा० वैश्या का और छः दिनतक शूद्राका गर्भ धारण करने में सामर्थ्य होता है ॥ (ङ।) ॥ अनन्तर रजस्वला के नियम कहते हैं ॥ ❋ ॥ आर्त्तव स्राव अर्थात् कपड़े से होय उस दिनसे हिंसा न करे और ब्रह्मचर्य्य रक्खे तथा कुसा के विस्तरे पर सोवे और पतिको भी न देखे ॥ ३ ॥ हाथ पर या सकोरे में या पत्तेपर हविष्यान्न को भोजन करें ॥ और आँसू का गिराना नाखून काटना तेल लगाना चन्दनादि सुगंध द्रव्य लगाना ॥ ४ ॥ आँखों में सुरमा लगाना न्हाना दिनमें सोना बहुत दौड़ना ऊंचे शब्द को सुनना हंसना बहुत बोलना ॥ ५ ॥ श्रम करना ज़मीन खोदना और बहुत हवा का सेवन इन को रजस्वला छोड़ देवे ॥

[एतस्या नियमकरणे दोषानाह]

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा ॥ सा चेत कुर्य्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाप्नुयात् ॥ ६॥ एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृत लोचनः ॥ नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत् ॥ ७ ॥ अनुलेपात्तथा स्नानात् दुःखशीलोऽञ्जनादद्दक् ॥

भा० इनके नकरने में दोष कहते हैं ॥ वे समझी से या पागलपन से या लोभ से या दैव योग से वोह रजस्वला निषेध किये हुवे को करेतो गर्भ दोष कोप्राप्त होगा ॥ ६ ॥ इस के रोनेसे विकार युक्त नेत्र वाला गर्भ होगा नाखून के काटने से कुनखी और अभ्यंग से कुष्ठी होगा ॥ ७ ॥ अनुलेप और स्नान से सदा दुखी तथा आंख में आंजने से और दिनमें सोने से सदा सोने वाला होगा ॥

स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात् प्रधावनात् ॥ ८ ॥
अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलु जायते ॥ तालु
दन्तोष्ठजिह्वासु श्यावो हसनतो भवेत् ॥ ९ ॥ प्र
लापी भूरिकथना दुन्मत्तस्तु परिश्रमात् ॥ स्खलते
भूमिखनना दुन्मत्तो वातसेवनात् ॥ १० ॥

भा० दौड़ने से चंचल होगा ॥ ८ ॥ बहुत ऊंचे शब्दके सुनने से बहिरा होगा तालुदांत ओठ जीभ में स्याही हसने से होगी ॥ ९ ॥ बहुत बोलने से बकवादी और बहुत श्रमसे उन्मत्त उत्पन्न होता है ॥ भूमि के खोदने से गिरता है और वायुके सेवन से उन्मत्त होता है ॥ १० ॥

[अथ रजस्वला कृत्यम्]

पूर्व्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना ॥ तादृशं
जनयेत् पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम् ॥ ११ ॥
प्रियमिति भर्त्तर्य्यनासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत् चतुर्थ
दिवसेऽपि रजोनिवृत्तौ स्त्री पतिना सङ्गच्छेत् नतु रजोऽनु
वृत्तौ ॥ (क) ॥ यत आह।

भा० अनन्तर रजस्वला का कृत्य अर्थात् जो करना चाहिये ॥ चौथे दिन न्हाइहुई औरत जिस प्रकार के पुरुष को देखेगी उस प्रकार के पुत्र को उत्पन्न करेगी इसवास्ते पति को देखे अथवा पति पास नहो तो पुत्रादिकों को देखे ॥ ११ ॥

चौथे दिन में भी रज निवृत्त होगयाहो तो अर्थात् स्त्रियों का मासिक धर्म ब न्द होगया हो तो स्त्री पतिके साथ संभोग करें। और रजके निकलनेमें न क रें ॥ (क) ॥ जिस्से कि कहते हैं ॥

प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा ॥ तथा बहति रक्तेतु क्षिप्तं वीर्य्यमधो व्रजेत् ॥ १२॥

[अथ भर्तृकृत्यम्]

तत्र गर्भाधाने निषिद्धं विहितं च कालं तयोः। (क) फलञ्चाह । आयुः क्षयभयाद्भर्त्ता प्रथमे दिवसे स्त्रियम् ॥ द्वितीयेऽपि दिने रत्यै त्यजेदृतुमतीं त था ॥ १३॥ तत्र यश्चाहितो गर्भो जायमानो नजीव ति ॥ आहितो यस्तृतीयेऽन्हि स्वल्पायुर्विकलाङ्ग कः ॥ १४॥ अत श्चतुर्थी षष्ठी स्यादष्टमी दशमी तथा ।द्वादशी वापि या रात्रिस्तस्यान्तां विधिना भजेत् ।१५।

भा० वेग से बहते हुवे पानी में डाली हुई वस्तु जैसे नीचे जाती है वैसे बहते हुवे रक्त में डाला हुवा वीर्य्य नीचे जावेगा ॥ १२॥ ॥ अनन्तर पतिका कृत्य ॥ उस गर्भाधान में जो निषिद्ध काल और विहित काल है। (क) उन दोनोंका फल कहते हैं ॥ आयुके क्षय होनेके भयसे पति पहिले दिन स्त्री के पास नजावे। वैसेही दूसरे भी दिन रतिके अर्थ रजस्वलाको छोड़ देवे अर्थात् रजस्वला के साथ दूसरे दिनभी भोग नकरें ॥ १३॥

उस में अर्थात पहिले दूसरे दिन में जो स्वराब हुवा गर्भ नहीं जीता। और जो तीसरे दिन किया हुवा वह थोड़ी आयुवाला शिथिल अंग उत्पन्न हो ताहै ॥ १४॥ इस्से चौथेदिन छठेदिन आठवेदिन दशवेंदिन औरतके साथ भोगकरें ॥ और बारवें दिन भी विधिके साथ भोग करें।१५॥

विधिना गर्भाधानोक्त विधिना । (क)- ॥

अतो तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ॥
[तन्त्रान्तरे।] प्रजासौभाग्य मैश्वर्य्यं बलञ्चाभिग
मात् फलम् ॥ १६॥ मनो भवागार मुखेऽबलानां
तिस्रो भवन्ति प्रमदा जनानाम् ॥ समीरणा चन्द्र
मुखी च गौरी विशेष मासा मुप वर्णयामि ॥ १७॥
प्रधान भूता मदना तपत्रे समीरणा नाम विशेषना
डी॥ तस्या मुखे पतितं तु वीर्य्यं तन्निष्फलं स्या
दिति चन्द्र मौलि : ॥ १८ ॥

भा॰ विधिसे अर्थात् गर्भाधानोक्त विधिसे (क) इसमें उत्तरोत्तर अ
र्थात् चौथेसे छठेमेंछठे से आठवें इस क्रमसे आयु और आरोग्य की
अधिकता होती है ॥ और तन्त्रमे। स्त्री संभोग से प्रजा सौभाग्य ऐश्व
र्य और बल प्राप्त होता है ॥ स्त्रियों के कामदेव के मंदिर के मुखपर तीन
नाड़ियाँ होती हैं पहिली समीरणा दूसरी चन्द्र मुखी तीसरीगौरी इनका
विशेष लक्षण और वर्णन करता हूं ॥ १७ ॥ मदन के छत्रपर समीरणा
नाम विशेष नाडी है उसके मुखपर गिराहुवा वीर्य्य निष्फल होता है।
ऐसा चन्द्र मौलि काहते हैं ॥ १८॥ और जो दूसरी चान्द्रमसी नाड़ी है वोह
कामदेव के घरमें प्रधान है और वोह स्त्री कन्याकोही उत्पन्न करती है
तथा थोडे मैथुन के उत्सवमें साध्य होती है अर्थात् गर्भको धारण करती
है। ॥१९॥ ॥१९॥ ॥१९॥ ॥१९॥ ॥

या चापरा चान्द्रमसी च नाड़ी कन्दर्पगेहे भवति
प्रधाना ॥ सा सुन्दरी योषितमेव सूते साध्याभवे
दल्परतोत् सवेषु ॥ १९॥ गौरीति नाड़ी यदु प
स्य गर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात् ॥ पुत्रम्

प्रसूते बहुधाङ्गना सा कष्टेप भोग्यां सुरतोपविष्टा ॥ २०॥ [युग्मायुग्मरात्रीणां फलमाह]

युग्मासु पुत्रा जायंते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। तत्र दम्पत्योः सम्भोगे यादृक् पुमान्युक्तस्तादृङ्मुच्यते (क)

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्ध सुमनोऽर्चितः॥

भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः॥ २१॥

ताम्बूलवदनस्तस्याः मनुरक्तोऽधिक स्मरः॥

पुत्रार्थी पुरुषो नारी मुपेयाच्छयने शुभे॥ २२॥

भा० तीसरी गौरी नाड़ी स्वभावसे पुरुष गर्भमें प्रधानभूत होनीहै। वोह स्त्री कष्टसे उपभोग योग्य मैथुनपर आरूढ़ हुई पुत्रही को उत्पन्न करतीहै ॥ २०॥ ॥ युग्म और अयुग्म रात्रिका फल कहते हैं॥

युग्म रात्रिमें अर्थात् चार छः आठ दश बारह इन दिनों में पुत्र उत्पन्न होते हैं। और अयुग्ममें अर्थात् पांच सात नौ ग्यारह इन दिनोंमे कन्या उत्पन्न होनीहै॥ उन स्त्री पुरुषके संभोग में जैसा पुरुष होना चाहिये सो कहना है। (क)॥ स्नान किया हुवा शरीरमें चन्दन लगाया हुवा अच्छे सुगंधित पुष्पोंसे पूजन किया हुवा अच्छे दुग्धादि पदार्थोंको भोजन किया हुवा अच्छा कपड़ा पहिने हुवा अच्छे लिबास से रहनेवाला और अच्छे आभूषणोंको पहिरे हुवे ॥ २१॥ पान खाये हुवा उसमें अधिक प्रीति करता हुवा अधिक कामदेववाला पुत्रार्थी पुरुष अच्छे शयन पर स्त्री के पास जावे॥ २२॥

[तत्राऽयोग्यां स्त्रियमाह]

अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यथाङ्गः पिपासितः॥ बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ २३॥ तत्र स्त्री यादृशी योग्या तादृश्युच्यते। (क)। पुरुषस्य गुणैर्युक्ता विहिता न्यून भोजना॥ नारी

ऋतुमती पुंसां सङ्गच्छेत्तु सुतार्थिनी ॥ २४॥
[तत्राऽयोग्यां स्त्रियमाह]
रजस्वला व्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी ॥
वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥
॥ २५॥ एतासां सङ्गमात्पुंसां वैगुण्यानि भवन्ति
हि ॥

तत्र रजस्वला दिनत्रयं यावदृतौ निषिद्धा ॥ (क) ॥
यत उक्तम्। प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघा
तिनी ॥ तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथाङ्गना ॥ २६

भा॰ उसमें अयोग्य पुरुष कहते हैं ॥ बहुत भोजन किया हुवा धीरज न रखनेवाला भूखा शरीर मे पीडावाला प्यासा बालक बूढा और वेगों से अर्थात् मल मूत्र दि वेगो से पीडित और रोगी इतने मनुष्य - मैथुन को छोड देवें ॥ २४॥ उस्से जैसी स्त्री होनी चाहिये सो कहते हैं ॥ पुरुष की गुणों से युक्त और विहित तथा अल्प भोजन करने वाली। और पुत्रको चाहनेवाली ऋतुमती नारी पुरुष के साथ भोग करे ॥ २४॥ उसमें जैसी स्त्री त्यागनी चाहिये सो कहते हैं ॥ रजस्वला याने कपडों से बैठी हुई रोगवाली विशेष करके भगके रोगवाली बडी उमरवाली और कामदेव से रहित मैली गर्भिणी ॥ २५॥ इनके संग से पुरुष को विकार उत्पन्न होते हैं। उसमे रजस्वला तीन दिन जब तक कि ऋतुकाल में निषिद्ध है॥ (क) ॥ जैसे कहा है ॥ पहिले दिन चांडाली दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी तीसरे दिन रजकी अर्थात् धोबिन जैसे पुरुषोको ये नछूनी चाहिये वैसेही औरत भी नछूनी चाहिये ॥ ॥ २६॥

व्याधिमती च वर्ज्या तत्र स्त्रीणां व्याधयः प्रदरादय उ
क्ता निषिद्धा तत्रापि विशेषाद्योनिरोगिणी ॥ (ख)

[गर्भावतरण क्रममाह।]

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणित शुक्रजः॥
गर्भः संजायते नार्य्याः स जातो बाल उच्यते॥ २७॥

गर्भः शुद्धः अशुद्धस्तु गर्भोऽशुद्धः शुक्रः शोणितयोरपि दम्पत्योर्भवति यत आह। (ग)॥

दम्पत्योः कुष्ठ बाहुल्या दुष्ट शोणित शुक्रयोः॥
यदपत्यन्तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठित मिति। २८॥

कुष्ठं संजातं यस्य तत् कुष्ठितम्, अत्र तारकादित्वादि तच् प्रत्ययः। (घ)॥

भा० रोगवाली छोड़ देने योग्य है उसमें औरतों के रोग प्रदरादि कहे उनसे युक्त निषिद्ध है उसमें भी विशेष करके योनिरोग वाली निषिद्ध है॥ (ख)॥ गर्भ के उत्पन्न होनेका क्रम कहते हैं॥ ॥ काम से दोनों के संयोग में स्त्री के शुद्ध रक्त और शुक्र से उत्पन्न हुवा गर्भ होता है वह हुवा बालक होता है॥ २७॥ गर्भ शुद्ध होता है और अशुद्ध तो स्त्री पुरुषों के अशुद्ध रक्त शुक्र से होता है। जैसे कि कहते हैं (ग) कुष्ठ रोग की अधिकता से बिगड़े हुवे रक्त शुक्रवाले उन स्त्री पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न हुई उसको भी कोढ़ी जानना चाहिये॥ २८॥ कुष्ठ उत्पन्न हुवा है जिसको वह कुष्ठित है। यहां पर तारका दित्वसे इतच प्रत्यय हुवा है॥ (घ)॥

यत्तु, वातादि दुष्टरेतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः (ङ) इति सुश्रुतः॥ तत्र शुद्ध प्रजोत्पादने न समर्था इति बोद्धव्यम्। (च)॥ रोगादिना शुद्धास्तु प्रजां वातादि दुष्टशुक्राः अपि जनयन्ति जन्मांध

बधिरपङ्ग्वादि सम्भवात् ॥ (छ) ॥
ऋतौ स्त्री पुंसयोर्योगे मकरध्वज वेगतः ॥ पुंसः
सर्व्वशरीरस्थः रेतो द्रावयतेऽथ तत् । वायुर्मेह
नमार्गेण पातयत्यङ्गनाभगे ॥ तत संस्रुत्य त्या
त्तमुखं याति गर्भाशयं प्रति ॥ तत्र शुक्रवदायाति
नार्त्तवेन युतं भवेत् ॥ ३० ॥

भा० जो कि वातादि दोषों से दुष्ट हुवा शुक्र सन्तान उत्पन्न करनेमें नहीं समर्थ होता ऐसा सुश्रुत ने कहाहै (ङ) ॥ वहांपर शुद्ध संतान उत्पन्न करनेमें नहीं समर्थ होता ऐसा जानना चाहिये ॥ (च) ॥ रोगादिकों से अशुद्ध और वातादि दोषों से दुष्ट शुक्रवाली भी संतानको उत्पन्न करती हैं क्यों कि जनम के अन्धे बहिरे लूले इत्यादि उत्पन्न होने से ॥ (छ) ॥

ऋतुकाल में स्त्री पुरुष के मिलनेमें कामदेवके वेग से लिंग और योनिके संघर्षण से उष्णवायु द्वारा ताड़ित ॥ २९ ॥ पुरुष के सब शरीर में रहनेवाला शुक्र पिघलता है अनंतर वायु उसको लिंगके मार्ग से औरत की भगमें डालता है ॥ उसको आश्रय करके खुले मुखवाले गर्भाशय याने बच्चेदानी में जाताहै। वहांपर शुक्र के मानिंद आयेहुवे आर्त्तवसे याने हैज़से मिलजाता है ॥ ३० ॥

[गर्भाशयस्य स्वरूपमाह]

शङ्खनाभ्याकृति योनि स्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्तिता ॥
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥
यथा रोहित मत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः ॥ तत्
संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ३२ ॥

भा० गर्भाशय का लक्षण कहतेहैं ॥ शंख के नाभ की आकार तीन आवर्तवाली योनि कही गई है उसके तीसरे आवर्त्त में गर्भ

शय्या स्थापन की गई है। ॥ ३१ ॥ जैसे आकारसे रोहू मछली का मुख होता है वैसेही आकाररूप गर्भशय्याका पंडित लोग जानते हैं ॥ ३२ ॥

अयमर्थः। गर्भशय्या मुखं रोहित मत्स्यैव भवति यथा च रोहित मत्स्यस्य स्थितिर्जले भवति तथा पित्ताशय पक्वाशयमध्ये गर्भशय्यायाः स्थितिर्भवति रूपमपि तस्यैव भवति यथा रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महानित्यर्थः ॥ (क) ॥

शुक्रार्त्तवसमास्लेषो यदैव खलु जायते। जीवस्तदेव विशति युक्तः शुक्रार्त्तवान्तरः ॥ ३३ ॥

भा० यह अर्थ है, गर्भशय्या का मुख रोहू मछली ही के मानिंद होता है। और जैसे रोहू मछली का रहना पानीमें होता है वैसे पित्ताशय और पक्काशय के बीच में गर्भ शय्या की स्थिति है और रूपभी उसीके मानिंद है जैसे रोहूका मुख थोडी जगह और यों बहुत बड़ाहै ॥ (क) ॥ वहीं शुक्र और आर्त्तवका संयोग होता है उसी समय में शुक्र और आर्त्तवके बीच रहनेवाला जीव उनसे मिलाहुवा प्रवेश करता है ॥ ३३ ॥

सूर्य्यांशोः सूर्य्यमणितोह्यु भयस्माद्युताद्यथा। वन्हिः सञ्जायते जीवस्तथा शुक्रार्त्तवाद्युतात् ॥ ॥ ३४ ॥ अंत्मानादिरनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते ॥ चिदानन्दैकरूपोऽयं मनसापि न गम्यते ॥ ३५ ॥ एवंभूतोऽपि जगतो भाविनी बलवत्तया। अविद्या स्वीकृते कर्म्मवशो गर्भं विशत्यसौ ॥ ३६ ॥

भा॰ सूर्य के किरण और सूर्य्य कान्त मणि इन दोनों के मिलने से जैसे आग उत्पन्न होती है वैसे शुक्र और आर्त्तव के मिलने से जीव उत्पन्न होता है ॥ ३४॥ अनादि अनंत और अव्यक्त जिसको कह नहीं सके। तथा चिदानन्द ही है एक रूप जिसका ऐसा यह आत्मा मनसेभी नहीं जाना जाता ॥ ३५ ॥ इस प्रकार का हुवाभी जगत की भावी की बलवत्ता से अविद्या के द्वारा स्वीकार किया गया और कर्म के वशहुवा यह आत्मा गर्भ में प्रवेश करता है ॥ ३६ ॥

[गर्भे चतुर्विंशति तत्त्वमयम्]

स एव वेत्ता रसनो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यसौ ॥ श्रोता वक्ता च कर्त्ता च गन्ता रन्तोत्सृजत्यपि ॥ ३७॥

दिने व्यतीते नियतं सङ्कुचत्यम्बुजं यथा ॥ ऋतौ व्यतीते नार्य्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥ ३८ ॥

भा॰ गर्भ में चौबीस तत्त्व मय । वही जाननेवाला और स्वाद का लेनेवाला देखनेवाला सूंघनेवाला यह स्पर्श करता है। तथा सुननेवाला बोलनेवाला करनेवाला चलनेवाला रन्तको छोड़ता है ॥ ३७ ॥ दिन के व्यतीत होने में जैसे नियम के साथ कमल संकोच को प्राप्त होता है अर्थात् सिकुड़ जाता है वैसेही स्त्री की योनि ऋतुकाल के व्यतीत होने में सिकुड़ जाती है ॥ ३८ ॥

ऋतौ रजोदर्शनात् । षोडशनिशात्मके काले तौ धर्मेतर पुरःसरौ । योनिरत्र धराद्वारम् । (क)॥

बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ॥ यमावित्यभिधीयेते धर्मेतर पुरःसरौ ॥ (३९)॥

भा॰ ऋतु में अर्थात् रजस्वला हुवे दिन से सोलह दिनतक । के समय में। वे दोनों धर्म और अधर्म अगुवे हैं जिनके। यहां पर योनि पृथ्वी का द्वार है । (क) ॥

भाग वायु से दो वीजों के अलग् होने पर दो जीव कुख में जाते हैं तिस हेतु जोड़ा ऐसे कहे जाते हैं धर्म और अधर्म अगुवे हैं जिनके ॥ ३९॥

धर्म्मस्तदितरो ऽधर्म्मस्तौ पुरःसरौ ययोः तेन यमौ धर्म्माधर्म्माभ्यां भवत इत्यर्थः । (ख) ॥

आधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्त्तवेऽधिके।
नपुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा परमेश्वरी ॥४०॥

नन्वेवं सति कथं पुत्रोत्पत्तिः स दैवार्त्तवस्यैव वाहु स्यात् ॥ (ग) ॥ यत उक्तम् ॥ आर्त्तवं चतुरंजलि प्रमाणं शुक्रं प्रसृति मात्रमिति ॥ (घ) ॥

भा० धर्म उस्से दूसरा अधर्म्म वे दोनों अगुवे हैं जिनके तिस हेतु जोड़ा धर्माधर्म से होता है ॥ (ख) ॥ शुक्र की अधिकता से पुत्र उत्पन्न होता है और आर्त्तव अर्थात् स्त्री रज के अधिक होने से कन्या होती है । तथा उन दोनोंके बराबर होने से नपुंसक होता है जैसी इच्छा परमेश्वर की होवे ॥ ४०॥
यहांपर शंका करते हैं कि ऐसा होतो सर्वदा आर्त्तव ही की आधिक्यता होती है तिस्से कैसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है ॥ (ग) ॥
जैसे कि कहा है । आर्त्तव का प्रमाण चार अञ्जली है और शुक्र का एक पसर भर अर्थात् चुल्लू भर है ॥ (घ) ॥

[वाग्भटेऽप्युक्तमात्रेयादिभिः]

मज्जा मेदो वसा मूत्र पित्त श्लेष्म शकृत् प्रसृक्।
रसो जलं च देहेऽस्मिन्नेकैकाञ्जलि वर्द्धितम् ॥
४१ ॥ पृथक् च प्रसृतं प्रोक्तमोजो मस्तिष्करेतसाम्।
द्वावञ्जली तु दुग्धस्य चत्वारो रजसस्त्रने ॥ ४२॥

भा॰ वाग्भट में भी आत्रेयादि मुनियों ने कहाहै। मज्जा अर्थात् हड्डी के भीतर का गूदा मेद वसा अर्थात् चरबी मूत्र पित्त कफ मल रुधिर रस और जल ये क्रम से एक २ अंजुलि अधिक हैं ॥ ४१ ॥ और अलग् कहा गया है एक एक पसा भर ओज और माथे में का भेजा तथा शुक्र। और दो अञ्जुली दूध और चार अञ्जुली रज ॥ ४२ ॥

समधातोरिदं मानं विद्यात् वृद्धिक्षयावतः। इति ॥ (क)। नैवं, यतो गर्भाशयस्थमेव शुक्रमार्त्तवं च गर्भोत्पत्तिहेतुः शुक्रं कदाचिदत्यन्तहर्षवशाद्दुग्धादि शुक्रलत्व द्रव्यसेवनात् शुक्र बाहुल्यात् गर्भाशये बहु स्रवति कदाचिद्वै मनस्यादिना शुक्राल्पत्वात्स्वल्पमिति एवमार्त्तवमपीति न दोषः ॥ (ख) ॥

भा॰ यह समधातु का मान है। इससे न्यूनाधिक होने से क्षय वृद्धि जानना चाहिये ॥ (क) ॥ इस तरह पर नहीं जैसे गर्भाशय में रहने वाला ही शुक्र और आर्त्तव गर्भकी उत्पत्ति का कारण है तो शुक्र कदाचित् बहुत खुशीके वश से अथवा दुग्धादि शुक्र को बढ़ानेवाली वस्तुओं के से या शुक्र के बाहुल्यता से गर्भाशय में शुक्र बहुत गिरता है। अथवा कदाचित् वैमनस्य से अथवा शुक्रकी अल्पता से थोड़ा गिरता है इसी तरह आर्त्तव भी इससे दोष नहीं ॥ (ख) ॥

[सुश्रुतः पुनराह ॥]

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वा तथैव च ॥ दोष धातु मलानां तु परिमाणं न विद्यते ॥ ४३ ॥

वैलक्षण्यात् दीर्घह्रस्व कृशादि भेदेन सादृश्याभावात् अस्थायित्वात् वयोऽहर्निशर्त्तु भुक्तेष्वेक मात्रानवस्था

नान् एवं तामभिसङ्गम्य पुनर्मासाद् भजेदसौ मासादूर्द्ध मितिशेषः अर्वाक् गमनेन गर्भद्वार विघट्टनात् गर्भच्युति प्रसङ्गःस्यात् केचित्तु, पुनः पुष्पदर्शनेन गर्भालाभ निश्चये मासादूर्द्ध गच्छेत् लब्ध गर्भे नैवगच्छेदिति वदन्ति ॥ (क) ॥

तत्र परिहार्य्ये परिहारार्थं सद्योगृहीतगर्भाया लक्षणमाह ॥ (ख) ॥

भा० और सुश्रुत ने कहाहै। शरीरों की विलक्षणता से तथा क्षण भंगुरपने से दोष धातु मल इनका परिमाण नहीं जाना जाता ॥ ४२॥ वैलक्षण्यसे अर्थात् लंबा छोटा दुबला मोटा इन भेदों करके समान नहोने से और स्थायि न होने से अर्थात् अवस्था रात दिन ऋतु और भोजन इन में एक तरह नरहने से । इस प्रकार उसके साथ संभोग करके फिर से महीने भरमें संभोग करें परंतु महीने से ऊपर अर्थात् रजस्वला होने के उपरांत संभोग करें क्यों कि इस्से पहिले गमन करनेमें गर्भद्वार के विघट्टनसे गर्भपात होता है। कोई कहतेहैं कि फिर्से रजस्वला होने में गर्भके नरहनेके निश्चय होने पर महीने के ऊपर गमन करें और गर्भ रहे तो नगमन करें। ऐसा कोई कहते हैं ॥ (क) ॥

उसमें दूर करने के योग्य को दूर करने के वास्ते तत्काल गृहण की हुई गर्भका लक्षण कहते हैं ॥ (ख) ॥

शुक्रशोणित योर्योनेरस्रावोर्थ श्रमोद्भवः॥
सक्थिसादः पिपासाच ग्लानिः स्फुर्त्ति भगे भवेत्।
॥ ४४ ॥ [अथ तस्या एवोत्तरकालीनं लक्षणमाह]
स्तनयोर्मुख काष्र्ण्यं स्याद्रोमराज्युद्गम स्तथा॥
अक्षि पक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्ते विशेषतः॥
॥ ४५ ॥ छर्दयेत् पथ्यभुक्चापि गन्धादुद्विजते शुभात्

प्रसेकः सदनं चैव गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥ ४६ ॥

[तत्र पुत्रगर्भवत्या लक्षणं]

पुत्रगर्भयुतायास्तु नार्य्या मासि द्वितीयके ॥ गर्भो गर्भाशये लक्ष्यः पिण्डाकारोऽपरं शृणु ॥ ४७ ॥

पिण्डो वर्त्तुलाकृतिः मासि द्वितीयक इत्यस्य गर्भः पिण्डाकारो लक्ष्यः इत्यनेनैवान्वयो न त्वग्निमश्लोकेऽपि ॥ (क) ॥

दक्षिणाक्षि महत्त्वं स्यात् प्राक्क्षीरं दक्षिणे स्तने ॥ दक्षिणोरुः सुपुष्टः स्यात् प्रसन्नमुखवर्णता ॥ ४८ पुन्नामधेयद्रव्येषु स्वप्नेष्वपि मनोरथः ॥ आम्रादि फलमाप्नोति स्वप्नेषु कमलादि च ॥ ४९ ॥

भा० शुक्र और रुधिर का योनि से न निकलना काममें श्रमहोना जांघ में पीड़ा प्यास ग्लानि और योनिमें फड़कना ये लक्षण होते हैं ॥ ४४ ॥ अनन्तर उसीका पश्चात् कालका लक्षण कहते हैं। छातियों के मुखका कालापन, नाभिके ऊपर से स्तनतक रोमोंकी कतार खड़ी होना, और इस की विशेष करके आंखों की पलकें गिरती हैं ॥ ४५ ॥ हितकारी भोजन को भी गेरे और अच्छे गन्ध से क्लेश होवे, प्रसेक और पीड़ा ये गर्भिणी के लक्षण कहेहैं ॥ ४६ ॥ [इसमें पुत्रगर्भवाली का लक्षण कहते हैं] पुत्रगर्भवाली स्त्री का दूसरे महीने में गर्भ गर्भाशय में पिंड के आकार अर्थात् गोल जानना चाहिये और दूसरा सुनो ॥ ४७ ॥ पिंड अर्थात् गोल आकार महीने दूसरे का इसतरह पर इसका गर्भ पिंडाकार लक्ष्य है इस प्रकार इसीके साथ अन्वय है न कि अग्निमश्लोक में भी ॥ (क) ॥ दाहिनी आंख बड़ी होजे और पहिले दाहिनी चूचीमें दूध होवे तथा दाहिनी जांघ भारी होवे और मुखपर अच्छी रंगत होवे ॥ ४८ ॥

स्वप्न में भी पुरुषनाम वाली वस्तु में इच्छा । स्वप्न में आम आदि फलों को और कमलादि कों को पातीहै ।४९ ॥

कन्या गर्भवती गर्भे पेशी मासि द्वितीयके ॥ पुत्री गर्भस्य लिङ्गानि विपरीतानि चेक्षते ॥ ५० ॥

[पेशी दीर्घा कृतिः।]

नपुंसकं यदा गर्भे भवेद्गर्भोऽर्बुदा कृतिः ॥ उन्नत भवतः पार्श्वे पुरस्तादुदरं महत् ॥ ५१ ॥

अर्बुदं वर्त्तुलं फलार्द्ध तुल्यं नपुंसक विशेषमाह ॥(क)

आसेक श्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चे र्ष्यक स्तथा ॥ अमी सशुक्रा बोद्धव्या अशुक्रः षण्ड संज्ञकः ॥५२॥

भा० कन्या गर्भ वाली के दूसरे महीने के गर्भ में मांस की थैली होती हैं ॥ कन्या गर्भके चिन्ह उससे विपरीत देखे जाते हैं ॥ ५० ॥
[पेशी अर्थात् दीर्घाकार] जब गर्भमें नपुंसक होवे तब गर्भ अर्बुदाकार अर्थात् गोल फलके अर्धभाग समान आकार होता है दोनों पासे ऊंचे होते हैं और पेट आगेकी तरफ़ बड़ा होता है ॥ ५१ ॥
अर्बुद अर्थात् गोलफल के आधे भागके समान आकार ॥ (क) ॥
नपुंसक विशेष को कहते हैं । आसेक सुगन्धी कुम्भीक ईर्षक ये सशुक्र नपुंसक जानने चाहिये अशुक्र नपुंसक षंड संज्ञक है ॥ ५२ ॥

[एतेषां लक्षणमाह]

पित्रोस्तु स्वल्प वीर्यत्वा दासेक्यः पुरुषो भवेत् ॥ स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोत्थानमसंशयं ॥ ५३ ॥

भा० इनके लक्षण कहते हैं । पिता के थोड़े वीर्य होनेसे आसेक्य पुरुष होताहै वह वीर्य को प्राशनकरके स्त्री संभोग करनेकी सामर्थ्य को प्राप्त होवेहै

पित्रो मातापित्रोः स्वल्पवीर्यत्वात् स्वल्पशुक्रार्त्तवत्वात् आसेक्यनामा मुखयोनीति नामान्तरः स शुक्रं प्राश्येति सपुरुषोऽन्य पुरुषेण स्वमुखे मैथुनं कारयित्वा तस्य शुक्रं प्राश्य मेहनोत्थानं लभते इत्यर्थः॥ (क)॥

यः पूतियोनौ जायेत सहि सौगन्धिको भवेत्॥ स योनि शेफसौगन्धमाघ्राय लभते बलम्॥ ५४॥

भा० पित्र के अर्थात् मावाप के शुक्र शोणित होनेसे आसेक्यनाम अर्थात् मुखयोनि इस नामान्तर वाला वह शुक्र प्राशन करके अर्थात् वह पुरुष दूसरे पुरुष से अपने मुखमें मैथुन कराकर उसका शुक्र प्राशन करके लिंगका उठना प्राप्त करताहै अर्थात् इन्द्रिय उठती है॥ (क)॥ जो दुर्गन्धयुक्त योनिमें उत्पन्न होवे वह सौगन्धिक है। वह योनि लिंग की गन्धको सूंघ कर मैथुन करने की सामर्थ्य को प्राप्त होता है॥ ५४॥

सौगन्धिकः सौगन्धिक नामा नासायोनीति नामान्तरं बलं मैथुने शक्तिं स्वे गुदेऽब्रह्मचर्य्यायः स्त्रीषु पुंवत् प्रवर्त्तते (ख)॥ स कुम्भीक इति ज्ञेयो गुद योनिस्तु स स्मृतः॥ ५५॥

अब्रह्मचर्य्यात् ब्रह्मचर्य्यम मैथुनं अब्रह्मचर्य्यं मैथुनं यत्स्यात्॥ (ग)॥

भा० सौगन्धिकः सौगन्धिकनाम अर्थात् नाक योनि इस दूसरे नाम वाला। (ख)॥ बल अर्थात् मैथुनमें सामर्थ्य। अपनी गुदा में दूसरे पुरुष से मैथुन करने से जो पुरुष स्त्री में पुरुष के मानिंद मैथुन करता है वह कुंभीक ऐसा जानना चाहिये और वह गुद योनि ऐसा कहा गया है॥ ५५॥ अब्रह्मचर्य्य अर्थात् मैथुन॥ (ग)॥

दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्त्तते॥ ईर्ष्यकः

स तु विज्ञेयो दृष्टि योनिस्तु स स्मृतः ॥ ५५॥
यो भार्य्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्त्तते ॥ न
त्र स्त्री चेष्टिताकारो जायते षण्डसंज्ञकः ॥
॥ ५६॥ स्त्री चेष्टिताकारः स्त्र्याकार श्मश्रु रहितः। स्त्री चेष्टितः स मेहनोऽपि पुरुष शक्ति रहितः ॥ (क) ॥

भा० दूसरे का मैथुन देखकर जो मैथुन में प्रवृत्त होता है उसको ईर्षक ऐसा जानना चाहिये और वह दृष्टि योनि ऐसा कहा गया है ॥ ५५॥ ऋतुकाल में जो मोहके वस होकर स्त्री के साथ औरत के मानिंद मैथुन अर्थात् आप नीचे और स्त्री को ऊपर इस प्रकार करता है इसमें स्त्री चेष्टा और स्त्री के आकारवाला षण्ड संज्ञक उत्पन्न होता है ॥ ५६॥ स्त्री चेष्टिताकार स्त्री आकार अर्थात् दाढ़ी वग़ैरह से रहित और स्त्री चेष्टित अर्थात् लिङ्ग सहित हुवाभी पुरुष शक्ति रहित होता है ॥ (क) ॥

किन्तु स्त्रीवदधो भूतः स्व गुदे पुरुषान्तरेण मैथुनं (ख) ॥ ऋतौ ऋतौ पुरुषवत् प्रवर्त्तताङ्गना यदि ॥ तत्र कन्या यदि भवेत् सा भवेन्नर चेष्टिता ५७।
पुरुषवत् स्त्रिय मारुह्य सा तस्या यो नौ स्वयोनि घर्षणं करोति ॥ (ग) ॥

भा० लेकिन् स्त्री के मानिंद नीचे होके अपनी गुदा में दूसरे पुरुषसे मैथुन कराता है ॥ (ख) ॥ ऋतुकाल में २ यदि स्त्री पुरुष के मानिंद अर्थात् आप ऊपर और पुरुष नीचे इस प्रकार मैथुन करेतो उसमें यदि कन्या हो तो नरके चेष्टा और आकारवाली उत्पन्न होती है ॥ ५७॥ पुरुष के मानिंद औरत को चढ़ाकर वो उसकी योनि में अपनी योनिका

पर्षण करती है ॥ (ग) ॥

[अपरा अपि गर्भ प्रकृतीराह]

यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन ॥
मुञ्चन्त्यौ शुक्र मन्योन्य मनस्थि स्तत्र जायते ॥
॥ ५८ ॥ अनस्थिः अत्रेषदर्थे नञ् तेनाल्प को
मलास्थिरित्यर्थः ॥ (क) ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुन माचरेत् ॥
आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥ ५९॥

भा॰ दूसरी भी गर्भकी प्रकृति कहते हैं ॥ जब दो औरतें मदान्ध हुई आपसमें नीचे ऊपर होके यत्नके साथ मैथुन करती हैं तब एक में एक शुक्र छोडती हैं उसमें जो सन्तान उत्पन्न होती है वह अस्थि रहित होती हैं ॥ ५८ ॥ (अनस्थि यहांपर थोड अर्थमें नञ् है तिस्से अल्प और कोमल अस्थि समझनी चाहिये) ॥
ऋतु में जो न्हाई हुई औरत स्वप्नमें मैथुन को करे तब वायु आर्त्तवको लेकर कूख में गर्भको करता है ॥ ५९ ॥

मासि मासि प्रवर्द्धेत स गर्भो गर्भलक्षणः ॥ क
ललं जायते तस्य वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ॥ ६० ॥
गर्भलक्षणः प्रकृतगर्भलक्षणः । पैतृकैर्गुणैः केश
श्मश्रु लोमनखदन्त शिरास्नायु धमनीरेतःप्रभृतिभिः
॥ (क) ॥ सर्पवृश्चिक कुष्माण्डा कृतयो विकृ
ताश्च ये । गर्भास्ते योषितस्ताश्च ज्ञेयाःपापकृतो

भृशम् ॥ ६१॥ गर्भो वातप्रकोपेण दोहृदे चाप मानिते ॥ भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूकोमिन् मिन एवच ॥ ६२॥

भा॰ गर्भके चिन्हवाला वह गर्भ महीने महीने में बढ़ता है ॥ उसका पितृ सम्बन्धी केशादि गुणों से रहित कलल अर्थात् मांस पिंडसा बच्चा होता है ॥ ६०॥ (गर्भलक्षण अर्थात् प्रकृत गर्भ चिन्ह पैत्रिक गुण अर्थात् केश डाढ़ी रोम नख दांत सिरा स्नायु धमनी शुक्र प्रभृतियों से रहित) ॥ (क) ॥

सांप बिच्छू कूष्मांड के आकार और जो विकारको प्राप्तहुवा गर्भहै वे औरतों के बहुत पाप करनेसे होतेहैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ६१॥ गर्भवायुके प्रकोपसे और दोहद के अपमान से अर्थात् गर्भवती स्त्री की जिस वस्तु में इच्छा होती है उस २ वस्तु को न देनेसे कुबड़ा कुनि पंगुला गूंगा मिन्मिना उत्पन्न होता है ॥ ६२॥

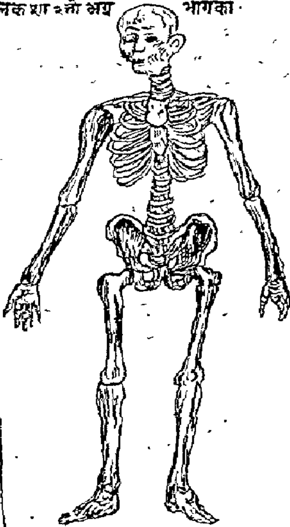
[पुत्राणामाहाराचारचेष्टाभेदस्य]
हेतुमाह

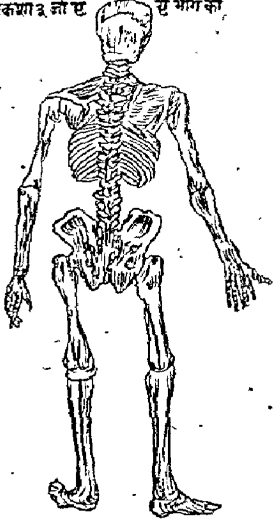
आहाराचारचेष्टाभिर्य्यादृशीभिः समन्वितौ ॥
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ ६३॥
(समुपेयातां संयोगं गच्छेताम् ।)

[अथ गर्भलक्षणमाह]

भा॰ पुत्रों के आहार और आचारोंकी चेष्टा के भेद के हेतुको कहते हैं ॥ जिस प्रकारके आहार और चेष्टासे युक्त स्त्री पुरुष संग करें उनका पुत्रभी वैसा उत्पन्न होवे ॥ ६३॥ (समुपेयातां संभोग करें)

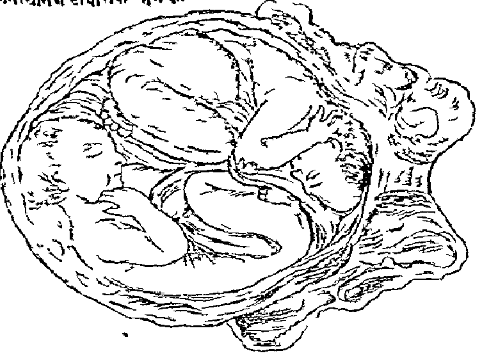
[अनन्तर गर्भका लक्षण कहतेहैं]


नकशा २रो अग्र भागका

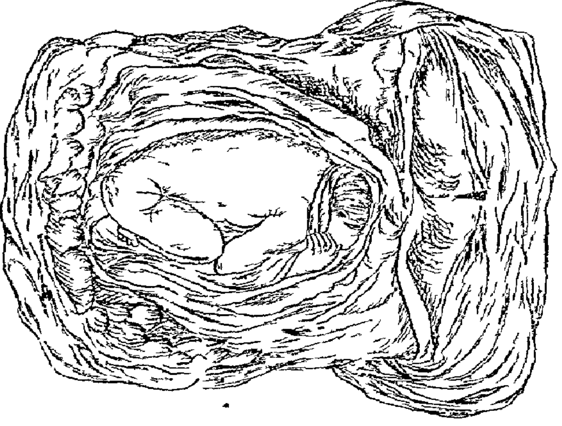

नकशा ३ जो ए
ए भाग का


नक्शा चौथा गर्भाशय का

नकशा गर्भस्थान मे दो बालक रहने का



नकशा ६ गर्भस्थान मे १ बालक रहने का



गर्भाशयगतं शुक्र मार्त्तवं जीवसंज्ञक :॥ प्रकृतिः सविकारा च तत्सर्व्वं गर्भसंज्ञकम्॥॥ ६४॥ कालेन वर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गोपाङ्ग संयुतः॥ भवेत्तदा स मुनिभिः शरीरीति निगद्यते ६५

[अङ्गोपाङ्ग संयुक्तः व्यक्ताङ्गोपाङ्गः]

तस्य त्वङ्गा न्युपाङ्गानि ज्ञात्वा सुश्रुतशास्त्रतः॥ मस्तकादभि धीयन्ते शिष्याः शृणुत यत्नतः। ६६॥ आद्य मङ्गं शिरः प्रोक्तं तदुपाङ्गानि कुन्तलाः॥ तस्यान्तर्मस्तु लुङ्गं च ललाटं भ्रूयुगन्तथा ॥ ६७॥

भा०-गर्भाशय में प्राप्त शुक्र और आर्त्तव उसकी जीव संज्ञा है। और सोलह विकार के साथ प्रकृति उन सबकी गर्भसंज्ञा है॥ ६४॥ जब कालपाके बढ़ाहुवा अंग और उपांग से युक्त जब गर्भ होता है तब मुनि लोग शरीरी ऐसा कहते हैं॥ ६५॥ अंगोपाङ्ग से युक्त अर्थात् प्रगट अङ्गोपाङ्ग वाला॥ सुश्रुत ग्रन्थ से उसके अंग और उपाङ्गों को जानकर मस्तक से कहते हैं हे शिष्यो यत्न पूर्वक सुनो॥ ६६॥
पहिला अंग शिर कहाहै और उसके उपांग केशहैं॥ उसके भीतर मस्तुलुंग अर्थात् भेजा है तथा ललाट और दो भवें॥ ६७॥

नेत्र द्वयं तयोरन्त र्वर्त्तिने द्वे कनीनिके॥ दृष्टिद्वयं कृष्णगोलौ श्वेतभागौ च वर्त्मनी॥ पक्ष्माण्ययाङ्गौ पाङ्गौ च कर्णौ तच्छष्कुली द्वयम्॥ पालिद्वयं कपोलौ च नासिका च प्रकीर्त्तिता॥ ६८॥

भा०-दो आंखें और उनके बीच में दो पुतलियां हैं॥ दो दृष्टि दो कृष्णगोल अर्थात् आंख के भीतर काली गोल दो और सफेद कौड़ी दो पलकें दो और

ओर पलकों के रोवें ॥ ६८ ॥ आँख की नोकें माथेपर की दो हड्डियाँ कान ओर उसके दो छिद्र तथा कानकी दोनों नोकें ओर दोगाल तथा नांक ये कही गई ॥ ६९ ॥

ओष्ठाधरौ च सृक्किण्यौ मुखं तालु हनु द्वयम् ॥ द
न्ताश्च दन्तवेष्टश्च रसना चिबुकङ्गलः ॥ ७० ॥
द्वितीय मङ्गं ग्रीवा तु यया मूर्द्धा विधार्य्यते ॥ तृतीयं
बाहुयुगलं तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥ ७१ ॥ तत्रोपरि
मतौ स्कन्धौ प्रगण्डौ भवतस्त्वधः ॥ कफोनियुगं
तदधः प्रकोष्ठ युगलन्तथा ॥ ७२ ॥

भा० होंठ और नीचे का होंठ तथा दोनो होठों के प्रान्त भाग याने खखवाड़ा मुखनाल और दोनों जबाड़े ॥ दान्त मसूड़े जीभ ठुडी और गला ॥ ॥ ७० ॥ दूसरा अंग गर्दन जिसके द्वारा शिर धारण किया जाता है ॥ तीसरा अंग दोनों बाज़ू उसके उपांग कहते हैं ॥ ७१ ॥ उसके ऊपर दो कन्धे और नीचे दो प्रगंड अर्थात् कोहनी से लेकर बग़ल तक बाज़ू उसके नीचे कफसे युत दो प्रकोष्ट अर्थात् कोहनी से हाथ के पौंचे तक ॥ ७२ ॥ हाथ के दो पौचे दो तलवे दो हाथ उनकी दस अङ्गुलियां ॥

मणिबन्धौ तले हस्तौ तयोश्चाङ्गुलयो दश ॥
नखाश्च दश ते स्थाप्या दश च्छेद्याः प्रकीर्त्तिताः॥
॥ ७३ ॥ चतुर्थ मङ्गं वक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥
स्तनौ पुंसस्तथा नार्य्या विशेष उभयोरयम् ॥७४॥
यौवनागमने नार्य्याः पीवरौ भवतः स्तनौ ॥ गर्भ
वत्याः प्रसूताया स्तावेव क्षीरपूरितौ ॥ ७५ ॥

भा० नख दश पैरखने योग्य और दस काटने योग्य कहे गये हैं ॥ ७३

नकशा पहिला १ शारीरक भाग का



हृदयं पुण्डरीकेण सदृशं स्यादधोमुखम् ॥ जा
ग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तु निमीलति ॥७६॥
आशयस्तत्तु जीवस्य चेतनास्थानमुत्तमम् ।
अतस्तस्मिं स्तमोव्याप्ते प्राणिनः प्रस्वपन्तिहि ॥७७॥
चेतनास्थान मुत्तम मिति अयमभिप्रायः॥ क॰१ ॥
चेतनाना मधिष्ठानं मनोदेहश्च सेन्द्रियः॥ केश–
लोमनखाग्रं च मलं द्रव्यगुणैर्विना ॥७८॥

भा॰ चौथा अंग छाती उसके उपाङ्ग कहतेहैं । दो स्तन पुरुष के तथा औरत के परन्तु दोनों में यह विशेषहै कि ॥७४॥ यौवन अवस्थाके आगमन में औरतों के स्तन उठेहुवे होतेहैं ॥ पेटवाली तथा जापेवाली औरत के वहीस्तन दूधसे भरजातेहैं ॥ ७५॥ हृदय कमल के सदृश अधोमुख हैं । जागने में वह खिला रहता है और सोनेमें वह सिकुड़ जाताहै ॥७६॥ वह आशय जीवका चेतना स्थानहैं । इस हेतु तमोगुण से व्याप्त उस में प्राणि सोतेहैं ॥७७॥ चेतना स्थानं उत्तमं इसका यह अभिप्रायहै कि १ (क) ॥ प्राणियों का अधिष्ठान अर्थात् जगह मन और इन्द्रियोंके सहित देह ॥७८॥

इत्युक्तवता चरकेण सकलं शरीरं चेतनास्थान मुक्तं ।
तदपेक्षया हृदयं विशेषतश्चेतना स्थान मिति ॥ (ख)
कक्षयोर्वक्षसः सन्धी जत्रुणी समुदाहृते ॥ कक्षे उभे
समाख्याते तयोः स्थाने च वङ्क्षणे ॥ ७९ ॥

भा॰ तथा केशरोम और नखाग्र और द्रव्य गुणोंके विना मल येह हैं इस प्रकार कहनेवाले चरकने संपूर्ण शरीर चेतना स्थान कहाहै । उन की अपेक्षासे हृदय विशेषकरके चेतना स्थान है ॥ (ख) ॥

काँख और छाती के जोड़ को जत्रुणी कहते हैं ॥ दो काँखें कही गईं । और उन के दो वङ्क्षण अर्थात् कटिप्रदेश का ऊर्द्धभाग ॥७९॥
तथा पांचवाँ अंग उदर और छठा अंग दोनों पसलियाँ ।

उदरं पञ्चमञ्चाङ्गं षष्ठं पार्श्व द्वयं मतम् ॥
सपृष्ठवंशं पृष्ठं तु समस्तं सप्तमं स्मृतम् ॥ ८० ॥
उपाङ्गानि च कथ्यन्ते तानि जानीहि यत्नतः ॥
शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः ॥ ८१ ॥
रक्तवाहि शिराणां स मूलं ख्यातो महर्षिभिः ॥
हृदयाद्वामतोऽधश्च फुप्फुसो रक्तफेनजः ॥ ८२ ॥
अधो दक्षिणतश्चापि हृदयात् यकृतः स्थितिः ॥
तत्तु रञ्जक पित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ॥ ८३ ॥

भा॰ पीठ के बाँस के सहित छठा अंग समझना चाहिये और बाकी सब सातवाँ अंग कहा गया है ॥ ८० ॥ उपांगों को कहते हैं उनको यत्न पूर्वक समझो ॥ रुधिर से प्लीहा उत्पन्न हुई है बायें तरफ़ हृदय के नीचे उसको रक्तवाही नसों का मूल महर्षियों ने कहा है ॥ हृदय से बाईं तरफ़ नीचे रक्त की झागसे उत्पन्न हुवा फुप्फुस है ॥ ८२ ॥ हृदय के नीचे दाहनी तरफ़ यकृत है । वह रक्त से उत्पन्न है और रंजक पित्त का स्थान है ॥ ८३ ॥

अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात् क्लोम तिष्ठति ॥
जलवाहि शिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतम् ॥ ८४
क्लोमतिलकम् एतत्तु वालरक्तजम् ॥ (क) ॥

भा॰ हृदय से नीचे दाहिनी तरफ़ यकृत् के पास क्लोम है वह जलवाहि नसों का मूल है अर्थात् जड़ है और तृष्णा का आच्छादन करने वाला है

॥ ८४ ॥ क्लोमतिलक यह वात और रक्त से उत्पन्न है ॥ (क)

[अथ वृद्ध वाग्भट: ।]

रक्तादनिलसंयुक्तात्कालीयक समुद्भव इति ॥
मेद: शोणितयो: साराद्वृक्कयोर्युगलं भवेत् ॥८५॥
तौ तु पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदस: ॥ उक्ता:
सार्द्धास्त्रयो व्यामा: पुंसा मन्त्राणि सूरिभि: ॥८६॥
अर्द्धव्यासेन हीनानि योषितोऽन्त्राणि निर्द्दिशेत्।
उन्दु कञ्च कटी चापि त्रिकं वस्तिश्च वङ्क्षणौ ॥८७॥

भा॰ वृद्ध वाग्भट में कहाहै ॥ कि रक्त से मिले हुवे वायु से कालीयक की उत्पत्ति। मेद और रक्त के सारसे दो वृक्कल हुवे हैं वे दोनों जठर में रहनेवाले मेदको पुष्ट करतेहैं ऐसा परिडतोंने कहाहै ॥ परिडतों ने साढे तीन व्याम पुरुषों की आँतड़ीयां कही हैं (व्याम दोनों हाथों के फैलाव को) कहतेहैं ॥ ८६ ॥ आधे पैमाने से हीन अर्थात् पौनेदो व्याम औरतों की अंतड़ियां कही गई हैं ॥ उन्दुक कटि त्रिक वस्ति अर्थात् पेडू वङ्क्षण ॥ ८७ ॥

कण्डराणां प्ररोह: स्यात् स्थानं तद्वीर्य्यमूत्रयो:
स एव गर्भस्याधानं कुर्य्याद्गर्भाशये स्त्रिया: ॥८८॥
शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्तिता।
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥८९॥

भा॰ ये कंडरा अर्थात् बड़ीरग इनके अङ्कुर हैं और शुक्र तथा मूत्रकी वह जगह है ॥ औरतों के गर्भाशय में वही गर्भका आधान करता है ॥ ८८ ॥ शंख नाभकी आकार तीन आवर्त्तवाली योनि कही गईहै। उसके तीसरे आवर्त्त में गर्भशय्या स्थापन की गई है ॥ ८९ ॥

वृषणौ भवतः सारात्कफासृग्भ्यां च मेदसाम् ॥
वीर्य्यवाहि शिराधारौ तौ मतौ पौरुषावहौ ॥ ६०॥
गुदस्य मानं सर्वस्य सार्द्धं स्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ तत्र
स्युर्व्वलयस्तिस्रः शङ्खावर्त्तनिभास्तु ताः॥ ६१॥
प्रवाहिणी भवेत्पूर्वा सार्द्धाङ्गुलमिता मता ॥ उ-
त्सर्जनी तु तदधः सा सार्द्धाङ्गुलसम्मिता ॥ ६२॥

भा० मेद के सार और कफ रक्त से वृषण अर्थात् अंडकोश हुवे हैं। वीर्य्य को धारणकरने वाली रगोंके आधार और पौरुष को धारण करनेवाले कहे गयेहैं ॥ ६०॥ सबके गुदाका मान साढ़ेचार अंगुलहैं ॥ उसमें तीन बलि अर्थात् लपेट शंख के आवर्त्तके समान हैं ॥ ६१ ॥ पहिली बलि प्रवाहिणी नाम है वो डेढ़ अंगुल की कही गई हैं ॥ उसके नीचे उत्सर्जनी नाम दूसरी बलि है वोभी डेढ़ अंगुल कीहै ॥ ६२ ॥

तस्याधः सम्वरणी स्यादेकाङ्गुलसमा मता ॥ अ
र्द्धाङ्गुलप्रमाणं तु बुधैर्गुदमुखं मतम् ॥ ६३ ॥ मलो
त्सर्गस्य मार्गोऽयं पायुर्देहे विनिर्मितः ॥ पुंसः
प्रोथौ स्मृतौ यौ तु तौ नितम्बौच योषितः ॥ ६४॥
तयोष्क कुन्दरे स्यातां सक्थिनी त्वङ्ग मष्टमम् ॥
तदुपाङ्गानि चत्र्रूमौ जानुनी पिण्डिका द्वयम् ॥ ६५॥

भा० उसके नीचे संचरणी नाम तीसरी बलि है वो एक अंगुल के समान है। गुदा का मुख आधा अंगुल प्रमाण पंडितों ने कहा है ॥ ६३ ॥ मल के निकालने का मार्ग शरीर में यह गुदा बनाई गई हैं ॥ जो पुरुष के प्रोथ कहे गये हैं वो औरतों के नितंब अर्थात् चूतड़ कहेगये हैं ॥ ६४ ॥ उनके दो कुंदर हैं और जांघ आठवां अङ्ग है। उस के उपांग कहते हैं घुटने दो पिंडलियां

जङ्घे द्वे घुण्टिके पार्ष्णी तले च प्रपदे तथा ॥ पादा
ङ्गुल्यस्तत्र दश तासां नखा दश ॥ ९६ ॥

अथेदं शरीर मपरेणापि येन येन समवायिकारणेनोत्प
द्यते तानि सर्वाण्याह ॥ (क)

अथ दोषाः प्रवक्ष्यन्ते धातवस्तद नन्तरम् ॥ आ
हारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्च वक्ष्यते ॥ ९७ ॥

आर्त्तवं चाथ धातूनां मलास्तदुपधातवः ॥ आश
याश्च कलाश्चापि मर्माण्यथ च सन्धयः ॥ ९८ ॥

भा० दो जांघ दो टखने दो एड़ियां दो तलवे दो प्रपद अर्थात् पांव के सिरे दो । पांव की अंगुलियां दस और उनके नाखून दस ॥ ९६ ॥ अनन्तर यह शरीर और जिन २ के मिलनेसे उत्पन्न होता है उन सबको कहते हैं (क) ॥ अनन्तर दोषों को कहते हैं उसके अनन्तर धातु कहते हैं । आहारादि कों की गति और उसका परिणाम कहते हैं ॥ ९७ ॥ आर्त्तव अर्थात् स्त्री का रज और धातुवों के मल तथा उनकी उपधातु । आशय कला मर्म और सन्धियां अर्थात् जोड़ ॥ ९८ ॥

शिराश्च स्नायवश्चापि धमन्यः कण्डरास्तथा ॥
रन्ध्राणि भूरि स्रोतांसि जालैः कूर्चाश्च रज्जवः ॥
॥ ९९ ॥ सेवन्यश्चाथ सङ्घाताः सीमन्ताश्च तथा
त्वचः ॥ लोमानि लोमकूपाश्च देह एतन्मयो म
तः ॥ १०० ॥

भा० छोटी नसें बड़ी नसें धमनी घोड़ नसें छिद्र और बहुत से स्रोत जाल कूर्च रज्जू ॥ ९९ ॥ सेवनी संघात सीमन्त तथा त्वचा लोम और लोम कूप इनही से देह बनायागया है ॥ १०० ॥

[तत्र दोषस्वरूपमाह वाग्भटः]

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च ॥ १॥
ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्द्ध संश्रयाः ॥
वयोऽहोरात्रि भुक्तानामन्तमध्यादिगाक्रमात् ॥ २॥

[दोषशब्दस्य निरुक्तिमाह]

धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्येभिर्यतस्ततः ॥
वातपित्तकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृताः॥ ३॥

भा० उनमें दोषों का स्वरूप वाग्भट कहते हैं । वायु पित्त कफ ये तीन दोष संक्षेप से कहेगये हैं ॥ वे अर्थात् वायु पित्त कफ बिगड़े हुवे शरीर को नाश करते हैं और अविकृत अर्थात् विकार से रहित हुए देह को पुष्ट करते हैं ॥१॥ वे सम्पूर्ण शरीर में फैले हुवे भी हृदय नाभि के नीचे वायु और हृदयनाभि के बीच में पित्त तथा हृदय नाभि के ऊपर कफ इस क्रमसे रहते हैं ॥ २॥ अवस्था दिन रात और भोजन इनके अन्त मध्य और आदि इस क्रमसे वायु पित्त कफ रहते हैं अर्थात् वृद्धावस्था में वायु तरुण अवस्था में पित्त और बाल अवस्था में कफ इसी प्रकार सायंकाल में वायु मध्यान्ह में पित्त और प्रातःकाल में कफ, और रात के अन्त में वायु मध्यमें पित्त आदि में कफ तथा भोजन करनेपर परिपाक अवस्था के अन्त में वायु और मध्यमें पित्त और आदि में कफ इस क्रमसे रहते हैं ॥ २॥
दोष शब्द की निरुक्ति कहते हैं ॥ जिस हेतु धातु और मल जिसके द्वारा दोषको प्राप्त होते हैं अर्थात् बिगड़ते हैं तिस हेतु ये वात पित्त कफ तीन दोष कहे गये ॥ ३॥

(दोषाइत्यत्र दुष वैकृत्ये इति दुषधातोः। दुष्यन्त्येभिरिति वाक्ये। अकर्त्तरि च कारके संज्ञाया मित्य

नेन सूत्रेण करणेऽर्थे घञ् प्रत्ययः ।)

ते धातवोऽपि विद्वद्भिरुदिता देहधारणात् ।

यत आह सुश्रुतः ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ॥

धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथेति ॥ ४ ॥

अत्र यथासङ्ख्येनान्वयो बोद्धव्यः । विसर्गादानं वातस्यैव । विक्षेपः शीतोष्णादीनां विविधप्रकारेण प्रेरणम् । मलाश्च ते रसादीनां मलिनीकरणान्मताः ॥

भा० दोषा यहांपर दुष् वैकल्यमें है इस्से दुष् धातु से दुष्यन्त्येभिरिति इस वाक्य में । अकर्त्तरि चकारके संज्ञायां इस सूत्र से करण अर्थमें घञ् प्रत्यय होता है) ॥ उनको विद्वानोंने धातु भी कहाहै देह के धारण करने से । जिस्सेकि सुश्रुत ने कहाहै ॥ चांद देने से सूरज लेने से और हवा पहुंचाने जैसे जगत को धारण करते हैं वैसे वायु पित्त कफ शरीर को धारण करते हैं ॥ ४ ॥

(यहां पर यथा संख्या से अन्वय जानना चाहिये । देना लेना वायु काही । विक्षेप शीत और उष्णादिकों का नाना प्रकार से प्रेरण करना । वे रसादिकों के मलीन करने से मल कहेगये ॥)

तत्र वायोः स्वरूपमाह ।

दोषधातुमलादीनां नेता शीघ्रः समीरणः ॥

रजोगुणमयः सूक्ष्मो रूक्षः शीतो लघुश्चलः ॥ ५ ॥

(नेता स्थानान्तरं प्रापयिता । शीघ्रः आशुकारी)

अन्यच्च, उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टावेगप्रवर्त्तनैः ॥

सम्यक् गत्या च धातूनामिन्द्रियाणाञ्च पाटवैः ॥ ६ ॥

भा० उनमें वायु का स्वरूप कहते हैं) दोष धातु मल इनका लेजाने वा

ला और जल्दी करनेवाला वायु है । तथा रजोगुण स्वरूप सूक्ष्म रूक्ष शीतल लघु चञ्चल यह वायु का स्वरूप है ॥५॥ नेता अर्थात् दूसरी जगह लेजानेवाला शीघ्र अर्थात् जल्दी करनेवाला) और भी । उत्साह उच्छ्वास अर्थात् सांसलेना निश्वास चेष्टा और वेगोंका प्रवर्त्तन अर्थात् छींक जंभाई पाद इत्यादि चतुर्दश वेगों की प्रवृत्ति होनी और सप्तधातुवों की अच्छी गतिसे तथा इन्द्रियों की पटुता अर्थात् अपने २ विषयों को ग्रहण करने की शक्ति से ॥ ६ ॥

अनुगृह्णात्यविकृतो हृदयेन्द्रियचित्तधृक ॥
रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥७॥
खरो मृदुर्योगवाही संयोगादुभयार्थकृत ॥ दाहकृ
त् तेजसा युक्तो शीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥ ८ ॥
विभागकरणाद्वायुः प्रधानं दोषसंग्रहे ॥ पक्काश
यकटीसक्थिस्रोतोस्थिस्पर्शनेन्द्रियम् ॥ ९ ॥
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्काधानं विशेषतः ॥ ए
को वायुः पित्तवन्नामस्थानकर्म्मभेदैः पञ्चविधः॥

भा॰ हृदय इन्द्रिय चित्तको धारण करण करनेवाला विकार रहित वायु देहको धारण करता है ॥ रजोगुण स्वरूप सूक्ष्म शीत रूक्ष लघु और चंचल ॥७॥ तथा खर अर्थात् तीखा कोमल और योगवाही अर्थात् जिसके साथ मिले उसीके गुणको बढ़ावे तथा संयोग से दोनों अर्थ को करनेवाला ॥ अर्थात् तेजसे मिलाहुवा दाह को करताहै और सोमके मिलनेसे शीतको करता है ॥८॥ विभाग करनेसे दोषोंके संग्रह में वायु प्रधान हैं ॥ पक्काशय अर्थात् अन्नके परिपाक का स्थान कमर जांघ स्रोत हड्डी और स्पर्शनेन्द्रिय अर्थात् जो इन्द्रिय त्वचामें रहती है और जिससे स्पर्श ज्ञान होता है ॥९॥ येवात के स्थान हैं उनमें भी विशेष करके पक्काशय वातका स्थान है ॥ एक वायु पित्त

के मानिंद नाम स्थान और क्रिया इन्हभेदोंसे पांच प्रकार का है ॥ १०॥

[तेषां वायूनां नामान्याह]

उदानस्तदनु प्राणः समानोऽपान एव च ॥ व्या
नश्चैतानि नामानि वायोः स्थानप्रभेदतः ॥ ११॥

[अथोदानादीनां स्थानान्याह

कण्ठे हृदि तथाधस्तात्कोष्ठवन्हेर्म्मलाशये ॥
सकलेऽपि शरीरेऽसौ क्रमेण पवनो वसेत् ॥ १२॥

भा० उन वायुओं के नाम कहते हैं ॥ उदान उसके पीछे प्राण समान अपान व्यान स्थान भेदसे वायुके ये नाम कहे गये हैं ॥ ११॥ अनंतर उदानादिकों के स्थान कहते हैं । उदान कंठ में रहता है और हृदय में प्राण तथा जठराग्नि के नीचे समान और मलाशय में अर्थात् गुदामें अपान तथा सम्पूर्ण शरीर में व्यान इस क्रमसे ये रहता है ॥ १२॥

[अथ तेषां कर्म्माण्याह]

उदानो नाम यस्तूर्द्ध मुपैति पवनोत्तमः ॥ तेन
भाषितगीतादि प्रवृत्तिः कुपितस्तु सः ॥ १३॥
ऊर्द्धजत्रु गतान्रोगान्विदधाति विशेषतः ॥ यो
वायुः प्राणनामासौ मुखं गच्छति देहधृक् ॥ १४॥
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥

भा० अब उनके कर्म कहते हैं । उदान नाम पवनोत्तम जो ऊपर जाता है । उससे बोलना गाना इत्यादिमें प्रवृत्ति होती हैं और वो कोपको प्राप्त हुवा ॥ १३॥ ऊर्द्धजत्रु अर्थात् छाती और बगल की जोड़ के ऊपर के रोगों को विशेष करके करता है ॥ जो वायु प्राणनाम देह को धारण करनेवाला

यह मुखमें जाता है ॥ २४ ॥ वह अन्नको भीतर लेजाता है और प्राणोंको आश्रय करके रहता है ॥

प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान् ॥ २५॥
आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः ॥ सोऽन्नं
पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्ति हि ॥ २६ ॥
(तज्जानीत्यादि । अन्नगतान् रसमलमूत्रादीन् पृथक् करोतीत्यर्थः ।)
स दुष्टो वह्निमान्द्यातिसारगुल्मान् करोति हि ॥
पक्वाशयालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् ॥ २७॥

भा० और वह विगड़ा हुवा प्रायः हिचकी खाँसी इत्यादिक रोगों को करताहै ॥ २५॥ जठराग्नि से मिला हुवा आमाशय और पक्वाशय में आने जाने वाला समानवायु है वह अन्नको परिपाक करता है और उस अन्नसे उत्पन्न हुवे विशेषों को अलग २ करताहै ॥ २६ ॥ तज्जान् अर्थात् अन्नमें मिले हुवे रस मल मूत्र आदिकों को अलग करता है) वह दुष्टहुवा अग्निमान्द्य अतिसार गुल्म इन रोगों को करता है ॥ पक्वाशय है स्थान जिसका ऐसा यह अपानवायु मल मूत्र शुक्र गर्भ और आर्तव इनको आकर्षण करता हुवाभी समयपर नीचे करता है अर्थात् निकालता है ॥ २७ ॥

समीरणः शकृन्मूत्र शुक्र गर्भार्तवान्यधः ॥ क्रु
द्धस्तु कुरुते रोगान् घोरान् वस्तिगुदाश्रयान् ॥२८॥
शुक्रदोषप्रमेहांश्च व्यानापानप्रकोपजान् ॥
कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवाहनोद्यतः ॥ २९॥
स्वेदाऽसृक् स्रावकश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥

गत्यु पदे परोगात् देप निमेषोन्मेषणादिका ॥२०॥
प्रायः सर्व्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ॥
प्रस्यन्दनञ्चोद्वहनं पूरणञ्च विरेचनम् ॥ २१ ॥
धारणञ्चेति पञ्चैताश्चेष्टा प्रोक्ता नभस्वतः ॥
क्रुद्धः स कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥२२॥
युगपत् कुपिता एते देहं भिन्द्युरसंशयम् ॥
देहं भिन्नं कुर्य्युर्म्मारयेयुरित्यर्थः ॥ (क)

भा० और वह कुपित हुवा भयंकर पेडू और गुदा के रोगों को करता है ॥ ॥२८॥ तथा शुक्र दोष और प्रमेह रोग को भी करता है । और व्यान अपानके प्रकोपसे उत्पन्न होनेवाले रोगों को भी करता है । रस धातुको सब जगह पहुंचाने में तय्यार ॥ २९ ॥ और संपूर्ण शरीरमें घूमनेवाला तथा स्विद् अर्थात् पसीना और रुधिर को बहानेवाला भी व्यान वायु चलना ऊपर होना नीचे होना और आंख का बन्द करना तथा खोलना इत्यादिक पांच प्रकारकी चेष्टा करताहै ॥ २० ॥
प्राणियों कि सब क्रिया प्रायः उसीमें बन्धरही हैं अर्थात् वायु के ही स्वाधीन हैं । बहुत चलना ऊपर लेजाना भरजाना मलादिकों का निकालना ॥२१॥ और धारणकरना ये पांच चेष्टा वायुकी कही गई हैं । इसवास्ते वह वायु कुपित हुवा सब शरीर में फैलेहुए रोगों को करता है ॥ २२ ॥
और जब ये तीनों वात पित्त कफ एक कालमें कोप को प्राप्तहुवे निःसन्देह देहको नाश करते हैं ॥
देह को भिन्न करते हैं अर्थात् मार डालते हैं ॥ (क)

[अथ पित्तस्य स्वरूपमाह]

पित्तं मुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्वगुणोत्तरम् ॥ सरं
कटु लघु स्निग्धं तीक्ष्ण मम्लन्तु पाकतः ॥२३॥

पीतन्निरामम् । (क) ॥ नीलंसामम् । एकं पित्तं वा-
तवन्नाम स्थान कर्म्म भेदैः पञ्चविधम् । (ख) ॥

[तेषां पित्तानां नामान्याह]

पाचकं रञ्जकञ्चापि साधकालोचके तथा ॥ भ्रा
जकञ्चेति पित्तस्य नामानि स्थान भेदतः ॥ २४ ॥

[अथ पाचकादीनां स्थानान्याह]

अग्न्याशये यकृत् प्लीह्नो हृदये लोचनद्वये ॥ त्व
चि सर्व्वे शरीरेषु पित्तं निवसति क्रमात् ॥ २५ ॥

भा० अनन्तर पित्तका स्वरूप कहते हैं ॥ पित्त उष्ण और द्रव अर्थात् पिघलने वाला तथा पीला और नीला और सत्व गुण प्रधान ऐसा है ॥ और सर अर्थात् रेचक कड़वा हलका स्निग्ध अर्थात् चिकना तीखा। तथा पाकमें अम्ल होता है ॥ २३ ॥ आम से रहित पित्त पीला होताहै (क) ॥ और आमके सहित पित्त नीला होताहै ॥ (ख) ॥ एक पित्त वायुके मानिंद नाम स्थान कर्म्म इन भेदों से पांच प्रकारका है ॥ उन पित्तों के नाम कहते हैं ॥ पाचक रंजक साधक आलोचक और भ्राजक इस प्रकार स्थानके भेद से नाम कहे गये हैं ॥ २४ ॥ अनन्तर पाचकादिकों के स्थान कहते हैं ॥ अग्न्याशय में पाचक पित्त और यकृत पिलही में रंजक पित्त तथा हृदय में साधक पित्त और दोनों नेत्रों में आलोचक पित्त त्वचामें भ्राजकपित्त इस क्रमसे सब शरीरमें पित्त रहताहै ॥ २५ ॥

[अथ तेषां कर्माण्याह]

पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्नि वलवर्द्धनम् ॥ रस
मूत्र पुरीषाणि विवेचयति नित्यशः ॥ २६ ॥

पाचकं पित्त माम पक्वाशय मध्यस्थं षड्विधमाहारं भो-

ज्यं भक्ष्यं चर्व्यं लेह्यं चूष्यं पेयं पचति दोषरसमूत्रपु रीषाणि पृथक्करोति च । (ख) ॥ तदग्न्याशयस्थ मेव स्वशक्त्या रसरञ्जनहृदयस्थ कफ तमोप नोदन रू पग्रहणप्रभा प्रकाशनाभ्यङ्गलेपादि पाचनाद्यग्निक र्म्मणां विशेषाणां पित्तस्थाना नामनुग्रहं करोति।(ग) शेषाण्यपि पित्तस्थानानि यकृत्प्लीहादीनि भागेन गत्वा तत्र तत्र रसरञ्जनादि कर्म्मभिरुप करोतीत्यर्थः ॥ (घ) ॥ कथम्भूतं पाचकं पित्तशेषाग्निबल वर्द्धनम् । शेषा अग्नयः पृथिव्यादि महाभूतगणाः (ङ)

भा० अनन्तर उनके कर्म्म कहते हैं । पाचक पित्त भोजन किये हुवे अन्न का परिपाक करता है । और शेष अर्थात् बाक़ी अग्नियों के बलको बढ़ा ने वालाहै । तथा प्रतिदिन रस मूत्र मल्ल इनको अलग करता है ॥ २६ ॥
पाचक पित्त आमाशय और पक्वाशय के बीच में रहनेवाला छः प्रकार के आहार को अर्थात भोजन करने योग्य को भक्षण करनेयोग्य को चर्वण करनेयोग्यको चाटनेयोग्यको चूसनेयोग्यको और पीनेयोग्य को पकाता है और दोष रस मूत्र मल को अलग करता है ॥ (क) ॥
वह अग्न्याशय में रहनेवाला पित्त अपनी पाचन शक्ति से रसका रंगना । और हृदय में रहनेवाले कफ तथा तमको दूरकरना और रूपका ग्रहण करना कान्तिका प्रकाशकरना तथा अभ्यङ्ग लेपादिकोंका पाचनादि अग्निकर्म विशेष पित्तमें रहनेवालोंका उपकार करनाहै ॥ (ख) ॥
बाक़ीयों को भी अर्थात यकृत् पिलहि इत्यादिक पित्तके स्थानों में जाकर उ न २ स्थानों में रस रंजनादि कर्मोंके द्वारा अनुग्रह करता है ॥ (ग) ॥
कैसाहै पाचक पित्त शेष अग्नियों को । शेष ऐसे जो अग्नि अर्थात पृथि व्यादि महाभूत समुदाय ॥ (घ) ॥ जैसे कि चरक ने कहा है ॥ (ङ)

[यत उक्तं चरकेण ।]

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसा इति।
ऊष्माणः अग्नयः ॥ (क) ॥

[यत्र उक्तं वाग्भटे।]

दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनमिति । (ख)
दोषधातुमलादीनामूष्मैवाग्निरित्यर्थः। (ग) ॥
रसादिधातुगता सप्त तेषां बलवर्द्धनम्। (घ) ॥

भा० भूमिसम्बन्धि जलसम्बन्धि अग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि और आकाशसम्बन्धि इस प्रकार पाँच उष्मा अर्थात् अग्निहैं ॥ (क) ॥
और जैसे वाग्भठ में कहाहै । दोष धातु मल इत्यादिकोंकी उष्मा होती हैं इस प्रकार अत्रियजी का उपदेश है ॥ (ख) ॥
अर्थात् दोष धातु मल इत्यादिकों की उष्माही अग्निहैं ॥ (ग) ॥
रसादि धातु में प्राप्त सात उष्मा उनके बलको बढाने वाला है ॥ (घ) ॥

यथा गृहे स्थापितानि रत्नानि खद्योतवद् दूरभास्वराणि तान्यपि दीपज्योतिषा दूरप्रकाशकानि भवन्ति । तथा अग्न्याशयस्य पाचकाग्नितेजसा सर्वे अग्नयो बलवन्तो भवन्ति । (ङ) ॥

[तथाच वाग्भटः।]

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तॄणामधिको मतः ॥ तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मका इति ॥ २७॥

भा० जैसे घरमें रक्खेहुवे रत्न पटवीजने के मानिंद दूरसे चमकदार मालूम होतेहैं। परंतु वोभी दीपक के प्रकाश से दूर तक प्रकाश करनेवाले होतेहैं। उसीप्रकार अग्न्याशय में रहनेवाले पाचक अग्निके तेज़से सब अग्नि बलवान होतीहैं ॥ (ङ) ॥　उसी प्रकार वाग्भट ने कहा है ॥

अन्न का पाक करनेवाला सब पकानेवालों में अर्थात् सब अग्नियों में मुख्य समझा गया है। वही है अर्थात् पक्वाशय में रहनेवाला पाचक अग्निही है जड़ जिनका ऐसेवे अग्नि उसके वृद्धि क्षयसे अर्थात् पाचक अग्निके वृद्धि और क्षयसे वृद्धि क्षय वाले होते हैं ॥ २७॥

ननु पित्तादन्योऽग्निराहोस्वित्पित्तमेवाग्निरिति सन्देहः। (क) ॥ उच्यते। पित्तस्योष्णादिगुणद्वाराहारपाचनरञ्जनदर्शनादिकर्म्मणश्च न खलु पित्तव्यतिरेकेणान्योऽग्निः। तस्मादग्निरूपस्यैव पित्तस्य स्थानभेदात्पाचकरञ्जकसाधकालोचकभ्राजकसंज्ञाः॥ (ख) ॥

भा० यहांपर शंका करतेहैं कि पित्तसे अलग् अग्निहै या पित्त ही अग्नि है इस प्रकार सन्देह है ॥ (क) ॥ इसवास्ते कहता हूं। कि पित्त के उष्णादि गुणद्वारा आहारका पाचन और रञ्जन दर्शन इत्यादि कर्मोसे पित्तके सिवाय दूसरा अग्नि नहीं है ऐसा निश्चय है ॥
तिस हेतु अग्निरूपही पित्तकी स्थानके भेदसे पाचक रंजक साधक आलोचक और भ्राजक ये संज्ञा हैं ॥ (ख) ॥

[तथाच वाग्भटः।]

पाचकं तिलमानं स्यात् काठिन्यान्नास्य दोषता।
अनुगृह्णात्यविकृतं पित्तं पाकोष्मदर्शनैः॥ २८॥
क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्य्यतनुमार्दवैः॥
पित्तं पञ्चात्मकं तत्र पक्वामाशयमध्यगम्॥ २९॥

[और वाग्भट नें कहा है]

पाचक पित्त तिल प्रमाण है परंतु कठिनता से इसको दोषत्व नहीं है।

किंतु पाक उष्मा और दर्शन इनसे विकार रहित पित्त का उपकार करताहै ॥ २८ ॥ क्षुधा तृषा रुचि कान्ति मेधा बुद्धि शूरता और शरीर का कोमलपन इनसे पक्वाशय और आमाशय के बीच रहनेवाला वह पित्त पंचात्मक अर्थात् पंच महाभूत स्वरूप कहा गया है ॥ २९ ॥

पञ्च भूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयम् ॥
त्यक्तद्रवत्वं पाकादि कर्म्मणानलशब्दितम् ॥ ३०॥
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥ त
त्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ॥ ३१॥
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥

भा० जिस कारण पंच भूतात्मक धर्म होनेपर भी तैजस गुण अधिक वालाहै । उस कारण द्रवत्व अर्थात् पिंघलाव से रहित हुवा पाकादि कर्म से अग्नि कहागया ॥ ३० ॥ अन्न को पकाताहै और उसका सार तथा कीट को अलग करता है । और वहींपर रहनेपर रहनेवाले शेष पित्तोंपर बलदेने के द्वारा अनुग्रह करताहै ॥ ३१ ॥ इससे पाचक नामसे कहा गया ॥

(क) ननु यदि पित्ताग्न्योरभेदस्तदा कथं घृतं पित्तस्य शामकमग्नेर्दीपकमिति । तथा मत्स्याः पित्तं कुर्वन्ति न च तेऽग्निदीप्तिकरा इति । तथा पित्ताधिक्यात्तीक्ष्णोऽग्निरित्यपि कथं स्यात् । तथा समदोषः समाग्निश्चे त्यपि वक्तुं न युज्यते । तथा द्रवं स्निग्धमधोगञ्च पित्तं वन्हिस्तोऽन्यथेति ॥ (ख) ॥

भा० (क) ननुशंका करतेहैं कि यदि पित्त और अग्नि एकही है तब कैसे घृत पित्तका तो शमन करनेवाला और अग्निका दीपन करने वाला है ।

और वैसेही मछलियाँ पित्तको करती हैं और अग्निको बढ़ानेवाली नहीं हैं। तथा पित्तकी आधिक्यता में तीक्ष्ण अग्नि भी कैसे होता है । वैसेही समदोष वाला सम अग्नि भी कहना ठीक नहीं है । तथा द्रव स्निग्ध नीचे जाने वाला पित्त है और इससे विपरीत अग्नि है ॥ (ख) ॥

अत्रोच्यते । पित्तमग्नेः सन्तताधिष्ठानम् ॥ (ग) ॥

[तथाचोक्तं तन्त्रान्तरे]

अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तः पित्तं भिन्नगुणैस्तथा ॥
द्रवं स्निग्धमधोगञ्च पित्तं वन्हिरतोऽन्यथा ॥३२॥
तस्मात्तेजोमयं पित्तं पित्तोष्मा यः स शक्तिमान् ॥
स सञ्चरति कुक्षिस्थः सर्वतो धमनीमुखैः ॥३३॥
स कायाग्निः स कायोष्मा स पक्ता स च जीवनम् ।
अनन्यगतिरित्येवं देहे कायाग्निरुच्यते ॥ ३४॥

भा० यहाँपर कहतेहैं । पित्त अग्निके निरन्तर रहने की जगह हैं । उस तरह पर कहाहै तन्त्रान्तर में । अग्नि और गुणोंसेयुक्त और पित्त और गुणों से युक्त हैं । जैसे द्रव स्निग्ध और नीचे जानेवाला पित्त और इससे विपरीत अग्नि ॥ ३२॥ उस कारण पित्त तेज स्वरूप हैं ॥ और जो पित्तकी उष्माहैं वह शक्तिमान् हैं । वह कोखमें रहनेवाला धमनी नाड़ियों के मुखसे सब स्थानों में संचार करताहै ॥ ३३ ॥ वह शरीर की अग्नि हैं । वह शरीर की ऊष्माहै वह पाक करनेवाला है और वह जीवन हैं । तथा एक गति इस प्रकार देहमें कायाग्नि कही गई हैं ॥ ३४ ॥

(अन्यच्च) वामपार्श्वाश्रितं नाभेः किञ्चित् सोमस्य मण्डलम् ॥ तन्मध्ये मण्डलं सौर्य्यं तन्मध्ये ऽग्निर्व्यवस्थितः ॥ ३५॥ जरायुमात्रप्रच्छन्नः का

चकोशस्थ दीपवत् ॥ ३५ ॥

[तथा च मधुकोषे]

(क) द्रवतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्य तेजोभागोऽग्निरिति । तेन पित्तमप्यग्नि वन्मन्यते । अतितापितायोगोलकवत् । परमार्थतस्तु अग्निः पिताद्भिन्न एवेति सिद्धान्तः ॥

भा० औरभी । नाभिके वाम पार्श्वके आश्रित छोटा सा सोम का मंडल है। उसके बीचमें सूर्य्यका मंडल है और उसके बीचमें अग्नि रहता है ॥ ३५ जरायु मात्र में ढकाहुवा है काँचके कोशके भीतर रहनेवाले दीपक के मानिंद ॥ ॥ उसतरह पर कहाहै मधुकोश में ॥

(क) द्रव और तेज इनके समुदाय स्वरूपवाले पित्तका तेजो भाग अग्नि हैं। तिस्से पित्तभी अग्निके मानिंद माना जाता है । बहुत तपाये हुवे लोहके गोलेके मानिंद । परमार्थ से तो अग्नि पित्तसे अलग ही है । यह सिद्धान्त है ॥ (क) ॥

[अतएवाह रस प्रदीपे]

जाठरो भगवानग्नि रीश्वरोऽन्नस्य पाचकः ॥ सौक्ष्म्या द्रसानाऽऽददानो विवक्तुं नैव शक्यते ॥ ३६।

नाभि मध्ये शरीरस्य विशेषात्सोममण्डलम् ॥ सोम मण्डल मध्यस्थं विद्यात्सूर्य्यस्य मण्डलम् ३७

प्रदीपवत्तत्र नृणां स्थितो मध्ये हुताशनः ॥ सूर्यो दिवि यथा तिष्ठं स्तेजो युक्तै र्गभस्तिभिः ॥ ३८ ॥

भा० इसवास्ते रस प्रदीप में कहाहै ॥ जठर में रहनेवाला भगवान् अग्नि अन्नका पाक करनेवाला ईश्वर सूक्ष्म भावसे रसोंको लेनेवाला है परन्तु विशेषकरके कह नहीं सके ॥ ३६ ॥ शरीर की नाभिके बीचमें विशेषकर

के चन्द्र मंडल हैं । और चन्द्रमंडल के बीचमें रहनेवाला सूर्य्यमंडल जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ दीवे के मानिंद मनुष्योंके बीच में अग्नि रहता है । जैसे सूर्य्य आकाश में रहकर तेज से युक्त ऐसी किरणों से सब जंगल और नदियों को सुखाता है ॥

विशोषयति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च ॥ तद्
च्छरीरिणां भुक्तं ज्वलनो नाभि माश्रितः ॥ ३८।३९
मयूखैः पचते क्षिप्रन्नानाव्यञ्जन संस्कृतम् ॥
स्थूलकायेषु सत्वेषु यवमात्रः प्रमाणतः ॥ ४० ॥

भा० वैसेही नाभिके आश्रित अग्नि अनेक प्रकार के व्यंजनों से संस्कार किये हुवे मनुष्यों के भोजन कियेहुवे को किरणों से पकाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बड़े शरीर वाले जीवोंमें जव बराबर रहता है। और छोटे शरीर वाले जीवों में तिल प्रमाण रहता है ॥ ४० ॥

ह्रस्वकायेषु सत्वेषु तिलमात्रः प्रमाणतः ॥ ४० ॥
कृमिकीट पतङ्गेषु वालमात्रोऽवतिष्ठत इति ॥

[पुनः प्रकृत मनुसरति]

रञ्जकं नाम यत्पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत् ॥ यत्तु
साधक संज्ञं तत्कुर्य्याद् बुद्धिं धृतिं स्मृतिम् ॥ ४१ ॥
धृतिं मेधां यदालोचक संज्ञं तद्रूप ग्रहण कारणम्।

भा० तथा कृमि कीड़े पतंगे इनमें वाल बराबर रहता है ॥

॥ फिरसे उसको कहते हैं ॥

जो रंजक नाम पित्तहै वह रसका रुधिर बनाता है । और जो साधकनाम पित्त है वह बुद्धि धृति स्मृति को करता है ॥ ४१ ॥ धृति अर्थात् मेधा । तथा जो आलोचक नाम पित्त है वह रूपके ग्रहण करनेका कारण है ॥

भ्राजकं कान्तिकारी स्याल्लेपाभ्यङ्गादि पाचकम्॥४२

[अथ श्लेष्मस्वरूपमाह]

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा॥
तमोगुणाऽधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत्॥४३॥

(क) एकः श्लेष्मा वातपित्तावित्र नामस्थानकर्म्मभेदैः पञ्चविधः। (क)॥

[अथ श्लेष्मणां नामान्याह]

कफस्यैतानि नामानि क्लेदनश्चाव लम्बनः॥ रसनः स्नेहनश्चापि श्लेष्मणः स्थानभेदतः॥४४॥

भा० और भ्राजक कान्तिका करनेवाला है तथा लेप और अभ्यंग आदियों का पाचक हैं॥४२॥ अनंतर श्लेष्मा का स्वरूप कहते हैं॥ (श्लेष्मा) कफ श्वेतहै भारीहै और स्निग्ध तथा फिस्लहट वाला है और शीतल तथा तमोगुण अधिक है मधुर और विदग्ध हुवा लवणहो जाहै॥४३॥ (क) एककफ वात पित्तोंके मानिंद नाम स्थान और कर्म्म इन भेदोंसे पांच प्रकारका है॥

[अनन्तर कफ के नाम कहते हैं]

स्थानोंके भेदसे कफ के ये नाम हैं॥ क्लेदन अवलंबन रसन स्नेहन और श्लेष्मण॥४४॥

[अथ क्लेदनादीनां स्थानान्याह]

आमाशयेऽथ हृदये कण्ठे शिरसि सन्धिषु॥ स्थानेष्वेषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥४५॥

भा० अनन्तर क्लेदादिकोंके स्थान कहते हैं॥ आमाशयमें क्लेदन हृदयमें अवलंबन कंठमें रसन शिरमें स्नेहन और सन्धियोंमें श्लेष्मण इस क्रम

से मनुष्योंके इनस्थानोंमें श्लेष्मा रहना है ॥ ५५ ॥

(क) दोषाणां सकलशरीरव्यापिनामपि पञ्च पञ्च स्थानानीनि बाहुल्याभिप्रायेणोक्तानि ॥ (क) ॥

[तथाच वाग्भटः]

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यकीहतात्मनाम्। व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥ इति ॥ ५६ ॥ चरकश्च । ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्यो रधेमध्योर्द्ध संश्रया इति ॥

भा० (क) सम्पूर्ण शरीर में फैलेहुवे भी दोषों के पांच २ स्थान आधिक्याभिप्रायसे कहेगये हैं । उसी तरहपर कहा है वाग्भटने । इस प्रकार प्रायः करके सब शरीर में फैलेहुवे और मिले दोषोंके स्थान और अलग अलग कर्म्म इनको जानें ॥ ५६ ॥ इस प्रकार चरक ने भी कहाहै ॥ ये सम्पूर्ण शरीर में फैलेहुवे भी हृदय नाभिके नीचे और बीचमें तथा ऊपर रहते हैं ॥

[अथ तत्तत्स्थानगतस्य श्लेष्मणः कर्म्माण्याह]

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमान्मशक्त्या पराण्यपि ॥ ना अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थान्युदक कर्म्मणा ॥ ५७॥

(क) अयमर्थः क्लेदनोऽन्नं क्लेदयति तेन संहतमन्नं भेदं प्राप्नोति । अपराण्यपि श्लेष्मस्थानानि हृदयादीनि ॥ मार्गेण गत्वा तत्र तत्र हृदयावलम्बन संधारण रस ग्रहण समस्तेन्द्रिय तर्पण सन्धिसंश्लेषणा द्युदक

कर्म्मभिरनुगृह्णाति उपकरोति ॥ (ख) ॥ तथाच रसयुक्तात्मवीर्येण हृदयस्यावलम्बनम् ॥ त्रिक सन्धारणं चापिविदधात्यवलम्बनः ॥ ४८ ॥

भा० अनन्तर उन२ स्थानों में प्राप्त कफ के कर्म्मों को कहते हैं । क्लेदन कफ अन्नको आर्द्र करता है और अपनी शक्ति से दूसरे श्लेष्म स्थानोंको भी उदक कर्मके द्वारा अनुग्रह करता है ॥ ४७ ॥ यह अर्थहै कि क्लेदन अन्नको गीला करता है उससे दृढ़ जुड़ाभी अन्न अलग होजाता है ॥ और भी श्लेष्म स्थान अर्थात् हृदयादिक ॥ मार्ग से वहां वहां पर जाकर हृदय का अवलंबन संधारण रस ग्रहण सम्पूर्ण इन्द्रियोंका तर्पण अर्थात् तृप्त करना और संधियों का अच्छे प्रकार मेलन इत्यादिक उदक कर्म्मसे अनुग्रह करताहै ॥ (ख) ॥
औरभी । हृदय में रहनेवाला अवलंबन कफ रस से युक्त अपने सामर्थ्य से अवलंबन और त्रिक अर्थात् पीठकी हड्डीका नीचला हिस्सा उसका संधारण अर्थात् पकड़ना भी करता है ॥ ४८ ॥

(क) (त्रिकं शिरोबाहुद्वयसन्धिः)
उभावपि ततः सौम्यौ तिष्ठतश्चान्तिके यतः ॥
रसान्वितौ हि जानीतौ रसना रसनौ समौ ॥ ४९ ॥
(रसना रसनेन्द्रियं रसनः कण्ठस्थकफः ।)
स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रिय तर्पणः ॥ श्लेष्मणः सर्वसन्धीनां संश्लेषं विदधात्यसौ ॥ ५० ॥

भा० (क) त्रिक अर्थात् शिर और दोनों भुजाओंकी सन्धि जिससे कि सौम्य दोनों समीपमें रहते हैं तिस हेतु समान रसना अर्थात् जिव्हा और रसन अर्थात् कण्ठ में रहनेवाला कफ ये दोनों रस से युक्त जाने जाते हैं ॥ ४९ ॥
(रसना अर्थात् रसनेन्द्रिय रसनः अर्थात् कण्ठ में रहनेवाला कफ ।)
स्नेहन कफ स्नेह दानसे अर्थात् तरावट देने से संपूर्ण इन्द्रियों को तृप्त

करताहै ॥ श्लेष्मरा कफ सब संधियों को जोड़ता है ॥ ५० ॥

[अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह]

रसे सप्त स्वयं स्थित्वा देहन्दधति यन्नृणाम् ॥
रसासृङ्मांस मेदोस्थि मज्जा शुक्राणि धातवः ॥५१॥
धातव इति धा धातोस्तु प्रत्ययः । (क्त) ॥

[अथ धातूनां कर्म्माण्याह]

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारण पूरणे ॥ गर्भो
त्पादश्च कर्माणि धातूनां कथितानि हि ॥५२॥

भा० [अनन्तर धातुशब्दकी निरुक्ति कहते हैं]
रस रुधिर मांस मेद अस्थि मज्जा और शुक्र ये सात आप रहकर मनुष्यों की देहको धारण करते हैं ॥ ५१ ॥ धातव इसमें धा धातुसे तु प्रत्यय होता है ॥ अनन्तर धातुवों के कर्म्म कहते हैं ॥ प्रीणन अर्थात् तृप्त करना जीवन अर्थात् प्राणका धारण करना लेप आर्द्र करना धारण करना भरना और गर्भका उत्पन्न करना ये कर्म्म क्रमके साथ अर्थात् रसका प्रीणन रुधिर का जीवन मांसका लेप मेदका स्नेह अस्थिका धारण मज्जा का पूरण और शुक्रका गर्भ उत्पन्न करना इस प्रकार कहे गये हैं ॥ ५२ ॥

[तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिः]

यद्यथा रस धातुर्यस्ततो ऽभवदयं रसः ॥ स द्रवं
सकलं देहं रसतीति रसः स्मृतः ॥ ५३ ॥

भा० उसमें रस शब्द की निरुक्ति कहते हैं । किंवा रसि जो रसधातु जिस प्रकार जल का रस हुआ जिस हेतु द्रवके सहित संपूर्ण शरीर को आर्द्र करता है इस वास्ते रस कहागया ॥ ५३ ॥

[अथ रसस्य स्वरूपमाह]

सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः ॥
स तु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत्।५४
(क) सारो यथा गुड़ मधूक पुष्प बुब्बूलत्वग्वदरी मूला
दि भवः सारो मदिरा ॥ (क) ॥

[अथ रसस्य स्थान माह।]

सर्व्वदेह चरस्यापि रसस्य हृदयं स्थलम् ॥ स
मान मरुता पूर्व्वं यदयं हृदये धृतः ॥ ५५ ॥

भा० अनन्तर रस का स्वरूप कहते हैं। अच्छे प्रकार परिपाक हुवे भो जन कियेका जो सार वह रस कहा गया है। और वह रस द्रव अर्थात् वह जाने वाला है तथा श्वेत और शीत मधुर स्निग्ध और अस्थिर होता है ॥ ५४ ॥ (क) सार जैसे गुड़ महुवे के फूल ववूल जिसको कीकर कहते हैं उसकी छाल और वेरीकी जड़ इत्यादिकों से उत्पन्न हुवा सार अर्थात् मदिरा ॥ (क) ॥

[अनन्तर रसका स्थान कहते हैं।]

सम्पूर्ण शरीर में घूमनेवाले भी रसका स्थान हृदय है। क्योंकि पहिले यह समान वायु के द्वारा हृदय में स्थापन किया गया ॥ ५५ ॥

[अथ रसस्य कर्म्माण्याह]

आरुह्य धमनीर्गत्वा धातून् सर्वानयं रसः ॥ पु
ष्णाति तदनु स्वीयैर्व्याप्नोति च तनुं गुणैः ॥ ५६॥
(क) गुणैः शीत स्निग्ध पोषकत्व गुणैः। (क)

भा० अनन्तर रसका कर्म्म कहते हैं ॥ यह रस चढ़कर धमनियों में जाके सब धातुवों को पुष्ट करता है उसके पश्चात् अपने गुणों से शरीर में फैलता है ॥ ५६॥ (क) गुणों से अर्थात् शीत स्निग्ध और पोषकत्व गुणों से।

मन्दवन्हि विदग्धस्तु कट्वाम्लो भवेद्रसः ॥ स कु
र्याद्दहुलान् रोगान् विषकार्यं करोत्यपि ॥ ५७ ॥

[अथ रक्तस्य स्वरूप माह]

यदा रसो यकृद्याति तत्र रञ्जक पित्ततः ॥ रागं पा
कं च संप्राप्य स भवेद्रक्त संज्ञकः ॥ ५८ ॥ रक्तं
सर्व शरीरस्थं जीवस्याधार मुत्तमम् ॥ स्निग्धं गुरु
चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ ५९ ॥

(जीवस्याधार मुत्तम मिति)

भा० मन्दाग्नि से विदग्ध रस होता है अथवा कटु या अम्ल रस होता है। वह रस बहुतसे रोगों को तथा विषके कार्य को करता है ॥ ५७ ॥

[अनन्तर रक्तका स्वरूप कहते हैं]

जब रस यकृत में अर्थात् कलेजे में जाता है तब वहांपर रञ्जक पित्तसे रंग और पाक को पाकर वह रस रक्त संज्ञक होता है ॥ ५८ ॥ रक्त सम्पूर्ण शरीर में रहनेवाला और जीवका आधार तथा श्रेष्ठ ॥ और स्निग्ध भारी अस्थिर और मधुर तथा विदग्ध हुवा पित्तके सदृश होता है ॥ ५९ ॥

[जीवका आधार और उत्तम]

यत आहु । जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेष
तः ॥ वीर्य्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणा
दिति ॥ ६० ॥ (क) वीर्य्ये रक्ते मले च शरीरारंभके
भाग भेदेन परिभाग मिते भुक्ते जीवो वसति ननु दुष्ट
प्रदेशे रक्त स्रावणोपदेशस्य वैयर्थ्य प्रसङ्गात् पित्त व
द्भवेत् । अम्लं भवेदित्यर्थः ॥ (क) ॥

भा० जैसे कि कहाहै । जीव संपूर्ण शरीर में रहताहै । और शुक्र में

रक्तमें मलमें रहता है परंतु जिसके क्षीण होनेसे क्षण में क्षयको प्राप्त होताहै अर्थात् नाशको प्राप्त होता है उसमें विशेष करके रहता है ॥ ६० ॥ (क) वाग्भटके कहेहुवे प्रमाण के बराबर शुक्र रक्त और मल ये शरीर के आरंभक हैं। अर्थात् इन्हींसे शरीर हुवा है। इस शुद्ध में जीव रहताहै न कि दुष्ट में। क्यों कि वढ़नेमें रक्त निकालने के उपदेश की व्यर्थता होगी इसवास्ते पित्तवत् होता है अर्थात् खट्टा होता है ॥ (क) ॥

[अथ रक्तस्य स्थानमाह]

यकृत् प्लीहा च रक्तस्य मुख्यस्थानन्तयोः स्थितम्।
अन्यत्र संस्थितवतां रक्तानां पोषकं भवेत् ॥ ६१॥

[अथ मांसस्य स्वरूप माह]

शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनी कृतम्॥
तदेव मांसं जानीयात्तस्य भेदानपि ब्रुवे ॥ ६२॥

भा० अनन्तर रक्त का स्थान कहतेहैं ॥ यकृत् और पिलही रक्त का मुख्य स्थान हैं ॥ उनमें रहता हुवा और स्थानों में रहने वाले रक्तों का पोषण करने वाला होता है ॥ ६१॥

[अनन्तर मांस का स्वरूप कहते हैं]

निज अग्निसे परिपाक कियागया और वायु से गाढ़ा किया गया जो उसी को मांस कहते हैं और उसके भेदों को भी कहता हूं ॥ ६२ ॥

(क) शोणित मिति शोणितस्थान गतत्त्वा द्रस एव शोणित संज्ञां लभते। एवमग्रे रसस्यैव मांसा दिव्य पदेशः ॥ [अथ मांसस्य पेशीमाह]

यथार्थ मूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत्।

भा० (क) शोणित मिति। रुधिर के स्थानमें जानेसे रसही रुधिर संज्ञा को प्राप्त होताहै। ऐसेही आगे रसके ही मांसादिक नाम होतेहैं ॥ (क) ॥

[अनन्तर मांसकी पेशी अर्थात् मांसके पिंड कहतेहैं]

ठीक २ गरमी से युक्त वायु स्रोतों को फाडता है और पश्चात् मांस में घुसकर पेशियों को अलग करता है ॥ ६३ ॥ अनुप्रविश्य पिशितं पेशी विभजते तथा ॥ ६३ ॥ (यथार्थं यथा प्रयोजनम्)

[मांसपेशीनां संख्यामाह।]

मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पञ्च शतानि हि।

तासां शतानि चत्वारि शाखासु कथितान्यथा ॥ ६४॥

कोष्ठे षडुत्तरा षष्टिः कथिता मुनिपुङ्गवैः ॥ ग्रीवा या ऊर्द्धगास्तास्तु चतुस्त्रिंशत् प्रकीर्त्तिताः ॥ ६५॥

भा० यथार्थ अर्थात् जैनना चाहिये ॥ मांस के पेशियों की संख्या कहते हैं ॥ मनुष्यों की मांस पेशी पान्सौ कही गई हैं ॥ उनके चारसौ अर्थात् चारसौ मान्सपेशी चार शाखाओं में अर्थात् दोहाथ और दो पांव इनमें कही गई हैं ॥ ६४ ॥ और कोष्ठमें छाँसठ बड़े मुनियों ने कही हैं ॥ तथा गलेके ऊपर जानेवाली वोह चौतीस कही गई हैं ॥ ६५ ॥

(क) ताः शाखागताः। [प्राह।]

(ख) एकैकस्यान्तु पादाङ्गुल्यां तिस्रस्तिस्रः पञ्चदश १५ पादाग्रे दश १० पादोपरि कूर्चसन्निविष्टा दश १० गुल्फतलयोर्दश १० गुल्फजान्वोरन्तरे विंशतिः २० जानुनि पञ्च ५ ऊरौ विंशतिः २० वंक्षणे दश १० एवमेकस्मिन् सक्थिनि शतं भवन्ति। एतेनेतर सक्थि बाहू च व्याख्यातौ ॥ (ख) ॥

भा० (क) वोह अर्थात् शाखामें प्राप्त। कहते हैं ॥ (क)

(ख) एक २ पांव की उंगलियों में तीन २ मांस पेशी हैं इसे पांचों उंगलियों में मिल पन्द्रह १५ हैं। पांव के सिरेमें दश १० और पांव के ऊपर कूर्च अर्थात्

अंगुष्ठ और ऊंगलि के मध्यका ऊपर का भाग उसे मिलेहुवे दश १० गि
ट्टों के तलुवों मे दस १० गिट्टे और घुटनों के वीचमें वीस २० घुटने में पांच जांघ
में वीस २० वंक्षण में अर्थात् कमर के नीचे के भागमें दस १० इस प्रकार एक
सक्थि में सौ मांस की पेशी हैं ॥ इसी प्रकार दूसरी सक्थि और दोनों भु
जा व्याख्या कियेगये ॥ (ख) ॥

[अथ कोष्ठगताः प्राह॥]

(क) गुदे तिस्रः ३ शेफस्येका १ सेवन्यामेका १ वृषण
योर्द्वे २ स्फिजोः पञ्च ५ पञ्च ५ वस्ति मूर्द्धनि द्वे २ उदरे
पञ्च ५ नाभ्यामेका १ पृष्ठोर्द्ध सन्निविष्टा उभयतः पञ्च
५ पञ्च दीर्घा ५ पार्श्वयोः षट् ६ वक्षसि दश १० अक्षकां
सौ प्रतिसमन्तात् सप्त ७। अक्षको अखु आ इति लोके
अंसौ स्कन्धौ १ हृदि द्वे २ यकृति २ प्लीन्हि द्वे २ (नासा
यां द्वे २ नेत्रयोर्द्वे २ गराड्योश्चतस्रः ४) तुराडके द्वे २।

भा० अनन्तर कोष्ठ में प्राप्त हुवोंको कहते हैं। (क). गुदामें तीन ३
लिंग में एक सेंवनी अर्थात् लिंगके नीचे जो सींवन हैं उसमें एक १
अराडकोशों में २ चूतड़ों में पांच पांच ५।५। पेड़ू के सिरपर दो २ उदर में
पांच ५ नाभि में एक १ पीठके ऊपर मिलेहुवे दोनों तरफ पांच पांच ५।५
दीर्घ। पसलियोंमें छः ६ वक्षस्थल अर्थात् छातीपर दस १० अक्षक अ
र्थात् असुवा और अंस अर्थात् कान्धा इनके आसपास सात ७। अक्ष
क अर्थात् अपुआ ऐसा लोक में कहते हैं और अंस अर्थात् कंधे।
हृदय अर्थात् दिलपर दो २ यकृत में दो २ पिलही में दो २ शूंडि में दो २
अनन्तर गलेके ऊपर गई हुई को कहते हैं।

[अथ ग्रीवोर्द्ध गाः प्राह।]

(ख) ग्रीवायांश्चतस्रः ४ हन्वोरष्टौ ८ काठमरायोरेका

घण्टिकायामिति यावत् । गले एका १ तालुनि द्वे २ जिह्वायामेका १ ओष्ठयोर्द्वे २ नासायां द्वे २ नेत्रयोर्द्वे २ गण्डयोश्चतस्रः ४ कर्णयोर्द्वे २ ललाटे चतस्रः ४। शिरस्येका १ एवं मांसपेश्यः पञ्च शतानि भवन्ति ।

भा॰ गलेमें चार ४ दोनों जवाड़ों में आठ ८ कण्ठमणि अर्थात् घंटिका में जिसको घांटी भी कहते हैं उसमें एक । तालू में दो २ जीभमें एक १ होठोंमें दो २ नाकपर दो २ आंख में २ गालोंपर चार ४ कानों में २ माथे पर चार ४ सिरमें एक १ इस प्रकार मांसकी पेशी अर्थात् पिंड ५०० हैं

स्त्रीणामपि भवन्त्येताः किन्तु विंशतिरुत्तराः ॥
गर्भाशये गर्भमार्गे योनौ च स्तनयोरपि ॥ ६६॥

(क) एताः पञ्च शतानि मांसपेश्यः । अधिका विंशतिर्यथा । गर्भाशये तिस्रः३ गर्भच्छिद्र संस्थिता शुक्रार्त्तव प्रवेशिन्यस्तिस्रः ३। योनावभ्यन्तरतो मुखाश्रिते प्रसृते द्वे २ योनावेव वहिर्निर्गते स्रोतः पार्श्व द्वयस्थिते वर्तुले योनिकर्णिकेति यावत् । द्वे २स्तनयोः पञ्च ५पञ्च ५ यौवने तासां वृद्धिर्भवति ॥ (क)।

भा॰ औरतों की मांसकी पेशियां होती हैं । किन्तु बीस २० और होती हैं। गर्भमें और गर्भके मार्ग में योनि अर्थात् भगमें और स्तनों में भी ॥ ॥ ६६ ॥ (क) ये पान्सौ मांसकी थैली है और बीस २० अधिक है । गर्भाशयमें ३ गर्भके छिद्र में रहनेवाली और शुक्र आर्त्तव को प्रवेश करने वाली तीन ३ योनिके भीतरकी तरफ मुखमें लगी फैली हुई दो २ योनिके ही बाहर निकलनेमें स्रोतके दोनों बगलमें रहनेवाली गोल जिसको योनिकर्णिका अर्थात् योनिके कान कहते हैं सो दो २ और स्तनोंमें पांच ५

पाँच ५ तारुण्य अवस्था में उनही की वृद्धि होती है ॥ (क) ॥

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता मेहनमुष्कजाः ॥
स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गता हिताः ॥ ६७ ॥

(क) अस्यायमर्थः। पुंसां मेहन मुष्कयोश्च यास्ति स्रो मांसपेश्यः ॥ पूर्वं सुक्तास्ताः स्त्रीणां मेहन मुष्का भावात् फलं गर्भशमार्थं आवृत्य तिष्ठन्ति। (क) ॥

भा० पूर्व में पुरुषों के लिङ्ग और अण्डकोश सम्बन्धी जो मांस पेशी कहीगई वोह भीतर रहनेवाली स्त्रियों के गर्भ लाभके अर्थ आवरण करके रहती है ॥ ६७ ॥

(क) इसका यह अर्थ है कि पुरुषों के लिंग और अंडकोशों में जो तीन मांस पेशी पूर्वमें कहीगई थीं वो मांस पेशी स्त्रियों के लिंग और अंडकोशों के नहोनेसे गर्भ लाभके अर्थ आवरण करके रहती हैं ॥ (क) ॥

[गयदासस्त्वाह।]

(ख) स्त्रीणां मांसपेश्य स्त्रिभिर्हीनानि पञ्चशतानि।

[तथा च भोजः]

पञ्चपेशी शतान्येव स्त्रीवर्ज्जे विद्धि भूमिप ! अ
तश्च तिस्रो हीयन्ते स्त्रीणां शेफसि मुष्कयोः ॥ ६८.

[अथ मांसपेशीनां कर्माण्याह]

भा० गयदास कहते हैं कि। स्त्रियों की मांस पेशी तीनकम पानसौ ४६७ होती हैं ॥ (ख) ॥ वैसे ही भोजने कहा है।] हे राजा स्त्रियोंको छोड़कर अर्थात् पुरुषों ही की मांस पेशी पान सौ ही जानो। इसवास्ते स्त्रियों की तीन कम हैं लिंगमें और अंडकोषों में अर्थात् इनके नहोनेसे। ६८।

[अनन्तर मांसपेशी के कर्म कहते हैं]

शिरास्नाय्वस्थि पर्वाणि सन्धयश्च शरीरिणाम्॥
पेशीभिः संवृतान्येव बलवन्ति भवन्ति हि॥६९

[अथ मेदसः स्वरूपमाह]

यन्मांसं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते॥
तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्य्यतिवृंहणम्॥७०॥

[अथ मेदसः स्थानमाह]

मेदोहि सर्व्व भूताना मुदरेष्वस्थि संस्थितम्॥
अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत्॥७१

भा० मनुष्यों के शिरा छोटीनसें स्नायु बड़ीनसें पर्व पोर सन्धि जोड़ ये सब मांस पेशीयों से लपेटीहुई ही बलवान हैं॥६९॥

[अनन्तर मेदका स्वरूप कहते हैं]

जो मांस निज अग्निसे पकाहुवा है उसको मेद कहते हैं। वह बहुत भारी हैं और सचिक्कण तथा बल करनेवाला और बहुत बढ़ने वाला है॥७०

[अनन्तर मेदका स्थान कहतेहैं]

मेद सब जीवों के उदर में अस्थि से मिलाहुवा रहता है॥ इसीवास्ते प्राय. मेदवालों के उदर में ही वृद्धि होती है॥७१॥

[अथास्थ्नः स्वरूपमाह]

मेदो यत् स्वाग्निना पक्वं वायुना चाति शोषितम्॥
तदस्थि संज्ञां लभते ससारः सर्व विग्रहे॥७२॥

[अस्थि का स्वरूप कहते हैं]

जो मेद निज अग्निसे पका हुवा और वायुसे बहुत शोषण किया हुवा होता है वह अस्थिसंज्ञाको प्राप्त होता है। और वह सम्पूर्ण शरीर में सार है॥७२

अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः ॥ अ

स्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनो ध्रुवम् ॥७३॥

तस्माच्चिर विनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ॥ अ

स्थीनि न विनश्यन्ति सारा ह्येतानि सर्वथा ॥७४॥

भा० भीतर रहनेवाले सार अर्थात् जिसको साल कहते हैं। उस्से जैसे वृक्ष ठहरे रहते हैं। वैसेही अस्थि सार से देही देहों को धारण करते हैं।७३॥ जिस कारण देहियों की त्वचा और मांस बहुत काल में नाश होने परभी अस्थियां नाशको नहीं प्राप्त होतीं इस्से येह सर्वथा सार हैं ॥ ७४ ॥

[अथास्थ्नां संख्यामाह।]

शल्य तन्त्रेऽस्थि खण्डानां शतत्त्रय मुदाहृतम्।

तान्येवात्र निगद्यन्ते तेषां स्थानानि यानि च ॥७५॥

स विंशतिशतं त्वस्थ्नां शाखासु कथितं बुधैः ॥

पार्श्वयोः श्रोणि फलके वक्षः पृष्ठोदरेषु च ॥७६॥

भा० [अनन्तर अस्थियों की संख्या कहते हैं]
शल्य तन्त्र में अस्थियों के खंड तीनसौ ३०० कहे गये हैं। उनही को यहां पर कहते हैं। और जो उनके स्थान हैं उनको भी कहते हैं ॥ ७५ ॥ एक सौ वीस अस्थियां शाखाओं में पंडितों ने कही हैं ॥ पसलियों में कटि प्रदेश में और वक्षस्थल में तथा पृष्ठ और उदर में भी ॥ ७६ ॥

जानीयाद्भिषगेतेषु शतं सप्तदशोत्तरम् ॥ ग्रीवा

यामूर्द्धगां विद्यादस्थ्नां षष्टि त्रिसंयुतम् ॥७७॥

भा० इन स्थानों में वैद्य एकसोसतरह ११७ जाने। ग्रीवा में ऊपर की तरफ़ जानेवाली अस्थियां तिरसठ ६३ जाने ॥ ७७ ॥

[तानि शाखागतान्याह]

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पंच द-
श १५ पादतले पञ्चास्थि शलाकास्तदाधार भूतमेक
मस्थि १। एवं षट् ६ कूर्चे द्वे २ गुल्फे द्वे २ पार्ष्ण्यां चै
कम् १ जङ्घयोर्द्वे २ जानुन्येकम् १ ऊरावेकं एवं त्रिं
शदेकस्मिन् सक्थिनि भवन्ति।
एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ ॥ (क)

[वह शाखाओंमें भासीं कोकहतेहैं]

(क) एक एक पैरकी अंगुलियों में तीन तीन ३।३। अस्थियाँ हैं॥ इस तरह पर पन्धरह होती हैं। पैरके तलुवे में पांच ५ अस्थियोंकी शलाका अर्था त् सलाइयांहैं। उनकी आधार भूत एक अस्थि हैं।
इस प्रकार छः६ अस्थियांहैं। पूर्वोक्त कूर्च्च स्थानमें २ टखनों में २ एड़ी में एक १ टांग में दो २ घुटने में एक १ और जांघ में एक १ इस प्रकार ए- क सक्थिमें तीस ३० अस्थियांहैं। इसी तरहपर दूसरी सक्थि और दोनों भुजा व्याख्या किये गये ॥ (क) ॥

[अथ पार्श्वादिगतान्याह।]

(ख) पार्श्वयोः षट् त्रिंशत् ३६ ॥ शिश्ने भगे च एक
म् १॥ नितम्बयोरेकैकम् २॥ त्रिके एकम् १॥
वक्षस्यष्टौ ८॥ पृष्ठे त्रिंशत् ॥ ३०॥ अलक संज्ञे द्वे २॥

॥ अथ ग्रीवोर्द्ध गतान्याह ॥

भा० अनन्तर पसलियों में प्राप्त अस्थियोंको कहतेहैं॥ (ख) दोनों पस लियों में छत्तीस ३६ लिंगमें एक १ और भगमेंएक १ चूतड़ों में एक एक १। १। पूर्वोक्त त्रिकस्थानमें एक १ वक्षस्थलमें आठ ८ पीठ में तीस ३० असक संज्ञ आघुवामें दो २।

[अनन्तर ग्रीवा के ऊपर प्राप्त अस्थियों कोकहते हैं]

(ग) ग्रीवायां नव ९ कण्ठनाड्यां चत्वारि ४ हन्वो रे केकम् २ दन्ताः द्वात्रिंशत् ३२ ॥ नासायां त्रीणि ३ तालुन्येकं १ गण्डयोरेकैकं २ कर्णयोरेकैकम् २॥ भ्रुवोरेकैकम् २ शिरसि षट् ६ एतान्यस्थीनि पञ्च विधानि भवन्ति ॥ तानि यथा ।

भा० (ग) गले में ९ नौ ॥ कंठ नाड़ी में चार ४ । जवाड़ों में एक एक १।१। दांत बत्तीस ३२ नाक में तीन ३ तालु में एक १ गालों पर एक एक १।१। कानों में एक एक १।१। भवों में एक एक १।१। सिर में छ ६ ये अस्थियां पांच प्रकार की होती हैं॥ वोह जैसे ॥

तरुणानि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि ॥
वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचित्॥७८
अक्षिकोश श्रुति घ्राण ग्रीवासु तरुणानि च ॥
शिरःशङ्ख कपोलेषु तात्वंसं प्रोथ जानुनि ॥७९
कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचिकानि च ॥
पाण्योः पार्श्व युगे पृष्ठ वक्षे जठर पादयोः ॥८०॥

भा० तरुण कपाल रुचक और वलय तथा कोई नलक ऐसे पांच प्रकार की होतीहैं ॥ ७८ ॥ आंख कान नाक और गला इनमें तरुण होती हैं ॥ शिर शंख अर्थात मांथेपर की अस्थि और गाल इनमें तथा तालु कंधे और कमर इत्यादिक इनमें कपाल अस्थि होती हैं ॥७९॥ और दांतों में रुचक अस्थि होती हैं । हाथों में और दोनों पसलियों में तथा पीट में वक्षस्थल में उदर में पावों में ॥ ८० ॥

(जानुनितम्बांस गण्डतालु शङ्खशिरःसु कपालानि॥

(दशान्तस्तुरुचकाः शिरः शङ्ख कपालेषु तात्वंश प्रोथका दिषु ॥)

एतानि वलयानि स्यु र्नलकानि ब्रुवेऽधुना ॥ हस्त पादाङ्गुलितले कूर्च्चे च मणि बन्धके ॥ ८१ ॥

बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नालकानि तु ॥

[अथास्थ्नां प्रयोजन माह]

मांसान्यन्त्रानि बद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ॥

अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्य्यन्तिपतन्ति च ॥ ८२

भा० थे अस्थियां वलय हैं और अब नलकों को कहते हैं ॥ हाथ पैरों की अंगुलियों में और इन्ही के तलुवे में तथा पूर्वोक्त कूर्च में और पोंचेमें ॥ ८१ ॥ दोनों बाहु जंघा में भी नलक जानें ॥

[अस्थियों का प्रयोजन कहते हैं]

शिरा और स्नायु से बन्धी हुई मांस और आँतें अस्थियों को अवलंबन कर के न क्षीण होती हैं न गिरती हैं ॥ ८२ ॥

[अथ मज्जा स्वरूप माह]

अस्थि वन् स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद्घनः ॥

यः स्वेद वत् पृथग् भूतः समज्जे त्यभिधीयते ॥ ८३ ॥

[अथ मज्जा स्थान माह]

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरे स्थितः ॥

भा० अनन्तर मज्जाका स्वरूप कहते हैं ॥ जो अस्थि निज अग्नि से पकी हुई हैं उसका सार अर्थात् सत गाढ़ा होता है । उसमें से जो पसीने की भांनिंद अलग हुवा वह मज्जा ऐसा कहलाता है ॥ ८३ ॥

अनंतर मज्जा का स्थान कहते हैं ॥ स्थूलास्थि में भीतर विशेष करके मज्जा

[अनन्तर ग्रीवाके ऊपर प्राप्त अस्थियोंको कहते हैं]

(ग) ग्रीवायां नव ९ कण्ठनाड्यां चत्वारि ४ हन्वो रे केकम् २ दन्ताः द्वात्रिंशत् ३२ ॥ नासायां त्रीणि ३ ताल्वन्येकं १ गण्डयोरेकैकं २ कर्णयोरेकैकम् २ ॥ भ्रुवोरेकैकम् २ शिरसि षट् ६ एतान्यस्थीनि पञ्च विधानि भवन्ति ॥ तानि यथा ।

भा० (ग) गलेमें ९ नौ ॥ कंठ . नाडीमें चार ४ । जवाड़ों में एक एक १।१। दांत बत्तीस ३२ नाक में तीन ३ तालुमें एक १ गालों पर एक एक १।१। कानोंमें एक एक १।१। भवों में एक एक १।१। सिरमें छः ६ ये अस्थियां पांच प्रकार की होती हैं ॥ वोह जैसे ॥

तरुणानि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि ॥
वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचित् ॥७८
अक्षिकोश श्रुति घ्राण ग्रीवासु तरुणानि च ॥
शिरःशङ्ख कपोलेषु ताल्वंसं प्रोथ जानुनि ॥७९
कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचिकानि च ॥
पाणयोः पार्श्व युगे पृष्ठ वक्षे जठर पादयोः ॥८०॥

भा० तरुण कपाल रुचक और वलय तथा कोई नलक ऐसे पांच प्रकार की होती हैं ॥ ७८ ॥ आंख कान नाक और गला इनमें तरुण होती हैं ॥ शिर शंख अर्थात मांथेपरकी अस्थि और गाल इनमें तथा तालु कंधे और कमर इत्यादिक इनमें कपाल अस्थि होती हैं ॥७९॥ और दांतों में रुचक अस्थि होती हैं । हाथों में और दोनों पसलियों में तथा पीठ में वक्षस्थल में उदर में पावों में ॥ ८० ॥

(जानुनितम्बांस गण्डतालु शङ्खशिरःसु कपालानि॥

(दशनस्तु रुचकाः शिरः शङ्ख कपालेषु तालुंश प्रोथकादिषु ॥)

एतानि वलयानि स्यु र्नलकानि ब्रुवेऽधुना ॥ हस्त पादाङ्गुलि नले कूर्चे च मणि बन्धके ॥ ८१ ॥

बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नालकानि तु ॥

[अथास्थ्नां प्रयोजन माह]

मांसान्यन्त्राणि वद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ॥

अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्य्यन्तिपतंति च ॥ ८२

भा० ये अस्थियां वलय हैं और अब नलकों को कहते हैं ॥ हाथ पैरों की अंगुलियों में और इन्ही के नलुवे में तथा पूर्वोक्त कूर्चे में और पोंचेमें ॥ ८१ ॥ दोनों बाहु जंघा में भी नलक जानें ॥

[अस्थियों का प्रयोजन कहते हैं]

शिरा और स्नायु से बन्धी हुई मांस और आँतें अस्थियों को अवलंबन कर के नष्ट न होती हैं न गिरती हैं ॥ ८२ ॥

[अथ मज्जास्वरूप माह]

अस्थि वन् स्वाग्निना पक्व तस्य सारो भवेद्धनः ॥

यः स्वेद वत् पृथग् भूतः समज्जे त्यभिधीयते ॥ ८३ ॥

[अथ मज्जास्थान माह]

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरे स्थितः ॥

भा० अनन्तर मज्जाका स्वरूप कहते हैं ॥ जो अस्थि निज अग्नि से पकी हुई हैं उसका सार अर्थात् सत गाढ़ा होता है। उसमें से जो पसीने की मानिंद अलग हुवा वह मज्जा ऐसा कहलाता है ॥ ८३ ॥

अनंतर मज्जा का स्थान कहते हैं ॥ स्थूलास्थि में भीतर विशेष करके मज्जा

रहती है ॥ [अनन्तर शुक्र की उत्पत्ति कहते हैं]

अथ शुक्रस्योत्पत्तिमाह ।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ॥ मेदसो

ऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ ८४॥

(शुक्रस्येति वचनेन शुक्र सम्भव मुक्तम् ।)

(क) ननु मासेन रसः शुक्रो भवति स्त्रीणां चार्त्तवं भव

तीति । सुश्रुतस्यैव वचनेन रसादेव शुक्रस्योत्पत्ति रुच्य

ते । (ख) तदे तत्कथं सङ्गच्छते इदमेव सन्देहं दूरी

कर्त्तु माहारादेर्गतिं परिणामं चाह ॥

भा० रस से रक्त होता है उससे मांस मांस से मेद । मेदसे मज्जा तथा म

ज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होती है ॥ ८४ ॥

(शुक्र का इस वचन से शुक्र का सम्भव कहा गया)

(क) ननु कोई कहते हैं कि महीने में रससे शुक्र होता है ॥ और स्त्रियों का

आर्त्तव महीने में होता है ॥ इस प्रकार सुश्रुत के कहने से रससे ही शुक्र की

उत्पत्ति कही है ॥ (क)

(ख) तिस्से यह क्योंकर ठीक हो सक्ता है ॥ इसी सन्देह को दूर करने अर्थ

आहारादिकों की गति और परिणाम को कहते हैं ॥

यात्याशाय माहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः ॥ |

माधुर्य्यं फेन भावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥ ८५॥

(क) आहार इत्यत्र आह्रियते इत्याहारः ॥ अकर्त्तरि

च कारके) संज्ञाया मिति सूत्रेण कर्म्मणि घञ् ।)

स च षट् विधः । तथा च ।

प्रथम प्राण वायुके द्वारा भेजा हुवा आहार आमाशय में जाताहै। वह आहार छः रसोंसे युक्त भी फागसा मधुरता को प्राप्त होताहै ॥ ८५॥
(क) (अहार यहांपर आहरण किया जाताहै इस प्रकार आहारहै। अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां इस सूत्रसे कर्म्म में घञ् होताहै।)
वह आहार छः प्रकारका है। उस प्रकार कहाहै।

आहार्य्यं षट्विधं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यन्तथैवच॥
लेह्यं चोष्यं तथा पेयं तदुदाहरणानि तु॥८६॥
भोज्य मोदन सूपादि भक्ष्यं मोदक मण्डकम्॥
चर्व्यं चिपिट धान्यादि रसालादि तु लेह्यते॥८७॥
चोष्य माम्र फलेक्ष्वादि पीयते पानकं पयः॥

भा० आहार करनेके योग्य छः प्रकारके हैं भोज्य, भक्ष्य चर्व्य लेह्य चोष्य पेय। उसका उदाहरण कहते हैं॥ ८६॥ चावल दाल इत्यादि भोज्यहैं। और मोदकादिक भक्ष्यहैं तथा चर्व्य चिड़वा और लावा इत्यादिक तथा रसालादिक चाटे जातेहैं ॥ ८७॥ और आम्रफल गन्ना इत्यादिक चोष्यहैं अर्थात् चूसने योग्यहैं। और पानीका पीना तथा दूध पीया जाताहै॥

[आमाशय माह चरकः।]

नाभिस्तनान्तरे जन्तोराहुरामाशयं बुधा इति।

[अत्र विशेष माह।]

नाभेर्वितस्ति मात्रं च कण्ठ देशात् षडङ्गुलम्॥

भा० आमाशय को चरक कहतेहैं। पंडित नाभि और स्तनके बीच में आमाशय को कहते हैं॥ इसमें विशेष कहते हैं॥ नाभिसे वितस्त भर कंठ देश से छः अंगुल॥

उरस्तत्तद् विजानीयात् शेषे तु हृदयं मतम् ॥८८॥
उरो रक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः ॥
आमाशयस्तु तदधस्तदधो वह्न्याशयः इति ॥८९॥
(क) (प्राणानिलेरित इति। हृदयाधिष्ठानेन प्राणनाम्ना वायुना मुखं गतेनान्तः प्रवेशितः।)

[तथा च सुश्रुतः।]

भा० उसको उर जानना चाहिये और बाकी को हृदय कहते हैं ॥८८॥ उर को रक्ताशय कहते हैं। और उसके नीचे श्लेष्माशय कहाहै। उसके नीचे आमाशय और आमाशय के नीचे पक्वाशय इस प्रकार कहाहै ॥८९॥ (प्राणवायु से प्रेरित अर्थात् हृदय में रहनेवाले प्राण नाम मुख में प्राप्त वायु से भीतर कियागया। उस तरह पर सुश्रुत ने कहा है ॥

यो वायुः प्राणनामासौ मुखं गच्छति देहधृक् ॥
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥९०॥
(क) क्लेदननामा कफः क्लेदयति क्लेदनात्संहतं भिनत्ति च। [उक्तं च सुश्रुते।]
क्लेदनः क्लेदयत्यन्नं संहतं च भिनत्त्यन्न इति।
(क) स आहारः षड्रसोऽप्यामाशये माधुर्य्यं लभते आमाशयस्थस्य मधुरस्य कफस्य योगात् ॥ (क)

भा० शरीर को धारण करनेवाला जो प्राणनाम वायु मुख में जाता है। वह अन्न को भीतर करता है और प्राणोंको अवलंबन भी करता है ॥ ९० ॥ (क) क्लेदन नाम कफ आर्द्र करता है और कठिन अन्न को ढीला करता है।

[सुश्रुत में कहाहै]

क्लेदन अन्नको आर्द्र करताहै और कठिन हुवे को ढीला भी करताहै । (क)
(क) वह आहार षट्रस वाला भी आमाशय में मधुरता को प्राप्त होताहै क्यों कि आमाशय में रहनेवाले मधुर कफके योगसे । (क) ॥

[उक्तञ्च श्लेष्म स्वरूपम्]

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतल स्तथा ॥ तमो गुणाधिकः स्वादु र्विदग्धो लवणो भ वेदिति ॥ ८१ ॥

(क) फेण भावञ्च लभते जठरानल तेजसा ।

भा॰ कफ का स्वरूप कहा है । कफ सुफेद है भारी है तरहै पिच्छिल अर्थात् फिस्लापनवाला है तथा ठंडा है और तमोगुण अधिकवाला है तथा मधुर है और विदग्ध हुवा लवण होता है ॥ ८१ ॥ तथा, (क) जठराग्नि के तेज से फेन भाव को प्राप्त होता है । अर्थात् झागसा होजाता है ॥ (क) ॥

[यत आह वाग्भटः ।]

सन्धुक्षितः समानेन पचत्यामाशय स्थितम् ॥ औदर्य्योऽग्निर्यथा बाह्यः स्थालीस्थं तोयतण्डुल मिति ॥ ८२ ॥ (क) अथ स त्वाहारः प्राण वायुना प्रेरितस्ततः किञ्चित् १स्खलितः पाचका ख्य पित्तोष्मणा यत्पक्वोऽम्लरसो भवति ।

भा॰ जैसा कि वाग्भट ने कहा है । जैसे प्रज्वलित बाह्याग्नि अर्थात् लौकिकाग्नि बटुवे में के जल से संयुक्त चावलों को पकाता है । वैसे समान वायु से तेज किया हुवा जठराग्नि आमाशय में स्थित अन्न को पकाता है ॥ ८२ ॥ (क) अनन्तर वही आहार प्राणवायु से

प्रेरितहुवा थोडा २ गिरताहुवापाचकाख्य पित्तकी उष्मां से जो पकताहै वह खट्टा रसहोता है ॥ (क) ॥

उक्तंच। (ख) अथ पाचक पित्तेन विदग्धं चाम्लतां व्रजेत्। (ग) पाचक पित्तेन पाचक पित्तस्योष्मणा। ततः स एवाहारो नाभि मण्डला धिष्ठानेन समान नाम्ना वायुना प्रेरितो ग्रहणी मभि नीयते ॥

भा० कहाहै। (ख) अनन्तर पाचक पित्तसे विदग्धहुवा अम्लताको प्राप्तहोताहै ॥ (ग) पाचक पित्तसे अर्थात् पाचक पित्तकी उष्मां से। वहां वही आहार नाभि मण्डल में रहनेवाले समान नाम वायु से प्रेरितहुवा ग्रहणी में पहुंचाया जाता है ॥ (ग) ॥

[ग्रहणी लक्षण मोह।]

षष्ठी पित्त धरा नाम या कला परि कीर्तिता ॥ आम पक्वा शयां तस्यां ग्रहणी साऽभि धीयते ॥ ६३॥

(क) पित्त धरा पाचकाख्यं पित्तं यदग्न्याधिष्ठानं तद्धारयति तत्र ग्रहण्या मामाशय पक्वाशय मध्यवर्त्ति पाचकाख्य पित्ताधिष्ठाने नाग्निनाहारः पच्यते सकटूष्म भवति ॥

[ग्रहणी का लक्षण कहते हैं]

भा० जो छठी पित्त धरा नाम कला कही गई थी। वो उस आमाशय पक्वाशय में ग्रहणी ऐसी कही गई है ॥ ६३॥ (क) पित्तधरा जो अग्नि के अधिष्ठान पाचकनाम पित्तको धारण करती है ॥ उस ग्रहणी में पक्वाशय के बीच रहने वाला पाचकाख्य पित्त के अधिष्ठान अग्नि के द्वारा जो आहार पकता है वह कटूष्ण होता है ॥

तथाच। ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठे वन्हिना जायते

कटु रिति। अयमर्थः। (ग) आहारो ग्रहण्यां कोष्ठ वन्हिना ग्रहणी स्थित पाचक पित्तेन वन्हिना पच्यते पच्यमानः स ग्रहणी स्थितस्य कटुरसस्य यो गात् कटुर्भवति ॥ (घ) एतदाहार पाके विशेष माह। शरीरं पाञ्च भौतिकम्। तत्र पञ्चसु भूतेषु पञ्चाग्नयस्तिष्ठन्ति।

भा० (ख) वैसेही। ग्रहणी में कोष्ठाग्नि से जो पकता है वह कटु हो ता है। (ग) यह अर्थ है कि आहार ग्रहणी में कोष्ठाग्नि से अ-र्थात् ग्रहणी में रहनेवाले पाचक पित्त रूपी वन्हीसे पकताहै। वह पकाहुवा ग्रहणी में रहने वाले कटुरस के योग से कटु होताहै॥ (घ) इस आहार के पाक विशेष कहते हैं। शरीर पंच भूतसे बना हुवा है। उन् पांचों भूतों में पांच अग्नि रहती हैं।

उक्तं चरकेन भौमाप्याग्नेय वायव्या पञ्चोष्माणः सनाभसाः। पञ्चाहार गुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवा दीन् पचन्त्यनु। (क) अत्रोष्म पदेनाग्नि रुच्यते।

आहारोऽपि पाञ्च भौतिकः तत्र पाचक पित्तस्थे नाग्निनोत्तेजितेन शरीर वर्त्तिना भूभागाग्नि नाहार वर्त्ति भूभागः पच्यते। पक्वो भूभागः स्वकीयान् गु-णानभि वर्द्धयति। एवं

भा० चरक ने कहा है। भूमिसंबन्धि जल संबन्धि अग्निसंबन्धि वायु-सम्बन्धि और आकाश सम्बन्धि येह पांच उष्मा हैं॥ पार्थिवादिक अपने २ पांच आहार गुणों को पकाते हैं॥ ६४॥ (क) यहां पर उष्मा शब्द से अग्नि कही है। पकाहुवा पृथ्वीका अंश अपने गुणों को बढ़ाता है इस प्रकार जलादिक के भाग भी पकते हैं।

जलादि भागा अपि पच्यन्ते ।

[तथाच सुश्रुते]

पञ्च भूतात्मके देहे आहारः पाञ्चभौतिकः ॥
विपक्वः पञ्चधा सम्यग् गुणान् स्वानभिवर्द्धये
दिति ॥ ६५ ॥

(क) गुण शब्देनात्र गुणिनः पृथिव्यादय उच्यन्ते । तेन गुणान् शरीर वर्त्तिनः पार्थिवादीन् भागानभिव र्द्धयेदित्यर्थः ।

भा० वैसेही सुश्रुत में कहा है । पंच भूत वाले शरीर में पंच भूत से बनाहुवा आहार पकाहुवा पांच प्रकार अच्छीतरह से अपने अपने गुणों को बढ़ाता है ॥ ६५ ॥ (क) गुणशब्द से यहां पर गुणवाले पृथिव्यादिक कहे गये हैं । उससे गुणों को अर्थात् शरीर में रहनेवाले पार्थिवादि भागों को बढ़ाता है ॥

(ख) एव महोरात्रेण पक्व आहारो मिष्टः पटुश्च मधुरो भवति । अम्लस्त्वम्लो भवति । (ग) कटु तिक्तः कषायश्च कटुर्भवति । उक्तञ्च,

मिष्टः पटुश्च मधुर मम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥ क
टु तिक्त कषायाणां विपाको जायते कटुरिति । ६६॥

भा० (ख) इस प्रकार दिन रात में पकाहुवा मधुर और पटु अर्थात् लवण आहार मधुर होता है । तथा अम्ल अर्थात् खट्टा आहार पककर के खट्टा ही होता है ॥ (ग) और कटु अर्थात् चरपरा तथा तीता और कसैले पककर कटु होता है ॥

कहाहै। मधुर लवण रसका पकके मधुर होताहै और कटु तिक्त कषायोंका विपाक प्रायः कटु होता है ॥ ९६ ॥

(क) एवं विपक्वस्याहारस्य सारो निगदितो रसः शेषो ग्रहणीस्थो मलद्रवः मलद्रवस्य जलभागः शिराभिर्नीतो मूत्रं भवति। उक्तञ्च।

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः॥
शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तिं मूत्रत्वमाप्नुयात्॥ ९७॥
शेषं किट्टञ्च यत्तस्य तत्पुरीषं निगद्यते ॥ समानवायुना नीतन्तत्तिष्ठति मलाशये ॥ ९८ ॥

भा० इस प्रकार पकेहुवे आहारका सार रस कहा गया है ॥ वाकी ग्रहणी में रहनेवाला मैला अरक उस मैले अरक का जलका भाग शिराओंके द्वारा वस्ति अर्थात् पेडूमें पहुंचा हुवा मूत्र होता है (क) कहाहै। आहारका सार रस होताहै और सार हीन मल द्रव कहलाता है। शिराओंके द्वारा वह जल वस्ति में पहुंचा मूत्रको प्राप्त होता है ॥ ॥ ९७ ॥ और वाकी उसका जो किट्टहै वह मल कहलाता है ॥ समान वायु के द्वारा पहुंचाया गया वह मलाशय में रहताहै ॥ ९८ ॥

(ख) तत्र मलाशये तापान वायुना प्रेरितं मूत्रं मेढ्रभगमार्गेण। पुरीषं गुदमार्गेण शरीरा द्वहिर्य्याति।
उक्तञ्च। मूत्रञ्चो पस्थमार्गेण पुरीषं गुदमार्गतः॥
अपानवायुना क्षिप्तं वहिर्यातिं शरीरतः॥ ९९॥

भा० उस मलाशय में अपान वायु से प्रेरणा किया हुवा मूत्र लिंग और भग के मार्ग से तथा गुद मार्ग से मल शरीर के वाहर निकलताहै ॥ कहाहै ॥ लिंग मार्ग से मूत्र और गुद मार्ग से मल अपानवायु से फेंका हुवा शरीर से वाहर निकलता है ॥ ९९ ॥

(क) उपस्थः शिश्नो भगश्च । रसस्तु समान वायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रसस्य स्थानं हृदयं गत्वा तेन सह मिश्रितो भवति । उक्तञ्च ।

रसस्तु हृदयं याति समान मरुतेरितः ॥ स तु व्या
ने न विक्षिप्तः सर्वान् धातून् विवर्द्धयेत् ॥ ९९ ॥
केदारेषु यथा कुल्याः पुष्णन्ति विविधौषधीः ॥
तथा कलेवरे धातून् सर्वान् वर्द्धयते रसः ॥ १०० ॥

भा० (क) उपस्थ । लिंग और भग । रस समान वायु से प्रेरण किया हुवा धमनी मार्गसे शरीर का आरंभकरनेवाले रसके स्थान हृदय में जाकर उसके साथ मिश्रित होता है ॥ समान वायु से प्रेरित हुवा रस हृदय में जाता है । वह रस व्यानवायु से फेंका गया सब धातुओं को बढ़ाता है ॥ ९९ ॥ जैसे खेतों में नाना प्रकार की ओषधियों को नहरें पुष्ट करती हैं । वैसेही शरीर में सब धातुओं को रस बढ़ाता है ॥ १०० ॥

(रसस्तु तत्र तत्र त्रिधा विभज्यते ।)

उक्तञ्च चरके । स्थूलः सूक्ष्मस्तन्मलश्च तत्र तत्र त्रिधा रसः ॥ स्वंस्थूलोऽंशः परं सूक्ष्मस्तन्मलो याति तन्मलम् ॥ ९१ ॥

(क) अयमर्थः । स्थूलोऽंशः स्वं याति यथास्थितस्तिष्ठति सूक्ष्मस्त्वंशः परं द्वितीयं धातुं याति तन्मलः रसादिमलः तन्मलं शरीरारम्भकं तत्तज्जातमलं यातीत्यर्थः ।

भा० रसको उन उन स्थानोंमें तीन प्रकारसे विभाग किया जाताहै ॥ चरकमें कहाहै । स्थूल सूक्ष्म और उनका मल इस प्रकार उन उन स्थानोंमें रस तीन प्रकार होता है । आप स्थूल अंश रहता है और सूक्ष्म अंश दूसरी धातुमें जाताहै तथा उन उन धातुवोंके मल शरीरके आरम्भक कफ पित्त प्रस्वेदादि होजाते हैं ॥ २०२ ॥

(क) यह अर्थहै । स्थूल अंश आप होजाताहै अर्थात् यथा रि त रहताहै । और सूक्ष्म अंश दूसरी धातु में जाता है । तथा उनका मल अर्थात् रसादियों का मल उनका मल आर्थात् शरीरके आरम्भक उन २ धातुवोंका मल होजाता है ॥

यथा लौकिकाग्निनेक्षुरसः पच्यते तथा शरीरारम्भकस्य रसस्याग्निनाहाररसः पच्यते पच्यमानः स पञ्चाहोरात्रान् सार्द्धदण्डमेकञ्च यावत् प्राक्तन रसधातावेव तिष्ठति । [उक्तं च सुश्रुते ।

(ख) स खलु रसः त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदशकला एकैकस्मिन्धातावुपतिष्ठते । अत्र कलानां विंशतिः मुहूर्तः स च दण्डद्वयात्मकः ।

तथा च भोजः । धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो रसः ॥ अहोरात्रात् स्वयं पञ्च सार्द्धदण्डं च तिष्ठति ॥ ॥२०२॥ (क) प्रत्येकमेकैकस्मिन्नित्यर्थः ।] ततो यथा पच्यमानादिक्षुरसान्मलो निर्गच्छति । तथा

भा० जैसे लौकिकाग्नि से गन्नेका रस पकाया जाता है वैसे शरीरके आरम्भक रसकी अग्निसे आहारका रस पकाया जाताहै । पकाहुवा वह रस पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक पहली धातुमें ही रहता है ।

पच्यमानादाहाररसान्मलो निर्गच्छति सः कफः।

भा॰ सुश्रुत में कहा है। (ख) वह रस तीन तीन कला सहस्र और पंन्द्रह कला एक एक धातु में रहता है। यहां पर बीस कला का मुहूर्त होता है। वह दो घड़ी का होता है। उस तरह पर भोजने कहा है। रस आप क्रमके साथ मज्जा तक हरएक रसादि धातु में पांच दिन डेढ़ घड़ी रहता है ॥ १०२॥

(क) प्रत्येक अर्थात् एक एक में। जैसे उस पके हुवे गन्ने के रस से मैल निकलता है। वैसेही पके हुवे आहार के रस से मल निकलता है। वह कफ है।

[उक्तं च सुश्रुते।]

कफपित्तमलाःखेषु प्रस्वेदो नखरोम च ॥ नेत्रविट्चक्षुषः स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः॥ ३॥

(क) खेषु मलः कर्णादि स्रोतोमलः स च कफः प्राणानिल प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकं क्लेदनाख्यं कफं गत्वा पुष्णाति ततः सारभूतस्याहाररसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागः शरीरारम्भकं रसं पोषयति सकल शरीराधिष्ठानेन व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् पोषण स्नेहन जठरानलोष्म कृतसन्ताप निवारणादिभिर्गुणैः सकलशरीरं पुष्णाति ततः स्थूलो भागः प्राणवायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रक्तस्य स्थानं गत्वा यकृत्प्लीहरूपं गत्वा तेन सह मिलितो भवति।

भा॰ कहा है सुश्रुत में। कफ पित्त और कर्णादि स्रोतों में के मल तथा पसीना नख रोम और नेत्र का मल तथा नेत्र का स्नेह ये क्रमसे

धातुवों के मल हैं ॥ १०३ ॥ (क) स्रेषु मलाः अर्थात् कर्णादि स्रोतों के मल। वह पूर्वोक्त रस धातु का मल कफ प्राण वायु से प्रेरित हुवा धमनी नाड़ी के मार्ग से जाकर शरीर का आरम्भक क्लेद नामक कफ को पुष्ट करता है। उसके अनन्तर उस सारभूत आहार के दो भाग होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म। उसमें सूक्ष्म भाग शरीर के आरम्भक रस को पुष्ट करता है। और सम्पूर्ण शरीर में रहनेवाले व्यान वायु के द्वारा प्रेरित तथा धमनियों के द्वारा संचार करता हुवा पोषण स्नेहन और जठराग्नि की उष्मा से किये गये सन्ताप के निवारणादि गुणों से संपूर्ण शरीर पुष्ट होता है। और उसका स्थूल भाग प्राणवायु से प्रेरित हुवा धमनी मार्ग से शरीर का आरंभक रक्त स्थान में जाकर अर्थात् यकृत प्लीह रूप में जाकर उसके साथ मिल जाता है ॥ (क)।

(ख) ततः प्राक्तनस्य रक्तस्याग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात्सार्द्धदण्डञ्च यावत् प्राक्तनरक्तधातावेव तिष्ठति। (ग) ततो यथाग्निना पुनःपुनः पच्यमानादिक्षु विकारं वारं वारं मलं निर्गच्छति। (घ) तथा पुनः पुनः पच्यमानादाहाररसात् प्रतिवारं मलं निर्गच्छति। (ङ) तत्र रक्ताग्निना पच्यमानान्मलं पित्तं निर्गच्छति।

भा० उसके अनन्तर पहिली रक्ताग्नि के द्वारा फिर से पका हुवा पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक पहिली रक्त धातु में ही रहता है (ख) ॥ (ग) जैसे उस बार बार पकाने से गन्ने का विकार बार बार मैल निकलता है ॥ (घ) वैसे फिर फिर से पके हुवे आहार रस से प्रतिवार मल निकलता है ॥
(ङ) उस मे रक्ताग्नि के द्वारा पके हुवे रस से मल पित्त निकलता है ॥ (ङ) ॥

(च) तच्च पित्त समान वायुना प्रेरितं धमनी मार्गेण शरीरारम्भकं पाचकाख्यं गत्वा पुष्णाति।
(छ) ततः सारभूतस्याहार रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मोभागो रञ्जकाग्निना पित्तेन स रक्तीकृतः। (ज) शरीरारम्भकं रक्तं व्यान वायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् सकल शरीर गतानि रुधिराणि पुष्णाति। (झ) ततः स्थूलो भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः स्थिराणि च शरीरारम्भकानि मांसानि याति।
(ञ) ततो मांसाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चा होरात्रान् सार्द्ध दण्डञ्च यावन्मांसेष्वेव तिष्ठति। ततः पच्यमानात्तस्मान्मलं निर्गच्छति

भा० (च) वह पित्त समान वायु से प्रेरित हुवा धमनी मार्गके द्वारा जाकर शरीरका आरंभक पाचकनाम पित्तको पुष्ट करताहै।
(छ) अनन्तर उस सारभूत आहार रसके दो भाग होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म। उसमें वह सूक्ष्म भाग रञ्जकाग्नि पित्तसे लाल कियागया। (ज) शरीरका आरंभक रक्त व्यानवायु के द्वारा प्रेरित और धमनीयोंके द्वारा सञ्चार करताहुवा सम्पूर्ण शरीर में प्राप्तहुवे रुधिरको पुष्ट करता है।
(झ) तदनन्तर उसका स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा धमनी नाड़ियों के द्वारा शरीरके आरम्भक मांसमें जाता है। (ञ) उस के अनन्तर मांसकी अग्नि से पुनः पका हुवा पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक मांस मे ही रहता है॥

(ठ) तद्व्यान वायुना क्षिप्रं कर्णावागत्य कर्णविड्भवति । (ड) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः । (ढ) स्थूलः सूक्ष्मश्च ततः सूक्ष्मो भागो मांसानि पुष्णाति । (ण) ततः स्थूलोभागो व्यान वायुना प्रेरितो धमनीभिः शरीरारम्भकस्य मेदसः स्थानमुदरं याति । (त) ततो मेदसोऽग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धं दण्डं च यावन्मेदस्येव तिष्ठति ।

भा० अनन्तर पकेहुवे उससे मल निकलता है ॥ (ट) ॥
(ठ) वह मल व्यानवायु के द्वारा शीघ्र कानोंमे जाकर कानो का मैल होजाताहै ॥ (ड) और उस सारभूत रसके दो भाग होजाते हैं । (ढ) स्थूल और सूक्ष्म । उसका सूक्ष्म भाग मांस को पुष्टकरता है । (ण) और स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा धमनीयोंके द्वारा शरीरका आरम्भक मेदका स्थान उदर में जाता है ॥
(त) उसके अनन्तर मेदकी अग्नि से फिर पका हुवा पांचदिन और डेढ़ घडी तक मेदमेंही रहताहै ॥

(थ) ततः पच्यमानात् तस्मान्मलो निर्गच्छति प्रस्वेदरूपः । (द) स च शीतः स्रोतस्येव तिष्ठति शरीरोष्मणा तप्तश्चेत्तदा व्यान वायुना प्रेरितः शिरा मार्गैः लोम कूपेभ्यो वहिर्याति ॥ (ध) जिव्हादन्तकक्षामेढ्रादि मलञ्च मेदो मलमित्येके ।

भा० अनंतर उस पकेहुवे से प्रस्वेद अर्थात् पसीना रूप मल निकलताहै । (थ) ॥ (द) वह प्रस्वेद ठंढा हुवा स्रोतों ही में रहता है । जब शरीर की उष्मा से गरम होता है तब व्यानवायुसे प्रेरित

हुवा नसोंके मार्गके द्वारा रोम कूपसे बाहर निकलता है ॥
(ध) जीभ दांत कांख लिंग इत्यादिकों का मल मेदका मल है ऐसा कोई कहते हैं ॥

(न) ततः सार भूत रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागः मेदः पुष्णाति उदरे तिष्ठन् व्यान वायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकाण्य स्थीनि याति ।
(प) ततोऽस्थ्यग्निना पुनः पच्यमानं पञ्चाहोरा त्रात्सार्द्ध दण्डञ्च यावदस्थिष्वेव तिष्ठति ॥

(भा० (न) उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म। उसमें सूक्ष्मभाग मेदको पुष्ट करता है। और स्थूल भाग उदर में रह ताहुवा व्यान वायुके द्वारा प्रेरित हुवा धमनी नाडियों से शरीर के आर म्भक अस्थियों में जाता है । (प) उसके अनंतर अस्थिकी अग्नि के द्वारा फिरसे पकाहुवा पांच दिन और डेढ़ दंड तक अस्थि में ही रह ताहै । (फ) अनन्तर पकेहुवे उससे मल निकलता है ॥

(फ) ततः पच्यमानात् तस्मात् मलो निर्गच्छति ।
(ब) स च व्यानवायुना प्रेरितः शिराभिः मार्गेण गत्वाङ्गुलिषु नखः स्तनौ लोमानि भवन्ति ।
(भ) ततः सार भूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो अस्थीनि पुष्णाति ततः स्थूल भागो व्यानवायुना प्रेरितः स्रोतो मार्गे मज्जा स्थानानि: स्थूलास्थ्य भ्यन्तराणि याति ॥

भा० (व) वह मल व्यानवायु से प्रेरित ज़ुवा नसोंके मार्ग से आकर अंगुलियों में नख स्तन और रोम होजाते है। (भ) और उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म। उसमें सूक्ष्म भाग अस्थियोंको पुष्ट करता है। और उसका स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित ज़ुवा स्रोत मार्ग से मज्जास्थान स्थूल अस्थिके भीतर जाता है॥

(म) अनंतर मज्जाकी अग्निसे फिर पकाज़ुवा पांचदिन और डेढ़ दंड तक मज्जामें ही रहता है अनंतर पकेज़ुवे उससे मल निकलता है।

(य) वह व्यान वायु से प्रेरित ज़ुवा नसोंके मार्ग से आंखों में आकर नेत्र का मल और नेत्र का स्नेह हो जाता है॥

(र) तदनन्तर उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं॥

(म) ततो मज्जाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्ध दण्डञ्च यावन्मज्जन्येव तिष्ठति ततः पच्यमानात्तस्मान्मलं निर्गच्छति। (य) तच्च व्यानवायुना प्रेरितं शिरामार्गे नयनयोरागत्य नेत्रविट् चक्षुः स्नेहश्च भवति। (र) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः॥ (ल) स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो मज्जानं पुष्णाति ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितः धमनीभिः शिराभिश्च शुक्रस्य स्थानं सकलं शरीरं गत्वा शरीरारम्भकेण शुक्रेण सह मिश्रितो भवति।

भा० (ल०) स्थूल और सूक्ष्म। उसमें सूक्ष्म भाग मज्जाको पुष्ट करता है। और स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित ज़ुवा धमनी नाड़ियों के द्वारा शुक्र का स्थान सम्पूर्ण शरीर में जाकर शरीर के आरम्भक शुक्र के साथ मिलजाता है॥

(ब) ततः शुक्राग्निना पुनः पच्यते पच्यमाने तस्मिन्मलं नास्ति। (श) सहि सहस्रधा ध्मात सुवर्णवत् । उक्तञ्च । (ष) ।

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु।
षट्सु धातुषु जायन्ते मलानि मुनयो जगुः॥१०४
यथा सहस्रधा ध्माते न मलं किल काञ्चने॥
तथा रसे मुहुः पक्के न मलं शुक्रताङ्गते ॥१०५॥

भा॰ तदनन्तर शुक्र की अग्निसे फिर पकते हैं ॥ उस पकेहुवे में मल नहीं होता ॥ (ब) ॥ (श) वह हज़ार प्रकार आँच दिये हुवे सोने के मानिंद होता है ॥ (ष) कहाहै ।
अपनी अग्नि से पके हुवे छः रसादिकों में मल होता है इसवास्ते छः धातुवों में मल उत्पन्न होता है ऐसा मुनिलोग कहते हैं ॥ १०४॥
(जैसे हज़ार आँच दियेगये सोनेमें निश्चय करके मैल नहीं रहता । वैसेही वार वार पक के शुक्रत्वको प्राप्तहुवे रस में मल नहीं होता । ॥ १०५ ॥

ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च। (क) ॥ तत्र सूक्ष्मःस्नेहभागः ओजस्तस्य लक्षणमाह ।

ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्।
सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम् ॥१०६

भा॰ उसके अनंतर सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म । (क) ॥ उसमें सूक्ष्म स्नेह भाग ओज होता है उसका लक्षण कहते हैं ॥

ओज सब शरीर में रहनेवाला स्निग्ध अर्थात् सचिक्कण और शीत स्थिर और श्वेत तथा सोमात्मक अर्थात् सोमस्वरूप और शरीर के बल तथा पुष्टि को करनेवाला कहागया है ॥ १०६ ॥

(बलं चेष्टापाटवम् ।) [तथाच]

चेष्टासु पाटवं यत्तु बलम् तदभिधीयते ॥

यत्तु सुश्रुते रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेज स्तत्खलुत्तदोजस्तदेव बलमिति तेजस्तेजद्रवः। (ख) अत्रायमभिप्रायः, यस्माद्रसादोजो भवति स रसः सर्वधातुस्थानगतत्वात्तद्धातुवन्मन्यत इति सर्व धातूनां स्नेहमोजः। (ग)

भा० बल अर्थात् चेष्टा सामर्थ्य । वैसे कहा है । जो चेष्टा में पटुताहै उसको बल ऐसा कहते हैं ॥ जोकि सुश्रुत में कहा है । शुक्र पर्यंत रसादि धातुवों का जो शुद्ध तेज है वह ओज और वही बल है। तेज अर्थात् तेजका पानी । (ख) ॥ यहां पर यह अभिप्राय है कि जिस रससे ओज होता है वह रस सब धातुवों में प्राप्त होने से उन् २ धातुवों के मानिंद समझा गया है (ग) ॥

क्षीरे घृतमिव तदेव बलमिति। (घ) ॥ तत्कार्य कारणयोरभेदोपचारात । (ङ) ॥ अभेदकथनञ्च चिकित्सैक्यार्थम् । [अन्यच्च]

गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा ॥

भा० जैसे दूध में घृत, वही बल है (घ) ॥ उन के कार्य और कारणों के भेद न होनेसे (ङ) ॥ यहांपर अभेद कथन चिकित्सा की ए कार्यता है ॥ [औरभी]

भारी शीन मृदु स्निग्ध सान्द्र अर्थात गाढा मधुर स्थिर स्वच्छ पिच्छिल अर्थात् फिसलहटपन और सूक्ष्म ऐसे दशगुण वाला ओज कहा गया है ॥ १०७ ॥

प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ १०७॥

[चरके तु]

अष्टबिन्दु प्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम् ॥ अ
ग्निसोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितन्तु तत् ॥ १०८॥

[वाग्भटश्च]

ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ॥
हृदयस्थमपि व्यापि देह स्थिति निबन्धनम् ॥ १०९॥
यस्य प्रवृद्धो देहस्य तुष्टि पुष्टि बलोदयाः ॥ य
न्नाशे नियतो नाशो यस्मिं स्तिष्ठति जीवनम् ॥११०॥

भा० चरक में तौ। वह आठ बून्द प्रमाण और थोड़ा रक्त पीलाई के सहित है। क्यों कि अग्नि और सोम स्वरूप होनेसे वह ओज दुरंग वर्णन किया गया है ॥ १०८ ॥ वागभट नें भी कहा है ॥
शुक्र पर्यन्त रसादि धातुवोंका जो उत्कृष्ट तेज है उसको ओज कहा है। हृदय में रहताहुवा भी व्याप्त होकर देहकी स्थिति का कारण है ॥ ॥ २०९ ॥ जिसके बढ़ने में देहको तुष्टि और पुष्टि तथा बल इनका उदय होता है ॥ तथा जिसके नाशमें अवश्य नाश होजाता है और जिसकेरहने में जीवन होता है ॥ ११० ॥

निष्पद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः ॥
उत्साह प्रतिभा धैर्य्य लावण्य सुकुमारताः ॥१११

न्वार्त्तवं शुक्रञ्च भवति। उक्तञ्च सुश्रुते।
(ख) एवं मासेन रसः शुक्रो भवति।

भा० जिससे कि देह में रहनेवाले नाना प्रकारके भाव अर्थात् धर्म्म विशेष ये उत्साह कान्ति धैर्य्य सुंदरता और सुकुमारता इत्यादिक प्राप्त होते हैं ॥ १११ ॥ (क) और उसका स्थूलभाग रस महीने भरमें पुरुष के शुक्र और औरतों के आर्तव अर्थात् मासिक धर्म्म और शुक्र भी होता है ॥ (ख) जैसे कि श्रुत में कहा है।)
इस तरह पर रस महीने में शुक्र होता है ॥

(ग) स्त्रीणाञ्चेति चकारात् स्त्रीणामपि शुक्रं भवति। अतएवोक्तं सुश्रुते।

योषितोऽपि स्रवत्येव शुक्रं पुंसः समागमे ॥
तत्र गर्भस्य किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते॥११२॥

(क) गर्भस्य शुद्धस्य विकृतस्य तु गर्भस्य कारणं तदपि भवति ॥ [यत उक्तम्]

यदा नार्य्यावुपेयतां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन ॥ मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योऽन्यमनस्थि स्तत्र जायतइति ११३

(ख) एतेन स्त्रीणां सप्तमो धातुरार्त्तवं शुक्र मष्टममिति बोधितम् ॥ आम्नायाधिक्यवत्।

भा० (ग) और स्त्रियों का भी इस चकारसे स्त्रियोंके भी शुक्र होता है ॥ इसीवास्ते सुश्रुत में कहाहै ॥ पुरुष के साथ संभोग करने में औरतें भी शुक्र को छोड़ती हैं ॥ और उसमें थोड़े से गर्भको करती हैं इसवास्ते विचार नहीं किया गयाहै ॥ ११२ ॥
(क) शुद्ध गर्भका और विकृत गर्भका तो कारण वहभी होताहै अर्थात् शुक्र भी होताहै ॥ [जैसा कि कहा है]
जब औरतें मदान्ध हुई किसी न किसी यत्न से आपसमें मैथुन करतीहैं

तब आपसमें शुक्र छोड़ती हैं उसमें अस्थि रहित सन्तान उत्पन्न होती है। ॥ ११३ ॥ (क) इस्से औरतोंकी सातवीं धातु आर्तव है आठवीं धातु शुक्र कही गई है ॥ आशय की अधिकता के मानिंद अर्थात् औरतों के जैसे एक गर्भाशय अधिक है वैसेही शुक्रभी आठवींधातु अधिक है ॥

स्त्रीणां गर्भोपयोगि स्यादार्तवं सर्व सम्मतम् ॥
तासामपि बलं वर्णं शुक्रं पुष्टिं करोति हि ॥११४

(क) एवं रस एव केदार कुल्या न्यायेन सर्वान् धातून् पूरयन् मासेन नव दण्डोत्तरेण शुक्रमार्त्तवं भवतीति सिद्धान्तः ॥ (ख) एवं सति रसाद्रक्तमिति सङ्गतमेव ॥

भा० स्त्रियों के गर्भका उपयोगि आर्तवहै यह सबका सम्मत है। उनका शुक्र बल वर्ण और पुष्टि को करता है ॥ ११४ ॥
(क) इस प्रकार रसही रंदन और कुल्या अर्थात् पानी जानेकी छोटी नहर उसके न्यायसे सब धातुवों को भरता हुवा एक महीना और नौ दंड में शुक्र और आर्तव होता है यह सिद्धान्त है ॥
(ख) इस प्रकार होने में जो रससे रक्त ऐसा कहा गया ठीक है ॥

(ग) ततो मांसन्ततो रक्तोत्पत्ते रनन्तरं मांसं जायते रसादेवेत्यर्थः ॥ (घ) मांसान्मेदः प्रजायत इति। मांसादनन्तरं मेदः प्रजायते रसादेवेत्यर्थः ॥
(ङ) मेदसोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः ॥

भा० (ग) ततो मांसं। अर्थात् रक्तोत्पत्ति के अनन्तर मांस होता है ॥ अर्थात् रसही से होता है। (घ) मांसान्मेदः प्रजायत इति। अर्थात् रसही से मांस के अनन्तर मेद उत्पन्न होता है ॥
(ङ) और मेदके अनन्तर रसही से अस्थि होती है ॥

(ङ) मेद सोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः। (च) एवं ततो मज्जा अग्रे शुद्ध शुक्रं सम्भवतीत्यर्थः।

(छ) रसः शरीरे त्रिधा सञ्चरति। तथा चोक्तम्

रसः शरीरे शब्दार्चिर्जलसन्तानवत् त्रिधा॥
सञ्चरत्यनुरूपोऽयं नित्यमेवहि देहिनाम्॥

भा० (च) इसी प्रकार उसके अनन्तर मज्जा और आगे शुद्ध शुक्र उत्पन्न होता है। (छ) शरीर में रस तीन प्रकार से संचार करता है। वैसे कहा है। प्राणियों के शरीर में रस शब्द सन्तान और अग्नि शिखा सन्तान तथा जल सन्तान के मानिन्द तीन प्रकार वैसेहुवा नित्यही पुरुषोंके संचार करता है।

अस्यायमभिप्रायः। (क) पुरुषास्तीक्ष्णाग्नयो मध्यमाग्नयो मन्दाग्नयश्च भवन्ति। (ख) तत्र ती क्ष्णाग्नीनां स रसः शब्दसन्तानवत् शीघ्रं सञ्चरति। (ग) मध्यमाग्नीना मर्चिः सन्तानवन्मध्य वेगेन चर ति मन्दाग्नीनां जलसन्तानवन्मन्दं चरति।

भा० इसका यह अभिप्रायहै कि। (क) पुरुष तीक्ष्णाग्नि मध्य माग्नि मन्दाग्नि होते हैं। (ख) उसमें तीक्ष्ण अग्निवाले पुरुषों का वह रस शब्द सन्तान के मानिंद शीघ्र संचार करता है। (ग) और मध्यमाग्नि वाले पुरुषोंका अग्नि ज्वालाकी सन्तानके मानिंद मध्य वेगसे घूमता है। तथा मन्दाग्नियों का जल सन्तान के मानिन्द धीरे चलता है।

(घ) तेन मासेन रसात् शुक्रं भवतीति। (ङ) यदु क्तम्। तन्मध्यवेगेन चरति। (च) मन्दाग्नीनां ज लसन्तानवन्मन्दं चरति तेन मासेन रसः शुक्रं

भवतीति यदुक्तं तन्मध्यमाग्नीनधिकृत्योक्तम् ॥ (छ) दीप्ताग्नीनान्तु रसः किञ्चिन्न्यूनेन मासेन शुक्रं भवति। (ज) मन्दाग्नेः किञ्चिदधिकेन मासेनेति सिद्धान्तः ॥ (झ) तर्हि वाजीकरणानामौषधीनां किं प्रयोजनमित्याह ॥

भा० तिस्से महीनेमें रससे शुक्र होताहै ॥ (ङ) जो कहा कि वह मध्यवेगसे चलताहै ॥ (च) मन्दाग्नियोंका जल सन्तानके मानिंद मन्द चलताहै ॥ उस्से महीनेमें रस शुक्र होताहै ॥ जो कहा वह मध्यमाग्नियोंको अधिकार करके कहाहै ॥
(छ) तीक्ष्णाग्नियोंका रस कुछ कम महीनेमें शुक्र होताहै ॥
(ज) और मन्दाग्नियोंका कुछ ऊपर महीनेमें शुक्र होताहै यह सिद्धान्तहै। (झ) तो वाजीकरण औषधियोंका क्या प्रयोजनहै। इस्से कहतेहैं ॥ (ञ) ॥

वाजीकरिण्यः औषध्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात् ॥
(ट) विरेचयन्ति ताः शुक्रं विरेकिद्रव्यवन्नृणाम्। वाजीकरिण्यः याभिः औषधीभिः पुरुषः शुक्राधिक्यात् स्त्रीषु वाजीवत् सामर्थ्यं प्राप्नोति ताः वाजीकरिण्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात् ॥
(ड) तत्र काश्चिदौषध्यः स्वप्रभावाधिक्यात्।

भा० वाजीकरण औषधियां अपने प्रभाव और गुणकी अधिकता से वो औषधियां विरेचन औषधियोंके मानिंद पुरुषके शुक्रको निकाल देहैं। (ट) वाजीकरिण्यः। जिन औषधियों से पुरुष शुक्र की अधिकतासे औरतों में घोडेके मानिन्द सामर्थ्य को प्राप्त होता

है। (ठ) वो वाजीकरणाय अपने प्रभाव और गुणकी अधिकता से ।
(ड) अर्थात् उनमें कोई औषधियां अपने प्रभावकी अधिकता से ।

(ढ) काश्चित् स्वगुणाधिक्यात्। काश्चित् स्व प्रभाव गुणाधिक्यात्। (ण) तत्र सङ्कल्प पादलेप विशिष्ट कान्तास्पर्शादयः स्वप्रभावाधिक्यात् शुक्रं विरेचयंति।
(त) घृत क्षीरादयः स्व गुणाधिक्यात्।
(थ) स्निग्धत्वादाधिक्यात् माषादयः स्व प्रभाव स्निग्धत्वादि गुणाधिक्यात् ॥

भा० (ढ) और कोई अपने गुणकी अधिकता से तथा कोई दोनोंकी अधिकता से (ण) शुक्र को निकालती हैं। सजालू का पैर में लेप कियाहुवा कान्ताका आलिंगनादिक अपने प्रभावकी अधिकतासे शुक्र को विरेचन करताहै ॥ (त) घृत दुग्धादिक अपने गुणकी अधिकता से। (थ) और चिकनेपन की अधिकता से माषादिक अर्थात् उड़द वगैरह अपने प्रभाव और स्निग्धत्वादि गुणों की अधिकता से ॥

(द) वाजीकरणाय इति बहुवचन माद्यर्थानुवर्त्तनम्।
(ध) बल्यं बृंहणं जीवनीय गणादयः तद्वद्बोद्धव्याः।
(न) विरेचयन्ति स्वप्रभाव गुणाधिक्यात्।
(प) शीघ्रमेवं रसाद्युत्पादन पूर्वकं शुक्रं जनयित्वा प्रवर्त्तयन्ति ॥ [यन आह]

भा० वाजीकरणाय है ऐसे बहुवचन पहिले अर्थ को लौटानेके हेतु कमारे। (ध) बल देने योग्य और बृंहण अर्थात् शुक्रादिक को बढ़ानेवाले जीवनीय गणादिक उनके मानिन्द जानने चाहिये ॥ (न) विरेचन करती हैं अपने प्रभाव और गुणकी अधिकता से ॥

(प) शीघ्रही रसादियों के उत्पादन पूर्वक अर्थात् रसादियों को उत्पन्नकर पश्चात् शुक्र को उत्पन्न करके बढ़ाती हैं ॥ [जैसा कि कहा है]

दुग्धं माषाश्च भल्लातः फलमज्जा मलानि च ॥
जनकानि निगद्यन्ते रेचनानि च रेतसः ॥ ११५॥
[ननु बालानां कथं शुक्रं न दृश्यत इत्याह]
बालानां शुक्रमस्त्येव किन्तु सोऽस्त्यान्न दृश्यते ॥
पुष्पाणां मुकुले गन्धो यथा सन्नपि नाप्यते ॥ ११६
तेषां तदेव तारुण्ये पुष्टत्वा द्व्यक्तिमेति हि ॥
कुसुमानां प्रफुल्लानां गन्धः प्रादुर्भवेद्यथा ॥ ११७॥

भा० दूध उड़द भिलावेके फलकी मज्जा और आंवले ये शुक्र के उत्पन्न करनेवाले और रेचन करनेवाले कहे गये हैं ॥ ११५॥
प्रश्न) । बालकों के शुक्र क्यों नहीं दिखता । सो कहते हैं । बालकों के शुक्र रहता है लेकिन सूक्ष्म होने से नहीं दिखता । जैसे फूलों की कलियों में गंध रहता हुवाभी नहीं मालूम होता ॥ ११६॥
उन बालकों का वही शुक्र युवावस्थामें पुष्ट होने से प्रगट होता है ॥ जैसे खिले हुवे फूलोंमें से गन्ध निकलता है ॥ ११७ ॥

रोमराज्यादयः पुंसां नारीणामपि यौवने ॥ ११८
जायन्तेऽत्र च यो भेदो ज्ञेयो व्याख्यानतः स च ॥
(क) व्याख्यानं यथा पुंसां रोमराजीश्मश्रुप्रभृतयः।
नारीणान्तु रोमराजीस्तनस्तन्यार्त्तव प्रभृतयः।

भा० जैसे रोमावल्यादिक पुरुषोंके तथा औरतोंके भी यौवन अवस्थामें निकलते हैं । यहांपर जो भेद है वह व्याख्यान से जानना चाहिये ॥ ११८ ॥ (क) व्याख्यान जैसे पुरुषोंके रोमावली श्मश्रु अर्थात् दा

इत्यादिक होते हैं वैसेही औरतों के रोम पंक्ति स्तन दूध आर्तव इत्यादिक होते हैं ॥ (ख) प्रश्न)। वृद्ध का अन्न रस धातुवृद्धि क्यों नहीं करता सो कहते हैं ॥

(ख) ननु, अन्नरसो वृद्धस्य धातुवृद्धिं कथं न करोतीत्याह।

वार्द्धके वर्द्धमानेन वायुना रसशोषणात् ॥ न तथा धातुवृद्धिः स्यात्तत स्तत्रानिलं जयेत् ॥११६॥

[अथ शुक्रस्य स्वरूपमाह।]

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् ॥ गर्भबीजं वपुः सारो जीवस्याश्रय उत्तमः ॥१२०॥

भा० वृद्धावस्था में बढ़े हुये वायुके द्वारा रस शोषण होने से उस प्रकार धातु वृद्धि नहीं होती तिस कारण उसमें वायु को जीते अर्थात् वातशमन औषधियों का सेवन करें ॥ ११६॥

[अनन्तर शुक्र का स्वरूप कहते हैं]

शुक्र सौम्य श्वेत स्निग्ध और बलपुष्टि को करनेवाला कहा गया है। तथा गर्भका बीज शरीर का सार और श्रेष्ठ जीवका आश्रय अर्थात् स्थान कहा गया है ॥ १२०॥

[जीवस्याश्रय उत्तम इति आह।]

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः ॥ वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात् ॥१२१

[अथ गर्भसञ्जनन शुक्रस्य लक्षणमाह।

भा० जीवका आश्रय उत्तम इसको कहते हैं। सब शरीर में जीव रहता है परंतु विशेष करके शुक्रमें रक्तमें मलमें रहता है। क्यों कि जिनके क्षीण होनेसे क्षणमें क्षयको प्राप्त होता है ॥ १२१ ॥

[अनन्तर गर्भको उत्पन्न करनेवाले शुक्रका लक्षण कहतेहैं]

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च ॥ शुक्र-
मिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभञ्च मत् ॥ १२२॥

[अथ शुक्रस्य स्थानमाह]

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षुरसो यथा ॥ एवं
हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥ १२३॥

भा० स्फटिक के तुल्य आभावाला और द्रव अर्थात् वहनेवाला तथा स्निग्ध मधुर और मधु ऐसी गन्धवाला होताहै। और कोई कहते हैं कि तेल तथा शहतसा शुक्र होता है ॥ १२२॥
अनन्तर शुक्र का स्थान कहते हैं। जैसे दुग्धमें घृत और गन्नेके रसमें गुड़ रहता है ऐसेही मनुष्यों के सम्पूर्ण शरीर में शुक्र रहता है ॥ १२३॥

(क) अत्र सर्पिर्दृष्टान्तो बहु शुक्रे ऽल्प मथनेन सर्पिः शुक्रयोर्लाभात्। इक्षुरस दृष्टान्तस्तु स्वल्प शुक्रे पुंसि अतिपीडने नेक्षुरसस्य शुक्रयोर्लाभात् ॥

[अथ शुक्रस्य क्षरण मार्गमाह।]

द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः ॥
मूत्रस्रोतपथे शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ १२४॥

भा० (क) यहाँ पर बहुत शुक्रवाले पुरुष में थोड़े मथने के द्वारा घृत और शुक्र का लाभ होने से घृत का दृष्टान्त दिया है ॥
और थोड़े शुक्रवाले पुरुष में बहुत मथने के द्वारा इक्षुरस और शुक्र का लाभ होनेसे इक्षुरसका दृष्टान्त दिया गया है ॥

[अनन्तर शुक्र के निकलने के मार्ग कहते हैं]

वस्ति द्वारके नीचे दहनी तरफ़ दो अंगल मूत्र स्रोतके मार्गसे पुरुष का शुक्र निकलता है ॥

[वृद्धवाग्भटोऽप्याह।]

(क) सप्तमी शुक्रधरा द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्ति द्वारस्य चाप्यधो मूत्रमार्गमाश्रिता सकल शरीर व्यापिनी शुक्रं प्रवर्त्तयतीति ॥ सप्तमी कला ।

[अथ शुक्र त्तरण कारण माह।]

कृत्स्नदेह स्थितं शुक्रं प्रसन्न मनस स्तथा ॥
स्त्रीषु व्याय च्छतश्चापि हर्षा तत्सम्प्रवर्त्तते॥१२५॥

(स्त्रीषु व्यायच्छतः स्त्रीषु रतरूपं व्यायामं कुर्वतः।

भा० वृद्धवाग्भट ने भीकहाहै ॥ (क) सातवीं शुक्रको धारण करनेवाली दो अंगल दाहिनी तरफ वस्ति द्वारके नीचे मूत्र मार्गको आश्रयण करनेवाली सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई शुक्रको निकालती है । वो सातवीं कलाहै ॥

अनन्तर शुक्रके गिरनेका कारण कहते हैं ॥ सम्पूर्ण शरीर में रहने वाला शुक्र प्रसन्नचित्त तथा स्त्री में मैथुनरूप कसरत करने वाले के भी हर्ष से वह शुक्र निकलताहै ॥ १२५॥

[स्त्री में व्यायच्छतः अर्थात् सुरतरूप व्यायाम करने वाले के]

[अन्यच्च।]

शुक्रं कामेन कामिन्या दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥
शब्द संश्रवणात् ध्यानात् संयोगाच्च प्रवर्त्तते १२६

[अथार्त्तवस्य स्वरूपमाह]

स्त्रीणां रस एव मासेनार्त्तवं भवतीत्युक्त्वा पुनराह शुक्र-

त एव।)

रसादेव रजःस्त्रीणां मासि मासि त्र्यहं स्रवेत् ॥
तद्वर्षात् द्वादशादूर्द्ध याति पञ्चाशतः क्षयम्।१२७
मासेनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्त्तवम् ॥
ईषद्विवर्णं कृष्णञ्च वायुर्योनिमुखं नयेत्।१२८।
[गर्भग्रहणयोग्यस्यार्त्तवस्य लक्षणमाह]
शशास्रकप्रतिमं यच्च यद्वालाक्षारसोपमम् ॥
तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्॥१२९॥

भा० औरभी। कामिनी की कामनासे अर्थात् संभोगकी इच्छासे अथवा उसके दर्शनसे या स्पर्श से या उसका शब्द श्रवण करनेसे या चिन्तनसे या लिपटने से शुक्र निकलता है ॥ १२६ ॥

[अनंतर आर्त्तवका स्वरूप कहतेहैं।]

स्त्रियोंका रस ही महीने में आर्त्तव होता है ऐसा कहकर फिरसे कहतेहैं शुक्रसेही। रस सेही औरतों का रज महीने महीने में तीन दिन स्राव होता है। वह आर्त्तव बारह वर्ष के ऊपर से निकलता है और पचास बरसमें क्षय होजाता है ॥ १२७ ॥ महीने भरमें संचय हुवे आर्त्तव को समयपर वायु धमनियों के द्वारा थोड़ा बदरंग और काला योनि द्वारसे निकालता है ॥ १२८ ॥

[गर्भ रहने के योग्य आर्त्तवका लक्षण कहतेहैं]

शश अर्थात् खरगोश के रक्त समान जो आर्त्तव अथवा लाख के रस सदृश जो है उसको अच्छा कहते हैं और जो कपड़े को नहीं रंगता अर्थात् जो धोनेसे जाता रहै ॥ १२९ ॥

(क) आर्त्तवस्य वर्णद्वयाभिधानम्। वातादिप्रकृतिभेदेन वर्णभेदात्। यद्वासो न विरञ्जयेत्। यद्वासो लग्नं प्रक्षालितं तद्वासस्त्यजति न तु विकृतरक्तं कुर्यात्।

(क) आर्त्तव के दो रंग कहे हैं। वातादि प्रकृति के भेद से वर्ण भेद कहे हैं। और जो कपड़े को नहीं रंगता अर्थात् जो कपड़े से लगा हुवा धोने से उस कपड़े से छूट जाता है। उसको खराब लाल नहीं करता।

ऋतु स्त्रीणां रजोदर्शनात् षोडश निशाः तत्र भवमार्त्तवं गृहीत गर्भानाम् स्त्रीणामार्त्तव वहानां स्त्रोतसां गर्भेणावरोधादार्त्तवं न स्रवति। (ख) किन्तु तदेवाधः प्रतिहत मूर्द्धमागत मुपचीय मान मपरा भवति। अपरा-तु श्रीवर इति लोके। शेषं चोर्द्धतरमागतं पयोधरौ याति तस्माद्गर्भस्थः पीवर पयोधरा भवन्ति।

भा० औरतों का ऋतुकाल रजो दर्शन दिनसे सोलह दिन रहता है। उसमें हुवा आर्त्तव गर्भको धारण की हुई स्त्रियोंके आर्त्तव वाही स्त्रोतोंका गर्भ द्वारा अवरोध होनेसे अर्थात् रोक होनेसे आर्त्तव नहीं निकलता। (ख) किन्तु वही नीचेसे टकर खाया हुवा ऊपर आके संचय हुवा अपरा अर्थात् गर्भनाड़ी होता है॥ और दूसरी लोगों में श्रीवर ऐसा कहते हैं बाकी उससे ऊपर आया हुवा स्तनोंमें जाता है। तिस्से गर्भिणी के भरे हुवे स्तन होते हैं॥

[अथ धातुष्वतिरिक्तान् गुणानाह]

अतिरिक्ता गुणा रक्ते वन्हे र्मांसे तु पार्थिवाः॥ मेदस्यपां रसे चास्थ्नि पृथिव्य निल तेजसाम्॥१३०॥
मज्ज्ञि शुक्रे च सोमस्य मूत्रे च शिखिनो गुणाः॥
भुवस्तथार्त्तवे त्वग्ने रसे क्षीरे तथाम्भसः॥१३१॥

भा० अलग्नर धातुवों में अलग गुणों को कहते हैं। रक्त में अग्नि के अलग गुण हैं॥ और मांस में पार्थिव गुण। वैसेही मेद में जल्के गुण और

स्तनयो मध्य मधिष्ठायो रस्यामाशय द्वारं सत्वरज स्तमसा मांधिष्ठानं हृदयं नाम शिरा मर्म्म चतुरङ्गुलं सद्यो मारकं॥

वस्तिर्नाभिः पृष्ठकंटी गुद वंक्षण शेफ़साम्॥ मध्ये वस्ति तनुत्वक च एक द्वारो ह्यधो मुखः॥ १५४

(क) स्नायु मर्म्म दञ्चतुरङ्गुलं सद्यो मारकम् नाभिः प्रसिद्धा पक्वामाशयो र्मध्ये शिरा प्रभवा नाभि र्नाम शिरा मर्म्मेद ञ्चतुरङ्गुलं सद्यो मारकम्॥

भा० हृदय प्रसिद्ध है स्तनों के बीच छाती में आमाशय का द्वार सत्व रज तम इनकी जगह हृदय नाम सिरा मर्म्म चार अङ्गुल प्रमाण सद्यो मारक हैं॥ वस्ति अर्थात् पेड़ू नाभ पीठ कटि गुदा और पूर्वोक्त वंक्षण तथा लिंग इनके बीचमें बारीक चामका नीचे मुखवाला एक द्वार वस्ति नाम स्नायुमर्म्म यह चार अंगुल का तात्काल मारक है॥ १५४॥ नाभि प्रसिद्ध हैं। पक्वाशय और आमाशय के बीच में सिरा ओंकी निकलने की जगह नाभि नाम सिरा मर्म्म येह चार अंगुल का तत्काल मारक है॥

वक्षो मर्म्माणि सीमन्ता स्तला क्षिप्रेन्द्र वस्तयः॥ वृहत्यौ पार्श्वयोः सन्धी कठीक तरुणे चये॥ १५५ नितम्बाविति चैतानि कालान्तर हराणि तु॥

[वक्षोमर्म्माणि।]

(उरसः स्तन मूलस्य नरो हि स्तन रोहिते।)

(क) स्तनयोरध रस्ता द्यङ्गुल मुभयतः स्तनमूले नाम शिरा मर्म्मणी द्व्यंगुले कफ पूर्ण कोष्ठ तया कास ष्वा

साभ्यां च कालान्तर मारके ॥ स्तनयोरुपरि उभयतः द्व्यङ्गुलं यावत्। स्तन रोहिते नाम द्वे मांस मर्म्मणी रक्त पूरित कोष्ठतया कालान्तर मारकौ।

भा॰ वक्षस्थल के आठ मर्म्म और पांच सीमन्त तथा चार तल और क्षिप्र चार इन्द्र वस्ति चार वृहती दो पार्श्व संन्धी दो कटीक तरुण दो ॥ १५५ ॥ नितम्ब दो ये तेतीस कालान्तर मारक हैं ॥
वक्षस्थल के मर्म्म कहते हैं।] स्तनों के नीचे दो अंगुल दोनों तरफ स्तनमूल नाम शिरा मर्म्म दो अंगुल के हैं। वो कफ से भरे को ष्ठ होने से कास और श्वास के द्वारा कालान्तर में मारक हैं अर्थात् इन मर्म्मों के कटने से कास श्वास हो के पश्चात् मरता है ॥
(ख) स्तन के ऊपर दोनों तरफ स्तनरोहित नाम दो मांस मर्म्म हैं। वे मर्म्म रक्त से पूरित कोष्ठ होने से कालान्तर में मारक हैं ॥

अपलापौ अंस कूटयोरधस्तात् पार्श्वयोरुपरि द्वौ शिरा मर्म्मणी। अर्द्धाङ्गुले रक्तेन पूयनाङ्गते न कालान्तर मारकौ। अपस्तम्बौ उरसः उभयोः नाड्यौ वातवहे शिरा मर्म्मणी। अर्द्धाङ्गुले वात पूर्ण कोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च कालान्तर मारके सीमन्ताः शिरसि पञ्च सन्धयः सन्धिमर्माणि चतुरङ्गुलानि। उन्माद भय चित्त विनाशैः कालान्तर मारकाः ॥

भा॰ कंधे के जोड़ के नीचे और पसलियों के ऊपर दो आधे अंगुल के शिरा मर्म्म हैं। वे मर्म्म रक्त से पीप हो जाने पर कालान्तर में मारक हैं। छाती की दोनों वातवहा नाड़ी अपस्तम्ब नाम शिरा मर्म्म आधे अंगुल का है। वो मर्म्म वायु से पूर्ण कोष्ठ होने से कास श्वास के द्वारा कालान्तर में मारक हैं। शिर में पांच जोड़ सीमन्त नाम सन्धिमर्म्म चार -

अंगुल प्रमाण हैं ।उन्माद भय चित्त विनाशके द्वारा कालान्तर में मारक हैं ॥

(ग) तलानि । मध्याङ्गुलि मनुक्रम्य हस्तस्य मध्यन्तल मेव मपरस्य हस्तस्य । पादयो श्चत्वारि तलानि मांस मर्माणि द्व्यङ्गुलानि रुजाभिः कालान्तर मारकाणि । क्षिप्राणि अङ्गुष्ठाङ्गुल्यो र्मध्ये क्षिप्रम् । तच्च हस्त द्वयो र्द्वे तथा पादयोः एवंचत्वारि स्नायुमर्माण्यर्द्धाङ्गुलान्याक्षेपकेण कालान्तर मारकाणि ॥

भा० (ग) मध्यमांगुलि को अनुक्रम करके हाथ का मध्यतल है इसीतरह दूसरे हाथका । और पावोंके दो इसप्रकार चार तलहैं ।मांस मर्मदो अङ्गुलके पीड़ाके द्वारा कालान्तर में नाश करनेवाले हैं ॥
क्षिप्र अंगुष्ठ और अङ्गुलि के बीच को क्षिप्रकहते हैं ।वे दोनों हाथके दो तथा दोनों पावोंके दो इसप्रकार चार स्नायुमर्म्म अर्द्धाङ्गुल प्रमाण होते हैं और आक्षेपक के द्वारा कालान्तर में मारक हैं ॥

(घ) इन्द्रवस्तयः प्रकोष्टयोर्मध्ये द्वौजङ्घयोर्मध्ये द्वौ । एवं चत्वारि मांस मर्म्माणि द्व्यङ्गुलानि शोणित क्षयेण कालान्तर मारकाः । वृहत्यौ । स्तन मूला दुभयतः सपृष्ठ वंशं यावत् । शिरामर्म्माणी । अर्द्धाङ्गुले शोणिताति प्रवृत्ते रुपद्रवैः कारन्तर मारके ॥

भा० (घ) इन्द्रवस्ति । प्रकोष्ठ अर्थात् कोहनी से लेकर हाथके पहुंचे तक उनकेबीचमें दो और जांघोंके बीच में दो इसप्रकार चार मांस मर्म्म दो अंगुल के हैं । जो रक्त के क्षय से कालान्तर में मारक होते हैं ।
वृहती ।स्तनमूल सें दोनों तरफ पीठके बांस तक आधे अंगुल के शोणित

मर्म्म होतेहैं। वो रक्त के अधिक निकलेने से कालान्तर में मारक होते हैं ॥

पार्श्वसन्धीजघन पार्श्वयोः सन्धी शिरा मर्मणी अर्द्धाङ्गुलौ शोणित पूर्ण कोष्ठतया कालान्तर मारकौ ॥

(ङ.) कटीक तरुणे त्रिक सन्निधाने उभयतः श्रोणिका एडे स्तवीकृत्या स्थि स्थिते अस्थि मर्मणी अर्द्धाङ्गुले शोणित क्षयात्पाण्डु विवर्ण रूपङ्कृत्वा कालान्तर मारके ॥

भा० पार्श्वसन्धी। कमर पसलियों का जोड़ पार्श्वसन्धी नाम दो शिरा मर्म्म अर्द्धाङ्गुल के होतेहैं। और वो रक्त पूर्णकोष्ठ होनेसे कालान्तर में मारक हैं ॥ (ङ.) कटीक तरुणें। त्रिक अर्थात् कमर के जोड़के पास में दोनों तरफ कमर के नलमें सोधपर रहनेवाली अस्थि मर्म्म आधे अंगुल के हैं। वो रक्तक्षय से पाण्डु विवर्ण रूप को करके कालान्तर में मारक होते हैं

नितम्बौ प्रसिद्धौ द्वौ उभयतः श्रोणीकाण्डयो रुपर्य्याशयाच्छादनौ पार्श्वान्तर प्रतिबद्धौ नितम्बौ नाम अस्थि मर्मणी अर्द्धाङ्गुलावधः काय शोषेण दौर्बल्ये न च कालान्तर मारकौ ॥

भा० कमर की नलके ऊपर आशय के आच्छादन पसलियो के बीच में बन्धेहुवे नितम्ब नाम अस्थिमर्म आधे अंगुल के हैं। वो नीचे के धड़ सूक जानेसे दुर्बलता के द्वारा कालान्तर में मारक होते हैं ॥

लोहिताक्षाणि जानूर्वी कूर्चा विटप कूर्पराः ॥ कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सकृकाटिके ॥ १४६ ॥
अंसांस फलकापाङ्गा नीलेमन्ये फणे तथा ॥

वैकल्य करणान्या हुरावर्त्तौ द्वौ तथैवच ॥ १५७॥

(क) ऊर्व्वोरूर्द्ध मधो वंक्षण सन्ध लोहिताक्षन्नच द्वेबाह्वे द्वे ऊर्व्वोरेवन्तानि चत्वारि शिरा मर्म्माण्य र्द्धाङ्गुलानि वैकल्य कराणि ॥

भा० लोहिताक्ष अणि जानु ऊर्वी कूर्च विटप कूर्पर कुकुन्दर कक्षध र विधुर कृकाटिक ॥ १५६ ॥ अंस अंस फलक अपाङ्ग नील मन्य फण तथा ॥ दो आवर्त इस प्रकार ये वैकल्य कारकहे गये हैं । लोहिताक्ष । (क) जांघ के ऊपर और वंक्षण सन्धि के नीचे वोलोहिताक्ष मर्म्म है । दो बाहु में और दो जांघ में वोह चार शिरा मर्म्म अर्द्धाङ्गुल के विकल करनेवाले हैं ॥

(ख) तत्र शोणितक्षयेन पक्षघातः सक्थिसादो वा। आणान्यः। जानुनः ऊर्द्ध उभयोः पार्श्वयो स्त्र्य ङ्गुला एकस्मिन् जानुनि द्वे अपरस्मिन्द्वे एवञ्चतस्रः स्नायु मर्माण्यर्द्धाङ्गुलानि वैकल्य कराणि तत्र शोथाभि वृद्धिः सक्थिस्तम्भश्च ॥

(ख) भा० उसमें रक्तक्षय से पक्षघात अर्थात् लक़वा या सकथिसाद अर्थात् जांघ पीड़ा होती है ॥ आणिन्यः । जानु के ऊपर दोनों ग़लों में तीन अंगुल एक जानूमें २ दो दूसरे जानूमें दो २ इस प्र कार चार स्नायु मर्म्म अर्द्धाङ्गुल के वैकल्य कर हैं ॥ उनमें सूजनब ढ़ती है और पांव अकड़ जाते हैं

(ग) जानु जङ्घयोः सन्धौ सन्धि मर्माणि द्व्यङ्गुले वैकल्य करे तत्र रक्तजता ऊर्व्वो द्वे ऊर्व्वा मध्ये द्वे प्रगण्डयोः मध्ये द्वे एवं चतस्रः शिरा मर्म्माणि एका-

ङ्गुल्याः वैकल्यकर्यस्तत्र शोणितक्षयात्सक्थि शोषः । कूर्चौ : पादयोः रङ्गुष्ठाङ्गुल्यो र्मध्ये तयो रूर्द्ध मधश्च एवं चत्वारि स्नायु मर्म्माणि वैकल्य कराणि तत्र पादयो र्भ्रमण वेपने भवतः ।

भा॰ (ग) घुटने और जांघ के जोड़में जानुनाम सन्धिमर्म्म दो अङ्गुल के वैकल्य कर होतेहैं । उन में लङ्गड़ापन होताहै । जांघों के बीच में दो और प्रगराव अर्थात् कोहनी के ऊपर कांखतक इनमें दो ऐसे ऊर्वी नामचार शिरामर्म्म एक अंगुल के विकल करनेवाले हैं । उसमें रक्त के क्षय से टांग सूख जाती है । कूर्च पैरोंके अंगुष्ठ और अंगुलियों के बीच में उन के नीचे ऊपर इसप्रकार चार स्नायु मर्म्म वैकल्य कर हैं । उसमें पैरों का फिरना और कांपना होता है ॥

(घ) विटपे द्वे वंक्षण वृषणयो र्मध्ये स्नायु मर्म्माणि एकाङ्गुल्यवैकल्य करे च तत्राल्प शुक्रताच कूर्परौ । कफोणिजौ द्वौ सन्धि मर्म्मणी द्व्यङ्गुलौ वैकल्यकरौ तत्र बाहु मध्ये सङ्कोचः । कुकुन्दरे पार्श्व जघन बहिर्भागे पृष्ठ वंशस्योभयतो नाति निम्ने कुकुन्दरे नाम मर्म्मणी । तत्र स्पर्शाज्ञान मधः काये । चेष्टोप घातश्च । मर्म्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे ।

भा॰ विटप दो वंक्षण और अंडकोशों के बीच में स्नायुमर्म्म एक अंगुल के वैकल्य करहैं । उस में अल्प शुक्रता होती है ॥
कोहनी में दो सन्धि मर्म्म दो अंगुल के वैकल्य कर हैं । उस में बाहु के बीच मे सकोच होताहै । पसली और कमर के बहिर्भाग में पीठ के बांस के दोनो तरफ न बहुत नीचे की तरफ झुकेहुवे कुकुन्दर नाम सन्धि मर्म्म अर्द्धाङ्गुल के वैकल्य कर हैं ॥

(ङ) तत्रस्पर्शज्ञानमधः कायस्य चेष्टोपघातश्च। कक्षधरे। वक्षः कक्षयोर्मध्ये द्वे स्नायु मर्मणी एकाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र पक्षाघातः। विधुरे कर्णपृष्ठतोऽधः संश्रिते किञ्चिन्निम्नाकारे द्वे स्नायु मर्म्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र बाधिर्य्यम् ॥

(च) कृकाटिके शिरो ग्रीवयो रुभयतः । सन्धि द्वे। सन्धि मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे शिरष्कम्पः। अंसौ स्कन्धौ बाहु मूर्द्ध ग्रीवामध्ये अंस पीठ स्कन्धनिबन्धनावंसौ नाम। स्नायु मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र बाहु स्तम्भः ॥

भा० (ङ) उसमें छेदनादि क्रिया होनेसे नीचेके शरीर में स्पर्शज्ञान जाता रहेताहे। और चेष्टा बन्द होजाती हैं ॥ कक्षधर। छाती और कांखकेबीच में दो स्नायुमर्म एकांगुलके वैकल्यकर हैं। उसमें पक्षाघात होना है। विधुर। कानके पीठसे नीचे लगेहुवे कुछ दबे से दो स्नायु मर्म आधे अंगुल के वैकल्य कर हैं। उसमें बहिरापन होना हे ॥

(च) कृकाटिके। शिर और गलेके दोनों तरफ़ दो जोड़ सन्धि मर्मनाम अर्द्धांगुल के विकलकरनेवाले हैं। उसमें शिर कम्प होता है। बाहु शिर गला इनके बीच में कंधोंका आधार और कन्धोंसे बन्धेहुवे दो स्नायुमर्म आधे अंगुलके वैकल्यकर हैं। उसमें बाहु अर्थात् भुजा अकड़ जातीहैं ॥

(छ) अंस फलके पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिक सम्बद्धे ग्रीवायां अंसद्वयस्य च संयोगो यत्र तत्त्रिकं।

भा० (छ) अंसफलके। पीठके ऊपर पीठके बाँसके दोनों तरफ़ त्रिकसे लगेहुवे गलेमें दोनों कन्धोंका जोड़ जिसमें है उसको त्रिक कहते हैं।

अस्थि मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र बाह्वोः शून्यताशोषश्च। (ज) अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ शिरा मर्मणी अर्द्धाङ्गुलौ वैकल्यकरौ तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातोवा। नीले मन्येच्च कण्ठनाडी मुभयतश्चतस्रो धमन्यः द्वे नीले द्वे मन्ये। तत्र एका मन्या एका नीला। एकस्मिन् पार्श्वे मन्यानीलाः अपरस्मिन् पार्श्वे द्वे द्वे शिरा मर्मणी द्व्यङ्गुले वैकल्यकरे तत्र मूकता विकृति स्वरताऽरसग्राहिता च। फणौ घ्राण मार्ग मुभयतः मांसमर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्य करे तत्र गन्धाज्ञानम्॥

भा० अंसफलक नाम दो अस्थिमर्म आधे अंगुलके वैकल्यकर हैं। उसमें भुजा सूनी पड़ती हैं और सूकभी जाती हैं॥
(ज) अपाङ्ग। नेत्रोंके अन्तमें दो शिरा मर्म आधे अंगुल के वैकल्यकर हैं॥ उसमें अन्धापन या दृष्टिमें चोट होजाती है। नील और मन्य येह कंठनाड़ी दोनों तरफ़ चार धमनी दोनील दो मन्य हैं॥ उसमें एक मन्य और एकनील एक तरफ़ तथा एक मन्य और एकनील दूसरी तरफ़ इस प्रकार दोदो शिरा मर्म दो अंगुल के वैकल्य कर हैं॥ उसमें गूंगापन और बुरास्वर तथा रसका ग्रहण नकरना ये होता है। घ्राण मार्ग पर दोनों तरफ़ दो मांस के मर्म आधे अंगुलके वैकल्य कर हैं। उसमें गंधका ज्ञान जाता रहता है॥

(झ) आवर्तौ भ्रुवो रुपरि निम्नयोः सन्धि मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातः॥ गुल्फौ द्वौ मणिबन्धौ द्वौ तथा कूर्च्च शिरांसि च॥ रुजाकरा णि जानीयात् दृष्ट्वा चैतानि बुद्धिमान्॥ १५८॥

भा०(क) आवर्त्त। भवोंके ऊपर दबकुवे दो सान्धिमर्म्म आधे अंगुलके वैकल्य करहैं। उसमें अंधापन और दृष्टिमें चोट होती हैं। गुल्फदो मणिबन्ध दो तथा कूर्च सिर। इनको रुजाकर अर्थात् पीड़ा करने वाले बुद्धिवान् देखकर जानलेवें॥ ९५०॥

(क) गुल्फौ घुरिटके सन्धि मर्म्मणी द्व्यंङ्गुलौ रुजाकरौ तत्र रुजा पादस्तम्भः खञ्जता च द्वौ मणिबन्धौ हस्त प्रकोष्ठ सन्धी सन्धिमर्म्मणी द्व्यङ्गुलौ रुजाकरौ। तत्र हस्तयोः क्रियाराहत्यं कूर्च्च शिरांसि। पाद सन्धेरधः उभयतः एकस्मिन् पादे द्वे च द्वितीये। एवञ्चत्वारि स्नायु मर्म्माण्येकाङ्गुलानि रुजाकराणि तत्र रुजा शोफश्च॥

भा० गुल्फ घुरिटक सन्धि अर्थात् टखने का जोड़ सन्धि मर्म्मनाम दो अंगुल के रुजाकर हैं। उनमें पीड़ा और पैरका जकड़ना तथा लूलापन होता है॥ दो मणिबन्ध अर्थात् हाथके पींचेका जोड़ मणिबन्ध नाम सन्धिमर्म्म दो अंगुलके पीड़ा करने वाले हैं। उस में हाथ की चेष्टा बन्द होजाती है॥ कूर्च शिर। पैरके जोड़ के नीचे दोनों तरफ़ एक पैरमेंदो और दूसरे में दो इस प्रकार चार स्नायु मर्म्म एक अंगुलके पीड़ा करते हैं। उसमें पीड़ा और सूजन होती है॥

उत्क्षेपौ स्थापनी चैव विशल्यघ्नं निकम्मतम्॥

(ख) उत्क्षेपौ शङ्खयोरुपरि केशान्तयावत्। स्नायु मर्म्मणी अर्द्धाङ्गुल तयाविद्धयाः सशल्याजीवेत्याकाम्पतनि शल्योवा उद्धृतशल्यस्तु म्रियेत।

भा० उत्क्षेप दो और एक स्थपनी ये तीन विशल्यघ्न हैं॥

अतएव विशल्य मुद्धृतं शल्यं हन्तीति विशल्यघ्नं मर्म्मस्थापनी । एका भ्रुवो मध्ये शिरा मर्म्मेद मर्द्धाङ्गुलम् विशल्यघ्नम् ॥

भा० (क) शंख के ऊपर के शनक उत्क्षेप नाम दो स्नायु मर्म्म दो अंगुल के हैं । उनके काटने में सशल्यजीता है अर्थात् जबतक कांटा फंसा रहता है तब तक जीता है ॥ अथवा पाकसे कांटा गिर पड़ता है । और कांटेके उखेड़ने मरजाता है । इसीवास्ते विशल्यघ्न अर्थात् निकाला हुआ शल्य मारता है इसे विशल्यघ्न कहते हैं । मर्म्मस्थपनी । एक भवोंके बीचमें यह शिरामर्म्म अर्द्धाङ्गुल का विशल्यघ्न है ॥

सप्तरात्रान्तरे हन्युः सद्यः प्राणहराणि हि ।
कालान्तर प्राणहरं पक्षे मासे च मारकम् ॥ १५९ ॥
सद्यः प्राणहरं त्वान्ते बिद्धं कालेन मारयेत् ॥
कालान्तरे प्राणहरं मन्ते विद्धन्तु दुःखदम् ॥ १६० ॥
(अन्ते मर्म्मसमीपे)
मर्म्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छन्ति काये विविधा नराणाम् ॥ प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवंति वैद्येन यत्नैरपि साध्यमानाः ॥ १६१ ॥

भा० सद्यः प्राणहर मर्म्म सात दिन के बीच में नाश करते हैं । और कालान्तर में प्राण हरने वाले मर्म्म महीने में या पंद्रह दिन में मारक हैं ॥ १५९ ॥ सद्यः प्राणहर मर्म्म पास बिन्धने से कालान्तर मारते हैं ॥ कालान्तर प्राणहर मर्म्म निकट बिंधे हुवे दुःख देते हैं ॥ १६० ॥ अन्त अर्थात् मर्म्मके समीप । मनुष्यों के शरीर में मर्म्मों के ऊपर जो नाना प्रकार के विकार होते हैं

चोह् विकार प्राय: वैद्योंके द्वारा यत्नसे भी प्रतीकार किये गये अत्यन्तक ष्टसाध्य होते हैं ॥ १६१ ॥

(अथ सन्धय: ।) ते [द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च।]
शाखास्तु हन्व्योः कट्यां च चेष्टावन्तो भवन्ति हि।
शेषास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरास्तज्ज्ञै रुदाहृताः ॥ १६२
कथिता देहिनां देहे सन्धयो द्वे शते दश ॥ शाखासु
तेऽष्टषष्टिश्च कोष्ठे त्वेकोन षष्ठिकाः ॥ १६३ ॥
ग्रीवायां ऊर्द्ध्वदेशे तु ऽत्यशीतिस्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ प्रथ
मं परिगण्यन्ते तेषु शाखागतां इह ॥ १६४ ॥

भा० अनन्तर सन्धि कहते हैं । वो सन्धि दो प्रकार की होती हैं । चेष्टावाली और स्थिर । हाथ पावों में और जबाड़ों में तथा कमर में चेष्टा वाली सन्धियी हैं । और बाकी सब स्थिर उनके जानने वालों ने कहा हैं। ॥ १६२ ॥ प्राणियों के देह में दो से दश २१० सन्धियाँ अर्थात् जोड़ कहे गये हैं । वे जोड़ हात पावों में अड़सठ ६८) और कोष्ठ में उनसठ । १६३ ॥ और गले के ऊपर के भाग में वे जोड़ अस्सी ८०) कहे गये हैं । उन में पहिले यहाँपर हात पावों में के जोड़ गिने जाते हैं ॥ १६४ ॥

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रयस्त्रयो द्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश । गुल्फ जानु वंक्षणेष्वेकैक मेवं सप्तदश एकस्मिन् सक्थिनि भवन्ति ॥

(ख) एतेनेतर सक्थि बाहू च व्याख्यातौ । एवमष्टष ष्टि शाखासु । [अथ कोष्ठगतानाह ।]

(ग) चयः कटीकपालेषु चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे तावन्त एव पार्श्वयोरष्टावुरसि एवमेकोनषष्टिः कोष्ठे ॥

भा० (क) एक एक पैरकी उंगलियों में तीन तीन ३।३। और दोदो अंगूठों में इस प्रकार वो जोड़ चौदह (१४) होते हैं। टखना और घुटना तथा पूर्वोक्त वंक्षण इनमें एकेक इस प्रकार सत्रह (१७) एक पांवमें होते हैं॥ (ख) इसी हिसाब से दूसरे पांवमें और दोनो हाथों में कही गई हैं। इस प्रकार हाथ पांवमे अड़सठ जोड़ होते हैं। अनन्तर कोष्ठके जोड़ोंको कहते हैं॥ (ग) तीन कमरमें ३। पीठके बांस में चौवीस २४। इतनी ही पसलियों मे आठ छातीमें इस प्रकार उनसठ कोष्ठ में॥

[अथ ग्रीवोर्द्ध्वगतानाह।

(घ) अष्टौ ग्रीवायां त्रयः कण्ठ नाड़ीषु हृदयक्लोमफुफुसनिबद्धास्त्वष्टादश। द्वात्रिंशद्दन्तमूलेषु एकः कण्ठमणौ नासायाञ्च एकैकः द्वौ द्वौ वर्त्ममण्डल गण्डकर्णशङ्खेषु द्वौ हनुसन्धौ द्वावुपरिष्टात् भ्रुवोः शङ्खयोश्चोपरिष्टात् पञ्चशीर्षकपालेष्वेको मूर्द्धीति कण्ठमणौ घाटिकेति प्रसिद्धे एते सन्धयोऽष्टविधा भवन्ति॥

भा० [अनन्तर गलेके ऊपर केजोड़ोंका कहते हैं। आठ गलेमें (८) तीन कंठ में (३) हृदय क्लोमसंबन्धी हुई नाड़ियों में अठारह १८। बत्तीस दांतोंकी जड़ में ३२। कंठमणि में एक १। नाक में एक १। आंखोंकी गोलाई में दो २। गालों में दो २। कानों में दो २। शंख में दो २। जबाड़ों मे दो २। भवोंके ऊपर दो २। शंखके ऊपर दो २। खोपड़ी मे पांच। शिरमें एक। १। कंठमणि अर्थात् घंटिका जिसको घांट भी कहते हैं। येजोड़ आठप्रकार के होते हैं॥ [तेयथा।]

कोरोदूखलसामुद्गाःप्रतरस्तुन्नसेविनी। काकतुंडं मंडलं च-शंखावर्त्तोऽष्टसन्धयः॥ २६५॥ (क) कोरोगर्त्तः। नलिकेत्यन्ये उदूखलः प्रसिद्धः समुद्गः संपुटः समुद्ग एव सामुद्गः अत्र स्वार्थे अण्। प्रतरन्त्यनेनेति प्रतरो वेलकः तुन्नस्येव तुन्नीरस्य सेवि

नी स्नूनी स्नूनसेविनी। काकतुंडं काकमुखं। मण्डलं प्रसिद्धं शंखस्यावर्त्तः शङ्खावर्त्तः। एते यथा नाम प्रकृतयः सन्धयो भवन्तीत्यर्थः। (ख) एषामङ्गुलि मणिबन्ध गुल्फ जानु कुर्परेषु कोराः सन्धयः। कक्षा वंक्षण दन्तेषु दूखलाः अंस पीठ गुद भग नितम्बेषु सामुद्गाः॥ ग्रीवा पृष्ठ वंशयोस्तु प्रतराः शिरः कटीकपालेषु तु न सेविन्यः। हन्वोरुभयतः काकतुण्डाख्याः कण्ठ हृदय क्लोम नाडीषु मण्डलाख्याः। शिर श्रोत्र शृङ्गाटकेषु शंखावर्त्ताः

भा॰ [जैसे] कोर उदूखल सामुद्ग प्रतर तुन्नसेविनी काकमुंड मंडल और शंखावर्त्त ये आठ सन्धियों के भेद हैं॥ १६५॥
(क) कोर अर्थात् खुरखवार और लोग नलिका भी कहते हैं॥ उदूखल अर्थात् ऊखल के मानिंद सामुद्ग अर्थात् ढकना संपुट समुद्गही सामुद्ग इस अर्थमें अण प्रत्यय होता है। चलनी है इससे वह प्रतर अर्थात् बेल। तून में रहनेवाला ही तूनी इसकी सेविनी अर्थात् सूई तूनी तूनसेविनी। काकतुण्ड अर्थात् कौव्वे का मुख। मण्डल प्रसिद्ध अर्थात् गोल। शंख का आवर्त्त अर्थात् भ्वर। ये जैसे नाम वैसे रूप जोड़ हैं॥
(ख) इनमें से उङ्गलि पौंचा टखने घुटना कोहनी इनमें कोर सन्धि है। कांख वंक्षण और दांतों में उदूखल जोड़ है। अंस पीठ गुदा भग नितम्ब इनमें सामुद्ग सन्धि है। गरदन और पीठ के बांस में प्रतर संधि है। सिर कटी कपाल में तुन्नसेवनी। जबाड़े के दोनों तरफ़ काक मुख। कंठ हृदय क्लोम नाड़ी में मण्डल। श्रोत्र शृङ्गाटक में शंखावर्त्त।

अस्थ्नां तु सन्धयो ह्येते केवलाः समुदाहृताः॥ पे
शी स्नायु शिराणान्तु सन्धिसंख्या न विद्यते॥ १६६॥

[अथ शिरामाह।]

सन्धिबन्धन कारिण्यो दोषधातु वहाः शिराः॥

नाभ्यां सर्वाणि बद्धा स्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः॥१६७
शरीरं सकलञ्चैव तच्छिराभिः पोष्यते सदा ॥ प्रणा-
लीभि रिवारामा कुल्याभिः क्षेत्रधान्यवत्॥१६८॥
(क) अत्र प्रणालीभिः कुल्याभिरिति दृष्टान्तद्वयं स्थूल
सूक्ष्म शिराभेदात् ॥

भा० केवल अस्थियों के जोड़ इतने कहेगये हैं । पेशी स्नायु और शिरा इनकी सन्धि संख्या नहीं है ॥ १६६ ॥ अनन्तर शिरा कहते हैं ॥ जोड़के बन्धन को करनेवाली और दोषधातु को धारण करनेवाली रगें होती हैं ॥ वो सब नाभिसे बन्धी हुई आस पास फैली हैं ॥ १६७ ॥ यह शरीर सर्वदा शिराओंसे पोषण किया जाताहै । जैसे नाली से बाग और छोटी नहर से खेतका धान तैय्यार किया जाता है ॥ १६८ ॥ (क) यहां पर नाली और छोटीनहर यह दो दृष्टान्त छोटीबड़ी नसों के भेद से कही गई हैं ॥

प्रसारणाकुञ्चनादि क्रियाभिः सततं तनो ॥ शि-
रा एवोपकुर्वन्ति ताः स्युः सप्तशतानि तु ॥ १६९॥
यथा द्रुमदले साक्षात् दृश्यन्ते प्रतताः शिराः ॥
तथैव देहिनो देहे वर्त्तन्ते सकले शिराः॥ १७०॥
नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभि रुपाश्रिता।
शिराभिरावृता नाभिश्चक्र नाभिरिवारकैः ॥१७१॥

भा० फैलना सिकुड़ना इत्यादिक क्रियाओंसे निरंतर शरीर में शिराही उपकार करती हैं । वोह सात सौ हैं ॥ १६९ ॥ जैसे वृक्ष के पत्ते में फैली हुई साफ़ रगें दिखती हैं । वैसेही मनुष्य के सब शरीर में शिरा रहती हैं ॥ १७० ॥ प्राणियों के प्राण नाभिस्थ हैं और नाभि प्राणों के पास मि-ली हुई हैं । तथा शिराओं से घिरी हुई नाभि है जैसे आरक अर्थात् डौवान से

चक्र नाभिके मानिंद ॥ १७१ ॥

(क) तद्यथा तासां खलु मूल शिरा चत्वारिंशत् ॥ तासां दश वातवहाः दश पित्तवहाः दश श्लेष्मवहाः दश रक्त वहाः तासां खलु वातवहाना वातस्थानगतानां सप ञ्च सप्तति शतानि भवन्ति ॥ तावन्त्य एव पित्तवहाः पित्तस्थानगताः । श्लेष्मवहाः ताः श्लेष्मस्थानगताः रक्तवहा यकृत् प्लीह गताः एवं शिराः सप्तशतानि भवति।

भा० वो जैसे । उनमें प्रधान शिरा चवालीस हैं । उनमें दश वात वहा, दश पित्तवहा, दश कफवहा, दश रक्तवहा, इस प्रकार चालीस हैं ॥ वातस्थान में प्राप्त उन वात वहों के एकसे पचहत्तर ७५ हैं । उतने ही पित्तस्थान में प्राप्त पित्तवहा और श्लेष्मस्थान में प्राप्त श्लेष्मवहा भी एकसे पिचहत्तर १७५ ॥ तथा यकृत् प्लीहमें प्राप्त रक्त वहा एकसे पिचहत्तर १७५ इस प्रकार सातसे शिरा हैं ॥

तत्र वातवहाः एकस्मिन् सक्थिनि पञ्चविंशति एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । विशेषतः को ष्ठे चतुस्त्रिंशत् तासां श्रोण्यां गुदमेढ़ाश्रिता अष्टौ। द्वे द्वे पार्श्वयोः । षट् पृष्ठे ६ तावन्त्य एवोदरे ६ दश वक्षसि १० एक चत्वारिंशद् जत्रुणः ऊर्ध्वम् तासां चतु र्दश १४ । ग्रीवायां ४ चतस्त्रः कर्णयोः ८ नव जिव्हायां ६ षट् नासिकायां ८ अष्टौ नेत्रयोः ॥

भा० उसमें वातवहा एक सक्थिमें २५ पचीस इसी हिसाब से दूसरी

सक्थि और दोनोंबाहू व्याख्या किये गये अर्थात् दो सक्थि और दोबाहु मिलके सौ १०० । हैं । विशेषकरके कोष्टमें चौतीस ३४ उनमें श्रोणी गुद लिंग इनके आश्रित आठ ।८ । दो २ पसलियों में छः पीठमें उतनेही उदर में दशवक्षस्थल में इसप्रकार ३४ एक नालीस जत्रुके ऊपर उनमें ग्रीवामें चौदह कानोंमें ४ नौ जिव्हामें छः नाकमें आठ आंखोंमें ऐसे ४१

(ख) एवं वातवहानां सपञ्च सप्ततिशतं भवन्ति । एवं विभागः पित्तवहानामपि विशेषस्तु पित्तवहा नेत्रयोर्दश १० कर्णयोर्द्वे २ एव रक्तवहा श्लेष्मवहास्तु (षोडश १६ ग्रीवायां कर्णयो र्द्वे २) एवं शिराणां सप्तशतानि व्याख्यातानि ॥

क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्म्मणाम् ॥ क
रोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् ॥७२

भा० (ख) इसप्रकार वातवहा एकसौ पिचहत्तर हैं । इसप्रकार पित्तवहों का भी विभागहै । परन्तु विशेषकरके पित्तवहा आंखमें दश कानोंमें दो । इस प्रकार रक्तवहा और श्लेष्मवहा हैं ॥ इस प्रकार सात सौ शिरा व्याख्या कीगई हैं । अपनी शिरामें विचरता हुवा वायु क्रियाओं का अप्रतिघात अर्थात् नष्ट नहोने देना और ज्ञानेन्द्रियों का अमोह अर्थात् मोह न होनेदेना इनको करता है ॥ ७२ ॥

(क) क्रियाणां प्रसारणाकुञ्चनादीनाम् । अमोहं बुद्धिकर्म्मणाम् । बुद्धीन्द्रियाणां मनसो बुद्धेश्च स्वे स्वे विषये ज्ञानं करोतीत्यर्थः । अन्यान् गुणान् रसादिव्यायनद्वारा शरीरपोषणादीन् ।

भा० (क) क्रियाणां अर्थात् फैलाना सुकड़ना इत्यादिकों का । अमोहं बुद्धिकर्म्मणां अर्थात् ज्ञानेन्द्रियोंका और मनका तथा बुद्धिका अपने अपने विषयों में ज्ञान करता है । और गुण अर्थात् रसादि धातुवों का

फैलाने के द्वारा शरीर पोषणादि कों को करता है ॥

यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदा-
स्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः ॥ १७३ ॥
भ्राजिष्णुता मन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम् ॥ क-
रोत्यन्यान् गुणांश्चापि पित्तमात्मा शिराश्चरन् १७४

(क) अरोगतां पैत्तिक रोगानुत्पत्तिं करोति। अन्यान् गु-
णान् मेधा बुद्धि दर्शन शक्त्यादीन् ॥

भा० जब कुपित हुवा वायु अपनी शिरामें प्राप्त होता है तब इसको वात के नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७३ ॥ अपनी शिरामें विचरता हुवा पित्त कान्ति और अन्नकी रुचि तथा दीप्ताग्नि और रोग का नहोना इनको करता है। तथा और गुणोंको करता है ॥ १७४ ॥
(क) अरोगताम् अर्थात् पैत्तिक रोगों को न उत्पन्न करना। और गुणों को अर्थात् मेधा बुद्धि और दर्शन शक्ति इत्यादिकों को उत्पन्न करता है ॥

यदा तु कुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदा-
स्य विविधा रोगा जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ १७५ ॥
स्नेहमङ्गेषु सन्धीनां स्थैर्य्यं बलमरोगताम् ॥ क-
रोत्यन्यान् गुणांश्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् १७६

(क) अरोगतां श्लैष्मिकरोगानुत्पत्तिं अन्यान् गुणान् बल पुष्ट्यादीन् ॥

भा० जब कुपित हुवा [illegible] इसके [illegible] भव नाना प्रकार के रोग [illegible] और [illegible] की स्थिरता और बल तथा अरोगता इनको कफ अपनी शिरामें विचरता हुवा

करताहै ॥ १७६ ॥ (क) अरोगता अर्थात कफके रोगोंको न उत्पन्न करना। अन्यगुण अर्थात् बलपुष्टि आदिको करताहै ॥

यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥
तदास्य विविधा रोगा जायन्ते श्लेष्मसम्भवाः ॥१७७॥
धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञानमसंशयम् ॥ स्वाः शि-
रास्तु चरद्रक्तं कुर्य्याच्चान्यान् गुणानपि ॥१७८॥
(अन्यान् गुणान् बलपुष्ट्यादीन्)
यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य
विविधारोगा जायन्ते रक्तसम्भवाः ॥ १७९ ॥
तत्वारुणा वातवहाः पूर्य्यन्ते वायुना शिराः ॥
पित्तादुष्णाश्च नीलाश्च शीता गौर्य्यः स्थिराः कफात् ८०
असृग्धरास्तु ता रक्ताः स्युर्नात्युष्णा शीतलाः ॥

भा० जब कुपित हुवा कफ अपने शिराओं में प्राप्त होता है तब इसके कफ के नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७७ ॥ (क) अपनी शिराओंमें विचरता हुवा रक्त धातुवोंका भरना रंग और स्पर्शका ज्ञान इनको अवश्य करताहै तथा और गुणोंको भी करताहै ॥ १७८ ॥
(क) अन्य गुण अर्थात् बल पुष्टि आदिको भी करता है ॥ जब कुपित हुआ रक्त अपनी शिराओंमें प्राप्त होता है तब रक्तसंभव विविध रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १७९ ॥ उसमें अरुणवर्ण की वातवह शिरा वायुसे भरजाती है । और पित्तसे गरम तथा नीले रंगकी होती है । और कफसे स्थिर भारी ठंडी होतीहै ॥ १८० ॥ तथा रक्तवहावो शिरा न बहुत गरम न ठंडी लालरंगकी होतीहै ।

[अथ स्नायुः। तत्र स्नावोः स्वरूपमाह ।]

मेदसः स्नेहमादाय शिरा स्नायुत्वमाप्नुयात् ॥
शिराणां हि मृदुः पाकः स्नायूनान्तु ततः खरः ॥१८१॥

स्नायवो बन्धनानि स्यु र्देहमांसास्थि मेदसाम् ॥
सन्धीना मपि यत्तास्तु शिराभ्यः सुदृढाः स्मृताः॥ १८२॥
नौर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनै र्बहुभिर्युता ॥ नि
युक्ताऽगाधसलिले भवेद्भारसहा भृशम् ॥ १८३॥
एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावन्तः सन्धयः स्मृताः॥
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धा स्तेन भारसहा नराः॥ १८४॥

भा० अनन्तर स्नायुवों का स्वरूप कहते हैं ॥ शिरा मेद के चिकना पन को लेकर स्नायु होजाती हैं । शिराओं का मृदु पाक होना है और स्नायु वों का उस्से खर पाक होता है ॥ १८१ ॥ शरीर के मांस अस्थि और मेद इनके बन्धन स्नायु हैं । और सन्धियों के भी बन्धन हैं । तथा वो स्नायु शिराओं से दृढ किये गये हैं ॥ १८२ ॥ जैसे काष्ट की पटियों से व्याप्त और बहुत से बन्धनों से युक्त नाव अथाह पानी में छोड़ी बहुत बोझे के सहने वाली होती है ॥ १८३ ॥ इसी प्रकार इस शरीर में जितने स्नायु से बंधे हुवे ओजु कहे गये हैं । उसी से भार को सहने वाले मनुष्य होते हैं ॥ १८४ ॥

(फलकै काष्ठपट्टैः आस्तीर्णा व्याप्ताः।)

शतानि नव जायन्ते शरीरे स्नायवो नृणाम् ॥
तासां विवरणं ब्रूमः शिष्याः। शृणुत यत्नतः ॥
शाखासु षट्शतानि स्युः कोष्ठे त्रिंशत् शतद्वयम्॥
ग्रीवाया मूर्द्धदेशे तु स्नायूनां सप्ततिः स्मृताः॥ १८६

भा० (क) फलक अर्थात् लकड़ियों की पटियों से व्याप्त । मनुष्यों के शरीर में नौसे स्नायु हैं ॥ उनका व्याख्यान कहते हैं । हे शिष्यो यत्न से सुनो ॥ १८५ ॥ शाखाओं में अर्थात् दो हाथ और दो पावों में छसै ६०० (स्नायु हैं ॥ और कोष्ठ में दोसै तीस २३० (तथा ग्रीवा के ऊपर सत्तर कहे गये हैं ॥ १८६ ॥

[तत्र शाखागताः आह]

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां षट् षट् तास्त्रिंशत्। तावन्त्य एव तलकूर्चगुल्फेषु। तावन्त्य एव जङ्घायां दश जानुनि। चत्वारिंशदूरौ। दशवङ्क्षणे। एवं सार्द्ध शत मेकस्मिन् सक्थिनि भवन्ति। एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ।

भा० उसमें शाखामें प्राप्त स्नायुवों को कहते हैं। (क) पांव की एक २ उंगुलियों में छः २ हैं। इस तरह वो पांचों उंगुलियों में मिलके तीस हैं। और उतनीही तलुवे और कूर्च तथा टकनेमें। उतनी ही अर्थात् ३० टांगमें दस घुटनेमें चवालीस जंघामें दस वंक्षणमें इस प्रकार १५० (एक सक्थिमें है। इसी हिसाब से दूसरी सक्थि और दो बाहू इनमें कहे गये हैं॥

[अथ कोष्टगताः प्राह।]

(ख) षष्ठिः कट्यां तावन्त्य एव पार्श्वयोः। अशीतिः पृष्ठे त्रिंशदुरसि। [अथ ग्रीवोर्द्धगताः प्राह]

(ग) षट् त्रिंशद् ग्रीवायाम्। चतुस्त्रिंशन्मूर्द्ध्नि एवं स्नायूनां नवशतानि भवन्ति। [अथ धमन्यः]

धमन्यो नाभितो जाता श्चतुर्विंशति संख्यया॥
दशोर्द्ध्वगा दशाऽधोगा शेषास्तिर्य्यग्गताः स्मृताः॥१८७॥

भा० अनन्तर कोष्ठमें प्राप्तों को कहते हैं॥ (क) साठ कमर में उतनी ही पसलियों में ६०) तीस ३० छातीमें। इस प्रकार दो से तीस २३०) हैं। अनन्तर ग्रीवाके ऊपर प्राप्त ऊवों को कहते हैं॥ (क) छत्तीस ग्रीवामें ३६ (चौंतीस ३४ मस्तक में। इस प्रकार नौसे स्नायु हैं॥

पुरीष शुक्रार्त्तवादीनधो वहन्ति । तास्तु पित्ताशयङ्गता त्रिधा जायन्ते तास्त्रिंशत् ।

भा० (ख) तथा दो से बोलता है दो से सोता है दो से जागता है दो आँसू को धारण करनेवाली और दो औरतों के दूधको धारण करती हैं स्तनसे मिली हुई । और वोही पुरुष के शुक्रको स्तनों के द्वारा धारण करती हैं । ये तीस हैं । इनके द्वारा उदर पसलियां पीठ उरू कंधा ग्रीवा शिर और बाहू ये धारण किये गये हैं । और हिलायेभी जाते हैं ॥ और अधोगत । वात मूत्र मल शुक्र आर्त्तव इनको नीचेकी तरफ धारण करती हैं ॥ वो धमनी पित्ताशयमें प्राप्तहुई तीन प्रकार होती हैं । वो तीस हैं ।

तासाम्मध्ये द्वे द्वे वातपित्त कफ शोणित रसान् वहतः। तादृश द्वे अन्नवहे अन्त्राश्रिते द्वे तोयवहे द्वे वस्तिगते मूत्रवहे द्वे शुक्रस्य प्रादुर्भावाय द्वे तद्विसर्गाय ते एव नारीणामार्त्तव प्रादुर्भावाय तेऽपि सृजतश्च । द्वे स्थूलान्त्र प्रतिबद्धं पुरीषं विसृजतः ।

भा० उन तीसों के बीचमें दो दो वात पित्त कफ रुधिर और रस इनको धारण करती हैं । वो दस हैं । अंतड़ियों को धारण करनेवाली २ और आंतों से मिली हुई पानी को धारण करनेवाली दो २ । वस्ती में प्राप्त मूत्रको धारण करनेवाली दो २ । शुक्र के उत्पन्न होनेके वास्ते २ । और उसके त्यागके वास्ते दो २ । वोही औरतोंका आर्त्तव प्रादुर्भाव होने के वास्ते और उत्पन्न होनेके वास्ते भी । तथा दो मोटी आंतोंसे बंधीहुई मलको छोड़ती हैं।

अष्टावन्यास्तिर्य्यग्गताः स्वेदमर्पयन्ति । एतास्त्रिंशत् एताभिरधोनाभेः पक्वाशय कटी मूत्र पुरीष वस्ति गुदमेढ्र सक्थीनि धार्य्यन्ते चाल्यन्ते च । तिर्य्यग्गतास्तासां चतसृणामेकैकं शतधा सहस्र

धा चोत्तरोत्तरं विभज्यन्ते । (ग) तास्त्वसङ्ख्यास्ता भि रिदं शरीरङ्ग्वादितम् निबद्धमाततम् गवाक्षवत् निबद्धमायतङ्ग्वादो वानायतं यथा गवाक्षे बहूनिछिद्राणि भवन्ति तथा अस्मिन्देहे जालवत् शिराः व्याप्य तिष्ठन्तीति भावः निबद्धमायतङ्ग्वाक्षितम् ।

भा० तिरछी गई हुई आठ पसीना देती हैं । ये तीस हैं । इन्होंसे नाभ के नीचे पक्वाशय कमर मूत्र मल बस्ति गुद लिंग और सक्थि धारण की गई हैं । और चलाई भी जाती हैं । और तिरछी गई हुई चारोंमेंसे एक २ सौ तरह पर तथा हज़ार तरह पर उत्तरोत्तर अर्थात् एकके अनन्तर एक इस क्रमसे विभाग की गई हैं ॥ (ग) वो असंख्य हैं । उनसे शरीर झरोखे के मानिन्द व्याप्त हुवा बनाया गया है । गवाक्ष के मानिन्द विस्तृत रचागया । गवाक्ष अर्थात् हवा आनेकी जगह । जैसे झरोखे में बहुत से छेक होते हैं उसी प्रकार इस शरीर में जालके मानिन्द शिरा व्याप्त होकर रहती हैं बनाहुवा फैला झरोखे के मानिंद ॥

गवाक्षाकारान्तनिकरयुक्तं कृतमित्यर्थः । तासां मुखानि रोमकूपानि येर्मुखैः स्वेदः स्रवति रसञ्चाभिसन्तर्पयन्त्यन्तर्बहिश्च । तैरेवाभ्यङ्ग परिषेकावगाहनालेपनवीर्य्याणि त्वचि पक्वान्यन्तः प्रवेशयन्ति । तैरेव स्पर्शं शुभं अशुभं वा गृह्णन्ति यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च ॥

भा० अर्थात् झरोखेके आकार आनोंके समुदायों से युक्त किया हुवा । उनके मुख रोमोंसे लगे हुवे हैं । जिन मुखोंसे पसीना निकलता है । और रस भीतर बाहर आस पास सींचा जाता है । और उन्हीसे अभ्यङ्ग

परिषेक अवगाहन आलेपन इनके पके इवे वीर्य्य त्वचामें भीतर पहुंचाते हैं। तथा उन्हींसे अच्छा बुरा स्पर्श लियाजाता है। जैसे स्वभाव से कमल की फूलकी डंडीमें छेक होतेहैं

धमनीनान्तथा खानि रसो यै रभितश्चरेत् ॥१८८॥

पञ्चाभि भूतास्त्वथ पञ्च कृत्वः पञ्चेन्द्रियम्पञ्च सु भावयन्ति। पञ्चेन्द्रियम्पञ्चसु भावयित्वा पञ्च त्वमायान्ति विनाशकाले ॥१८९॥

(ख) धमन्यः कथं भूताः पञ्चाभि भूताः पञ्चभ्यः आकाशादि महाभूतेभ्यः अभि समन्तात् भूताः उभयात्मकं मनश्च यस्य तं पञ्चेन्द्रियं जीवात्मानम्पञ्चसु इन्द्रियाधिष्ठानेषु श्रोत्रादिषु पञ्च कृत्वः पञ्चवारान् ॥

भा० वैसे धमनियों के छेक होतेहैं। जिनके द्वारारस आस पास घूमता है ॥ १८८ ॥ आकाशादि पंच महाभूत स्वरूप धमनी पंचेन्द्रिय अर्थात् जीवात्माको श्रोत्रादिकोंमें पंचवार प्राप्त करतीहैं। अर्थात् पर्य्यायसे एकबारही प्राप्तकरतीहैं। पञ्चेन्द्रियोंको पांचों में योजना करके विनाशकाल में पंचत्व को प्राप्त होतीहैं ॥ १८९ ॥

इसकायह अर्थहै कि। धमनी कैसी हैं पांचों से आस पास घिरीहैं। अर्थात् आकाशादि महाभूतोंसे आस पास घिरीहुई। उभयात्मक मनभी जिसके उस पञ्चेन्द्रिय अर्थात जीवात्माको पांचों में अर्थात् इन्द्रियों के अधिष्ठान श्रोत्रादिकों में पंचवार अर्थात् पर्य्याय से एक वार ही प्राप्तकरतीहैं ॥

पर्य्यायेणा त्वेकदैव भावयन्ति प्रापयन्ति पञ्चेन्द्रियं पञ्चानामिन्द्रियाणां समाहारः पञ्चेन्द्रियं श्रोत्रादि तदुपलक्षितं कर्म्मेन्द्रियम्मनश्च। पञ्चत्वं पृथि

व्यादिषु। बुद्धीन्द्रिय विषयेषु तदुपलक्षितेषु हस्ता दिषु कर्मेन्द्रियविषयेषु। मन्तव्ये मनोविषये च भाव यित्वा प्राप्य संयोज्येति यावत्। विनाशकाले पञ्चत्वं आकाशादि भावं। आयान्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः॥

भा० पंचेन्द्रियं। पांचों इन्द्रियोंका समाहार पंचेन्द्रिय श्रोत्रादि उस करके उपलक्षित कर्मेन्द्रिय और मनभी॥ पांचोंमें अर्थात् पृथि व्यादिकोंमें। ज्ञानेन्द्रिय विषय और उसकरके उपलक्षित हस्तादि कर्मेन्द्रिय विषयोंमें और मनन योग्य मनो विषयमेंभी प्राप्तक रके विनाश कालमें पंचत्व अर्थात् आकाशादि भावको प्राप्त हो तेहैं॥

[अथ कण्डरा]

महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः कण्डरास्तास्तु षोडश॥
प्रसारणाकुञ्चनयो र्दृष्टं तासां प्रयोजनम्॥९६०॥
चतस्रो हस्तयो स्तासां तावन्त्यः पादयोः स्मृताः॥
ग्रीवाया मपि तावन्त्य स्तावन्त्यः पृष्ठसङ्गताः॥९६१॥

(क) तत्र पादहस्त गतानां कण्डराणां नखाः प्ररोहाः ग्रीवाजि बन्धनानामधो भागगतानां प्ररोहो मेढ्रः पृ ष्ठ निबन्धानां प्ररोहा नितम्ब मूर्द्धोरुवक्षोऽक्षस्तन पि ण्डाः॥

भा० अनन्तर कण्डरा। बड़ी स्नायुवोंको कण्डरा कहते हैं। वो सोलह हैं। पसारने और सिकोड़ने में उनका प्रयोजन देखा गयाहै॥ ९६०॥ सो कंडरा हाथों में चार और उतनीही पैरोंमें कही गई हैं॥ गरदन में भी चार और पीठसे लगी हुई भी चार हैं॥ ९६१॥
(क) उनमें से हाथ पैरोंमें प्राप्त हुई कंडराओंके अंकुर नख हैं। गरदन से बन्धी हुई अधोभाग में प्राप्त हुई कंडराओ के अंकुर लिङ्गहैं।

और पीठ से लगी उर्द्ध के अंकुर चूतड़ पूर्व उरु वक्ष स्तन पिंड हैं।

[अथ रंध्राणि।]

नेत्र श्रवण नासानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्त्तिते॥ मुख मेहन पायूना मेकैकं रन्ध्र मुच्यते॥ १९२॥

दशमं मस्तके प्रोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः॥ स्त्रीणामन्यानि च त्रीणि स्तनयो गर्भवर्त्मनि॥ १९३॥

भा० अनन्तर छिन्द्रोंको कहते हैं। आंख कान नाक इनमें दो २ छिद्र क हे गये हैं। मुख शिश्न गुदा इनमें एक २ छिद्र कहा है॥ १९२॥ दसवां मस्तक में कहा गया है। इस प्रकार मनुष्यों के छिद्र जाने गये हैं स्त्रियों के और तीन हैं। स्तनों में दो गर्भाशय में एक॥ १९३॥

[अथ स्रोतांसि।]

मनः प्राणान्न पानीय दोष धातूप धातवः॥ धातूनाञ्च मला मूत्रं मल मित्यादयः स्तनौ॥ १९४॥

सञ्चरन्ति हि ये मार्गे स्तानि स्रोतांसि सञ्जगुः॥ बहूनितानि संख्याय प्रापयन्ते नैव भाषितुम् १९५

भा० अनन्तर स्रोतोंको कहते हैं॥ मन प्राण अन्न जल दोष धातु और उपधातु। और धातुओं के मल मूत्र मल इत्यादिक तथा स्तन हैं॥ १९४॥ जिस मार्गसे ये संचार करते हैं उसको स्रोत कहते हैं। वो बहुत हैं उनकी संख्या नहीं कह सके॥ १९५॥

[अथ जालानि।]

(क) निरन्तर रन्ध्राणि करकलितानि समाहितानि च जालानीवजालानि।

जालानि तु शिरास्नायु मांसास्थ्या मुद्भवानि हि॥

तानि चत्वारि चत्वारि सर्वान्येव च षोडश ॥ १९६॥

(ख) तानि मणिबन्धगुद संस्तानि परस्पर निबद्धानि परस्पर संश्लिष्टानि परस्पर गवाक्षितानि चेति यैर्गवाक्षितमिदं शरीरम् । अयमर्थः । एकस्मिन्मणिबन्धे । एकञ्जालं शिरायाः । अपरं स्नायोस्तृतीयं मांसस्य चतुर्थमस्थ्नः एवंञ्चत्वारि जालानि ।

भा० (क) अनन्तर जालों को कहते हैं । निरन्तर छिद्र समूहों से बधे हुवे समाहित जालों के मानिन्द जाल । जाल शिरा स्नायु मांस अस्थियों का उद्भव करती हैं । वो चार २ एक एक में होते हैं इस तरह पर वो सब सोलह हैं ॥ १९६ ॥ (ख) वो मणिबन्ध गुदा में मिले हुवे परस्पर बन्धे हुवे और एक से एक मिले हुवे परस्पर गवाक्षित हैं । जिन्हों से यह शरीर गवाक्षित सा है । यह अर्थ है । एक मणिबन्ध में । एक जाल शिराका । दूसरा स्नायुका । तीसरा मांसका । चौथा अस्थि का । इस प्रकार चार जाल हैं ॥

एते नेतर मणिबन्धौ गुल्फौ च व्याख्यातौ । गवाक्षितं विरचितं निरन्तर जालाकार रन्ध्र निकर परिकल्पितमित्यर्थः ॥ [अथ कूर्चाः ।]

कूर्चाःस्यु र्हस्तयो र्द्वौ तु तावन्तौ पादयोरपि । ग्रीवायामेक एकस्तु मेढ्रे सर्वेऽपि षट् स्मृताः ॥ १९७॥

कूर्चा अपि शिरास्नायु मांसास्थि प्रभवाः स्मृताः ॥

भा० इसी तरह पर दूसरे मणिबन्ध में और गुल्फ में व्याख्यान किये गये । झरोखे सा बनाया गया निरन्तर जाल के आकार छिद्रों का समुदाय से परिकल्पित हैं ॥ [अनन्तर कूर्चों को कहते हैं] कूर्च हाथों में दो उतने ही पैरों में भी गले में एक शिश्न में एक इस प्रकार सब छः कहे १९७

कूर्च्चे भी शिरा स्नायु मांस अस्थि प्रभव कहे गये हैं ॥

[अथ रज्जवः।] पृष्ठवंशस्योभयतः महत्यो मांसरज्जवः॥
चतस्रो मांसपेशीनां बन्धनन्तत् प्रयोजनम् ॥ १९८॥

अथ सेवन्यः।] सेवन्यः सप्त तासान्तु भवेयुः पंच मस्तके।
एका शेफसि जिह्वाया मेका विद्धनता क्वचित् ॥ १९९॥

अथ सङ्घातः।] (क) चतुर्दशास्थ्नां सङ्घाताः तेषान्त्रयो गुल्फ जानु वंक्षणेषु। एतेनेतर सक्थि बाहू च व्याख्यातौ। त्रिकं शिरसो रेकैकम्। अत्र तु त्रिकपदेन बाहू ग्रीवास्थि सङ्घात उच्यते।

भा० अनन्तर रज्जु कहतेहैं] पीठके बांस के दोनों तरफ बड़े मांसकी रज्जुहैं। चार मांस पेशीयोंके बन्धन इनका प्रयोजन है ॥ १९८॥
अनन्तर सेवनी कहते हैं।] सेवनी सातवी पांच मस्तक में हैं। एक शिश्न में जीभमें एक इनके बेधसे कभी मृत्यु होजाता है ॥ १९९॥ अनन्तर संघात कहते हैं ॥ चौदह अस्थियों के संघात हैं। (क) वो तीन गुल्फ जानू वंक्षण इनमें हैं। इसीतरह पर दूसरी सक्थि और बाहु व्याख्या कीगई। त्रिक और शिरमें एक एक हैं। यहाँपर त्रिकपदसे बाहु ग्रीवा अस्थि इनका संघात कहा है

अथ सीमन्ताः।] चतुर्दशैव सीमन्ताः कथिता मुनिपुङ्गवैः
सङ्घाताः छादिता यैस्तु सीमन्तास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ २००॥

(यै अस्थिभिः।) [अथ त्वचः।] क्षीरस्य पच्यमानस्य
यथा सन्तानिका भवेत् ॥ पच्यमानस्य शुक्रस्य रज
सश्च तथा त्वचः ॥ २०१॥ पूर्व्वावभासिनी तासां सि
ध्मस्थानं च सा स्मृता ॥ [अथावभासिनी।]

भा० अनन्तर सीमंत कहते हैं । मुनीश्वरों ने चौदह सीमन्त कहेहैं । जिनसे धातु शोभित होते हैं उनको सीमंत कहाहै । जिन अस्थियों से अनन्तर त्वचा कहते हैं ॥ परिपाक हुवे दुग्धकी मलाई जैसे होती है वैसेही परिपाक हुवे शुक्र की तथा रक्तकी त्वचा होती हैं ॥ १०१ ॥ पहिली अवभासनी नाम त्वचा है । वो सिध्मनाम कुष्ठका स्थान कही गई है ॥ अनन्तर अवभासनीको कहतेहैं

(क) भ्राजकेन पित्तेना वभासनात् । परिणाहेन विस्तारितस्य व्रीहेर्विंशति भागे ऽष्टादश भागः प्रमाणन्त्वस्याः॥ व्रीहि रत्र यवः॥ सा सिध्म पद्मकण्टक योरधिष्ठाना ।

द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालक जन्मभूः॥

(ख) सा यव षोडश भाग प्रमाणा तिलकालकन्यच्छ व्यङ्गना मधिष्ठानम् ।

भा० भ्राजक पित्तके द्वारा प्रकाश होनेसे । परिणाह से विस्तार कियेहुवे व्रीहिका बीसवां भाग वा अठारहवां भाग उसका प्रमाणहै । व्रीहि यहां पर जव कहागया है । वो सिध्म कंटकों की जगह हैं ॥ (ख) दूसरी लोहित जाननी चाहिये । जो तिलकालक की जगह हैं । वो जवके सोलवें हिस्सेका प्रमाणहै । और तिलकालक तथा न्यच्छ व्यङ्गोंका अधिष्ठान हैं ॥

(ग) तृतीया तु भवेच्छ्वेता स्थानञ्चर्म्मदलस्य सा॥

सा यवद्वादशभाग प्रमाणा चर्म्मदलाजगल्लिका मशकाना मधिष्ठानम् ।

ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्र भूमिका ॥

(यवाष्ट भाग प्रमाणा।)

पञ्चमी वेदिनी नाम्ना पञ्चभागा प्रमाणिका ॥

विसर्पकुष्ठाधिष्ठाना ज्ञेया षष्ठी तु लोहिता ॥ २०१॥

विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगण्डापचीस्थितिः।

व्रीहिमात्र प्रमाणा सा ग्रन्थिगण्डापचीस्थितिः॥२०२

(क) व्रीहि प्रमाणा ग्रन्थ्यपची गलगण्ड माला र्बुद श्ली पदानामधिष्ठानम्।

भा० (ग) तीसरी श्वेताहै वो चर्म्मदल की जगह हैं। वो जवके बारह वें भागके प्रमाणहैं। चर्म्मदल अजगल्लिका मशक इनकी जगह हैं ॥ (घ) चौथी ताम्राहै वो किल्लास और श्वित्रनाम कुष्टोंकी जगह हैं। वो जवके आठवें भागप्रमाणहै ॥ पांचवी वेदनी नाम जवके पांचवें भाग प्रमाण है। छठी विसर्पकुष्टकी जगह लोहित नामवालीहै ॥ २०२॥ प्रसिद्ध है छठी रोहिणी ग्रंथि गंडापचीकी जगह है। वो व्रीहिमात्र प्रमाण ग्रन्थिगण्डापची की जगह है ॥ २०३॥ व्रीहि प्रमाणवाली ग्रन्थि अपची गलगंडमाला अ र्बुद श्लीपद इनकी जगह है ॥

स्थूलात्वक् सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिः स्थ सा।

साव्रीहि द्वयप्रमाणा। तत्रयोक्तं शार्ङ्गधरेण स्थूला व्रीहि द्विमात्रयेति सप्तापि त्वचः सम्भुदिता विंशति तमभा- गो नष्टः यवप्रमाणा। षट्यवप्रमाणान्तु अङ्गुष्ठोदरतु- ल्यम। यत्र उक्तम्। उदरे व्व ङ्गुष्ठ प्रमाणं गाढ़ मय विध्ये दिति। एतत् प्रमाणं मांसलेषु स्थूलेषु बोद्धव्यम्। न तु ललाटसूक्ष्मा ङ्गुल्यादिषु ॥

भा० स्थूलत्वचा सातवीं प्रसिद्ध है वो विद्रधि आदिकी जगह है। वो दो व्रीहिके प्रमाण होती हैं। उसी से शार्ङ्गधरने कहाहै ॥ स्थूल व्रीहिकी दो मात्रा से। सात भी त्वचा कहीगई। विंशति तम भाग अर्थात् बीस वें भाग से बहुत दाल। नहिं छः जवके प्रमाण। छः जवके प्रमाण मो

अंगुठे के उदर के तुल्य होता है। जिस्सेकि कहा है। उदर में अंगुष्ठ प्रमाण बहुत नब्रेधकरे ॥ यह प्रमाण मांसल स्थूल जगह में जानना चाहिये। नकि मस्तक सूक्ष्म अंगुलियों में ॥

[अथ लोमानि लोमकूपाश्च]

अस्थ्नां मलानि लोमानि असंख्यानि भवन्ति हि ॥
सन्ति यावन्ति लोमानि तावन्तो लोमकूपकाः ॥ २०४॥
अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते ॥ सन्नि
वेशश्च गात्राणां मात्वास्ते कारणान्तरम् ॥ २०५॥

(क) निर्वृत्तिः सिद्धिः स्वभावात् ईश्वरात्। सन्निवेशो रचनाविशेषः ॥

भा० अनन्तर लोम और लोमकूपोंको कहतेहैं ॥ हड्डियों के मल लोम असंख्य हैं। जितने लोमहैं उतनेही लोम कूप हैं ॥ २०४॥ अंग और प्रत्यङ्ग की निर्वृत्ति स्वभाव से ही होतीहैं। और गात्रों का सन्निवेश अर्थात कारीगरी भी इसही में है कोई दूसरा कारण नहीं है ॥ २०५॥
(क) निर्वृत्तिः अर्थात् सिद्धिः स्वभावसे अर्थात् ईश्वर से सन्निवेश रचना विशेष ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तौ ये भवन्त्यगुणाः गुणाः ॥
ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्म्माधर्म्मनिमित्तजाः ॥ २०६॥
दन्तानां पतनं जन्म पुनः पाते त्वसम्भवः ॥ तले
ष्वनुद्भवो लोम्नामेतत् सर्व्वं स्वभावतः ॥ २०७॥
गर्भे मासि मासि यद्भवति । तदाह ॥

भा० अंग प्रत्यंग की निर्वृत्ति में जो गुण दोष होते हैं वो वो गर्भके जानने चाहिये धर्म और अधर्म के निमित्त से होते हैं ॥ २०६ ॥ दांतोंका गिरना और उत्पन्न होना तथा फिरसे गिरने में नहोना। और तलुवों में लोम

न होना येह सब स्वभावमेंही हैं ॥ २०७ ॥ गर्भका महीने २ में जो होना है उसको कहते हैं ॥

गर्भाशये निपतितं यादृक् शुक्रं तथार्त्तवम् ॥ तादृगेव द्रवीभूतं प्रथमे मासि तिष्ठति ॥ २०८ ॥ मरुत्पित्तकफैस्तत्रस्थः पच्यमाना द्वितीयके ॥ कललस्थं महाभूतं समुदायो धनी भवेत् ॥ २०९ ॥

(क) अत्र मरुत्कफयोरपि पाकहेतुत्वे तयोरप्यूष्मणोऽनधिकारत्वात् ॥ [यत उक्तं चरके।]

भा० गर्भाशय में जैसा शुक्र तथा रज गिरता है वैसाही गीलासा पहिले महीने में रहता है ॥ २०८ ॥ दूसरे महीने में उस स्थानमें रहनेवाले वात पित्त कफ से पकाया गया कललमें रहनेवाला महाभूतों का समुदाय गाढ़ा होता है ॥ २०९ ॥ (क) यहां पर वायु कफ को भी पाक हेतुत्व में उनका उष्माकार नहोने से । जैसे किकहा है चरक में ।

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः ॥ तृतीये मासि शिरसो हस्तयोः पादयोस्तथा ॥ २१० ॥ पिण्डिकाः पञ्च सिध्यन्ति सूक्ष्मास्त्वयवास्तनोः ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि चतुर्थे स्युः स्फुटानि हि ॥ २११ ॥ हृदयव्यक्तभावेन व्यज्यते चेतनापि च ॥ तस्माच्चतुर्थे गर्भस्तु नानावस्तूनि वाञ्छति ॥ २१२ ॥

भा० भूमिसम्बन्धि जलसम्बन्धि अग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि आकाशसम्बन्धि ये पांच उष्मा हैं ॥ तीसरे महीनेमें शिरको दोनों हाथोंकी और पैरोंकी दूसनरहपर पांच पिंडिका होती हैं और सूक्ष्म अवयव होते हैं ॥ २१० ॥ सम्पूर्ण अंग और उपांग चौथे महीने में प्रगट होते हैं ।

हृदय के प्रगट होने से चेतन भी स्पष्टमालूम होता है ॥ २११ ॥ इसीवास्ते चौथे महीने में गर्भ नाना वस्तुवों की इच्छा करता है । तिस्से दो हृदयवाली औरत होती है। उस वास्ते दोहृदिनी कही है ॥ २१२ ॥

ततो द्विहृदया यत्र स्यान्नारी दोहृदिनी मता ॥ दोहृदाद्यप्रिया कुब्जकुनिषण्डञ्च वामनम् ॥ २१२ ॥
विकृताक्षमनक्षं वा पुत्रं नारी प्रसूयते ॥ यतः स्त्री दोहृदं प्राप्य वीर्य्यवन्तं चिरायुषम् ॥ पुत्रं प्रसूयते तस्मात् तस्मै वाञ्छितमर्पयेत् ॥ २१४ ॥ इन्द्रियार्थास्तु यान्यान्भोक्तुं मिच्छति गर्भिणी ॥ गर्भवाधा भयात्तांस्तां भिषगा हृत्यदापयेत् ॥ २१४ ॥

भा० दोहृदके अपमान से कुब्ज लूला नपुंसक वावना बुरी आँखवाला वा बे आँखवाला इस किसिम के पुत्रको औरत जन्माती है ॥ २१३ ॥ और ऐसे स्त्री दोहृद को पाकर पराक्रमी दीर्घायु ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ इस वास्ते उसको वांछित देवें ॥ २१४ ॥ गर्भिणी जो जो खाने पीने और पहिरने की वस्तू इच्छा करे उनको गर्भबाधा के भयसे वैद्य लाके दिवावें ॥ २१४ ॥

[भोक्तु मुपभोक्तु मित्यर्थः।]

सा प्राप्तदोहृदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम् ॥ अलब्धदोहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ २१५ ॥
येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दोहृदे सावमानिता ॥ प्रसूयते सुतं तार्तिस्तास्मि स्तस्मिंस्तदिन्द्रिये ॥ २१६ ॥

भा० भोक्तुं अर्थात् उपभोगके अर्थ ॥ वो पाईहुई दोहृदवाली गुणयुक्त पुत्र उत्पन्न करती है । और नेलाभहुई दोहृदवाली अपनेमें कुछ भयको प्राप्त करती है या गर्भमें कुछ भयको प्राप्त करती है ॥ २१५ ॥ वोदोहृदनेंजो

इन्द्रिय के अर्थों को अवमान की गई अर्थात् खानेकी देखने की इत्यादिक वस्तुवों की चांहने पर नहीं गई वो उस उस इन्द्रियमें पीड़ाकरके युक्त पुत्रको जन्माती है ॥ २१६ ॥

[सात्तिसव्यथामदौहृदस्यविशेष फलमाह।]

राज सन्दर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियः॥ अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २१७॥
दुकूल पट्टकौशेय भूषणादिषु दौहृदात्॥ अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २१८॥
आश्रमे संयतात्मानं धर्म्मशीलं प्रसूयते ॥ देवता प्रतिमायन्तु प्रसूते पार्षदोपमम्॥ २१९॥

भा० दौहृदका विशेष फलकहते हैं ॥ जिन औरतों को राजाके देखने का दौहृद होता है। वह बड़ी प्रारब्ध वाला द्रव्यवान् पुत्र को उत्पन्न कर लेंहैं ॥ २१७ ॥ दुकूल पट्ट कौशेय अर्थात् रेशमी कपड़ा और अलंकार इत्यादिकों के दौहृद से अलंकार को चाहनेवाला सुंदर पुत्रकोवो उत्पन्न करती हैं ॥ २१८ ॥ आश्रम में एकाग्र चित्तवाला धर्म्मशील जनती है। देवताके प्रतिमासा और ममथ के ऐसा पुत्र उत्पन्न करती हैं ॥ २१९॥

(क) आश्रमे तपस्विनामाश्रमे दौहृदात् पार्षदोपमं प्रमथोपमम् ॥

दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ रक्तान्तं लोमशं शूरं महिषामिष दौहृदात्॥ २२०॥
वाराहमांसे स्वसालुं शूरं संजनयेत सुतम्॥ मृगमांसे तु नच्छीलं विक्रान्तं वन चारिणम्॥ २२१॥

भा० (क) आश्रम में अर्थात तपस्वियों के आश्रम में। व्यालजातियों-

के दर्शन में अर्थात् सर्पव्याघ्रादिकों के देखने में हिंसा स्वभाववाला उत्पन्न होता है ॥ भैंसके मांसके दोहद से लाल आंखवाला और बहुत रोवनेवाला मूर ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ २२० ॥ सूवर के मांस के दोहद से बहुत नींदवाला शूरको उत्पन्न करती है। मृग मांस में उसी का सा स्वभाव वाला विक्रान्त वनमें घूमनेवाला पुत्र उत्पन्न करती है ॥ २२१ ॥

अन्येऽनुक्तेषु या नारी दोहदं विदधाति हि ॥ शरी

राचार शीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ २२२ ॥

पञ्चमे मानसं षष्ठे बुद्धिश्चानि प्रबुद्धते ॥ सर्वा

ण्यङ्गान्युपाङ्गानि भृशं व्यक्तानि सप्तमे ॥ २२३॥

ओजोऽष्टमे सञ्चरति माता पुत्रौ मुहुः क्रमात् ॥ ते

न तौ म्लानमुदितौ स्यातां जातो न जीवति ॥ २२४

भा० इस्से जो कहा नहीं गया उस्में जो औरत दोहद को धारण करती है वो शरीर के आचार और शीलसे समानको करेगी ॥ २२२ ॥ पांचवें महीनें में मन छठे महीने में बुद्धि मालूम होती है ॥ सातवें महीने में सब अंग और उपांग अच्छीतरह से प्रगट होते हैं ॥ २२३ ॥ आठवें महीने में ओजमाता और लड़के में बार २ संचार करता है ॥ उस्से वो म्लान मुदित होते हैं। उस्में हुवा बालक नहीं जीता ॥ २२४ ॥

न जीवत्यष्टमे जातस्तत्रौ जो नस्थिरं यतः ॥ तथा

नैर्ऋत्यभाग त्वा द्दापये तद्बलिं ततः ॥ २२५ ॥

(नैर्ऋत्याय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः ॥)

[यत उक्तं कुमारतन्त्रे ।]

अष्टमे मासि नैर्ऋत्याय मांसोदनं बलिं दापयेदिति ।

नवमे दशमे मासि नारी बालं प्रसूयते ॥ एकाद-

शे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ २२६ ॥

भा० आठवें महीने में हुवा नहीं जीता क्यों कि उसमें ओज स्थिर नहीं रहता । उसी से नैर्ऋत्य के भाग होने से उसका बलि दिवावें ॥ २२५ ॥ नैर्ऋत्य के अर्थ भाग या नक को रुद्रने दिया । जैसा कि कुमारतन्त्र में कहा है ॥ आठवें महीने में नैर्ऋत्य के अर्थ मांसोदन बलि दिवावें । नवें दसवें महीनेमें औरत पुत्रको उत्पन्न करती हैं ॥ ग्यारवें महीने या बारहवें महीने पुत्र जनती हैं । इसके ऊपर विकार से हुवा जानना चाहिये ॥ २२६ ॥

गर्भे यदङ्गं प्रथमं भवति । तदाह ।

शिरो भवति चाङ्गस्य पूर्वमित्याह शौनकः ॥ शिरस्येवोपजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणि यत् ॥ २२७ ॥
हृदयं जायते पूर्वं कृतवीर्य्योऽवदन्मुनिः ॥ बुद्धेश्च मनसश्चापि यतस्तत् स्थानमीरितम् ॥ २२८ ॥
पाराशर्य्य इति प्राह पूर्वं नाभिसमुद्भवः ॥ प्राणी यत्र स्थितो देहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ २२९ ॥
पाणिपादं भवेत् पूर्वं मार्कण्डेय मुनेर्मतम् ॥ देहिनः सकलाः श्चेष्टाः पाणिपादाश्रया यतः ॥ २३० ॥

भा० गर्भमें जो अंग पहिले होता है उसको कहते हैं ॥ अंग के पहिले शिर होता है ऐसा शौनक कहते हैं ॥ क्यों कि शिरमेंही होती हैं मुख्य इन्द्रियें ॥ २२७ ॥ पहिले हृदय होता है । ऐसा कृतवीर्य्य मुनि कहते हैं । क्यों कि बुद्धि और मनका भी वोही स्थान कहा गया है ॥ २२८ ॥ पाराशर्य ऐसा कहते हैं कि पहिले नाभि होती है । जिसमें प्राण उष्मांहुवा देहको बढाता है ॥ २२९ ॥ हात पांव पहिले होते हैं ऐसा मार्कंडेय मुनिका मत है । क्यों कि देहकी संपूर्ण चेष्टा हाथ पावोंके आश्रय होती हैं ॥ २३० ॥

प्रथमं जायते कोष्ठं ततः सर्व्वाङ्गसम्भवः ॥ एतत्तु कथयामास गौतमो मुनिपुङ्गवः ॥ २३१ ॥ सर्व्वा-

ण्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत् सम्भवन्ति हि ॥ सूक्ष्म
त्वान्नोपलभ्यन्ते मते धन्वन्तरे रिदम् ॥ २३२॥
आमस्यानुफले भवन्ति युगपत् मांसास्थिमज्जादयो।
लक्ष्यन्ते न पृथक् पृथक् तनुतया पुष्टास्तएव स्फुटाः॥
एवं गर्भसमुद्भवे त्ववयवाः सर्वे भवन्त्ये कदा। लक्ष्याः
सूक्ष्मतया न ते प्रकटता मायान्ति वृद्धिङ्गताः॥२३३॥

भा० पहिले कोष्ठ होता है क्यों कि उससे संपूर्ण अंगकी उत्पत्ति होतीहै इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ गौतमजी महाराज ने कहाहै ॥ २३१ ॥ सब अंग और उपांग एक साथही उत्पन्न होतेहैं। सूक्ष्म होनेसे नहीं मालूम होते यह धन्वन्तरिका मतहै ॥ २३२ ॥ आमके छोटे फलमें एक साथही मांस अस्थिमज्जादिक होतेहैं। परन्तु अलग् अलग् नहीं मालूम होते बहुत सूक्ष्म होनेसे। और वोही पुष्ट हुवे स्फुट मालूम होते हैं ॥ २३३ ॥

(क) मज्जादयः इत्यादि शब्देन त्वक्केशार मज्जत्वगङ्कुर वृत्तानि गृह्यन्ते ॥ (ख) अथ शरीरे पितृज मातृज रसजात्मजा भागा उच्यन्ते। तत्र-

केशा श्मश्रु च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा॥
धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि॥२३५॥
मांसासृक् मज्जमेदांसि यकृत् प्लीहान्त्र नाभयः॥
हृदयञ्च गुदञ्चापि भवन्त्येतानि मातृजः॥२३६॥

भा० ऐसेही गर्भके उत्पन्न होने में सब अवयव एकसाथही होतेहैं। वे सूक्ष्म होनेसे प्रगट माको नहीं भासते और जब पुष्ट होते हैं तब देखने योग्य होतेहैं ॥ २३४ ॥ (क) मज्जादय इत्यादि शब्दसे त्वचा केशर मज्जा अङ्कुरादिक लियेगयेहैं। (ख) अनन्तर शरीर में पितृज मातृज रसज आ-

त्मज भागोंको कहते हैं ॥ उसमेंकेश श्मश्रु लोम नख दांत और शिरा तथा धमनि स्नायु शुक्र ये पितृज हैं ॥ २३५॥ मांस रुधिर मज्जा मेद यकृत् प्लीह आंत नाभि हृदय गुदा ये माता से बनी हैं ॥ २३६॥

शरीरोपचयो वर्णो बलं देह स्थिति स्तथा ॥ रसादेतानि जायन्ते भिषजो मुनयो जगुः ॥ २३७॥ ज्ञानं विज्ञानमायुश्च सुख दुःखादिकं तथा ॥ इन्द्रियाणि च सर्वाणि भवन्त्येतानि चात्मनः ॥ २३८॥

(क) दुःखादिकमित्यादि शब्देन नानायोनिजन्मादिकमुच्यते। आत्मनः आत्मसन्निकर्षात् नत्वात्मनो जायन्ते आत्मनो निर्विकारात् प्रकृतिभावानु पेतः॥

भा॰ शरीर की वृद्धि वर्ण बल और देहकी स्थिति ये रसही से उत्पन्न होतीहैं ऐसा वैद्य मुनि कहतेहैं ॥ २३७ ॥ ज्ञान विज्ञान आयु और सुख दुःख तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां ये अपनी हैं ॥ २३८॥ (क) सुख दुःखादि दुःख शब्द से नाना योनि के जन्मादिक कहेहैं ॥ आत्मनः अर्थात् आत्मा के सम्बन्धसे न कि आत्मासे उत्पन्न होताहै। आत्माका निर्विकार होने से प्रकृति भाव से मिलाहुवा है ॥

(गर्भस्य किं किं विशिष्टोपकारकं तत्त दाह।)

अग्नी सोमो मही वायुर्नभः सत्वं रजस्तमः ॥ पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मा गर्भं सञ्जीवयन्ति हि ॥२३९॥

(क) अग्निरत्र पाचका लोचक रञ्जक भ्राजक साधकानाम् तथा पाञ्चभौतिकानां तथा सप्तधातु गतानामग्नीनाम्। शक्तिरूपतयावस्थितो वाचोधि देवत्वं प्राप्तो यो-

गर्भके क्या २ अधिक उपकार कहे उसको कहते हैं ॥ अग्नि चन्द्र पृथ्वी वायु आकाश और सत्व रज तम तथा पांच इन्द्रियां और भूतात्मा गर्भको जिवाते हैं ॥ २३९॥ (क) अग्नि यहांपर पाचक आलोचक रंजक भ्राजक साधक इनकी तथा पंच महाभूत सम्बन्धियों की और सप्तधातु अग्नियों की शक्तिरूप करके ठहरा हुवा वाचाके अधिदेवत्व को प्राप्तहुवा जानना चाहिये

द्रव्यः ॥ (ख) स पाचकादिकर्म्मणा जीवयति सोमश्च पञ्चात्मक श्लेष्म रस शुक्रादीनां सोमात्मकानां भावानां रसेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतया वस्थितो मनसश्चाधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः। (ग) स च सौम्य धातोरोजः प्रभृतेः पोषणेन पवनपावक संशुष्क भागस्यार्द्रता विधानेन जीवयतीति शेषः।

भा० (ख) वो पाचकादि कर्म्मो से जिवाताहै। सोमभी पंचात्मक श्लेष्म रस शुक्रादि सोमात्मक भावोंका रसनेन्द्रियका भी शक्ति रूप करके ठहराहुवा मनके अधिदेवत्वको प्राप्तहुवा जानना चाहिये ॥
(ग) वो सौम्य धातु ओज प्रभृतिका पोषणके द्वारा अर्थात् वायु अग्नि से सूके हुवे भागको आर्द्रताके विधानसे पोषण करताहै ।

मही च जलेन क्लिन्नस्यापि कठिन विधानेन वपुर्दोष धातुमलाङ्गोपाङ्गादीनां सन्धारणेनोच्छ्वास निःश्वासाभ्यां मनोरूपतया परिणतं जीवात्मनः शरीरान्तरे जीवन ग्रहण मोक्षणे हेतुरिति तदपि जीवयति पञ्चेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वङ्नेत्र जिह्वा घ्राणानि शब्दादि ग्रहणकर्म्मणा ॥

भा० पृथ्वी भी जलसे क्लिन्न हुवेका भी कठिन विधानसे शरीर के शेषधातु मल और अंगोपाङ्गादिकोंका संचारण से तथा उच्छास निश्वासों के द्वारा मनोरूप करके परिणाम को प्राप्त जीवात्मा के शरीर के बीच में जीवन ग्रहण मोक्षणका हेतु हैं । वो भी जीवताहै पंचेन्द्रियों को श्रोत्र त्वचा । नेत्र जिह्वा घ्राणोंको शब्दादियों के ग्रहण कर्म्मसे ॥

(घ) भूतात्मा कर्म्मपुरुषः स चाशेषस्य च राशेश्चैतन्य हेतुर्जीवयतीति । [अपरं गर्भस्यजीवनोपायमाह]

गर्भस्य नाभिनाड्या तु नाड़ी रसवहा स्त्रियाः ॥
संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यशः ॥ २५०॥
निःश्वासोच्छास संक्षोभस्वप्नांशान् सोऽधिगच्छति।
मातुर्निश्वसितोच्छ्वाससङ्क्षोभ स्वप्नसम्भवान् २५१

(क) सङ्क्षोभः सञ्चलनं माता निश्वासादिकायाश्चेष्टाः करोति तास्ता गर्भोऽपि करोतीत्यर्थः ॥

भा० (घ) भूतात्मा कर्म्मपुरुष वो सम्पूर्णराशिका चैतन्य कारण जीवन करता है । गर्भ के नाभिकी नाड़ीसे औरतोंकी रसवहा नाड़ी मिली है उससे प्रतिदिन गर्भकी वृद्धि होती है ॥ २५० ॥ माता के निश्वास श्वास से और उच्छ्वास संचलन तथा स्वप्न इनके संभव से निःश्वासउच्छ्वास संक्षोभ स्वप्नांश इनको वह प्राप्त होताहै ॥ २५१ ॥

(क) अर्थात् माताके सांस लेनेसे गर्भ सांस लेता है उसके सोने से वो सोता है उसके चलने फिरनेसे वह चलता फिरता है ॥ संक्षोभ अर्थात् हिलना ॥

[अथ गर्भवृद्धेर्हेतुमुपायमाह ।]

गर्भस्य नाभिमध्ये तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम् ॥
तदाधमति वातस्तु देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥ २५२ ॥
उष्मणा सहितश्चापि दारयन्त्यस्य मारुतः ॥ ऊर्द्धंति-

र्ध्वंगधस्ताच्च स्रोतान्सि तु यथा तथा ॥ २५३॥
(क) यथा दारयति विस्तारयति । तथा तथा देही वर्द्ध
यति इति पूर्वेणान्वयः। दृष्टिरोम कूपानाम वृद्धिमाह।
दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्द्धन्ते कदाचन ॥ ध्रुवा-
ण्येतानि मर्त्यानामिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ २५४॥

भा० अनन्तर गर्भ वृद्धि के कारण उपाय को कहते हैं ॥ गर्भ की नाभि के बीचमें ज्योतिस्थान कहा गया है। जब वायु उसको धोंकता है तब इसका देह बढ़ता है ॥ २५२ ॥ उष्णा करके सहित भी वायु ऊंचा नीचा तिरछा जैसे तैसे इसको दारण करता है ॥ २५३ ॥
(क) जैसेजैसे दारण करता है अर्थात् विस्तार करता है वैसे २ देह बढ़ती है। इस प्रकार पूर्वके साथ अन्वय है ॥ दृष्टि रोमकूपों की वृद्धि कहते हैं। दृष्टि और रोमकूप ये कभी भी नहीं बढ़ते। क्यों कि मनुष्यों के ये सदासे हैं ऐसा धन्वन्तरि का मत है ॥ २५४ ॥

[नखकेशानां सदा वृद्धिमाह]

शरीरे क्षीयमाणेऽपि वर्द्धेते द्वाविमौ सदा ॥ स्वभा
वं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ २५५।
(प्रकृतिंकृत्वा कारणं कृत्वा स्थिति मर्य्यादा)।

[अचेतनान्यङ्गान्याह।]

चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः ॥ केश
लोमनखाग्रान्तमलद्रव्य गुणैर्विना ॥ २५६ ॥

भा० नखकेशों की सदा वृद्धि कहते हैं। शरीर के क्षीण होनेपर भी ये दो सदा बढ़ते हैं। स्वभाव प्रकृतिको करके, अर्थात् कारण करके नख केश इस प्रकार रहते हैं ॥ २५५॥ अचेतन अंगों को कहते हैं ॥ चेतनों का अधिष्ठान मन और इन्द्रियों के साथ देह मल द्रव्य गुणों के विना केश लोम नख

के अग्रपर्यंत हैं ॥ २४६ ॥ गर्भको वान मल मूत्र के नकरने में कारण कहते हैं ॥

[गर्भस्य वानविणमूत्रोत्सर्गाकरणे कारणमाह]

वातात्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च ॥ वा
तमूत्र पुरीषाणि गर्भस्थो न विमुञ्चति ॥ २४७ ॥

(अयोगात् । दुष्टयोगात् ।) गर्भारोदने कारणमाह ।

जरायुणा मुखे छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते ॥ वायो
र्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ॥ २४८ ॥

भा० पक्वाशय के वात के अल्प होने से तथा वायुके थोड़े होने से वात मूत्र मलको गर्भमें रहनेवाला नहीं छोड़ता ॥ २४७ ॥ अयोगसे अर्थात् थोड़े योगसे ॥ गर्भके नरोनेका कारण कहते हैं] गर्भाशय से मुख ढका रहने और कफसे कण्ठ वेष्टित होने में वायुका मार्ग रुकने से गर्भ में रहने वाला नहिं रोता ॥ २४८ ॥

[अथ गर्भवती कृत्या कृत्यानि ।]

गुर्विणी प्रथमा दन्हः प्रहृष्टा भूषिता शुचिः ॥ भवे
च्छुक्लाम्बरधरा गुरुविप्रार्च्चने रता ॥ २४९ ॥ भोज्य
न्तुमधुरप्रायं स्निग्धं हृद्यन्द्रवं लघु ॥ संस्कृतं दीपनी
यन्तु नित्यमेवोपयोजयेत ॥ २५० ॥ गुर्विणी नतु कु
र्वीत व्यायाम मपतर्पणम् ॥ व्यवायञ्च न सेवेत न
कुर्यादति तर्पणम् ॥ २५१ ॥

भा० अनन्तर गर्भवतीके कृत्य और अकृत्योंको कहते हैं ॥ गर्भणी पहिले दिनसे हर्षयुक्त भूषणोंसे युक्त पवित्र रहे और श्वेतवस्त्र को धारण करने

वाली तथा गुरु ब्राह्मणोंकी पूजामें तत्पर होवे ॥ २४९॥ और भोजन मधुर प्राय स्निग्ध स्वादिष्ठ हलका संस्कार किया हुवा और दीपनीय ऐसे भोजन को नित्य उपयोग करें अर्थात् भोजन करें ॥ २५०॥ गर्भिणी व्यायाम अर्थात् कसरत और उपतर्पण इनको नकरे तथा व्यवाय अर्थात् मैथुन इसको भीन करे और बहुत तृप्ति भी नकरे ॥ २५१॥

रात्रौ जागरणं शोकं यानस्यारोहणं तथा ॥ रक्तमोक्षं वेगरोधं न कुर्य्यादुत्कटासनम् ॥ २५२॥ दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते ॥ स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ २५३॥ मलिनां विकृताकारां हीनाङ्गीञ्च स्पृशेन् स्त्रियम् ॥ न जिघ्रेदपि दुर्गन्धं न पश्ये न्नयना प्रियम् ॥ २५४॥ वचांसि नापि शृणुयात्कर्णयोरप्रियाणि च ॥ नान्नं पर्य्युषितं शुष्कं भुञ्जीत क्वथितं न च ॥ २५५॥

भा॰ रात्र में जागना शोक और सवारीका चढना तथा फस्त लेना चोदह वेगों का रोकना और उकडूबैठना इनको भी गर्भिणी नकरें ॥ २५२॥ दोष और अभिघात से जो २ भाग गर्भिणीका पीड़ित होता है वो २ भाग उस गर्भ में रहनेवाले बालक का भी पीड़ित होता है ॥ २५३॥ मलीन विकृत आकार वाली हीन अंगवाली ऐसी स्त्री की स्पर्श नकरें। दुर्गन्ध को न सूंघें और नेत्रके अप्रियको न देखें ॥ २५४॥ कानों को अप्रिय वाणीको भी न सुनें। बासी सूखा औटा दिया हुवा ऐसे अन्नको भोजन नकरें ॥ २५५॥

चैत्यपमशान वृक्षांश्च भावांश्चाप्ययशस्करान्॥ वहिर्निष्क्रमणं क्रोधं शून्यागारञ्च वर्ज्जयेत् २५६ नोच्चैः ब्रूयान्न तत्कुर्याद् येन गर्भो विनश्यति ॥ ने

लाभ्यङ्गोद्वर्त्तनञ्च नात्यर्थं कारयेदपि ॥ २५७ ॥
नात्युहासनं कुर्य्यान्नात्युच्चं शयनासनम् ॥ एतां
स्तु नियमान् सर्वान् यत्नात् कुर्व्वीत गुर्विणी ॥ २५८

भा० चैत्य श्मशान वृक्ष और अपशकुन करने वाले पदार्थ । तथा वा
हर का जाना क्रोध और सूनेमकान, इनको त्यागदेवे ॥ २५६॥ उच्च
स्वर से नबोले और उसकोनकरे जिस्से गर्भ नष्ट होवे । तेलका लगाना उ
बटना इनको बहुत नकरे ॥ २५७ ॥ चुभने योग्य बिस्तरानकरे । तथा
बहुत ऊंचेपर शयन आसन नकरे । इन सब नियमों को गर्भिणी यत्न से
करे ॥ २५८ ॥

[अथ प्रसवमासानाह]

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते ॥ एकाद
शे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ २५९ ॥

[अथ सूतिका गृहाकृतिः ।]

अष्टहस्तायतञ्चारु चतुर्हस्त विशालकम् ॥ प्रा
चीद्वार मुदग्द्वारं विदध्यात् सूतिका गृहम् २६०

भा० अनन्तर बालक होनेके महीनोंको कहते हैं ॥ स्त्री नवम दशम मा
स में बालक को जनाती है ॥ अथवा ग्यारह बारह मासमें पुत्रको उत्प
न्नकरती है । उसके ऊपर विकार से होता है ॥ २५९ ॥ अनन्तर सूति
का गृहकी आकृति कहते हैं ॥ आठ हाथ चौड़ा चार हाथ लंबा सुन्दर
पूरब उत्तर दरवाज़ा ऐसा सूतिका घर बनावे ॥ २६० ॥

[आसन्न प्रसवायाःलक्षणमाह ।]

याते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदय बन्धने ॥ सशू
ले जघने नारी विज्ञेया प्रसवोन्मुखा ॥ २६१ ॥ आ
सन्न प्रसवायास्तु कटीपृष्ठन्तु सम्पथम ॥ भवेत्

मुहुः प्रवृत्तिश्च मूत्रस्य च मलस्य च ॥ २६२ ॥

[अथासन्नप्रसवाया उपचारः।]

तैलेनाभ्यक्तगात्राणां संस्नाता मुष्णवारिणा ॥ य
वागूम्पाययेत् कोष्णां मात्रया घृतसंयुताम् ॥ २६३ ॥
कृतोपधाने मृदुभि विस्तीर्णे शयने शनैः ॥ आभु-
ग्नसक्थि चोत्ताना नारी निष्ठ द्वयान्विता ॥ २६४ ॥

भा० आसन्न बालक होनेवाली का लक्षण कहते हैं ॥ कुक्षके ढीले होने में और हृदयबन्धन के छूटने में तथा कटिदेश में शूल होनेसे निकट प्रसव होनेवाली स्त्री जाननी चाहिये ॥ २६१ ॥ आसन्न प्रसवा के कटिपीठ इसमें पीड़ा और बार बार मल मूत्र की प्रवृत्ति ये होती हैं ॥ २६२ ॥

अनन्तर आसन्न प्रसवा का उपचार कहते हैं ॥ शरीर को तेल लगाकर गरम पानी से स्नान की हुई घृत से मिले हुवे कुछ गरम यवागू को मात्रा से पिलाई जावे ॥ २६३ ॥ जोंघों को न सिकुड़ के उत्तान पीड़ाकरके युक्त स्त्री रहे ॥

(आभुग्नसक्थि आसङ्कोचितोरू।) अथ जनयित्री।]

चतस्रोऽशङ्कनीयाश्च स्नावने कुशला हिताः ॥ वृद्धाः
परिचरे सुताः सम्यक् छिन्ननखाः स्त्रियः ॥ २६५ ॥

[अथ जनयित्री कृत्यम्।]

अपत्यमार्गं तैलेन समभ्यज्य समन्ततः ॥ स का तु
तास्तु सुभगे प्रवाहस्वेति नो वदेत् ॥ २६६ ॥

भा० अनन्तर दाईको कहते हैं ॥ चार अशंकनीय और हित स्नावन में कुशल वृद्धी और नखसे रहित वो दाइयाँ सेवा करें ॥ २६५ ॥

[अनन्तर दाइयों का कृत्य कहते हैं।]

गर्भमार्गके आसपास तेल चुपड़के। एक उनमेंसे सुभगे प्रवाहण कर ऐसा उसको कहे ॥ २६६ ॥

अव्यथामा प्रवाहिष्ठाः प्रवाहेथा व्यथा यदि ॥ प्रवाहेथाः शनैः पूर्वं प्रगाढञ्च ततः परम् ॥ २६७॥ ततो गाढतरं गर्भे योनिद्वार मुपागते ॥ २६८॥ अपरासहितो गर्भो यावन्न पतति भूतले ॥ २६९ ॥

[व्यथारहितायाः प्रवाहणादेर्दुगुण्यमाह।]

मूकं वा बधिरं कुब्जं श्वास कास क्षयान्वितम् ॥ सूते ध्वस्ततनुं बालमकाले तु प्रवाहणात् ॥ २६९॥

इति श्रीमिश्रलटकन तनय श्रीमन्मिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे गर्भप्रकरणं द्वितीयम् ॥ २॥

भा० प्रवाहण अर्थात् पीछेसे दवाना। व्यथा नहोतो प्रवाहण न करे। और यदि व्यथा होतो प्रवाहण करे। पहिले धीरे २ प्रवाहण करे उसके अनन्तर ज़ोरसे करे ॥ २६७ ॥ और जब गर्भ योनि द्वारमें आवे तोउससे भी अधिक प्रवाहण करे। जब तक नालके साथ गर्भ भूमिपर गिरे तबतक प्रवाहण खूब ज़ोरसे करे ॥ २६८ ॥ व्यथा रहित के प्रवाहण से जो नुकसान होता है उसको कहते हैं। गूंगा या बहिरा कुबड़ा अथवा श्वांस कांस क्षयसे युक्त। अकाल के प्रवाहण से इस प्रकार का और ध्वस्त शरीर बालक को उत्पन्न करती है ॥ २६९ ॥

इतिश्री मिश्रलटकन के पुत्र श्रीभाव मिश्र का विरचित भाव प्रकाश में दूसरा बालक का प्रकरण समाप्त ॥ २॥ ॐ

[अथबालस्य जन्मोत्तर विधिः]

अथ बाले समुत्पन्ने विदधीत विधिं ततः ॥ यथैव

कुलवृद्धा स्त्रीव्यवहार परम्परा ॥१॥
[अथ प्रसूताया नियमानाह।]

प्रसूता हितमाहारं विहारञ्च समाचरेत् ॥ व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां विवर्जयेत् ॥ २॥ मिथ्याचारात् सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते ॥ स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ३॥

भा० अनन्तर बालक के जन्म होने के अनन्तर की विधी कहते हैं ॥ अनन्तर बालक होवेपर कुलकी वृद्ध स्त्री ... हे अनुसार विधिकरे ॥१॥ [अनन्तर जच्चा के नियम कहते हैं] जच्चा हित आहार और विहार कोकरे। श्रम मैथुन क्रोध सेवन छोड़देवे ॥२॥ विरुद्ध आचार से जच्चा को जो व्याधि होती है॥ वो कष्टसाध्य या असाध्य होती है। इसवास्ते पथ्यकरे ॥ ३॥

[प्रसूताया नियमसमयाऽवधिमाह।]

सर्वतः परिशुद्धा स्यात् स्निग्धपथ्याऽल्पभोजना॥ स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ ४ ॥

(क) सर्वतः परिशुद्धा तु अवसृष्ट दुष्टरुधिरा अतन्द्रिता सावधाना ॥

प्रसूता सार्द्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्त्तवे ॥ सूतिकानाम हीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर जच्चा के नियम समय की अवधि कहते हैं ॥ एक मास पर्यंत जच्चा का दुष्ट रुधिर निकले और माथ इनके हितु भोजन करे ॥ तेलका लगाना पसीना लिवाना रोज़करे और सावधान रहै ॥ ४॥-सर्वतः परिशुद्धा अर्थात निःसृत दुष्ट रुधिरा अतन्द्रित अर्थात् सावधान। यदि जच्चा डेढ़ महीने के बाद रजस्वला हो तो जच्चापने से हीन होती हे वह धन्वन्तरिका मतहे ॥ ५॥

व्युपद्रवां विशुद्धाञ्च विज्ञाय वरवर्णिनीम् ॥ ऊ-
र्द्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो नियमं परिहारयेत् ॥ ६ ॥

[अथ स्तन्यस्वरूपमाह।]

रसप्रसादो मधुरः पक्काहारनिमित्तजः ॥ कृत्स्नाद्दे
हात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ ७ ॥
(रसप्रसाद रसस्य सारः।) [स्तन्यस्य प्रवृत्तिमाह।]
स्तन्यं त्रिरात्रात् स्त्रीणां वा चतूरात्रादनन्तरम् ॥ प्र
वर्तयन्ति विवृत्ता धमन्यो हृदयेः स्थिताः ॥ ८ ॥

भा॰ सुहागवाली को उपद्रव से हीन और विशुद्ध देखके। चार महीनेके बा
द नियम छुड़ादेवे ॥ ६ ॥ [अनन्तर दूधका स्वरूप कहते हैं]
रस का सार मधुर पक्क आहार से उत्पन्न हुवा। सम्पूर्ण शरीर से स्तन में पहुं
चा दूध कहाता है ॥ ७ ॥ (रसप्रसाद अर्थात् रसकासार ॥) दूधके निक
सनेको कहते हैं। स्त्रियों का दुग्ध तीन या चार दिनके बाद हृदय में रहने वा
ली फैलीहुई धमनियां निकालतीहैं ॥ ८ ॥

[अथ स्तन्यप्रवृत्तिमाह।]

पयःपुनस्य संस्पर्शाद्दर्शनात् स्पर्शनादपि ॥ ग्रह-
णादप्यु रोजस्य शुक्रवत्सं प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥ स्नेहो
निरन्तरःस्तस्य प्रवाहे हेतुरुच्यते ॥

[अथ स्तन्यस्याल्पतेहेतुमाह।]

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात् क्रोधादत्यय तर्पणात् ॥
स्त्रीणां स्तन्यं भवेत् स्वल्पं गर्भान्तर विधारणात् ॥ १० ॥

[अथ स्तन्यस्य वृद्धिहेतुमाह।]

भा० अनन्तर स्तन्यकी प्रवृत्तिको कहते हैं ॥ दूध पुत्रको छाती से लगाने से देखने से । या छाती के पकड़ने से अथवा चूचियों को छूने से शुक्रके मानिंद निकलता है ॥ ९ ॥ प्रेम उसके निरन्तर निकलने में कारण कहा है ॥ अनन्तर दूध के उत्पन्न होनेमें कारण कहते हैं ॥ प्रेमके न होनेसे भयसे शोक से क्रोधसे और तृप्ति के न होने से ॥ स्त्रियों का दूध अल्प होता है । अथवा दूसरे गर्भको धारण करने से अल्प होता है ॥ १० ॥

शालिषष्टीक गोधूमान् मांस क्षुद्र यवानपि ॥ कालशाक मलावूञ्च नारिकेरं कसेरुकम् ॥ ११ ॥ शृङ्गाटकं वरींचापि विदारी कन्द मेवच ॥ लशुनं दुग्ध वृद्धै स्त्री सेवेत सुमना भवेत् ॥ १२ ॥ कमलमस्य तण्डुलानां कल्कं या क्षीर पेषितम् पिबति ॥ सा भवति भृशं तरुणी क्षीरभरे णैव तुङ्ग कुचयुगला ॥ ॥ १३ ॥ [कलमो धान्यविशेषस्तस्य लक्षणमाह ।]

भा० अनन्तर दूधके बढ़नेका कारण कहते हैं । काल शाक इसको श्राद्ध शाक भी कहते हैं ॥ और गौड़ देश में नरिका प्रसिद्ध है । और कद्दू नारिकेल कसेरू ॥ ११ ॥ सिंघाड़े शतावरी विदारीकन्द लहसुन । इनको स्त्री दुग्ध वृद्धि के अर्थ सेवन करे उस्से भरेहुवे स्तनवाली होती है ॥ १२ ॥ कलम एक किसिमका कश्मीर में बड़ा धान होताहै उसके चावलोंको दूध से पीसेहुवे कल्कको जो पीती है । वो तरुणी अत्यन्त दूधके भारसेही उन्नत दोनों कुचवाली होतीहै ॥ १३ ॥ कलमधान्य विशेष है उसका लक्षण कहते हैं ॥

कलमः कलिविख्यातो जायते स द्वहद्वने ॥ काश्मीरदेश एवोक्तो महा तण्डुल संज्ञकः ॥ १४ ॥ विदारि कन्दस्य रसं पिबेत् स्तन्यस्य विवृद्धये ॥ तच्चूर्णं तस्य वृध्यर्थं पिबेद्वा क्षीरसंयुतम् ॥ २५ ॥

कलम कलि नाम से प्रसिद्ध वो बड़े बनमें होता है। काश्मीर देशमें महा तंडुल नाम से कहते हैं ॥ १४ ॥ दुग्धकी वृद्धिके अर्थ विदारीकंद का रस पीवे ॥ अथवा उसका चूर्ण दुग्ध वृद्धिके अर्थ दूधके साथ पीवे ॥ १५ ॥

[अथ स्तन्यस्य दुष्टहेतुमाह।]

धात्र्या गुरुभिराहारै र्विहारै र्दोषलै स्तथा ॥ देह दोषाः प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ १६ ॥
मिथ्याहार विहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ॥ दूषयन्ति पयस्तेन शारीर व्याधयः शिशोः ॥ १७ ॥

भा० अनन्तर दूधके दुष्ट होनेका कारण कहते हैं ॥ गरिष्ट और दोषल आहार विहारों से धायके शरीर में दोष प्रकोप को प्राप्त होते हैं। उस्से दुग्ध बिगड़ताहै ॥ १६ ॥ विरुद्ध आहार और विहार वाली स्त्रीके दुष्ट वातादिक दूधको बिगाड़तेहैं। उस्से बालक के शरीर में रोग होतेहैं ॥ १७ ॥

[अथ दुष्टस्तन्यस्य लक्षणमाह।]

कषायं सलिल स्रावि स्तन्यं मारुत दूषितम् ॥ पित्ता दम्लञ्च कटुकं राज्योऽम्भसि तु पीतिका ॥ १८ ॥
कफ दुष्टन्तु मतोये निमज्जति च पिच्छिलम् ॥ द्वन्द्वजन्तु द्विलिङ्गं स्यात् त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर दुष्टदुग्ध का लक्षण कहते हैं ॥ कसैला पानीमें तैरने वाला ऐसा दुग्ध वायुसे दूषित होता है। पित्तसे खट्टा कडुवा जलमें डालने से पीली लकीरें होतीहैं ॥ १८ ॥ और जो दुग्ध कफ से दुष्ट होता है वह पानीमें डूबजाताहै तथा पिच्छिल होताहै। और दो लक्षण वाला द्वन्द्वज तथा तीन लक्षणवाला सान्निपातिक होताहै ॥ १९ ॥

[अनन्तर बिगड़े दुग्धकी शोधन विधि कहते हैं]

अथ दुष्टस्तन्यस्य शोधन विधिमाह।

धात्री क्षीर विशुद्धार्थं मुद्गयूष रसाशिनी ॥ भार्गी दा
रु बचा पिष्ट्वा पिबेत्साति विषास्तथा ॥ २०॥ पाठा
मूर्वाब्द भूनिम्बे दारु शुण्ठी कालिङ्गकैः॥ सारि
वा मत्स्य पित्ताख्यैः क्वाथः स्तन्य विशोधनः॥ २१

(मत्स्य पित्ता कटुकी)

पटोल निम्बासन दारु पाठा मूर्वा गुडूची कटु रोहि-
णीञ्च ॥ सनागरञ्च क्वथितञ्च तोये धात्री पिबेत्
स्तन्य विशुद्धि हेतोः ॥ २२॥

भा० धाय दूध अच्छा होने के वास्ते मूंग का पानी और रसा भोजन करने वाली होवे। भारंगी दार हंदी बच अतीस इनको पीसके पीवे ॥ २०॥ पाठा मुरी नागर मोथा चिरायता दारहंदी सोंठ करंजुवा। सारिवा कुटकी इन का क्वाथ दूध शोधक है ॥ २१॥ (मत्स्य पित्ता कुटकी। पटोल पत्र निम्ब आसन दारहंदी पाठा मुरी गिलोय कुटकी और सोंठ जल में औटा- के धाय पीवे दुग्ध शुद्धि के अर्थ ॥ २२॥

[अथ शुद्धस्य लक्षणमाह।]

नीरे स्तन्यं यदेकी स्या दच्छिवर्ण मतन्तुमत् ॥ पाण्डु
रं तनु शीतञ्च तद्दुग्धं शुद्धमादिशेत् ॥ २३॥

[धात्री लक्षणमाह।]

पीताय यदि बालस्य विदध्या दुपमातरम् ॥ सुवि
चार्य्य गुणान्दोषान् कुर्य्याद्धात्रीं तदेदृशीम् ॥ २४

भा० अनन्तर शुद्धका लक्षण कहतेहैं ॥ जब पानीमें दूध मिल जावे और दधिसा वर्ण और तारसे रहित ॥ शुभ्र सूक्ष्म तथा शीत ऐसे दूधको शुद्ध कहतेहैं ॥ २३॥ [धात्री अर्थात् धायका लक्षण कहते हैं]

जब बालक को दूध पीने के वास्ते धाय रक्खे। तो गुणदोषों को अच्छे प्रकार विचारकरके तब इस प्रकार की धाय रक्खे ॥ २४ ॥

सवर्णां मध्यवयसां सच्छीलां मुदितां सदा ॥ शुद्ध
दुग्धांम्बहु क्षीरां सवत्सामति वत्सलाम् ॥२५॥
स्वाधीनामल्पसन्तुष्टां कुलीनां सज्जनात्मजाम् ॥
कैतवेना परित्यक्तां निजपुत्र दृशं शिशौ ॥ २६ ॥

भा० अपनी ज़ात की बीचवयवाली अच्छे स्वभाववाली सर्वदा हर्षयुक्त रहनेवाली शुद्ध दुग्धवाली बहुत दुग्धवाली बचोंवाली बहुत प्रीतिवाली ॥ २५ ॥ स्वाधीन और थोड़ेमें सन्तोष होनेवाली कुलीन तथा अच्छे घर की बेटी और धूर्ततासे रहित बालक में निजपुत्र के समान दृष्टि रखनेवाली ऐसी धाय को करे ॥ २६ ॥

[अथ निषिद्धां धात्रीमाह ।]

शोकाकुला क्षुधार्त्ता च श्रान्ता व्याधिमती सदा ॥
अत्युच्चा नितरां नीचा स्थूलाती व भृशाकृशा ॥ २७ ॥
गर्भिणी ज्वरिणी चापि लम्बोन्नत पयोधरा ॥ अजी-
र्णी भोजिनी चापि तथा पथ्य विवर्ज्जिता ॥ २८ ॥
आसक्ता क्षुद्रकार्य्येतु दुःखार्त्ता चञ्चलापि च ॥
एतासां स्तन्यपानेन शिशुर्भवति सामयः ॥ २९ ॥

भा० अनन्तर निषिद्ध धात्री को कहते हैं। शोक से व्याकुल क्षुधासे पीड़ित थकी हुई और सदाकी रोगवाली। बहुत ऊंची और बहुत नीची या बहुत मोटी अथवा बहुत दुर्बल ॥ २७ ॥ गर्भिणी ज्वरवाली बहुत लंबे और बहुत बड़े चूंचेवाली अजीर्ण में भोजन करनेवाली तथा पथ्यसे रहित ॥ २८ ॥ क्षुद्र कार्य्यों में आसक्त और दुःख से पीड़ित और चञ्चल। इन के दुग्ध पान से बालक व्याधियुक्त होता है ॥ २९ ॥

[अथ बालस्य स्तन्यपान विधिः ।]

तत्र माता प्रशस्ताङ्गी चारुवस्त्रा पुरो मुखी ॥ उपवि-
श्यासने सम्यग्द क्षिणं स्तनमम्बुना ॥ ३०॥ प्रक्षा
ल्येषत्परिस्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम् ॥ उद-
ङ्मुखं शिशुं क्रोडे शनैः सन्धार्य पाययेत् ॥ ३१॥
(मातेत्युपलक्षणम् धात्रीच ईषत्परिस्राव्य।)

[अन्यथा वैगुण्यमाह।]सुश्रुतः।

अस्रावितं स्तनं बालः पिबन् स्तन्येन भूयसा ॥ पू-
र्णस्रोत वमीकास श्वासै र्भवति पीड़ितः॥ ३२॥

भा० अनन्तर बालक के दुधपान की विधि कहते हैं॥ उसमें अच्छे अ-
गवाली और अच्छे कपड़ोंको पहरीहुई माता आगेकी तरफ़ मुखकी हुई
आसनपर बैठकर अच्छीतरह पर दाई चूंची को पानीसे धोकर ॥ ३०॥
और थोड़ासा दूध निचोड़के मन्त्रों से अभिमंत्रित कर उत्तर मुख बालक
को गोदमेंलेके धीरे २ पिलावे ॥ ३१॥ माता का यह उपलक्षण है धायभी
थोड़ा निचोड़के) इसके विरुद्ध करनेसे जो विगाड़ होता है उसको सुश्रुत
कहतेहैं। बे निचोड़ीहुई चूची को बालक पीकर बहुत दूधसे नाड़ियों
के स्रोत भरना वमन कास श्वास इनके द्वारा पीड़ित होता है ॥ ३२॥

[अभिमंत्रणमाह।]

क्षीरक्षीर निधिस्तेतु स्तनयो क्षीर पूरकः ॥ सदैव सु-
भगो बालो भवत्वेष महाबलः ॥ ३३॥ पयोऽमृ
त समम्पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ॥ दीर्घमायु र
वाप्नोतु देवाः प्राप्यामृतं यथा ॥ ३४॥

भा० अभिमंत्रण को कहते हैं॥ यह मंत्र यांपर लिखे ॥

(क) मन्त्रौच पित्रान्येन ब्राह्मणेन पठनीयो)

यावन्मन्त्र पाठस्तावन्माला धात्र्या दक्षिण हस्तेन स्पर्शः कार्य्यः।

[अथजनन्याः क्षीराभावे धात्र्याश्चालाभे प्रकारमाह।]

क्षीरसात्मातथा क्षीर माजङ्गव्य मथापिवा॥ दद्यादा स्तन्य पर्य्यान्ते वालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया॥ ३५॥

(ख) क्षीरसात्म्यतयेति यतः शिशोः क्षीरमेवा सात्म्यम्भवति न त्वन्नादिकम्। स्तन्य पर्य्यान्ते रिति यावत्त् स्त्रियाः स्तन्यस्य सन्ततौ भावेन प्राप्ति र्भवति। अथ यावत् स्तन्य पानस्य योग्यता तावदित्यर्थः॥

भा० (क) पिता और ब्राह्मणों के द्वारा इन मन्त्रों को पढ़वावे। जब तक मन्त्र पाठ होवे तब तक माँ या धाय दहिने हाथ से स्पर्श करे। अनन्तर माँ के दूध न होने मे या धायके न मिलनेमें प्रकार को कहते हैं॥ क्षीर की सात्म्यता से दूध बकरी का गायका देवे। दूध पीनेकी योग्यता तक देखकर माज्ञा से वालक के अर्थ देवे॥ ३५॥

(ख) क्षीर सात्म्यता इति। क्यों कि वालक को दूधही सात्म्य होताहै। न कि अन्नादिक। स्तन्य पार्य्यान्तेः इति। अर्थात् जब तक स्त्रियों के दूध की निरन्तर भावसे प्राप्ति होती है। अथवा। जब तक दुग्ध पान की योग्यता है तब तक इत्यर्थः॥ [अथ बालस्यान्न प्राशन समयः।]

यथोक्त विधिना वालं मासि षष्टेऽष्टमेऽपिच॥ अन्नं सम्प्राशयेत्किञ्चित्ततस्तद्वर्द्धयन् क्रमात्॥ ३६

[अथ वालस्य परिचर्य्या विधिः।]

वालमङ्के सुखन्दद्या नचैनं तर्ज्जयेत् क्वचित्॥ सहसा बोधयेन्नैव नायोग्य मुपवेशयेत्॥ ३७॥

भा० अनन्तर बालक का अन्न प्राशन समय कहते हैं ॥ बालक को छठे या आठवें महीने में यथोक्त विधिसे। अन्न प्राशन करावे उसके अनन्तर थोड़ा २ क्रमके साथ बढ़ाके अन्न प्राशन करावे ॥ ३६ ॥ अनन्तर बालक की परिचर्य्या विधि कहते हैं ॥ बालक को गोदमें सुलावे और इसको कभी झिड़के नहीं। तथा सहसा न जगावे और अयोग्य स्थान में न रक्खे ॥ ३७ ॥

[अयोग्यं उपवेशना समर्थं।]

साक्षम्य स्थापयेत् क्रोडे न क्षिप्रं शयने क्षिपेत् ॥
रोदयेन्न क्वचित्कार्य्ये विधिमावश्यकं विना। ३८

(क) आवश्यको विधिः भेषज दान तैलाभ्यङ्गोद्वर्त्तना दिभिः ॥

नाक्षिप्त मनुवर्त्तेत नं सदैवानु मोदयेत ॥ निम्नोच्च स्थान तश्चापि रक्षेद्बालं प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥

भा० अयोग्य अर्थात उपवेशन के असमर्थ। और बालक को खेंचके गोद में न लेवे तथा शीघ्र बिस्तरे पर न डाल देवे। आवश्यक विधिके बिना किसी कार्य्य में रोवावे ॥ ३८ ॥

(क) आवश्यक विधि अर्थात् औषधका देना तैलका अभ्यङ्ग उबटना इत्यादिकों के बिना ॥ उसके मनके अनुकूल चले और सदा उसको प्यार करे। और नीची ऊंची जगह से बालक को यत्नके साथ रक्षा करे ॥ ३९

[बालस्य स्वभावाद्धितान्याह।]

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनं स्नानं नेत्रयोरञ्जनन्तथा ॥ वस-
नं मृदुयत् लघु तथा मृद्वनुलेपनम् ॥ ४० ॥ ज-
न्म प्रभृति पथ्यानि बालस्यै तानि सर्व्वथा ॥

[बालस्य कवलादेः समयमाह।]

कवलः पञ्चमाद्वर्षा दष्टमान्तस्य कर्म्मच ॥

विरेकः षोड़शाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम् ॥ ४१ ॥
[बालादेरवमाह सुश्रुतः ।]
वयस्तु त्रिविधम्बाल्यं मध्यमं वार्द्धकन्तथा ॥ ऊन
षोड़श वर्षस्तु नरो बालो निगद्यते ॥ ४२ ॥ त्रिविधः
सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथान्नभुक् ॥ दुग्धाशी
वर्ष पर्य्यन्तं दुग्धन्नाशी शरद्वयम् ॥ ४३ ॥

भा० बालक को स्वभाव से जो हित है उसको कहते हैं ॥ तेलका लगाना उबटना स्नान आंखों में अञ्जन । और जो मृदु वमन है तथा मृदु अनुलेपन ॥ ४० ॥ बालक को ये सब जन्मसे लेकर पथ्य है ॥ बालक के कवलादिकों का समय कहते हैं ॥ बालक को पांचवें वर्ष से ग्रास देवे और आठवें वर्षमें उसका कर्म्म । और सोलवें वरस से विरेचन । तथा वीस वरस से मैथुन ॥ ४१ ॥ बालक आदिकी अवधि कहते हैं सुश्रुत । वय तीन प्रकारके हैं बालक तरुण और वृद्ध । सोलह वरस से कम मनुष्य बालक कहलाता है ॥ ४२ ॥ वो बालक भी तीन प्रकारके हैं । एक तो खाली दूध पीने वाले । दूसरे दूध और अन्नको खाने वाले । तीसरे अन्न खानेवाले । एक वर्षका दुग्धभोजी और दो वरस का दुग्धान्न भोजी ॥ ४३ ॥

तदुत्तरं स्यादन्नाशी एवं बालस्त्रिधा मतः ॥ म
ध्ये षोड़श सप्तत्यो मध्यमः कथितो बुधैः ॥ ४४
चतुर्द्धा मध्यमस्त्राह युवा द्वात्रिंशतो मतः ॥ च-
त्वारिंशत्समा याव त्तिष्ठेद्वीर्य्यादि पूरितः ॥ ४५ ॥
ततः क्रमेण क्षीणः स्या द्यावद्भवति सप्ततिः ॥

भा० उसके अनन्तर अन्नभोजी ऐसे बालक तीन प्रकार के कहे हैं ॥ सोलह और सत्तर के बीचमें मध्य वय पंडितों ने कही है ॥ ४४ ॥ चार प्रकार का मध्यम कहा है युवा बत्तीस वरस तक । और जबतक चाली

स बरस होते हैं तब तक वीर्य्य से लेके रसादि सपूरित रहते हैं ॥ अनन्तर क्रमके साथ क्षीण होते हैं सत्तर बरस तक ॥ ४५॥ (क) वीर्य्य इत्यादि शब्दसे रसादि सर्व धातु इन्द्रिय बल उत्साह कहे हैं।

(क) वीर्य्यादित्यादि शब्देन रसादि सर्व्व धात्विन्द्रिय बलोत्साहा उच्यन्ते। क्षीणः सर्व्व धात्विन्द्रिय बलोत्साहै हीनः॥

ततस्तु सप्ततेरूर्द्ध क्षीण धातु रसादिकः॥ क्षीयमाणेन्द्रिय बलः क्षीणरेता दिने दिने॥ ४६॥
बली पलित खालित्य युक्तः कर्मसु चाक्षमः॥ कासश्वासादि भिः क्लिष्टो वृद्धो भवति मानवः॥ ४७

भा० क्षीण अर्थात् सब धातु इन्द्रिय बल उत्साह से हीन। अनन्तर सत्तर बरस ऊपर क्षीणधातु रसादिक। और इन्द्रिय बलहीन तथा दिन २ क्षीण शुक्र होता है ॥ ४६॥ झुर्रियां सफेद बाल सिरके बाल उड़जाना इन से युक्त और कामकरने में असमर्थ। तथा कास श्वास से पीड़ित वृद्ध मनुष्य होता है ॥ ४७॥

बाल्ये विवर्द्धते श्लेष्मा पित्तं स्यान्मध्यमेऽधिकम्॥ वार्द्धके वर्द्धते वायु र्विचार्य्यैवमुपक्रमेत्॥ ४८॥ (क) उपक्रमेत् चिकित्सेत् तन्त्रान्तरेतु-
बाल्यं वृद्धि श्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्र विक्रमौ॥ बुद्धिः कर्मेन्द्रियञ्चेतो जीवितन्दशतो ह्रसेत्॥४९

भा० बाल अवस्था में कफ की वृद्धि होती है। तरुण में पित्त अधिक होता है तथा वृद्ध अवस्थामें वायु बढ़ता है। इस को विचार करके चिकित्सा करे। ॥ ४८॥ (क) उपक्रम करे अर्थात् चिकित्सा करे ॥ बालकपन धातुओं की वृद्धि छवि मेधा त्वचा दृष्टि शुक्र पराक्रम। बुद्धि और कर्मेन्द्रिय और

संज्ञा थे सब क्रमके साथ दस दस बरस उत्तरोत्तर में क्षीणता को प्राप्त होते हैं ४९

[अथ प्रकृतिलक्षणानि]

सप्त प्रकृतयो नृणां वातात्पित्तात्कफात्तथा ॥ संसर्गात्सन्निपाताच्च भवन्ति भिषजाम्मते ॥ ५० ॥

शुक्रशोणित संयोगे यो दोषस्त्कट को भवेत् ॥ प्रकृति र्जायते तेन तस्या लक्षण मुच्यते ॥ ५१ ॥

भा० अनन्तर प्रकृतिके लक्षण कहते हैं ॥ वैद्योंके मतमें मनुष्योंकी सात प्रकृति होती हैं। वात पित्त कफ से तीन संसर्ग सेतीन और सन्निपात से एक। इस प्रकार सात ॥ ५० ॥ शुक्र रजके संयोग में जोदोष अधिकहोता है। उससे प्रकृति होती है। उसका लक्षण कहताहूं ॥ ५१ ॥

[वाग्भटे त्वात्रेयादयः।]

शुक्रासृग्गर्भिणी भोज्य चेष्टा गर्भाशयान्तरे ॥ यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥ ५२ ॥

(क) सोऽपि दोषः स्वभावावस्थितो नतु दुष्टः दुष्टेन तु शुक्र शोणितयो र्दुष्टा शुद्ध गर्भासम्भवात्।

भा० वाग्भटमें आत्रेयादिकों ने कहा है ॥ शुक्र और आर्तव में तथा गर्भिणी के आहार विहार में और गर्भाशय के बीच में जोदोष अधिकरहताहै उस करके प्रकृति होतीहै ॥ ५२ ॥ (क) वोहभी दोष स्वभाव सेहीरहता है। न कि बिगड़ाहुवा। क्यों कि दुष्ट करके शुक्र शोणित में दुष्ट और अशुद्ध गर्भके असम्भव होने से ॥

जागरूकोऽल्पकेशश्च स्फुटितांघ्रि करः कृशः ॥ शीघ्रगो बहुवाग्रूक्षः स्वप्ने वियतिगच्छति ॥ ५३ ॥ एवं विधः स विज्ञेयो वात प्रकृतिको नरः ॥ पित्त प्रकृति

क्तो लोके याहृशोऽस्य निगद्यते ॥५४॥ अकालपलि तोगौरः क्रोधी स्वेदीच बुद्धिमान् ॥ बहु भुक्ताम्रने त्रश्च स्वप्नेज्योतींषि पश्यति ॥५५॥ एवं विधो भ वेद् यस्तु पित्त प्रकृतिको नरः ॥ श्यामकेशः क्ष मी स्थूलो बहु वीर्य्यो महाबलः ॥५६॥ स्वप्ने ज- लाशया लोकी श्लेष्म प्रकृति कोनरः ॥ दृश्यन्ते प्रकृतौ यत्र रूपं दोष द्वयस्य तु ॥५७॥ द्विसंसर्गे ण।जानीयात्सर्व्व लिङ्गैः त्रिदोषजम् ॥

भा० जागरण स्वभाव अर्थात् कम सोनेवाला । थोड़े केशवाला और जिसके हाथ पांव अलग् २ से निकले हों तथा कृष बहुत चलनेवाला बहुत बोलनेवाला रूखे बदनवाला जो आकाश के स्वप्न देखे ॥५३॥ इस प्रकार के मनुष्यको वात प्रकृतिजानना चाहिये ॥ पित्त प्रकृतिवाला पुरुष जिस प्रकारका होता है उसको कहता हूं ॥५४॥ युवा अवस्था में केश पक जावें गौर वर्ण क्रोधी पसीना बहुत आवे बुद्धिवान् ॥ बहुत भोजनकरनेवाला। रक्तनेत्र स्वप्नमें तेजदेखे ॥५५॥ इस प्रकारका जो हो वोह पित्त प्रकृति मनुष्य है ॥ कालेकेश क्षमावाला मोटा बहुत वीर्य्यवाला बड़ा पराक्रमी ॥५६॥ स्वप्न में जलाशयों को देखनेवाला कफ प्रकृति मनुष्य है ॥ जिस प्रकृति में दोदो दोषों का लक्षण दीखे ॥५७॥ उसको द्वन्द्वज प्रकृति जाने। और सब लक्षणों से सन्निपात की प्रकृति जाने ॥

[वाग्भटेतु।]

प्रायस्त एव पवना ध्युषिता मनुष्याः दोषात्मकाः स्फुटितधूसर केशगात्राः ॥ शीत द्विषश्चलधृतिः स्मृतिबुद्धि चेष्टाः । सौहार्द्द दृष्टि गतयोऽतिबहु प्र लापाः ॥५८॥ अल्पपित्त कफ जीवित निद्रा ।

सन्नशक्तबहुजर्ज्जरवाचः ॥नास्तिका बहुभुजः स
विलासा गीत हास्य मृगया केलि सुलोलाः ॥ ५९॥
मधुराम्ल कटूष्णा सात्म्य कांक्षा कृशदीर्घा कृतयः
सशब्द ज्ञाना नदृढा न जितेन्द्रिया नवीर्य्याः न च
कान्तादयिता बहु प्रजावा ॥ ६०॥ अंगानि चैवाङ्कु
र धूसराणि वृत्तान्य चारूणि मृतोपमानि। उन्मीलि
तानीव भवन्ति सुप्ते शैलद्रुमान्ते गगनं प्रयाते ॥६१॥
अधन्या मत्सराध्माना स्तेनाः प्रोद्बद्ध पिण्डिकाः॥
स्वप्ने श्रृगालोष्ट्र गृध्राखु काको लूकाश्च वातिकाः
॥ ६२॥

भा० वाग्भट में कहाहै। प्रायः वोही आयु करके स्थित मनुष्य दोषवाले स्फुटितगात्र और धूसरकेश तथा शीतसे द्वेष करने वाले। चञ्चल धृति स्मृति और बुद्धि की चेष्टा वाले। आँखों में शीलवाले बहुतबोलनेवाले ॥ ५८ ॥ अल्प पित्त कफ आयु और निद्रा करके युक्त अर्थात् बहुत जिड़ २ करनेवाला ॥ नास्तिक बहुत भोजन करनेवाला विलास करके युक्त गाना हंसना शिकार का खेलना इनमें तत्पर ॥ ५९ ॥ मधुर अम्ल कटु उष्ण इनकी सात्म्य इच्छा ॥ दुबला और लंबी आकृतिवाला ॥ शब्द के सहित समझने वाला। दृढ़ न होना न जितेन्द्रिय न आर्य्य न स्त्रीवाला। और न बहुत सन्तति वाली स्त्रीवाला ॥ ६० ॥ इसका शरीर खर धूसर लंबा रूखा मृतोपम। सोनेमें आंख खुलीसी होतीहैं। पहाड़ वृक्ष के ऊपर तथा आकाश में जाता है ॥ ६१ ॥ नेकी जिसमें नहो दूसरे की दौलत पर हसद करके पेट फूला हुआ चोर। निकली हुई पिंडली वाला स्वप्न में सियार ऊंठ गिद्ध घोड़ा कौवा उल्लू। इनको जो देखताहै वो वात प्रकृति मनुष्य है ॥ ६२ ॥

पित्तवन्हि वन्हिज स्त्वेत दस्मात् भिनो द्रिक्तस्तोश्न नृ
णाक्षुभुस्तुः ॥गौरोष्णाङ्ग स्ताम्रहस्ताङ्घ्रि सुग्मः

शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा ॥ ६३ ॥ दयितमाल्यविलेपनमण्डनः सुरचितः शुचिराश्रितवत्सलः। विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवति भीष्मगतिः द्विषतामपि ॥ ६४ ॥ मेधावी प्रशिथिलितसन्धिबन्धमांसो। नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः॥ आवासश्चलिततरङ्गनीरकेषु। भुङ्क्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ६५॥

भा० पित्त और अग्नि तथा अग्निसे होनेवाले ये और इनसे पित्त बढेहुवे बहुत तृषावालाभूवा ॥ गोरा और उष्ण शरीर वाला लालीको लिये हाथ और पांव शूर अभिमानी भूरेकेश थोड़े रोवें वाला ॥ ६३॥ प्रियमाल्य विलेपन इनसे भूषित सुन्दर पवित्र उत्रसे युक्त ऐश्वर्य्य साहस बुद्धि बल करके युक्त और शत्रुवों को भयानक गति होता है ॥ ६४ ॥ कान्तिवाला ढीले जोड़ों के बन्ध और मांस स्त्रियोंके प्रिय नहीं होता थोड़ा शुक्र और थोड़ी मैथुन शक्तिवाला। उठे तरंगवाला जलाशयमें रहना भोजनमें मधुर कषाय तिक्त और शीत अन्न ॥ ६५॥

धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धिर्भूर्य्युच्चारः क्रोधपानाशनेर्ष्यः। सुप्तः पश्येत् कर्णिकारान् पलाशान् दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ ६६॥ तनूनि पिङ्गानि चलानि चैषां तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि। क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा रागं व्रजन्त्याशु विलोचनानि ॥ ६७॥

भा० धर्मका शत्रु बहुत पसीने आवें और जिसमें बुरीबास आवे हकला के बोले क्रोधी भोजनकी ईर्षा करनेवाला। और सुपनेमें कनेर पलास इनके वृक्षोंको देखे और दिग्दाह उल्का बिजली सूर्य्य अग्नि ये देखे ६६

इनके पर्राग भूरे चंचल छोटी थोड़ी पलकें और पानि प्रिय। तथा क्रोध मद्य और सूर्य्यके प्रकाश से शीघ्र रक्तवर्ण होतेहैं ऐसे नेत्रवाले ॥ ६७ ॥

मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेशभीरवः ॥ व्याघ्राखु कपिमार्ज्जार वृकाखूताश्च पैत्तिकाः ॥ ६८ ॥ श्लेष्मा सोमः श्लेष्म लस्तेन सौम्या गूढ स्निग्ध श्लिष्ट सन्ध्यस्थि मांसः। क्षुत्तृट् दुःख क्लेश धर्मैरतप्तो बुद्ध्यायुक्तः सात्विकः सत्यसन्धः ॥ ६९ ॥ प्रियङ्गु दूर्वाशरकाण्ड दर्भ गोरोचना पद्मसुवर्ण वर्णः ॥ प्रलम्बबाहुःपृथुपीन वक्षाः महाललाटो घननील केशः ॥ ७० ॥

भा० मध्य आयु मध्यबल पंडित क्लेशसे डर। व्याघ्र चूहा बन्दर बिल्ली भेड़िया मकड़ी इनको जो देखे सो पैत्तिक है ॥ ६८ ॥ कफ जलहै उस कर के श्लेष्मल अर्थात् कफ प्रधान सौम्य गूढ स्निग्ध मिली हुई गांठोंकी हड्डी और मांस ॥ क्षुधा तृषा दुःख क्लेश इनके धर्म्मोंसे जो नहीं संतप्त होता बुद्धि वा सात्विक सच्चा ॥ ६९ ॥ प्रियङ्गु दूर्वा सरकंडा दर्भ गोरोचन कमल सोना इनका सावर्ण। लंबे हाथ चौड़ी और मांसल छाती बड़ा सिर घने लंबे और काले केश ॥ ७० ॥

मृद्वङ्गः समसु विभक्तः चारुदेहो बह्वोजा रतिरसयुक्त सपुत्र भृत्यः ॥ धर्म्मात्मा वदति न निष्ठुरं च जातु प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरञ्च वैरम् ॥ ७१ समद द्विरदेन्द्र तुल्य यानो जलदाम्भोधि मृदङ्ग सिंह घोषः ॥ स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥ ७२ ॥

भा० मृदु और सम तथा अच्छे प्रकार विभक्त सुंदर शरीरवाला ॥ और बहुत ओजवाला रतिरस करके युक्त पुत्र तथा भृत्यों करके सहित ॥ धर्मात्मा और कदाचित् भी जो कठोर नहीं बोलना। तथा छिप्रता और दृढ़ बहुत कालतक वैरको धारण करना है ॥७०॥ मदके सहित गजके समान तुल्य स्थूल मेघ समुद्र एवं वृषभ इनके समान आवाज ॥ स्मृतिवाला अभियोगवाला विनीत और बाल्य अवस्थामें भी बहुत न रोनेवाला न चंचल ॥७१॥ तिक्त कषाय कटुक उष्ण और थोड़ा भोजन करनेपर बलवान ॥ भीतर रक्तता अच्छे प्रकार स्निग्ध विशाल दीर्घ सुव्यक्त शुक्ल और काले पलकवाले ऐसे चक्षु होतेहैं ॥

तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्षमल्पञ्च भुंक्ते बलवांस्तथापि ॥ रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घसुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः ॥७३॥ अल्पाहारः क्रोधवानाशनेहः प्राज्ञो वित्ती दीर्घसूत्री वदान्यः ॥ हृद्गम्भीरः स्थूलवक्ताः क्षमावान्निद्रालुश्चालुब्धकश्च कृतज्ञः ॥ ॥७४॥

भा० थोड़ा भोजन करनेवाला क्रोधवान और अशनमें इच्छावाला बुद्धिवान् द्रव्यवान् दीर्घसूत्री और उदार ॥ गम्भीर हृदयवाला स्थूलवक्ष क्षमावाला निद्रालु अलुब्ध अर्थात् लोभी नहोना और कृतज्ञ ॥७४॥

ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जो भक्तो गुरूणां स्थिरसौहृदश्च ॥ स्वप्ने सपद्मान् सविहङ्गमालान्तोयाशयान् पश्यति तोयदांश्च ॥७५॥ विष्णुरुद्रेन्द्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः ॥ श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः ॥७६॥

भा० सीधा पंडित अच्छे भाग्यवाला सलज्ज गुरुवोंका भक्त और स्थिर मित्रतावाला स्वप्नमें कमलके सहित पालाशय पक्षियों की पंक्ति तथा मेघ

इनके हेवे ॥७५॥ विष्णु रुद्र ब्रह्मा इन्द्र गरुड़ हंस और गजेन्द्र इनके समान श्लेष्म प्रकृतिवाले होतेहैं ॥ तथा सिंह और सांड इनके भी समान होतेहैं ॥ ॥७६॥

(क) ननु प्रकृति हेतूनां मध्ये योऽधिकः स स्वव्याधीन् कथं न करोतीत्याशङ्कामाह ॥ विषजातो यथा कीटोन विषेन प्रबाध्यते ॥ तद्वत् प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥७७॥ (रक) एतौ द्वौ न जावपी षदर्थे तेन विशेषेण विषजदाहादिना ॥ इषत् प्र बाध्यते ननु भृशं तथाच प्रकृतयः ॥ प्रकृतिहेतवो दोषाः बाधितुं न शक्नुवन्ति ॥

भा॰ ननु शंका करते हैं कि प्रकृति कारणोंके बीचमें जो अधिक होता है वो ह अपनी व्याधियों को कैसे नहिं करता। इस आशंका में कहते हैं ॥ जैसे विषसे उत्पन्न हुवा विषसे बाधा नहीं पाता ॥७७॥ (क) ये दो नजपू में भी इषदर्थ होते हैं उस विषजदाहादि विषेषण करके। इषत्बाधा करता है नकि बहुत उसी प्रकार प्रकृतियाँ भी ॥ प्रकृति के कारण जो दोष बाधा नहीं करसकेहैं॥ करचरणस्फुटितत्वं स्वेद निद्राधिक्यादिना इषद्बाधितुं शक्नुवन्त्येव। ननु ज्वरादिभिः॥ प्रकोपो वान्यभावो वा समो वा नोपजायते ॥ प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः॥७८॥

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भाव प्रकाशे बाल प्रकरणं तृतीयम् ॥३॥ ❋ ॥

भा॰ हाथ पांव फटि जाय स्वेद निद्राको अधिकपना आदिकरके थोड़ी बाधा कर सकती है ॥ न कि ज्वरादिक। प्रकोप अथवा अन्यभाव या सम नहीं होता ॥ प्रकृतियों के स्वभाव से गतायु होता है ॥७८॥

इतिश्री मिश्र लटकन के पुत्र श्रीमन् मिश्रभाव के विरचित भावप्रकाश में बाल प्रकरण तृतिय समाप्तहुवा ॥ ३॥ ॥

[अथदेशाः।]

भूमिर्देशस्त्रिधानूपो जाङ्गलो मिश्रलक्षणः॥

[तत्रानूपलक्षणम्।] नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पल कुलैर्युतः॥ ७९॥ हंससारसकारण्ड चक्रवाकादिसेवितः॥ शशवाराहमहिषरुरुरोहिकुलाकुलः॥ ८०॥ प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्यो नीलशस्य फलान्वितः॥ अनेक शालिकेदार कदलीक्षुविभूषितः॥ ८१॥ आनूपदेशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्मामयार्तिमान्॥

भा० अनन्तर देश कहतेहैं ॥ भूमितथा देश तीन प्रकारके होते हैं। आनूप जांगल और मिश्र लक्षण॥ ॥ उसमें अनूप का लक्षण। नदी क्षुद्र जलाशय पर्वत इन करके युक्त प्रफुल्लित बहुत से कमलोंसे युक्त ॥७९॥ हंस सारस जल कुकुट चकवा इत्यादि करके सेवित॥ खर गोश शूकर महिष काला हिरण और रुरु ॥इनके कुलोंसे व्याप्त ॥८०॥ बहुतसे वृक्ष पुष्पोंसे भरेहुवे नील धान्य फलों करके युक्त। बहुत से धानोंसे युक्त खेत और केले ऊख इनसे शोभित॥ ॥८१॥ इस को अनूप देश जानना चाहिये। वात कफके रोग पीड़ा वालाहै ॥

[अथजाङ्गल लक्षणम्]

आकाशशुभ्र उच्चश्च स्वल्प पानीय पादपः॥ शमीकरीर बिल्वार्क पीलु कर्कन्धु सङ्कुलः॥ ८२॥ हरिणैणर्क्ष पृषत गोकर्णखर सङ्कुलः॥ सुस्वादु फलवान् देशो वातलो जाङ्गलः स्मृतः॥ ८३॥

भा० अनन्तर जांगल का लक्षण कहते हैं॥ आकाश शुभ्र और ऊँचाभी थोड़ाजल और थोड़े वृक्ष॥ शमी करीर बेल आंक पीलू बेर इनकरके संकुल॥ ८२॥ हरिण काला हरिन इत्यादि मृग और खर इनसे व्याप्त। अच्छे

मधुर फलवाले देश और वानल को जांगल कहाहै ॥ ८३॥

[तन्त्रान्तरेतु।] बहूदकनगोऽनूपः कफमारुत रोगवान्॥ जाङ्गलोऽल्पाङ्ग शाखो च पित्ता स्टङ्मारुतोत्तरः॥ ८४॥

[साधारण लक्षणम्।]

संसृष्ट लक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः॥ समाःसा धारणे यस्माच्छीत वर्षोष्ण मारुताः॥ ८५॥ समता तेन दोषाणां तस्मात् साधारणो वरः॥ [सुश्रुतात्।] उचिते वर्त्तमानस्य नास्तिदुर्देशजं भयम्॥ आहार स्वप्न चेष्टादौ तद्देशस्य कृते सति॥ ८६॥

भा॰ तंत्रांतर में कहतेहैं॥ बहुत जल और पर्वतका अनूपदेशहै और कफवा-युके रोगवाला। और जांगल अल्प अंग तथा शाखवाला और पित्त रक्त मारुतो त्तर होताहै ॥ ८४॥ साधारणका लक्षण कहते हैं॥ मिलेहुवे लक्षणों से युक्त जोदेशहै वोसाधारण कहाहै॥ जिस कारण साधारणमें शीत वर्षा उष्ण वा यु सम होते हैं॥ ८५॥ उसकारणवो उसकरके दोषांका साधारण श्रेष्ठक हागया॥ सुश्रुतात् अर्थात् सुश्रुत से। उचित में करने वालेको दुष्ट देश का भय नहीं होता॥ उसी देशका भोजन सोना चेष्टा करनेसे दुर्देशज भ य नहीं होता॥ ८६॥

[वृद्ध वाग्भटः।] यस्य देशस्य यो जन्तु स्तज्जन्तस्यौषधं हितम्॥ देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्य गुणमौषधम्॥ ८७ ॥ स्वदेशे निचिता दोषा अन्यस्मिन् कोपमागताः॥ बलवन्तस्तथा नस्यु जलजा स्थानजा स्तथा॥ ८८॥

भा॰ वृद्धवागभट्टने कहाहै॥ जिस देशका जो प्राणी है उसको उस देश में उत्पन्न हुईही औषधि हित है॥ देशसे अलग रहने वालेको उसी के तुल्य गुण औषधि हितहै॥ ८७॥ अपने देशमें संचय हुवे दोष दूसरे में कोप को

प्राप्त होते। उस प्रकार बलवान नहीं होते। जैसे जलज और स्थलज में होतेहैं ॥ ८८॥

[अथ दिनादि चर्य्या।]

मानवो येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा ॥ तमेव कारयेद्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ ८९॥ दिनचर्य्यां निशाचर्य्यां ऋतुचर्य्यां यथोदिताम् ॥ आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथाः ॥ ९०॥

भा० अनन्तर दिनचर्य्या कहते हैं ॥ मनुष्य जिस बिधिकरके सर्वदा स्वस्थ रहताहै। उसी को वैद्य करावे क्यों कि स्वास्थ्य सर्वही इच्छित है ॥ ८९॥ दिनचर्य्या रात्रिचर्य्या और ऋतुचर्य्या जैसे कहीहै। उसको आचरन करने वाला पुरुष सदाही स्वस्थ्य रहताहै ॥ अन्यथा स्वस्थ नहीं रहता ॥ ९०॥

[तत्र स्वस्थस्य लक्षणमाह।]

सुश्रुतः। समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः॥ प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ९१॥ (क) क्रियात्र कर्म तेन समक्रियः। शरीरानुरूपकर्मा। नन दिनचर्य्यामाह ॥ ब्राह्मेमुहूर्त्ते बुद्ध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः॥ तत्र दुःखार्त्तशान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम्॥ ॥ ९२॥ दध्याज्यादर्शसिद्धार्थ विल्व गोरोचना स्रजाम्।

भा० उसमें स्वस्थ का लक्षण कहते हैं ॥ समदोष सम अग्नि समधातु सममल और सम क्रिया। प्राण इन्द्रिय मन इनकी प्रसन्नता वालेका स्वस्थ ऐसा कहते हैं ॥ ९१॥ (क) क्रिया यहांपर कर्म लेना चाहिये उसकरके समक्रियः। अर्थात् शरीरके अनुरूप कर्म करने वाला। उसमें दिन चर्य्या को कहते हैं ॥ स्वस्थपुरुष आयुकी रक्षाके अर्थ ब्राह्ममुहूर्त में जागे। उसमें दुःख शान्तिके अर्थ मधुसूदन को स्मरण करे ॥ ९२॥ दही घृत दर्पण सरसों बेल गोरोचन माल्य इनका देखना स्पर्श करना

दर्शनं स्पर्शनं कार्य्यं प्रबुद्धे न शुभावहम् ॥ ९३॥ स्व माननं घृते पश्येत् यदीच्छेत् चिरजीवितम् ॥ आयु ष्य मुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ॥ ९४॥ तदन्त्र कूजनाध्मानो दर गौरव वारणम् ॥ आदि शब्देन वात मूत्रादीनां ग्रहणम् ॥ ९५॥ आटोप शूलौ परि कर्त्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्द्ध वात ॥ पुरीष मा स्यादथवा निरेति पुरीष वेगेऽभिहते नरस्य ॥ ९६॥

भा॰ जागे हुवे पुरुष ने करना चाहिये येह शुभावह है ॥ ९३॥ अपना मुख घृतमें देखे चिरजीवित की इच्छा करे ॥ प्रातकाल में यह आयुष्य कहा है । और मलादिका त्यागभी आयुष्य है ॥ ९४॥ चोह यहां पर पेटमें गुड़ गुड़ा शब्द । आध्मान उदर और भारीपन इनका दूर करने वाला है । आदि शब्दमें वात मूत्रादियोंका ग्रहण है ॥ ९५॥ आटोप शूल गुदामें कतरनी सी पीड़ा मल न होना और ऊर्द्धवात अथवा मलके वेगसे अभिहत मनुष्यके मुखसे मल निकलता है ॥ ९६ ॥

(क) परिकर्त्तिका । गुदे परिकर्त्तनवत्पीड़ा । पुरीषस्य सङ्गो निरोधः । ऊर्द्धवातः उद्गारबाहुल्यम् । ॥ वात मूत्र पुरी षाणां सङ्गःऽध्मानं क्लमो रुजा । जठरे वातजा श्चान्ये रोगाः स्यु वात निग्रहात् ॥ ९७॥ वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्र कृच्छ्रं शिरोरुजा ॥ विनामो वङ्क्षणानाहः स्या ल्लिङ्गं मूत्र निग्रहे ॥ ९८॥

भा॰ (क) परिकर्त्तिका गुदामें कैंची से काटने कीसी पीड़ा । मलका संग अर्थात् अवरोधपना । ऊर्द्ध वात अर्थात् डकारोंका बहुत होना । वात मल मूत्रों का अवरोध आध्मान क्लम पीड़ा । और पेटमें वातज और रोग वात के

अवरोध से होते हैं ॥ ९७ ॥ पेडू लिंगमें शूल मूत्र कृच्छ्र शिरमें पीड़ा। शरीरका झुकाव वंक्षण में आकर्षण के मानिंद पीड़ा ये लक्षण मूत्र निग्रहमें होते हैं ॥

(क) विनामः शरीरस्य नम्रता वङ्क्षणानाहः। वङ्क्षणस्याकर्षणवत्पीड़ा॥ न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्न वेगानीरयेद् बलात् ॥ काम शोक भयक्रोधान् मनोवेगान्विधारयेत् ॥ ९८ ॥ गुदादि मलमार्गाणां शौचं कान्ति बलप्रदम् ॥ पवित्रकरमाख्यातं मलक्ष्मी कलि पापहृत् ॥ ॥ १०० ॥ प्रक्षालनं मतं पाण्योः पादयोः शुद्धिकारणम् ॥ मलश्रम हरं वृष्यं चक्षुष्यं रजसापहम् ॥ १०१ ॥

भा० (क) विनाम अर्थात् शरीरकी नम्रता वंक्षणानाह अर्थात् वंक्षणों को आकर्षणके मानिन्द पीड़ा। वेग मे युक्त हुवा और कार्य न करे वेगोंको बल से न रोके ॥ काम शोक भय क्रोधों को और मनोवेगों को न धारण करें ॥ ९९॥ गुद आदि मलके मार्गों की शुद्धता कान्ति बलको देनेवाली है। और पवित्र को करने वाली कहा गया है। अलक्ष्मी कलि पापका नाश करे है ॥ १००॥ हाथ पावों का धोना शुद्धिका कारण कहा है ॥ मल श्रम को दूर करने वाला वृष्य चक्षुष्य अर्थात् चक्षुका हित रजस का नाशक ॥ १०१ ॥

[दन्तकाष्ठ विधिः]

भक्षयेद्दन्त पवनं द्वादशाङ्गुल मायनम् ॥ कनिष्ठिकाग्रवत् स्थूल मृज्व ग्रन्थि नथाऽव्रणम् ॥ १०२॥ एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेण तु ॥ दन्त शोधन चूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ॥ १०३ ॥ क्षौद्र त्रिकटुकाक्तेन तैल सिन्धु भवेनवा ॥ चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत् ॥ १०४ ॥

दंतवन की विधि वारह अंगुलका दंतवन भक्षणकरे । कनिष्ठिका के अ ग्रभाग समान स्थूल सीधा और बे गांठ का तथा व्रण से रहित ॥ १० ॥ दंतशोधन चूर्ण से दंत मांसों का बाधा न देता हुवा ॥ मृदु कूर्चक से एक २ दांतों को घिसे ॥ १० ॥ उाहृत त्रिकुटके साथ अथवा तैल सेंधव से । तेजोवती के चूर्ण से दांतों की नित्य विशोधन करे ॥ १० ॥

(क) तेजोवती तेजवल्कल इति लोके प्रसिद्धा ॥

मधूको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ॥ निम्ब स्यात्तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ॥ १०५ ॥ समयन्तु समालोक्य दोषञ्च प्रकृतिं तथा ॥ यथो चिते रसैर्वीर्य्यैर्युक्तं द्रव्यं प्रयोजयेत् ॥ १०६ ॥ ते नास्य मुखवैरस्य दन्ता जिह्वास्यजा गदाः ॥ रुचि वैशद्य लघुता न भवन्ति भवन्ति च ॥ १०७ ॥ अ र्के वीर्य्ये वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत् ॥

भा० (क) तेजोवती अर्थात् तेजकी छाल लोकमें प्रसिद्ध है ॥ मधुर में मधुक श्रेष्ठ है । और कटुक में कंरज श्रेष्ठ है ॥ तिक्तक में निम्ब श्रेष्ठ है । तथा कषाय में खैर श्रेष्ठ है ॥ १०५ ॥ समय और दोष प्रकृति को देखकर । यथोचित रस वीर्य्य से युक्त द्रव्यको योजना करे ॥ १०६ ॥ उस करके मुखकी विरसना दंत जिव्हा इनमें रोग नहीं होते और स्वच्छता हलकापन ये होते हैं ॥ १०७ ॥ आंक में वीर्य्य वटमें दीप्ति और कांज में विजय होता है ॥

प्लक्षे चैवार्थ सम्पत्ति र्वदर्य्यां मधुरा स्वनम् ॥ १०८ ॥ खदिरे मुखसौगन्ध्यं विल्वेतु विपुलं धनम् ॥ उद म्बरे तु वाक सिद्धि राम्रे त्वारोग्य मेव च ॥ १०९ ॥ कदम्बेतु धृतिर्मेधा चम्पके दृढवाक श्रुतिः ॥ शिरी

षे कीर्त्ति सौभाग्य मायुरारोग्य मेवच ॥ ११० ॥ अपा
मार्गे धृतिर्मेधा प्रज्ञाशक्ति स्तथापने ॥ दाड़िम्यां
सुन्दराकारः ककुभे कुटजे तथा ॥ १११ ॥ जाती
तगर मन्दारे दुःस्वप्नञ्च विनश्यति ॥ गुल्मिका
ताल हिन्ताले केतकश्च दृहद्वरः ॥ ११२ ॥

भा० पाकर में अर्थ सम्पत्ति बेरमें मधुर भोजन ॥ १०८ ॥ खदिर में मुख की सुगन्धिता बेलमें विपुल धन गूलरमें सिद्धि आममें आरोग्य ॥ १०९ कदम्ब में धृति मेधा चम्पक में दृढ़ बाणी और स्मृति । शिरीष में कीर्ति सौभाग्य तथा आयु आरोग्य भी ॥ ११० ॥ चिचिंर में धृतिमेधा प्रज्ञा शक्ति उसीप्रकार असनमें भी शक्ति ॥ दाड़िम में सुन्दर आकार अर्जुन और कुटज में भी उसी प्रकार ॥ १११ ॥ चमेली तगर और पारिजात इनसे दुष्ट स्वप्न का नाश होता है ॥ चिरभिटी ताल हिताल अर्थात् छोटा तालके किसिमका वृक्ष के बड़ा सुपारी ॥ ११२ ॥

खर्जूरं नारिकेरञ्च सप्तैते तृणराजकाः ॥ तृणराज
समुत्पन्नं यः कुर्य्याद् दन्तधावनम ॥ ११३ ॥ नर-
श्चाण्डाल योनिः स्याद्यावद्गङ्गान्न पश्यति ॥ न खा-
देद् गलताल्वोष्ठ जिह्वा दन्त गदेषु नत् ॥ ११४ ॥
मुखस्य पाके शोथे च श्वास कास वमीषु च ॥ दु
र्बलो जीर्ण भक्तश्च हिक्का मूर्च्छा मदान्वितः ॥ ११५

भा० खर्जूर नारिकेल ये सात तृणराज हैं ॥ इन तृणराजोंका दातवन जो मनुष्य करे ॥ ११३ ॥ वह मनुष्य चांडालयोनि होता है ॥ जबतक गंगा जीका दर्शन नकरे ॥ गला तालु होंठ जीभ और दांत इनके रोगो में दातवन नकरे ॥ ११४ ॥ मुखके पाक में शोथ में श्वास कास वमन में दुर्बल अजीर्ण

वाला हिचकी मूर्छा और मदकरके युक्त ॥ २१५॥

शिरोरुजार्त्तस्तृषितः श्रान्तःपानक्लमान्वितः॥ अर्दितःकर्णशूली च नेत्ररोगी नवज्वरी ॥ २१६॥ वर्ज्जयेद्दन्तकाष्ठन्तु हृदामययुतोऽपि च ॥

अजीर्णभुक्तः न जीर्णं भुक्तं यस्य सः।

जिह्वा निर्लेखनं हैमं राजतं ताम्रजं तथा ॥ पाटितं मृदु तत् काष्ठं मृदु पत्रमयं तथा ॥ २१७॥

भा० शिरकी पीड़ासे पीड़ित प्यासा थका मद्यपान की ग्लानिसे युक्त। अर्दित रोगी कर्णशूलवाला नेत्ररोगी नवज्वरवाला ॥ २१६॥ दन्तवन नकरे और हृदयरोगवाला भीनकरे ॥ ॥ अजीर्ण भुक्तः अर्थात् जीर्णनहींहुवा भोजन जिसका वोह ॥ जीभ साफ़ करनेकी वा सोनेकी या चाँदीकी अथवा ताम्बेकी ॥ अथवा मृदुकाष्ठका चीराहुवा अथवा मृदु पत्ता ॥ २१७॥

(तत् काष्ठं दन्तशोधनयोग्यं काष्ठम्)

दशाङ्गुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वां लिखेत् सुखम् ॥ तज्जिह्वा मलवैरस्य दुर्गन्धजड़ता हरम् ॥ २१८॥ गंडूषमपि कुर्व्वीत शीतेन पयसा मुहुः ॥ कफ तृष्णा मल हरं मुखान्तः शुद्धिकारकम् ॥ २१९॥ सुखोष्णोदक गराडूषः कफ रुचि मलापहः॥ दन्तजाड्य हरश्चापि मुखलाघव कारकः॥ १२०॥

भा० तत् काष्ठ अर्थात् दातवन करनेयोग्य काष्ठ। दश अंगुलका मृदु स्निग्ध उससे सुखपूर्वक जीभको साफ़करे ॥ वोह जीभका मल विरसता दुर्गन्ध जड़ता इनका नाशक है ॥ २१८॥ शीतजलसे बारंबार कुल्ला भीकरे। कफ तृषा मलका नाशक और मुखके भीतर शुद्धिकरनेवाला है ॥ २१९॥ सीतं गरम

जलका कुल्ला कफ अरुचि मलका नाशक है ॥ दान्तों के ठरेपन का नाशक और मुखका हलकापन करने वाला है ॥ १२० ॥

विषमूर्छा मदार्तानां शोषिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ कुपि-
तान्दि मलक्षीरारूक्षाणां स न शस्यते ॥ १२१ ॥

सुखोष्णोदक गण्डूषः।

मुखप्रक्षालनं शीत पयसा रक्तपित्तजित् ॥ मुखस्य
पीड़िका शोष नीलिकाव्यङ्ग नाशनम् ॥ १२२ ॥ कुर्य्या
द्वापि कटूष्णेन पयसास्य विशोधनम् ॥ कफवातहरं
स्निग्धं मुख शोष विनाशनम् ॥ १२३ ॥

भा० विष मूर्छा मदकरके पीड़ित शोषवाले रक्त पित्ती वाले ॥ कुपित नेत्र मल और क्षीण रूखे इनको वोह प्रशस्त नहींहै ॥ १२१ ॥ यह सुखोष्णोदक गण्डूषहै । मुखका धोना शीतजल से रक्तपित्त को जीतना है । मुखकी पीड़िका शोष नीलिका और व्यङ्ग इनको दूर करने वाला है ॥ १२२ ॥ कटु ऊष्ण जलसे मुखका शोधनकरे । कफ वात का नाशक स्निग्ध मुख शोषका विनाशक है ॥ १२३ ॥

कटुतैलादि नस्यार्थं नित्याभ्यासेन योजयेत् ॥ प्रातः
श्लेष्मणि मध्यान्हे पित्ते सायं समीरणे ॥ १२४ ॥
सुगन्ध वदना स्निग्ध निःस्वना विमलेन्द्रियाः ॥ नि
र्वली पलितव्यङ्गा भवेयुर्नस्य शीलिनः ॥ १२५ ॥
सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णो स्ततो भजेत् ॥
(लोचने भवतस्तेन मनोज्ञे सूक्ष्मदर्शने ॥ १२६)

भा० कटुतैलादि नस्यके अर्थ नित्य अभ्यास से योजना करें ॥ प्रातःकाल कफ मध्यान्ह पित्त सायंकाल वात इनमें नस्य योजना करें ॥ १२४ ॥ सुगन्धमुख स्निग्ध निःस्वन स्वच्छ इन्द्रिय ॥ झुर्रियां बाल पकना व्यङ्ग इनसे

हुनसे रहित नास लेनेवाले होते हैं ॥ १२५ ॥ श्वेत सुरमें का अञ्जन सदा नेत्रों को हितहै तिस्से सेवन करे ॥ उस्से नेत्र सुन्दर और सूक्ष्म दर्शन होते हैं ॥ १२६ ॥

(क) सौवीरं श्वेत सुरमा इति लोक प्रसिद्धम् ॥

स्रोतोऽञ्जनं मतं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धु सम्भवम् ॥ दृष्टेः कण्डूमलहरं दाहक्लेद रुजापहम् ॥ १२७ ॥ अक्ष्णो रूपा वहञ्चैव सहते मारुता तपौ ॥ नेत्र रोगा नजायन्त तस्मा दञ्जनमाचरेत् ॥ १२८ ॥

(ख) स्रोतोऽञ्जनं कृष्णासुरमा इति लोके ॥ विशुद्धं शोधनं विनापि सिन्धु सम्भवम्। सिन्धुनाम पर्वतः तत्र सम्भवम् ॥ रात्रौ जागरितःश्रान्तःछर्द्दितो भुक्तवांस्तथा ॥

भा० (क) सौवीर अर्थात् श्वेत सुरमा ऐसे लोकमें प्रसिद्ध है। काला सुरमा श्रेष्ठहै। और बिने सुधा पहाड़ी सुरमा प्रशस्त है ॥ दृष्टिकी खाज और मलका नाशक तथा दाह क्लेद पीड़ाकोदूर करने वाला है ॥ १२७ ॥ नेत्रोंका रूपावह और मारुत तथा आतपको सहते हैं ॥ नेत्रमें रोग नहीं होते इसवास्ते अंजनका सेवन करे ॥ १२८ ॥

(ख) स्रोतोंऽजन अर्थात् कालासुरमा ऐसा लोकमें कहते हैं ॥

विशुद्ध अर्थात् शोधनके विनाही सिंधुसम्भव अर्थात् सिंधुनाम पर्वत उसमें हुवा। रातका जागा थका वमन किया हुवा भोजन किया हुवा ॥

ज्वरातुरः शिरःस्नातो नद्दृशोरञ्जन माचरेत् ॥ १२९ ॥ पञ्चरात्रा न्नख प्रमश्रु केश रोमाणि कर्त्तयेत् ॥ केश प्रमश्रु नखादीना कर्त्तनं सम्प्रसाधनम् ॥ १३० ॥ पौष्टिकं धनमायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् ॥ मे

भा० ज्वरसे पीड़ित और शिरसे स्नान किया हुवा आंखोंमें सुरमा न डाले ॥ १२९ ॥ पांचवें दिन नख दाढी केश रोम इनको कतरवावे ॥ केश दाढ़ी नख आदियोंका कतरना शोभाको देनेवाला है ॥ १३० ॥ पौष्टिक और धन आयुके हित तथा

शौच कान्ति को अत्यन्त करने वाला है ॥ संप्रसाधन अर्थात् शोभा को कार
ने वाला ॥ (ग) सम्प्रसाधनम् शोभाजनकम् ॥

उत्पाटयेत्त लोमानि नासाया: न कदाचन ॥ तदु-
त्पाटनतो दृष्टे दौर्बल्यं त्वरया भवेत् ॥ १३१ ॥ के
शपाशे प्रकुर्व्वीत प्रसाधन्यातु साधनम् ॥ केश
प्रसाधनं केश्यं रजोजन्तु मलापहम् ॥ १३२ ॥

भा० नाक के बाल कभी न उखड़वावे। उसके उखेड़ने से दृष्टि की दुर्बलता शीघ्र होती है ॥ १३१ ॥ सिरके बालों में कंघीसे सफ़ाई करे ॥ केशकी सफ़ाई केश को हित तथा मिट्टी धूल जूवां मेल इनकी नाशक है ॥ १३२ ॥

आदर्श लोकनं प्रोक्तं माङ्गल्यं कान्तिकारकम् ॥
पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पापालक्ष्मी विनाशनम् ॥ १३३
लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्त घन गात्रता ॥ दोषक्ष
योऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥ १३४ ॥ व्या-
याम दृढ गात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन ॥ विरुद्धं
वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते ॥ १३५ ॥

भा० शीशे का देखना शुभ और कान्तिकारक है। पौष्टिक बल के हित आयुके हित तथा पाप और अलक्ष्मी इनको दूर करने वाला है ॥ १३३ ॥ हलकापन कर्म करनेमें सामर्थ्य विभक्त और घन शरीर का होना ॥ दोष क्षय तथा अग्निकी वृद्धि ये सब कसरत करने से होताहै ॥ १३४ ॥ व्यायाम से दृढ शरीर हुवे को व्याधि कभी नहीं होती ॥ विरुद्ध या विदग्ध भोजन किया हुवा सब शीघ्र पचजाताहै ॥ १३५ ॥

भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः ॥ नचै
नं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति ॥ १३६ ॥ न चा-
स्तिसदृशन्तेन किञ्चित् स्थौल्यापकर्षकम् ॥

स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ॥ १३७॥ वसन्ते शीतसमये सुतरां स हितो मतः॥ अन्यदापि च कर्त्तव्यो बलार्द्धे न तथा बलम् ॥ १३८ ॥ हृदयस्थो यदा वायुर्वक्त्रं शीघ्रं प्रपद्यते ॥ मुखञ्च शोषं लभते तद् बलार्द्धस्य लक्षणम् ॥ १३९॥ किं वा ललाटे नासायां गात्रसन्धिषु कक्षयोः॥ यदा सञ्जायते स्वेदो बलार्द्धन्तु तदादिशेत् ॥ १४०॥ भुक्तवान् कृतसम्भोगः कासी श्वासी कृशः क्षयी ॥

भा० इसके शरीर में शिथिलता आदिक शीघ्र नहीं होते ॥ वृद्धावस्था सहसा इसको घेर के नहीं चढ़ती ॥ १३६॥ उसके समान [illegible] कुछभी स्थूलता को घटाने वाला नहीं है ॥ वह सदा स्निग्ध भोजन करनेवाले बलवानों को गुण देता है ॥ १३७॥ वसन्त और शीत समय में वोह बहुत हित है ॥ और समय में भी आधी कसरत करनी चाहिये ॥ १३८ ॥ जब हृदय में रहनेवाला वायु शीघ्र मुख में प्राप्त होजावे और मुख सूखने लगता है वोह आधी कसरत का लक्षण है ॥ [illegible] के जोड़ बगल इन में पसीना होता है उसको आधी कसरत कहते हैं ॥ १४०॥ भोजन किया हुवा स्त्री से भोग किया हुवा। खांसीवाला दमेवाला दुर्बल क्षयवाला ॥

रक्तपित्ती क्षती शोषी न तं कुर्य्यात् कदाचन ॥ १४१॥ अतिव्यायामतः कासो ज्वरः छर्दिः श्रमः क्लमः॥ तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तञ्च जायते ॥ १४२॥ अभ्यङ्गं कारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम् ॥

भा० रक्तपित्ती क्षतवाला शोषरोग वाला उसको कभी न करे ॥ १४१ ॥ बहुत कसरत करने से खांसी ज्वर वमन श्रम क्लम तृषा क्षय प्रतमक स्वास और रक्तपित्त ये होते हैं ॥ १४२॥ सब शरीर में नित्य अभ्यङ्ग करवावे पुष्टि

को देनेवालाहै ॥ शिर कान पांव इनमें उसको विशेष करके करे ॥ १४३ ॥

शिरः श्रवण पादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥ ४३ ॥ सार्षपं गन्धतैलञ्च यत्तैलं पुष्पवासितम् ॥ अन्यद्रव्य युतं तैलं नदुष्यति कदाचन ॥ १४४ ॥ गन्धतैलम्। (क) गन्धद्रव्याणाम् गुर्व्वादीना मग्नियोगेन निष्काशितः स्नेहः ॥ ॥ अभ्यङ्गो वात कफहृच्छ्रम शान्ति बलं सुखम् ॥ निद्रावर्णं मृदुत्वायुष्कुरुते देहपुष्टिकृत् ॥ १४५॥

भा० सरसोंका तेल गन्धतेल या चमेली आदिका तेल अथवा और द्रव्यों से युक्त तेल कभी विगाड़ नहीं करता ॥ १४४ ॥ ॥ गन्धतेल ॥ (क) गुर्वी आदि गन्ध द्रव्योंका अग्नि संयोग से निकाला हुवा तेल । अभ्यंग वात कफ को दूर करने वाला श्रमको शान्ति करने वाला बल सुखको देनेवाला निद्रा वर्ण मृदुत्व आयु इनको करता है और शरीरको पुष्ट करने वाला है ॥ १४५ ॥

अभ्यङ्गः शीलितो मूर्द्ध्नि सकलेन्द्रियतर्पकः ॥ दृष्टि पुष्टि करो हन्ति शिरो भूमि गतान् गदान् ॥ १४६ ॥ केशानां बहुतां दार्ढ्य मृदुतां दीर्घतां तथा ॥ कृष्णतां कुरुते कुर्य्याच्छिरस पूर्णतामपि ॥ १४७ ॥ न कर्णरोगा न मलं न च मन्या हनुग्रहः ॥ नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्य्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥ १४८ ॥

भा० शिरमें अभ्यङ्ग कियाहुवा संपूर्ण इन्द्रियोंका तृप्ति करने वालाहै । और दृष्टि तथा पुष्टिको करने वाला है । और शिरमें उत्पन्न व्याधियों को नाश करे है ॥ १४६ ॥ केशों की अधिकता दृढ़ता मृदुता तथा दीर्घता । और [illegible] करता है और शिरका पूर्णताभी करता है ॥ १४७ ॥ नित्य कान में तेल [illegible]

से कर्णरोग मैल मन्यास्तंभ हनुग्रह । ऊंचेसे सुनना और बहिरापन ये नहीं होते ४९

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात् प्राक् प्रशस्यते ॥ तैला-द्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ १४९ ॥ पादाभ्यङ्गश्च तत् स्थैर्य्यं निद्रादृष्टि प्रसाद कृत् ॥ पाद सुप्ति श्रमस्तम्भ सङ्कोच स्फुटन प्रणुत् ॥ १५० ॥ व्यायाम क्षुण्ण वपुषं पद्भ्यां संमर्द्दितं तथा ॥ व्याधयो नोप सर्पन्ति वैनतेय मिवोरगाः ॥ १५१ ॥

भा० रसादिकोंका कानमें डालना भोजनके पहिले प्रशस्त है । तैलादिकोंका कानमें डालना सायंकालमें प्रशस्त है ॥१४९॥ पैरोंमें तेलका मलना पैरोंको मज़बूत और दृष्टि का प्रसाद करनेवाला है ॥ पैरका सो जाना श्रम स्तंभ संकोच और फूटना इनको नाश करना है ॥ १५० ॥ कसरत से कुटे हुवे और पावोंसे मर्दित ऐसे शरीर के पास व्याधियां नहीं जातीं जैसे सर्प गरुड़ के पास नहीं फटकते ॥ ॥१५१॥ ॥

लोम कूपं शिराजालं धमनीभिः कलेवरे ॥ तर्पयेद्बल माधत्ते स्नेह युक्तोऽवगाहने ॥ १५२ ॥ अद्भिः संसिक्त मूलानां तरूणाम्पल्लवादयः ॥ वर्द्धन्ते हि तथा नृणां स्नेह संसिक्त धातवः ॥ १५३ ॥ न वज्वरी भ्रजीर्णी च नाभ्यक्तव्यः कथञ्चनः ॥ तथा विरिक्तो वान्तश्च निरूढो यश्च मानवः ॥ १५४ ॥ (क) निरूढः दत्तो निरूह वस्तिश्च यस्मैसः ॥ (क) ॥

भा० स्नेह युक्त शरीर के स्नानकरने में धमनियो के द्वारा रोमकूप और शिराजाल तृप्तिको प्राप्त होते हैं और बलको धारण करते हैं ॥ १५२ ॥ जैसे वृक्षोंकी जड़ोंको पानीके सींचने से पल्लवादिक बढते हैं ॥ ऐसेही मनुष्यों को स्नेह से स-

सिक्त होनेसे धातु बढ़ते हैं ॥ ५३॥ नये ज्वर वाला और अजीरण वाला येकभी अभ्यङ्ग भी नकरें ॥ उसी प्रकार विरेच लिया हुवा वमन लिया हुवा और जो निरूढ मनुष्य ये भी नकरें ॥ २५४ ॥ (क) निरूढः। अर्थात् दीहै निरूह वस्ति जिसको वोह।

पूर्व्वयोः कृच्छ्रता व्याधे रसाध्यत्व मथापिवा ॥
शेषाणां नत्विह प्रोक्ता वन्हि सादादयो गदाः ॥२५५॥
(क) पूर्व्वयोः तरुणज्वरिणोऽजीरिणोश्च ॥
उद्वर्त्तनङ्कफ हरं मेदोघ्नं शुक्रदम्परम् ॥ बल्यं शोणित कृच्चापि त्वक प्रसाद मृदुत्व कृत् ॥२५६॥
मुखलेपात् दृढं चक्षुः पीनो गण्ड स्तथाननम् ॥
कान्तमव्यङ्ग पिडकं भवेत्क मल सन्निभम् ॥२५७॥

भा० तरुण ज्वरी और अजीरणी इनके व्याधिकी कष्ट साध्यता अथवा असाध्यता होती है ॥ और शेष अग्निमान्द्यादिक रोग यहांपर नहीं कहे हैं ॥ २५५॥
(क) पूर्व्वयोः अर्थात् तरुण ज्वर और अजीरण वालोंके ॥
उवटना कफ मेदका नाशक शुक्रको बढ़ाने वाला ॥ और बलको करने वाला रक्तको उत्पन्न करनेवाला तथा त्वचाकी स्वच्छता और मृदुताको करने वाला है ॥२५६॥ मुख लेपसे दृढ़ नेत्र और मांसल गाल तथा मुख कान्ति युक्त पीटिका और व्यङ्गसे रहित होता है तथा कमलके समान होता है ॥ २५७॥

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नान मोजो बल प्रदम् ॥ कण्डू मलश्रमः स्वेद तन्द्रा तृड् दाह पाकनुत् ॥ २५८ ॥
वाद्यै श्च सेकैः शीताद्यैः रुग्णान्तयाति पीड़ितः ॥ नस्य स्नानमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥ २५९ ॥ पीतेन पयसा स्नानं रक्तपित्त प्रशान्तिकृत् ॥ तदेवोष्णे-

न तोयेन वल्यं वातकफापहम् ॥ १६० ॥ शिरःस्ना-
नमचक्षुष्य मत्युष्णेनाम्बुना सदा ॥ वातश्लेष्म प्र-
कोपेतु हितन्तच्च प्रकीर्त्तितम् ॥ १६१ ॥ अशीते नाम्भ
सास्नानं पयःपानञ्चवास्त्रियः ॥ एतद्वो मानवाः।
पथ्यं स्निग्ध मल्पञ्च भोजनम् ॥ १६२ ॥

भा० स्नान दीपन वृष्य आयुके हित ओज और बल का देनेवाला है। और स्वा-
ज मैल श्रम पसीना तन्द्रा तृषा दाह पाक इनका नाशक है ॥ १५८ ॥
अथवा वाह्य शीतादिकों के सेकसे पीडित हुवेकी उष्मा भीतर होती है स्नान
मात्र कियेहुवे मनुष्यकी अग्नि उसकरके दीप्त होती है ॥ १५९ ॥ शीतजलसे
स्नान रक्त पित्तका नाशकरनेवाला है। उष्णजलसे दही स्नान बल और
वात कफ का नाशक है ॥ १६० ॥ सदा अति उष्णजल से शिरका न्हाना नेत्रके
अहित है। और वही उष्णजल वात कफ के प्रकोप में हित कहा है ॥ १६१ ॥
गरम जलका न्हाना दूधका पीना जवान औरत ये मनुष्य के हित है। औरस्नि
ग्ध अल्प भोजन ॥ १६२ ॥ (हरिश्चन्द्रस्यैतत्।)

यः सदामलके स्नानं करोति सविनिश्चितम् ॥ व
लीपलित निर्मुक्तो जीवेद वर्ष शतन्नरः ॥ १६३ ॥
स्नानं ज्वरेऽतिसारेच नेत्र कर्णा निलार्त्तिषु ॥ आध्
मान पीनसाजीर्णे भुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ १६४ ॥
स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेणाङ्गस्य मार्ज्जनम् ॥
कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डुत्वग्दोष नाशनम् ॥ १६५ ॥

भा० [हरिश्चन्द्रका यह है] जो सदा आंवलेके पानीसे स्नान करता है वली
अर्थात् झुर्रियां सिरकेवालका पकना इनसे निर्मुक्त हुवा मनुष्य सौ वरस जी
ताहै ॥ १६३ ॥ स्नान ज्वरमें अतिसार में नेत्र कर्ण और अनिल इनकी पीड़ा
में तथा आध्मान पीनस अजीर्ण और भोजन किये हुवे में निंदित है ॥
१६४ ॥ स्नानके अनन्तर अच्छीतरह पर वस्त्रसे शरीरको पूंछे। शरीर की का
न्तीको देनेवाला खाज त्वचा का दोष नाशक है ॥ १६५ ॥

कौशेयौर्णिक वस्त्रञ्च रक्त वस्त्रन्तथैव च ॥ वात श्लेष्म हरन्तत्तु शीतकाले विधारयेत् ॥ २६६ ॥

(कौशेयं पट्टाम्बरम् टसर वस्त्रञ्च।

मेध्यं सुशीतम्पित्तघ्नं कषायं वस्त्रमुच्यते ॥ तद्धार येदुष्ण काले तत्रापि लघु शस्यते ॥ २६७॥

कषायङ्को कर्मो इति लोके कषाय रागरक्तं वा।

भा० रेशमी ऊनी तथा रक्तवस्त्र वात कफ का नाशक होताहै ॥ उसको शीत कालमें धारण करे ॥ २६६ ॥ कौशेय पट्टाम्बर टसर वस्त्र भी। मेध्य सुशीत पित्त नाशक कषाय वस्त्र कहाहै। उसको गरमी में धारण करे उसमें भी हलका प्रशस्तहै ॥ २६७ ॥ कषायं कुकड़े इतिलोकमें। या कषा,रंग से रक्त ॥ म

शुक्लन्तु शुभदं वस्त्रं शीतातप निवारणम् ॥ नचोष्ण न्नचवा शीतन्तत्तु वर्षासु धारयेत ॥ २६८ ॥ यशस्य ङ्काम्यमा युष्यं श्रीमदानन्द वर्द्धनम् ॥ त्वचं वशीक रं रुच्यं नवनिर्मल मम्बरम् ॥ २६९ ॥

(क) काम्यं कामोद्दीपकम् ।

कदापि न जनैः सद्भिः धार्य्यम्मलिन मम्बरम् ॥ तत्तु कराडु क्रमिकर ग्लान्य लक्ष्मी करम्परम् ॥ २७० ॥

भा० शुक्ल वस्त्र शुभद और शीत आतपका निवारणहै। न उष्ण न शीत उसको वर्षा में धारण करे ॥ २६८ ॥ यशको करनेवाला काम्य आयुष्य सम्पत्ति आनन्दको बढ़ानेवाला। त्वचा हित वशीकर रुच्य नवीन स्वच्छ वस्त्र होताहै ॥ २६९ ॥ (क) काम्यं अर्थात कामोद्दीपक ।

म कभीभी सज्जनोंसे धारण करने योग्य होनाहै मलीनवस्त्र ॥ वोह मलीन वस्त्र खाज क्रमिकर और ग्लान अशोभा करनेवालाहै ॥ २७०॥

(अलक्ष्मी अशोभा दारिद्र्यञ्च ।

कुङ्कुमञ्चन्दनञ्चापि कृष्णागुरु च मिश्रितम् ॥ उ
ष्णं वात कफध्वंसि शीत काले तदिष्यते ॥ २७१॥ च
न्दनं घनसारेण बले केन च मिश्रितम् ॥ सुगन्धि
परमं शीत मुष्णकाले प्रशस्यते ॥ २७२॥

(घनसार : कर्पूर :, वालं ह्रीवेरम् ।)

चन्दनं कुसृणोपेतं मृगनाभि समायुतम् ॥ नचोष्णं
नचवा शीतं वर्षाकाले तदिष्यते ॥ २७३॥

भा॰ अलक्ष्मी अर्थात् अशोभा और दारिद्र भी ॥) केसर चन्दन कृष्णा गरु मिलाहुवा । उष्ण वात कफका नाशक है । शीत कालमें वो प्रशस्त है । ॥ २७१॥ चन्दन कपूर सुगंधवाला के साथ मिश्रित । सुगन्धि परम और शीत है वोह उष्णकाल में प्रशस्त है ॥ २७२॥ (गनसार कपूर वाले सुगन्ध वाला ॥) चन्दन केसर करके युक्त और कस्तूरी के सहित । यह न उष्ण न शीत है इसवास्ते वर्षा काल में प्रशस्त है ॥ २७३॥

(घुसृण कुङ्कुमम् । मृगनाभि : कस्तूरी ।)

अनुलेपस्तृषा मूर्च्छा दुर्गन्धस्वेद दाहजित् ॥ सौभा
ग्यतेजस्त्वग्वर्ण प्रीत्योजो बल बर्द्धन : ॥ २७४ ॥ स
स्नानार्ह लोकानामनुलेपोऽपि नो हित : ॥ सुगन्धि
पुष्प पत्राणां धारणङ्कान्ति कारकम् ॥ २७५॥ पाप
रक्षो ग्रह हरं कामदं श्रीविवर्द्धनम् ॥ भूषणे भूषये
दङ्गं यथा योग्यं विधानत : ॥ २७६॥

भा॰ (घुसृण अर्थात् केसर) मृगनाभि कस्तूरी) इनका अनुलेप तृषा मूर्छा दुर्गन्ध पसीना दाहका जीतनेवाला है । सौभाग्य तेज त्वचाकी कान्ति प्रीति ओज बल इनका बढ़ाने वाला है ॥ २७५॥ स्नानके अयोग्य पुरुषों को चोट

अनुलेप भी हित नहीं है ॥ सुगन्धि पुष्प पत्रों का धारण कान्ति कारक है ॥ १७५॥ पाप राक्षस ग्रह इनका हरनेवाला कामका उत्पन्न करने वाला श्री का बढ़ानेवाला है। यथा योग्य विधिसे शरीरको भूषणों से भूषितकरे ॥

शुचि सौभाग्य सन्तोष दायकं काञ्चनं स्मृतम् ॥

ग्रह दृष्टि हरम्पुष्टि करं दुःस्वप्न नाशनम् ॥ १७७॥

पाप दौर्भाग्य शमनं रत्नाभरण धारणम् ॥

माणिक्यन्तरणेः सुजात्य ममलं मुक्ताफलम् शीत-गो.। माहेयस्य च विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गा-रुत्मकम् ॥ देवेज्य स्य च पुष्य रागमसुरा चार्यस्य वज्रं शनेः । नीलन्निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेद वैडूर्य्यके ॥ १७८ ॥

भा० सुवर्ण पवित्रता सौभाग्य सन्तोष का देने वाला कहा है। ग्रहोंकी दृष्टि को हरणे वाला पुष्टिकारक दुःस्वप्न नाशन है ॥ १७७॥ रत्नोंके भूषणोंका धारण पाप दुर्भाग्यता का शमन है ॥ ॥ अच्छी जानका स्वच्छ माणिक सूर्य्य का- मोती चन्द्रका- मूंगा मंगल का कहाहै। बुधका पन्ना। बृहस्पतिका पुखराज- शुक्र का हीरा- शनिका नीलम- राहुका गोमेद। औरकेतुका वैडूर्य्य ॥ १७९॥

वासः शृङ्गार रत्नानां धारणम्प्रीति वर्द्धनम् ॥ रक्षो ॥१८०॥ घ्न मर्घ्य मोजस्यं सौभाग्यकर मुत्तमम् ॥ सततं सि-द्धमन्त्रस्य महौषध्या स्तथैवच ॥ रोचना सर्षपादी नां माङ्गल्यानाञ्च धारणम् ॥ १८१॥

भा० कपड़ा आभूषण रत्नोंका धारण प्रीति का बढ़ाने वाला है ॥ राक्षसों का नाशक द्रव्य कोदेनेवाला ओजको बढ़ाने वाला और उत्तम सौभाग्यको करनेवाला है ॥ १८०॥ निरंतर सिद्ध मंत्र का तथा महौषधि का। और

गोरोचन सरसों इत्यादिकोंका और मंगलके करने वालों का धारण ॥ १८१

आयुर्लक्ष्मी करं रक्षोहरं मङ्गलदं शुभम् ॥ हिंसा भय विध्वंसि वशीकरण कारणम् ॥ १८२ ॥ ततो भोजन वेलायां कुर्य्यान्माङ्गल्य दर्शनम् ॥ तस्य प्रदर्शनन्नित्य मायु धर्म्म विवर्द्धनम् ॥ १८३ ॥ लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ॥ पुष्पस्रक् सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ॥१८४॥

भा० आयु लक्ष्मीको करनेवाला राक्षसोंका नाशक मंगलको देनेवाला। और शुभहै। तथा व्याघ्रादि हिंसकों का भयनाशक और वशीकरण का हेतुहै ॥ १८३॥ उसके अनन्तर भोजनके समय में मांगल्य दर्शनकरे। उसका नित्य दर्शन आयु धर्मका बढ़ानेवाला है॥ १८३॥ लोकमें आठ वस्तु मंगल हैं। ब्राह्मण अग्नि गाय पुष्पमाला घृत सूर्य्य जल राजा ये आठहैं ॥ १८४ ॥

पादुका रोहणङ्कुर्य्यात् पूर्व्वं भोजनतः परम् ॥ पाद रोग हरं वृष्यं चक्षुष्य ञ्चायुषो हितम् ॥ १८५॥ शरीरे जायते नित्यं वाञ्छा नृणाञ्चतुर्विधा ॥ बुभुक्षा च पिपासा च सुषुप्सा च रतस्पृहा ॥ १८६॥ भोजनेच्छा विघातात्स्यादङ्ग मर्दोऽरुचिः श्रमः ॥ तन्द्रा लोचन दौर्ब्बल्यं धातुदाहो बलक्षयः ॥ १८७ ॥

भा० भोजन के प्रथम और पश्चात् खड़ाऊंपर चढ़े। पाद रोग को हरनेवाला वृष्य और चक्षुष्य तथा आयुके हित ॥ १८५ ॥ नित्य मनुष्यों के शरीर में चार प्रकार की इच्छा होती है ॥ भोजनकी इच्छा प्यासकी इच्छा सोनेकी इच्छा रतेच्छा ॥ १८६ ॥ भोजनकी इच्छाके विघात से अङ्गमर्द अरुचि श्रम

तन्द्रा नेत्र की दुर्बलता धातु चाह बलक्षय होना है ॥ २८७ ॥

विघातेन पिपासाया शोषः कण्ठास्ययोर्भवेत् ॥ श्रवणास्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदि व्यथा ॥ २८८ ॥ निद्राविघाततो जृम्भा शिरोलोचन गौरवम् ॥ अङ्गमर्दस्तथा तन्द्रास्यादन्नापाक एव च ॥ २८९ ॥ बुभुक्षितो न योऽश्नाति तस्याहारेन्धनक्षयात् ॥ मन्दो भवति कायाग्नि यथा चाग्नि निरिन्धनः ॥ २९० ॥ आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः ॥

भा० प्यास के विघात से शोष कंठ और मुख का होता है ॥ श्रवण के अवरोध रक्त शोष हृदय में पीड़ा होती है ॥ २८८ ॥ निद्रा के विघात से जंभाई और शिर नेत्र में भारीपन ॥ शरीर का टूटना तथा तन्द्रा अन्न का अपरिपाक भी होता है ॥ २८९ ॥ जो बुभुक्षित भोजन नहीं करता उसके आहाररूपी इन्धन के क्षय से ॥ कायाग्नि मन्द होती है जैसे बेइन्धन अग्नि मन्द होती है ॥ २९० ॥ अग्नि आहार को पकाता है । और आहार वर्जित हुवा दोषों को पकाता है ॥ पचति दोषक्षये च धातून् धातुक्षये च प्राणान् ॥ आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारणः ॥ स्मृत्यायुःशक्तिवर्णौजः सत्वशोभाविवर्द्धनः ॥ २९२ ॥ यथोक्तगुणसम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम् ॥

भा० तथा दोष के क्षय होने से धातुवों को पकाता है और धातु क्षय होने में प्राणों को पकाता है ॥ २९१ ॥ आहार तर्पण और तत्काल बल को करनेवाला शरीर का धारण ॥ स्मृति आयु शक्ति वर्ण ओज सत्व शोभा का बढ़ानेवाला ॥ २९२ ॥ यथोचित गुण से युक्त भोजन को मनुष्य करें ॥

विचार्य्य दोषकालादीन् कालयोरुभयोरपि ॥ २९३ ॥

(क) उभयोः कालयोः प्रातः सायञ्च। तथाच

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्॥ नान्तरा भोजनङ्कुर्य्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥ १९४॥ प्रातः।

(ख) प्रातः। प्रथम यामादुपरि द्वितीय यामादर्वाक् तथाच।

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत्॥ याममध्ये रसोत्पत्तिर्य्यामयुग्माद् बलक्षयः॥ १९५॥ अन्यच्च

क्षुत् सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च॥ काले वा यदि वा काले सोऽन्नकाल उदाहृतः॥ १९६॥

भा० प्रातःकाल और सायंकाल में दोषकाल आदिकोंको विचार करके भोजनकरे॥ १९३॥ (क) उभयोः कालयोः अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल वैसे सुबह शाम मनुष्योंका भोजन श्रुति द्वाराकहाहुवाहै॥ और बीच में भोजन नकरे अग्नि होत्रके समान विधिहै॥ १९४॥

(ख) प्रातः अर्थात् प्रथम पहरके ऊपर और दूसरे पहरके पहले उसप्रकार कहाहै॥ प्रथम प्रहरके बीचमें भोजन नकरना चाहिये। और दूसरे पहर को उल्लंघन नकरे। अर्थात् दोपहर के बाद भोजन नकरे॥ प्रहर के बीच में रसकी उत्पत्ति होतीहै। और दूसरे पहरके अनन्तर बलका क्षय होताहै॥ १९५॥ रसदोष मलके पाक होनेमें क्षुधा होतीहै॥ समयपर अथवा समयके बाहर वोही अन्नकाल कहाहै॥ १९६॥ [रसादीनां पाक ज्ञानमाह]

उद्गार शुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः॥ लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम्॥ १९७॥ स्थानमाह]

आहारन्तु नरः कुर्य्यान्निर्हारमपि सर्वदा॥ उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात् प्रकामो हीयते श्रिया॥ १९८॥

निर्हारो मल मूत्रोत्सर्गः। अन्यच्च।

भा० रसादियों के पाक का ज्ञान कहते हैं । शुद्ध डकार उत्साह मल मूत्र का यथोचित होना ॥ हलकापन क्षुधा प्यास यह आहार जीर्ण होनेका लक्षण है ॥१९७॥ मनुष्य एकान्तमें भोजन और मल मूत्र का त्याग करे । क्यों कि दोनों से शोभा करके युक्त मनुष्य होता है । और प्रकाश में करने से शोभा से हीन होता है ॥ १९८ ॥ निर्हार: अर्थात् मल मूत्र का त्याग । और भी ।

(क) आहार निर्हार विहार योगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः ।

[भोजनपात्रमाह ।]

दोषहृद्दृष्टिदं पथ्यं हैमं भोजन भाजनम् ॥ रौप्यं भवति चाक्षुष्यं पित्तहृत् कफवातकृत् ॥ १९९ ॥ कांस्यं बुद्धिप्रदं रुच्यं रक्तपित्त प्रसादनम् ॥ पैत्तलं वातकृद्रूक्ष मुष्णं कृमि कफ प्रणुत् ॥ २०० ॥ आयसे काचपात्रे च भोजनं सिद्धिकारकम् ॥ शोथ पाण्डु हरं बल्यं कामलापहमुत्तमम् ॥ २०१ ॥ शैलेये मृण्मये पात्रे भोजनं श्रीनिवारणम् ॥ दारूद्भवे विशेषेण रुचिदं श्लेष्मकारितु ॥ २०२ ॥

भा० भोजन और मलमूत्र का त्याग और विहार इनका योग विद्वानों ने सदा ही निर्जन स्थानोंमें विधान कियाहै ॥ [भोजनके पात्रोंको कहतेहैं]

दोषों का नाशक दृष्टिका देनेवाला और पथ्य सोनेका पात्र होता है ॥ चांदीका पात्र नेत्रका हित पित्तनाशक और कफवातको करनेवाला होता है ॥ १९९ ॥ कांसीका बुद्धिको देनेवाला अरुचि रक्त पित्त काप्रसादन होता है । पित्तल वात का करनेवाला रूखा उष्ण और कृमिकफका नाशक होता है ॥ २०० ॥ लोहेके और कांचके में भोजन सिद्धि कारक है । शोथ पांडु कोदूर करनेवाला बल्यका मल का नाशक होता है ॥ २०१ ॥ पथ्थर के और महीके पात्रमें भोजन श्री निवारण है ॥ लकड़ीके पात्रमें विशेषकरके रुचिको देनेवाला और कफकारी होताहै२०२ ॥

पात्रं पत्रमयं रुच्यं दीपनं विषपापनुत् ॥ जलपात्रन्तु ताम्रस्य तदभावे मृदोहितम् ॥ २०३ ॥ पवित्रं शीत

लं पात्रं गठितं स्फटिकेन यत् ॥ काचेन रचितन्तद्वत्त था वैडूर्य्यसम्भवम् ॥ २०४॥ भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रक भक्षणम् ॥ अग्नि सन्दीपनं रुच्यं जिह्वा कण्ठ विशोधनम् ॥ २०५॥

भा० पत्तेका पात्र रुचिको करनेवाला दीपन विष और पापका नाशक होता है ॥ जलपात्र ताम्बेका हितहै और यह न होतो मिट्टीका हित है ॥ २०३ ॥ स्फटिक से जो गठित पात्रहै वह सदा पवित्र है और शीतलहै ॥ औरजो कांच से रचितहै उसीके समान है तथा वै र्य्य सेउवा भी वैसाही है ॥२०४॥ भोजन से पहिले अद्रक और नोन का भक्षण सदा पथ्यहै ॥ अग्निका दीपन रुच्य तथा जिव्हा कण्ठका विशोधनहै ॥ २०५॥

(क) ननु लवणस्य पित्तजनकत्वादार्द्रकस्य कटुकत्वेन पित्तलत्वाद्बुभुक्षितस्य वृद्धपित्तस्य कथम्प्रथमं लवणार्द्रकयुचितम् । उच्यते । लवणं सैन्धवं ज्ञेयं चन्दनं रक्त चन्दन मिति वचनाल्लवण मत्र सैन्धवम् तत्त्रिदोषघ्नं । यत आह । गुणग्रन्थे ।

भा० (क) ननु शंका करतेहैं कि लवण को पित्तजनकत्व होनेसे और अद्रक कटुत्व करके पित्तलं होनेसे वृद्धिको प्राप्तहुये पित्तवाले बुभुक्षितको कैसे प्रथम लवण अद्रक का भक्षण उचितहै ॥ कहतेहैं ॥ लवण सैन्धव और चन्दन रक्त जानना चाहिये इस वचनसे लवण यहां पर सैन्धव है वोह त्रिदोष नाशक है । जैसे कि कहाहै । गुणग्रन्थमें ॥

सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनम्पाचनं लघु ॥ स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत ॥ २०६॥

(ख) आर्द्रकन्तु कटुकमपि न पित्तविरोधि मधुरपाकित्वात् । यत आह । तत्रैव ॥ आर्द्रिका भेदिनी गुर्व्वी तीक्ष्णो-

ष्णा दीपनी च सा ॥ कटुका मधुरा पाके सूक्ष्मा वात कफापहा ॥ २०७ ॥ (क) अथ चान्यदपि लवणा र्द्रकञ्च नात्र पित्त विरोधि संयोग स्वभावात् । संयोगस्व भावे चैतादृशम् ॥ भोजनस्य पूर्व्वे लक्षणा ईक भक्षण बोधक वचन मेव प्रमाणयति ।

भा० सैन्धव लवण स्वादु दीपन पाचन हल्का ॥ स्निग्ध रुचिकारक शीत वृष्य सूक्ष्म नेत्रका हित और त्रिदोष का नाशक है ॥ २०६ ॥ (ख) अद्रक तो कटुक तवा भी पित्त का विरोधी नहीं है मधुर पाक के होने से । जैसे कि कहाहै उसी में ॥ अद्रक भेदन करने वाला भारी तीक्ष्ण उष्ण दीपन ॥ कटु और पाकमें मधुर सूक्ष्म वात कफका नाशक होता है ॥ २०७ ॥ (क) अनन्तर औरभी लवण अद्रक यहांपर पित्तका विरोधी नहीं है । क्यों कि संयोग स्वभाव होनेसे । संयोग स्वभावतो इस प्रकार कहा है ॥ भोजनका पूर्व लक्षण अद्रक भक्षण बोधक वचन ही प्रमाण करता है ॥

भोजनादौ दृष्टिदोष विनाशाय ब्रह्मादीन् स्मरेत् । तद्यथा अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः ॥ इतिसञ्चिन्त्य भुञ्जानं दृष्टि दोषो न बाधते ॥ २०८ ॥ अञ्जनीगर्भ सम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम् ॥ दृष्टि दोष विनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम् ॥ २०९ ॥ अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्व्वं तु मधुरं रसम् ॥ मध्येऽम्ल लवणौ पश्चात् कटु तिक्त कषायकान् । ॥ २१० ॥ फलान्यादौ समश्नीयात् दाडिमादीनि बुद्धिमान् । विना मोच फलन्तद्वद्वर्ज्जनीया च कर्कटी ॥ २११ ॥

भा० भोजनके आदिमें दृष्टिदोष विनाशके अर्थ ब्रह्मा दिकों को स्मरण करे। जैसे कि अन्न ब्रह्मा विष्णुरस भोक्ता देव महेश्वर ॥ इस प्रकार स्मरण करके भोजनकरनेवाले को दृष्टि दोषबाधा नहीं करता ॥ २०८ ॥ अंजनीके गर्भ में उत्पन्न हुआ कुमार ब्रह्मचारी ऐसे हनुमान को दृष्टिदोषके विनाश के अ

थैहम स्मरण करतेहैं ॥ २०९ ॥ तन्मन होके प्रथम मधुर रसको भोजन करे। मध्यमें अम्ल लवण और अन्तमें कटुतिक्त कषायोंको भोजनकरे ॥ २१० ॥ दाडिम आदि फलोंको आदिमें बुद्धिवान् भक्षणकरे ॥ केलेके बिना और ककड़ी को भी वैसेही छोड़देवे ॥ २११ ॥

मृणाल विश शालु ककन्देक्षु प्रभृतीनपि ॥ पूर्व्वमेव हि भोज्यानि नतु भुक्त्वा कदाचन ॥ २१२ ॥ (क) मृणालं पद्मनालं विशम्भिशाण्डकम् शालूक कन्द प्रसिद्धम्। गुरु पिष्टमयं द्रव्यं तण्डुलान् पृथुकानपि ॥ न जातु भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद्बुभुक्षितः ॥ २१३ ॥ घृत-पूर्व्वं समश्नीयात्कठिनं प्राक् ततो मृदु ॥ अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलान् रोगेण मुञ्चति ॥ २१४ ॥

भा० कमलकी डंडी और कुमुदादिकों की जड़का कन्द तथा करव प्रभृतियों को भी। प्रथमही भोजनकरना चाहिये और भोजन करके कभी न भक्षण करना चाहिये ॥ २१२ ॥ (क) मृणाल अर्थात् पद्मनाल विसम्भि सण्ड क शालूककन्द प्रसिद्ध है ॥ भारी पिट्ठीकी चीज़ और चावल चिड़वे इन को भोजन किया हुवा कभीन खावे और बुभुक्षित थोड़ासा खावे ॥ २१३ ॥ प्रथम कठिन घृतके साथ भोजनकरे ॥ उसके बाद मृदु ॥ पुनः अन्तमें पतलीवस्तुका भोजनकरने वाला होवे ॥ इस प्रकार करने से बलात्कार से रोग करके मुक्त होताहै ॥ २१४ ॥

मृणाल विशसालु ककन्देक्षु प्रभृतीनपि ॥ पूर्व्वमेवहि भोज्यानि नतु भुक्त्वा कदाचन ॥ २१५ ॥

(क) अयमर्थः। प्राक् घृत पूर्व्वं कठिनं समश्नीयात्। यथा काश्यादि वासिनः। (ख) प्रथमं सव्यञ्जनाद्

त पूर्व्वां रोटिकाम्भुञ्जन्ते । ततो मृदु ससूपादि मोदनम्भुञ्जन्ते । अन्ते पुनर्द्रवाशी ॥ भोजनान्ते दधि तक्र दुग्धादि भुञ्जन्ते । यद्यत् स्वादुतरन्तद्धि दद्यादुत्तरोत्तरम् ॥ भुक्का यत् प्रार्थ्यते भूयस्तदुक्तं स्वादु भोजनम् ॥ २१६॥

भा॰ (क) यह अर्थहै कि प्रथम घृतके साथ कठिन वस्तु भक्षण करे । जैसे काशीके रहनेवाले ॥ (ख) प्रथम व्यंजन के सहित घृतके साथ रोटीको खाते हैं ॥ उसके अनन्तर दालके साथ चावल भोजन करतेहैं । अन्तमें पुनः द्रवाशी होवे ॥ अर्थात् भोजनके अन्तमें दही मट्ठा दूध इत्यादि भोजन करतेहैं। जोजो वहुत मीठा हो उसको उत्तरोत्तर भोजन नकरैं जो फिरसे चाहे सो स्वादु भोजन कहाहै ॥ २१६ ॥

स्वाद्वन्नस्य गुणमाह ।

सौमनस्यं वलम्पुष्टि मुत्साहं वृद्धि मायुषः । स्वादु सञ्जनयत्यन्न मस्वादुच विपर्य्ययम् ॥२१७॥ अत्युष्णन्नं वलं हन्ति शीत शुष्कञ्च दुर्ज्जरम् ॥ अति क्लिन्नं ग्लानिकरं युक्तयुक्तं हि भोजनम् ॥ २१८॥ अति दुताशिताहारे गुणान्दोषान्न विन्दति ॥ भोज्यं शीत महद्यञ्च स्याद्विलम्बित मश्नुतः ॥ २१९॥

भा॰ स्वादु अन्नके गुण कहते हैं । सौमनस्य वलपुष्टि उत्साह और आयुकी वृद्धि । इनको स्वादु अन्न उत्पन्न करताहै ॥ और अस्वादु इसके विपरीतको करताहै ॥ २१७॥ अतिउष्ण अन्न वलको नाश करता है । और शीत शुष्क दुर्जर वहुत गलाहुवा ग्लानिको करताहै । तथा युक्ति करके अयुक्त भोजनभी ग्लानि करताहै ॥ २१८॥ आहार के अतिशीघ्र भोजन करने में गुण नहीं होता। किन्तु दोष होताहै ॥ शीत भोजन अप्रियहोताहै । और देरमें भोजन करनेसे अहृद्य होता है ॥ २१९ ॥

[गुरु त्रिविधन्तन्निवारयन्नाह ।]

मन्दानलो नरोद्रव्यं मात्रागुरु विवर्ज्जयेत् ॥ स्वभावतश्च गुरुयत् तथा संस्कारतो गुरुः ॥ २२० ॥ मात्रागुरु

स्तु मुद्गादिः माषादिः प्रकृतेर्गुरुः ॥ संस्कार गुरु पिष्टान्नं प्रोक्त मित्युप लक्षणम् ॥ २२१॥ आहा रं षड् विधञ्चूष्यं पेयं लेह्य न्तथैवच ॥ भोज्य म्भक्ष्यन्तथा चर्व्यं गुरु विधात् यथोत्तरम् ॥२२२॥

भा० भारी तीन प्रकारका होताहै उसको दूर करके कहते हैं ॥ मन्दाग्नि वाला मनुष्य मात्रा गुरु स्वभाव गुरु और संस्कार गुरु ऐसे द्रव्यको तज देवे। जो स्वभावसे भारी है या संस्कार से भारी है ॥ २२०॥ मात्रा गुरु मूंग इत्यादिक होतेहैं। और उड़द इत्यादिक स्वभाव से गुरु होते हैं ॥ तथाच पिट्ठी इत्यादिकी संस्कार गुरु कहाहै यह उपलक्षण है ॥ २२१ ॥ आहार छः प्रकार का होताहै। चूष्य पेय लेह्य ॥ भोज्य तथा भक्ष्य चर्व्य ये उत्तरोत्तर गुरु जाने ॥ २२२॥

[चूष्यं इक्षु दाड़िमादि।]

(क) पेयम् पानक शर्करोदकादि लेह्यं रसाला क्वथितादि क्वथिता कढ़ी इति लोके। भोज्यं भक्त सूपादि। भक्ष्यं लड्डुकं मण्डुकादि चर्व्यञ्चिपिटञ्चणकादि स्वभावगुरु संस्कार गुरुणोः स्वभाव लघुत्वात्भक्ष्यस्य भोजन परिमाणमाह ॥

भा० चूष्य ऊख दाड़िमादिक पेय पानक शर्बत इत्यादिक लेह्य रसाला कढ़ी इत्यादिक। क्वथिता अर्थात् कढ़ी। भोज्य दाल चावल। भक्ष्य लड्डू मीठे इत्यादिक। चर्व्य चिड़वा चना इत्यादिक। स्वभावगुरु और संस्कार गुरु का स्वभाव लघुता से भक्ष्यका भोजन परिमाण कहते हैं ॥ (क) ॥

गुरूणा मर्द्ध सौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते।

(ख) अयमर्थः माष पिष्टान्नादिभिरर्द्ध सौहित्यं कर्त्तव्यं मुद्गादिभिः स्वभावादेव लघुभिर्मात्रया तृप्तिः कर्त्तव्ये

त्यर्थः॥ द्रवो द्रवोत्तरश्चापि न मात्रा गुरुरिष्यते॥

(ग) द्रवः पेयादि द्रवोत्तरः तक्राद्यधिक ओदनादिः मात्रातोऽधिकोऽपि मात्रा गुरुर्न मन्तव्यः। पेयस्य सर्व्वतो लघुत्वात्। उक्तञ्च सुश्रुतेन।

(घ) पेयलेह्यादि भक्ष्याणां गुरु विद्यात् यथोत्तर मिति पेयम्पेयादि। लेह्यं रसालादि। आदिशब्दात् भोज्य मोदन सूपादि। भक्ष्यम्मोदकादिः

द्रव्याढ्य मपि शुष्कन्तु सम्यगेवोपपद्यते॥ विशुष्क मन्न मभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति॥२२३॥

भा॰ गुरु पदार्थोंकी आधितृप्ति और लघु पदार्थों की पूर्णतृप्ति इष्ट है॥ यह अर्थ कहाहै कि उड़द पिट्ठी वगैरोंकी आधि तृप्ति करनी चाहिये॥ स्वभाव से ही हलके मूंग वगैरों की मात्रा करके शरीरकी तृप्ति करनी चाहिये। द्रव अर्थात् द्रवोत्तर भी मात्रागुरु इष्ट नहीं है॥ (ग) द्रव अर्थात् पेयादि द्रवोत्तर अर्थात् रबा दि अधिक ओदनादिक। मात्रासे अधिक को भी मात्रा गुरु न मा न ना चाहिये। पेयका सर्वतः लघु होने से। कहाहै सुश्रुत ने भी। (घ) पेय लेह्यादिक भक्ष्य पदार्थों को यथोत्तर गुरु जाने॥ पेय अर्थात् पेयादि लेह्य अर्थात् रसालादिक। आदि शब्द से भोज्य चावलदाल इत्यादिक। भक्ष्य मोदकादिक। शुष्क भी द्रव्यसे भराहुवा अच्छीतरह पाकको प्राप्त होताहै॥ और बहुत सूकाहुवा अन्न सेवन किया अच्छे प्रकार पाकको नहीं प्राप्त होता॥ २२३॥

(क) अयमर्थः शुष्कमपि स्रोतोरोधकमपि द्रव्याढ्यं सम्यक् पाकं याति। केवलस्य शुष्कान्नस्य दोषमाह। विशुष्क मन्न मित्यादि। [अपक्वन्तत्किम्भवतीत्यपेक्षायामाह पिण्डीकृतमसं क्लिन्नं विदाह मुपगच्छति॥

[पिण्डीकृतम् । अष्ठीलावदुन्नतम् ।]
(ख) असं क्लिन्नं न सम्यगार्द्रं । विदाह मुपगच्छति वि
दग्धं भवतीत्यर्थः । शुष्कादीनां वैगुण्य माह ।

शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वन्हिव्यापद कृद्भवेत् ॥
(ग) शुष्कञ्चिपिटकादि । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । वि
ष्टम्भि चणकमसूरादि वन्हि मान्द्यकुर्य्यात् ॥

न भुक्त्वा नरदञ्छित्वा न निशायां न वा वहन् ॥ न
जलान्तरितानद्भिः सक्तू नद्यान्न केवलान् ॥२२४॥
पुनर्दानं पृथक्पानं सामिषम्पयसा निशि ॥ दन्त
छेदन मुष्णाञ्च सप्त सक्तुषु वर्ज्जयेत् ॥ २२५ ॥ अस्तु

भा० यह अर्थहै । कि शुष्क भी स्रोत का करने वाला भी अधरेधूंसे भरा
हुवा अच्छीतरह पर पाकको प्राप्त होताहै । केवल शुष्क अन्नका दोष
कहतेहैं । विशुष्क अन्न इत्यादि । अपक्व वोह अन्न क्या होनाहै इस अपे
क्षामे कहतेहैं ॥ पिंडसाहुवा न गलाहुवा ऐसा अन्न विदाहको प्राप्त होता
है । पिंडी कृत अर्थात् अष्ठीलाके मानिंद उठाहुवा । असंक्लिन्नं अर्थात् अ
च्छे प्रकार जो आर्द्र नहीं । विदाह को प्राप्त होताहै । अर्थात् विदग्ध होनाहै
॥ शुष्कादियों का वैगुण्य कहतेहैं ॥ शुष्क विरुद्ध विष्टंभि ये यथार्थ अ
ग्नि मान्द्यको करने वाले होतेहैं ॥ . (ग) शुष्क अर्थात् चिड़वा इत्यादिक ।
(विरुद्ध) दूध मछली इत्यादि । (विष्टम्भि) चना मसूर आदिक । अ
ग्नि मान्द्य करतेहैं ॥ न भोजन करके न दांतोंको छीलके न सायंकाल में न
वेगोंका धारण करताहुवा । न जलकरके व्यवहित सक्तू पानी के साथ केव
ल न भक्षण करे ॥ २२४ ॥ फिरसे देना खालीपीना मांसके साथ पानी से
सायंकाल में दन्त छेदन और गरम ये सात सक्तूमें छोड़देवे ॥ २२५ ॥

सुश्रुतः । पाकूनाभाशु जीर्णेन मृदुता दव लेहिके ॥

[विषमाशनस्य लक्षणमाह ।]

आलस्य गौरवाटोप शब्दांश्च कुरुतेऽधिकम् ॥ ही-
नमात्रं तनोः कार्श्यं करोति च बलक्षयम् ॥ २२६॥
(क) आधिकं अन्नम्। अकाले भुक्तस्य दोषमाह।
अप्राप्तकाले भुञ्जानो ह्यसमर्थः तनुर्नरः॥ तां
स्तान् व्याधीन वाप्नोति मरणञ्चाधि गच्छति॥२२७॥

भा० सश्रुत ने कहाहै। शीघ्र जीर्ण होनेकरके मृदु होने से सत्तू का अवलेह प्रशस्तहै॥ विषमाशन का लक्षण कहते है॥ अधिक मात्रा आलस्य भारीपन गुड गुड़ा शब्दों को भी करती है॥ और हीन मात्रा शरीर की कृशता और बल क्षय को भी करती है॥ २२६॥ (क) आधिक अन्न। अकाल में भोजन कियेका दोष कहते हैं॥ अप्राप्त कालमें भोजन कर नेवाला असमर्थ शरीर मनुष्य होता है॥ उन २ व्याधियों को पाता है। और मरण को भी पहुंच जाता है॥ २२७॥

(ख) अप्राप्तकाल: कालादति प्राक् भुञ्जानः असमर्थ
शरीरो भवति। तथा सति तां स्तान् व्याधीन् शिरोव्यथा
विसूचिकालसक विलम्बिकादीन् प्राप्नोति।
तेषामाधिक्ये मरणमपि प्राप्नोतीत्यर्थः॥

कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तो र्वायुनोपहतेऽनले। कृच्छ्रा
द् विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा॥ २२८॥

भा० (क) (अप्राप्तकाल) समय से बहुत प्रथम भोजन करनेवाला असमर्थ शरीर होता है। वैसे होनेसे उन २ व्याधियों को अर्थात् शिरपीड़ा विसूचिका अलसक विलम्बिकादि व्याधियों को पाताहै॥ उनके बढ़जाने में मरण को भी प्राप्त होता है॥ बहुत अबेरमें भोजनकरनेवाले मनुष्यकी वायु से नष्टहुई अग्नि में भोजन कियाहुवा कष्ट से पाक होता है। और फिर से भोजनकी इच्छा नहीं होती॥ २२८॥

कुक्षेर्भाग द्वयं भोज्यैस्तृतीये वारि पूरयेत् ॥ वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थ मवशेषयेत् ॥ २२९ ॥ रसे न्नान्नस्य रसना प्रथमे नाप तर्पिता ॥ न तथा स्वादुमाप्नोति ततः शोध्याम्बु नान्तरा ॥ २३० ॥ अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्न मनम्बुपानाच्च स एव दोषः ॥ तस्मान्नरो वन्हि विवर्द्धनाय मुहुर्मुहु र्वारि पिवेद्भूरि ॥ २३१ ॥ भुक्तस्यादौ जलम्पीतं कार्श्यं मन्दाग्नि दोषकृत् ॥ मध्येऽग्नि दीपनं श्रेष्ठ मन्ते स्थौल्य कफप्रदम् ॥ २३२ ॥ (अन्यच्च।) समस्थूलकृशाभुक्त मध्यान्तःप्रथमाम्बुपा ।(इति वाग्भटः।)

भा० कूख के दो हिस्से भोज्य पदार्थों से भरे। और तीसरे में पानी भरे। तथा चौथा हिस्सा वायुके आने जानेके वास्ते बाकी छोडे ॥ २२९ ॥ अन्न के रस से जिव्हा पहले तृप्त की हुई ॥ वैसी स्वादु नहीं होती तिस्से जल करके भीतरसे शोधन करली चाहिये ॥ २३० ॥ बहुत जलके पान से अन्न परिपाक नहीं होता। और जलके न पीनेसे भी अन्न परिपाक नहिं होता ॥ तिस्से मनुष्य अग्निकी वृद्धिके अर्थ बार २ थोड़ा जल पीवे ॥ २३१ ॥ भोजन के पहिले जल पीने से कृशता और मन्दाग्नि दोष होता है ॥ और मध्य में जल पीनेसे अग्नि दीपन होता है इसवास्ते श्रेष्ठ है ॥ तथा अन्त में स्थूलता और कफकारी होता है ॥ २३२ ॥ औरभी। भोजनके मध्य जल पीनेवाला सम अन्तमें पीनेवाला स्थूल प्रथममें पीनेवाला कृश इसप्रकार

(भुक्तं भोजनं) तृषितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी ॥२३३॥ (क) ननु शिष्टा भोजनान्ते दुग्धं पिबन्ति तत्कथमुचितं। यतस्त्रिधा विभक्तस्य भोजन कालस्य प्रथमो भागो वातस्य द्वितीयः पित्तस्य तृतीयः

कफस्य अतएवाह ॥ अश्नीयात् तन्मना भूत्वा पूर्व्वं न्तु मधुरं रसम् ॥ मध्येऽम्ल लवणौ पश्चात् कटु तिक्त कषाय कान् ॥२३४॥ [अस्यायमभिप्रायः।]

भा० होतेहैं। ऐसा वाग्भटनेकहाहै ॥ (भुक्तं) भोजन। प्यासा भोजन नकरे। और क्षुधितजल न पीवे॥ तृषितजलके पीनेसे गुल्म रोगवाला होताहै। और क्षुधितजलोदर रोगवाला होताहै ॥ २३३॥ (क) ननु शंका करते है कि शिष्टलोग भोजन के अन्त में दूध पीते है।
सो कैसे उचित हैं। क्यों कि तीन प्रकार विभाग कियेहुवे भोजनकाल का प्रथम भाग वातका।
और दूसरा पित्तका तीसरा कफका॥ इसीवास्ते कहतेहैं॥ स्वस्थ चित्त होकर प्रथम मधुर रस भोजनकरे। बीचमें खट्ट और नोनका भोजन करे। अन्तमें कड़ुवा तीताकसैला अन्न भोजनकरें॥ २३४॥
(क) इसका यह अभिप्रायहै॥

(क) भोजने पूर्व्वं भुक्तो मधुरो रसो बुभुक्षितस्य वातपित्तयोः शमको भवति भोजनमध्ये भुक्तावम्ल लवणौ पित्ताशये च वन्हि वृद्धिं कुरुतः। भोजनान्त समये भुक्ताः कटु तिक्त कषायरसाः कफं शमयन्तीति। अथ भोजनावसान समयस्य कफकालत्वात् तत्कथं श्लेष्म जनकं दुग्धं पातुमुचितम्भवति ॥ यत उक्तम्।

भा० भोजन में खाया हुवा मधुर रस बुभुक्षित के वात पित्त का शमन करताहै। भोजन के बीच में भक्षण कियेहुवे अम्ल लवण पित्ताशयमें अग्निकी वृद्धिकरते हैं। भोजन के अन्त समय में भक्षण कियेहुवे कटु तिक्त कषाय रस कफको शमन करते हैं॥ अनन्तर भोजनके अन्तका समय कफका समय होनेसे उसमें कैसे कफको उत्पन्न करनेवाले दुग्धके पीना उचित है॥ ऐसाकि कहा है।

दुग्धं स्वादु रसं स्निग्धं ओजस्य धातु वर्द्धनम् ॥ वात-
पित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलङ्गुरु शीतलम् ॥ २३५ ॥
इति उच्यते । विदाहीन्य न्नपानानि यानि भुंक्ते हि मान
वः ॥ तद्विदाह प्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥
॥ २३६ ॥ [तथाच ब्रह्मपुराणे ।]
कुर्य्यात् क्षीरान्तमाहार न दध्यन्त कदाचनेति ॥
लवणाम्ल कटूष्णानि विदाहीन्यति यानि तु ॥
तद्दोषं हर्तुमाहारं मधुरेण समापयेत् ॥ २३७ ॥

भा० दुग्ध मधुर रस स्निग्ध ओजको करनेवाला धातु की वृद्धि करनेवाला ॥ वात पित्तका नाशक वृष्य कफको करने वाला भारी शीतल ये गुण हैं ॥ २३५ ॥ इस प्रकार कहाहै ॥ मनुष्य जो विदाही अन्न पानों को भोजन करताहै ॥ उसके दाह शमन के अर्थ भोजन के अन्तमें दुग्ध पीवे ॥ २३६ ॥ उस प्रकार ब्रह्मपुराण मे कहाहै ॥ अन्त में दुग्ध भोजन करे ॥ और अन्त में दही कभी भोजन नकरे ॥ लवण अम्ल लवण कटु उष्ण और जो बहुत विदाहीहै ॥ उसका दोष निकालने के लिये मधुर रस से आहार करें । अर्थात अन्त में मधुर भोजन करे ॥ २३७ ॥

(क) भोजनावसान समये दुग्धादि मधुर भोजने नैव प
ण्डितः कफो लवणाम्ल कटुभोजन जनित पित्तस्य वृद्धिं वि
नाशयति पित्तवृद्धि विनाशनेन कफस्यापि वृद्धिस्तु क्षी-
णा भवति । क्षीणा कफ वृद्धिरग्नि मान्द्यादीन् व्याधी
नुत्पादयितुं न शक्नोति ॥ (ख) ननु शास्त्रोक्तशासनेन
शत्रु हन्तुर्वृद्धि दृश्यते ननु क्षीणता तत कथं कफः क्षीणा

इति। उच्यते। बलवच्छत्रु विनाशनेन शत्रु हन्तुः दृश्य ते। तथाच। नाशनात् प्रत्यनीकस्य स्वयं च क्षीयते यथा॥ वह्नि सन्तप्तलोहस्य नमता नाशयेज्जलम्॥२३८॥

भा० (क) भोजन के अन्त समयमें दुग्धादी मधुर भोजन सेही बढा हुवा कफ लवण अम्ल कटु भोजन से उत्पन्न हुवे पित्तकी वृद्धि को नाश करता है। पित्त वृद्धि के विनाश से कफकी भी वृद्धि क्षीण होती है॥ क्षीण हुई कफकी वृद्धि अग्निमान्द्यादि व्याधियों को नहीं उत्पन्नकर सकी॥ (ख) ननु शंका करते हैं कि शत्रुके नाशसे शत्रु नाश करनेवाले की वृद्धी दीखती है। नकि क्षीणता न व कैसे कफ क्षीण होता है॥ कहते हैं। बलवान शत्रुके नाशसे शत्रु नाश करने वालेकी क्षीणता दीखती है। उस प्रकार कहा है। शत्रु के नाश से आप क्षीण होता है॥ जैसे आगसे सन्तप्त हुवे लोहको नमता जल नाश करता है २३८॥

(क) ननु भोजनावसान समये भुक्ताः कटु तिक्त कषायाः रसाः कफ शमयिष्यन्ति वातस्य वृद्धिं विधास्यन्ति इति चेन्न॥ तन्न कट्वादीनां क्षीणशक्तिकत्वात्। [तथाच] यदेकं नाशयेद्दोषं तन्नान्यं वर्द्धयेत् कुतः॥ नाशने ह्येक दोषस्य यतस्तत् क्षीणशक्तिक मिति॥२३९

(ख) वस्तुतो य एव रसः प्राचुर्य्येण भुक्तस्तस्यैव सर्वे रसा वशा भवन्ति॥ [यत आह: सुश्रुतः॥

भा० (क) ननु शंका करते हैं कि भोजनके अखीर के समय में भक्षणकिये हुवे कटु तिक्त कषाय रस कफका शमन करेंगे औरवातकी वृद्धि कोभी करेंगे। सो ठीक नही॥ क्यों कि कटु आदियोंकी क्षीण बल होने से। उस तरह पर कहा है॥ जो एक दोष को नाश करता है वो दूसरे को कैसे नहीं बढ़ाता। क्यों कि एक दोषके नाशमें भी क्षीण बल होता है॥२३९॥

(ख) वस्तुतः जोही रस अधिक करके भक्षण किया गया है उसी के वश

सब रस होतेहैं ॥ (ख) ॥ जैसे कि कहाहै सुश्रुत नें ॥

जग्धाः सर्वेऽपि गच्छन्ति बलिनो वशयतां रसाः ॥
यथा प्रकुपिता दोषाः वशं यान्ति वलीयसः ॥२५०॥
(वलिनः रसस्य बलीयसः दोषस्य।)
एवं भुक्ता समाचामेद्धूम ग्रहण पूर्व्वकम् ॥ भोजने
दन्तलग्नानि निर्हृत्याचमनं चरेत् ॥ २५१ ॥ दन्तान्तर
गतं चान्नं शोधनेनाहरेत् शनैः॥ कुर्य्यादनिर्हृतं त
द्धि मुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥ २५२ ॥ दन्तलग्नम
नि हार्य्यं लेपं मन्ये तदन्तवत् ॥

भा० भक्षणकियेहुवे सबरस बलिके वश होतेहैं ॥ जैसे प्रकोप को प्राप्तहुवे दोष बलवान् दोषके आधीन होतेहैं ॥२५०॥ (बलिनः) रसका। (बलीयसः) दोषका) ॥ इस प्रकार कहकर रुक्षवस्तुको लेके अंचवे ॥ भोजन में दांतों से लगेहुवे को निकालकर कुल्ले करे ॥ २५१ ॥ दांतोंके भीतर् लगेहुवे अन्नको सींकसे धीरे २ निकाले ॥ उसके न निकालने से मुखमें बुरी गन्धहोतीहै ॥ २५२ ॥ दांतोंपर जमाहुवा लेपन निकालना चाहिये क्यों कि उसका नाशकहै ॥

न तत्र बहुशः कुर्य्यात् यत्नं निर्हरणं प्रति ॥ २५३॥
आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत् ॥
भुक्ता च संस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन् सुखावहान् ॥२५४
विष्णुरात्मा तथाचान्नं परिणामश्च वै यथा ॥ सत्ये
न तेन मद्भुक्तं जीर्य्यत्वन्न मिदन्तथा ॥ २५५॥

भा० उसको निकालने के वास्ते बहुत यत्न नकरे ॥ २५३॥ आचमनक

रके जलसे युक्त हातों से नेत्रोंको स्पर्शकरे ॥ भोजन करके सुखको देनेवा-ले अगस्त्य आदियोंको नित्य स्मरण करे ॥ २४४॥ जैसे विष्णु आत्मा वैसे ही अन्न परिणाममयी ॥ उस सत्यकरके यह मेरा भोजन कियाहुवा अन्नपरिपाकहो ॥ २४५॥

अगस्तिरग्निर्बड्वानलश्च भुक्तं ममान्नं ज्वलयत्वशेषम् ॥ सुखञ्च मे तत्परिणामसम्भवम् । यच्छन्त्वरोगं ममचास्तु देहम् ॥ २४६॥ अङ्गारकमगस्तिञ्च पावकं सूर्य्यमश्विनौ ॥ पञ्चैतान् संस्मरेन्नित्यं भुक्तं तस्याशु जीर्य्यति ॥ २४७ ॥ इत्युच्चार्य्य स्वहस्तेन परिमार्ज्य तथोदरम् ॥ अनायासप्रदायीनि। कुर्य्यात् कर्म्माण्यतन्द्रितः ॥ २४८ ॥

भा० अगस्ति अग्नि और वड्वानल भी भोजन कियाहुवा मेरा सम्पूर्ण अन्न भस्मकरो ॥ मुझे उसके परिणाम से उत्पन्नहुवा सुखभी देओ और मेरा देह अरोग रहो ॥ २४६ ॥ मंगल अगस्ति अग्नि सूर्य्य अश्विनीकुमार ॥ इन पांचों को जो नित्य स्मरणकरे उसका भोजन कियाहुवा शीघ्र पचजाताहै ॥ २४७ ॥ इस प्रकार उच्चारण करके अपने हात से उदरका परिमार्जन करके परिश्रम को नदेनेवाले कर्मोंको सावधान होके करे ॥ २४८ ॥

(क).अतन्द्रितः निरन्तरं जाग्रत तिष्ठेन्नतु स्वप्यात्।भुक्तमात्रस्य तु स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः इति वचनात् । जीर्णेःस्ववर्द्धते वायु र्विदग्धे पित्तमेधते ॥ भुक्तमात्रे कफश्चापि क्रमोऽयं भोजनोपरि ॥ २४६ ॥

भा० (क) अतन्द्रित अर्थात् निरन्तर जाग्रत होके रहे न कि सोवे ॥ भोजन करके सोनेसे कोपको प्राप्तहुवा कफ अग्निको नाश करता है इस वचनसे । अन्नके पचजानेपर वायु बढ़ता है और विदग्धमें पित्त तथा भोजन करने मात्रमें कफ येक्रम भोजन के ऊपर होताहै ॥ २४६ ॥

(ख) विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिदपक्के। भुक्तमात्रे स ञ्जातस्य कफस्य प्रतीकारमाह।

धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषाय कटु तिक्तकैः॥ पूग क र्पूर कस्तूरी लवङ्ग सुमनः फलैः॥ २५०॥ फलैः क टुकषायैर्वा मुखवैशद्यकारिभिः॥ ताम्बूलपत्र स-हितैः सुगन्धैर्वा विचक्षणः॥ २५१॥

भा० (ख) विदग्ध अर्थात कुछ पका और कुछ कच्चा। भुक्त मात्रमें उत्पन्न हुवे कफकी चिकित्सा कहते हैं। अगुरु आदिके धूवेंसे हृदयके कषाय क टु तिक्त॥ सुपारीकपूर कस्तूरी लवङ्ग जायफल अथवा कटु कषाय मुख कोसफा करनेवाले फलोंसे सुगन्ध पानके सहित बुद्धिवान् कफको दूरकर के॥ २५१॥ (क) धूमेन अगुर्वादि धूमेन। अपोह्य कफं दूरीकृत्य कषाय कटुतिक्तकैः फलैः कर्पूर कस्तूरी लवङ्गा दिभिः। पूगैः क्रमुकैः सुमनःफलैः जातीफलैः एला हरीत क्यादि फलैः॥ रतीसुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वान्ते च सङ्ग रे॥ सभायां विदुषां राज्ञां कुर्य्यात्ताम्बूल चर्वणम्॥ ५२ ताम्बूलमुक्तं तीक्ष्णोष्णा रोचनन्तु वरम् सरम्॥ तिक्तं क्षारोषणं काम रक्तपित्त करं लघु॥ २५३॥

भा० (क) धूमेन अर्थात् अगुरु आदिकके धूमसे॥ अपोह्य अर्थात् कफ को दूरकरके। कषाय कटु तिक्तफल कपूर कस्तूरी लवंग आदियोंसे। पूग अर्थात् सुपारी सुमनफल अर्थात् जायफल। इलायची हड़ आदिक के फलसे॥ मैथुनमें सोके उठनेपर स्नानकरने पर भोजनकरनेपर वमन करनेपर युद्धमें॥ पंडित और राजाकी सभामें ताम्बूलका चर्वणकरे॥ ॥२५२॥ ताम्बूल तीक्ष्ण उष्ण रोचन कसैला सर॥ तीता क्षार कटु और का मरक्तपित्तको करनेवाला लघु॥ २५३॥

वक्त्रं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यं मलवातश्रमापहम्॥ मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारकम्॥२५४॥ हनुदन्तमलध्वंसि जिह्वेन्द्रियविशोधनम्॥ मुखप्रसेकशमनं गलामय विनाशनम्॥२५५॥ नवं तदेव मधुरं कषायानुरसं गुरु॥ बलासजननं प्रायः पत्रशाकगुणं स्मृतम्॥२५६॥ वङ्गदेशोद्भवं पर्णं परं कटुरसं सरम्॥ पाचनं पित्तजनकमुष्णं कफहरं स्मृतम्॥२५७॥ पर्णं पुराणमकटु खुल्लकन्तनु पांडुरम्॥ विशेषाद् गुणवद्वेद्यमन्यद्धीनगुणं स्मृतम्॥२५८॥ [ताम्बूलगुणाः।]

भा० वक्त्र कफ मुखकी दुर्गन्धता और मल वात श्रम इनका नाशक॥ मुखकी स्वच्छता और सुगन्धता तथा कान्ति और अच्छापन इनका कारक॥२५४॥ जबाड़ा और दान्त इनके मलका नाशक तथा जिह्वेन्द्रियका शोधन॥ मुखके लारका शमनकरनेवाला तथा गलेके रोगका नाशक। कहाहै॥२५५॥ वही नया पान मधुर और पीछेसे कषायरस भारी॥ कफ का उत्पन्न करनेवाला और प्रायः पत्र शाकके समान गुण कहाहै॥ २५६॥ वङ्गला पान अत्यन्त कटुरस और सर॥ पाचन पित्तका उत्पन्न करनेवाला उष्ण कफका नाशक कहाहै॥२५७॥ पुराना पान मीठा छोटा पतला सफ़ेद॥ विशेष करके गुणवाला जानना चाहिये। और दूसरा हीन गुण कहा है॥२५८॥ [ताम्बूल के गुण कहते हैं।]

पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तनुत्॥ मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम्॥२५९॥ पूगं स्याद्दृढमध्यं यत् खिन्नं वापि त्रिदोषनुत्॥ सरसं गुर्वभिष्यन्दि तद् भृशं वह्निनाशनम्॥२६०॥

खदिरः कफपित्तघ्नश्चूर्णं वात बलासनुत् ॥ संयोग त स्त्रिदोषघ्नं सौमनस्यं करोति च ॥ २६१॥ मुख वैश द्य सौगन्ध्य कान्ति सौष्ठव कारकम् ॥ प्रभाते पूग म धिकं मध्यान्हे खदिरं तथा ॥ २६२॥ निशास्तु चूर्णम धिकं ताम्बूलं भक्षयेत सदा ॥ आयुरग्रे यशो मूले ल क्ष्मी मध्ये व्यवस्थिता ॥ २६३॥ तस्मादग्रं तथा मूलं मध्यं पर्णस्य वर्जयेत ॥ पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णा ग्रे। पायसम्भवः ॥ २६४॥

भा० सुपारी भारी शीत रूखी कफ पित्तकी नाशक ॥ मोहन दीपन रुचिकारक और मुखकी विरसता की नाशक ॥ २५९॥ जो सुपारी कैडी नहीं होती और चिकनी होती हैं वोह त्रिदोष नाशक होती है । जो कुछ हरी होती है वोह भारी और अभिष्यन्दी तथा अत्यन्त अग्निनाशक होतीहै ॥ २६०॥ कथ्था कफ पित्त का नाशक और चूना वात कफका नाशक होताहै ॥ संयोग से त्रिदोष नाशक और अच्छेयनको भी करताहै ॥ २६१॥ मुखकी शुद्धि सुगन्धता कान्ति और सुन्दरताकी करने वाला होताहै ॥ प्रातःकाल में सुपारी अधिक और मध्यान्ह में कथ्था अधिक ॥ २६२॥ तथा सायंकालमें अधिक चूना इस प्रकार ताम्बूल सदा भक्षणकरे ॥ इसके अग्रभागमें आयु और जडमें यश और बीचमें लक्ष्मी रहे है ॥ २६३ ॥ इसवास्ते पानका अग्र और मूल त्यागदेवें ॥ पानके जड़में रोग होताहै ॥ और पानके अग्रभागमें पापकी उत्पत्ति होती है । ॥ २६४॥

चूर्णे पर्णं हरत्यायुः शिराशुद्धि विनाशिनी ॥ आद्यं विषोपमं पीतं द्वितीयं भेदि दुर्जरम् ॥ २६५॥ तृतीया दनु पातव्यं सुधातुल्यं रसायनम् ॥

भा० चूना और पान आयुको हरताहै और शिर शुद्धि नाशनी है ॥ पहिला खनेसे विषके समान होताहै । और दूसरा भेदनकरनेवाला दुर्जर ॥ २६५॥

तीसरे को मिलाके पीछेसे खाना चाहिये वोह अमृतके समान रसायन होता है ॥

ताम्बूलं नातिसेवेत न विरिक्तो बुभुक्षितः ॥ २६६ ॥
देहदृक्केशदन्ताग्निश्रोत्रवर्णबलक्षयः ॥ शोषः
पित्तानिलास्रं स्यादिति ताम्बूलचर्वणात् ॥ २६७ ॥
ताम्बूलं न हितं दन्तदुर्बलेक्षणरोगिणाम् ॥ विष
मूर्च्छामदार्त्तानां क्षयिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ २६८ ॥
भुक्त्वा शतपदं गच्छेच्छनैस्तेन तु जायते ॥ अङ्गस
ङ्घातशैथिल्यं ग्रीवाजानुकटीमुखम् ॥ २६९ ॥ भुक्तो
पविष्टस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता ॥ आयुष्यं क्रम
माणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ २७० ॥

भा० विरेचन लिया हुवा और बुभुक्षित ये ताम्बूल को बहुत न सेवन करें ॥ ॥ २६६ ॥ बहुत ताम्बूलके चर्वणसे शरीर दृष्टि केश दन्त अग्नि कर्ण और वर्ण तथा बल इनका क्षय ॥ शोष पित्त और वातरक्त होता है ॥ २६७ ॥ ताम्बूल दन्त दुर्बल नेत्र रोगियोंको ॥ और विष मूर्च्छा मद करके पीड़ितको तथा क्षय रोगवाला और रक्तपित्ती इनको हित नहीं है ॥ २६८ ॥ भोजन करके धीरे २ सौकदम चले बहुत चलनेसे शरीरका संघात और गर्दन घुटना कमर तथा मुख इनमें शैथिल्य होताहै ॥ २६९ ॥ भोजन करके बैठने वालेको तन्द्रा और सोनेवाले को पुष्टिता तथा टहलनेवाले को आयु ये प्राप्त होते हैं। और दौड़ने वालेके पीछे मृत्यु दौड़ता है ॥ २७० ॥

(चंक्रममाणस्य पदशतं शनैर्गच्छतः।)

श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान् द्विः पार्श्वे तु दक्षिणे ॥ तत
स्तु द्विगुणान् वामे पश्चात् स्वप्याद् यथा सुखम् ॥
२७१ ॥ वामदिशाया मनलो नाभेरूर्ध्वेऽस्ति जन्तूनाम् ॥

(क) तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीत भुक्त्वा यथाकार्यम्।
त्रिदोषशमनी खट्वा तूली वातकफापहा॥ भूशय्या
बृंहणी वृष्या काष्ठपट्टी तु वातला॥ २७२॥[अन्यः पुन
राह] भूशय्या वातलातीव रूक्षा पित्तास्रनाशिनी॥
सुशय्या शयनं हृद्यं पुष्टि निद्रा धृतिप्रदम्॥ २७३॥
श्रमानिल हरं वृष्यं विपरीत मतोऽन्यथा॥ सम्वाह
नं मांस रक्त त्वक् प्रसादकरं परम्॥ २७४॥

भा० चंक्रम मारणस्य अर्थात् सौकदम् धीरे २ चलनेवालेका) सीधा सो कर आठ श्वास लेवे और दोनों करवट में उन श्वासो को लेवें॥ दहिनी करवट सोलह और बायें करवट बत्तीस श्वास लेवे पश्चात् जैसा चाहे वैसा सो रहे॥ २७१॥ प्राणियों के बायेंतरफ नाभिके ऊपर अग्निहै॥
(क) जिस्से बायें करवट से वो भोजन कियाहुवा शीघ्र पाक होनेके अर्थ। तोशक बिछी खाट त्रिदोषको शमन करनेवाली और वात कफ की नाशक है॥ और ज़मीनकी शय्या बंहण पुष्ट होतीहै॥ तथा तखतेकी शय्या वातकी करनेवाली होतीहै॥ २७२॥ दूसरा फिरसे कहते हैं॥ पृथ्वी की शय्या वातकी करनेवाली और बहुत रूक्ष तथा रक्त पित्त को नाश करनेवाली है॥ अच्छी शय्यापर सोना हृद्य पुष्टि निद्रा धैर्य्य इनको देनेवाली है॥ २७३ श्रम वातका दूर करनेवाला वृष्य होताहै और कुशय्या का सोना इसेविपरीत होताहै॥ २७४॥

प्रीति निद्राकरं वृष्यं कफ वात श्रमा
पहम्॥ प्रवात रौक्ष्य वैवर्ण्य स्तम्भकृद्दाह पित्तनुत्॥
॥ २७५॥ स्वेद मूर्च्छा पिपासाघ्न मप्रवातमतोऽन्य
था। सुखं प्रवातं सेवेत ग्रीष्मे शरदि चान्नरः॥ २७६॥
निर्वात मायुषे सेव्य मारोग्याय च सर्वदा॥ पूर्वो
निलो गुरुः सोष्णः स्निग्धः पित्तास्र दूषकः॥ २७७॥

भा० संवाहन मांस रक्त त्वचा इनकी अत्यन्त प्रसन्नता करनेवाला ॥ २७४॥ प्रीति और निद्राका करने वाला वृष्य कफ वात श्रम इनका नाशक होता है ॥ प्रवात रूक्षता वैवर्ण्य स्तम्भ इन को करने वाला और दाह पित्तका नाशक होताहै ॥ २७५॥ पसीना मूर्च्छा तृषा इनका नाशक है और मन्द वात इससे विपरीत होताहै ॥ ग्रीष्म और शरद में अच्छी तरह पर प्रवात का सेवन करे ॥ २७६॥ निर्वात आयु के अर्थ और आरोग्यके अर्थ सर्वदा सेवन करना चाहिये ॥ पूर्वका वायु भारी कुछ गरम स्निग्ध पित्त रक्तका बिगाडनेवाला ॥ २७७॥

विदाही वातलः श्रान्ति कफ शोष वतां हितः ॥ स्वादुः पटुरभिष्यन्दी त्वग्दोषार्शो विषक्रमीन् ॥ ॥ २७८॥ सन्निपातं ज्वरं श्वास मामवातञ्च कोपयेत ॥

(क) (स्वादुर्भक्ष्य द्रव्येषु बाहुल्येन मधुररसजनकः)

दक्षिणः पवनः स्वादुः पित्तरक्तहरो लघुः ॥ वीर्य्येण शीतलो बल्यश्चक्षुष्यो नतु वातलः ॥२७९॥ पश्चिमः पवनस्तीक्ष्णः शोषणो बलहृल्लघुः ॥ मेदः पित्तकफध्वंसी प्रभञ्जन विवर्द्धनः ॥ २८०॥

भा० विदाही वातल होता है थका व कफ वाले को शोष वाले को हित है ॥ और स्वादु लवण अभिष्यन्दि होता है ॥ त्वचा का दोष बवासीर विष कृमि ॥ २७८॥ तथा सन्निपात ज्वर श्वास और आमवात को भी करता है ॥ (क) (स्वादु अर्थात् खाने के पदार्थों में अधिक करके मधुर रस को उत्पन्न करनेवाला) दक्षिण का वायु स्वादु पित्तरक्त को दूर करनेवाला हलका ॥ वीर्य्य करके शीतल पुष्ट नेत्र को हित होता है वातल नहीं होता ॥२७९॥ पश्चिम का वायु तीक्ष्ण शोषण बल का हरनेवाला हलका ॥ मेद पित्तकफ का नाशक । और वात बढ़ानेवाला होता है ॥ २८०॥

उत्तरो मारुतः शीतः स्निग्धो दोषप्रकोपकृत ॥क्ले

दनः प्रकृतिस्थानां बलदो मधुरा मृदुः ॥ २८१॥
(दोषप्रकोपकृत् आतुराणाम्।)
आग्नेयो दाहकृद्रूक्षो नैर्ऋतो न विदाहकृत् ॥ वाय
व्यस्तु भवेत्तिक्तः ऐशान कटुकः स्मृतः ॥ २८२॥
विष्वग्वायुरनायुष्यः प्राणिनां बहुरोगकृत् ॥ अत
स्तेनैव सवत सेवितः स्यान्न शर्म्मणे ॥ २८३॥ व्यज
-नस्यानलो दाह स्वेद मूर्छा श्रमापहः ॥ तालवृन्त
भवो वात स्त्रिदोषशमको मतः ॥ २८४॥

भा० उत्तर की वायु शीत स्निग्ध और दोषोंको प्रकोप करनेवाला क्लेदन और प्रकृतिस्थोंको बल देनेवाला मधुर तथा मृदु होताहै ॥ २८१॥ (दोषप्रकोप करनेवाला रोगियोंका) अग्निकोणका वायु दाह करनेवाला रूक्ष होताहै। और नैऋत वाला विदाह करनेवाला नहीं है। वायुकोणका वायु तीखाहोताहै ॥ और ईशान दिशाका कडुवा कहा गयाहै ॥ २८२॥ चारोंवायु आयुके अहित और प्राणियोंके बहुत रोगकरनेवाली होतीहै ॥ इसवास्ते उसको न सेवन करे ॥ यदि सेवन करेतो कल्याणके अर्थ नहीं होता ॥ २८३॥

वंशव्यजनजस्तूष्णो रक्तपित्तप्रकोपणः ॥ चामरो व
स्त्रसम्भूतो मायूरो वैत्रजस्तथा ॥ २८५॥ एते दोषजि
तो वाताः स्निग्धाः हृद्याः सुपूजिताः ॥ दिवास्वापं न
कुर्वीत यतोऽसौ स्यात् कफावहः ॥ २८६॥ ग्रीष्मव
र्ज्येषु कालेषु दिवा स्वप्नो निषिध्यते ॥

भा० पंखेकी हवा दाह स्वेद मूर्छा और श्रमकी नाशक होती है ॥ ताडके पंखे की हवा त्रिदोष शमक होतीहै ॥ २८४॥ बांसके पंखेकी वायु उष्ण रक्त पित्त को प्रकोप करनेवाली होतीहै ॥ चवर की कपडे की मोरछल बेंतके पंखे की ये वायु ॥ २८५॥ दोषको जीतनेवाली स्निग्ध हृद्य और श्रेष्ठहै ॥ दिनमें शयन

ग्रीष्म से रहित कालमें दिनका शयन निषेध कियाहै ॥

उचितो हि दिवास्वप्नो नित्यं येषां शरीरिणाम् ॥२८७॥
वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥
व्यायाम प्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्तानतीसारिणः
शूलश्वासवतस्तृषा परिगतान् हिक्कामरुत्पीड़ितान् २८८
क्षीणान् क्षीणकफान् शिशून् मदहतान् वृद्धान् रसा
जीर्णिनो। रात्रौ जागरिता न्नरा न्निरशनान् कामं दिवा स्वाप
येत् ॥ २८९ ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रासात्मी कृता तु
यैः॥ न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥ २९० ॥
(स्वपतां दिवा। जाग्रतां रात्रौ।)

भा० जिन प्राणियोंको नित्य दिनमें सोना उचितहै ॥ २८७ ॥
उनको दिनमें न सोनेसे वातादिक प्रकोपको प्राप्त होतेहैं ॥ कसरत स्त्री मार्ग-वाहन इनमें आसक्त श्रमसे पीड़ित अतिसार वाले ॥ शूल श्वासवाले तृषा रोगवाले हिचकी और वातसे पीड़ित ॥ २८८ ॥ क्षीण तथा क्षीणकफ वाले क मदकरके पीड़ित वृद्ध और रसाजीर्णवाले तथा रातमें जागे हुवे लंघनकरने वाले इनको दिनमें अवश्य सुलावे ॥ २८९ ॥ जिन्होंने दिनमें या रातमें सोनेकी आदत की है ॥ उन सोनेवालोंको दोष नहीं होता ॥ और जागने वालोंकोउत्पन्न होता है ॥ २९० ॥ (दिनमें सोनेवालोंको और रातमें जागनेवालोंको)

भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृत् ॥ कफं करो
तिवपुषः पुष्टिसौख्यन्त नीति हि ॥ २९१ ॥ शयनं पि
त्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम् ॥ वमनं कफनाशाय
ज्वरनाशाय लङ्घनम् ॥ २९२ ॥ आसीनं चूर्णितं यत्तु

नाभिष्यन्दि न रूक्षणम् ॥ [अपरानप्युदरेऽन्नस्य संस्थापनहेतूनाह।] शब्दान् स्पर्शाश्च रूपाणि रसान् गन्धान् मनः प्रियान् ॥ भुक्तवानपि सेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ २६३ ॥ (उदरे इति विशेषः।)

[अन्नस्योदरे स्थितिहेतूनाह।] शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धो जुगुप्सितः ॥ भुक्तमप्रयतञ्चान्नं मतिहास्यञ्च वामयेत् ॥ २६४ ॥ (अप्रयतमपवित्रम्।)

[अन्यदपि वर्ज्जनीयमाह।] शयनं चासनञ्चातिन भजेन्न द्रवाधिकम् ॥ नाग्न्यातपौ न प्लवनं न यानं नापि वाहनम् ॥ २६५ ॥ (क) प्लवनं बाहुभ्यां जलप्रतरणं यानंमार्गे चलनम् वाहनमश्वादि।

भा० भोजनके अनंतर निद्रा वातको हरतीहै। और पित्तकी नाशक है॥ कफको करतीहै और शरीर को पुष्टि तथा सौख्य को भी करतीहै ॥ २६१ ॥ पित्तको नाश करनेके अर्थ शयन और वातको नाश करनेके अर्थ मर्द्दन ॥ कफनाशके अर्थ वमन और ज्वर नाशके अर्थ लंघन हैं ॥ २६२ ॥ बैठना और मर्द्दन न अभिष्यन्दि है न रूक्ष है ॥ औरभी उदरमें अन्नके संस्थापनका हेतु कहते हैं। मनके प्रिय शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनको। भोजन कियाहुवा सेवन करे। उस्से अन्न अच्छा रहताहै ॥ २६३॥ उदर में यह शेषहै ॥ उदर में अन्नकेनठहरने के हेतु वों को कहतेहैं।] निन्दित शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध ॥ और अपवित्र भोजन कियाहुवा अन्न तथा बहुत हसना भी वमन कराताहै ॥ २६४॥ (अप्रयत। अपवित्र) और भी वर्जनीयों को कहतेहैं।] बहुत सोना बहुत बैठना और बहुत पतला इनको न सेवनकरे ॥ आग धूप तैरना सवारी और वाहन इनको भी बहुत न सेवनकरे ॥ २६५॥ (क) (प्लवन) हाथों से पानी में तैरना। (यानं) मार्ग में चलना। (वाहन) घोड़ा इत्यादिक।

व्यायामञ्च व्यावायञ्च धावनं यानमेव च। युद्धं

गीतञ्च पाठञ्च मुहूर्त्तं भुक्तवांस्त्यजेत् ॥ २६६॥
[परिवर्जनार्थं मजीर्णस्य हेतूनाह ।] अत्यम्बुपानाद्वि
षमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्य्ययाच्च ॥ कालेऽपि
सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥२६७॥
ईर्ष्या भयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुग्दैन्य निपीडितेन ॥
विद्वेषयुक्ते न च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति
॥ २६८ ॥ (सन्धारणात् । अधोवातमलमूत्रादीनाम् ।)
[अध्यशन लक्षणमाह ।] अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमु-
च्यते ॥ [तन्निवारणमाह ।]
प्रागभुक्ते चानले मन्दे द्विरन्हो न समाहरेत् ॥

भा० कसरत मैथुन दौड़ना सवारी युद्ध गाना पाठ इनको भोजन कियाहुवा दो घड़ी न करे ॥ २६६ ॥ त्यागके अर्थ अजीर्णके हेतुवोंको कहते हैं ॥ बहुत पानी पीनेसे विषम भोजनसे वेगोंके धारणकरनेसे सोनेके विपर्य्यय सेभी ॥ समयपर सात्म्य हलका भी भोजन कियाहुवा अन्न मनुष्यके अच्छी तरहपर पाक नहीं होता ॥ २६७॥ ईर्षा भय क्रोध इन करके युक्त लोभी रोग और दीनता करके पीड़ित ॥ तथा जो विद्वेष करके सेवन किया गया अन्न अच्छे प्रकार पाक को नहीं प्राप्त होता ॥ २६८ ॥ (संधारण) अधोवात मलमूत्रोंका ।) अध्यशनका लक्षण कहते हैं । अजीर्णमें जो भोजन कियाजाता है इसको अध्यशन कहते हैं ॥ [उसके दूर करने को कहते हैं] प्रातःकाल भोजन करनेमें अजीर्ण होवे तो फिरसे दिनमें दूसरी बार भोजन न करे ॥

(क) अयमर्थः प्रातर्भुक्तेऽजीर्णे सति । अहन्येव पुन
र्न भुञ्जीत इत्यर्थः । रात्रौ पुनस्तथापि सति भुञ्जीतैव ।
[यत आह सुश्रुत एव ।] प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमा
शो न दुष्यतीति ॥ पूर्वभुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति

पावकान् ॥ २९९॥ (ख) अस्यत्वयमर्थः। पूर्व्वे भुक्ते रात्रि भुक्ते अन्ने विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिदपक्के श्रा तर्भुञ्जानः पावकं हन्तीत्यर्थः। [यत आह] सायमाशे त्वजीर्णेतु प्रातर्भुक्तं विषोपममिति।

भा० (क) इसका यह अर्थहै कि प्रातःकाल। भोजन करने में अजीर्ण हो तो दिनमेंही फिरसे न भोजनकरे। रातमें फिरसेवैसेही होतो भोजन अवश्य करे॥ जैसे कि सुश्रुतनेही कहाहे॥ प्रातःकालके भोजन कियेमें अजीर्णहो तो सायंकाल के भोजन मेंदोष होताहै। पहिले भोजन कियेहुवे विदग्ध अन्नमें भोजन करनेवाला अग्निको नष्टकरताहै॥ २९९॥ (ख) इसका यह अर्थ है कि। पूर्वं भुक्ते) रातके भोजन किये अन्नमें। (विदग्धे) कुछ पके और कुछ कच्चेमें। सवेरे भोजन करनेवाला अग्निको नष्ट करताहै। जैसे कि कहाहै] सायंकाल के भोजन कियेहुवे अजीर्ण में प्रातःकालका भोजन किया विष केस मान होताहै॥

[सायमाशाजीर्णे भोजनोपाय माह।]

भवेद्यदि प्रातरजीर्णशङ्का तदाभयां नागर सैन्धवाभ्याम्। विचूर्णितां शीतजलेन भुक्ता भुञ्जीत चान्नं मित मन्नकाले॥ ३००॥ आयुःक्षय भयाद्विद्वान्दिवे सेवेत कामिनीम्

भा० सायंकाल के भोजन कियेहुवे अजीर्ण में भोजनका उपाय कहतेहैं॥ जो प्रातःकालमें अजीर्णकी शंका होतो हड़ सोंठ सैन्धव लवण इनके चूर्ण को शीतलजलसे भक्षणकरके भोजनके समयपर थोड़ासा अन्न भोजन करे॥ ॥ ३००॥ आयु क्षयके भयसे विद्वान् दिनमें कामिनी को नहीं भोगकरते॥

अवशोयदि सेवेत तदा ग्रीष्म वसन्तयोः॥ ३०१॥ (अवशः अजितेन्द्रियः॥) आस्यावर्णं कफ स्थौल्य सौकुमार्य्यैःसुखप्रदाः॥ अध्वावर्णं कफस्थौल्य सौ

कुमार्य्य विनाशनः ॥ ३०२ ॥ यत्तु चंक्रमणं नाति देह पीड़ाकरं भवेत् ॥ तदायुर्बल मेधाग्नि प्रद मिन्द्रियबोधनम् ॥ ३०३ ॥ उष्णीषं कान्तिकृत्केश्यं रजोवात कफापहम् ॥ लघु तच्छस्यते यस्माद् गुरु पित्तादि रोगकृत् ॥ ३०४ ॥ उपानद्धारणं नेत्र्य मायुष्यं पादरोगहृत् ॥ सुखप्रचार मोजस्यं वृष्यञ्च परि कीर्त्तितम् ॥ ३०५ ॥

भा० यदि अवश अर्थात् जितेन्द्रिय नहो तब ग्रीष्म और वसन्तमें सेवन करे ॥ ३०१ ॥ (अवश) जितेन्द्रिय न होना। बहुत बैठे रहना कफ स्थूलता सुकुमारता और सुख इनको देनेवालाहै ॥ बहुत मार्गका चलना कफस्थूलता और सुकुमारता इनका नाश करने वालाहै ॥ ३०२ ॥ जो भ्रमण शरीर को बहुत पीड़ा करने वाला नहीं होता ॥ वो भ्रमण आयु बल बुद्धि और अग्निको देने वाला और इन्द्रिय का बोधन है ॥ ३०३ ॥ पगड़ी कान्ती को करनेवाली केशके हित धूलवायु कफकी नाशकहै ॥ वोह पगड़ी हलकी अच्छीहै क्यों कि भारी पित्त और नेत्र रोगको करनेवाली है ॥ ३०४ ॥ जूतेका पहिरना नेत्रका हित आयुको हित और पांवके रोग का नाशक है ॥ अच्छी सवारी ओजको देनेवाली वृष्यभी कही गई है ॥ ३०५ ॥

पादाभ्यामनुपानद्भ्यां सदा चंक्रमणं नृणाम् ॥ अनारोग्य मनायुष्य मिन्द्रियघ्न महृष्टिदम् ॥ ३०६ ॥ छत्रस्य धारणं वर्षा तपवात रजोऽपहम् ॥ हिमघ्नं हित मक्ष्णोश्च माङ्गल्यमपि कीर्त्तितम् ॥ ३०७ ॥ सत्वोत्साह बलस्थैर्य्य धैर्य्य तेजो विवर्द्धनम् ॥ अवष्टम्भकरञ्चापि भयघ्नं दण्ड धारणम् ॥ ३०८ ॥ ऊर्ध्वोच्छादन संयुक्ता शिविका सर्ववल्लभा ॥ तस्यामारोहणं नृणां त्रिदोषशमकं मतम् ॥ ३०९ ॥

भा० मनुष्यों को सर्वदा विन जूते पैरोंसे घूमना ॥ आरोग्य को न करनेवाला आयु के अहित इन्द्रियका नाशक दृष्टिको न देनेवाला है ॥ २०६॥ छत्र का धारण व र्षा शीत धूप धूर गुवार का नाशकहै ॥ शीत नाशक नेत्रका हित और मंगलका रक भी कहाहै ॥ २०७॥ सन्द उत्साह बल स्थिरता धैर्य्य और तेजका बढ़ाने वा लाहै ॥ (अवष्टंभ अर्थात् कृष्ठियत को करनेवाला और भयका नाशक दंड का धारण है ॥ २०८॥ ऊपर कपड़े से मंदी हुई पालकी सबके दिल पसन्द होती है । मनुष्यों को उसमें सवार होना विशेष श्रमक कहाहै ॥ २०६॥

वातश्लेष्म मदार्त्तानां महिता भ्रम कृत्तरिः॥ पित्तानि-लकरोहस्ती लक्ष्म्यायुःपुष्टिवर्द्धनः॥ ३१०॥ घोटका रोहणं वात पित्ताग्नि श्रम कृन्मलम्॥ मेदोवर्णकफ घ्नञ्च हितं नद्बलिनां परम्॥ ३११॥ आतप स्वेदमूर्च्छा स्र पित्त तृष्णाक्लमश्रमान्॥ दाहं विवर्णतां कुर्य्यादे तान् छाया व्यपोहति॥ ३१२॥ वृष्टिर्वृष्या हिमा बल्या निद्रालस्य विधायिनी॥ भयावहा मोहकरी कुहेतिः कफवातला॥ ३१३॥ (कुहेतिः कुहेरा इति लोके।)

भा० नाँव वात कफ के रोग से पीड़ितों को अहित और भ्रम करनेवाली हो तीहै ॥ हाथी पित्तवात को करनेवाला और लक्ष्मी तथा आयु पुष्टिको बढ़ा नेवालाहै ॥ ३१०॥ घोड़े की सवारी वात पित्त अग्नि और श्रम इनको करने वाली है ॥ मेद वर्ण और कफ की नाशक है ॥ और वोह बलवानों को परम हित है। ॥ ३११॥ धूप पसीना मूर्च्छा रक्त पित्त तथा क्लम श्रम दाह विवर्णता इनको क रताहै ॥ और इनको छाया नाश करतीहै ॥ ३१२॥ वृष्टि वृष्य शीत बल्य औ र निद्रा तथा आलस्य को करने वाली ॥ भया वह मोहको करनेवाला कुहेरा होताहै ॥ ३१३॥ (कुहेतिः) कुहेरा इतिलोकमें प्रसिद्ध है ॥

अग्निवात कफस्तम्भ शीत वे पथुनाशनः॥ आमा

भिष्यन्दि शमनो रक्तपित्त प्रकोपस: ॥ ३१४ ॥ सद्यः श्लेष्म करो धूमो नेत्रयो रहितो भृशम् ॥ शिरोगौरव कृच्चापि वात पित्तञ्च कोपयेत् ॥ ३१५ ॥ [अथाचार:] मैत्रीं सद्भिः समं कुर्यात् स्नेहं सत्सु तु सर्वथा ॥ संसर्गं साधुभि: कुर्यादसत्सङ्गं परित्यजेत् ॥ ३१६ ॥

(क) सत्सु सर्वथा सज्जनेषु मनोवाक्कर्मभिः— ॥

सेवेत देव भूदेव वृद्ध वैद्य नृपातिथीन् ॥ विमुखान्नार्थिन: कुर्य्यान्नावमन्येत कानपि ॥ ३१७ ॥ गुरूणां सन्निधौ तिष्ठेत् सदैव विनयान्वित: ॥ पाद प्रसारणादीनि तत्र नैव समाचरेत् ॥ ३१८ ॥

भा० गरमवायु कफ अकड़ाव औरकंप इनका नाशक है ॥ आम अभिष्यन्द इनका शमन और रक्त पित्त का प्रकोप करनेवाला ॥ ३१४ ॥ धूंवां तत्काल कफको करनेवाला और नेत्रोंका अत्यन्त अहित ॥ शिरके भारीपन को करनेवाला और वात पित्तको भी विगाड़ता है ॥ ३१५ ॥ अनन्तर आचारको कहतेहैं ॥ मित्रता सज्जनोंके साथ करे और प्रीति सत्पुरुषोंमें अवश्य करे । साधुवोंके साथ मेलकरे तथा असत् पुरुषोंका संग नकरे ॥ ३१६ ॥
(क) सत्सु अर्थात् सज्जनोंमें मनवाणीकर्म से ॥
देव ब्राह्मण वृद्ध वैद्य राजा अतिथि इनकी सेवा करे ॥ भिक्षुकादिकोंको विमुख नकरे और अपमान किसीका भी नकरे ॥ ३१७ ॥ सर्वदाही विनयकर के युक्त गुरूकेपास रहे ॥ पैरोंका फैलाना वहांपर विलकुल नकरे ॥ ३१८

अपकार परेऽपि स्यादुपकार पर: पुमान् ॥ आत्मवत् सकलान् पश्येद्वैरिणो दूरतो वसेत् ॥ ३१९ ॥ नकिञ्चिदात्मन: शत्रुर्नात्मानं कस्यचिद्रिपुम् ॥ प्रकाशयेन्नापमानं न च निस्नेहतां प्रभो: ॥ ३२० ॥

नात्मानमुदके पश्येन्न मग्नः प्रविशेज्जलम् ॥ तथा
नाज्ञान गाम्भीर्य्ये न हिंस्र प्राणिसेवितम् ॥ ३२१ ॥
काले हितं मितं सत्यं सम्वादि मधुरं वदेत् ॥ भुञ्जीत
मधुरप्रायं स्निग्धं काले हितं मितम् ॥ ३२२ ॥ न रात्रौ
दधि भुञ्जीत न च निर्लवणं तथा ॥ नामुद्गसूपमना
क्षौद्रं न चाप्य घृत शार्करम् ॥ ३२३ ॥ जनस्याशयमालक्ष्य
यो यथा परितुष्यति ॥

भा० बुराई करनेवाले पर भी मनुष्य भलाई करता रहे ॥ अपने सा सबको देखे। और शत्रु से दूर रहे ॥ ३१९ ॥ अपने शत्रु को ज़राभी ज़ाहिर न करे और अपनेको भी किसीका दुश्मन ज़ाहिर न करे ॥ तथा अपमान और मालिक की नाराज़गीको भी जाहिर न करे ॥ ३२० ॥ अपनेको जलमें न देखे और जलमें नंगा होके न घुसे। तथा गम्भीरता प्रसिद्ध हैं और हिंसा करने वाले जीवों का पालन न करे। ३२१ परस्पर भाषण करने समयपर हित कम तथा सत्य और मधुर बोलें ॥ समयपर अक्सर मधुर स्निग्ध थोड़ा भोजन करे ॥ ३२२ ॥ रात में दही न भोजन करे और लवणके विनाभी न भोजन करे ॥ और मूंगकी दालके विना और शहत के विना तथा घी चीनीके विना दही न खावें ॥ ३२३ ॥ दूसरे की सेवा में चतुर पुरुष जन का आशय देखकर जो जैसे खुश होवे उसके साथ वैसेही वर्ते ॥ ३२४ ॥

त तथैवानुवर्त्तेत पराराधन पण्डितः ॥ ३२४ ॥ नैकः
सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शङ्कितः ॥ नोद्यमे वि
रमेत् क्वापि हेलावीक्षेत फलेन तु ॥ ३२५ ॥ (हेला फ-
ल हेला। उद्यमे फले धनादौ।) वेगान् न धारये
ज्जातु मेना वेगान्विधारयेत् ॥ न पीडयेदिन्द्रियाणि
न चैतानति लालयेत् ॥ ३२६ ॥

भा० अकेला आपही सुखी नहोवे और सवपर विश्वास नकरे तथा सव पर शंका युक्त भी नहोवे ॥ कहीं भी उद्यम में विराम नकरे ॥ और कारण में ईर्षा करे फलमें नकरे ॥ ३२५ ॥ (हेतौ) फलहेतु में । उद्यम फलमें अर्थात् धनादिक में ॥ मलमूत्रादिक चौदह वेगों को कभीभी नधारणकरे । किंतु मनके वेगोंको धारणाकरें ॥ इन्द्रियों को वहुत पीड़ा नदेवे । और उनको वहुत प्यार भी नकरे ॥ ३२६ ॥

वर्षातपादिषु च्छत्री दण्डी रात्रौ भयेषु च ॥ सोपानत्कस्तनुं रक्षेत् विचरेद्युगमात्रदृक् ॥ ३२७॥

(क) युगमात्रदृक् अग्रतो हस्त चतुष्टयमितां भूमिं पश्यन्।

नदीन्तरेन्न वाहुभ्यान्नाग्निस्कन्धमभिव्रजेत् ॥ सन्दिग्ध नावं वृक्षञ्च नारोहेद् दुष्टयानकम् ॥ ३२८॥

(दुष्टयानं दुष्टगजघोटकादि।)

नासंवृत मुखं कुर्य्यात् सभायाञ्च विचक्षणः॥ कासं श्वासं तथोद्गारं जृम्भणं क्षवथु तथा ॥ ३२९॥ नासिकां न विकुष्णीयान्नासीतोत्कटुकः क्वचित् ॥ नोर्द्धजानु चिरन्तिष्ठेन्न नखैन लिखेद्भुवम् ॥ ३३०॥

भा० वरसात और गरमी में छत्रको धारणकरे रातमें तथा भयमें दंड धारणकरे । जूता पहिन के शरीरकी रक्षाकरे ॥ तथा चार हाथ भूमिको आगे देख कर चले ३२७॥ (क) युगमात्र दृक् । आगे चार हाथ प्रमाण भूमिको देखकर । दो नदियों के वीच में वाहु सेन तैरे ॥ जहां आगलगी हो उसके सामने नजावे ॥ दुष्ट सवारी के मानिंद खतरे वाली नाव तथा वृक्षपर न चढ़े ॥ ३२८॥ (ख) दुष्ट न अर्थात् दुष्ट घोड़ा हाथी इत्यादिक । पंडित सभामें मुखखोलो न वैठे ॥ खासी सांस डकार जंभाई तथा छींक या थूंकना ये भी सभामें न करे ॥ ३२९ ॥ नाक को न कुरेदे । और कहींभी उकडूं होके नवैठे । घुटनेको ऊपर करके वहुत देरतक नठहरे ॥ तथा भूमिको नखसे नकुरेदे ॥ ३३० ॥

सम्मार्ज्जनी रजो नैव देहे दद्यात् कदाचन। न नखेन तृणं छिन्द्यान्नोच्छिष्टो ब्राह्मणं स्पृशेत्॥ ३३१॥ नोपरक्तं नचोद्यन्तं नास्तं यातं दिवाकरम्॥ सर्व्वथा न समीक्ष्येत न जले प्रतिबिम्बितम्॥ ३३२॥ नेक्ष्येत सततं सूक्ष्मं दीप्तामेध्याप्रियाणि च॥ पौरन्दरं धनुर्नैव दर्शयेत् कमपि क्वचित्॥ ३३३॥ नेच्छेद् बलवता युद्धं न भारं शिरसा वहेत्॥ गात्रं तु वादयेन् करेण न हस्तेन धुनुयान्न च॥ ३३४॥

भा० झाड़ू और धूल को कभीभी शरीरमें न लगावे॥ नख से तृण को न काटे और जूठा ब्राह्मण को न छुवे॥ ३३१॥ ग्रहण लगे हुवे उदय होते हुवे तथा अस्त होते हुवे सूर्य्य को। कभी न देखे और जलमें प्रतिबिम्ब पड़े हुवे को भी न देखे॥ ३३२॥ निरन्तर सूक्ष्म को न देखे। दीप्त अमेध्य और अप्रिय इनको भी न देखे। कोई भी इन्द्र के धनुष को न देखे॥ ३३३॥ अपने से बलवान के साथ युद्ध करे। और शिर पर बोझा न उठावे। शरीर को न बजावे और केशों को हाथ से न चाले॥ ३३४॥

न गच्छेत् पूज्ययोर्मध्ये दम्पत्योरन्तरेण च॥ पिशुनान्नं न भुञ्जीत गणिकान्नमपि क्वचित्॥ ३३५॥ प्रतिभूर्न भवेत् क्वापि न च साक्षी वृथा भवेत्। (प्रतिभूः जामिनः) स्थाणीन्न धारयेज्जातु द्यूतं दूरात्परित्यजेत्॥ ३३६॥ (स्थाणी थाती।) विश्वासं नाचरेत् स्त्रीणां तासु स्वतन्त्रताञ्च नाचरेत्॥ रक्षणीयाः सदा यत्नाद्यौवनेतु विशेषतः॥ ३३७॥ न भिन्ने शयने सुप्यान्नानेक विवरेऽपि च॥ नैकोदेवालये नैव रात्रौ तरुतलेऽपि च॥ ३३८॥

भा० पूज्यों के बीच में से न जावे। तथा स्नाविन्द औरत के बीच में से न जावे। शत्रु का अन्न न भोजन करे तथा वेश्या का अन्न भी न भोजन करे॥ ३३५॥ (क) कहीं पर भी ज़ामिन न होवे और झूठी गवाही न देवे॥ (प्रतिभूः) ज़ामिन। थान्नी को कभी न धारण करे। और जूते को दूर से छोड़ देवे॥)

(स्यागी अर्थात् थाती। स्त्रियों का विश्वास न करे। और उनको स्वतन्त्र भी न करे॥ यत्न के साथ सर्वदा रक्षणीय हैं परन्तु यौवन में विशेष करके रक्षा करनी चाहिये॥ ३३६॥ जूंदे बिस्तरे पर न सोवे। और अनेक छेक वाले बिस्तर पर भी न सोवे। अकेला देवालय में न जावे। रात में वृक्ष के नीचे भी अकेला न जावे॥ ३३७॥

एवं दिनानि गमयेन् सदाचारः परः सदा॥ नतो रात्रि प्रयुक्तानि कुर्य्यात् कर्म्माणि मानवः॥ ३३८॥ इत्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत्॥ स विन्दत्यायुरारोग्यं प्रीतिं धर्म्मं धनं यशः॥ ३३९॥

[अथ सन्ध्यायां निषिद्धानि कर्माण्याह।]

एतानि पञ्च कर्म्माणि सन्ध्यायां वर्ज्जयेद्बुधः॥ आहारं मैथुनं निद्रां सम्पाठङ्गतिमध्वनि॥ ३४०॥ भोजनाज्जायते व्याधि मैथुनाद्गर्भवैकृतिम्॥ निद्रायाः निःस्वना पाठादायुर्हानि गते र्भयम्॥ ३४१॥

भा० इस प्रकार सदाचार पर हुवा दिनों को निरन्तर गुज़ारे॥ उसके अनन्तर मनुष्य रात में कहे हुवे कर्म्मों को करे॥ ३३८॥ इस प्रकार संक्षेप से कहे हुवे आचार को जो करे॥ वोह आयु आरोग्य प्रीति धर्म्म धन और यश इनको पाता है॥ ३३९॥ अनन्तर सायंकाल में जो निषिद्ध कर्म हैं उनको कहते हैं। पण्डित इन पांच कर्म्मों को सायंकाल में न करे॥ भोजन मैथुन निद्रा याद करना और रास्ते का चलना ये पांच कर्म्म॥ ३४०॥ भोजन से व्याधि उत्पन्न होती है॥ मैथुन [illegible] विगाड़॥ सोने से निरुत्साहता पाठ से आयु की हा[illegible] ॥ ३४१॥

[अथ रात्रिचर्य्यामाह।]

ज्योत्स्ना शीता स्मरानन्द प्रदा तृट् पित्तदाहहृत् ॥ ततो हीनगुणः कुर्य्याद्वश्यायोऽनिलकफम् ॥ ३४२ ॥ तमो भयावहं मोह दिग्मोह जनकम्भवेत् ॥ पित्त हृत्कफहृत् कामवर्द्धनं क्लमकृच्च तत् ॥ ३४३ ॥ रात्रौ च भोजनङ्कुर्य्यात् प्रथम प्रहरान्तरे ॥ किञ्चिदूनं समश्नीयात् दुर्ज्जरन्तत्र वर्ज्जयेत् ॥ ३४४ ॥ शरीरे जायते नित्यं देहिनः सुरतस्पृहा ॥

भा० चान्दनी शीत और कामके आनन्दको देनेवालीहै। तथा तृषा दाह पित्त को दूर करनेवालीहै ॥ उससे हीन गुण वालाहै वात कफको करता है ॥ ३४२ ॥ अन्धेरा भयको देनेवाला और मोह तथा दिशाभ्रम को करने वाला होता है ॥ वोह पित्तका नाशक कफ को दूर करनेवाला और कामका बढ़ाने वाला तथा विना परिश्रमको थकन को करनेवाला है ॥ ३४३ ॥ रात को पहिले पहरके बीच में भोजन करे। कुछ कम भोजन करें उसमें खराब जलेको छोड़ देवें ॥ ३४४ ॥ मनुष्य के शरीरमें नित्य मैथुन की इच्छा होती है ॥

अव्यवायात्प्रमेह मेदो वृद्धिः शिथिलता तनोः ॥ ३४५ ॥ बाले तिगीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश ॥ ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंश द्वत्सरावधि ॥ ३४६ ॥ तदूर्द्ध माधिरूढा स्यात् पञ्चाशद्वत्सरावधि ॥ वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सव वर्ज्जिता ॥ ३४७ ॥

भा० कसरत नकरनेसे प्रमेह मेदकी वृद्धि शरीरकी शिथिलता होती है ॥ ३४५ ॥ सोलह वरस तक स्त्री बाला इस प्रकार कहीजाती है ॥ उसके ऊपर बत्तीस वरस तक तरुणी जाननी चाहिये ॥ ३४६ ॥ उसके ऊपर पचास वरसतक अधिरूढ़ा अर्थात् अधेड़ होती है ॥ उसके बाद सुरतोत्सव से रहित वृद्धा जाने ॥ ४७

(अधिरूढ़ा (क) प्रौढ़ा।) निदाघशरदो बाला हिता विषयिणां मता ॥ तरुणी शीतसमये प्रौढ़ा वर्षावसन्तयोः ॥ ३४८ ॥ नित्यम्बाला सेव्यमाना नित्यं वर्द्धयते बलम् ॥ तरुणी ह्रासयेच्छक्तिं प्रौढ़ाद्भावयते जराम् ॥ ३४६ ॥ सद्यो मांसन्नवञ्चान्नं बाला स्त्री क्षीरभोजनम् ॥ घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यःप्राणकराणि षट् ॥ ३५० ॥

भा० (अधिरूढ़ा) प्रौढ़ा। ग्रीष्म और शरदमें अय्याशों को बाला हित कही है ॥ शीतकालमें तरुणी और वर्षा वसन्त में प्रौढ़ा प्रशस्त है ॥ ३४८॥ नित्य सेवन कीहुई बाला प्रतिदिन बल को बढ़ाती है। तरुणी शक्तिको घटाती है ॥ और प्रौढ़ा वृद्धावस्था को उत्पन्न करती है ॥ ३४६ ॥ तत्कालका मांस नवीन अन्न बाला स्त्री दुग्धभोजन घृत उष्णोदकमें स्नान ये छः तत्काल बलको करने वाले हैं ॥ ३५० ॥

पूति मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि ॥ प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ ३५१ ॥ (क) प्राणशब्दोऽत्र बलवाचकः बालार्कः कन्यार्कः।)

वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात् ॥ वयोऽधिकां स्त्रियङ्गत्वा तरुणः स्थविरायते ॥ ३५२ ॥ आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्ण बलान्विताः ॥ स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ ३५३ ॥

भा० सड़ा मांस वृद्धास्त्री कन्याका सूर्य्य तुरतका जमाया दही प्रातः काल में मैथुन और निद्रा ये छः तत्काल बलको हरने वाले हैं ॥ ३५१ ॥
(क) प्राण शब्द यहांपर बलवाचक है। (बालार्क) कन्या का सूर्य्य ॥

भा० वृद्धभी तरुणी के साथ भोग करने से तरुणता को प्राप्त होता है ॥ और तरुण पुरुष अपने से वयमें अधिक स्त्री के साथ भोग करने में वृद्ध होताहै ॥ ३५२ ॥ स्त्री से रुके ऊवे पुरुष आयु वाले अल्पवृद्धता युक्त शरीर की कान्ति और बल करके युक्त। कठिन और बढ़े ऊवे मांसवाले होते हैं ॥ ३५३ ॥

सेवेत कामतः कामं बलाद्वाजीकृतो हिमे ॥ भ्रका मन्तु निषेवेन मैथुनं शिशिरागमे ॥ ३५४ ॥ त्र्यंहा द्वसन्त शरदोः पक्षात् वृष्टि निदाघयोः ॥ सुश्रुतस्तु त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदान्नरः ॥ सर्व्वे ष्वृतुषु घर्म्मेषु पक्षात्पक्षाद्व्रजेद्बुधः ॥ ३५५ ॥
(क) (समेयात् सङ्गच्छेत् घर्म्मे ग्रीष्मे।)
शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्तेतु दिवानिशि ॥ वर्षा सु वारिदध्वाने शरत्सु स्वरसः स्मरः ॥ ३५६ ॥

भा० शीत में वाजीकरण की औषधि किया ऊवा इच्छासे बलके साथ मैथुन करे। और शिशिर ऋतु में बऊत मैथुनकरे ॥ ३५४ ॥ वसन्त और शरद में तीसरे दिन संभोग करे। तथा वर्षा और ग्रीष्म में पन्द्रहवें दिन मैथुनकरे ॥ (सुश्रुत ने कहाहै।) सब ऋतुवों में पुरुष तीसरे २ दिन स्त्री के पास जावे ॥ और ग्रीष्म में पन्धरह २ दिनमें चतुर पुरुष स्त्री के पासजावे ॥ ३५५
(क) (समेयात्) सङ्गकरे। (घर्म्मे। ग्रीष्म में) शीत ऋतु में रात को ग्रीष्म में दिन को और वसन्त में दिन तथा रातको ॥ वर्षा ऋतु में मेघके गरजनेपर और शरद में स्वरसमें काम होता है ॥ ३५६ ॥

उपेयात् पुरुषो नारीं सन्ध्ययो र्नच पर्व्वसु ॥ गोस र्गे चार्द्धरात्रे च तथा मध्य दिनेऽपि च ॥ ३५७ ॥ विहा रम्भार्थया कुर्य्या द्वेशोऽनि शायसंहने ॥ रूक्षे रू

व्याङ्गनागाने सुगन्धे सुखमारुते ॥ देशे गुरु जनाम
के विक्रते ऽतित्वपाकरे ॥ ३५८॥ श्रूयमाणे व्यथाहे
तु वचने न रमेन ना: ॥ स्नातश्चन्दन लिप्ताङ्गः सु
गन्धः सुमनोऽन्वितः ॥ ३५९॥

भा० पुरुष स्त्रीके पास प्रातःकाल और सायंकाल की सान्धित पर्वमें न जा वे ॥ रातके पिछले पहरमें आधी रात में तथा दोपहर दिनके मध्यमें ॥ ५७ ॥ स्त्री के साथ विहार बहुत वन्द जगह में करे ॥ मनोहर सुनने के योग्य अङ्गना के गान में सुगन्ध अच्छे वायुमें ॥ गुरुजन के पास खुलेहुवे बहुत श्रम की जगह में ॥ ३५८॥ व्यथा के करने वाले वचनों के सुनने में पुरुष न रमण करे ॥ स्नान किया चन्दन शरीर में लगाये हुवा सुगन्ध पुष्पोंकरके युक्त ॥ ३५९॥ भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः ॥

ताम्बूल वदनः पत्न्या मनुरक्तो धिकः स्मरः ॥ ३६०॥
पुत्रार्थी पुरुषो नारी मुपेयाच्छयने शुभे ॥ अत्याशि
तोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यथाङ्गः पिपासितः ॥ ३६१॥
बालो वृद्धोऽन्यवेगार्त्तस्त्यजे द्रोगी च मैथुनम् ॥
(क) (रोगी मैथुन सम्बर्द्धनीय रोग युक्तः॥)
भार्य्यां रूप गुणोपेतां तुल्य शीलां कुलोद्भवाम् ॥ अ
तिकामोऽभिकामान्तु हृष्टो हृष्टामलङ्कृताम् ॥ ३६२॥

भा० दुग्धादि पदार्थोंको भोजन किया हुवा अच्छे वस्त्र पहिरे हुवा अच्छे लिबास वाला आभूषणों से युक्त ॥ पान खाये हुवा पत्नी में बहुत प्रीति वाला अधिक कामयुक्त ॥ ३६०॥ ऐसा पुत्रार्थी पुरुष अच्छे शयन पर स्त्री के साथ सो रहे ॥ बहुत भोजन किया हुवा अधीरज वाला क्षुधित शरीर में पीड़ा वाला प्यासा ॥ ३६१॥ बालक वृद्ध और मलादि वेगों से पीड़ित और रोगी ये मैथुन न करें ॥ (रोगी) मैथुन को वढाने वाले रोग से युक्त ॥ रूप गुणों से युक्त सुशील अच्छे कुल में उत्पन्न हुई ॥ प्रीतिवाली हर्षयुक्त

ऐसी स्त्री को वाजीकरण औषधियों से बृंहित अधिक कामदेववाला दर्प युक्त पुरुष युक्ति के साथ भोग करे ॥ ३६२॥

सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरण बृंहितः॥ रजस्वला मकामाञ्च मलिना मप्रियान्तथा ॥ ३६३॥ वर्ण वृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधि प्रपीड़िताम्॥ हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनि रोग समन्विताम् ॥ ३६४॥ सगोत्राङ्गु रुप त्नीञ्च तथा प्रव्रजितामपि ॥ नाभिगच्छेत्पुमान्नारीं भूरि वैगुण्य शङ्कया ॥ ३६५॥ रजस्वलाङ्गत वतो नर स्यासंयतात्मनः॥ दृष्ट्यायुस्तेजसां हानि रधर्मश्च त तो भवेत ॥ ३६६॥ लिङ्गिनीं गुरुपत्नीञ्च सगोत्रा स थ पर्व्वसु ॥ वृद्धाञ्च सन्ध्ययोश्चापि गच्छतो जीवन क्षयः॥ ३६७॥ (क) (लिङ्गिनीं। प्रव्रजिताम्।)

भा॰ कपड़ों से बैठी हुई जिसका कामदेव न जागा हो मलीन अप्रिय ॥ ३६३॥ ज्ञान में बड़ी उमर में बड़ी तथा व्याधिसे पीड़ित ॥ हीन अंग वाली गर्भिणी कर्कशा योनि रोगसे युक्त ॥ ३६४॥ सगोत्रा और गुरुकी स्त्री तथा फकीरन के पासभी बहुत विकार की शंका होने पुरुष स्त्री के पास न जावे ॥ ३६५॥ रजस्वला के पास सोनेवाले अजितेन्द्रिय पुरुषकी दृष्टि और आयु तथा तेज की हानि होती है। और उससे अधर्मभी होता है ॥ ३६६ ॥ ब्रह्मचर्य्य को धारण करनेवाली और गुरु की स्त्री तथा अपने गोत की और वृद्धा इनके साथ भोग करने से और पर्व्वों में मैथुन करने में। अथवा सायं प्रातः संध्यामें मैथुन करनेसे आयु का क्षय होता है ॥ ३६७॥ (क) तपस्विनी)

गर्भिण्यां गर्भपीड़ा स्या द्व्याधितायां वलक्षयः॥ हीनाङ्गीं मलिनां द्वेष्यां क्षामामवन्ध्या मसंवृते ॥ ३६८॥ देशे ऽभि

गच्छतो रेतः क्षीणं ग्लानं मनो भवेत् ॥

(क) गर्भिणी गर्भवास दिवसात् द्वितीये मासि गर्भस्थिते र निश्चिते यथोक्त नक्षत्रादि लाभाभावे वा तृतीये मासि पुंसवने कृते नाभिगच्छेत् ॥

भा० गर्भिणी के साथ सोनेसे गर्भमें पीड़ा होतीहै और रोगवाली के पास सोने से बलका क्षय होताहै ॥ हीन अंगवाली मैली द्वेष करनेवाली दुर्बल बांझ इनके पास सोनेवाले का और बेपड़देकी जगह सोनेवालेका शुक्र क्षीण होता है ॥ ३६८ ॥ तथा मनभी ग्लानि युक्त होता है ॥ (क) गर्भरहे हुवे दिनसे दूसरे महीने में गर्भ रहनेका निश्चय न होनेमें अथवा यथोक्त नक्षत्रादिकोंके न मिलने में तीसरे महीने में पुंसवन करनेपर न सोवे ॥

[यथा पुंसवनानन्तर माह व्यासः।]

नंतस्त्यजे नदीतीरं देव खातोदकं तथा ॥ भर्तुः शय्यां मृतापत्यां तथैवामिष भोजनम् ॥ ३६९ ॥ [अन्यच्च] आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत् ॥ देवारा म नदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य चेति ॥ ३७० ॥ क्षुधितः क्षुब्ध चिंतश्च मध्यान्हे तृषितोऽबलः ॥ स्थितस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपञ्च विन्दति ॥ ३७१ ॥

भा० जैसे कि पुंसवनके अनन्तर कहाहै व्यासने ॥ पुंसवनके अनन्तर नदी का किनारा देवता तथा गढ़े का पानी पतिकी शय्या जिसके बच्चे होके मरते हों वो स्त्री तथा मांस भोजन इनको त्याग देवे ॥ ३६९ ॥ औरभी । मांसका भोजन। देवस्थान बाग़ नौका और मैथुन इन को गर्भवती स्त्री य त्न पूर्वक छोड़ देवे ॥ ३७० ॥ मध्यान्ह में क्षुधित प्यासा क्षोभको प्राप्त हुवे चित्तवाला दुर्बल ये स्थित शुक्रकी हानि और वायु के कोपको मानेहैं ॥ ३७१

व्याधितस्य रुजा क्लीबा मूर्छा मृत्युश्च जायते ॥ प्रत्यूषे

चार्द्धरात्रे च वातपित्ते प्रकुप्यतः ॥ ३७२॥ तिर्य्यग् योनावयोनौ वा दुष्टयोनौ तथैव च ॥ उपदंशस्तथा वायोः कोपः शुक्रसुखक्षयः ॥ ३७३॥ उच्चारिते मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे ॥ उत्तानेच भवेत् शीघ्रं शुक्राश्मर्य्यास्तु सम्भवः ॥ ३७४ ॥ सर्व्वमेतत्त्यजेत्तस्माद् यतो लोकद्वयाऽहितम् ॥ शुक्रन्तूपस्थितम्मोहान्न सन्धार्य्यं कदाचन ॥ ३७५॥ स्नानं सशर्करं क्षीरं भक्ष्यं मेलव संस्कृतम् ॥

भा० आधीरात में और दो घड़ी के तड़के में वात पित्त प्रकोप हुवे रोगी को पीड़ा पिलही मूर्च्छा और मैलभी होती है ॥ ३७२॥ तिर्य्यग योनिमें या अयोनि में अथवा दुष्ट योनिमें मैथुनकरने में उपदंश होते हैं ॥ और वायुका कोप तथा शुक्र और सुखका क्षय होता है ॥ ३७३॥ मल मूत्र किये हुवे में शुक्रके धारण करने में और उत्तान में मैथुन करने से शुक्राश्मरी का सम्भव होता है ॥ ३७४॥ उस कारण इन सबको त्याग करै क्यों कि इहलोक और परलोक में भी अहित है ॥ निकलने को तैयार हुवे शुक्रको मोहके वस रोक कभी न रोके ॥ ३७५॥ स्नान शर्करा के सहित दूध मिष्टान्न कोपीवे॥

पानंमांसरसः स्वप्नो सुरतान्तेऽहिता अमी ॥ ३७६॥ शूलकास ज्वरश्वास कार्श्य पाण्ड्वामय क्षयः ॥ अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥ ३७७॥ रात्रौ जागरणं रूक्षं कफदोष विषार्त्तिजित् ॥ निद्रा तु सेविता काले धातु साम्यमतन्द्रिताम् ॥ ३७८॥ पुष्टि वर्णं बलोत्साह वन्हिदीप्तिं करोति हि ॥

भा० मांस रसका पीना और सोना ये मैथुन के अन्त में हित हैं ॥ ३७६ ॥ शूल कांस स्वांस ज्वर कृशता पांडुरोग क्षय। और आक्षेपका विक बहुत मैथुन से होते हैं ॥ ३७७॥ रातका जागना रूक्षे और कफ दोष विष पीड़ा का जीतने वाला है ॥ समय पर नींद लेनेसे धातुकी साम्यता और सावधानता होती है ॥ ३७८ ॥ पुष्टि वर्ण बल उत्साह अग्निदीप्ति कोभी करती है ॥

यो लेढि शयन समये मधुमिश्रं बीजपूरदल चूर्णम् ॥ स तुलज्जा करं वात प्रसर निरोधात् सुखं स्वपिति ॥ ३७९ ॥ सवितुः समुदयकाले प्रसृतोः सलिलस्य पिवेदष्टौ ॥ रोग जरा परि मुक्तो जीवेद्वत्सर शतं साग्रम् ॥ ३८०॥ (क) अस्य जल पानस्योपक्रम.काले रात्रे श्चतुर्थ प्रहरे प्रवेशः ॥ [तथाच भोजः।]

भा० जो मनुष्य शयन के समय में मधुके साथ बिजौरे के पत्तेका चूर्ण चाटे ॥ वा लज्जाकर वात प्रसर् निरोधसे सुख पूर्वक सोता है ॥ ३७९ ॥ सूर्योदय कालमें आठ चुल्लू पानी पीवे ॥ रोग और बुढ़ापे से मुक्तहुवा पूरे सौ वरस जीता है ॥ ३८० ॥ इस जल पान के उपक्रम कालमें रातके चौथे पहरका प्रवेश कहा है ॥ उसे प्रकार भोजने कहा है ॥

पिवति पर्य्युषितं जलमन्वहन्तिमिर शोच्च रसे प्रहरे यदि। एतज्जलपान काल मर्य्यादा सूर्य्योदयात् सन्निहितप्रातःकालः। [तथाच तन्त्रान्तरे।] अम्भसः प्रसृतीरष्टौरवावनु दिते पिवेत् ॥ वात पित्त कफान् जित्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी इति ॥ ३८१॥

(क) सलिलस्यात्र पर्य्युषित ग्रहणं भोजवचनानुरोधात्।

अर्शः शोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकुष्ठमेदोविकारः॥ मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षि रोगाः॥ ३८२॥

भा० रातके चौथे पहर में प्रतिदिन जो बासी पानी पीताहै ॥ ये जलपान काल मर्य्यादा सूर्य्योदय वह सन्निहित प्रातः कालहै ॥ उस प्रकार तन्त्रान्तर में कहा है ॥ आठ अंजुलपानी सूर्य्योदय के पहिले पीवे । तो वात पित्त कफ इनको जीतकर सुख पूर्वक सौ बरस जीताहै ॥ ३८१॥
(क) जलका यहांपर वासी का ग्रहण है ॥ भोजवचनके अनुरोध से ॥ अर्श शोथ ग्रहिणी ज्वर जठर कुष्ठ मेदका विकार ॥ मूत्राघात रक्त पित्त कर्णगल शिर श्रोणि और नेत्र शूल ॥ ३८२॥

ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तोस्तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः॥ ३८३॥ विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यम् । पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि ॥ स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो । बलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः॥ ३८४॥

भा० जो और वात पित्त क्षतज कफ कृत रोग मनुष्य के हैं । उन २ रोगों को अभ्यासके योग से रातके अन्तमें पियाहुवा दूध नाश करता है ॥ ३८३॥ रातका बहुत अंधेर निवृत्त होनेपर प्रातःकाल में उठकर नित्य जो मनुष्य नाक से पानी पीता है । वह पूर्ण बुद्धिवान् होताहै और गिद्धके समान दृष्टिवाला होताहै । तथा झुर्रवालों की सुफ़ेदी इनसे रहित और सब रोगों से विमुक्त होताहै ॥ ३८४॥
(क) (निशीथोऽत्र निशान्धकारः।)

पातव्यं नासया नीरं प्रसृतित्रयमात्रया ॥ (ख) व्यङ्गवली पलितघ्नं पीनमवैस्वर्यकासशोथहरम् ॥

रजनी त्वयेम्बु नस्यं रसायनं दृष्टि सञ्जनम् ॥३८५॥
स्नेहे पीते क्षते शुद्धा वाध्माने स्तिमितोदरे ॥ हिक्का
यां कफवातोत्थे व्या धौ नद्यारि वारयेत् ॥ ३८६॥
(क) (नद्यारि नासापेयम्।) [अथर्त्तु चर्य्या।]

चय कोप शमा यस्मिन् दोषाणां सम्भवन्ति हि ॥ ऋ
तु षट्कं तदाख्यातं रवेराशिषु सङ्क्रमात् ॥ ३८७ ॥ ग्री
ष्मो मेष वृषो प्रोक्तः प्रावृरिमथुन कर्कटौ ॥ सिंह क
न्ये स्मृता वर्षा तुला वृश्चिकयोः शरत् ॥ ३८८ ॥

भा० (क) निशीथ यहांपर रातका अन्धेरा समझना चाहिये। तीन चुल्लू पानी नाकसे पीना चाहिये ॥ प्रातःकालमें पानीकी नास मुखपर कांधव्वा कुर्री घालकी सुफेदी इनका नाशक और पीनस स्वरभंग कास सूजन इनका दूर करनेवाला। रसायन और दृष्टि उत्पन्न करनेवाला है ॥ ३८५॥ स्नेह पान किये में क्षतरोग में वमन विरेचन करनेपर आध्मान में पेटके भारीपन में। और हिचकी में और कफ वात से उत्पन्न हुवे रोग में नाक से पानी न पीवे ॥ ८६ ॥ ॥ अनन्तर ऋतु चर्य्या कहते हैं ॥ दोषोंका संचय प्रकोप और प्रशमन जिसमें होता है और राशिपर सूर्यके घूमने से। वे छः ऋतु कहाते हैं ॥ ३८७ ॥ मेष वृष में ग्रीष्म, मिथुन कर्क में प्रावृट्। सिंह कन्या में वर्षा, तुला वृश्चिक में शरत् ॥ ३८८ ॥

धनुर्ग्राही च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः ॥
(क) मेष वृषो रविणा सङ्क्रान्तौ। एवं मिथुन कर्कटावि
त्यादि ॥ [अन्ये तु] शिशिरः पुष्पसमयो ग्रीष्मो वर्षा
शरद्धिमाः ॥ माघादि मास युग्मैः स्यु रृतवः षट् क्र
मादमी ॥ ३८९॥ गङ्गाया दक्षिणे देशे वृष्टेर्बहुल भा
वतः ॥ उभौ मुनिभिराख्यातौ प्रावृट् वर्षाभिधावृतू ॥३९०

भा० धन मकर में हेमन्त, और कुम्भ मीन में वसन्त इस प्रकार छ ऋतु कहे हैं ॥ और आचार्य्य कहते हैं। शिशिर वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरत् हिम ॥ ये छ ऋतु माघसे लेकर दो २महीने में क्रमके साथ होते हैं ॥ ३८६॥ गंगाके दक्षिण देशमें वर्षा के बहुत होने से मुनियों ने प्रावृट् वर्षा दो ऋतुके नाम कहे हैं। ३६०

उत्तरायणमाद्यैः स्तैः परैः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ आद्यमुष्णं बलहरं ततोऽन्यद् बलदं हिमम् ॥ ३६१॥ हेमन्तः शीतलः स्निग्धः स्वादुर्ज्जठर वन्हिकृत् ॥ शिशिरः शीतलोऽतीव रूक्षो वाताग्निवर्द्धनः ॥ ३६२॥

(क) हेमन्तः स्वादुः प्रायेण द्रव्येषु स्वादुरसजनकः एवमन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥ ॥वसन्तो मधुरः स्निग्धः श्लेष्मवृद्धिकरश्च सः॥ग्रीष्मो रूक्षोऽतिकटुकः पित्तकृत् कफनाशनः ॥ ३६३

भा०पहिले तीन ऋतुवों से उत्तरायण और अन्तकी तीन ऋतुवों से दक्षिणायन होता है। पहिला उत्तरायण उष्ण और बल को हरनेवाला तथा उससे दूसरा अर्थात् दक्षिणायन शीत और बलको देनेवाला है ॥ ३६१॥ हेमन्त शीतल स्निग्ध स्वादु और उदराग्नि को करनेवाला है ॥ शिशिर अधिक शीत रूखा वात और अग्निको करनेवाला है ॥ ३६२॥ (क)हेमन्तस्वादुः अर्थात् प्रायः करके पदार्थों में मधुर रसको उत्पन्न करनेवाला। इस प्रकार औरोंमें भी जानना। वसन्त मधुर चिकना और कफको बढ़ानेवाला है ॥ ग्रीष्म रूखा बहुत कटु पित्तको करनेवाला और कफका नाशक है ॥ ३६३॥

वर्षा शीता विदाहिन्यो वन्हिमान्द्यानिलप्रदाः ॥ शरदुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्यबलावहा ॥ ३६४॥ चयप्रकोपोपशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु ॥ वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥ ३६५॥

भा॰ वर्षा शीत विदाह को करने वाली अग्नि मान्द्य और वात को देने वाली है ॥ शरत् उष्ण पित्त को करने वाली और मनुष्यों के मध्य बलको देने वाली है ॥ ३८४ ॥ वायु का संचय प्रकोप और शमन ग्रीष्म से आदि लेके इन तीन ऋतुवों में होता है ॥ वर्षा से आदि लेके तीन ऋतुवों में पित्तका और शिशिर से आदि तीन में कफ का संचय प्रकोप शमन होता है ॥ ३८५ ॥

चीयते लघुरूक्षाभि रौषधीभिः समीरणः ॥ तद्विधस्तद्विधे देहे कालस्योष्णतया न्न कुप्यति ॥ ३८६ ॥

(क) तुल्येऽपि काले स्निग्धे तद्विधो रूक्षो लघुश्च तद्विधे रूक्षे लघौ च ॥ अद्भिरम्ल विपाकाभिरौषधीभिश्च तादृशाम् ॥ पित्तं याति च यं कोपं न तु कालस्य शैत्यतः ॥

॥ ३८७ ॥ (तादृशाम् अम्लविपाकम् ।)

भा॰ हलकी रूखी औषधियों से वायु संचय होता है ॥ हलका रूखा वायु हलकी रूखी देहमें कालको उष्णता से प्रकोपको नहीं प्राप्त होता ॥ ३८६ ॥ अम्ल विपाक को करनेवाली औषधी और पानीसे इस प्रकार ॥ पित्त संचय को प्राप्त होता है ॥ तथा कालके शीत होने से कोपको नहीं प्राप्त होता ॥ ३८७

चीयते स्निग्ध शीताभि रुदकौषधिभिः कफः ॥ तुल्ये च काले देहे च क्लिन्नत्वान्न प्रकुप्यति ॥ ३८८ ॥

(ख) तुल्येऽपि काले स्निग्धे शीतले च । (क्लिन्नत्वान् देहे शुष्कत्वान् ।) हिमे याति शमं पित्तं वायुश्लेष्मा च चीयते ॥ स वायुः शिशिरे कोपं यात्येवोपहतः कफः ॥ ३८९ ॥ हेमन्ते सञ्चितः श्लेष्मा शिशिरे त्वतिचीयते ॥ शीत स्निग्ध गुरु द्रव्यैः शैत्य क्लिन्नो न कु

प्यति ॥ ५००॥ (क) क्लिन्नः काठनीभूतः।

इति कालस्वभावोऽयं महारादिवशात् पुनः॥ चया

दीन् यान्ति सद्योऽपि दोषाः काले विशेषतः॥ ५०१

भा० चिकनी शीत औषधी और जल से कफ सञ्चय होता है ॥ काल के समान होने पर भी देहमें गीलापन होने से कोप नहीं होता ॥ ३६८ ॥ हिममें पित्त शमन होता है। और वायु कफ सञ्चय होते हैं ॥ वो नष्टहुवा वायु और कफ शिशिरमें कोप को प्राप्त होते ही हैं ॥ ३९९ ॥ हेमन्त में सञ्चयहुवा कफ शिशिर में बहुत सञ्चय होता है ॥ शीत स्निग्ध और भारी पदार्थों से शीतता और गीला हुवा प्रकोप को नहीं प्राप्त होता ॥ ५०० ॥

(क) (क्लिन्न) कठिनीभूत) इस प्रकार यह कालस्वभाव है पुनः आहारादि वश से दोषकाल में विशेषकरके तत्काल चय कोप शमन को प्राप्त होते हैं।

(क) चयकोपशमाः पूर्व्वान्हे वसन्तस्य लिङ्गं मध्यान्हे ग्रीष्मस्य अपरान्हे प्रावृषः प्रादोषे वार्षिकम् ॥ शारदम र्द्धरात्रे प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् ॥ (ख) एवमहोरा त्रमपि वर्षामिव शीतोष्णवर्षादोषोपचय प्रकोपोपश माः जानीयादिति सुश्रुतः॥

चय कोप समा दोषा विहाराहार सेवनैः॥ समानैर्य्या न्त्यकालेऽपि विपरीते विपर्य्ययम् ॥ ५०२॥

भा० (क) पहले पहर में वसन्त का चिन्ह मध्यान्ह में ग्रीष्मका अपरान्ह में प्रावृट् का। और सायंकाल में वर्षा का ॥ आधीरात में शरद का और पिछली रात में वसन्तका ॥ लक्षण जान लेवे ॥ (ख) इस प्रकार रात दिनकी भी वर्षा की नाईं शीत उष्ण वर्षा और दोषों, सञ्चय प्रकोप शमन जाने। इस प्रकार सुश्रुत ने कहा है ॥ समान आहार विहार के सेवन से दोष अपने काल में सञ्चय प्रकोप शमन होते हैं ॥ और विपरीत आहार विहार से काल में भी विपरीत सञ्चय प्रकोप शमन होते हैं ॥ ५०२॥

(क) समानैः तुल्यैः चयादि योग्यैरिति यावत् । विपर्य्यये कालेऽपि वैपरीत्यं बोध्यम् । [एवं चय लक्षण माह सुश्रुतः

स्वस्थानस्थस्य दोषस्य वृद्धिः स्याच्छाव कोष्ठता ॥ पीतावभासता वन्हि मन्दता चाङ्ग गौरवम् ॥ ४०३ ॥ आलस्यञ्चय हेतौ तु द्वेषश्च चय लक्षणम् ॥ सञ्चयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरां गतिम् ॥ ४०४ ॥

भा० इसप्रकार चय लक्षण कहाहै सुश्रुतने ॥ अपने स्थानमें रहनेवाले दोषकी वृद्धि में कोठेका कालापना ॥ज़र्दी अग्नि मन्दता शरीरका भारीपना होताहै ॥ ४०३ ॥ सञ्चय के निदान में आलस्य और चयके लक्षण में द्वेष होताहै । संचयमें दूर कियेहुवे दोष उत्तर गति अर्थात् प्रकोपको नहिं प्राप्त होते ॥ ४०४ ॥

ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ॥ वर्षासु प्रबलो वायुस्तस्मान्मिष्टादय स्त्रयः ॥ ४०५ ॥ रसाः सेव्या विशेषेण पवनस्योप शान्तये ॥ (मिष्टादय स्त्रयः मधुराम्ल लवणाः) भवेद्वर्षासु वपुषः क्लिन्नत्वं यद्विशेषतः ॥ ततक्लेश शान्तये सेव्या अपि कट्वादय स्त्रयः ॥ ॥ ४०६ ॥ (कट्वादयस्त्रयः कटु तिक्त कषायाः ।)

स्वेदनं मर्द्दनं सेव्यं दध्युष्णं जाङ्गलामिषम् ॥ गोधूमाः शालयो माषा जलं कौपं जलं च्युतम् ॥ ४०७ ॥

भा० वे प्रकोपमें वहुत बलवान होते हैं । वर्षामें वायु प्रबल होता है । उसकारण मधुर अम्ल लवण ये तीन रस ॥ ४०५ ॥ वातकी शान्तिके अर्थ विशेष करके सेवन करनेचाहियें ॥ वर्षामें जो शरीर का गीलापन अधिक होताहै । उस क्लेशकी शान्तिके अर्थ कटुक तिक्त कषाय ये तीन रस सेवन करनेचाहियें ॥ ४०६ ॥ पसीना लिवाना मलना दधि उष्ण जांगल मांस ॥ गेहुं चावल उड़द कुयेका पानी अथवा चुवाया पानी इनका सेवनकरे ॥ ४०७ ॥

न भजेत् पूर्वे पवनं वृष्टिं घर्मं हिमं श्रमम् ॥ नदीनीरं दिवा स्वप्नं रूक्षं नित्यञ्च मैथुनम् ॥ ५०८ ॥ सर्पिः स्वादु कषाय तिक्त करसा यच्छीतलं यल्लघु ॥ क्षीरं स्वच्छ सितेक्षवः पटुरसः स्वल्पं पलं जाङ्गलम् ॥ ५०९ ॥ गोधूमा यव मुद्गशालिसहिता नादेयमंशूदकम् ॥ चन्द्रश्चन्दन मिन्दुराजिरजनी माल्यं पटोनिर्मलः ॥ ५१० ॥

भा० सामने की वायु वृष्टि शीत धूप श्रम । नदी का नीर दिनका सोना रूखा पदार्थ नित्य मैथुन इनको न सेवन करे ॥ ५०८ ॥ घृत मधुर कषाय तिक्त रस और जो शीत अथवा लघु ॥ दूध सफेद चीनी गन्ना लवण रस थोड़ा जांगल मांस ॥ ५०९ ॥ गेहूं जव मूंग चावल नदीका पानी और अंशूदक कपूर चन्दन चान्दनीरात माला स्वच्छ वस्त्र ॥ ५१० ॥

विश्रामः सुहृदां गणेषु मधुरा वाचः सरःक्रीडनम् ॥ पित्तानाञ्च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरामोक्षणम् ॥ ५११ ॥ एतान्यत्र घनावसानसमये पथ्यानि मुञ्चेद्दधि ॥ व्यायामाम्ल कटूष्ण तीक्ष्णदिवसस्वप्नं हिमञ्चातपम् ॥ ५१२ [अंशूदक लक्षणमाह ।] दिवसेऽर्ककरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ ५१३ ॥ (क) अत्र समग्र प्राप्त्यर्थं दिवस दिवापादद्वये निशापादञ्च। चन्द्रः कर्पूरः ॥

भा० मित्रों की सभा में मधुर वाणी के साथ विश्राम । तालाव में क्रीड़ा करना । पित्तों के विरेचन बलवान की फस्त खुलाना ॥ ५११ ॥ ये शरद ऋतु में पथ्य हैं ॥ और दही कसरत खटाई कड़वी उष्ण तीखी वस्तु तथा दिनका सोना शीत और धूप इनको छोड़ देवे ॥ ५१२ ॥ अंशूदक का लक्षण कहा है ॥

दिन में सूर्य्य की किरणों से सेवित और रात में चान्द की किरणों से सेवित जो जल उसको अंशूदक जाने। यो स्निग्ध और तीनों दोषों का नाशक है ॥ ५१३॥
(क) यहांपर संपूर्ण दिवस प्राप्त है इसवास्ते दिन दो हिस्से और रात एक हिस्से होनी चाहिये ॥

इक्षवः शालयो मुद्गा सरोऽम्भः क्वथितं पयः।
शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दुरश्मयः॥५१४॥
प्रातर्भोजनमम्ल मिष्ट लवणानभ्यङ्ग घर्म्मश्रमान्॥
गोधूमेक्षवशालि माषपिशितं पिष्टं नवान्नं तिलान्॥
५१५॥ कस्तूरी वर कुङ्कुमा गुरु युता मुष्णाम्बु शौचं तथा॥ स्निग्धं स्त्रीषु सुरतं गुरूष्ण वसनं सेवेत हेमन्तके॥५१६॥ शिशिरे शीतमधिकं रौक्ष्यं वा दानकालजम्॥ विशेषत स्ततस्तत्र हेमन्तस्य मतो विधिः॥५१७

भा० गन्ने चावल मूंग नदीका पानी औटा दूध। और सायंकाल में चांदनी ये शरद्कालमें पथ्य हैं ॥ ५१४ ॥ अम्ल मधुर लवण इन रसों का प्रातःकाल में भोजन तेलका लगाना घर्म श्रम ॥ गेहूं गन्ना चावल उडद मांस पीठी नया अन्न तिल ॥ ४१५॥ कस्तूरी कश्मीर का केसर मलयागिरका काला चन्दन शौचमें गरमपानी। स्निग्ध पदार्थ मैथुन भारी गरम कपड़ा इनको हेमन्त ऋतुमें सेवनकरे॥ ४१६॥ शिशिर में शीत अधिक होता है आदानकाल की रूक्षता होती है। इसवास्ते उसमें विशेषकरके हेमन्त की विधि प्रशस्त है ॥ ५१७ ॥

वान्तिं नस्य मथाभयाक्ष्व मधुना व्यायाम मुद्वर्त्तनम्॥
संसेवेत मधौ कफघ्न कवलं धूम्यं पलज्जाङ्गलम्॥५१८॥
गोधूमान् बहु शालिभेद सहितान्मुद्गान् यवान् षष्टिकान्। लेपश्चन्दन कुङ्कुमागुरु कृतं रूक्षङ्कटूष्णं लघु॥५१९
मिष्टमम्लं दधिस्निग्धं दिवा स्वप्नञ्च दुर्ज्जरम्॥ अवश्या

य मपि भाज्ञो वसन्ते परिवर्ज्जयेत् ॥ ४२० ॥ स्वादु स्नि॰
ग्ध हिमं लघु द्रवमयन्द्रव्यं रसालां सिताम् ॥ शक्तु र्क्षी
र दशाङ्गुलानि सितया शालिं रसं मांसजम् ॥ ४२१ ॥
शीतांशुं शयनन्दिवा मलयजं शीतम्पयः पानकम्।
सेवेतोष्ण दिने त्यजेत्तु कटुक क्षाराम्लघर्म्मश्रमान् ॥
॥ ४२२ ॥ ऋतुष्वेषु य एतेषु विधिभि र्वर्त्तते नरः ॥ दो
षानृतु कृतान्नैव लभते स कदाचन ॥ ४२३ ॥
इति श्रीलटकनमिश्र तनय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भाव
प्रकाशे दिनचर्य्यर्तु प्रकरणञ्चतुर्थम् ॥ ४ ॥

भा॰ वमनकुलास और मधुकेसाथ हड़ तथा कसरत उवटना इनको वसन्त में सेवन करे। और कफ नाशक घास तथा जांगल मांस का कवाव इनको भी सेवन करे ॥ ४१८ ॥ गेहूं बहुत क़िसम के चावल और मूंग जव तथा साठी चांवल। चन्दन केसर कृष्णागरु और रूक्ष कटु तथा लघु इस प्रकार को बनाया हुवा लेप इनको भी वसन्त में सेवन करे ॥ ४१६ ॥ मधुर अम्ल दधि स्निग्ध दिनका सोना जला भुना इनको बुद्धिवान् शिशिर और वसन्त में त्याग देवे ॥ ४२० ॥ मधुर स्निग्ध शीत लघु और पतली वस्तु तथा शिकरन चीनी ॥ सत्तू दूध दसों अंगुल चमेली से भूषित चांवल शोरुवा ॥ ४२१ ॥ चान्दनी दिनका सोना मलयागिर को चन्दन ठंडा पानी पपानक अर्थात् पन्ना इनको गरमी की ऋतु में सेवन करे। और कटु क्षार अम्ल धूप श्रम इनको त्याग देवे ॥ ४२२ ॥ जो मनुष्य ऋतुवों में इस विधिसे चलता है। उस मनुष्य को ऋतु कृत दोष कभी नहीं होते ॥ ४२३ ॥

इतिश्री लटकनमिश्र के पुत्र श्री भावमिश्र के रचित भाव प्रकाश में दिनचर्य्या और ऋतु प्रकरण चतुर्थ समाप्त हुवा ॥ ४ ॥

[अथ व्याधेर्लक्षणम्। तत्र वाग्भटः।]

रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्य मरोगता ॥ रोगा दुः

रुक्स्य दातारो ज्वर प्रभृतयो हि ते ॥१॥ ते च स्वाभावि का: केचित्केचिदागन्तवः स्मृताः॥ मानसाः केचिदा ख्याताः कथिताः केऽपि कायिकाः॥२॥

(तत्र स्वाभाविकाः शरीर स्व भावादेव जाताः॥)

(क) क्षुत्पिपासा सुषुप्त्या च जरा मृत्यु प्रभृतयः अथवा स्व स्व- भाविका दुत्पत्ते र्जाता स्वाभाविकाः सहजा इति यावत्। (ख) ते च जन्मान्धत्वादयः आगन्तवोऽभिघातादि जनिताः। अथवा जन्मोत्तर भाविनः। कामक्रोध लोभ मोह भयाभि मान दैन्य पैशुन्य शोक विषादेर्ष्या सूया मात्सर्य्य प्रभृतयः। अथवा उन्मादापस्मार मूर्च्छा भ्रम मोह तमः संन्यास प्रभृतयः।

भा॰ अनन्तर व्याधि का लक्षण अष्टाङ्ग हृदय में वाग्भट ने कहा है। दोषों की विषमता रोग है और दोषों की समानता आरोग्य है॥ वे ज्वर आदि रोग दुःख के देने वाले हैं॥१॥ वे रोग कोई रोग स्वाभाविक और कोई आगन्तुक कहे गये हैं। और कोई मानसिक तथा कोई कायिक इस प्रकार कहे गये हैं।२॥ उन्मे स्वभाविक शरीर में स्वभाव से ही उत्पन्न हैं) (क) क्षुधा तृषा निद्रा जरा मृत्यु आदि। अथवा अपने स्वभाव से ही उत्पन्न हुवे ही स्वाभाविक अर्थात् साथ होने वाले। (ख) वे जन्म का अन्धापन इत्यादिक। आगन्तुक चोट से उत्पन्न हुवे। अथवा जन्म के पश्चात होने वाले। कामक्रोध लोभ मोह भय अभिमान दीनता चुगली शोक खेद ईर्षा और शत्रुता मत्सरता आदि। अथवा उन्माद अपस्मार अर्थात् मिरगी मूर्छा भ्रम मोह अन्धेरी और अचेतता इत्यादिक

कायिकाः पाण्डु रोग प्रभृतयः कर्म्मजाः कथिताः केचि द्दोषजाः सन्ति चापरे॥ कर्म्म दोषोद्भवाश्चान्ये व्याधय स्त्रिविधाः स्मृताः॥३॥ (क) तत्र कर्म्मजाः व्याधयः।

यत्प्राक्तनन्दुष्कर्म्म प्रबलङ्केवल भोगनाश्यम् । प्रायश्चि त्तनाश्यं वा ततो जाताः ननु दुष्ट वातादि दोषेण जनिता स्त था ॥ ॥ यथाशास्त्रन्तु निर्णीतो यथाव्याधि चिकित्सितः। न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्म्मजो बुधैः ॥ ५॥

भा० कायिक पांडुरोग आदि । कर्म्मज कोंकहेगये हैं । और कोई दोषज हैं । और कोई कर्म्म दोषोंसे उत्पन्न इस प्रकार तीन तरहकी व्याधि कही है ॥ ३॥ (क) उनमें कर्म्मजव्याधि जो पूर्वजनमके दुष्कर्म्मसे प्रबल हुवा और भोग द्वा राही नाश होनेवाला अथवा प्रायश्चित्त से नाशहोनेवाला उस्से उत्पन्न हुवा । न कि वातादि दोषसे हुवा इस प्रकार । शास्त्र के अनुसार निश्चय हुई और पथ्य व्याधि चिकित्सा सेजो व्याधि शमन को नहीं प्राप्तहोती है उसको पंडित कर्म्मज कहते हैं ॥ ५॥

[दोषजाः। मिथ्याहार विहार प्रकुपित वात पित्त कफजाः।] (क) ननु मिथ्याहार विहारिणा मपि प्राक्तन सुकृतेन नैरु ज्यं दृश्यत एव । ततो दोषजेष्वपि प्राक्तनं दुष्कर्मैव कारणम् तत्कथं दोषजा इत्युच्यते । दोषजेष्वपि वस्तुतः। आदि कारणं दुष्कर्म वर्त्तत एव किन्तु तत्र मिथ्याहार विहार दू षिता दोषा हेतवो दृश्यन्त इति दोषजा इत्युच्यन्त इति समा धिः। [कर्मदोषोद्भवाः।]

भा० [दोषज] मिथ्या आहार और विहारसे प्रकोपको प्राप्तहुवे वात पित्त कफ से उत्पन्न हुई ॥ (क) ननुशंका । मिथ्या आहार विहारवालोंको भी पूर्वजन्मान्तर केसुकृत कर्मसे ही आरोग्यता होती है । उस्से दोषज में भी पूर्व जन्मान्तर का दुष्कर्म ही कारण है । तो कैसे दोषज कहते हैं । यथार्थमें तो दो षज में भी आदिकारण दुष्टकर्म ही रहता है । लेकिन उस्में मिथ्या आहार विहारसे दूषित दोष कारण देखेजाते है । इस्से दोषज कहते हैं ये समाधान है।

[कर्म्म दोषों से उत्पन्न हुवों को कहते हैं।]

स्वल्पदोषा गरीयांसस्ते ज्ञेयाः कर्म्म दोषजाः॥

(ख) अत्र कारणं दुष्कर्म प्रवलं यतो दोषाल्पत्वेऽपि व्याधेर्गरीयस्त्वन्तत्कर्म्म क्षयादेव क्षीणं भवति। दोषाः स्वल्पा अपि निदानत्वे नोक्ता दृश्यन्त एवेति दोषाणां कारणता मन्यन्त इति। कर्म्मक्षयात् कर्म्म कृता दोषजाः स्व स्व भेषजैः।

कर्म्म दोषोद्भवा यान्ति कर्म्मदोष क्षया क्षयम्॥

भा० थोड़े दोष बहुत भारी होजावें उसको कर्म्मदोषज जानना। (क) यहांपर कारण दुष्ट कर्म प्रवल है। जैसेकि स्वल्प व्याधिमें बहुत व ढे हुवे दोष कर्म्म क्षय से ही क्षीण होते हैं। दोष स्वल्प भी निदान करके कहे हुवे देखे जाते ही हैं और दोषोंकी कारणता मानते हैं। कर्म्मके क्षय से कर्मकृत दोष अपनी २ औषधि से। कर्म दोषों से उत्पन्न हुवे कर्मदोष के क्षयसे क्षयको प्राप्त होते हैं॥

(ग) दोषजाः स्वस्व भेषजैरिति दोषजेष्वादि कारणं॥दुष्कर्म्म तद्भेषजार्थ द्रव्य क्षयादि जनित दुःख भोगेन कटु तिक्त कषायाद्य हृद्य भक्षणादि जनित दुःख भोगेन च क्षयं यान्ति। एषा दुष्टा हेतवो दोषा स्ते स्व स्वभेषजैः क्षयं यान्तीत्यर्थः॥ साध्या याप्या असाध्याश्च व्याधय स्त्रिविधास्मृताः॥सुखसाध्यः कष्टसाध्यो द्विविधः साध्य उच्यते॥५॥ [याप्य लक्षण माह।]

भा० (क) दोषज अपने २ औषध सेइति। दोषसे उत्पन्न हुवेमें आदिकारण दुष्टकर्म्म, और उसके औषधके अर्थ द्रव्य क्षयादि से हुवे दुःख भोग करके ही कटु तिक्त कषादि अप्रिय भक्षण से उत्पन्न हुवे दुःखसे नाश को प्राप्त होते हैं।

पांच दुष्ट कारण वे दोष। अपने २ औषध से नाशको प्राप्त होते हैं। साध्य याप्य असाध्य तीन प्रकारकी व्याधि कही गई है ॥ सुखसाध्य तथा कष्टसाध्य दो प्रकारका साध्य कहते हैं ॥ ५॥ याप्य का लक्षण कहा है।

यापनीयन्तु तं विद्यात् क्रिया धारयते हि यम् ॥ क्रियायान्तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति ॥ ६॥ प्राप्ता क्रियाधारयति सुखिनं याप्य मातुरम् ॥ प्रपतिष्य दिवागारं स्तम्भो यत्नेन योजितः ॥ ७ ॥ साध्या याप्य त्वमायान्ति याप्यश्चासाध्यतान्तथा ॥ घ्नन्ति प्राणान साध्यास्तु नराणाम क्रियावताम् ॥ ८ ॥

भा० यापनीय उसको जानना चाहिये जिसको क्रियाने पकड़ रक्खाहै। क्रिया के निवृत्त होनेमें जो तत्काल नाशको प्राप्त होना है ॥ ६॥ प्राप्तक्रिया जिस सुखि याप्य आतुर को धारण करतीहै। वो गिरेहुवे मकानमें थांभ लगायेहुवेके मानिन्द है ॥ ७ ॥ साध्यरोग याप्य होतेहैं और याप्य असाध्यता को प्राप्त होतेहैं पथ्यादिक न करनेवाले पुरुषों के प्राणों को असाध्य रोग नाश करतेहैं ॥ ८ ॥

(क) अक्रियावतां चिकित्सा रहितानाम्। [अथोपद्रवस्य लक्षणम्।] रोगारम्भक दोषस्य प्रकोपादुपजायते॥ योऽन्यो विकारः स बुधैरुपद्रव इहोदितः ॥ ९ ॥

[अथारिष्टस्य लक्षणमाह।] रोगिणो मरणं यस्माद्वश्यम्भावि लक्ष्यते ॥ तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टञ्चापि तदुच्यते ॥ १०॥ [अथ चिकित्साया लक्षणमाह।]

भा० (क) चिकित्सासे रहितोंको। अनन्तर उपद्रवों का लक्षण कहते हैं। रोगको आरंभ करनेवाले दोषों के प्रकोप सेजो दूसरा विकार उत्पन्न होताहै उसको पंडित यहांपर उपद्रव कहते हैं ॥ ९ ॥ अनन्तर अरिष्टका लक्षण

कहतेहैं ॥ रोगिका अवश्य होनेवाला मरण जिस्से जाना जाताहै। वोह लक्षण अरिष्ट होताहै और रिष्ट भी उस्को कहतेहैं ॥ अनन्तर चिकित्साका लक्षण कहतेहैं ॥ १० ॥

यां क्रिया व्याधि हरणी सा चिकित्सा निगद्यते ॥ दोष धातु मलानां या साम्यकृत् सैव रोगहृत् ॥ ११ ॥

(क) क्रियात्र कर्म्म व्याधिर्हन्यतेऽनयेति व्याधि हरणी करणाधि करणयोश्चेति सूत्रेण करणार्थेल्युट् तथाच। याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः॥ सा चिकित्सा विकाराणां कर्म्म तद्भिषजाम्मतम् ॥ १२ ॥ या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ॥ सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्य मुदीरयेत् ॥ १३ ॥ (क्रियात्र चिकित्सा।) तथा चामर सिंहः।

भा० जो क्रिया व्याधिको दूरकरनेवाली होतीहै उसको चिकित्सा कहतेहैं। दोष धातु मल इनकी समानता करनेवाली जोहै वोही रोग नाशक है ॥ ११ ॥ (क) क्रिया यहाँपर कर्मव्याधिनाशकी जातीहै इससेवो व्याधिहरणीहै। करणाधिकरणयोश्चेति इस सूत्रसे करण अर्थमें ल्युट है। उस प्रकार कहा है ॥ जिस क्रियासे शरीरमें धातु सम होतेहैं। वो चिकित्सा है। और विकारों का वोह कर्म्म वैद्योंके सम्मत है। प्रकोप हुवेको शमन करती है और दूसरी व्याधिको नहिं करती। वो क्रियाहै। तथा जो एक व्याधिको दूरकरे और दूसरीको उत्पन्न करे वो क्रियानहीं॥ १३॥ (क) क्रिया यहाँपर चिकित्सा। उस प्रकार अमर सिंहने कहाहै ॥

आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणम् ॥ उपायः कर्म्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रिया इति ॥ १४ ॥

[अथ चिकित्साविध्यु पदेशः।

जातमात्रः चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः॥
वन्हि शत्रु विषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ॥२५॥
रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्॥ ततः क
र्म्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥ २६॥

भा० आरंभ निष्कृति शिक्षा पूजन संप्रधारण॥ उपाय कर्म्म चेष्टा और चिकित्सा ये नव क्रियाके पर्याय हैं॥ २४॥ अनन्तर चिकित्साकी विधिका उपदेश है। उत्पन्न मात्रही रोग चिकित्सा योग्य है। थोड़ाभी रोग उपेक्षा करने योग्य नहीं होता॥ आग शत्रु विष इनके समान अल्प भी विकारको करता है॥ २५॥ प्रथम रोगकी परीक्षा करे उसके अनंतर औषधि करे। उसके अनंतर वैद्य पश्चात् कर्म ज्ञान पूर्वक करे॥ २६॥

(क) [अयमर्थः] भिषक् आदौ रोगं परीक्षेत विचारयेत्।
ततः पश्चाद्रोगौषधविचारानन्तरं ज्ञान पूर्वं सावधानो
न त्ववज्ञाय कर्म्म चिकित्सामौषधदानादिरूपां समाच
रेदित्यर्थः। रोगाज्ञानेन चिकित्साकरणे दोषमाह।

भा० (क) यह अर्थ है॥ वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा करे। अर्थात् विचार करे। उसके पश्चात् अर्थात् रोग औषधि विचार के अनंतर सावधान होके। न कि बेसमझे कर्म अर्थात् चिकित्सा अर्थात् औषधि दान रूप को करे॥ रोगके बिन जाने चिकित्सा करने में दोष कहते हैं।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्म्माण्यारभते भिषक्। अप्यौ
षध विधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया॥ २७॥
(ख) स्वेच्छया सिद्धिर्भवति नापि भवतीत्यर्थः। अन्यच्च
भेषजं केवलं कर्त्तुं यो जानाति न चामयम्॥ वैद्यक
र्म्म स चेत् कुर्य्याद् वधमर्हति राजतः॥ २८॥
(क) [रोगाज्ञाने भेषजाज्ञाने दोषमाह।]

यस्तु केवल रोगज्ञो भेषजेष्व विचक्षणः ॥ तं वैद्यं प्राप्य रोगी स्याद्यथा नौर्नाविकं विना ॥ २९ ॥

भा० जो वैद्य औषधि का जानने वाला रोग को बिनजाने चिकित्सा करता है उसकी सिद्धी अपनी खुशी की है अर्थात् कभी होती है कभी नहींभी होती ॥ २७॥ औरभी, जो वैद्य केवल औषधका जानते हैं और रोगको नहींजानते ॥ वो वैद्य कर्म करैतो राजासे वध होने योग्य हैं ॥ २८ ॥ रोगका ज्ञान और औषधका न ज्ञान इसमें दोष को कहते हैं ॥ जो केवल रोगका जानने वालाहै और औषधिमें अविचक्षण ॥ उस वैद्य को पाकर रोगी उस प्रकार का होताहै जैसे मल्लाह के बिन नाव ॥ २९ ॥

(क) नाविकं कर्णधारं विना यथा नौ सङ्कटे पतति तथा रोगीत्यर्थः। [अन्यच्च]

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक् ॥ स मुह्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवम् ॥ ३० ॥

[रोगौषधयोर्ज्ञाने गुणमाह ।] यस्तु रोग विशेषज्ञः सर्वभेषजकोविदः ॥ देशकाल विभागज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ३१ ॥ आदावन्ते रुजां ज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः ॥ भेषजानां विधानेन ततः कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥ ३२ ॥ (क) चिकित्सित सिध्यत भावे क्तः।

भा० (क) जैसे मल्लाह के बिना नाव संकट में पड़तीहै वैसे रोगी इत्यर्थः। औरभी । जो वैद्य केवल शास्त्रको जानने वाला है । और क्रियामें अकुशल हैं । वोह रोगीको पाकर मोहको प्राप्त होताहै । जैसे संग्राममें डरपोक मोह को प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ रोग और औषधके ज्ञानमें गुणको कहते हैं । जो रोग विशेषका जानने वालाहै । और संपूर्ण औषधियों को भी जानताहै देश काल विभागको जानताहै उसकी सिद्धि अवश्य होती है ॥ ३१ ॥

वैद्य आदि अन्तरोगके ज्ञानहोनेपर प्रयत्न करे ॥ उसके अनन्तर औषधके विधान से चिकित्सा करे ॥ २१ ॥
(क) चिकित्सित इस प्रकार यहांपर भावमें क्त होता है ॥

रा विकाराणामकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ॥ न हि सर्व्वं विकाराणां नामतोऽस्तिध्रुवा स्थितिः ॥ २३॥

(क) न जिह्रीयात् न लज्जेत् । ध्रुवा नियता ।

नास्तिरोगो विनादोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः ॥ अनुक्तामपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥२४॥ येन कुर्वन्त्यसाध्यानां चिकित्सां ते भिषग्वराः ॥ अतो वैद्यैः श्रमः कार्य्यः साध्यासाध्य परीक्षणे ॥ २५॥

भा० विकारोंके जाननेमें अकुशल कभीन शरमावे। क्यों कि सम्पूर्ण विकारों के नामसे नियत स्थिति नहिंहोती ॥२३॥ (क) जिसकारण विना दोषों के रोग नहीं होता । उसकारण वैद्य दोषोंके लक्षणों से नकी हुवे रोगका भी इलाज करे ॥ २४ ॥ जो असाध्य रोगों की चिकित्सा नहीं करते । वे श्रेष्ठ वैद्य हैं ॥ इसवास्ते साध्य असाध्य की परीक्षामें वैद्योंको श्रमकरना चाहिये ॥२५

रोगज्ञानोपाया अग्रे वक्ष्यन्ते । प्रीते प्रीत प्रतीकारमुखो तृष्णा निवारणाम् । कृत्वा कुर्य्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ २६ ॥ अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न क्रिया कृता ॥ क्रियाहीनातिरिक्ता च साध्ये ष्वपि न सिद्ध्यति ॥ २७ ॥ (क) [अयमर्थः।] काले चिकित्साऽवसरे । अप्राप्तेऽनागते । या क्रिया चिकित्सा । यथा ज्वरे जीर्णतामप्राप्ते तरुण एव कषायदानक्रिया न सिद्ध्यति ।

भा० रोग ज्ञान के उपाय आगे कहे हैं ॥ शीत में शीतका इलाज । और उष्ण में उष्ण का निवारण करके प्राप्त क्रिया को करे और क्रिया कालको न त्याग करे ॥ २६ ॥ अप्राप्त क्रियाकालमें जो चिकित्साकीजातीहै और जो प्राप्तकालमें नहीं कीजाती ॥ तथा हीन क्रिया या औरकी और क्रियाभी बहु साध्यरोग में भी नहीं सिद्ध होती ॥ २७ ॥ (क) यह अर्थ है कि चिकित्सा का समयनजानेपर । जो चिकित्सा । जैसे जीर्णता को नप्राप्तहुवे ज्वरमें अर्थात् तरुण ज्वर में कषायदान क्रिया नहीं सिद्धहोती ॥

(ख) या च क्रिया चिकित्सावसरे प्राप्ते न कृत्वा । अर्थात् पश्चात् कृता । (ग) यथादाहे कथञ्चिच्छान्ते पश्चाच्छीतलानुलेपनादिक्रिया । तथा हीनातिरिक्ता च क्रिया साध्येष्वपि न सिद्ध्यति ॥ अतिरिक्तां हीनां च क्रिया वर्ज्जयन्नाह विकारेऽल्पे महत् कर्म्म क्रिया लघ्वी गरीयसी ॥ द्वयमेतद कौशल्यं कौशल्यं युक्त कर्म्मता ॥ २८ ॥
क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ॥
पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रिया सङ्करोहितः ॥ २९ ॥
(क) भिन्नरूपाभिस्तु क्रियाभिः साङ्कर्य्यमपि न दोषाय ।

भा० (ख) जो क्रिया चिकित्साका अवसर प्राप्तहोनेमें नहीं की गई । अर्थात् पीछे से कीगई ॥ (ग) जैसे दाह किसी न किसी तरह शान्त होनेमें पीछे से शीतल अनुलेपनादि क्रिया । उसी प्रकार हीन और अतिरिक्त क्रिया साध्यमें भी नहीं सिद्धहोती ॥ अतिरिक्त और हीन क्रिया को त्यागतेहुवे कहते हैं ॥ अल्प विकारमें बड़ी क्रिया और बड़े विकारमें हीन क्रिया । ये दोनोही अकुशलता हैं । और उचित कर्म्मही कुशलता है ॥ २८ ॥ क्रियाका गुण न प्राप्त होतो दूसरी क्रिया करे ॥ पहिली क्रियासे शान्त वेग होनेमें क्रिया संकर हित नहीं होती है ॥ २९ ॥ (क) भिन्न रूप क्रियासे जो सांकर्य्य हित होता है वो दोषके अर्थ नहीं है ॥ जैसे कि कहा है ।

(क) [यत आह] क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्व्वं क्रियासङ्करो हितः ॥ ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः साङ्कर्य्यन्नैव दुष्यति ॥ ३०॥ [अतएवोक्तम्] लङ्घनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ॥ अवलेहोऽञ्जनञ्चापि। प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ३१॥ [ज्वरइतिशेषः।] नचैकान्ते न निर्द्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः ॥ स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सना ॥ ३२ ॥ [यत आह] उत्पद्यते च सावस्था दोषकाल बलम्प्रति। यस्या कार्य्यमकार्य्यं स्यात् कर्म्मकार्य्यं विवर्जितम् ॥ ३३ ॥ (क) विवर्ज्जितं कर्म्म कर्त्तव्यं भवतीत्यर्थः।

भा० तुल्यरूप क्रियाओंसे जो संकर होता है वो हित नहीं है। भिन्नरूप उनसे जो संकरता होती है। वो दोष नहीं करती ॥ ३०॥ इसीवास्ते कहाहै ॥ लंघन वालूका स्वेदना स कुल्ला। तथा अवलेह और अंजन भी इनको त्रिदोषसे उत्पन्न ज्वरमें पहिले देना चाहिये ॥ ३१॥ ज्वर यह शेष एकान्त करके कहे हुवे शास्त्रपर पंडित नहीं रहते ॥ यहांपर वैद्य कोखुद भी चिकित्सना। विचारनी चाहिये ॥ ३२॥ जैसे कि कहा है ॥ दोषकालबल में वो अवस्था उत्पन्न होती है। जिसमें करने के योग्य कर्म्म अकार्य्य होताहै अर्थात् करनेके अयोग्य होता है ॥ और कार्य्य कर्म्म छोड़ा जाताहै ॥ ३३॥ (क) विवर्ज्जित कर्म्म करने के योग्य होताहै ॥

[अथ चिकित्सायां फलमाह।]

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्म्मः क्वचिद्यशः ॥ कर्म्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सानास्ति निःफलम् ॥ ३४ ॥ आयुर्व्वेदोदितां युक्तिं कुर्व्वाणा विहिताश्च ये।

पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता निरोगाश्च भवन्ति ते ॥३५॥
नैव कुर्व्वीत लोभेन चिकित्सा पुण्यविक्रियम् ॥
ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थन्तु वृत्तये ॥ ३६॥
चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्म्मतिः ॥
स यत्करोति सुकृतं सर्व्वं तद्भिषगश्नुते ॥ ३७ ॥
न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः॥ ततः
सर्व्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥ ३८ ॥

(अस्य चिकित्साया अङ्गानि।)

भा० अनन्तर चिकित्साका फल कहतेहैं ॥ कहींपर अर्थ कहीं मैत्री अर्थात् मित्रता कहीं धर्म्म और कहीं यश। तथा कहींपर कर्म्मका अभ्यास इस प्रकार चिकित्सा निष्फल नहीं होती ॥ ३४॥ जो आयुर्वेद में कही हुई विहितयुक्ति को करनेवालेहैं ॥ वे पुण्य आयुकी वृद्धि से युक्तहुवे निरोगी होतेहैं ॥ ३५॥ लोभसे चिकित्सा तथा पुण्यका विक्रिय नकरे ॥ वृत्तिके अर्थ राजा और धनाढ्योंके द्रव्यको चाहे ॥ ३६॥ चिकित्सा कियेहुवे शरीरकी जो दुर्म्मति शुद्ध नहीं करता ॥ वोजो सुकृत करताहै उसको वैद्य भक्षण करताहै ॥ ३७॥ मनुष्योंकरके हीन कोई देश नहींहै और रोगसे रहित कोई मनुष्य नहीं है ॥ तिस्से सब जगह वैद्योंकी सुसिद्धही वृत्तियांहैं ॥ ३८ ॥ अनन्तर चिकित्साके अंगोंको कहतेहैं ॥)

रोगी दूतो भिषग्दीर्घ मायुर्द्रव्यं सुसेवकः॥ सदौषधं चिकित्सायामं इत्यङ्गानि बुधाजगुः ॥ ३९ ॥
[तत्र रोगिणो लक्षणमाह।] रोगो यस्यास्ति रोगी स स चिकित्स्यस्तु यादृशः॥ यादृशश्चाचिकित्स्योऽपि वक्ष्यमाणो निशाम्यताम् ॥ ४०॥ [तत्र चिकित्स्यः।]

भा० रोगी दूत वैद्य दीर्घ आयु द्रव्य अच्छा सेवक ॥ और अच्छी दवा द्समप्रकार चिकित्साके ये अंग पंडितों ने कहेहैं ॥ ३९॥ उसमें रोगी का लक्षण कहतेहैं ॥ रोग जिसको है वो रोगी वोह जिस प्रकार चिकित्सा योग्य होताहै और चिकित्सा के अयोग्य आगे कहे हुवोंको सुनिये ॥ उसमें चिकित्सा के योग्य को कहतेहैं ॥

निजप्रकृति वर्णाभ्यां युक्तः सत्वेन चक्षुषा ॥ चिकित्स्यो भिषजां रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥४१॥

(क) सत्वं व्यसनाभ्युदय क्रियादिष्वविह्वलताकरं तेन युक्तः। चक्षुषा चक्षुरुपलक्षितेन। ततोऽन्येनापीन्द्रियेण चिकित्स्यः रोगान् मोचयितव्यः ॥ [अन्यत्र]

आयुष्मान् सत्ववान् साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि। चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ४२॥

आयुर्व्वेदोऽस्तीति मतिर्यस्य। आस्तिकः। (अथाचिकित्स्यः) चण्डः साहसिको भीरुः कृतघ्नो व्यग्र एव च।

शोकाकुलो मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः ॥ ४३॥

भा० स्वभाविक प्रकृति और वर्णसे युक्त और बलंयुक्त तथा चक्षुसे हीन न हुवा हो ॥ वैद्यका भक्त और जितेन्द्रिय इस प्रकारका रोगी वैद्योंके चिकित्सायोग्य होताहै ॥४१॥ (क) व्यसन और अभ्युदयकी क्रिया आदि में विह्वलताको न करनेवाला उसकरके युक्त। चक्षुके उपलक्षणसे उस्से अन्य इन्द्रियों करके। चिकित्सा योग्य होताहै ॥ । औरभी। आयुवाला बलवाला द्रव्यवान् और मित्रों करके युक्त ॥ तथा वैद्यके कथनानुसार चलनेवाला आस्तिक इस प्रकारका रोगी वैद्यके द्वारा चिकित्सा करनेयोग्यहै ॥ ४२॥ आयुर्वेद है इस प्रकार की बुद्धिहै जिसकी वोह आस्तिक ॥ अनन्तर चिकित्साके अयोग्य को कहतेहैं ॥ क्रोधी साहसको करनेवाला भीरु कृतघ्न और व्यग्रचित्त शोकमें पीड़ित मरने

वाला और जो सामग्रीसेहीन ॥ ४३ ॥

वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनश्च शङ्कितः ॥ भिषजा मविधेयाःस्युर्नोपक्रम्याः भिषग्विधाः ॥ ४४ ॥

एतानुपाचरन्वैद्यो बहून् दोषान वाप्नुयात ॥

(क) चण्डोऽत्यन्त क्रोधशीलः। साहसिकः अविचार्य्यकारी भीरुर्भयशीलः। कृतघ्नो वैद्यकृतोपकार लोपकः। व्यग्रोव्याकुलः। विहीनःकरणैश्च यःजितेन्द्रियशक्तिरहितः। वैरी न चिकित्स्यः कदाचिद्रोगो द्रेके अपवाद भयात्। वैद्यविदग्धो वैद्यधूर्त्तः। तथा च सुश्रुत ॥

भा० वैरीवैद्यकीबुराई करनेवाला श्रद्धाहीन तथा शंकायुक्त ॥ वैद्योंके अविधेय अर्थात् चिकित्सा करनेके अयोग्य होतेहैं औरजोवैद्यके क़िसिमसेहैं वोह भी असाध्यहै ॥ इनका उपचार करनेसे वैद्य बहुत दोषोंको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ (क) अत्यन्त क्रोधस्वभाव। विना सोचे करनेवाला। डरपोक। वैद्यके कियेहुवे उपकारको नमाननेवाला। व्याकुल। सामग्रीसे रहित जितेन्द्रिय शक्तिरहित। वैरी। चिकित्साकरने के अयोग्य। कदाचित् रोगके उद्रेक में अपवादके भयसे। वैद्यधूर्त्तः। उस प्रकार सुश्रुत ने कहाहै ॥

स न सिद्ध्यति वैद्यस्तु गृहे यस्य न पूज्यते।

(क) शङ्कितो वैद्य विश्वासरहितः। भिषजामविधेयाः वैद्य वचनाविधायिनः। भिषग्विधाः वैद्यतुल्याः एते नोपक्रम्याः॥ न चिकित्स्याः। [अथ दूतस्य लक्षणम्]

यश्चिकित्सकमानेतुं याति दूतः स कथ्यते ॥ स च यादृक् समुचितस्तादृगत्र निगद्यते ॥ ४५ ॥

भा० जिसरोगी के घरमें वैद्य इज्जत नहीं कियाजाता। वोह असाध्य होता है ॥ (क) वैद्यके विश्वास सेरहित। वैद्यके कहने को न करने वाले। वैद्यके समान। ये चिकित्सा करनेके योग्य नहींहै ॥
अनन्तर दूतका लक्षण कहतेहैं ॥ जोवैद्यको लानेके वास्ते जाताहै उसको दूतकहतेहैं। वोह जिस प्रकारका उचितहै उसकोयहाँपर कहते हैं ॥ ४५ ॥

दूताः सुजातयोः व्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः। सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्प फलैर्युताः ॥ सजातयः सुचेष्टाश्च सजीव दिशि सङ्गता ॥ भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ ४७ ॥

सजातयः रोगिसमानजातयः।

यस्यां प्राणमरुद्याति सानाड़ी जीवसंज्ञिता ॥

[अथ दूतस्य यात्रायां शकुन विचारः।]

भा० दूत अच्छी जातका व्यंग से रहित चतुर निर्म्मलवस्त्र के युक्त ॥ सुखी अश्व वृष पर आरूढ़ तथा शुभ्र पुष्प फल से युक्त ॥ ४६ ॥ अपने जातका अच्छी चेष्टावाला वह जीव दिशामें संगत समयपर वैद्य के प्राप्तहुवा रोगी के सुख हेतु होताहै ॥ ४७ ॥ रोगी के समानजातवाला ॥ जिसनाड़ीमें प्राणवायु चलताहै वोजीव संज्ञावाली नाड़ीहै।
अनन्तर दूतकी यात्रा में शकुन विचार कहतेहैं ॥

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥ न शुभं सौम्य शकुनं प्रदीप्तन्तु सुखावहम् ॥ ४८ ॥

(क) प्रदीप्तमग्निः दूतो रोगी च रिक्त हस्तो वैद्यं न पश्येत्। [अथच] रिक्तहस्तो न पश्येत्तु राजानं भिषजं गुरुमिति ॥ [अथ वैद्यस्य लक्षणम्]

भा० रोगीके अर्थ वैद्य को बुलाने के वास्ते जानेवाले दूत के सौम्य शकुन शुभनहीं होता और प्रदीप्त शकुन सुखावह होता है ॥ ४८ ॥
(क) दीप्त अग्नि दूत रिक्त हस्त रोगी वैद्य को न देखे ॥ और खाली हाथ राजा को वैद्य को और गुरू को भी खाली हाथ न देखे ॥

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते ॥ स च यादृक् समीचीन स्तादृशोऽपि निगद्यते ॥४९॥
तत्वाधिगत शास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयङ्कृती ॥ लघु हस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्कर भेषजः ॥ ५० ॥
प्रत्युत्पन्न मतिर्धीमान् व्यवसायी प्रियम्वदः ॥ सत्यधर्म्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥ ५१ ॥

भा० जो चिकित्सा को करताहै उसको वैद्य कहते हैं ॥ वह जिस प्रकार अच्छा होता है उस प्रकारके वैद्यको कहते हैं ॥ ४९ ॥ अच्छी प्रकार पढ़ा हुवाहै शास्त्रका अर्थ जिसने कामोंको देखा हुवा आपही किया हुवा। हलके हाथ वाला पवित्र शूर अच्छे औषध और शस्त्रादि करके युक्त ॥ ५० ॥ तर्क बुद्धिवाला बुद्धिवान व्यवसायवाला प्रियबोलनेवाला ॥ सत्य धर्म्म में तत्पर इस प्रकारका जो वैद्य है वह प्रशस्त है ॥ ५१ ॥

(क) दृष्टकर्म्मा दृष्टा परेण कृता चिकित्सा येन सः स्वयङ्कृती स्वयं चिकित्साकुशलः। लघुहस्तः सिद्धि मद्धस्तः।
[अथ निषिद्धो वैद्यः।] कुचैलः कर्कशस्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः ॥ पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरि समा यदि ॥ ५२ ॥ कर्कशः अप्रियवादी स्तब्धः साभिमानः। ग्रामीणः व्यवहार चतुरः।

भा० (क) देखीहै दूसरे की कीहुई चिकित्सा जिसने। आप चिकित्सामें

कुशल हाथकी सिद्धिवाला ॥ अनन्तर निषिद्ध वैद्य को कहते हैं ॥
मैले कपड़े पहननेवाला । अप्रिय भाषण करनेवाला । मूर्ख गंवार और बिन बुलाये आनेवाला । ये पांच प्रकारके वैद्य धन्वन्तरि के समान हुये भी नहीं पूजन किये जाते हैं ॥ ५२॥ (क) अप्रियवादी । अभिमानी । व्यवहार में मूढ़ ॥

[अथ वैद्यस्य कर्म्माह ।]

व्याधेस्तत्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५३॥

[अस्यायमर्थः] (क) व्याधेः सम्यक् परिचयो व्यथा शांतिकरणं वैद्यस्य कर्म्म न तु वैद्य आयुषः प्रभुरित्यर्थः । अपरे त्वेवं व्याचक्षते । व्याधेस्तत्त्वतः परिचयो वेदनायाः शान्तिकरणञ्च । एतदेव वैद्यस्य वैद्यत्वं किन्तु वैद्य आयुषः प्रभुः आगन्तु मृत्युशान्तहरणात् ।

तथा च सुश्रुते धन्वन्तरिः ॥

भा॰ अनन्तर वैद्यके कर्म्म कहते हैं । रोगके तत्वका ज्ञान । और वेदनाका अवरोध । ये वैद्य का वैद्यपना है वैद्य आयुका स्वामी नहीं है ॥ ५३॥ (क) इसका यह अर्थ है । रोगका जानना । पीड़ाकी शान्ति । ये वैद्यका कर्म है न कि वैद्य आयुका प्रभु है ॥ दूसरे इस प्रकार व्याख्या करते हैं ॥ व्याधिका तत्वसे परिचय और वेदना की शान्ति करनी भी । येही वैद्यका वैद्यत्व नहीं है किन्तु वैद्य आयुका स्वामी है । क्यों कि आगन्तुक शान्त मृत्यु के हरण करने से । इस प्रकार सुश्रुत में धन्वन्तरि ने कहा है ॥

एकोत्तरं मृत्युशत मथर्वाणः प्रचक्षते । तत्रैकः कालसंज्ञः स्यात् शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥ ५५॥

[अयमर्थः] अथर्वाणः अथर्व तत्त्वज्ञत्वेनाथर्वतुल्याः

मृत्युमेकोत्तरं शतंप्रचक्षते । तत्रैको मृत्युः कालसंयुक्तः । काल आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यं संहर्त्ता । सर्वैरुपायैर्निवारयितु मशक्यः । स ब्रह्मादीनामायुषोऽन्ते संहरति । यत आह लिङ्गपुराणे । कार्त्तिकेयं प्रति महादेवः । (ख) ममायुर्ग्रसते कालः कुतः पुत्र । रसायनमिति । तेन कालेन संयुक्ता । संहाराय नियुक्तः सोऽवश्यं भावी । शेषाः शतं मृत्यवः आगन्तवः । आगन्तुरूपहेतु जन्मा नः कार्य्यकारणयो रभेदोपचारात् । आगन्तवो हेतवोयथा ॥

भा० एकसे एक (१०१) मृत्यु अथर्वण वेदके जाननेवालोंने कहेहैं । उसमें एक की काल संज्ञाहै बाकी आगन्तुक कहेगये हैं ॥ ५७॥ (क) इसका यह अर्थहै । अथर्ववेदके जानने से अथर्व के समान । मृत्यु एकसे एक कहेहैं । उसमें एक मृत्यु कालकरके युक्त है । काल आयुके अन्तमें मनुष्यों का अवश्य संहार करताहै । अर्थात् सब उपायोंसे दूर करनेको । अशक्य । वह ब्रह्मादिकोंकी आयुके अन्तमें संहार करता है । जैसे कि लिंगपुराण में कार्तिक स्वामी से महादेव ने कहाहै ॥ (ख) हेपुत्र मेरी आयुको काल ग्रसता है। तब रसायन कहां ॥ उसकालसे संयुक्त । संहारके अर्थ नियुक्त वह अवश्य होनेवाला है । बाकी १०० मृत्यु आगन्तुक हैं । आगन्तुरूपकारण जन्मवाले । कार्य्य और कारण के अभेदोपचार से । आगन्तुक हेतु जैसे ॥

विषभक्षणमजीर्णोऽत्यन्त भोजनञ्च दुर्देशजलपानम् । तथाऽनिबलवैरि व्याघ्र वनमहिषमत्तमातंगा

दि भियुद्धम् ॥ दन्तिशृङ्केन क्रीडनमत्युच्चवृक्षाग्रारोहणम् बाहुभ्याम् । महातरङ्गिणीतरणमेकाकिनो रात्रौ दुर्गमार्गे गमनम् ॥ ५६ ॥ इत्यादि । आगन्तुहेतुजा मृत्यवो दुर्निमित्ता भाविभावनाबलवत्त्वादायुषि सत्यपि मारयन्ति । यथा मक्षिका तैलवर्त्तिवह्निषु विद्यमानेषु वायुना दीपं नाशयन्ति ।   तथा च ।

तथा सत्यपि तैलादौ दीपं निर्वापयेन्मरुत् ॥ एव
मायुष्यहीनेऽपि हिंसन्त्यागन्तुमृत्यवः ॥ ५७ ॥

भा० विभक्षण अजीर्ण बहुतभोजन दुष्टदेशका जलपान । उसीप्रकार बहुत बलवाले वैरी व्याघ्र जंगली भैंसा और मल्लहाथी इनके साथ युद्ध ॥ ५५ ॥ दो नोकदार पदार्थों करके खेलना और बहुत ऊंचे वृक्षकी चोटी पर चढ़ना और हाथोंसे । बड़ी तरंगवाली नदीमें तैरना । अकेला रातमें अथवा किले में और मार्गमें जाना ॥ ५६ ॥ इत्यादि । आगन्तु हेतुसे उत्पन्नहुए दुर्निमित्त भावी भावनाके बलसे आयुके रहने पर भी मारडालते हैं ॥ जैसे दीवेमें तेलबत्ती और आग रहनेपरभी वायुसे दीप नाशहोता है । उस प्रकार कहा है । उसप्रकार होनेपर भी तेल लेकर आदिमें दीवेको वायु बुझावता है । इसी प्रकार आयुके हीन नहोने परभी आगन्तुक मृत्यु नाश करते हैं ॥ ५७ ॥

(क) किन्तु आगन्तुनिमित्तानि निवारयितुञ्च शक्यन्ते ।

यत आह सुश्रुते धन्वन्तरिः ।

दोषागन्तुनिमित्तेभ्यो रसमन्त्रविशारदौ ॥ रक्षेतां
नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ॥ ५८ ॥

(ख) वैद्यमन्त्रिणौ नृपतिं नित्यं यत्नाद्रक्षेताम् । कुतः दोषागन्तुनिमित्तेभ्यः दोषा निषिद्धाहारविहारभूषिता

वातपित्त कफ रोगोत्पादकाः। आगन्तव- निषिद्धा विहा रा अति बलवैरि विग्रहादयः। ते निमित्तानि येषान्तेभ्यः शतमृत्युभ्यः। ननु वैद्य पुरोहितौ कथं शतं मृत्युं निवारयि तुं शक्तौ तत्राह। (ख) यतस्तौ रसमन्त्र विशारदौ प्रथ मं वैद्य दिनचर्य्या रात्रि चर्य्यर्तु चर्य्योक्ताहार विहाराभ्यां वात पित्त कफ धातुमलान् समानेव रक्षति ॥

भा० (क) किन्तु आगन्तु निमित्त रोगों को दूर कर सके हैं। जैसा सुश्रुत में धन्वन्तर ने कहा है। रस और मंत्र में निपुण ऐसे वैद्य और पुरोहित दोष और आगन्तु निमित्तों से सदा राजा की रक्षा करें ॥ ५८॥ (ख) वैद्य और मंत्र शास्त्री राजा को नित्य यत्न से बचावें। कैसे। दोष अर्थात् निषिद्ध आहार विहार से दूषित वात पित्त कफ इन रोगों का उत्पन्न करनेवाला। आगन्तुक अर्थात् निषिद्ध विहार अति बलवाले शत्रु के साथ लड़ाई। वे हैं निमित्त जिनके उन शत मृत्यु आदियों से। (ननु) शंका। वैद्य पुरोहित क्योंकर शत मृत्यु को निवारण कर सके हैं। उसको कहते हैं। (ख) क्योंकि वे दोनों रसमंत्र में चतुर होते हैं। प्रथम वैद्य दिनचर्य्या रात्रिचर्य्या और ऋतुचर्य्या इनमें कहे हुये आहार विहारों से समान वात पित्त कफ और धातु मल इनकी ही रक्षा करता है ॥

ततो रक्षत्वाद्रसै मृत्युं जयादिभि र्निषिद्धाहार विहार दूषित दोषज नितान् विकारान् मृत्यु हेतून् प्रहरति। मंत्रीच सद् बुद्धि दानेन मृत्युहेतुभ्यो निषिद्ध विहारेभ्यो नृपतिं निवारयति। तत आगन्तु मृत्यवो निवारयितुं शक्या नत्ववश्यम्भा विनः। [अथायुर्विचारः।]

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ॥ तत आयुषि वीक्षिते चिकित्सा सफला भवेत् ॥ ५९ ॥

भा० और रसके जाननेके कारण मृत्युको जय करनेवाले रसोंसे निषिद्ध आहार विहारोंसे दूषित दोषों से उत्पन्नहुवे मृत्युके कारण विकारोंको दूर करतेहैं। तथा मंत्री भी अच्छी बुद्धि देनेके द्वारा। मृत्युके हेतु निषिद्ध विहारोंसे राजाको हटातेहैं। उसकारण आगन्तु मृत्युवोंको दूरकरनेको समर्थहैं। और न कि अवश्य होनेवालोंको ॥ अनन्तर आयुका विचार कहतेहैं ॥ वैद्य पहले यत्नके साथ रोगीकी आयुपरीक्षा करे ॥ क्यों कि आयु बहुत होनेमें चिकित्सा सफलहोतीहै ॥ ५९ ॥

[तत्र दीर्घायुषो लक्षणानि।]

सौम्या दृष्टि र्भवेद् यस्य श्रोत्रं वक्त्रन्तथैवच ॥ स्वादुगन्धं विजानाति स साध्यो नात्र संशयः॥ ६०॥
पाणिपादौ च यस्योष्णौ दाहः स्वल्पतरो भवेत् ॥ जिह्वा तु कोमला यस्य स रोगी न विपद्यते ॥ ६१ ॥
स्वेद हीनो ज्वरो यस्य श्वासो नासिकया चरेत ॥ कण्ठश्च कफहीनः स्यात् स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ ६२॥
यस्य निद्रा सुखेन स्यात्त शरीरं द्युतिमद्भवेत् ॥ इन्द्रियाणि प्रसन्नानि स रोगी नैव नश्यति ॥ ६३॥

भा० उसमें दीर्घायुका लक्षण कहतेहैं ॥ जिसकी दृष्टि और कर्ण तथा मुख सौम्य होतेहैं ॥ और मधुर तथा गन्ध को जो जानताहै वो रोगी साध्यहै इसमें कुछसंशयनहींहै ॥ ६०॥ जिसके हाथ पैर गरम और दाह थोड़ा होताहै। और जिसकी जिह्वा कोमल होती है वह रोगी नहीं मरता ॥ ६१ ॥ जिसको विना पसीने ज्वर होताहै। और नाकसे सांस चलता है। तथा कंठ कफसे हीन हो वह रोगी अवश्यही जीता है ॥ ६२॥ जिसको नींद सुखसे आतीहै और शरीर कान्तिवाला है। और जिसकी इन्द्रियें प्रसन्न हैं वह रोगी मरता ही नहीं ॥ ६३॥

[अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि ।]

शरीर शीलयो र्यस्य प्रकृते र्विकृति र्भवेत् ॥ तद रिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध मे ॥ ६४ ॥ शृणो ति विविधान् शब्दान् विपरीतान् शृणोति च । यो न शृणोति चाकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ६५ ॥ यस्तूष्ण मिव गृह्णाति शीतमुष्णञ्च शीतवत् ॥ उष्णगात्रोऽति मात्रं यो भृशं शीतेन कम्पते ॥ ६६ ॥ (तमपि गतायुषं वदन्तीत्यन्वयः)

भा० अनन्तर अल्पायुका लक्षण कहतेहैं ॥ जिसका शरीर और स्वभाव बदल जाताहै संक्षेपसे वही अरिष्ट है विस्तार पूर्वक कहता हूं ॥ ६४ ॥ जो नानाप्रकार के शब्दोंको सुनताहै और जो विपरीत सुनताहै तथा जो अकस्मात नहीं सुनता उसको गतायु कहतेहैं ॥ ६५ ॥ जो शीतको गरम के सदृश ग्रहण करताहै औरजो उष्णको शीतके सदृश ग्रहण करताहै। और जिसका शरीर बहुत गरमहै, अथवा बहुत शीतसे कांपताहै उसको भी गतायु कहतेहैं ॥ ६६ ॥

प्रहारं नैव जानाति यो गच्छेदन्यथापि वा ॥ पांशुने वाव कीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते ॥ ६७ ॥ वर्णा न् यथा वा राज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि ॥ स्नाता नुलिप्तं यञ्चापि भजन्ते नीलमक्षिकाः ॥ ६८ ॥ वि परीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोप योजितान् ॥ यो वा रसान्न सेवेत तं गतासुम्प्रचक्षते ॥ ६९ ॥ सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धन्दुर्गन्धञ्च सुगन्धवत् ॥ गृह्णाति यो ऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे निरामयः ॥ ७० ॥

भा॰ जिसको चोट नहीं मालूम होती या उलटी चलता है । और जिसका शरीर धूल लगी हुवासा है उसको गतायु कहते हैं ॥ ६७ ॥ जिसके शरीर में वर्ण और का और होजाता है । अथवा लकीरें पड़जाती हैं ॥ और जिस स्नान करके लेप किये हुयेपर नीले भ्रमर बैठते हैं ॥ ६८ ॥ और जोउपयोग किये हुवे रसों को विपरीत अथवा जो रसों को न सेवनकरे उसको गतायु कहते हैं ॥ ६९ ॥ जो निरोगी सुगंधको दुर्गंधजाने और दुर्गंधको सुगंध ॥ इस प्रकार जो अन्यथा गन्धको ग्रहण करता है और दीवेके शान्त होने में देखता है ॥ ७० ॥

रात्रौ सूर्य्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ॥ क्षिप्तां ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ ७१ ॥

(क) दिवा वा चन्द्रवर्चसम् । सूर्य्यमित्यन्वयः । ज्योतींषि नक्षत्राणि । विद्युत्वतोऽसितान्मेघान् गगने निर्घने घनान् ॥ विमानयानप्रासादैर्यश्च सङ्कुलमम्बरम् ॥ ७२ ॥ यश्चानिलं मूर्त्तिमन्तमन्तरीक्षे च लोकते ॥ धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदनीम् ॥ ७३ ॥ प्रदीप्तमिव यो लोकं यो वाप्लुतमिवाम्भसा ॥ भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ ७४ ॥ यो न पश्यति अरुन्धतीं यश्च देवीमरुन्धतीम् ॥ ध्रुवमाकाशगङ्गाञ्च तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ७५ ॥

भा॰ या रातमें प्रकाशमान सूर्य्य अथवा दिनमें प्रकाशित चन्द्रको और दिनमें आग लगनेके समान नक्षत्रों को देखता है उसको गतायु कहते हैं ॥ ७१ ॥ (क) दिनमें चन्द्रमा प्रकाश । रात्रमें सूर्य्य इस प्रकार अन्वय है । (ज्योतींषि) अर्थात् नक्षत्र । साफ आस्मान में बिजलीवाले काले मेघों को । और विमान असवारी इनसे घिरे हुवे आकाश को जो

देखता है ॥७२॥ और जो आकाशमें मूर्तिवाले वायुको देखता है। तथा धूम और कुहेरा इन करके वस्त्रसे वेष्टित हुई के मानिंद देखता है उसको गतायु कहते हैं ॥७३॥ जो लोकको जलमें डूबेके समान देखता है। अथवा पानीसे डूबनेके समान देखता है। या लकारोंसे अष्टकोण हुई के मानिन्द देखता है उसको गतायु कहते हैं ॥७४॥ जो नक्षत्रोंको नहीं देखता और अरुन्धती देवीको भी नहीं देखता। तथा ध्रुव और आकाश गङ्गाको भी नहीं देखता उसको गतायु कहते हैं ॥७५॥

आदर्शेऽम्बुनि घर्मे वा छायां यश्च न पश्यति ॥प
श्यत्येकाङ्गहीनां वा विकृतां वान्यसत्त्वजाम् ॥७६॥
श्वकाक कङ्कगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् ॥ आतु
रो लभते मृत्युं स्वस्थो व्याधि मवाप्नुयात् ॥७७॥
ह्रीश्रियो नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृति प्रभा (प्रतिभा)
। अकस्माच्च भजन्ते यं स गतासु रसंशयम् ॥७८॥
यस्याधरोष्ठौ पतितौ क्षिप्तश्चोर्द्ध तथोत्तरः ॥उभौ
वाजाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥७९॥
आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति वा । ख
ञ्जन प्रतिमा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥८०॥

भा० जो शीशेमें जलमें धूपमें छायाको नहीं देखता ॥ और जो देखता है तो एक अंगसे हीन विकृत और जीवोंकी सी ॥७६॥ कुत्ता कौवा गिद्ध और प्रेतोंकी तथा यक्षराक्षस। इनकी छाया जो देखता है वो रोगी मृत्युको प्राप्त होता है और स्वस्थ रोगी होजाता है ॥७७॥ अकस्मात् जिसकी लज्जा और कान्ति नष्ट होजाती है। तथा तेज ओज स्मृति प्रभा ये जिसके अकस्मात् हो आते हैं। उसको अवश्य गतायु कहना चाहिये ॥७८॥ जिसके नीचे ऊपरके होठ लटक पड़ते हैं तथा उत्तंडालनेसे

ऊपर होजाताहै ॥ और दोनों जामन के समान काले पड़जानेहैं उसका जीवना दुर्लभ है ॥ ७९ ॥ जिसके दांत आसपास लाल हों अथवा काले हों या गिरपड़ें अथवा खंजन के समान कान्ति हो। उसको गतायु कहने हैं ॥ ८० ॥

कृष्णा तथावुलिप्ता च जिह्वा शूना च यस्य वै ॥ कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥ ८१ ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ॥ अवस्फूर्ज्जति भग्ना वा स न जीवति मानवः ॥ ८२ ॥ (स्फूर्ज्जति श्वासवेगेनोच्चैः शब्दं करोतीत्यर्थः।) सङ्क्षिप्ते विषमे स्तब्धे रूक्षे सास्रे च लोचने ॥ स्यातां परिस्रुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

भा० काली तथा लिपीहुई या कांटे से युक्त जिसकी जीभ होतीहै ॥ अथवा कर्कश होतीहै वोह शीघ्र प्राणों को त्याग करताहै ॥ ८१ ॥ टेढ़ी फटी सी या शुष्क या भग्नहुई जिसकी नाक धोंकनी के मानिन्द धोंकतीहै। वो मनुष्य नहीं जीता ॥ ८२ ॥ (श्वास के वेग से उच्च शब्द करती है।) भीतर को धसीहुई या छोटीवड़ी अथवा पथराई हुई रूखी रक्त के सहित बहतीहुई इस प्रकार की जिसकी आंखें होती हैं वो मनुष्य निश्चय गतायु है ॥ ८३ ॥

केशाः सीमन्तिनो यस्य सङ्क्षिप्ते विनते भ्रुवौ ॥ लुठन्ति चाक्षिपक्ष्माणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥ ८४ ॥ (लुठन्ति पतन्ति।) नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ॥ एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् विमुञ्चति ॥ ८५ ॥ उत्थाप्यमानो बहुशः संमोहं योऽधिगच्छति ॥ बलवान् दुर्बलो वापि न —

भिषगा दिशेत् ॥ ८६ ॥ निद्रा निरन्तरं यस्य यो जाग र्त्ति च सर्व्वदा ॥ मुह्येद्वा वक्तु कामश्च प्रत्याख्येयः स जानता ॥ ८७ ॥ उत्तरौष्ठञ्च यो लिह्यादुत्करांश्च करोति यः ॥ प्रेतैर्वा भाषते सायं प्रेतरूपं तमादिशे त् ॥ ८८ ॥ (उत्करान् हस्त पादादि विक्षेपान् ।) खेभ्यश्च रोम कूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्त्तते ॥ पुरुष स्या विषार्त्तस्य स सद्यो जीवितं त्यजेत् ॥ ८९ ॥ स म्यक् चिकित्स्यमानस्य विकारो योऽभिवर्द्धते ॥ प्र क्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद् गतायुषः ॥ ९० ॥

भा० जिसके सिरके वाल उ डगये हों या छोटी झुकी भवें जिसकी हो जावें ॥ और आंख की पलकें गिरपड़ें वोह थोड़े ही काल में मरजाता है ॥ ८४ ॥ जिसके मुखमें का अन्न नीचे नहीं उतरता और जिसका सिरनीचे गिरा पड़ता है ॥ एकाग्र दृष्टि कियाहुवा स्तब्ध इस प्रकारका रोगी तत्का लप्राणोंको त्याग करता है ॥ ८५ ॥ उठने से जो वहुत से मोहको प्राप्तहो ताहै ॥ बलवान हो दुर्वल हो उसको वैद्य असाध्य कैंह देवे ॥ ८६ ॥ जो निरन्तर सोता है अथवा सर्वदा जागता है ॥ तथा बोलने की इच्छाकर ताहुवा मोहको प्राप्त होताहै ॥ वो बुद्धिवान् वैद्यके द्वारा जवाव देने योग्य है ॥ ८७ ॥ जो रोगी नीचे ऊपरके होठों को चाटे तथा जो हाथ पैरोंको पीटता है ॥ अथवा सायंकालमें प्रेतोंके साथ भाषण करता है उसको प्रेतरूप कह तेहैं ॥ ८८ ॥ विषसे पीड़ित न हो ऐसे जिसपुरुषके मूं आंख कान इत्यादि छिद्रोंमेंसे अथवा रोमकूप से रक्त निकलता है ॥ वोह तत्काल मरता है ॥ ८९ ॥ अच्छी तरह इलाज कियेकाभी जो रोग बढ़ताहै । और कमज़ोर त था दुवले का जो रोग बढ़ताहै वोह गतायुका लक्षण है ॥ ९० ॥

भूता प्रेताः पिशाचा श्च रक्षांसि विविधानि च ॥

मरणाभिमुखं जन्तु मुपसृत्य च नित्यशः ॥ तानि थे
षजवीर्य्याणि प्रतीच्छन्ति जिघांसया ॥ ६१ ॥ तस्मा
त्मोघाः क्रिया: सर्वा भवन्त्येव गतायुष ॥ ॥

(क) नन्वायुषि सति चिकित्सायाः साफल्यमुक्तम् । आ
युश्चेदस्ति तदा तदेव जीवन हेतुः ॥ किं चिकित्साविधानं
तत्रोच्यते ॥ (ख). आयुषि सति चिकित्सायाः फलं वेदनानिग्रहः । (उक्तञ्च)

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत् सव्यथा भेषजं विना ॥
भेषजेन पुनर्ज्जीवन् स एवहि निरामयः ॥ ६२ ॥

भा० भूत प्रेत पिशाच और नाना प्रकारके राक्षस । प्रतिदिन मरण के सन्मुख हुवे रोगीके पास जाकर उन औषधियों के वीर्य्यों को नष्ट करते हैं ॥ ६१ उस कारण गतायु की सब क्रिया निष्फल होती हैं ॥ (क) (ननु शंका) आयुके रहनेपर चिकित्सा की सफलता कही । आयु होतो होती है तब वोही जीवनका हेतु है । क्या चिकित्सा का विधान उसमें कहा है ॥ (ख) आयुके होनेपर चिकित्साका फल वेदनाका निग्रह है । कहा है । बिना औषध के आयुवाला पुरुष व्यथाके सहित जीता है ॥ औरजो औषध करके फिरसे जीवे वोही निरोगी है ॥ ६२ ॥

(क) किञ्च । आयुषि सत्यपि रोगी चिकित्सां विना उत्थातुं न शक्नोति । यत आह चरकः ।

सति चायुषि नोपायं विनोत्थातुं त्वयो रुजो ॥ दर्शित श्चात्र दृष्टान्तः पङ्क लग्नो यथा गजः ॥ ६३ ॥

किञ्च । चिकित्सां विनायुष्मानप्यवसीदति ।

भा० (क) आयु के होनेपर भी रोगी चिकित्सा के बिना अच्छा नहीं हो सक्ता। जैसे कि कहाहै चरक ने। रोगी आयु होनेपर भी चिकित्सा के बिना उठ नहीं सक्ता॥ इसमें दृष्टान्त दिखायाहै। कि जैसे दल २ में फसा गज॥६३॥ चिकित्सा के बिना आयुवाला भी पीड़ित होताहै॥

यत आह सएव।

संति चायुषि नष्टःस्या दामयेष्वा चिकित्सितः॥

यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्व्वाति वात्यया॥६४॥

अत एवोक्तम्। साध्या याप्यत्व मायान्ति याप्या गच्छन्त्य साध्यताम्॥ घ्नन्ति प्राणान साध्यास्तु नराणाम क्रियावता मिति॥ ६५॥ चिकित्सा तु अनिश्चितायुषोऽपि कर्त्तव्या। यत आह।

भा० जैसे कि कहाहै वोही। आयुके रहनेपर भी चिकित्सा न किया हुवा पुरुष रोगोंसे मरजाताहै॥ जैसे तैलके रहनेपरभी आँधीसे दीवा गुल होजाताहै॥६४॥ इसीवास्ते कहा है॥ साध्यरोग याप्य होते हैं। और याप्य असाध्य होजाते हैं॥ वे इलाजवाले मनुष्योंको असाध्य रोग नाश करते हैं॥ ६५॥ इलाज तो अनिश्चित आयु वालेकी भी करनी चाहिये। जैसे कि कहाहै।

तावत्प्रतिक्रिया कार्य्या यावच्छ्वसिति मानवः॥

कदाचित् दैवयोगेन दृष्टाऽरिष्टोऽपि जीवति॥६६॥

१ (क) इति तु यस्या साध्यत्वं सन्दिग्धं तं प्रत्युक्तम्॥

येषु त्वसाध्यता शास्त्रेणानुभवेन विनिश्चिताः ते पुनर्न्न चिकित्स्या। यत उक्तम्।

सद्वैद्या स्तेन ये साध्या नारभन्ते चिकित्सितु मिति।

अथ द्रव्यम्। सर्वं द्रव्य मपेक्षन्ते रोगिप्रभृतयो यतः॥

विना वित्तं न भैषज्यं चिकित्साङ्गं ततो धनम् ॥९७॥

अथ परिचारकस्य लक्षणम्।

स्निग्धोऽजुगुप्सु बलवान् युक्तोव्याधितरक्षणे ॥ वैद्य वाक्य कृदश्रान्तो युज्यते परिचारकः ॥९८॥

भा॰ तब तक चिकित्सा करनी चाहिये जब तक मनुष्य श्वास लेता है। क्यों कि कदाचित् दैवयोग से मरण चिन्ह वालाभी रोगीजीवता है ॥९६॥ (क) येह तो जिसकी असध्यता सन्देह युक्त है उसके प्रति कहाहै ॥ जिनमें असाध्यता शास्त्र सेवा अनुभव से निश्चय की गई वे फिरसे चिकित्सा करने के योग्य नहीं है। जैसे कि कहाहै ॥ वे संदेह्य नहीं है जो साध्यकी चिकित्सा शुरू नहीं करते ॥ अनन्तर द्रव्य कहतेहैं ॥ रोगि आदि सब द्रव्य चाहते हैं। क्यों कि बिना द्रव्य चिकित्साका अंग औषध नहीं होता इसवास्ते धन चाहिये ॥९७॥ अनन्तर सेवक का लक्षण कहतेहैं ॥ प्रीतिवाला अनिन्दक बलवान रोगी की रक्षा करने में युक्त। वैद्यके कहने के अनुसार चलनेवाला। मेहनती इस प्रकार का परिचारक होना चाहिये ॥९८॥

(क) स्निग्धः प्रीतः अजुगुप्सुः अनिन्दकः। अथ भेषजस्य लक्षणम् ॥ वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्द्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ॥

तद्यादृशमवश्यंस्याद्रोगघ्नंतादृशं ब्रुवे ॥९९॥

[तत्रौषध ग्रहण परिभाषा।]

प्रशस्त देशे सञ्जातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ॥ अल्प मात्रं बहुगुणं गन्धवर्ण रसान्वितम् ॥१००॥

भा॰ अनन्तर औषधका लक्षण कहतेहैं। वैद्य जिसके द्वारा व्याधिको दूरकरताहै उसवस्तुको औषध कहतेहैं। वोह जिस प्रकारकी रोग नाशक अवश्य होनी चाहिये वैसे को कहतेहैं ॥९९॥ उसमें औषधलेने के नियम को कहतेहैं। अच्छे देशमें उत्पन्न हुई अच्छे दिन उखेड़ी। थोड़ी मा

ना करके युक्त बहुत गुण वाली गन्ध वर्ण रसकरके युक्त ॥ १०० ॥

दोषघ्नमग्लानिकरमधिकं न विकारि यत् ॥ समी

क्ष्य काले दत्तञ्च भेषजं स्याद्गुणावहम् ॥ १०१ ॥

आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिः स्मृतः ॥

अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥ १०२ ॥

(क) आग्नेयाः अधिकाग्न्यंशाः सौम्यः अधिकसोमां

शः ॥ औषधयोः एवौषधानि । अत्र स्वार्थे अण् ।

भा० दोषनाशक ग्लानि न करनेवाली न बहुत विकार को करने वाली। देखकर समय पर दी हुई इस प्रकारकी औषधी गुण वह है ॥ १०१ ॥ विन्ध्याचलादिक पर्वत आग्नेय अर्थात् अधिक उष्णगुणहैं ॥ और हिमालय पर्वत सौम्य अर्थात् अधिक शीतगुण कहा गया है ॥ इसवास्ते उनमें के औषध कारण के सदृश होते हैं ॥ १०२ ॥

(अनुरूपाणि सदृशानि ।)

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च ॥ गृह्णीया

त्तानि सुमना शुचिः प्रातः सुवासरे ॥ १०३ ॥ आदि

त्यसम्मुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥ साधारण

धराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥ १०४ ॥

(क) साधारण धराद्रव्यं । सर्वभूमि भवन्द्रव्यम् । उत्तरा

श्रितं स्वस्मात् उत्तरदिग्भवम् ॥

वल्मीक कुत्सितानूप श्मशानोषरमार्गजाः ॥

जन्तुवन्हि हिमव्याप्ता नौषध्यः कार्य्यसाधिकाः ॥ १०५ ॥

भा० औरभी बाग जंगलोंमें उत्पन्न होती हैं। पवित्र और स्वस्थ चित्त होकर अच्छे दिन प्रातःकालमें उनको ग्रहण करे ॥ २०३ ॥ सूर्य्यके सन्मुख मौन धारणकरके हृदयमें शिवका ध्यानकर औरनमस्कार करके उत्तर दिशाकी साधारण भूमिसे औषधका ग्रहण करे ॥ २०४ ॥

(क) सब भूमिमें उत्पन्न हुये द्रव्योंको। अपने से उत्तर की तरफ हुवे बिंबोट। कुत्सित व बहुत पानीकी जगह श्मशान ऊसर औररस्तेमें होनेवाली। तथा जीव जन्तु आग पाला इनसे व्याप्त औषधि कार्य्य साधक नहीं होती ॥ २०५ ॥

शरद्यखिल कार्य्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥ विरेक वमनार्थन्तु वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ २०६ ॥

(क) वसन्तान्ते वसन्त मध्ये समाहरेत् संगृह्णीयात्।

अतिस्थूल जटा यास्युः स्तासां ग्राह्या स्त्वचो ध्रुवम्।
गृह्णीयात् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् २०७

अन्यच्च। महान्ति येषां मूलानि काष्ठगर्भाणि सर्व्वतः ॥
तेषान्तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्व मूलानि सर्व्वशः ॥ २०८ ॥
न्यग्रोधादे स्त्वचो ग्राह्या सारःस्याद्बीजकादितः ॥
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ॥ २०९

भा० शरदकालमें संपूर्ण कार्य्यों के अर्थ रस करके युक्त औषध लेनी चाहिये। वसन्त में वमन और विरेचन के अर्थ लावे ॥ २०६ ॥ जो बहुत मोटी जटावाली औषधी हैं उनकी छाल लेनी चाहिये ॥ औरछोटे मूलवाली सबकी जड़ बुद्धिवान् लेवे ॥ २०७ ॥ औरभी। जिनकी बड़ी जड़ चारों तरफ काष्ठ से भरी हैं ॥ उनकी छाल और छोटी जड़वालोंकी जड़ लेनी चाहिये ॥ २०८ ॥ बड़ादि वृक्षोंकी त्वचा लेनी चाहिये और विजयसारा दिकोंका सार लेना चाहिये। तालीसादिकोंके पत्र और त्रिफलादिकोंके फल लेने चाहियें ॥ २०९ ॥

क्वचिन्मूलं क्वचित् कन्दः क्वचित् पत्रं क्वचित् फलम् ॥
क्वचित् पुष्पं क्वचित् सर्व्वं क्वचित् सारः क्वचित् त्वचः ॥
॥२२०॥ चित्रकं सूरणं निम्बो वासाच त्रिफला क्रमात् ॥
धातकी कण्टकारी च खदिरः क्षीरपादपः ॥२२१॥
क्वचिन्निम्बस्य गृह्णीयात् पत्राभावे त्वचामपि ॥
बालंफलन्तु बिल्वस्य पक्वमारग्वधस्य च ॥२२२॥

भा० कहींपर जड़ कहीं कन्द कहीं पत्ते कहीं फल ॥ कहीं पुष्प कहीं सब कहीं सार और कहीं छाल कही है ॥ २२० ॥ क्रमसे चित्रका मूल सूरण का कन्द निंबके पत्ते और वांसेके भी पत्ते त्रिफला के फल धायका फूल कटेली का सब अंग खदिर का सार और वटादिकों की छाल लेनी चाहिये ॥ २२१ ॥ कहींपर नीम के पत्तोंकी जगह छालभी लेवे ॥ बेलका कच्चा फल और अमलतास का पक्का फल लेवे ॥ २२२ ॥

अङ्गेऽनुक्ते जटा ग्राह्या भागेऽनुक्तेऽखिलं समम् ॥ पात्रेऽनुक्ते मृदः पात्रं कालेऽनुक्तेत्वहर्मुखम् ॥ २२३॥
नवान्येवहि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥ विना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुड़धान्याज्यमाक्षिकैः ॥२४॥
(धान्यमन्न) पुराणन्तु प्रशस्तं स्यात्ताम्बूलकाञ्जिकन्तथा ॥ शुष्कंनवीनद्रव्यन्तु योज्यं सकलकर्म्मसु ॥२५॥

भा० जहांपर औषधिका अंग न कहा हो तो वहां जड़ लेनी चाहिये और भाग न कहा हो तो सब समभाग लेवे ॥ पात्र न कहा हो तो मट्टीका पात्र लेवे और समय न कहा होतो प्रातःकाल लेना चाहिये ॥ २२३॥ सब कामों में नवीनही द्रव्य योजना करना चाहिये ॥ वाय विडंग पीपल गुड़ धानघृत शहद इनको छोड़के बाकी सब नवीन होनी चाहियें ॥ २४ ॥ (धान्य अर्थात् अन्न) पुराने पान और कांजी अच्छी होनीहै ॥ सबकामोंमें सूकी और

नवीन औषध योजना करनी चाहिये ॥२२५॥

आर्द्रन्तु द्विगुणं युञ्ज्या देष सर्व्वत्र निश्चयः॥ गुडू
ची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी ॥ २२६॥
अश्वगन्धा सहचरी शत पुष्पा प्रसारिणी ॥ प्रयोक्त
व्या: सदै वार्द्रा द्विगुणं नैव कारयेत् ॥ २२७॥

(क) सहचर:कुरण्टक: कटसैरै आ इतिलोके ॥

वासा निम्ब पटोल केतक बला कूष्माण्ड केंदीवरी।
वर्षाभू: कुटजाश्च कन्द सहिता सापूति गन्धास्मृता ॥
॥२२८॥ ऐन्द्री नाग बला कुरण्टक पुरो छत्रामृता सर्व्व
दा ॥सार्द्रा एवतु तत्र कचित द्विगुणिता कार्य्येषु योज्या
बुधै: ॥ २२९ ॥

भा० गीलीदवा दूनी देनी चाहिये यह सवजगह निश्चय है ॥गिलोय कुरै
या वांसा पेठा सतावर असगन्ध कटसरैया सोंफ गंप्रेसारणी ॥ इनको
सदा गीलीही प्रयोग करनी चाहिये और दुगनी नकरे ॥ २२६॥ २२७॥वांसा
नीम परोल केवड़ा वरियारा पेठा सतावर । गदापुरना ॥ कुरैया कन्द सहित
वो गन्ध प्रसारणी कहीहै ॥ २२८ ॥ इन्द्रायन गुल शकरी पीले फूलकी कट
सरैया गुगल सोंफ गिलोय सदा ॥ इनको गीलीही योजना करे और पं
डित कहींपर दुगनीभी योजना करे ॥२२९॥

(क) ऐन्द्री इन्द्र वारुणी । वरी शतावरी । पूतिगन्धा ।
गन्धप्रसारणी नागबला गुलशकरी ।
कुरण्टक: पीत पुष्प कटसैरैआ पुरोगुग्गुल: ॥

घृतन्तैलञ्च पानीयं कषायं व्यञ्जनादिकम् ॥
पक्वा शीतीकृतं चोष्णं तत्र सर्व्वं स्या द्विषोपमम् ॥२३०॥

भा० घृततेल जलकाढ़ा और दाल तरकारी इत्यादिकों को ॥ पकाके फी
र हुवेको फिरसे गरम करेंतो वोह सब विषके समान होताहै ॥ १२० ॥

[अथ द्रव्याणां परीक्षा ।]

सूक्ष्मास्थिमांसला पथ्या सर्व्वकर्म्मणि पूजिता ॥
क्षिप्ताम्भसि निमज्जेद्या भल्लातक्य स्तथोत्तमा ॥ १२१ ॥
वराह मूर्द्ध वत्कन्दो वाराही कन्द संज्ञकः ॥ सौवर्च्च
लन्तु काचाभं सैन्धवं स्फटिक प्रभम् ॥ १२२ ॥ सुव-
र्ण च्छविकं ज्ञेयं स्वर्ण माक्षिक मुत्तमम् ॥ इन्द्र गो
प प्रतीकाशं मनो ह्वा चोत्तमा मता ॥ १२३ ॥ श्रेष्ठं
शिला जतुज्ञेयं प्रक्षिप्तं न विशीर्य्यते ॥ तोय पूर्णे कां
स्य पात्रे प्रतानेन विवर्द्धते ॥ १२४ ॥ कर्पूरः स्तुवरः
स्निग्धः एला सूक्ष्म फला वरा ॥ श्वेत चन्दन मत्य
न्तं सुगन्धि गुरु पूजितम् ॥ १२५ ॥

भा० अनन्तर द्रव्यों की परीक्षा कहतेहैं ॥ छोटी गुठलीवाली गूदेदार और
पानीमें डालनेसे जो डूब जाती है इस प्रकार की हड़ सब कामों में अच्छीहै
॥ उसी प्रकारका भिलावाभी अच्छा होताहै ॥ १२१ ॥ सूवर के सिरके सदृ
शजो कन्द होताहै ॥ उसको वाराही कन्द कहतेहैं । कांच के समान सोंचल
। और सैन्धव स्फटिक के समान होताहै ॥ १२२ ॥ सोनेकी सी रंगतवालीको
अच्छी सोना माखी जाननी चाहिये । वीर बहूटी कीसी रंगतवाली मेन सि
ल अच्छी होतीहै ॥ १२३ ॥ अच्छी शिलाजीत उसको जानना चाहिये कि
जो फेंका हुवा नहीं बिखरता । और पानी भरेहुवे कांसेके कटोरे में बे
ल सूतके समान जो बढ़ताहै ॥ १२४ ॥ कसैला चिकना कर्पूर अच्छाहो-
ताहै । छोटे फलवाली इलायची अच्छी होतीहै । और स्वेतचन्दन बहुत
सुगन्ध करके युक्त और भारी अच्छा होताहै ॥ १२५ ॥

रक्त चन्दनमत्यन्तं लोहितम्प्रवरं मतम् ॥ काक

तुण्डा निभः स्निग्धो गुरुः श्रेष्ठो गुरुर्मतः ॥२२६॥
सुगन्धि लघु रूक्षञ्च सुरदारु वरं मतम् ॥ सर
लं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धि च गुणावहम् ॥२२७॥
अति पीता प्रशस्तातु ज्ञेया दारुनिशा बुधैः ॥ जा
तीफलं गुरु स्निग्धं समं शुभ्रान्तरं वरम् ॥२२८॥
मृद्वीका सोत्तमा ज्ञेया योस्ताङ्गोस्तनसन्निभाः ॥
करमर्द्द फलाकारा मध्यमा सा प्रकीर्त्तिता ॥२२९॥
(क) गोस्तनसन्निभाः मुनक्का इतिलोके। करमर्द्द फला
कारा। करौन्दीदाख इतिलोके।

भा॰ लालचन्दन बहुत लाल अच्छा होताहै ॥ और अगर कौव्वाठो
ठी केसमान रंगनवाला चिकना भारी अच्छा होता है ॥२२६॥ सुगन्धयु
क्त हलका रूखा देवदार अच्छा होताहैं। और दूसरी किसमका देवदार
बहुत चिकना सुगन्धि गुणकारक होताहै ॥२२७॥ बहुत पीली दार
हरदी अच्छी होतीहै ॥ जायफल भारी चिकना सम भीतर सुफेद अ-
च्छा होताहै ॥२२८॥ जो मुनक्का गायके थनोंकीसी होतीहै वो अच्छी
है करौंदे के फलके आकार जो मुनक्का होतीहै वो मध्यम कही गई
है ॥२२९॥

खण्डन्तु विमलं श्रेष्ठं चन्द्रकान्त समप्रभम् ॥ ग
व्याज्यसदृशं रुच्यं गन्धं मधु वरम्मतम् ॥२३०॥

अथ स्वभावतो हितानि।

शालीनां लोहितः शालिः षष्ठिकेषु च षष्टिका ॥
शूकधान्येष्वपि यवो गोधूमः प्रवरो मतः ॥२३१॥
शिम्बिधान्ये वरो मुद्गो मसूरश्चाढकी तथा ॥ से

षु मधुरः श्रेष्ठो लवणेषु च सैन्धवः ॥ १३२॥ दाडि मा मलकद्राक्षा खर्ज्जूरञ्च परूषकम् ॥ राजादनं मातुलुङ्गं फलवर्गेषु शस्यते ॥ १३३॥ (क)

परूषकं फारसा इतिलोके ॥ राजदनं खिरणी इतिलोके । मातुलुङ्गं बिजउरा इतिलोके ।

पत्रशाकेषु वास्तुकं जीवन्ती पोतिका वरा ॥ पटोल फलशाकेषु कन्दशाकेषु सूरणम् ॥ १३४ ॥ एणः कुरङ्गो हरिणो जाङ्गलेषु प्रशस्यते ॥ पक्षिणां तित्तिरिर्लावो वरो मत्स्येषु रोहितः ॥ १३५ ॥

भा० चन्द्रकान्त के समान स्वच्छ खांड अच्छी होनी है ॥ गो घृत के समान रुचिकर और सुगन्ध इस प्रकार का मधु श्रेष्ठ कहा है ॥ १३०॥ अनन्तर स्वभाव से जो हित वस्तु हैं उनको कहते हैं ॥ धानों में लाल धान और साठी चावलों में साठ दिन में होनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ और शूक धानों में भी जौ गेहूं श्रेष्ठ कहे हैं ॥ १३१॥ शिंबीधान्य अर्थात् सेमवाले धान्य में मूंग मसूर अरहर श्रेष्ठ है ॥ रसमें मधुर रस श्रेष्ठ है । और लवणोंमें सेंधा श्रेष्ठ है ॥ १३२॥ अनार आंवले दाख खजूर फालसे । खिरनी बिजौरा नीबू ये फलवर्ग में प्रशस्त हैं ॥ १३३॥ सागों में बथुवा जीवंती पोई अच्छे हैं ॥ फल शाक में परवल और कन्द शाकों में ज़िमीकन्द । प्रशस्त है ॥ १३४॥ जांगल मांस में एण कुरंङ्ग हरिण प्रशस्त है । पक्षियों में तीतर बटेर श्रेष्ठ है । और मछलियों में रोहू मछली अच्छी है । १३५

हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णतयामतः ॥ कुरङ्गस्ताम्र उद्दिष्टो हरिणाकृतिको महान् ॥ १३६ जलेषु दिव्यं दुग्धेषु गव्यमाज्येषु गोभवम् ॥ तैलेषु तिलजन्तैलमैक्षवेषु सिताहिता ॥ १३७ ॥

[अथ स्वभावादहितानि।]

शिम्बीषु माषान् ग्रीष्मर्त्तौ लवणेष्वोषरं त्यजेत्। फलेषु लकुचं शाके सार्षपं न हितम्मतम् ॥१३८॥ गोमांसं ग्राम्य मांसेषु न हितं महिषीवसा ॥ मेषी पयः कुसुम्भस्य तैलन्त्याज्य ञ्च फाणितम् ॥१३९॥ इक्षुरसः परिपक्वो योऽर्द्ध घन फाणितम् ॥ (क) तद्धि छोयाराव इति लोके। अथ संयोग विरुद्धानि।

भा॰ हरिण लालवर्ण होताहै। और एण काला हिरन कहा गया है। और कुरंग लाल वर्ण कहा गयाहै। तथा हिरन के समान आकृतिवाला और बड़ा होताहै। १३६॥ जलों में आकाशका जल दूधोंमें गायका दूध घृतों में गो घृत। तेलोंमें तिलकातेल। गुड़ आदि यों मे चीनी श्रेष्ठहै। १३७॥ अनन्तर स्वभाव से अहित वस्तुओं को कहते हैं॥ शिंबी धान्यों में उड़द। ऋतुवों में ग्रीष्म। लवणों में पांगा लवण। इनको त्याग करे और फलों में बढ़ल शाकों में सरसोंका शाक ये वस्तु अहित कही हैं॥ १३८॥ ग्राम के मांसों में गोमांस और भैंसकी चरबी हित नही है॥ मेढ़ीका दूध, कुसुंभतेल अर्थात् करड़का तेल, और राव इनको त्याग करना चाहिये॥ १३९॥ गन्नेके रसको पकाके जो आधा गाढ़ा किया जाता है उसको राव कहते हैं। अनन्तर संयोगसे अहित करनेवाली वस्तुओं को कहते हैं॥

मत्स्यमानूप मांसञ्च दुग्धयुक्तं विवर्ज्जयेत् ॥ कपोतं सर्षपस्नेहं भर्ज्जितम्परि वर्ज्जयेत् ॥ १४०॥ मत्स्यानि तोविकारेण तथा क्षौद्रेण वर्ज्जयेत् ॥ प्रानून मांसपयोयुक्तानुष्णेर्दधि विवर्ज्जयेत् ॥ १४२॥ उष्णोन्तेभोऽम्बुना क्षौद्रं पायसं कृशरान्वितम् ॥

रम्भाफलं त्यजेत् तक्रं दधिविल्वफलान्वितम् ॥२४२
दशाह युषितं सर्पिः कांस्ये मधु घृतं समम् ॥ कृता
न्नञ्च कषायञ्च पुनरुष्णीकृतं त्यजेत् ॥२४३॥ ए
कत्र बहु मांसानि विरुध्यन्ते परस्परम् ॥ मधुसर्पिर्व
सा तैलं पानीयं वा पयस्तथा ॥२४४॥

भा० मछली और अनुपमांसको भी दूधके सहित न सेवन करे ॥ और सर
सोंके तेलसे भुनेहुये कबूतर के मांस को न सेवन करे ॥ २४० ॥ तथा मीठे
के या शहत के साथ मछलियों को न भक्षण करे ॥ मांस रस के साथ सत्तूके
और उष्ण दधि इनको भी त्यागदे ॥ २४१ ॥ उष्ण या आकाशका जल इन
के साथ मधु और खिचड़ी के साथ दूध इनको भी त्यागदे ॥
मठे के साथ केला और दही बेलफल के साथ त्यागदेवे ॥४२कांसे के बर्तन
में दस दिनका रक्खाहुवा घी और बराबर घी सहत को भी न सेवन करे ॥
२४२ ॥ सिद्ध किया अन्न और कषाय इनको फिरसे गरम करके न सेवनकरे
। एक जगह कई क़िस्म के मांसोंको मिलाके न सेवन करे ॥ २४३ ॥ मधु घृ
त चरबी तेल जल दूध इन को आपुसमें मिलाके न सेवन करे ॥ २४४ ॥

[अथ भेषज ग्रहण सङ्केतः।] लवणं सैन्धवं प्रोक्तं चन्द
नं रक्तचन्दनम् ॥ चूर्णलेहा सवस्नेहाः साध्या धवलच
न्दनैः ॥ २४५ ॥ कषाय लेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्द
नम् ॥ अंतःसम्मार्ज्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यवानिका ॥
॥२४६॥ वहिः सम्मार्ज्जने सैव विज्ञातव्याजमोदिका ॥
पयः सर्पिः प्रयोगेषु गव्यमेव हि गृह्यते ॥ २४७ ॥
सकृद्रसो गोमयकं मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥

भा० अनन्तर औषधोंके ग्रहणकरनेका संकेत कहतेहैं ॥ लवण कहा
होवेतो सैन्धव और चंदन की जगह रक्तचंदन जानना चाहिये ॥ चूर्ण लेह
आसव घृत तेलादि ये श्वेतचन्दनसे सिद्ध करने चाहिये ॥ २४५ ॥ कषाय

और लेपमें प्राय रक्तचन्दन मिलाया जाता है ॥ खाने पीने में अजवायन लिखीहोतो अजमोद लेनी चाहिये ॥ २४५ ॥ और लेपादिक मेंवोही अजवायन लेनी चाहिये ॥ योगमें दूध और घी लिखाहो तो गायका ही लेना चाहिये ॥ २४६ ॥ गोबर का रस होवे तो गायका और मूत्र गोमूत्र लेना चाहिये ॥

[प्रतिनिधिः] चित्रका भावतो दन्ती क्षारः शिखरिजो ऽथवा ॥ अभावे धन्वयासस्य प्रक्षेप्या तु दुरालभा ॥ ॥ २४८ ॥ (शिखरी अपामार्गः ।) तगरस्याप्यभावे तु कुष्टं दद्याद्भिषग्वरः ॥ मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या जिङ्गिनी प्रभवा बुधैः ॥ २४९ ॥ अहिंस्राया अभावे तु मानकन्दः प्रकीर्त्तितः ॥ लक्ष्मणाया अभावे तु नीलकण्ठशिखा मता ॥ २५० ॥

भा० बदले में देनेकी वस्तुओंको कहतेहैं ॥ चित्रक के अभावमें जमालगोटेकी जड़ अथवा ओंगेका खार लेवे ॥ वांसेके अभाव में जवासा लेवे ॥ २४८ ॥ वैद्य तगरके अभाव में कूठ देवे । मरोड़ फली के अभावमें मजीठ की छाल । मालकंगनी के अभावमें मानकेचूको लेवे ॥ लक्ष्मणा के अभावमें मोरशिखा देवे ॥ २५० ॥

वकुला भावतो देयं कल्हारोत्पल पङ्कजम् ॥ नीलोत्पल स्याभावेतु कुमुदं देय मिष्यते ॥ २५१ ॥ जातीपुष्पं न यत्रास्ति लवङ्गं तत्र दीयते ॥ अर्कपर्णादिपयसो ह्यभावे तद्रसो मतः ॥ २५२ ॥ पौष्करा भावतः कुष्ठं तथा लाङ्गल्य भावतः ॥ स्थौणेय कस्याभावे तु भिषग्भिर्दीयते गदः ॥ २५३ ॥ चविका गजपिप्पल्यो पिप्पली मूलवत् स्मृतो ॥ अभावे सोमराज्या

स्तु प्रपुन्नाटफलं मतम् ॥ १५४ ॥ यदि न स्याद्दारु निशा तदा देया निशा बुधैः ॥

भा० मोलसरीके अभावमें स्वेतकामल। नीलोफरके अभावमें लालकवल देना चाहिये ॥ १५१ ॥ चमेली फूल जहां न मिले वहां लवंग देना चाहिये ॥ आकवगैरह का दूध न मिलनेमें उसीका रस दे ॥ १५२ ॥ पुष्कर मूलके अभावमें कलहारी के अभावमें कूट देवे ॥ ककरोंदे के अभावमें भी वैद्य कूट देनेहैं ॥ १५३ ॥ चाव और गजपीपल पीपलामूल के समान कहे गयेहैं ॥ वकची के अभावमें चकोड़ के बीज देवे ॥ १५४ ॥ जहां दारुहलदी न मिले वहां हलदी देवे ॥

(क) सोमराजी वाकुची। प्रपुन्नाटफलं चक्रमर्दफलम्। दारुनिशा दारुहरिद्रा निशा हरिद्रा।

रसाञ्जनस्या भावे तु सम्यग्दार्व्वी प्रयुज्यते ॥ सौराष्ट्र्यभावतो देया स्फटिका तद्गुणा जनैः ॥ १५५ ॥

(ख) सौराष्ट्री सोरठीमाटी इतिलोके। स्फटिका फटिकारी इतिलोके ॥ तालीस पत्रका भावे स्वर्णताली प्रशस्यते ॥ भार्ग्य भावे तु तालीसं कण्टकारी जटाथ वा ॥ १५६ ॥ रुचका भावतो दद्याल्लवणं पांशुपूर्व्वकम्। अभावे मधुयष्ट्यास्तु धातक्याश्च प्रयोजयेत् ॥ १५७ ॥

भा० रसौत के अभावमें अच्छी दारहरदी देवे ॥ सोरठी मांटी के अभावमें फटकरी देवे। वो उसी के गुणवाली है ॥ १५५ ॥ तालीस पत्रके अभावमें स्वर्णतालीस पत्र देवे ॥ भारंगी के अभावमें तालीसपत्र अथवा कटेली की जड़ देवे ॥ १५६ ॥ सोंचल के अभावमें खारीनमक देवे ॥ मुलहठी के अभावमें धावेका फूल देवे ॥ १५७ ॥

(क) रुचकं चोहार इतिलोके पांशुलवणं खारी अथवा रेह।

इति लोके । अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्य मिष्यते ॥ द्राक्षा यदि न लभ्येत प्रदेयं काश्मरी फलम् ॥ १५८ ॥ तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः ॥ लवङ्गकुसुमं देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १५९ ॥ कस्तूर्य्यभावे कङ्कोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः ॥ कङ्कोलस्याप्यभावे तु जातीपुष्पं प्रदीयते ॥ १६० ॥

भा० अम्लवेत के अभाव में इमलीदेवे। औरयदि दाख नमिलेतौ कुंभेर का फलदेवे ॥ १५८ ॥ वे दोनों न मिले तो दुपहरियाका फूलदेवे। नख न मिलेतौ लवंग देवें ॥ १५९ ॥ कस्तूरी के अभावमें कंकोल देनी चाहिये ॥ ऐसा पंडितक हतेहैं ॥ और कंकोल भी न मिले तो चमेली के पुष्प डाले ॥ १६० ॥

सुगन्धिमुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः ॥ कर्पूराभावतोदेयं ग्रन्थिपर्णं विशेषतः ॥ १६१ ॥ कुङ्कुमाभावतो दद्यात् कुसुम्भ कुसुमं नवम् ॥ श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरं देय मिष्यते ॥ १६२ ॥ अभावेत्वे तयोर्वैद्यः प्रदिपेत् रक्तचन्दनम् ॥ रक्तचन्दन काभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः ॥ १६३ ॥ मुस्ताचातिविषाभावे शिवा भावे शिवामता ॥ अभावे नागपुष्पस्य पद्मकेसर मिष्यते ॥ १६४ ॥

भा० कपूर न मिले तौ नागरमोथा देना चाहिये ॥ और कपूर के अभावमें उकरीला विशेषकरके देना चाहिये ॥ १६१ ॥ केसर के अभावमें नवीन कुसुंभ के फूलडालने चाहिये ॥ श्रीखंड चन्दन के अभाव में कपूर देवे ॥ १६२ ॥ इनके अभावमें वैद्य रक्तचन्दन देवे रक्तचन्दन के अभावमें नवीन खस देवे ॥ १६३ ॥ अतीस के अभावमें मोथा हर्डके अभाव में आंवला नागकेसर के अभावमें पद्मकेसर डाले ॥ १६४ ॥

मेदा जीवककाकोली ऋद्धिद्वन्द्वे ऽपि वा सति ॥ वरी विदार्य्यश्वगन्धा वाराही च क्रमात् क्षिपेत् ॥ २६५॥ (वरी शतावरी ।) वाराह्याश्च तथाभावे चर्मकारालुको मतः ॥ वाराहीकन्द संज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टि संज्ञकः ॥ २६६॥ वाराही कन्द एवान्य श्चर्म्मकारालुको मतः ॥ अनूप सम्भवे देशे वराह इव लोमवान् ॥ २६७॥ भल्लातका सहत्वे तु रक्तचन्दन मिष्यते ॥ भल्लातभावनश्चित्रं नलश्चेत्तोर भावतः ॥ २६८॥ सुवर्णाभावतः स्वर्ण माक्षिकं प्रक्षिपेत् बुधः ॥ श्वेतन्तु माक्षिकं ज्ञेयं बुधैः रजतवत् ध्रुवम् ॥ २६९॥

भा० मेदा जीवक काकोली ऋद्धि और वृद्धि इनके नमिलनेमें भी। सतावर विदारीकंद असगंध वाराहीकंद इनको क्रमसे डाले ॥ २६५॥ वाराहीकन्दके अभावमें जंगली आलू को डाले ॥ वाराही कन्द का नाम पश्चिमदेशमें गृष्टि कहते हैं ॥ २६६॥ और लोग वाराहीकन्द को चर्मकार आलू कहते हैं ॥ अनुपदेश में वाराह के मानिन्द रोमवाला होता है ॥ २६७ ॥ भिलावे के नहीं सहन होनेमें रक्तचन्दन देवे ॥ भिलावेके अभावमें चित्रक और गन्ने के अभाव में नर्कटदेवे ॥ २६८॥ स्वर्णके अभावमें बुद्धिवान् सोनामक्खी डाले ॥ रूपामाखी को चाँदीके समान पंडितों ने कहा है ॥ २६९ ॥

माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात् स्वर्णगैरिकम् ॥ सुवर्णमथवा रौप्यं मृतं यत्र न लभ्यते ॥ २७०॥ तत्र कान्ते न कर्म्माणि भिषक्कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ कान्ताभावे तीक्ष्ण लोहं योजयेद्वैद्य सत्तमः ॥ २७१॥

अभावे मौक्तिकस्यापि मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत् ॥ मधु यत्र न लभ्येत तत्र जीर्णगुडो मतः ॥ १७२ ॥ मत्स्यण्डा भावतो दद्यु र्भिषजः सितशर्कराम् ॥ असम्भवे सितायास्तु बुधैः खण्डं प्रयुज्यते ॥ १७३ ॥ क्षीराभावे रसो मौद्गो मासूरो वा प्रदीयते ॥ अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि यानि तेषु च तेषु च ॥ १७४ ॥

भा० रूपामाखी के अभावमें सुनहरी गेरू देवे ॥ जहाँपर सोनेका या चांदीका भस्म नहीं मिलता ॥ १७० ॥ वहाँपर चतुर वैद्य कान्तिसार से काम करे ॥ और जहाँपर कान्तिसार न मिले वहां तीक्ष्णलोहकी वैद्यवर योजनाकरे ॥ १७१ ॥ मोतीके अभावमें भी मोतीकी सीप देवे ॥ शहत जहांपर नहीं मिलता वहां पुराना गुड़ देवे ॥ १७२ ॥ वैद्य मिश्री के अभाव में सफेद चीनी देवे और सफेदचीनी भी न मिलेतो खांड देवे ॥ १७३ ॥ दूधके अभावमें मूंगका या मसूरका पानी देनेहैं ॥ यहाँपर कहीहुई जो वस्तूहैं उन२में ॥ १७४ ॥

योज्यमेकतराभावे परं वैद्येन जानता ॥ रसवीर्य्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च ॥ १७५ ॥ युक्त्या द्विविधमन्यद्वा द्रव्यानान्तु रसादिवित् ॥ योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्म्मतः ॥ १७६ ॥ यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ व्याधेर्युक्तं यत् द्रव्यं गणोक्तमपि तत् त्यजेत् ॥ १७७ ॥ अनुक्तमपि युक्तं यत् योजयेत् तद्रसादिवित् ॥

भा० जाननेवाले वैद्यके द्वारा एक के अभावमें दूसरे को देना चाहिये ॥ रस वीर्य्य विपाक आदि इनकरके समद्रव्यको विचार करके ॥ १७५ ॥ किस २ के औरभी द्रव्यों को योजनाकरे रसोंके जाननेवाला योगमें जो अप्रधानहै उसकी प्रतिनिधी कहीगईहै ॥ १७६ ॥ औरजो प्रधान है उसके सदृश कोनही

ही ग्रहण करने ॥ व्याधि के अयुक्त जो द्रव्य हो वोह गण में कहा हुवाभी त्याग देवे ॥ २७७ ॥ और न कहा हुवाभी जो युक्त है उस्को रसादिक के जाने या यो जना करे ॥ [इतस्तु द्रव्यगत पञ्च पदार्थ कर्म्माण्याह।]

द्रव्ये रसो गुणो वीर्य्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥ पदार्थः पञ्च तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्व्वन्ति कर्म्म च ॥ २७८ ॥

(तत्र वागभटः।) रसः स्वाद्वम्ल लवण तिक्तोषण कषायकाः ॥ षट् द्रव्य माश्रितास्ते च यथा पूर्व्वं बलावहाः ॥ २७९ ॥ (ऊषणः कटुः) तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति स्त्रयस्तिक्तादयः कफम् ॥ कषाय तिक्त मधुराः पित्तमन्ये तु कुर्व्वते ॥ २८० ॥

भा॰ यहांपर द्रव्यमें प्राप्त पांच पदार्थों के कर्मको कहते हैं ॥ द्रव्यमें रस गुण वीर्य्य विपाक शक्ति ये पांच पदार्थ रहते हैं और अपने २ कर्मोंको भी करते हैं ॥ २७८ ॥ उसमें वाग्भट ने कहा है] मधुर अम्ल लवण कटु कषाय तिक्त ये छः रस द्रव्य के आधिन रहते हैं वे एक से एक पहले बलको देने वाले हैं ॥ २७९ ॥ उनमें पहले तीन वायुको नाश करते हैं। और अंतके तिक्तादि तीन कफको नाश करते हैं ॥ कषाय तिक्त मधुर पित्तको नाश करते हैं ॥ और मधुर कफ अम्ल पित्त को कटु वायु को इस प्रकारसे करते हैं ॥ २८० ॥

ये रसा वातशमनाः भवन्ति यदि तेषु वै ॥ रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम् ॥ २८१ ॥ ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै ॥ तीक्ष्णोष्ण लघुता चैव न ते तत्कर्म्म कारिणः ॥ २८२ ॥ ये रसा श्लेष्म शमना भवन्ति यदि तेषु वै ॥ स्नेह गौरव शैत्यानि न ते हन्युः कफं तदा ॥ २८३ ॥

भा० जोरस वात के शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ रूक्षता हलकापन और शीताहै तोवेवायु को नहीं नाशकरते ॥ १८२॥ जोरस पित्त के शमन करने वाले हैं यदि उनमें ॥ तीक्ष्णता उष्णता औरलघुता है तो वेउस कर्मकोकर नेवाले नहिं होते ॥ १८२॥ जो रस कफको शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ चिकनापन भारीपन और शीतलता होवेतो वे कफको नहीं नाश करते। ॥ १८३ ॥

[तत्र मधुरसस्य गुणाः ।] मधुरो हि रसः प्रीतो धातुस्त न्य बलप्रदः ॥ चक्षुष्यो वातपित्तघ्नः कुर्य्यात् स्थौल्य मलक्रिमीन् ॥ १८४ ॥ रसेषु प्रवरश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषो हितः ॥ [अथातियुक्तस्य मधुररसस्यगु- णाः ॥] बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेन्द्रियौजसाम् ॥ प्रशस्तो वृंहणः कण्ठ्यो गुरुः सन्धानकृन्मतः ॥१८५॥ विषघ्नः पिच्छिलश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषो हितः ॥ सोऽतियुक्तो ज्वरश्वासगलगण्डार्बुद क्रमीन् ॥१८६ स्थौल्याग्निमान्द्य मेहांश्च कुर्य्यात मेदःकफामयान् ॥

भा० उसमें मधुर रसका गुण कहते हैं।] मधुर रस प्रीत रसादिक धातु दूध और बलको देनेवालाहै ॥ चक्षु के हित वात पित्त का नाशक और स्थूल ता मल क्रमी इनको करता है ॥ १८४ ॥ रसों में श्रेष्ठ भी है और स्निग्ध प्री ती आयु के हित है ॥ अनन्तर बहुत सेवन कियेहुवे मधुर रसका गुणकह तेहैं ।] बालक वृद्ध क्षत क्षीणवर्ण केश इन्द्री और ओज इनको प्रशस्तहै ॥ धातुओं के बढ़ानेवाला कंठका हित भारी संधान करनेवाला कहा गया है ॥ १८५ ॥ और विषका नाशक चेपदार चिकना प्रीति आयु के हितभी है ॥ वोह बहुत सेवन किया हुवा ज्वर श्वास गलगंड अर्बुद क्रमी ॥ १८६ स्थूलता अग्निमान्द्य प्रमेह मेद और कफके रोगों को करता है ॥

[अथाम्लस्यगुणाः।] रसोऽम्लः पाचनो रुच्यः पित्तश्ले

म्लस्तुरो लघुः ॥ लेखिनोष्णो वहिः शीत क्लेदनः पवना

पहः ॥ २८७॥ स्निग्धस्तीक्ष्णः सरः शुक्र विबन्धानाह

दृष्टिहा ॥ हर्षणो रोमदन्तानामक्षिभ्रू विनिकोचनः॥

॥ २८८ ॥ लेखिनः लेखनः वहिः शीतः स्पर्शे शीतः वि

निकोचनः सङ्कोचनः । [सथातियुक्तस्याम्लस्य गुणाः।]

सोऽतियुक्तो भ्रमं कुर्य्यात् तृड् दाह तिमिर ज्वरान् ॥

कण्डु पाण्डुत्ववीसर्पशोथ विस्फोट कुष्ठ कृत् ॥ २८९ ॥

भा० अनन्तर अम्लका गुण कहते हैं ॥ पाचन रुचिको करनेवाला पित्तक फ रक्त इनको करनेवाला हलका ॥ लेखन उष्ण स्पर्श में शीत क्लेदन वायुका नाशक अम्ल रस होता है ॥ २८७ ॥ स्निग्ध तीक्ष्ण रेचन शुक्र विबंध आनाओ र दृष्टि इनका नाशक ॥ तथा रोम दांत इनका हर्षण और आंखकी भवोंका सुकडनेवाला होता है ॥ २८८ ॥ अनन्तर अतीयुक्त अम्लका गुण कहते हैं ॥ वो अतिसेवन किया हुवा भ्रम तृषा दाह तिमिर और ज्वर इनको करता है ॥ तथा कन्डू पान्डुता विसर्प शोथ विस्फोट और कुष्ठ इनको करने वाला है ॥ २८९ ॥

[अथ लवणस्य गुणाः।]

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफ पित्तदः॥ पुं

स्त्ववातहरः काय शैथिल्य मृदुताकरः॥ २९० ॥

चक्षुर्नासास्यजलदः कपोलगलदाह कृत् ॥

भा० अनन्तर लवण के गुण कहते हैं ।] शोधन रुचिको करने वाला पाचन कफ पित्तको करनेवाला । पुरुषत्व और वातका नाशक शरीरकी शिथिलता तथा मृदुता इनका करने वाला ऐसा लवण होता है ॥ २९० ॥ चक्षु नासिका मुख इनमें पानी को देनेवाला और गल्ल तथा गले में दाह को करने वाला होता है ॥

[अतियुक्तस्य लवणस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तोऽतिपाका

स्र पित्तकोठक्षतादि कृत् ॥ वली पलितखालित्यं कुष्ट वीसर्प्प तृट् प्रदः ॥ ९६२ ॥ कोठो वरटाकृतदंश शोथवत्। पलितं केशशुक्लता। खालित्यं शिरसि केशनाशः ॥ [अथ कटुगुणाः।] कटुरुष्णश्च तीक्ष्णश्च विशदो वात पित्त कृत् ॥ श्लेष्म हृल्लघु राग्नेयः क्रिमि कण्डू विषापहः ॥ रूक्षस्तन्य हरश्चापि मेदःस्थौल्यापकर्षणः ॥ अश्रुदो नासिकास्याक्षि जिह्वाग्रोद्वेजको मतः ॥ ९६३ ॥ दीपनः पाचनो रुच्यो नासिकाशोधणो भृशम्। क्लेद मेदो वसा मज्जा शकृन्मूत्रोप शोषणः ॥ ९६४ स्रोतः प्रकाशको रूक्षो मेध्यो वर्च्चो विबन्धकृत् ॥

भा० बहुत सेवन किये हुवे लवणका गुण कहते हैं ॥ वोह अति सेवन किया हुवा नेत्रपाक रक्तपित्त चकत्ते और क्षतादि को करता है। झुर्रियां बालों की सफेदी गंजापन कोढ़ विसर्प और तृषा इनको देता है ॥ ९६१ ॥ अथ कटुके गुण कहते हैं ॥ कटु उष्ण तीक्ष्ण विशद और वात पित्तके करने वाला होता है ॥ कफका नाशक हलका अग्निगुणवाला क्रिमि कन्डु विषका नाशक होता है ॥ ९६२ ॥ रूक्ष दूधका नाशक मेद और स्थूलता का घटानेवाला। आंसुवोंके देनेवाला नासिका मुख नेत्र और जिह्वाके अग्रभागमें क्षोभ करनेवाला कहागया है ॥ ९६३ ॥ दीपन पाचन रुचिके योग्य नासिकाको अती शोधण करनेवाला क्लेद मेद वसा मज्जा मलमूल इनको सुखानेवाला है ॥ ९६४ ॥ श्रोतोंका प्रकाश करनेवाला रूक्ष मेध्य मलको रोकनेवाला है ॥

आग्नेयः अधिकाग्न्यंशः। मेध्यो मेधायैः हितः। वर्च्चो विबन्धकृत्। मलबद्धं करोति। [अतियुक्तस्य कटुरसस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तो भ्रमिदाह मुखताल्वोष्ठ शोष

कृत् ॥ कराठादि पीड़ा मूर्च्छान्तर्दाहदो बलकान्तिहृत् ॥ ९८५ ॥ [अथ तिक्तरसस्य गुणाः।] तिक्तः शीत स्तृषा मूर्च्छा ज्वर पित्त कफान् जयेत् ॥ क्रिमि कुष्ठ विषोत्क्लेद दाह रक्त गदापहः ॥ ९८६ ॥ रुच्यः स्वय मरोचिष्णुः कराठ स्तन्य विशोधनः ॥ वातलोऽग्नि करो नासा शोषणो रूक्षणो लघुः ॥ ९८७ ॥

भा० अति सेवन किये हुवे कटु रसका गुण कहते हैं ॥] अति सेवन किया हुवा मुख तालु होंठ इनका शोषण करनेवाला। कंठादिमें पीड़ा मूर्छा अन्तरदाह इनको करने वाला और बल कान्तिका नाशक होताहै ॥ ९८५॥ अनन्तर तिक्त रसका गुण कहते हैं।] तिक्त रस शीत तथा मूर्छा ज्वर पित्त कफ इनको जीतता है ॥ क्रिमि कुष्ट विष उत्क्लेद दाह रक्त इन रोगोंको नाश करताहै ॥ ९८६ ॥ रुचिके हित आप अरुचि करनेवाला और कंठ दुग्ध इनका शोधन है ॥ वातको करनेवाला अग्निको करनेवाला नासिकाका शोषण करने वाला रूक्ष और हलका होताहै ॥ ९८७॥

रुच्यः अन्येषु वस्तुषु रुचिमुत्पादयति। स्वयमरोचिष्णुः यथा निम्बः स्वयन्न रोचते ॥ अन्येषु वस्तुषु रुचिं करोति। [अतियुक्तस्य तिक्तस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तः शिरःशूल मन्या स्तम्भ श्रमार्त्ति कृत् ॥ कम्प मूर्च्छा तृषा कारी बल शुक्र क्षय प्रदः ॥ ९८८ ॥ [अथ कषाय गुणाः।] कषायो रोपणो ग्राही स्तम्भनः शोधनस्तथा ॥ लेखनः पीडनः सौम्यः शोषणो वातकोपनः ॥ ९८९ ॥ कफ शोणित पित्तघ्नो रूक्षः शीतो लघुर्मतः ॥ त्वक

प्रसाधन मामस्य स्तम्भनो विशदो मतः॥ २०० ॥ जि
ह्वाया जाड्यकृत् कण्ठस्रोतसाञ्च विबन्धकृत॥
(क) शोषणः व्रणस्य स्तम्भनो गात्राणां शोधनो व्रणस्य ले
खनो व्रणाद्युत सन्नमांसस्य शोषणो व्रणमज्जादीनाम्
पीडनो हृदयस्य वातकारित्वात् सौम्यः सोमादुत्पन्नः॥

भा॰ अति सेवन कियेहुवे तिक्तरसका गुण कहते हैं।] वोह अति सेवन
किया हुवा सिर पीड़ा मन्या स्तंभ श्रमपीड़ा इनको करता है ॥ कम्प मूर्छा तृषा
का करनेवाला। बल शुक्र इनका क्षयकरनेवाला होता है॥ १९८॥
अनन्तर कषाय के गुण कहते हैं।] कषाय भरलानेवाला ग्रही स्तंभन तथा
शोधन होता है। और लेखन पीड़ा को करनेवाला सौम्य औषको करनेवाला
वातको कुपित करनेवाला होता है ॥ १९९॥ कफ रक्त पित्त का नाशक रूक्ष।
शीत लघु कहा है ॥ त्वचा का स्वच्छ करनेवाला आँवका रोकनेवाला और
विशद कहा है ॥ २००॥ जिव्हा की जड़ता को करनेवाला कण्ठके सोतों का रो
कनेवाला होता है ॥ (क) शोषण शरीर का स्तम्भन गात्रोंको शोधन व्रणका
लेखन व्रणादिसे ऊपर उठेहुवे मांसका शोषण व्रण मज्जादिकों का पीड़न
हृदय का वातकारी होनेसे सौम्य अर्थात् सोमसे उत्पन्न ॥

[अतियुक्तस्य कषायस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तो गृहाध्मा
न हृत्पीड़ाक्षेपणादिकृत्॥ मधुरादीनामपरे विशे
षाः॥ मधुरं श्लेष्मणं प्रायो जीर्णं शालिं यवादृते॥
मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात् सिताया जाङ्गला मिषात्॥
२०१॥ अम्लं पित्तकरं प्रायो विना धात्रीञ्च दाड़िमीम्॥

भा॰ अतिसेवन किये कषाय का गुण कहते हैं।] वोह अतियोजना किया
हुवा शूल अध्मान हृद पीड़ा और आक्षेपणादि करता है। मधुरादियों का दूस
रा विशेष गुण है॥ मधुर कफको करनेवाला है प्रायः पुराने चावल और ज
वों के सिवा॥ मूंग गेहूं शहत चीनी और जांगल मांस इनके सिवाभी॥ २०१॥

अम्ल प्रायः पित्तको करनेवाला होता है सिवा आँवले और अनारके ॥

लवणं प्रायशो ह्यहितं नेत्रयोः सैन्धवं विना ॥ २०२ ॥

प्रायः कटु तथा तिक्तमवृष्यं वातकोपनम् ॥ शुण्ठी

कृष्णारसोनानि पटोलममृतं विना ॥ २०३ ॥

[चरकेऽपि ।] पिप्पली नागरं वृष्यं कटु चावृष्यमुच्यते ॥

प्रायशः स्तम्भनं प्रोक्तं कषायमभयां विना ॥ २०४ ॥

सामान्ये नात्र निर्दिष्टा गुणाः षड्रससम्भवाः ॥ रसा

नां योगतस्तु स्यादन्य एव गुणोदयः ॥ २०५ ॥

भा॰ लवण प्रायः नेत्रके अहितहै सैन्धवके बिना ॥ २०२ ॥ कटुरस और तिक्तरस प्रायः अवृष्य तथा वातको कुपित करनेवाला होता है ॥ सोंठ पीपल लहसन परवल और गिलोय इनके बिना ॥ २०३ ॥ चरकमें भी कहाहै ॥ पीपल सोंठ वृष्य और कटुरस अवृष्य होताहै ॥ कषाय रस प्रायः स्तंभन होता है परंतु हरीतकीके बिना ॥ २०४ ॥ यहांपर सामान्य करके षट् रसों से उत्पन्न हुवे गुण कहेगये हैं ॥ रसोंके संयोगसे और गुणोंका उदय होता है ॥ २०५ ॥

संयोगाद् विषतां याति सममाज्यं न माक्षिकम् ॥ अ

मृतत्वं विषं याति सर्पदष्टस्य वै यथा ॥ २०६ ॥

[अथ गुणाः ।] लघुर्गुरु स्तथा स्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्र

मात् ॥ नभोभूवारिवातानां वन्हे रेते गुणाः स्मृताः ॥

२०७ ॥ [अथ लघ्वादि गुणवतां गुणाः ।]

लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च ॥ लघु द्रव्यम्

भा॰ संयोगसे विषहोताहै । घृत और मधुकी समतासे ॥ और विष अमृतत्वको प्राप्त होता है जैसे सांपके काटेको ॥ २०६ ॥ अनन्तर गुण कहतेहैं ॥ हलका भारी चिकना रूखा तीखा ये क्रमसे । आकाश पृथ्वी जल वायु और अग्नि इनके ये गुण कहे गये हैं ॥ २०७ ॥ अनन्तर लघु आदि गुणोंके गुण

कहते हैं। लघु परम पथ्य कहा गयाहै और कफका नाशक तथा शीघ्र पाक होनेवालाभी कहा गयाहै॥ लघु अर्थात् हल्का॥

एवं गुर्वादि तथा चोक्तम्॥ गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये॥ रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचारतः॥ २०८॥ गुरु वातहरं पुष्टि श्लेष्मकृच्चिरपाकि च॥ स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम्॥ २०९॥ रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम्॥ तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवातहृत्॥ २१०॥ सुश्रुते तु गुणास्ते विंशतिस्तान् ब्रुवे शृणु॥ गुरुर्लघुः स्निग्धरूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः॥ २११॥

भा० इसीप्रकार गुरु आदि। उसप्रकार कहा है॥ पृथ्वी आदि रसके आश्रय द्रव्यमें गुरुवादि गुण। और रसमें साहचर्यके उपचार से जानेजाते हैं॥ २०८॥ गुरु वातका नाशक पुष्टि कफ को करनेवाला चिरपाकवाला भी कहा है॥ और चिकना वात नाशक कफकारी वृष्य बलको देनेवाला है॥ २०९॥ रूक्ष वायुको करनेवाला और अत्यन्त कफका नाशक होताहै॥ तीखा पित्तका करनेवाला और प्रायः लेखन तथा कफवात नाशक भी है॥ २१०॥ सुश्रुत में ये गुण बीस कहेहैं उनको कहताहूं सुनो॥ भारी हलका स्निग्ध रूखा तीखा चिकणा स्थिर रेचन॥ चेपदार विशद शीतल उष्ण मृदु और कर्कश॥ २१२॥

पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्च मृदुकर्कशौ॥ स्थूलः सूक्ष्मो द्रवः शुष्कः आशुर्मन्दः स्मृता गुणाः॥ तत्र गुरु लघु स्निग्ध रूक्ष तीक्ष्णा गुणा उक्ता एव २१२॥ श्लक्ष्णः श्लेष्मकृत् स्यात् कठिनोऽपि हि चिक्कणः॥ स्थिरो वातमलस्तम्भी सरस्तेषां प्रवर्त्तकः॥ पिच्छि-

लस्तन्तुलो वल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः ॥२२४॥ सन्धानो भग्नस्य। क्लेद च्छेदकरः ख्यातो विशदो व्रण रोपणः ॥ शीतस्तु ल्हादनः स्तम्भी मूर्च्छा तृट् स्वेद दाहनुत् ॥ २२५॥ उष्णो भवति शीतस्य विपरीतश्च पाचनः ॥ (क) ल्हादनः सुखजनकः स्तम्भीरक्तातिप्रवृत्त्यादीनाम् उष्णः शीतस्य विपरीतस्तेन असुखजनकः रक्तातिप्रवृत्त्यादीनाम् स्तम्भनः। मूर्च्छा तृट् स्वेद दाहकृत् पाचनो व्रणादीनाम्। मृदु कर्कशौ प्रसिद्धौ।

भा॰ तथा स्थूल सूक्ष्म द्रव्यशुष्क आशुकारी और मंद येबीस गुण कहेगयेहैं ॥ २२२॥ श्लक्ष्ण स्निग्ध के बिनाभी होताहे ॥ और कठिनभी चिक्कण होताहे ॥ स्थिर वात मलका स्तम्भन करनेवाला और सर उनका प्रवर्त्तक होता है ॥ पिच्छल तारको देनेवाला बलका हितु जुड़ानेवाला। कफकारी और भारी होताहे ॥ २२४ ॥ सन्धान अर्थात् टूटेहुवे का जोड़नेवाला। क्लेद छेदन करनेवाला कहागयाहे। और विशद घावको भरनेवाला होताहे ॥ शीतल खुशीको देनेवाला स्तंभनकरनेवाला और मूर्छा तृषा पसीना दाह इनका नाशक होता है ॥ २२५॥ उष्ण शीत के विपरीत और पाचन होताहै ॥ (क) ल्हादन अर्थात् सुखको उत्पन्नकरनेवाला स्तंभी अर्थात् रक्तादिककी अतिप्रवृत्तिका स्तम्भन। मूर्छा तृषा स्वेद दाह का करनेवाला पाचन व्रणादिकोंका। मृदु और कर्कश प्रसिद्ध हे ॥

स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत् ॥ देहस्य सूक्ष्म च्छिद्रेषु विशेत् यत् सूक्ष्ममुच्यते ॥२२६॥ द्रवः क्लेदकरो व्यापी शुष्कस्तद विपरीतकः ॥ आशुराशुकरो देहे धावत्यम्भसि तैलवत् ॥ २२७ ॥

मन्द: सकलकार्य्येषु शिथिलोऽल्पोऽपि कथ्यते॥
[अथ गुणप्रस्तावे दीपनादयो गुणाः। स लक्षणा लिख्यन्ते]
पचेन्नामं वन्हिकृच्च दीपनं तद्यथा मिसिः॥
(क) वन्हिकृद्वन्हि दीप्तिकृत्। ननु यद्वन्हिं प्रदीपयति त दामकुथं न पचेदित्या शङ्कया मुच्यते। दीपनद्रव्यन्ताव न्तं वन्हिं प्रदीपयति। तथा अन्ने भोक्तु मिच्छामुत्पादय ति नत्वामं पक्तुं क्षमः यथा सूक्ष्म दीपाग्नि रुथातं करोति न तु दहन् स्थालीस्थान् तण्डुला नोदनं कर्त्तुं क्षमः।

भा० स्थूल स्थूलता को करनेवाला और देहमें सोतों का अवरोध करनेवाला है। शरीर के सूक्ष्म छिद्रोंमें जो जावे उसको सूक्ष्म कहते हैं ॥ २९६ ॥ द्रव क्लेदके करनेवाला और व्यापि होताहै। तथा शुष्क उसके विपरीत करनेवाला होताहै ॥ आशुशीघ्र करनेवाला शरीर में होताहै ॥ जैसे पानी में तेलदौड़ने के मानिंद ॥ २९७ ॥ मन्द सब कामोंमें शिथिल और अल्पभी कहा गयाहै॥
[अनन्तर गुणप्रस्तावमें दीपनादिक गुण लक्षणके सहित लिखे हैं ॥
आमको न पचावे और अग्निको करे उसको दीपन कहतेहैं जैसे सोंफ ॥
(क) वन्हिकृत् अर्थात् अग्निको दीपन करने वाला। (ननु: शंका जो वन्ही को दीपन करता है वोह आमको क्यों नहीं पचाता इस शंकाको कहते हैं। दीपन द्रव्य उतनी वन्हि की दीपन करताहै। जैसे अन्नमें भोजन करनेकी इच्छा उत्पादन करताहै न कि आमको पका सक्ता है जैसे सूक्ष्म वत्तिकी अग्नि प्रकाश को करतीहै न कि बड़े बरतन में के चावलों को पका सकती है ॥

पचत्यामन्न वन्हिञ्च कुर्य्याद्यत्तद्धि पाचनम्॥ नागकेशरवद्विद्या च्चित्रो दीपन पाचनः॥ २९८॥
(क) ननु यद्वन्हिं न दीपयति तदामं कथं पचतीत्या शङ्कयाह। पाचन वन्हिदीप्तिम कुर्वाण मप्यामंपचति। यथा न्याधानीस्थोऽङ्गारसमूहोऽचमपचति॥ ननु दीपवत्सर्व्वं

नः प्रदीपयति ॥ न शोधयति यत् दोषान् समान्नोदी
रयत्यपि ॥ समीकरोति विषमान् शमनन्तद् यथामृता
॥२१९॥ (क) यत् द्रव्यन्दोषत्रयं न शोधयति नोर्द्ध्वाधो मा
र्गाभ्यामानयति ॥ समान् दोषान्नोदीरयति न वर्द्धयति ।
शमनं तत् ॥ कृत्वा पाकम्मलानाञ्च भित्वा बन्धमधो
नयेत ॥ तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥२२०॥

भा० जो आमको पचाताहै और अग्निको नहिं करता वो पाचन है। जैसे नागके
सर और चित्रक दीपन पाचन है ॥ २१८ ॥ (क) ननुःशंका) जो अग्निको दी
पन नहीं करता वोह आमको कैसे पचाता है। इस आशंका में कहतेहैं।
पाचन अग्नि दीपन न करताहुवाभी आमको पचाताहै। जैसे जलमें का
अंगार समूह अन्नको पचाताहै। न किं दीप कीमानिंद सब तरफ प्रकाश
करताहै ॥ जो दोषों को नहीं शोधन करता और समदोषोंको नहीं बढ़ाता। न
था विषम दोषों को सम करता है वोह शमन है। जैसे गिलोय ॥ २१९ ॥
(क) जो द्रव्य तीनों दोषोंको नहीं शोधन करता अर्थात् ऊपर नीचेसे नहीं ले
जाता। और सम दोषों को नहीं बढ़ाता वोह शमन है ॥
जो मलोंका पाक करके और सुद्दोंको फोड़के नीचे लेजाता है ॥ उसको अनु
लोमन जानना चाहिये जैसे हरीतकी कहीहै ॥ २२० ॥

(क) मलानाम् । अपक्वानां वातपित्त श्लेष्मणां बन्धं वा
युबन्धं भित्वा ऽधो नयेत । मलानधः पातयति ।
पक्तव्यं यद पक्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ॥ नय
त्यधः स्रं सनन्तद् यथा स्यात् कृतमालकम् ॥ २२१॥
मलादिकम् आदि शब्दात्कफ पित्ते। कृतमालः घन ब
हेरा इतिलोके ॥ मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं

मलैः॥ भित्वाधः पातयतिय द्भेदनं कटुकीयथा ॥२२२॥

(क) अवद्धं शिथिलम्बद्धङ्गाढं मलैःदोषैः तत्रापि वातैः। बहुत्वमाधिक्य बोधनार्थन्तैः पिण्डितम्। गुटिकी कृतम्॥

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्। रेचयत्य पि तज्ज्ञेयं रेचनन्त्रिवृता यथा ॥ २२३ ॥

रेचयत्यपि। अधः पातयति च। त्रिवृताप निसरा।

भा॰ (क) मलों का अर्थात् अपक्व वात पित्त कफों का बंध अर्थात् वायुके बंधकों फोड़कर नीचे लेजाताहै। अर्थात मलोंको नीचे गिराताहै। कोठे में लगके ठहरे हुवे पकनेके योग्य मलादि कोंको बिना पकायेही॥ नीचे लेजाताहै उसको स्रंसकते है जैसे अमलतास ॥ २२१॥ मलादिक। आदि शब्द से कफ पित्त जानने चाहिये॥ ढीला मल अथवा बंधा हुवा या सुद्दे इनको जो। फोड़कर नीचे गिराताहै वोह भेदन है जैसे कुटकी। २२२ (क) अवद्ध अर्थात् ढीला वद्ध अर्थात् सख्त मल अर्थात् दोषों से उसमें वातसे। पिण्डित अर्थात् गुठली के समान। बहुत पके हुवे अथवा कच्चे मलादिकों को ढीला करके निकाले॥ उस्कोरेचन कहते हैं जैसेनिसोत॥ २२३॥ विन पके हुवे पित्तकफ अन्नको वलात्कार से ऊपर को लेजावे॥

अपक्वं पित्त श्लेष्माणं बलादूर्द्ध नयेत्तु यत्। वमनन्तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ २२४ ॥

(ख) ऊर्द्ध नयेत् मुख मार्गेण वहिष्कुर्य्यात्। मदनस्य फलं मयन फल मिति लोके,

स्थानाद्वहि र्नयेदूर्द्ध मधोवा मल सञ्चयम्। देह संशोधनन्तत् स्या देवदाली फलं यथा ॥ २२५॥

(ग) देवदाली सोनैय्या इति लोके ॥

भा० उसको वमन जानना चाहिये जैसे मैनफल ॥ २२४ ॥
(ख) ऊपर लेजावे अर्थात् मुंहसे बाहर निकाले। शरीरमें संचय हुवे मलको स्थान से बाहर नीचे या ऊपर लेजावे। उसे संशोधन कहते हैं। जैसे देवदाली फल ॥ २२५ ॥ (ग) देवदाली को लोक में सोनईया कहते हैं ॥

दीपनम्पाचनं यत् स्या दूष्णत्वा द्रव शोषकम् ॥ ग्राही तच्च यथा शुण्ठी जीरकङ्गज पिप्पली ॥ २२६ ॥
रौक्ष्याच्छै त्यात्कषायत्वा लघु पाकाच्च यद्भवेन् ॥ वातकृत् स्तम्भनन्तत् स्याद् यथा वत्स कटु ण्टुकौ ॥ ॥ २२७ ॥ वातकृत् प्रतिलोम वातकृत्। स्तम्भनं अधोगामि मलादीनाम्। वतसक कुरे ओ टुण्टक सोना पाठा। श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ॥ छेदनन्तत् यथा क्षार मरिचानि शिलाजतु ॥ २२८ ॥

भा० जो दीपन पाचन उष्णत्व से द्रवत्व को सुकाने वाला है। वोह ग्राही है जैसे सोंठ जीरा और गजपीपल ॥ २२६ ॥ रूक्षता से शीतलता से कषायसे और लघु पाक से जो वायुको करने वाला होता है ॥ वोह स्तंभन है जैसे कुरैया और सोनापाठा ॥ २२७ ॥ जो श्लिष्ट कफादि दोषों को बलात्कार से उखेड़ता है ॥ उस्को छेदन कहते हैं जैसे जवाखार काली मिर्च और शिलाजीत ॥ २२८ ॥ [क्षारा यवक्षारादयः।

धातून्मलान् वा देहस्य विशोष्यो ल्लेखयेच्च यत् ॥ लेखनन्तद् यथा क्षौद्रं नीर मुष्णं वचा यवा ॥ २२९ ॥
[उल्लेखयेत् कृशी कुर्य्यात्। लेखनं कृशीकारकं क्षौद्रं मधु। यवा इन्द्र यवाः। यस्माद्द्रव्याद्भवेत् स्त्रीषु हर्षो वाजी

हि-तत ॥ यथाश्व गन्धा मुशली शर्करा च शतावरी॥ ॥२३०॥ हर्षात्तु समुत्साहः।

भा० शरीर के धातु अथवा मलोंको सुकाके कृश करै उस्को लेखन कहते हैं। जैसे शहत गरम पानी वच और इन्द्रजौ ॥ २२९ ॥ जिस द्रव्यसे स्त्री में हर्ष होता है उसको वाजी करण कहते हैं ॥ जैसे असगन्ध मूसली शर्करा और शतावर ॥ २३० ॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिःस्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते ॥ यथा नाग बलाद्याः स्युर्वीजञ्च कपिकच्छुजम् ॥२३१॥ नागबला गुलसकरी।) दुग्धंमाषाश्च भल्लान फलमज्जा मलानि च ॥ एतानि जनकानि स्युः रेचकानि च रेतसः॥ ॥२३२॥ (क) जनकानि प्रभावाच्छीघ्रमेव रसाद्युत्पादन पूर्व्वकं शुक्रञ्जनयन्ति । (ख) रेचकाणि आधिक्यात् प्रवर्त्तयन्ति च ।

भा० जिस्से शुक्रकी वृद्धि होती है उस्को शुक्रल कहते हैं ॥ जैसे गुलसकरी आदिक और किवांचका बीज ॥ २३१॥ दूध उड़द भिलावे के फलकी गिरी आंवले। ये शुक्र के उत्पन्न करने वाले और शुक्रके रेचक भीहैं ॥ २३२॥ (क) प्रभाव से शीघ्रही रसादियोंको उत्पन्न करके ·कको उत्पन्न करते हैं। (ख) अधिकता से निकालते हैं। स

प्रवर्त्तनी स्त्रीशुक्रस्य रेचनं वृहती फलम् ॥ जातीफलं स्तम्भकं स्यात् कालिङ्गः क्षयकारि च ॥ २३३॥

(क) स्त्री स्मरण कीर्त्तन दर्शन सम्भाषण स्पर्शन चुम्बनालिङ्गन निधुवनैः समस्तै र्व्यस्तै श्च शुक्रस्य प्रवर्त्तिनी ।

प्रवर्त्तिनी प्रवृत्तिकारिणी रेचनी । वृहती फलम् ।
वृहत् कराटकारी फलमपि शुक्रस्य रेचकम् प्रवर्त्तकम् ।
कालिङ्गं कलिन्दफलम् ।

रसायनन्तु तज्ज्ञेयं यत् जराव्याधिनाशनम् ॥ यथा ।
हरीतकी रुदन्तीच गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ २३४ ॥
पूर्व्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्च गच्छति ॥ व्यवा
यि तद यथा भङ्गा फेनञ्चाहि समुद्भवम् ॥ २३५ ॥

(क) अन्यद्द्रव्यं पक्वन्तद्गुणं करोति व्यवायितु अपक्वमेव स्वगुणैः सकलशरीरं व्याप्य पाकं याति । अहिसमुद्भव फेनम् अफीम् । सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत् ॥

भा० स्त्री शुक्रका निकालनेवाला कटेलीका फलहै । और जायफल स्तंभक है । तथा क्षय करनेवाला मतीरेका फलहै ॥ २३३ ॥ (क) स्त्रीका स्मरण या कीर्त्तन दर्शन सम्भाषण स्पर्श चुम्बन आलिंगन और मैथुन इन सबोंसे या एक २ से शुक्रकी प्रवृत्ति होती है । प्रवर्त्तिनी अर्थात् प्रवृत्ति करानेवाली रेचनी कटेलीका फल । बड़ी कटेलीका फलभी रेचक है और शुक्रको क्षय करनेवाला तरबूज ॥ जो जराव्याधिका नाश करनेवाला है उसको रसायन जानना चाहिये । जैसे । हरीतकी रुद्रवंती गुग्गल और शिलाजीत ॥ २३४ ॥ जो पहले संपूर्ण शरीर में व्याप्त होकर पश्चात पाक होताहै उसको व्यवायी कहतेहैं जैसे भांग और अफीम ॥ २३५ ॥ (क) और द्रव्य पक्व उस गुणको करता है और व्यवायीतो विनपकेही अपने गुणोंसे संपूर्ण शरीर में फैलकर पाकको प्राप्त होता है । जो जोड़ोंके बन्धनोंको शिथिल करताहै वोह विकाशीहै ॥

विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवौ ॥ २३६ ॥
धातुभ्यः सकलशरीरस्थेभ्यो वीर्येभ्यः । ओजः उष्मा
तु विशेषम् विश्लेष्य । क्रमुकम् पूगफलम् ।

बुद्धिं लुम्पति यत् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥ तमो गुण प्रधानञ्च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २३७ ॥

मदकारि मादकम् । व्यवायि च विकाशि स्यात् श्लेष्म छेदि मदावहम् ॥ आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २३८ ॥

भा० और ओज धातुवों को शोषण करता है जैसे कोदों और सुपारी ॥ २३६ ॥ जो द्रव्य बुद्धिको संभ्रम करे और तमोगुण प्रधान हो उसको मदकारी कहते हैं जैसे मद्य और सुरादिक ॥ २३७ ॥ व्यवायी और विकाशी कफके नाशक औ र नशा करनेवाले होते हैं ॥ उष्ण और योगवाही प्राणके नाशक कहेगये हैं । जैसे विष ॥ २३८ ॥

(क) व्यवायि सकलकाय गुण व्यापन पूर्वक पाकगमन शीलम् । विकाशि ओजः शोषण पूर्वक सन्धिबन्ध शिथिली करण शीलम् । मदावहम् । तमो गुणाधिक्येन बुद्धि विध्वंसकम् । आग्नेयं आधिकाग्निगुणम् योगवाहि संसर्गि गुण ग्राहकम् विषं लक्ष्यं दृष्टान्तो वत्सनाभ शृङ्गकादिभिः । निजवीर्य्येण यद् द्रव्यं स्रोतेभ्यो दोष सञ्चयम् ॥ निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २३९ ॥

भा० (क) व्यवायी अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में गुणको फैलाकर पाकहोनेवाला ।मदकरनेवाला अर्थात् तमोगुणकी अधिकतासे बुद्धिकानाशक । आग्नेय अर्थात् अधिक अग्निगुण । योगवाही अर्थात् संसर्गी के गुणको ग्रहणकरने वाला यहाँपर विषलक्ष है । दृष्टान्त वत्सनाभ शृङ्गकादि । जो द्रव्य अपने वीर्यसे दोषोंके संचयको स्रोतोंसे निकालताहै उसको प्रमाथी कहते हैं, जैसे मरिच, वच ॥ २३९ ॥ (दोषा वातादयः।)

पैच्छिल्याद्गौरवा द्रव्य रुध्वा रसवहाः शिरा । धत्ते यद्

गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथादधि ॥२५०॥ (गौरवं शरीरे)

विदाहि द्रव्यमुद्गार मम्लं कुर्य्यात् तथा तृषाम्॥ हृदि दा

हञ्च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥२५१॥

(क) गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गिवस्तु गुणान्। पच्यमानं

तथैतन्मधु जलतैलाज्यसूतलोहादि अथ वीर्य्यम्। तत्र वाग्

भटः। उष्ण शीत गुणोत्कर्षात् बुधैः वीर्य्यम् द्विधा स्मृ-

तम्॥ यत्सर्वमग्निसोमीयं दृश्यते भुवन त्रयम् ॥२५२॥

(अथ तद्गुणः) उष्णं वातकफौ हन्याच्छीतन्तु तनुते जराम्।

शीतं वातकफातङ्कान् कुरुते पित्तहृत्परम् ॥२५३॥ अन्यच्च]

भा॰ पिच्छिलतासे और गौरवसे जो द्रव्य रसको लेजानेवाली शिराओंको रोक कर गुरुताको धारण करताहै वोह अभिष्यंदि है जैसे दही ॥२५०॥ विदाही द्रव्य खट्टी डकार और तृषाको करता है। और हृदयमें दाहकोभी उत्पन्नकरताहै तथा देरमें वोह पकाताहै ॥२५१॥ (क) योगवाही द्रव्य संसर्गी वस्तुके गुणोंको ग्रहण करताहै। पकाहुआ जैसे यह मधु जल तेल घृत सूत लोह आदि। अनन्तर वीर्य्यको कहते हैं। उसेवाग्भट ने कहाहै। ऊष्ण और शीतकी अधिकता से पंडितोंने दो प्रकारका वीर्य्य कहाहै॥ वोह सब तीनों भुवनोंमें गरम शीत दिखाई देताहै ॥२५२॥ अनन्तर उस्के गुण कहते हैं॥ उष्ण वात कफ को नाश करताहै। और शीत जराको बढ़ाता है। शीतवातकफके रोगोंको करताहै और अत्यन्त पित्तकानाशक है ॥२५३॥

तत्रोष्णं भ्रमतृड्ग्लानि स्वेददाहाशु पाकताम्॥शम

ञ्च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः ॥२५४॥ ह्ला

दनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्तपित्तयोः॥ [अथ विपाकः]

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्॥ रसानां

परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः ॥ २५५॥ मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः॥ कटुतिक्तकषायाणां पाकः स्यात् प्रायशः कटुः ॥ २५६॥ (तथा च वाग्भटः।) त्रिधा रसानां पाकः स्यात् स्वाद्वम्लकटुकात्मकः॥ प्रायः पदेन व्रीहिः स्यात् स्वाद्वम्ल रवि पाकतः॥ २५७॥ (क) शिवा कषाया मधुरा पाके शुण्ठी कटुका मधुर पाकेत्यादि। [अथ विपाकानां गुणाः।]

भा० उसमें उष्म भ्रम तृषा ग्लानि पसीना दाह और शीघ्र पाक। तथा वायु और कफका शमन करता है पुनः शीतल ॥ २५४॥ हर्ष जीवन स्तंभ और रक्त पित्तकी स्वच्छता इनको करता है॥ अनन्तर विपाक को कहते हैं ॥ उदर अग्नि के योगसे रसोंके परिणाम के अन्तमें जो रसान्तर उत्पन्न होता है उसको विपाक कहते हैं॥ २५५॥ मधुर और लवण रसका मधुर पाक होताहै। तथा अम्ल का अम्ल पाक होता है। और कटु तिक्त कषाय इनका प्रायः कटु पाक होताहै। ॥ २५६॥ इस प्रकार वाग्भटने कहाहै ॥ तीन प्रकार रसोंका पाक होताहै ॥ मधुर अम्ल कटु ॥ प्रायः पदकरके धान्य अविपाकसे स्वादु और अम्ल होताहै ॥ २५७॥ (क) हड़ कसैली है परंतु पाकमें मधुर होती है॥ उसी प्रकार सोंठ कटु है और पाकमें मधुर होती है इत्यादि ॥

श्लेष्मकृन्मधुरः पाको वातपित्तहरो मतः॥ अम्लस्तु कुरुते पित्तं वातश्लेष्मगदापहः॥ २५८॥ कटुः करोति पवनं कफं पित्तञ्च नाशयेत्॥ विशेष एवरसतो विपाकानां निदर्शितः॥ २५९॥ [अथ प्रभावः।]

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम्।
दन्तीरसाद्यैः तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी॥ मधुकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम् ॥ २६०॥

भा० अनन्तर विपाकों के गुण कहते हैं ॥ मधुर पाक कफको करता हैं । ओ वात पित्त का नाशक है । अम्ल पाक पित्त को करता है । और वात कफके रोगों का नाशक है ॥ २४७ ॥ कटु पाक वायुको करता है । और कफ पित्तको नाश करता है ॥ रससेही विपाकोंका विशेष कहा गया है ॥ २४८ ॥ अनन्तर प्रभावको कहते हैं ॥ रसादियोंकी समता में जो अधिक कर्म है उसको प्रभावज कहते हैं ॥ जैसे चित्रक के रसादि करके समान भी जर्द जमालगोटे की जड़ विरेचन करनेवाली है ॥ २४९ ॥ और महुवे के समान रससे मुनक्का तथा दूधके समान घृत दीपन है ॥ २५० ॥

प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ॥ समापि कुरुते दोष त्रितयस्य विनाशनम् ॥ २५१ ॥ क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म्म कुर्य्यात् प्रभावतः ॥ ज्वरं हन्ति शिरो बद्धा सह देवी जटा यथा ॥ २५२ ॥

तथा नानौषधियोगेषु फलं प्रति स्वभाव एवाश्रयणीयो न तु तत्र रसादिरूपहेतु विचारः कर्त्तव्यः ।

ह [यत आह सुश्रुतः ।]

भा० जैसे प्रभाव वड़ल के रसादि से तुल्यभी आंवले तीनों दोषों के नाशको करते हैं ॥ २५१ ॥ कहींपर केवल द्रव्य प्रभाव से कर्मको करता है ॥ जैसे सह देवी की जटा सिरमें बांधनेसे ज्वरको नाश करती है ॥ २५२ ॥

(क) तिस्से नाना औषधीके योगके फलमें स्वभावही को आश्रयण करना चाहिये । न कि उसमें रसादि रूप कारण का विचार करना चाहिये । जैसा कि सुश्रुत ने कहा है ॥

अमी सामान्य चिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ २५३ ॥ प्रत्यक्ष लक्षण फलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः ॥ नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कदाचन ॥ २५४ ॥ विरुद्ध गुण

संयोगे भूयसाल्पं हि जायते ॥ रसं विपाकस्तौ वीर्य्यं प्रभावस्तान् व्यपोहति ॥ २५५ ॥ (क) इति रसगुण वीर्य्यविपाकप्रभावाणां स्वरूपाण्यभिधाय कुत्र द्रव्ये के रसगुण वीर्य्यविपाकप्रभावाः सन्तीति बोधयितुं द्रव्य गतान् रसगुण वीर्य्यविपाकप्रभावानाह । तत्र प्रथमं हरीतक्या उत्पत्तिनाम लक्षणगुणानाह ।

भा० चतुरवैद्यों के द्वारा शास्त्र में उपयोग करने योग्य प्रसिद्ध येह औषधस्व भावसे सामान्य करके विचार करने के योग्य होतेहैं ॥ २५३ ॥ स्वभावसे प्रत्यक्ष लक्षण फलको करनेवाली प्रसिद्ध । औषधियों की विधानकर्मभी तर्कके द्वारा परिक्षा करे ॥ २५४ ॥ विरुद्ध गुणके संयोगमें बहुत भी थोड़ा होजाताहै ॥ जैसे विपाकरसको और उनदोनोंको वीर्य्य तथा उनको प्रभावनाश करताहै ॥ २५५ ॥ (क) इसप्रकार रसगुणवीर्य्य विपाक और प्रभावोंके स्वरूपको कहकर किस द्रव्यमें कौनसे रसगुणवीर्य्यविपाक और प्रभावहैं उनकोजाननेके वास्ते द्रव्य में के रसगुण वीर्य्य विपाक प्रभावोंको कहतेहैं ॥ उसमें प्रथम हरीतकीकी उत्पत्तिनाम लक्षण और गुण इनको कहतेहैं ॥

दक्षं प्रजापतिंस्वस्थ मश्विनौ वाक्य मूचतुः ॥ कुतो हरीतकी जाता तस्यास्तु कति जातयः ॥ २५६ ॥ रसाः कति समाख्याताः कति चोपरसाः स्मृताः ॥ नामानि कति चोक्तानि किंवा तासाञ्च लक्षणम् ॥ २५७ ॥ के च वर्णा गुणाः के च का च कुत्र प्रयुज्यते ॥ केन द्रव्येण संयुक्ता कांश्च रोगान् व्यपोहति ॥ २५८ ॥

भा० स्वस्थ दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने पूछा । कहांसे हरीतकी उत्पन्न हुई और उसकी कितनी किस्मेंहैं ॥ २५६ ॥ तथा रसकितने और उपरस कितने कहे गयेहैं ॥ नाम कितने कहेगये और उनका लक्षण क्या है ॥ २५७ ॥ कितने वरण और कितनेगुणहैं और किसको कहांपर देनी चाहिये ॥ कौनसे द्रव्यके

साथ देनेसे कोनसे रोगों को नाश करतीहै ॥२५८॥

प्रश्नमनद् यथा दृष्टं भगवन् वक्तुमर्हसि ॥ अश्विनो

र्वचनं श्रुत्वा दक्षो वचन मब्रवीत् ॥ २५९ ॥ पपात वि

न्दुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिवतोऽमृतम् ॥ ततो दिव्यात् स

मुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी ॥ २६० ॥ हरीतक्य भया प

थ्या कायस्था पूतना मृता ॥ हेमवत्य व्यथा चापि चेत

की श्रेयसी शिवा ॥ २६१ ॥

भा० जैसे यह प्रश्न मैंने पूछाहै इसको आप कहसक्ते हो ॥ अश्विनी कुमारोंका यह वचन सुनकर दक्ष प्रजापति बोले ॥ २५९ ॥ इन्द्र के अमृत पीतेहुवे में एक विन्दु पृथ्वीपर गिरा ॥ उस अमृत से सात जातकी हरीतकी पैदाहुई ॥ २६० ॥ हरीतकी, अभया, कायस्था, पूतना, अमृता ॥ हेमवती, अव्यथा, चेतकी, श्रेयसी, शिवा ॥ २६१ ॥

वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥ विजया

रोहिणी चैव पूतना चामृता भया ॥ २६२ ॥ जीवन्ती चे

तकी चेति विज्ञेयाः सप्तजातयः ॥ अलाबुवृत्ता विज

या वृत्तासा रोहिणी स्मृता ॥ २६३ ॥ पूतनास्थिमती

सूक्ष्मा कथिता मांसलामृता ॥ पञ्चरेखा भया प्रो

क्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी ॥ २६४ ॥ त्रिरेखा चेतकी

ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥ विजया सर्व रोगेषु रो

हिणी व्रणरोहिणी ॥ २६५ ॥

भा० वयस्था, विजया, जीवन्ती, और रोहणी; ये नाम हड्के हैं ॥ विजया रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया ॥ २६२ ॥ जीवन्ती, चेतकी, ये सात जा ... ॥ तूम्बी के समान गोल विजया होतीहै ॥ और वोह गोल रोहि ... ॥२६३॥ छोटी गुठलीवाली पूतना और गूदेदार अमृता

कहीगई है ॥ पांच लकीरोंवाली अभया और सौनेके रंगकी सदृशजीवन्ती होती है ॥ २६५ ॥ तीन लकीरोंवाली चेतकी सातों हडोंका ये स्वरूप है ॥ सब रोगोंमें विजया । घावोंके भरनेमें रोहिणी देनी चाहिये ॥ २६५ ॥

प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥ अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोग हृत् ॥ २६६ ॥ चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथा युक्तं प्रयोजयेत् ॥ चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ॥ २६७ ॥ षड्ङ्गुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता ॥ काचिदा स्वाद मात्रेण काचिद् गन्धेन भेदयेत् ॥ २६८ ॥

भा॰ लेपमें पूतना और शोधनके अर्थ अमृता अच्छीहै । नेत्रके रोगमें अभया और जीवन्ती सर्वरोगोंकी नाशकहै ॥ २६६ ॥ चूर्णमें चेतकी अच्छी होतीहै । योगके अनुसार योजना करे ॥ चेतकी रंगमें दो प्रकारकी कहीहै सफ़ेद और काली ॥ २६७ ॥ सुपेद छः अंगुल लम्बी और काली एक अङ्गुल की कही गई है ॥ कोई खाने मात्रसेही दस्तोंको करतीहै । और कोई सूंघने से दस्त लातीहै ॥ २६८ ॥

काचित् स्पर्शेन दृष्ट्यान्या चतुर्द्धा भेदयच्छिवा ॥ चेतकी पादपच्छायामुपसर्प्यन्ति ये नराः ॥ २६९ ॥ भिद्यन्ते तत्क्षणादेव पशु पक्षि मृगादयः ॥ चेतकी तु धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ॥ २७० ॥ तावद्भिद्येत वेगैस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ न धार्य सुकुमाराणां कृशानां भेषजद्विषाम् ॥ २७१ ॥

भा॰ कोई छूनेसे और कोई देखनेसे दस्त लातीहै ऐसे चार प्रकार कीहडें होती हैं ॥ जो मनुष्य चेतकीके वृक्षकी सायामें जातेहैं ॥ २६९ ॥ उनको उसी क्षणमेंदस्त लगतेहैं । और पशू पक्षी मृगादिकों को भीदस्त लगतेहैं ॥ मनुष्य चेतकी को जब

तक धारण करते हैं ॥ २७० ॥ तब तक उसके प्रभावसे दस्त लगते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ सुकमार कृश और औषध के शत्रु इनके धारण करने योग्य नहीं होती ॥ २७१ ॥

चेतकी परमा शस्ता हिता सुख विरेचनी ॥ सप्तानाम पि जातीनां प्रधानं विजया स्मृता ॥ २७२ ॥ सुखप्रयो गा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥ हरीतकी पञ्चरसा लवणा तु वरा परम् ॥ २७३ ॥ रूक्षोष्णा दीपनी मे ध्या स्वादुपाका रसायनी ॥ चक्षुष्या लघुरायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी ॥ २७४ ॥ श्वासकास प्रमेहा र्शःकुष्ठ शोथोदर कृमीन् ॥ वैस्वर्य्य ग्रहणी रोग वि बन्ध विषम ज्वरान् ॥ २७५ ॥

भा० चेतकी बहुत अच्छी सुख विरेचन में होती है ॥ सात जातों में विजया प्रधान कही गई है सुख पूर्वक प्रयोगमें देने योग्य होती है और सुलभ सब रोगों में प्रशस्त होती है ॥ हरीतकी पांच रसोंसे युक्त और लवण से रहित तथा बहुत कसैली होती है ॥ २७३ ॥ रूखी गरम अग्नि को दीपन करने वाली पवित्र मधुर पाक वाली रसायनी होती है ॥ नेत्रके हित हलकी आयुके हि त बृंहणी तथा वायु और मलको नीचे करने वाली होती है ॥ २७४ ॥ श्वास कास प्रमेह बवासीर कोढ़ सूजन उदर रोग कमी ॥ स्वरभंग ग्रहणी रोग विबं ध अर्थात् कब्ज़ और विषमज्वर ॥ २७५ ॥

गुल्माध्मान तृषाच्छर्दि हिक्का कण्डू हृदामयान् ॥ कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा ॥ २७६ ॥ अश्मरी मूत्र कृच्छ्रञ्च मूत्रा घातञ्च नाशयेत् ॥ स्वादुतिक्त कषायत्वात्पित्तहृत्कफ हृत् तु सा ॥ २७७ ॥

कटुतिक्तकषायत्वा दम्लत्वाद्वातहृच्छिवा ॥ पित्तकृ
त्कटुकाम्लत्वा द्वातकृन्न कथं शिवा ॥ २७८ ॥ प्रभा
वाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत् प्रकाश्यते ॥ हेतुभिः शि
ष्यबोधार्थं न पूर्व्वं कथ्यतेऽधुना ॥ २७९ ॥ कर्म्मान्य
त्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदतः ॥ यत स्ततो नेति चि
न्त्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥ २८० ॥

भा० वायुगोला आध्मान तृषा वमन ऊचकी खुजली हृद्रोग ॥ कामला शूल अफारा पिलही तिल्ली ॥ २७६ ॥ पथरी मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात इनको नाश करतीहै ॥ मीठा तीखा और कसैले पनसे वोह पित्तनाशक और कफनाशक होतीहै ॥ २७७ ॥ कटु तिक्त कषाय इनसे और खट्टे पनसे हरीतकी वातकी नाशकहै ॥ कडुवे और खट्टेपन से पित्तको करनेवाली हड है तब वातको करनेवाली क्यों नहीं है ॥ २७८ ॥ प्रभाव से जो दोषकी नाशकता सिद्ध है उस्को कहतेहै ॥ शिष्य बोधके अर्थ प्रथम हेतुओं से नहीं कहा अब ॥ २७९ ॥ आश्रय के भेदसे गुणोंकी समता और कर्मान्यता देखी ॥ जिस्से तिस्से चिंतन करनेके योग्य नहीं है जैसे आंवले बड़हलोंकी ॥ २८० ॥ ✗ह

पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नाय्वावम्लो व्यवस्थितः ॥ वृ
न्ते तिक्तस्त्वचि कटु रस्थिस्तु तुवरो रसः ॥ २८१ ॥ नवा
स्निग्धा घनावृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याम्भसि ॥ निमज्जेत्
साऽप्रशस्ता च कथितातिगुणप्रदा ॥ २८२ ॥ नवादि
गुणयुक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता ॥ हरीतक्याः फले यत्र
द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते ॥ २८३ ॥

भा० हडकी मज्जामें मधुर स्नायुमें अम्ल रहताहै ॥ पडदे में तिक्त छिलकेमें कटु और अस्थिमें कसैला रस होताहै ॥ २८१ ॥ नवीन स्निग्ध घन गोल भारी और पानीमें डालने से डूबे वोह अच्छी और गुणको देनेवाली कही गई है। ८४

नवादि गुणकरके युक्त और वैसेही एक जगह दोनोले की श्रेष्ठहै ॥ और जहां हरीन-
कीके दो फल जुड़े हुवे हों वोह श्रेष्ठ है ॥ २०३॥

चर्विता वर्द्धयत्यग्निं पेषिता मल शोधिनी ॥ स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ॥ २०४॥ उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां निर्मूलिनी पित्त कफानिलानाम् ॥ विस्रंसिनी मूत्र शकृन्मलानां हरीतकी स्यात् सह भोजनेन ॥ २०५॥ अन्न पान कृतान् दोषान् वात पित्त कफोद्भवान् ॥ हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरि योजिता ॥ २०६॥

भा० चर्वण कीहुई अग्निको बढ़ातीहै पीसीहुई मलको शोधन करने वाली है ॥ और तलीहुई संग्रहणी तथा भुनीहुई त्रिदोष नाशक कही गईहै ॥ २०४॥ बुद्धि बल इन्द्रियों को प्रकाश करनेवाली और पित्त कफ वायु को नाश करनेवाली ॥ तथा मूत्र मल दोषों को निकालनेवाली हरीनकी होती है भोजनके साथ ॥ २०५॥ वात पित्त कफ से उत्पन्न हुवे दोष और अन्न पानसे हुवे दोषोंको ॥ भोजन के उपरांत योजना कीहुई हरीनकी शीघ्र नाश करतीहै ॥ २०६

लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा ॥ घृतेन वातजान् रोगान् सर्व रोगान् गुडान्विता ॥ २०७॥ सिन्धूत्थ शर्करा शुण्ठीकणा मधुगुडैः क्रमात् ॥ वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायन गुणैषिणा ॥ २०८॥ अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशो लंघन कर्षितश्च ॥ पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्त रक्तस्त्वभयान्न खादेत् ॥ २०९॥

भा० लवण के साथ कफको नाश करती है और शर्कराके सहित पित्तको

घनके सहित वातके रोगोंको और गुड़के साथ हरीतकी सब रोगोंको नाश करती है ॥ २८७ ॥ सैन्धव लवण शर्करा सुंठी पीपल मधु और गुड़ क्रमसे इनके साथ हरीतकी । वर्षादि ऋतुओंमें रसायन के गुण चाहनेवालोंने भाशन अर्थात् खानी चाहिये ॥ २८८ ॥ मार्ग से अति खिन्न हुवा बल से रहित रूखा कृश लं घन से दुर्बल हुवा ॥ पित्ताधिकवाला गर्भवती स्त्री और फस्त लिया हुवा ये सब हरीतकी को न खावें ॥ २८९ ॥

[अथ विभीतकस्य नामानि गुणाश्च ।]

विभीतक स्त्रीलिङ्गः स्यादक्षः कर्षफलस्तु सः ॥
कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः ॥ २९० ॥
विभीतकं स्वादु पाकं कषायं कफपित्तनुत् ॥ उष्णवी
र्य्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥ २९१ ॥ रूक्षं नेत्र
हितं केश्यं कृमिवैस्वर्य नाशनम् ॥ विभीतमज्जा तृट्
छर्द्दि कफवातहरो लघुः ॥ २९२ ॥ कषायो मदकृ
च्चाथ धात्रीमज्जापि तद्गुणः ॥

भा० अनन्तर बहेड़े के नाम और गुण कहते हैं ॥ विभीतक त्रिलिङ्ग अक्ष कर्षफल ॥ कलिद्रुम भूतावास कलियुगालय । येह बहेड़े के नाम हैं ॥ २९० ॥ बहेड़ा पाकमें मधुर कसैला कफ पित्तका नाशक ॥ उष्ण वीर्यवाला स्पर्श में शीतल भेदन कासका नाशक ॥ २९१ ॥ रूखा नेत्रके हित केशके हित कृमी स्वर भंगका नाशक होता है ॥ बहड़े की गिरी तृषा वमन कफ वात इनको नाश करनेवाली और हलकी ॥ २९२ ॥ तथा कसैली नशा करने वाली गिरी है । और आंवले की गिरीभी इसीके समान गुणको करती है ॥

[अथामलक्या नामानि गुणाश्च ।

त्रिष्वामलक्म मारव्यातं धात्री तिष्यफला मृता ॥ ह
रीतकी सदृशं धात्री फलं किन्तु विशेषतः ॥ २९३ ॥

रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ॥ हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्य्यशैत्यतः ॥ २६४ ॥ कफं रूक्षकषायत्वात् फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥ यस्य यस्य फलस्येह वीर्य्यं भवति यादृशम् ॥ २६५ ॥ तस्य तस्यैव वीर्य्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥

भा० अनन्तर आंवलेके नाम और गुण कहतेहैं ॥ तीनों आंवलों में धात्री आमलक प्रसिद्ध है और तीनों में वे फलवाली अमृता प्रसिद्ध है ॥ हरीतके समान गुण धात्रीफलका है किन्तु विशेषकरके ॥ २६३ ॥ रक्त पित्त और प्रमेह कीनाशक और अत्यन्त वृष्य तथा रसायन होतीहै ॥ वोह खट्टे पनसे वायुकी नाश करताहै ॥ और मधुरता और शीततासे पित्तको नाश करताहै ॥ २६४ ॥ रूखे और कसैले पनसे कफके करता है ॥ ऐसे आंवला त्रिदोष के जीतने वाला है ॥ यहां पर जिस २ के फलका वीर्य्य जैसे होताहै ॥ २६५ ॥ उस २ के वीर्य से मज्जा को भी जान लेवे ॥

[अथ त्रिफलाया लक्षणनाम गुणाः।] पथ्याविभीतधात्रीनां फलैःस्यात् त्रिफलासमैः ॥ फलत्रिकञ्च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्त्तिता ॥ २६६ ॥ त्रिफला कफ पित्तघ्नी मेह कुष्ठहरा सरा ॥ चक्षुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वर नाशिनी ॥ २६७ ॥

भा० अनन्तर त्रिफला के लक्षण और नाम तथा गुण कहते हैं ॥ हड़ बहेड़ा और आंवला इनके सम फलों से त्रिफला होती है । फलत्रिक त्रिफला और वोह वराह भी कही गई है ॥ २६६ ॥ त्रिफला कफ पित्तकी नाशक प्रमेह कुष्टकी नाशक और दस्तावर नेत्रके हित अग्निके दीपन करनेवाली रुचिके करने वाली और विषमज्वर नाशक है ॥ २६७ ॥

[अथ शुण्ठ्या नामानि गुणाश्च।]

शुण्ठी विश्वा च विश्वञ्च नागरं विश्वभेषजम् ॥ ऊष

शांकटु भद्रञ्च शृङ्गवेरं महौषधम् ॥ २९८ ॥ शुण्ठीरु च्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः ॥ स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवात विबन्धनुत् ॥ २९९ ॥ वृष्या सर्थ्या वमिश्वास शूलकास हृदामयान् ॥ हन्ति श्लीपद शोथार्शो आनाहोदर मारुतान् ॥ ३०० ॥ आग्नेय गुणा भूयिष्ठं तोयांशम्परिशोषि यत् ॥ संगृह्णाति मलं तत्तु ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा ॥ ३०१ ॥ विबन्धभेदनी यातु सा कथं ग्राहिणी भवेत् ॥ शक्तिर्विबन्धभेदे स्यात् यतो न मल पातने ॥ ३०२ ॥

भा० अनन्तर सोंठके नाम गुण कहतेहैं ॥ शुंठी विश्वा विश्व नागर विश्व भेषज ॥ ऊषण कटुभद्र शृंगवेर महौषध येह सोंठके नामहै ॥ २९८ ॥ सोंठ रुचिकोकरनेवाली आमवात की नाशक पाचन कड़वी हलकी ॥ चिकनी गरम पाकमें मधुर कफवात और क़बज़ियत को नाश करनेवाली है ॥ २९९ ॥ वृष्य मलको अनुलोमन करनेवाली वामन श्वास शूल खांसी हृदय के रोग ॥ श्लीपद सूजन बवासीर अफारा उदर रोग और वात इनको नाश करनी है ॥ ३०० ॥ बहुत गरम जलके अंशको शोषण करनेवाली जो ॥ वोह मलको बांधनी है । जैसे ग्राही शुण्ठ्यादिक ॥ ३०१ ॥ विबंधको भेदन करनेवाली जो है वोह कैसे ग्राहणी होतीहै ॥ विबंध भेदमें शक्ति है क्यौं कि मल पातनमें नहीं ॥ ३०२ ॥

[अथार्द्रकस्य नामानि गुणाश्च ।]

आर्द्रकं शृङ्गवेरं स्यात् कटुभद्रं तथार्द्रिका ॥ आर्द्रिका भेदिनी गुर्व्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता ॥ ३०३ ॥ कटुका मधुरा पाके रूक्षा वात कफापहा ॥ येगुणाः कथिताः शुंठ्यास्तेऽपि सन्त्यार्द्रके ऽखिलाः ॥ ३०४ ॥ भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रक भक्षणम् ॥ अग्नि

सन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठ विशोधनम् ॥ कुष्ठ पा-
ण्डुामये कृच्छ्रे रक्त पित्ते व्रणे ज्वरे ॥

भा० अनन्तर अदरक के नाम और गुण कहते हैं ॥ आर्द्रक शृंगवेर क
टुभद्र आर्द्रिका येह नाम हैं ॥ अदरक भेदन करनेवाला भारी तीखा
गरम दीपन कहा गयाहै ॥ ३०३ ॥ कडुवा पाकमें मधुर रूखा वातकफ
का नाशकहे ॥ जो गुण सोंठमें कहे गये हैं वोह सब अदरक में हे ॥ ३०४ ॥
भोजनवोपहले नमक और अदरकका खाना सदा पथ्य है ॥ अग्निका
दीपन रुचि करनेवाला जीभ कण्ठ इनका विशोधन हे ॥ ३०५ ॥ कुष्ठ पंडुरो
ग और मूत्र कृच्छ्र रक्त पित्त ज़खम और ज्वर इनमें भी पथ्य है ॥

दाहे निदाघ शरदो नैव पूजित मार्द्रकम् ॥ ३०६ ॥

[अथ पिप्पल्या नामानि गुणाश्च ।

पिप्पली मागधी कृष्णा वैदेही चपला कणा ॥
उपकुल्योषणा शौण्डी कोला स्यात् तीक्ष्ण तण्डु
ला ॥ पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादु पाका रसायनी
॥ अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्म हरी लघुः ॥
३०७ ॥ पिप्पली रेचनी हन्ति श्वास कासोदर ज्वरान् ॥
कुष्ठ प्रमेह गुल्मार्शः प्लीह शूलाममारुतान् ॥ ३०८ ॥
आर्द्रा कफ प्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः ॥ पित्त
प्रशमनी सा तु शुष्का पित्त प्रकोपिणी ॥ ३०९ ॥

भा० दाहमें ग्रीष्म और शरद में अदरक अच्छा नहीं होता ॥ ३०६ ॥
[अनन्तर पिप्पलीनाम और गुण कहते हैं ॥ पिप्पली, मागधी, कृष्णा,
वैदेही, चपला, कणा, उपकुल्या: उषणा, शौण्डि, कोला, तीक्ष्णतं डु
ला, येह पीपलके नाम हैं ॥ ३०७ ॥ पीपल दीपन और वृष्य पाकमें मधुर
रसायन ॥ हलकी गरम कडु चिकना ॥ और वातकफ को दूर करने

वाली तथा हलकी होतीहै ॥ ३०८॥ पीपल दस्तावर होतीहै और श्वास कास उदर रोग तथा ज्वर इनको नाश करतीहै ॥ कोढ़ प्रमेह वायगोला बवासीर तिही शूल आमवात ॥ ३०९ ॥ इनको नाश करतीहै गीली पीपल कफको करनेवाली चिकनी शीतल मधुर भारी ॥ पित्तकी शमन होतीहै । और वोह बहुत सूखी हुई पित्तको प्रकोपकरने वाली होतीहै ॥ ३१० ॥

पिप्पली मधुसंयुक्ता मेद कफ विनाशिनी ॥

श्वास कास ज्वरहरा वृष्या मेध्याग्नि वर्द्धिनी ॥ ३११ ॥

जीर्णज्वरेऽग्नि मान्द्ये च शस्यते गुड़ पिप्पली ॥ कासा

जीर्णा रुचिश्वास हृत्पाण्डु कृमिरोग नुत् ॥ ३१२॥ द्विगु

णः पिप्पली चूर्णाद् गुड़ोऽत्र भिषजां मतः ॥

[अथ मरिचस्य नामानि गुणाश्च।

मरिचं वेल्लजं कृष्ण मूषणं धर्मपत्तनम् ॥ मरिचं कटु

कं तीक्ष्णं दीपनं कफ वात जित् ॥ ३१३॥ उष्णं पित्त

करं रूक्षं श्वास शूल कृमीन् हरेत् ॥ तदार्द्रं मधुरं पा

के नात्युष्णं कटुकं गुरुः ॥ ३१४ ॥ किञ्चित्तीक्ष्ण गु

णं श्लेष्म प्रसेकि स्याद पित्तलम् ॥

भा॰ मधुके सहित पीपल मेद कफ इनको विनाश करनेवाली ॥ श्वास कास ज्वर इनकी नाशक पुष्ट बुद्धि को बढाने वाली अग्नि बढानेवाली होतीहै ॥ ३१ जीर्ण ज्वरमे और मन्दाग्नि में गुड़ पीपल अच्छी होतीहै ॥ कास अजीर्ण अरुची श्वास इनको नाशकरनेवाली और पांडु रोग और कृमीरोग इनको नाश करने वाली होती है ॥ ३१२॥ पीपलके चूर्णसे गुड़ दुगना वैद्योंके सम्मत है ॥ अनन्तर मरिच केनाम और गुणकहतेहैं ॥ मरिच, वेल्लज, कृष्ण, ऊषण, धर्म पत्तन, येह मरिचके नामहैं ॥ मिरच कड़ुवी तीखी दीपन कफवात की नाशक होतीहै ॥ ३१३॥ उष्ण पित्तको करनेवाली रूखी श्वास शूल कृमि इनको नाश करतीहै ॥ वोह गीली पाकमें मधुर होतीहै । और न बहुत गर्म कड़वी भारी होती

है ॥ ३९४ ॥ कुछ तीखी गुणवाली कफको निकालनेवाली पित्तको करनेवाली होतीहै ॥

[अथ त्रिकटुक नाम लक्षणगुणाः।]

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते ॥ कटु त्रिक
न्तु त्रिकटुं त्र्यूषणं व्योष उच्यते ॥३९५॥ त्र्यूषणं दीप
नं हन्ति श्वास कास त्वगामयान् ॥ गुल्म मेह कफ स्थौ
ल्य मेद श्लीपद पीनसान् ॥ ३९६ ॥

भा० अनन्तर त्रिकटु के नाम और लक्षण तथा गुण कहतेहैं ॥ सोंठ, पीपल, मिर्च, इन तीनोंको त्रिकटु कहतेहैं ॥ कटुत्रिक, त्रिकटु, त्र्यूषण, व्योष, यह त्रिकटु के नामहैं ॥ ३९५ ॥ त्रिकटु दीपन है श्वासकास त्वचाके रोग इनको नाश करताहै । गुल्म प्रमेह कफ स्थूलता मेद श्लीपद पीनस इनको भी नाशकरताहै ॥ ३९६ ॥

[अथ पिप्पलीमूलस्य नामानि गुणाश्च।

ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलं मूषणं चटकाशिरः ॥ दीपनं पि
प्पली मूलं कटूष्णं पाचनं लघु ॥ ३९७ ॥ रूक्षं पित्तकरं
भेदि कफ वातोदरा पहम् ॥ आनाह प्लीह गुल्मघ्नं कृमि
श्वासक्षया पहम् ॥ ३९८ ॥

भा० अनन्तर पीपलामूल के नाम और गुण कहते हैं ॥ ग्रन्थिक, पीपलामूल, ऊषण चटकशिर येह पीपला मूलके नामहैं । पीपलामूल दीपन कडुवा उष्ण पाचन हलका होताहै ॥ ३९७ ॥ रूखा पित्तको करनेवाला भेदन करनेवाला कफ वात उदर रोग इनका नाशक ॥ अफारा प्लीहा वायगोला इनका नाशक तथा कृमि श्वास क्षय इनका नाशक है ॥ ३९८ ॥

अथ चतुरूषणस्य लक्षण गुणाः।] त्र्यूषणं सकणा
मूलं कथितं चतुरूषणम् ॥ व्योषस्यैव गुणाः प्रोक्ता
अधिका श्चतुरूषणे ॥ [चव्यगुणाः] भवेच्चव्यन्तु च

त्रिका कथिता सा तथोषणा ॥ कणामूलगुणं चव्यं विशेषात् गुदजापहम् ॥ ३२० ॥

[अथ गजपिप्पल्या नामानि गुणाः।] चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथिता पिप्पली ॥ कपिवल्ली कोलवल्ली श्रेयसी च शिरश्च सा ॥ ३२१ ॥ गजकृष्णा कटुर्वातं श्लेष्महृद्वह्नि वर्द्धिनी ॥ उष्णा निहन्त्यती सारं श्वासकण्ठामयकृमीन् ॥ ३२२ ॥

भा० अनन्तर चतुरूपण के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ त्र्यूपण अर्थात् त्रिकटु पीपलामूल के सहित चतुरूषण कहा गया है ॥ त्रिकटु के ही अधिक गुण चतुरूपण में कहे गये हैं ॥ ३१९ ॥ अनन्तर चाव्य के गुण कहते हैं ॥ चव्य, चविक, तथा उषणा, कही गई है ॥ पीपल का गुण चव्य में है विशेष करके बवासीर का नाशक होता है ॥ ३२० ॥ अनन्तर गजपीपल के नाम और गुण कहते हैं ॥ चाव के फल को बुद्धि वालों ने गजपीपल कहा है ॥ कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी, वशिर ॥ ३२१ ॥ यह गजपीपल के नाम हैं ॥ गजपीपल कड़वी वात कफ की नाशक अग्निको बढ़ानेवाली ॥ उष्ण है और अतीसार श्वास कंठरोग कृमि इनको नाश करती है ॥ ३२२ ॥

[अथ चित्रकस्य नामानि गुणाश्च।] चित्रकोऽनलनामा च पीठो व्यालस्तथोषणः ॥ चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः ॥ ३२३ ॥ रूक्षोष्णो ग्रहणी कुष्ठ शोथार्शः कृमिकासनुत् ॥ वातश्लेष्म हृत्ते ग्राही वातार्शः श्लेष्मपित्तहृत् ॥ ३२४ ॥

भा० अनन्तर चित्रक के नाम और गुण कहते हैं ॥ चित्रक, अग्नि के नाम वाला, पीठव्याल, ऊषण, ये चित्रक के नाम हैं ॥ चित्रक पाक में कड़वा अग्नि को करनेवाला पाचन और हलका होता है ॥ ३२३ ॥ रूखा उष्ण है ग्रहणी।

कोष्ठ सूजन बवासीर कृमि और कास इनका नाशक भी है ॥ वात कफका नाश करे ग्राही वायकी बवासीर को और कफ पित्त को नाश करता है ॥ ३२४ ॥

अथ पञ्चकोलस्य लक्षणगुणाः। पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्य चित्रक नागरैः ॥ पञ्चभिः कोलमात्रं यत्पञ्चकोलं तदुच्यते ॥ ३२५ ॥ पञ्चकोलं रसे पाके कटुकं रुचिकृत् मतम् ॥ तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफवातनुत् ॥ ३२६ ॥ गुल्मप्लीहोदरानाह शूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥

भा० अनन्तर पंचकोल के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ पीपल, पीपलामूल, चाब, चित्रक, सोंठ ॥ इन पांचोंके ८ मासेको पंचकोल कहतेहैं ३२५ ॥ पंचकोल रसमें और पाकमें कडुवा और रुचिकरने वाला है ॥ तीक्ष्ण उष्ण पाचन बहुत अच्छा दीपन और कफ वात के नाश करनेवाला है ॥ ३२६ ॥ गुल्म वाय गोला प्लिही उदररोग अफारा और शूल इनका नाशक पित्त कुपित करने वाला है ॥

अथ षड्षणस्य लक्षणगुणाः। पञ्चकोलं समरिचं षडूषणं सदा हृतम् ॥ पञ्चकोल गुणमत्तु रूक्षमुष्णं विषापहम् ॥ ३२७ ॥

अथ यवान्या नामानि गुणाः। यवानिकोग्रगंधा च ब्रह्मदर्भाऽजमोदिका ॥ सैवोक्ता दीप्यका दीप्या तथा स्याद्यवसाह्वया ॥ ३२८ ॥ यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः ॥ दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शुक्र शूलहृत् ॥ ३२९ ॥

भा० अनन्तर षडूषण के लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ और वोह पंचकोल के समान गुणवालाहै ॥ तथा रूखा ऊष्ण विषका नाशक भीहै ॥ ३२७ ॥ अथ अजवायन के नाम और गुण कहतेहैं ॥ यवानिका, उग्रगन्धा, ब्रह्मदर्भा, अजमोदिका, और वोही कहीगई है दीपिका, दीप्या तथा यवसाह्वया येह अजवायन के नामहैं ॥ ३२८ ॥ अजवायन पाचन करनेवाली रुचि के हित तीखी उष्ण कडवी हलकी ॥ अग्निको दीपन करनेवाली, तथा तिक्त पित्तको करनेवाली शुक्र और शूलकी नाशक होतीहै ॥ ३२९ ॥

वातश्लेष्मोदरानाह गुल्म प्लीह कृमि प्रणुत् ॥ अथाजमोदायाःनामानि गुणाश्च।] अजमोदा खराश्वा च मयूरो दीप्यकस्तथा ॥ तथा ब्रह्मकुशा प्रोक्ता कारवी ली च समस्तका ॥ ३३० ॥ अजमोदा कटुस्तीक्ष्णा दीपनी कफवातनुत् ॥ उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या बलकरी लघुः ॥ ३३१ ॥ नेत्रामयकफच्छर्दि हिक्का वस्ति रुजोहरेत् ॥

भा० वात कफ अफारा वायगोला प्लीहा कृमि इनकीनाशकभीहै ॥ अनन्तर अजमोदा के नाम और गुण कहतेहैं ॥ अजमोदा, खराश्वा, मयूर, दीप्यक ॥ तथा ब्रह्मकुशा, कारवी, समस्तका, यह अजमोद के नामहैं ॥ ३३० ॥ अजमोद कड़वी तीखी दीपन कफवात की नाशक ॥ उष्ण विदाह को करने वाली हृद्य वृष्य बलकरनेवाली और हलकी होतीहै ॥ ३३१ ॥ नेत्ररोग कफ को वमन हिचकी पेड़ूकी पीड़ा इनको दूर करतीहै ॥

अथ खुरासानी यवानी गुणाः।] पारसीक यवानी तु यवानी सदृशी गुणैः ॥ विशेषात् पाचनी रुच्या ग्राहिणी मादिनी गुरुः ॥ ३३२ ॥ अथ सुलजीरा कृष्ण जीरा कलौंजी एषां नामानि गुणाश्च।]

जीरको जरणो जाजी कणास्या दीर्घजीरकः॥ कृष्णाजीरः सुगन्धश्च तथैवोद्गारशोधनः॥ ३३३॥ कालाजाजी तु सुषवी कालिका चोपकालिका॥ पृथ्वीका कारवी पृथ्वी पृथुः कृष्णोपकुञ्चिका॥ ३३४॥ उपकुञ्ची च कुञ्ची च बृहज्जीरक इत्यपि॥ जीरकत्रितयं रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघु॥ ३३५॥ संग्राहि पित्तलं मेध्यं गर्भाशय विशुद्धिकृत्॥ ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम्॥ ३३६॥ चक्षुष्यं पवनाध्मान गुल्म छर्द्यतिसार हृत्॥

भा॰ अनन्तर खुरासानी अजवायन के नाम और गुण कहते हैं। खुरासानी अजवायन गुणोंमें अजवायन के सदृश होती है॥ विशेष करके पाचन रुचि को करनेवाली ग्राहणी नशाकरनेवाली भारी होती है॥ ३३२॥ अनन्तर सफेद और कालाजीरा तथा कलौंजी इनके नाम और गुण कहते हैं॥ जीरक, जरण, अंजाजी, कणा, दीर्घजीरक, यह सफेद जीरेके नाम हैं॥ कृष्णजीरक, सुगंध तथा उद्गारशोधन॥ ३३३॥ कालाजाजी, सुषवी, कालिका, उपकालिका पृथ्वीका कारवी पृथ्वी, पृथु, कृष्णा, उपकुंचिका, येह स्याह जीरेके नाम हैं॥ ३३४॥ उपकुंची, कुंची, बृहज्जीरक, येहभी जीरेके नाम हैं॥ तीनों जीरे रूखे कडुवे, उष्ण दीपन हलके॥ ३३५॥ संग्राही पित्तको करनेवाले बुद्धिको बढाने वाले गर्भाशयकी शुद्धिको करनेवाले हैं॥ ज्वरकेनाशक पाचनकरनेवाले बलको देनेवाले रुचिको करनेवाले और कफ के नाशक हैं॥ ३३६॥ नेत्रके हित वायु पेटका फूलना वायगोला वमन अतीसार इनके नाशक हैं॥

[अथ धान्यकस्य नामानि गुणाश्च।

धान्यकं धानकं धान्यं धाना धानेयकं तथा॥ कुनटी धेनुका छत्रा कुस्तुम्बुरु वितुन्नकम्॥ ३३७॥ धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु॥ तिक्तं कटूष्ण

वीर्य्यञ्च दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ ३३८॥ ज्वरघ्नं रोचकं ग्राही स्वादु पाकि त्रिदोषनुत् ॥ तृष्णा दाह वमि श्वास कास कार्श्य क्रिमिप्रणुत् ॥ ३३९॥ आर्द्रन्तु तद्गुणं स्वादु विशेषात् पित्तनाशि तत् ॥

भा० अनन्तर धनियें के नाम और गुण कहते हैं ॥ धान्यक, धानक, धान्य, धाना, धानियक, ॥ कुनटी, धेनुका, छत्रा, कुस्तुम्बरु, वितुन्नक, येह धनिये के नामहैं ॥ ३३७॥ धनियां कसैली चिकनी पुरुषत्व को नाशकरने वाली मूत्र को लानेवाली हलकी ॥ तिक्त कडवी उष्ण वीर्यवाली दीपन पाचन कही गईहै ॥ ३३८॥ ज्वरकी नाशक रुचिकी करनेवाली दस्तको बंद करनेवाली ॥ पाक में मधुर त्रिदोषकी नाशक ॥ तृषा दाह वमन काम श्वास दुर्बलता और कृमी इन की नाशक है ॥ ३३९॥ गीली उसीके समान गुणवाली मधुर विशेष करके पित्तको नाश करने वाली होतीहै ॥

अथ सौंफिसो आतयो नामानि गुणाश्च ॥ शतपुष्पा शताह्वा च मधुरा कारवी मिसिः। अतिलम्बी सितछत्रा संहिता छत्रिकापि च ॥ ३४०॥ छत्रा शालेय शालीनी मिश्रेया मधुरा मिसिः ॥ शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृत् दीपनी कटु ॥ ३४१॥ उष्णा ज्वरानिल श्लेष्म व्रण शूलाक्षि रोगहृत् ॥ मिश्रेया तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनि शूलनुत् ॥ ३४२

भा० अनन्तर सौंफ और सौवा उनके नाम और गुण कहते हैं ॥ शतपुष्पा, शताह्वा, मधुरा, कारवी, मिसि, ॥ अतिलम्बी, सितछत्रा, संहिता, छत्रिका, यह सौंफ के नाम हैं ॥ ३४०॥ छत्रा, शालेय, शालीन, मिश्रेया, मधुरा, मिसि, यह सोवा के नामहैं ॥ सौंफ हलकी तीखी पित्तको करनेवाली दीपन कडवीहै ॥ ३४१॥ उष्ण ज्वर वात कफ व्रण शूल और नेत्ररोग इनकी नाशक है ॥ सोवा उसीसमान गुणवाला कहा गया है विशेष करके योनि शूलका नाशक है ॥ ३४२॥

अग्निमान्द्य हरी हृद्या बद्ध विट्कृमि शुक्र हृत् ॥ रू
क्षोष्णा पाचनी कास वमि श्लेष्मा निलान् हरेत् ॥३४३॥

[अथ मेथी वनमेथी नाम गुणाः।]

मेथिकामिथि नि मेथि दीपनी बहुपत्रिका ॥ बोधि
नी बहुबीजा च जाति गन्ध फला तथा ॥ ३४४॥
बल्लरी चाऽकामन्था मिश्र पुष्पा च कैरवी ॥ कुञ्चि
का बहुपर्णी च पित्तजित् वायुनुत् द्विधा ॥ ३४५॥
मेथिका वात शमनी श्लेष्मघ्नी ज्वर नाशिनी ॥ ततः
स्वल्पगुणाः बल्या वाजिनां सातु पूजिता ॥ ३४६॥

अथ चन्द्रशूर गुणाः।]

भा० अग्निमांद्य को नाश करनेवाली हृद्य क़ब्ज़ियत कृमि शुक्र इनको नाश करने वाली ॥ रूखी उष्ण पाचन कास वमन कफ वात इनको नाश करती है ॥ ३४३॥ अनन्तर मेथी वनमेथी के नाम गुण कहते हैं ॥ मेथिक, मियनी, मेथी, दीपनी, बहुपत्रिका ॥ बोधिनी, बहुबीजा, जातिगन्ध, फला, ॥ ३४४॥ बिल्लरी, कामंथा, येह मेथी के नाम हैं। मिश्रपुष्पा, कैरवी, कुंचिका, बहुपर्णी, पित्तजित, वायुनुप, येह दो प्रकार की वन मेथी होती हैं ॥ ३४५॥ मेथी वात को शमन करनेवाली कफ की नाशक और ज्वर को दूर करनेवाली होती है ॥ उससे स्वल्प गुण वाली बल को देनेवाली और घोड़ों को वोह अच्छी होती है ॥ ३४६॥ अनन्तर चन्द्रशूर के नाम और गुण कहते हैं ॥

चन्द्रिका चर्म हन्त्री च पशुमेहन कारिका ॥ नन्दिनी
कारवी भद्रा वासपुष्पा सुवासरा ॥ ३४७॥ चन्द्रशूरं
हितं हिक्का वात श्लेष्मातिसारिणाम् ॥ असृग्वात ग
दद्वेषि बलपुष्टि विवर्द्धनम् ॥ ३४८॥

भा० चन्द्रिका चर्महंत्री पशुमेहन कारिका ॥ नन्दनी कारवी भद्रा वासपुष्पा

सुवासर, येह चन्द्रसूरके नामहैं ॥ ३४७॥ चन्द्रसूर हिचकी वातकफ अतीसार में हित करताहै ॥ रक्तवात रोगको दूर करनेवाला बलपुष्टिको बढ़ानेवाला होताहै ॥ ३४८ ॥ [अथ चारदाना।]

मेथिका चन्द्रशूरश्च काला जाजीयवानिका ॥ एतच्च तुष्टयं युक्तं चतुर्बीजमिति स्मृतम् ॥ ३४९॥ तच्चूर्णं भ क्षितं नित्यं निहन्ति पवनामयम् ॥ अजीर्णं शूलमाध्मानं पार्श्वशूलं कटिव्यथाम् ॥ ३५०॥

[अथ हिङ्गुः।] सहस्रवेधि जतुकं बाह्लीकं हिङ्गु रामठम् ॥ हिङ्गूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहृत् ॥ ३५१॥ शूलगुल्मोदरानाह कृमिघ्नः पित्तवर्द्धनः ॥

भा० अनन्तर चारदाना मेथी चन्द्रसूर स्याहजीरा अजवायन ॥ यह चारों मिलकर चतुर बीज कहागयाहै ॥ ३४९॥ उसके चूर्णको नित्य भक्षण करनेसे वातकेरोग नाश होतेहैं ॥ और अजीर्ण शूल पेटका फूलना पसलीका शूल कमरकी पीड़ा इनको दूर करताहै ॥ ३५०॥ अनन्तर हींगके नाम और गुण कहतेहैं ॥ सहस्रवेधि, जतुक, बाल्हीक, हिंगु, रामठ ॥ येह हींगके नाम हैं ॥ हींग गरम पाचन रुचिको करनेवाला तीखा वात कफका नाशक है ॥ ३५१॥ शूल गुल्म वायगोला उदर रोग अफारा और कृमी इनका नाशक । पित्तका बढ़ानेवालाहै ॥ [अथ वचनामानि गुणाश्च।]

वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका ॥ क्षुद्रपत्री च मङ्गल्या जटिलोग्रा च लोमशा ॥ ३५२॥ वचोग्रगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वान्ति वन्हिकृत् ॥ विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी ॥ ३५३॥ अपस्मारकफोन्माद भूतजन्तु निलान् हरेत् ॥

भा० अनन्तर वचके नाम और गुण कहते हैं ॥ वच, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, गोलोमि, शतपर्विका ॥ क्षुद्रपत्री, मंगल्या, जटिला, उग्रा, यह वचके नाम हैं ॥ ३५२ ॥ वच कड़वी तिक्त उष्ण है ॥ और वमन अग्निको करनेवाली ॥ कब्ज पेटका फूलना और शूल इनको नाश करनेवाली तथा मल मूत्रको विशोधन करनेवाली है ॥ ३५३ ॥

[अथ खुरासानी वचा ।]

पारसीक वचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीति सा ॥ हैमवत्युदिता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः ॥ ३५४ ॥

अथ महाभरी वचा ।] यस्या लोके कुलिञ्जन इति नामान्तरम् ॥ सुगन्धाप्युग्रगन्धा च विशेषात् कफकासनुत् ॥ सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठ मुख शोधिनी ॥ ३५५ ॥ अपरा सुगन्धा ।] स्थूलग्रन्थिः यस्या लोके महाभरी इति नाम ॥

भा० मिरगी, कफ, उन्माद, मूत्र, कृमी, वात इनको नाश करती है ॥ अनन्तर खुरासानी वचके नाम और गुण कहते हैं ॥ पारसीकवचा, शुक्ला, हैमवती, ॥ हैमवत्योदिता, यह खुरासानी वचके नाम हैं । वोह विशेषकरके वातको नाश करती है ॥ ३५४ ॥ अनन्तर कुलिंजनके नाम और गुण कहते हैं ॥ सुगन्धा और उग्रगंधा येह दोनो विशेषकरके कफ कासके नाशक है ॥ और अच्छा स्वर तथा अच्छी त्वचा करनेवाली रुचिको करनेवाली हृदय कण्ठ मुख इनके शोधन करनेवाली है ॥ ३५५ ॥ दूसरी सुगन्धा मोटी गांठकी जिसको लोकमे महाभरी कहते हैं ॥

स्थूलग्रन्थिः सुगन्धा स्यात् ततो हीनगुणा स्मृता ॥

अथ चोबचीनी नानि लोकेतु प्रसिद्धा तस्या गुणाः ॥

द्वीपान्तर वचा किञ्चित्तिक्तोष्णा वह्निदीप्तिकृत ॥

विबन्धाध्मान शूलघ्नी शकृन्मूत्र विशोधिनी ॥ ३५६ ॥

वातव्याधी नपस्मार मुन्मादं तनुवेदनाम् ॥ व्यपो
हति विशेषेण फिरङ्ग भय नाशिनी ॥ ३५७ ॥

अथ ह्रीबेर द्वयम् ।] तन्मध्ये प्रथमं फलं मत्स्य
सदृशं विस्रगन्धं द्वितीय मश्वत्थफल सदृशं मत्स्य
गन्धं तयोर्नामानि गुणाश्च ॥

भा० मोटी गांठ की वच सुगंध होती है और उस्से कम गुण वाली कही गई
है ॥ अनन्तर चोबचीनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ अन्य दीपका वच
कुछ तिक्त और उष्ण होती है तथा अग्निको दीपन करने वाली है ॥ कब्ज
पेटका फूलना और भूल इनको नाश करनेवाली और मल मूत्रको
शोधन करनेवाली है ॥ ३५६ ॥ वातरोग मृगी उन्माद शरीरकी पीड़ा ॥
इनको नाश करती है ॥ और विशेष करके फिरंग रोग का नाशकरने
वाली है ॥ ३५७ ॥ अनन्तर दोनों ह्रीवेर के नाम और गुण कहते हैं ॥
उसमें पहलेका फल मछलीके सदृश कच्चमांस के गंधवाला होता है ॥
दूसरे पीपलके फल सदृश मछली के गंध सदृश होता है ॥

हबुषा पुष्पवस्ता च पराश्वत्थ फला मता ॥ मत्स्य
गन्धा प्लीह हन्त्री विषघ्नी ध्वांक्षनाशिनी ॥ ३५८ ॥
हबुषा दीपनी तिक्ता मृदूष्णा तुवरा गुरु: ॥ पित्तो
दर समीरघ्नी ग्रहणी गुल्म शूलहृत ॥ ३५९ ॥
पराप्येतद्गुणा प्रोक्ता रूप भेदो द्वयोरपि ॥

भा० हुबुषा पुष्पवस्ता और दूसरा अश्वत्थ फला कही गई है ॥ मत्स्य
गंधा, प्लीहहंत्री, विषघ्नी, ध्वांक्षनाशनी, येह ह्रीवेर के नाम हैं ॥ ३५८ ॥
ह्रीवेर दीपन तिक्त मृदु उष्ण कसेली भारी होती है ॥ पित्तोदर वायु की बवा
सीर संग्रहणी वायगोला और शूल इनकी नाशक है ॥ दूसरीभी इसी
प्रकार की गुणवाली कही गई है ॥ और दोनों के लक्षण के भेदभी कहे
गये हैं ॥ ३५९ ॥

[अथ वायुभक्ष इति लोके ।]

पुंसि क्लीबे विडङ्गः स्यात् कृमिघ्नो जन्तुनाशनः॥त
ण्डुलश्च तथा वेल्ल ममोघा चित्रतण्डुला॥३६०॥वि
डङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वह्निकरं लघु॥शूलाध्मा
नोदर श्लेष्म कृमिवात विबन्धनुत्॥३६१॥

[अथ तुम्बुरु फलम्।] तुम्बुरुः सौरभः सौरो वनजः सा
नुजोऽन्धकः॥तुम्बुरु प्रथितं तिक्तं कटु पाकेऽपि तत्क
टु॥३६२॥रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रुच्यं लघु विदाहि च।
वात श्लेष्माक्षि कर्णोष्ठ शिरोरुक् गुरुता कृमीन्॥
३६३॥कुष्ठ शूलारुचि श्वास प्लीह कृच्छ्राणि नाशयेत्॥

भा० अनन्तर वायविडंगको कहतेहैं॥पुल्लिंग और नपुंसक लिंगमें वायविडंग होताहै॥कृमिघ्न जन्तुनाशक। तण्डुल वेल्ल अमोघ चित्रतण्डुल॥३६०॥ ये वायबिडंग के नामहैं। वायविडंग कडवातीखा उष्ण रूखा अग्निको करने वाला हलका। शूल आध्मान उदररोग कफ कृमिवात क़ब्ज़ इनका नाश करने वाला है॥३६१॥ [अनन्तर तुम्बरु फलके नाम कहतेहैं॥ तुम्बरु सौरभ सौरवनज। सानुज अंधक। येतुम्बरु फलके नामहैं॥तुम्बरू तिक्त कहा गयाहै। और कटु तथा पाकमेंभी कटु कहाहै॥३६२॥ रूखा उष्ण दीपन तीखा रुचिको करनेवाला हलका विदाही॥वात कफ के रोग और नेत्र कर्ण शिर होंठ इनमें की पीड़ा और गुरुता कृमी॥३६३॥ कुष्ठ शूल अरुचि श्वास पिलही तथा मूत्र कृच्छ्र इनको नाश करता है॥

[अथवंशलोचन नामगुणाः।] स्याद्वंशरोचना वांशी तुगा
क्षीरा तुगाशुभा॥त्वकक्षीरी वंशजा शुभ्रा वंशक्षीरी
च वैणवी॥३६४॥ वंशजा बृंहणी वृष्या बल्या स्वाद्वी
च शीतला॥तृष्णा कास ज्वर श्वास क्षय पित्तास्र का
मला:॥३६५॥हरेत्कुष्ठं व्रणं पाण्डुं कषायं वात कृच्छ्रजित्

भा॰ अनन्तर वंशलोचन के नाम और गुण कहते हैं ॥ वंशरोचन वंशी तुगाक्षीरी॰ तुगा शुभा ॥ त्वगक्षीरी॰ शुभ्रा॰ वंशक्षीरी॰ वैणवी॰ येह वंशलोचन के नामहैं ॥ ३६४ ॥ वंशलोचन शुक्रको बढ़ानेवाला पुष्ट मलको देनेवाला मधुर शीतल तृषा॰ कास॰ ज्वर॰ श्वास॰ क्षय॰ रक्तपित्त॰ कामला॰ इनको नाश करनेवाला है ॥ ३६५ कुष्ठ॰ व्रण॰ पांडुरोग॰ और वातके मूत्रकृच्छ्रको कषाय को जीतता है ॥

[अथ समुद्रफेनः]

समुद्रफेनः फेनश्च डिण्डीरोऽब्धिकफस्तथा ॥ समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलश्च सः ॥ ३६६ ॥ कषायो विषपित्तघ्नः कर्णरुक्कफहल्लघुः ॥

[अथाष्टकवर्गस्य लक्षणं गुणाः ।] जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥ अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः ॥ ३६७ ॥ अष्टवर्गो हिमः स्वादुः बृंहणः शुक्रलो गुरुः ॥ भग्नसन्धानकृत्कामबलासबलवर्द्धनः ॥ ३६८ ॥ वातपित्तास्रतृड्दाहज्वरमेहक्षयापहः ॥

भा॰ अनन्तर समुद्रफेनके नाम और गुण कहतेहैं ॥ समुद्रफेन-फेन-डिण्डीर-अब्धिकफ । येह समुद्रफेन के नामहैं ॥ समुद्रफेन नेत्रको हित लेखन शीतल होताहै ॥ ३६६ ॥ और कसैला विष पित्तका नाशक और हलका होताहै ॥

[अनन्तर अष्टवर्गका लक्षण और गुण कहते हैं]

जीवक ऋषभक मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली । ऋद्धि वृद्धि । येह अष्टवर्गके नामहैं आठद्रव्योंसे चरकादि मुनियोंने कहाहै ॥ ३६७ ॥ अष्टवर्ग शीतल मधुर धातुओंकी वृद्धि करनेवाला शुक्रको उत्पन्नकरनेवाला भारीहै ॥ टूटे हाड़को जोड़नेवाला ॰कामदेव कफ और बल इनको बढ़ानेवालाहै ॥ ३६८ ॥ वात पित्त रक्त तृषा दाह ज्वर प्रमेह क्षय इनका नाशक है ॥

[तत्र जीवकर्षभकयोरुत्पत्तिलक्षणं नामगुणाः]

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ ॥ रसोनक-

न्द वत् कन्दी निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥ ३६९॥ जीवकः कूर्चकाकार ऋषभो वृषशृंगवत् ॥ जीवकोमधुरः शृङ्गो ह्रस्वाङ्गः कूर्चशीर्षकः ॥ ३७०॥ ऋषभो वृषभो धीरो विषाणी द्राक्ष इत्यपि ॥ जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ ॥ ३७१॥

भा० इसमें जीवक, ऋषभक, इनदोनोंकी उत्पत्ति लक्षण नाम और गुण इन को कहते हैं ॥ जीवक, ऋषभक, ये दोनों हिमाचल पर्वत पर होते हैं ॥ लहसुन के कन्द सदृश कन्दवाले होते हैं ॥ और सार रहित छोटे पत्तेवाले होतेहैं ॥ ३६९ ॥ कूंचीके आकार जीवक होताहै । और ऋषभक बैल के सींग के सदृशहोताहै ॥ जीवक. मधुर.शृंग.ह्रस्वांग. कूर्च, शीर्षक, येह जीवक के नाम हैं ॥ ३७०॥ ऋषभ वृषभ, धीर, विषाणी, द्राक्ष, येह ऋषभक के नाम हैं ॥ जीवक, ऋषभक, बलकोदेनेवाले शीत शुक्र कफ को करनेवाले होते हैं ॥ ३७१॥

मधुरौ पित्त दाहास्र कार्श्य वात क्षया पहौ ॥

[अथ मेदा महामेद योरुत्पत्ति लक्षण नाम गुणाः।]

महामेदाभिधः कन्दो मोरङ्गदे प्रजायते ॥ महामेदा स्वनो मेदा स्यादित्युक्तं मुनीश्वरैः ॥ ३७२॥ शुक्लार्द्रकनिभः कन्दो लताजातः सुपाण्डुरः ॥ महामेदाभिदो ज्ञेयो मेदा लक्षणमुच्यते ॥ ३७३॥

भा० और मधुर पित्त दाह रक्त कृशता वात क्षय इनके नाशक हैं ॥ अनन्तर मेदा महामेदा इनदोनों की उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहते हैं ॥ महामेदा, नामक, कन्दमोरंगमें उत्पन्न होता है ॥ महामेदा और मेदा स्थानमें होती है। ऐसा मुनीश्वरों ने कहाहै ॥ ३७२॥ श्वेत और गीलासा कन्द लतासे होताहै । और बहुत शुभ्रभी होताहै । ऐसेकन्दको महामेदा जानना चाहिये ॥ और मेदाका लक्षण कहतेहैं ॥ ३७३॥

शुक्लकन्दो नखच्छेद्यो मेदो धातु मिव स्रवेत् ॥ यः
स मेदेति विज्ञेयोजिज्ञासा तत्परे र्जनै: ॥ ३७४ ॥
शल्यपर्णी मणिच्छिद्रा मेदा मेदोभवा ध्वरा ॥ महा
मेदा वसुच्छिद्रा त्रिदन्ती देवतामणि: ॥ ३७५ ॥
मेदायुगं गुरु स्वादु वृष्यं स्तन्य कफावहम् ॥ बृंह
णं शीतलं पित्त रक्त वातज्वर प्रणुत् ॥ ३७६ ॥

भा० स्वेत कन्द नखसे छेद में से जो धातु के सदृश जिसमें स्राव होता है। उसको मेदा कहते हैं। जानने की इच्छा में तत्पर जने मनुष्य ॥ ३७४ ॥ शल्यपर्णी मणिछिद्रा मेदा मेदोभवा अध्वरा येह मेदा के नाम हैं ॥ महामेदा वसुछिद्रा त्रिदन्ती देवतामणि येह महा मेदा के नाम हैं ॥ ३७५ ॥ दोनों मेदा भारी मधुर पुष्ट दूध को उत्पन्न करनेवाले कफको उत्पन्न करनेवाले वृंहण शीतल पित्तरक्त वातज्वर इनके नाशक होते हैं ॥ ३७६ ॥

[अथ काकोली क्षीरकाकोल्यो रुत्पत्ति लक्षणानाम गुणा:।]

जायते क्षीरकाकोली महामेदोद्भव स्थले ॥ यत्र
स्यात् क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ॥ ३७७ ॥
पीवरी सदृश: कन्द: क्षीरं स्रवति गन्धवान् ॥ स
प्रोक्त: क्षीर काकोली काकोली लिङ्ग मुच्यते ॥ ३७८ ॥
यथा स्यात् क्षीरकाकोली काकोल्यपि तथा भवेत् ॥
एषा किञ्चिद्भवेत् कृष्णा भेदो:यमुभयोरपि ॥ ३७९ ॥

भा० अनन्तर काकोली क्षीर काकोली के उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहते हैं ॥ महामेदा के उत्पन्न होने की जगह में क्षीर काकोली उत्पन्न होती है ॥ और जहां पर क्षीर काकोली उत्पन्न होती है वहांपर काकोली भी उत्पन्न होती है ॥ ३७७ ॥ सतावर के सदृश कन्द होता है और उसमें से सुगंधयुक्त दूध निक

लता है ॥ उसको क्षीर काकोली कहाहै ॥ काकोली का लक्षण कहते हैं ॥ ३७८॥ जैसे क्षीर काकोली होतीहै उसी प्रकार काकोली भी होती है। यह कुछेक काली होती है दोनों में यही भेद है ॥ ३७६ ॥

काकोली वायसोली च वीरा कायस्थिका तथा ॥ साशुक्ला क्षीर काकोली वयस्था क्षीर वल्लिका ॥ ३८० ॥ कथिता क्षीरिणी धारा क्षीर शुक्ला पयस्विनी ॥ काकोली युगलं शीतं शुक्रलं मधुरं गुरु ॥ ३८१ ॥ वृंहणं वात दाहास्र पित्त शोषज्वरापहम् ॥

भा० काकोली वायसोली वीरा कायस्थिका । यह काकोली के नाम हैं और वो श्वेत होती है ॥ वयस्था क्षीर वल्लिका क्षीर काकोली ॥ ३८० ॥ क्षीरणी धारा क्षीर शुक्ला पयस्विनी यह क्षीर काकोली के नाम हैं ॥ दोनों काकोली शीतल शुक्रको बढ़ानेवाली मधुर भारी होती है ॥ ३८१ ॥ धातुवों को बढ़ानेवाली वात दाह रक्तपित्त शोषज्वर इनको नाश करनेवाली है ॥

[अथर्द्धि वृद्ध्यो रुत्पत्ति लक्षण नाम गुणाः।] ऋद्धिर्वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशयामले ॥ शीतलो मान्वितः कन्दो लताज्जातः सुरन्ध्रकः ॥ ३८२ ॥ स एव ऋद्धि वृद्धिश्च भेद मप्येनयो ब्रुवे ॥ स्थूल ग्रन्थिसमा ऋद्धि र्वामा वर्त्त फलाच सा ॥ ३८३ ॥ वृद्धिस्तु दक्षिणा वर्त्त फला प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ ऋद्धिर्युगं सिद्धि लक्ष्म्यो वृद्धे रप्याह्वयाइमे । ३८४ । ऋद्धिर्मत्स्या त्रिदोषघ्नी शुक्रला मधुरा गुरुः ॥ प्राणैश्वर्य्यकरी मूर्च्छा रक्त पित्त विनाशिनी । ३८५

भा० [अनन्तर ऋद्धि और वृद्धि इनकी उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहते हैं।] ऋद्धि और वृद्धि यह दो कंद यामल देशमें होते हैं। श्वेत लोमकर के युक्त कन्द।३८६

के सहित स्तनोंमें उत्पन्न होताहै ॥ ३८२॥ उसीको ऋद्धि और वृद्धि कहतेहैं ॥ उनके भेदोंको भी कहता हूं ॥ सेमर कीगांठके समान वामावर्त्त फलवाली चर ऋद्धिहोतीहै ॥ ३८३॥ महर्षियों ने दक्षिणावर्त्त फलवाली वृद्धि कहीहै ॥ दोनों ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, येहनाम । ऋद्धिंभीहै ॥ ३८४॥ ऋद्धि त्रिदोषकी नाशक शुक्रको उत्पन्न करनेवाली । मधुर भारी होतीहै । और प्राण ऐश्वर्य्य इनको करने वाली तथा मूर्च्छा रक्त पित्त इनकी नाशक है ॥ ३८५॥

वृद्धि गर्भप्रदा शीता बृंहणी मधुरा स्मृता ॥ वृष्या पित्तास्त्र शमनी क्षतकास क्षया पहा ॥ ३८६ ॥ राज्ञामप्यष्ट वर्गास्तु यतोऽयमतिदुर्लभः ॥ तस्मादस्य प्रतिनिधिं गृह्णीयात्तद् गुणं भिषक् ॥ ३८७ ॥

(मुख्यःसदृशःप्रतिनिधिः) [एतस्य प्रतिनिधिमाह ।]

मेदा जीवक काकोली ऋद्धि वृद्धे ऽपि चासती ॥ वरी विदार्य्यश्वगन्धा वाराही श्च क्रमात् क्षिपेत ॥ ३८८॥

भा॰ (क) मेदा महामेदा स्थाने शतावरी मूलम् जीवकर्षभक स्थाने विदारीमूलम् ॥ काकोली क्षीर काकोली,स्थाने अश्वगन्धा मूलम् । ऋद्धिवृद्धि स्थानेवाराहीकंदं गुणैस्तत्तुल्यं

भा॰ वृद्धि गरभको करनेवाली शीतल पुष्ट मधुर कहीगई है ॥ पुरुषत्व को बढाने वालीरक्त पित्तकीनाशक क्षतकास क्षय इनकी नाशक है ॥ ३८६॥ जिस कारणयह अष्टवर्ग राजाओंको भी अति दुर्लभहै ॥ तिस कारण इसकी प्रतिनिधी उसी गुणवाली को वैद्य ग्रहणकरे ॥ ३८७॥ इसके प्रतिनिधी को कहतेहैं ॥ मेदा· जीवक· काकोली · ऋद्धि· इनके न मिलनेमें सतावर· विदारीकन्द· असगन्ध· वाराहीकन्द· इनकोक्रम के साथ डाले ॥ ३८८॥ (क) मेदा महामेदा की जगह में सतावर की जड़ ॥ जीवक ऋषभक की जगहमें विधाराकी जड़ । काकोली क्षीरकाकोली की जगह में असगन्ध की जड़ । ऋद्धि वृद्धि की जगह में वाराही कन्दकोडाले । येह गुण में उन

के समानहै ॥ [अथ जेठी मधु।] यष्टीमधु तथा यष्टी मधुकं क्लीतकं तथा ॥ अन्यत् क्लीतनकन्तत्तु भवेत्तोये मधूलिका ॥ ३८९॥ यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत् ॥ सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्य्या पित्तानिलास्रजित् ॥ ३९०॥ व्रणशोथ विषच्छर्दि तृष्णा ग्लानि क्षयापहा ॥ [अथ कम्बीला।] काम्पिल्लः कर्कशश्चन्द्रो रक्ताङ्गो रोचनोऽपि च ॥ काम्पिल्लः कफ पित्तास्र कृमि गुल्मोदर व्रणान् ॥ ३९१॥ हन्ति रेची कटूष्णश्च मेहानाह विषाश्मनुत् ॥

भा० अनन्तर मुलहठीको कहतेहैं ॥ यष्टी, मधुक, क्लीतक ॥ और दूसरा क्लीतनक, जलमें होताहै उस्को मधूलिका कहतेहैं ॥ ३८९॥ मुलहठी शीतल भारी मधुर नेत्रोंको हित करने वाली और बल वर्णको करनेवाली होतीहै ॥ अच्छी स्निग्ध शुक्रकोकरनेवाली केशकेहित स्वरके हित पित्त वातरक्त इनकोजीतनेवाली होतीहै ॥ ३९०॥ ज़ख़्म सूजन विष वमन तृषा ग्लानी क्षय इनकी भी नाशक होती है ॥ अनन्तर कम्बीला के नाम और गुण कहतेहैं। काम्पिल्ल कर्कश चन्द्र रक्तांग रोचन येह ख़ूबकला के नामहैं ॥ ख़ूबकला कफ रक्त पित्त कृमी वायगोला उदर रोग ज़ख़्म इनको नाश करती है ॥ ३९१॥ दस्तावर कड़वी गरम होतीहै। और प्रमेह अफारा विष पथरी इनकी नाशक है ॥

[अथ धन बहेरा।]

आरग्वधो राजवृक्षः शम्याकश्च तुरङ्गुलः ॥ आरवेतो व्याधिघातः कृतमालः सुवर्णकः ॥ ३९२॥ कर्णिकारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्गः स्वर्णभूषणः ॥ आरग्वधो गुरुः स्वादुः शीतलः स्रंसनो मृदुः ॥ ३९३॥ ज्वरहृद्रोग

पित्तास्त्र वातोदावर्त्त शूलनुत् ॥ तत् फलं स्रंसनं रु
च्यं कुष्ठ पित्त कफापहम् ॥ ३६४ ॥ ज्वरेतु सततं प
थ्यं कोष्ठशुद्धि करं परम् ॥ [अथ कटुकी।]
कटी तु कटुका तिक्ता कृष्णभेदा कटुम्भरा ॥ अशो
का मत्स्य शकला चक्राङ्गी शकुलादनी ॥३६५॥ मत्स्यपि
त्ता काण्डरुहा रोहिणी कटु रोहिणी ॥ कट्वी तु
कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः ॥३६६॥
भेदिनी दीपनी हृद्या कफ पित्त ज्वरापहा ॥ प्रमे
ह श्वास कासास्त्र दाह कुष्ठ कृमि प्रणुत् ॥ ३६७॥

भा० अनन्तर अमलतासके नाम और गुण कहतेहैं ॥ आरग्वध राज
वृक्ष शंपाक चतुरंगुल ॥ आरेवत् व्याधिघात कृतमाल सुवर्णक ॥
३६२॥ कर्णिकार दीर्घफल सुवर्णांग वर्णभूषण। येह अमलतासके
नाम हैं ॥ अमलतास भारी मधुर शीतल दस्तावर मुलायम ॥ ३६३॥
होताहै। ज्वर हृद्रोग रक्तपित्त वातकी उदावर्त्त शूल इनका नाशकर्त्ताहै
॥ उसका फल दस्तावर रुचिको करनेवाला कुष्ठ पित्त कफ इनका नाश
क होताहै ॥ ३६४॥ ज्वर में सदा पथ्य होताहै। और अत्यन्त कोष्ठको शु
द्ध करताहै ॥ अनन्तर कुटकी के नाम और गुण कहते हैं।] कटी, कटु
का तिक्ता कृष्णभेदा कटुंभरा ॥ अशोका मत्स्य शकला चक्राङ्गी, शकुला
दनी ॥ ३६५॥ मत्स्यपित्ता, कांडरुहा, रोहणी, येह कुटकी के नाम हैं ॥ कुटकी
कडवी और पाकमें तिक्त रूखी शीतल हलकी ॥ ३६६॥ भेदन करनेवाली दी
पन हृद्य कफ पित्त ज्वरकी नाशक ॥ प्रमेह श्वास कास रक्त पित्त दाह कुष्ठ कृ
मि इनकी नाशक है ॥ ३६७॥

[अथ चिरायता।] किरात तिक्तः कैरातः कटुतिक्तः कि
राततः ॥ काण्डतिक्तो नार्य्यतिक्तो भूनिम्बो रामसेनकः
॥ ३६८॥

किरातको ऽन्यो नैपाल: सोऽर्द्धतिक्तो ज्वरान्तकः॥ कि
रातः सारको रूक्षः शीतल स्तिक्तको लघुः॥ ३९९॥
सन्निपात ज्वरश्वास कफ पित्तास्त्रदाह नुत् ॥ कास शो
थ तृषा कुष्ठ ज्वर व्रण कृमि प्रणुत् ॥ ४००॥

भा॰ अनन्तर चिरायतेके नाम ओर गुण कहतेहैं ॥ किरात, तिक्त, कैरात, कटु तिक्त, किरातक, ॥ काण्ड तिक्त नारी तिक्त भूनिम्ब रामसेनक ॥ ३९८ ॥ दूसरा चिरायता नेपाली वोह कुछ कडुवा होताहै ज्वरांतक येह चिरायतेके नाम हैं ॥ चिरायता सारक रूक्ष शीतल तिक्त लघु होताहै ॥ ३९९ ॥ और सन्निपात ज्वर श्वास कफ पित्त दाह इनका नाशक होताहै॥कास सूजन तृषा कुष्ठ ज्वर व्रण कृमी इन का नाशक है ॥ ४००॥

[अथ इन्द्रयवः।]

उक्तं कुटजबीजन्तु यव मिन्द्रयवं तथा ॥ कालिङ्गञ्चापि
कालिङ्गं तथा भद्रयवा अपि ॥ ५०१॥

[इतिधन्वन्तरि: प्राह अमरे प्राह।]

क्वचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तद भिधायकम् ॥ फलानीन्द्र
यवास्तस्य तथा भद्रयवा अपि ॥ ५०२॥ इन्द्रयवं त्रिदोष
घ्नं संग्राहि कटु शीतलम् ॥ ज्वरातीसार रक्तार्शः वमि
वीसर्प कुष्ठनुत् ॥ ५०३॥ दीपनं गुद कीलास्त्र वातास्र
श्लेष्म शूलजित् ॥

भा॰ अनन्तर इन्द्रयवके नाम और गुण कहतेहैं ॥ कुटजबीज यव इन्द्रयव । कलिंग कालिंग भद्रयव यह इन्द्रजवके नामहैं ॥ ५०१॥ -
इसप्रकार धन्वन्तरीने कहाहै. और अमरमें कहाहै तथा इन्द्रके नाम पर उसके नाम कहे गयेहैं ॥ इन्द्रजव त्रिदोषनाशक संग्राही कटु शीतल ॥ होताहै और ज्वर अतीसार खूनी गवासीर वमन विसर्प कुष्ठ इनका नाशकभीहै ॥ ५०२॥ दीपन

गुदकील रक्तवात कफ शूल इनको जीतनेवाला है ॥

[मयन फलम्] मदनश्छर्दनः पिण्डीनटः पिण्डीतक
स्तथा ॥ करहाटो मरुवकः शल्यको विषपुष्पकः॥ ४०४ ॥
मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्य्योष्णो लेखनो लघुः॥ वान्ति कृ
द् विद्रधिहरः प्रतिश्याय व्रणान्तकः॥ ४०५॥ रूक्षः
कुष्ठ कफा नाह शोथ गुल्म व्रणापहः॥

अथ रासना।] रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा ॥
एलापर्णी च सुरसा सुगन्धा श्रेयसी तथा॥ ४०६ ॥रा
स्नामपाचिनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित्॥ शोथ
श्वाससमीरास्र वात शूलोदरापहा ॥ ४०७॥ कास
ज्वर विषाशीति वातिकामय हिध्महृत् ॥

भा० अनन्तर मैनफल के नाम और गुण कहते हैं ॥ मदन छर्दन पिंडीनट पिन्डीतक ॥ करहाट मरुवक शल्यक विषपुष्पक। येह मैनफल के नाम हैं ॥ ४०४ ॥ मैनफल मधुर तिक्त वीर्यमें उष्ण लेखन हलका होना है ॥ और वमन को करनेवाला विद्रधिका नाशक तथा जुकाम और ज़ख़म का भी नाशक होना है ॥ ४०५॥ रूक्ष कुष्ठ कफ अफारा गुल्म शोथ व्रण इनका भी नाशक है ॥
अनन्तर रास्नाके नाम और गुण कहते हैं ॥ रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा ॥ एलापर्णी सुरसा सुगंधा श्रेयसी ॥ ४०६॥ यह रास्नाके नाम हैं ॥
रास्ना आमपाचन करनेवाली तिक्त भारी उष्ण कफवातको जीतनेवाली। शोथ श्वास वात रक्त वात शूल उदररोग इनको नाश करनेवाली है ॥ ४०७॥ और कास ज्वर विष अस्सी वात के रोग हिध्म इनको नाश करनेवाली है ॥ ७भी

अथ रास्नाभेद नाइ इति लोके ॥ नाकुली सरसा नाग सुग
न्धा गन्धनाकुली ॥ नकुलेष्टा भुजङ्गाक्षी सर्प्पाङ्गी विष

नाशिनी ॥ ०८॥ नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विनाशयेत् ॥ भोगी लूता वृश्चिकाखु विषज्वर कृमि व्रणान् ॥४०९॥ [अथ माचिका ।] (पश्चिम देशे मोइआ इति लोके प्रसिद्धो वृक्ष विशेषः ।)

माचिका प्रस्थिकाम्बष्ठा तथा वा म्बालिकाम्बिका ॥ मयूर विदला केशी सहस्रा बाल मूलिका ॥ ४२० ॥

माचिकाम्ला रसे पाके कषाया शीतला लघुः ॥ पक्वातीसार पित्तास्र कफ कण्ठामया पहा ॥ ४२१ ॥

भा० अनन्तर रास्ना का भेद जिस्को लोकमें नाई कहते हैं ॥ नाकुली सरसा नागसुगंधा गन्धनाकुली ॥ नकुलेष्टा भुजंगाक्षी सर्पाक्षी विषनाशनी येह नाकुली के नाम हैं ॥ ४०८ ॥ नाकुली कसैली तिक्त कटु उष्ण होती है ॥ और सर्प विच्छू मकडी मूसा इनके विषको और ज्वर कृमि व्रण इन को नाश करतीहै ॥ ४०९ ॥ अनन्तर किमाच के नाम और गुण कहतेहैं ॥ पश्चिम देश में मोइआ इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध वृक्ष विशेष है ॥ माचिका अस्थिका अम्बष्ठा अम्बलिका ॥ मयूर विदला केशी सहस्रा बालमूलिका येह किमाचके नाम हैं ॥ ४२० ॥ किमाच रसमें अम्ल पाकमें कसैला शीतल हलका होताहै ॥ पक्वातीसार रक्तपित्त कफ कण्ठरोग इनको नाश करने वालाहै ॥ ४२१॥

अथ तेजवती ।] तेज वल्कल इति च । तेजस्विनी तेजवती तेजो ह्वा तेजनी तथा ॥ तेजस्विनी कफ श्वास कासास्यामय वातहृत् ॥ ४२२॥ पाचन्युष्णा कटुस्तिक्ता रुचि वन्हि प्रदीपिनी ॥

भा० अनन्तर तेजवती के नाम और गुण कहतेहैं ॥ तेजस्विनी तेजवती तेजोह्वा तेजनी येह तेजवती के नाम हैं ॥ तेजवती कफ श्वास कास मुख रोग इनको नाश करतीहै ॥ ४२२॥ पाचन उष्ण कडवी तिक्त रुचिको वन्हीको दीपन करने वाली है ॥

[अथ अभिजिनी मालकाङ्गनी इति वा।]
ज्योतिष्मती स्यात् कटभी ज्योतिष्का कङ्गनीति च॥
पारावत पदी पण्या लता प्रोक्ता ककुन्दनी ॥४२३॥
ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफ समीर जित्॥

भा० अनन्तर मालकंगनी के नाम और गुण कहतेहैं ॥ ज्योतिष्मती कट भी ज्योतिष्का कंगनी ॥ पारावत,पदी,पण्या । येह मालकंगनी के नाम हैं ॥ उस्की लताको ककुन्दनी कहतेहैं ॥ ४२३॥ मालकंगनी कड़वी तिक्त सर कफ वातको जीतनेवालीहै ॥

अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वन्हि बुद्धिस्मृति प्रदा ॥४२४॥
अथ कूट:।] कुष्ठ रोगा ह्वयंव्याप्यं पारिभव्यन्तथोत्पलम्॥
कुष्ठ मुष्णङ्कटु स्वादु शुक्रलन्तिक्तकं लघु ॥ ४२५॥
हन्ति वातास्त्रवीसर्प कासकुष्ठ मरुत्कफान्॥
अथ कुष्ठभेद पुष्कर मूलम्।] उक्तं पुष्कर मूलन्तु पौष्क रं पुष्करञ्च तत्॥ पद्मपत्रञ्च काश्मीरं कुष्ठ भेद मिमं जगु:॥४२६॥ पौष्करं कटुकन्तिक्त मुष्णं वात कफज्वरान्॥ हन्ति शोथारुचि श्वासान्विशेषात्पा र्श्व शूलनुत्॥ ४२७॥

भा० बहुत गरम वमन करानेवाली तीखी और अग्नि बुद्धि स्मृति इनको देनेवालीहे ॥ ४२४॥ अनन्तर कूटके नाम और गुण कहतेहैं।] कुष्ठ रोगा ह्वयवाप्य पारिभव्य उत्पल येह कूटके नामहैं ॥ कूट गर्म कड़वा मधुर शुक्रको बढ़ानेवाली तिक्त और हलका होताहै ॥ ४२५॥ नथावातरक्त येद सव कास कुष्ठ वातकफ इनको नाश करताहै ॥
अनन्तर कूटका भेद उस्का गुण और नाम कहतेहैं ॥ पुष्करमूल पौष्कर पुष्कर । पद्मपत्र काश्मीर येह कुष्ठ के नाम कहेहैं ॥ इसको कूटका भेद कहेहैं

॥ ४२६ ॥ पुष्कर मूल कडवा तिक्त कहाहै और वात कफ ज्वरको । नाश करताहै ॥ तथा शोथ अरुचि श्वास विशेष करके पार्श्व शूलको नाश करताहै ॥ ४२७॥

अथ चोक ।] कटुपर्णी हैमवती हेम क्षीरी हिमावती ॥ हेमाह्वा पीतदुग्धा च तन्मूलञ्चोक मुच्यते ॥ ४२८ ॥ हेमाह्वा रेचनी तिक्ता भेदिन्युत् क्लेश कारिणी ॥ कृमिकण्डू विषानाह कफ पित्तास्र कुष्ठनुत् ॥ ४२९॥

अथ काकरा शृङ्गी ।] शृङ्गी कर्कट शृङ्गी च स्यात् कुलीर विषाणिका ॥ अज शृङ्गी च वक्रा च कर्कटाख्या च कीर्तिता ॥ ४३०॥ शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफ वात क्षय ज्वरान् ॥ श्वासोर्द्ध्व वात तृट् कास हिक्कारुचि वमीन् हरेत् । ३१॥

भा० अनन्तर चोकके नाम और गुण कहतेहैं ॥ कटुपर्णी हैमवती हेमक्षीरी हिमावती हेमाह्वा पीतदुग्धा येह चोकवृक्षके नामहैं ॥ और उस्के मूलको चोक कहतेहैं ॥ ४२८ ॥ चोक दस्तावर तिक्त भेदन करनेवाली और मतलीको करनेवाली होतीहै ॥ तथा कृमि खुजली विष अफारा कफ मूत्र कृच्छ्र रक्तपित्त कुष्ठ इनकी भी नाशक है ॥ ४२९ ॥ अनन्तर काकडासींगी के नाम और गुण कहतेहैं ॥ शृंगी कर्कट शृंगी कुलीर विषाणिका ॥ अजशृंगी वक्रा कर्कटाख्या येह काकडासींगी के नामहैं ॥ ४३० ॥ काकडासींगी कसैली तिक्त कफ वात क्षय ज्वरोंको ॥ और श्वास ऊर्द्ध्ववात तृषा कास हिचकी अरुचि वमन इनको दूर करतीहै ॥ ४३१ ॥

अथ कायफरस्य नाम गुणाः ॥] कट्फलः सोमवल्कश्च कैटर्य्यः कुम्भिका पिच ॥ श्रीपर्णिका कुमुदिका भद्रा भद्रवतीति च ॥ ४३२॥ कट्फल स्तुवरस्तिक्तः कटु र्वात कफज्वरान् ॥ हन्ति श्वास प्रमेहार्शः कास कण्ठामयारुचीः ॥ ४३३ ॥ [अथ भार्गीवमनेटी इति च ।]

भा० अनन्तर कायफलके नाम और गुण कहतेहैं ॥ कट्फल सोमवल्क कै टर्य्य कुंभिका ॥ श्रीपर्णीक कुमुदिका भद्रा भद्रवती। येह काय फलके नामहैं ॥ ॥ ५२२॥ कायफल कसैला तिक्त कड़ुवा होता है । और वात कफ ज्वरोंको नाश करताहै ॥ तथा श्वास प्रमेह ववासीर कास कंठके रोग अरुचि इनकोभी नाश करताहै ॥ ५२३॥ अनन्तर भारंगी के नाम और गुण कहतेहैं ॥

भारङ्गी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मण यष्टिका ॥ भार्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः ॥ ५२४ ॥ दीपनी तुवरा गुल्म रक्तजन्नाशयेद् ध्रुवम् ॥ शोथ कास कफ श्वास पीनस ज्वर मारुतान् ॥ ५२५ ॥

अथ पाषाणभेदः ।] पाषाणभेदकोऽश्मघ्नो गिरिभिद्भिन्नयाजनी ॥ अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्ति शोधनः ॥ ५२६ ॥ भेदनो हन्तिदोषार्शो गुल्म कृच्छ्राश्म हृद्रुजः ॥ योनिरोगान् प्रमेहांश्च प्लीह शूलव्रणानि च ॥ ५२७ ॥

भा० भारंगी भृगुभवा पद्मा फंजी ब्राह्मणयष्टिका ॥ येह भारंगी के नामहैं ॥ भारंगी रूखी कड़ुवी तिक्त रुचिकोकरनेवाली उष्ण पाचन हलकी होतीहै ॥५२४॥ और दीपन कसैली होतीहै ॥ तथा रक्तका वायगोला इसको निश्चय नाश करतीहै ॥ और शोथ कास कफ श्वास पीनस ज्वर वायु इनकोभी नाश करतीहै ॥ ५२५॥ अनन्तर पाषाण भेदके नाम और गुण कहतेहैं ॥ पाषाण भेदक अश्मघ्न गिरभिन्न भिन्नयाजनी। येह पाषाण भेदकेनामहैं ॥ पाषाणभेद शीतल तिक्त कसैला वस्तिशोधन होताहै ॥ ५२६॥ और भेदनहै । तथादोष ववासीर गुल्म मूत्रकृच्छ्र पथरी हृदयकी पीड़ा ॥ योनिरोग प्रमेहतिल्ही शूल व्रण इनको भी नाश करता हैं ॥ ५२७ ॥

अथ धावई ।] धातकी धातुपुष्पी च ताम्रपुष्पी च कुञ्जरा ॥ सुभिक्षा बहुपुष्पी च वन्हिज्वाला च सास्मृता ॥५२८

धातकी कटुका शीता मृदु कृत्तुवरा लघुः॥ तृष्णाती सार पित्तास्र विष कृमि विसर्पजित्॥ ४२९॥

अथ मञ्जिष्ठा।] मञ्जिष्ठा विकसा जिङ्गी समङ्गा कालमेषिका॥ मराडूकपर्णी भगडीरी भगडी योजन वल्ल्यपि॥ ॥४३०॥ रसायन्यरुणा काला रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका॥ भगडीतकी च गगडीरी मञ्जूषा वस्त्ररञ्जिनी॥४३१॥ मञ्जिष्ठा मधुरा तिक्ता कषाया स्वर वर्णकृत्॥ गुरु रुष्णा विष श्लेष्म शोथ योन्यक्षि कर्णरुक्॥ ४३२॥ रक्तातीसार कुष्ठास्र वीसर्प्प व्रणमेहनुत्॥

भा० अनन्तर धवके नाम और गुणकहतेहैं॥ धातुकी धातुपुष्पी ताम्रपुष्पी कुंजरा॥ सुभिक्षा बहुपुष्पी वन्हिज्वाला। येह धवके नाम कहेगये हैं॥ ४२८॥ धव काड़वी शीतल मुलायम करनेवाली। कसैली और हलकी होतीहै॥ तथा तृषा अतीसार रक्तपित्त विषकृमि विसर्प। इनको जीतनेवाली है॥ ४२९॥
अनन्तर मजीठके नाम और गुण कहतेहैं॥ मजिष्ठ विकसा जिंगी समंगा कालमेषिका॥ मंडूकपर्णी भंडीरी भंडी योजनवल्ली॥ ४३०॥ रसायनी अरुणा काला रक्तांगी रक्तयष्टिका॥ भगडीतकी गंडीरी मञ्जूषावस्त्र रंजनी। येह मजीठके नाम हैं॥ ४३१॥ मंजीठ मधुर तिक्त कसैली होतीहै॥ और स्वर वर्णको करनेवाली। तथा भारी उष्ण होतीहै और विष कफ शोथ योनि पीड़ा नेत्रपीड़ा कर्णपीडा॥ ४३२॥ रक्तातीसार कुष्ठ रक्तपित्त विसर्प व्रण प्रमेह। इनकोनाश करनेवाली है॥

[अथ कुसुम्भ।]

स्यात् कुसुम्भम्वन्हि शिखं वस्त्ररञ्जक मित्यपि॥ कुसुमम्वातलं कृच्छ्र रक्तपित्त कफापहम्॥ ४३३॥

अथ लाही।] लाक्षापलं कषा लक्षा यावो द्रुमामयो जतुः॥

लाक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्धा च तुवरा लघुः ॥
॥४३४॥ ब्राह्मण्यङ्गार वल्ली च खरशाका च हञ्जि
का ॥ अनुष्णा कफ पित्तास्र हिक्का कास ज्वर भ्रमुत् ॥
॥४३५॥ अरोरः क्षत वीसर्प्प क्रमि कुष्ठ गदापहा ॥
अलक्तको गुणै स्तद्वद्विशेषाद् व्यङ्ग नाशनः ॥४३६॥

भा॰ अनन्तर कुसुंभके नाम और गुण कहते हैं ॥ कुसुंभ वन्हि शिख, वस्त्ररंजक, येह कुसुंभके नाम हैं ॥ कुसुंभ वातज है और मूत्र कृच्छ्र रक्तपित्त कफ इनका भी नाशक है ॥ ४३३॥ ३

अनन्तर लाहीके नाम और गुण कहते हैं ॥ लाक्षा, पलंकषा, लक्ता, वटक्षा मय जतु । येह लाहीके नाम हैं ॥ लाही वर्णको करनेवाली शीतल बलको देनेवाली चिकनी कसेली और हलकी होती है ॥ ४३४ ॥ ब्राह्मणी अंगार वल्ली खरशाका हञ्जिका ॥ येह भारंगीके नाम हैं ॥ भारंगी शीतल कफ रक्तपित्त हुचकी कास ज्वर इनकी नाशक है ॥ ४३५ ॥ और उरखम उरक्षत बिसर्प क्रमि कुष्ट इन रोगोंकी भी नाशक है। लाही गुणकरके इसीके समान है । लेकिन् विशेष करके व्यङ्गकी नाशक है ॥ ४३६ ॥

[अथ हरिद्रा ।]

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी ॥ क्रमि
घ्ना हलदी योषित् प्रिया हट्ट विलासिनी ॥ ४३७ ॥
हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफ पित्त नुत् ॥ व
र्ण्या त्वग्दोष मेहास्र शोथ पाण्डु व्रणापहा ॥ ४३८ ॥
कर्पूर हरिद्रा ।] दार्वी भेदास्त्र गन्धा च सुरभी दारु दारु च ।
कर्पूरा पद्म पत्रा स्यात सुरीमन् सुरतारका ॥ ४३९ ॥

भा॰ अनन्तर हरिद्राके नाम और गुण कहते हैं ॥ हरिद्रा, कांचन, पीता, निशाख्या, वरवर्णिनी, ॥ क्रमिघ्ना, हलदी, योषितप्रिया, हट्ट, विलासि

नी ॥ ४३७ ॥ येह हलदी के नाम हैं। हलदी कडुवी तिक्त रूक्ष उष्ण कफ पित्तकी नाश करती है। वर्णको करने वाली त्वचाके दोष प्रमेह रक्त शोथ पांडुरोग और व्रण इनको नाशक है ॥ ४३८ ॥ कपूर हलदी के नाम और गुण कहते हैं ॥ दारवी भेदा आम्र गंधा सुरभि दारु दारू ॥ कर्पूरा पद्मपत्रा सुरी मद् सुरनारिका। येह कपूर हलदी के नाम हैं ॥ ४३९ ॥

अथ वनहरदी।] अरण्यहलदी कन्दः कुष्ठ वातास्र नाशनः। आम्र गन्धि हरिद्रा या सा शीता वातला मता ॥ ४४० ॥ पित्तहृन्मधुरा तिक्ता सर्व्वकण्डु विनाशिनी ॥ दारुहरिद्रा।] दार्वी दारु हरिद्रा च पर्ज्जन्या पर्ज्जनीति च ॥ कटं कटेरी पीता च भवेत्सैव पचम्पचा ॥ ४४१ ॥ सैव कालीयकः प्रोक्तस्तथा कालेयकोऽपि च ॥ पीतद्रुश्च हरिद्रुश्च पीतदारु कपीतकम् ॥ ४४२ ॥ दार्वी निशागुणा किन्तु नेत्रकर्णास्य रोगनुत् ॥

भा० अनन्तर वनहलदी के नाम और गुण कहते हैं ॥ अरण्यहलदी कन्द ये कुष्ठ वात रक्त को नाश करने वाली है ॥ और कपूर हलदी शीतल वातको करने वाली कहीगई है ॥ ४४० ॥ और पित्तको नाश करने वाली मधुर तिक्त सम्पूर्ण खुजलियों को नाश करने वाली है ॥ दारु हलदी के नाम और गुण कहते हैं ॥ दारवी दारुहरिद्रा पर्जन्या पर्जनी ॥ कटं कटेरी, पीता, पचंपचा ॥ ४४१ ॥ कालीयक कालेयक पीतद्रुम हरिद्रा पीतदारु कपीतक येह दारु हरदी के नाम हैं ॥ ४४२ ॥ दारु हरदी हरदी के गुणके सदृश होती है। इनको विशेष करके नेत्र कर्ण मुख इनके रोगों को नाश करने वाली है ॥

[रसाञ्जनम्।]

दार्वी क्वाथसमं क्षीरं पादम्पक्वा यथा घनम् ॥ तदा रसाञ्जनाख्यन्तत् नेत्रयोः परमं हितम् ॥ ४४३ ॥ रसाञ्जनन्तार्क्ष्य शैलं रसगर्भञ्च तार्क्ष्यजम् ॥ रसाञ्जनङ्कः

टु श्लेष्म विष नेत्र विकार नुत् ॥ ४४४ ॥ उष्णं रसायनन्तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत् ॥ [अथ वकुची ।] अवल्गुजो वाकुची स्यात् सोमराजी सुपर्णिका ॥ शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतफलीति च ॥ ४४५ ॥ सोमवल्ली कालमेषी कुष्ठघ्नी च प्रकीर्त्तिता ॥ वाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी ॥ ४४६ ॥ विष्टम्भहृद्धिमा रुच्या सरा श्लेष्मास्र पित्त नुत् ॥ रूक्षा हृद्या श्वासकुष्ठ मेहज्वर कृमिप्रणुत् ॥ ४४७ ॥ तत्फलं पित्तलं कुष्ठ कफानिलहरं कटु ॥ केश्यन्त्वच्यं वमिश्वास कास शोथामपाण्डुनुत् ॥ ४४८ ॥ [अथ चक्रमर्द्दः ।]

है ॥ ४४४ ॥ और उष्ण रसायन तिक्त छेदन व्रणदोष का नाशक है ॥ अनन्तर वकुची के नाम और गुण कहते हैं ॥ अवलगुज वाकुची सोमराजी सुपर्णिका शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतिफली ॥ ४४५ ॥ सोमवल्ली कालमेषी कुष्टघ्नी । ये वकुची के नाम कहे हैं ॥ वकुची मधुर तिक्त पाक में कटु रसायनी ॥ ४४६ ॥ विष्टम्भ को नाश करनेवाली शीतल रुचि को करनेवाली। दस्तावर कफ और पित्त को नाश करनेवाली है ॥ रूक्ष हृदय को प्रिय श्वास कुष्ठ प्रमेह ज्वर कृमि । इनको नाश करने वाली है ॥ ४४७ ॥ इसका फल पित्त को करनेवाला । कुष्ठ कफ वात इनका नाशक कड़वा ॥ केशों के हित त्वचा को अच्छा करनेवाला वमन श्वास कास सूजन पांडुरोग इनका नाशक है ॥ ४८

चक्रमर्द्दः प्रपुन्नाटो दद्रुघ्नो मेषलोचनः ॥ पद्माटः स्या

देड गजश्चक्री पुन्नाट इत्यपि ॥ ४४९॥ चक्रमर्दो लघुः स्वादु रूक्षः पित्तानिलापहः ॥ हृद्यो हिमः कफश्वास कुष्ठदद्रु कृमीन् हरेत् ॥ ४५०॥ हन्त्युष्णन्तत् फलं कुष्ठ कण्डू दद्रु विषानिलान् ॥ गुल्मकास कृमि श्वास नाशनं कटुकं स्मृतम् ॥ ४५१॥ [अथ अतीसः।] विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रति विषारुणा ॥ शुक्ल कन्दा चोपविषा भङ्गुरा घुणवल्लभा ॥ ४५२॥ विषासोष्णा कटु स्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत् ॥ कफ पित्ता निसाराम विषकासवमि कृमीन् ॥ ४५३॥

भा० अनन्तर चकौड़ के नाम और गुण कहते हैं ॥ चक्रमर्द प्रपुन्नाट दद्रुघ्न मेषलोचन पद्माट । ड्गज चक्रीपुन्नाट । येह चकौड़के नाम हैं। ४४९॥ चकौड़ हलका मधुर रूखा पित्त वायुका नाशक ॥ हृदय का प्रिय शीतल कफ श्वास कुष्ठ दाद कृमी इनको नाश करता है ॥ ४५०॥ इसका फल वह नगरम होता है और कुष्ठ कंडु दाद विषवात ॥ वायगोला कास कृमि श्वास इनका नाशक है। और कडुवा कहा गया है ॥ ४५१॥
अनन्तर अतीस के नाम और गुण कहते हैं ॥ विषात्वतिविषा विश्वाशृंगी प्रतिविषा अरुणा ॥ शुक्लकंदा उपविषा भंगुरा घुणवल्लभा। येह अतीसके नामहैं ॥ ४५२॥ अतीस कुछ गरम कड़वी तिक्त पाचन दीपन होती है ॥ और कफ पित्त अतिसार आम विष कास वमन कृमी इनको नाश करनी है ॥ ४५३॥

अथ सावरलोध: पटिआ लोध इति लोके।] लोध्रस्ति रीटकश्चैव शावरी माल्वस्तथा ॥ द्वितीयःपट्टिका लोध: क्रमुकः स्थूल वल्कलः ॥ ४५४॥ जीर्णपत्रो बृहत्पत्रः पट्टी लाक्षा प्रसादनः ॥ लोध्रो ग्राही लघुः

शीत स्वचुष्यः कफपित्तनुत् ॥ ४५५॥ कषायो रक्त पित्तास्रग् ज्वरातीसार शोथहृत् ॥ [अथ लशुनः।]

भा० लशुनस्तु रसोनः स्यादुग्रगन्धो महौषधम् ॥ अरिष्टो म्लेच्छकन्दश्च यवनेष्टो रसोनकः ॥ ४५६॥

भा० अनन्तर लोध और पठानीलोधके नाम और गुण कहते हैं ॥ लोध्र किरीटक शावर मालव। यह लोधके नाम हैं ॥ और दूसरी पट्टिका लोध्र क्रमिक स्थूल वल्कल ॥ ४५४॥ जीर्णपत्र बृहत्पत्र पट्टी लाक्षा प्रसादन येह पठानी लोधके नामहैं ॥ लोध ग्राही अल्प शीतल चक्षुकेहीत कफ पित्तकी नाशक है ॥ ४५५॥ और कसैली रक्त पित्त ज्वर अतीसार शोथ। इनकी नाशक है ॥ अनन्तर लहसुन के नाम और गुण कहतेहैं ॥ लहसुन रसोन उग्रगंध महौषध ॥ अरिष्ट म्लेच्छकन्द यवनेष्ट रसोनक येह लहसुन के नामहैं ॥ ४५६॥

तदा ततोऽपतद्विन्दुः सरसोनोऽभवद्भुवि ॥ पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः ॥ ४५७॥ तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥ कटुकश्चापिमूलेषु तिक्तपत्रेषु संस्थितः ॥ ४५८॥ नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः ॥ बीजेतु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः ॥ ४५९॥ रसोनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धोष्णः पाचनः सरः ॥ रसे पाके च कटुकस्तीक्ष्णो मधुरको मतः ॥ ४६०॥

भा० जब उससे पृथ्वीपर बूंद गिरी वो लहसुन भया ॥ पांच रसों से युक्त और अम्ल रस से रहित होता है ॥ ४५७॥ इसवास्ते द्रव्यों के गुण जाननेवालों ने रसोन ऐसा कहाहै ॥ मूल में कडुवा और पत्र में तिक्त रहता है ॥ ४५८॥ नालमें कसैला और नालके अग्रभागमें न-

वरण ऐसा कहा गयाहै । बीजमें मधु इसप्रकार रस इसके गुण जाननेवालोंने कहेहैं ॥ ४५९ ॥ लहसुन धातुवों के बढ़ानेवाला और पुरुषत्व को बढ़ाने वाला । स्निग्ध उष्ण पाचन दस्तावर होताहै तथा रस और पाक में कड़वा तीक्ष्ण उष्ण और मधुर भी कहा गयाहै ॥ ४६० ॥ टूटे हाड़को जोड़नेवाला कंठ के हितभारी रक्त पित्त को बढ़ानेवाला ॥ बल वर्णके बढ़ानेवाला है ॥

बलवर्णकरो मेधा हितो नेत्र्यो रसायनः ॥ ४६१ ॥ हृद्रोग जीर्णज्वर कुक्षि शूल विबन्धगुल्मा रुचि कास शोफान् ॥ दुर्नाम कुष्ठा नलसाद जन्तु समीरण श्वास कफांश्च हन्ति ॥ ४६२ ॥ मद्यं मांसं तथाम्लञ्च हितं लशुनसेविनाम् ॥ व्यायाममातपं रोष मतिनीरं पयो गुडम् ॥ ४६३ ॥ रसोनमश्नन् पुरुषस्त्यजेदेतान्निरन्तरम् ॥

भा० टूटेहाड़ का जोड़नेवाला कंठकेहित भारी रक्त पित्तको बढ़ाने वाला ॥ बलवर्णको बढ़ाने वाला कांतिके हित नेत्रके हित रसायन होताहै ॥ ४६१॥ और हृदरोग जीर्णज्वर कूखके शूलको विबंध वायगोला अरुचि कास शोथ दुरनाम कुष्ठ अग्निमांद्य कृमि वात श्वास और कफ इनको नाश करताहै ॥ ४६२ ॥ लहसुन के सेवन करनेवाले को मद्य मांस और खटाई येह हित है ॥ और कसरत धूपक्रोध बहुत जल दूध गुड़ ॥ ४६३ ॥ इनको लहसन खाने वाला पुरुष निरन्तर त्यागदेवे ॥

[अथ पिण्डयाज्ञ।]

पलाण्डुर्यवनेष्टश्च दुर्गन्धो मुखदूषकः ॥ पलाण्डुस्तु गुणैर्ज्ञेयो रसोनसदृशो गुणैः ॥ ४६४ ॥ स्वादुपाके रसोऽनुष्णः कफकृन्नाति पित्तलः ॥ हरते केवलं वातं बलवीर्य्यकरो गुरुः ॥ ४६५ ॥

भा० अनन्तर प्याज़के नाम और गुण कहतेहैं ॥ पलां डुये वनेष्ट दुर्गन्ध मुखदूषक। ये प्याज़के नामहैं ॥ प्याज़ लहसुनके सदृश गुण हैं ॥४६४ ॥ पाकमें मधुर रस शीत कफको करनेवाला और बहुत पित्त करनेवाला नहीं ॥ केवल वातको नाशकरताहै। और बल वीर्य्यको करनेवालाहै। तथा गुरुहै ॥ ४६५॥

अथ भेला। भल्लातकं त्रिषु प्रोक्त मरुष्कोऽरुष्करोऽग्निकः॥ तथैवाग्निमुखी भल्ली वीर दृक्षश्च शोफ कृत् ॥ ॥४६६॥ भल्लातक फलं पक्वं स्वादु पाकरसं लघु ॥ कषायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं च्छेदि भेदनम् ॥ ४६७ ॥ मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफ वात व्रणोदरम् ॥ कुष्ठार्शो ग्रहणी गुल्म शोफानाह ज्वर कृमीन् ॥ ४६८॥

भा० अनन्तर भिलावेके नाम और गुण कहतेहैं ॥ भल्लातक, तीनोंमें कहागयाहै। मरुष्क अरुष्कर अग्निक। येह भिलावेके नामहैं ॥ इसी प्रकार अग्निमुखी भल्ली वीरदृक्ष शोफ कृत्। येह भी कहेगयेहैं ॥४६६॥ भिलावेका फल पकाहुवा पाकमें मधुर रस हलका ॥ कसेला पाचन स्निग्ध तीखा उष्ण छेदन करनेवाला। और भेद न करनेवाला होताहै ॥ ४६७॥ और कान्तिको करनेवाला अग्निको करनेवाला होताहै। कफ वात व्रण और उदररोग इनको नाश करताहै ॥ तथा कुष्ठ बवासीर संग्रहणी वाय गोला शोथ अफारा ज्वर कृमि इनको भी नाशकरताहै ॥ ४६८॥

तन्मज्जा मधुरो दृष्यो बृंहणो वात पित्तहा ॥ वृन्त मारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत् ॥ ४६९ ॥ भल्लातकः कषायोष्णः शुक्रलो मधुरो लघुः ॥ वातश्लेष्मोदरानाह कुष्ठार्शो ग्रहणी गदान् ॥ ४७०॥ हन्ति गुल्मज्वरश्वित्र वन्हिमान्द्य क्रिमिव्रणान् ॥

उसकी गिरी मधुर पुरुषत्व की बढ़ानेवाली ॥ वलकोदेनेवाली वात पित्तकी नाशक होती है । गोल भिलावा मधुर पित्तका नाशक केश अग्निको करनेवाला होताहै ॥ ४६८ ॥ भिलांवा कसेला है गरम शुक्रको करनेवाल मधुर हलका होताहै । वातकफ उदर रोग अफारा कुष्ठ बवासीर संग्रहणी इनको नाश करताहै ॥ ४६९ ॥ ओर वायगोला ज्वर स्वेतकुष्ट अग्निमान्द्य कृमि व्रण इनको भी नाशकरता है ॥ [अथ भङ्गा ।]

भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया ॥ भङ्गा कफ हरी तिक्ता ग्राह णीपाचनी लघुः ॥ ४७१ ॥ तीक्ष्णोष्णा पित्तला मोह मन्दवाग्वन्हि बर्द्धिनी ॥

[अथ पोस्ता ।] तिलभेदः खसतिलः कास श्वास हरः स्मृतः ॥ स्यात्तु वा खसफलोद्भूतं वल्कलं शीतलं लघु ॥४७२॥ ग्राहि तिक्तं कषायञ्च वातकृत् कफास्त्रहृत् ॥ धातूनां शोषकं रूक्षं मदकृद् वाग्विवर्द्धनम् ॥ ४७३ ॥ मुहुर्मोहकरं रुच्यं सेवनात् पुंस्त्व नाशनम् ॥

भा॰ अनन्तर भांगके नाम और गुण कहतेहैं ॥ भंगा गंजा मातुलानी मादिनी विजया जया । येह भांग के नामहैं ॥ भांग कफको करनेवाली तिक्त ग्राहणी पाचन हलकी ॥ तीक्ष्ण उष्ण होती है और पित्तको करनेवाली मोह मन्दवाणी मन्दाग्नि । इनको बढ़ाने वाली होती है ॥ ४७१ ॥ अनन्तर पोस्त के नाम और गुण कहते हैं ॥ तिल भेद खसतिल । येह पोस्तके नामहैं ॥ और कास श्वास के नाशक कहे गये हैं ॥ पोस्त के फल में उत्पन्न हुवा वल्कल शीतल हलका ॥४७२॥ ग्राही तिक्त कसैला वातको करने वाला कफ रक्त का नाशक ॥ धातुओं का शोषक रूखा नशा करने वाला वाणी को बढ़ानेवाला ॥ ४७३ ॥ वारं वार मोहको करने वाला रुचि को देनेवाला होताहै । और सेवन से पुरुषत्वको नाश करनेवाला है ॥ [अथ अफ़ीम ।]

अनन्तर अफीमके नाम और गुण कहतेहैं ॥

उक्तं खसफलक्षीरमा फूकमहि फेनकम् ॥ आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वात पित्तलम् ॥ ४७४ ॥ तथा खस फलोद्भूत वल्कल प्रायमित्यपि ॥

[अथ खाखसदान ।] उच्यन्ते खसबीजानि ते खाखस तिला अपि ॥ खसबीजानि वल्यानि वृष्याणि सुगुरूणि च ॥ ४७५ ॥ जनयन्ति कफम् तानि शमयन्ति समीरणम् ॥ [अथसैन्धव ।] सैन्धवोऽस्त्री शीन शिवं माणिमन्थञ्च सिन्धुजम् ॥ सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनं पाचनं लघु ॥ ४७ ॥ स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् ॥

भा० पोस्त के फलके दूधको अफूक और अहिफेनक कहाहै ॥ अफीम सुकानेवाली ग्राही कफको नाश करनेवाली वात पित्तको करनेवाली होतीहै ॥ ४७४ ॥ तथा पोस्तके फलसे उत्पन्न हुवे वल्कल सदृश प्राय: गुणमें होतीहै ॥ अनन्तर खस खस केनाम और गुण कहतेहैं ॥ पोस्तके बीजोंको खाखस-तिलभी कहतेहैं ॥ खस खस बलको देनेवाली पुष्ट भारी होतीहै ॥ ४७५ ॥ और कफको उत्पन्न करतीहै । तथा वात को शमन करतीहै ॥

अनन्तर सैन्धव केनाम और गुणकहतेहैं ॥ सैन्धव शीन शिव माणिमंथ सिन्धुज येह सैंधव के नामहैं ॥ सैंधव लवण स्वादु दीपन पाचन हलका होताहै । चिकना रुचिको देनेवाला शीतल पुरुषत्व कोकरनेवाला सूक्ष्म नेत्रका हित और त्रिदोषका नाशक होताहै ॥ ४७६ ॥

[अथ शाकम्भरि ।] शाकम्भरीयं कथितं गुडाख्यं रोमकन्तथा ॥ गुडाख्यं लघु वातघ्नमत्युष्णं भेदि पित्तलम् ॥ ॥ ४७७ ॥ तीक्ष्णोष्णञ्चापि सूक्ष्मञ्चाभिष्यन्दि कटुपाकि च

[अथ पाङ्गन।] सामुद्रं यत्तु लवणं मक्षारं वशरञ्च तत् ॥ सा मुद्रजं सागरजं लवणो दधि सम्भवम् ॥ ४७८ ॥ सामु द्रं मधुरम्पाके सतिक्तं मधुरङ्गुरु ॥ नात्युष्णं दीपनं भे दि सक्षार मविदाहिच ॥ ४७९ ॥ श्लेष्मलं वातनुत् तिक्त मरूक्षं नाति शीतलम् ॥

भा० अनन्तर साम्भर नमक के नाम और गुण कहतेहैं ॥ शाकम्भरी गुडा ख्य तथा रौमक । येह सांभर नमक के नाम कहेगयेहैं ॥ सांभ र हलका वातका नाशक बहुत गरम भेदी पित्तको करनेवाला ॥ ४७७ ॥ तीखा उष्ण सू क्ष्म अभिष्यन्दि पाकमें कटु होताहै ॥ अनन्तर पाङ्गा के नाम और गुण कहतेहैं ॥ समुद्र जो लवण होताहै वोह क्षाररहित होताहै ॥ उसको वशार कहतेहैं ॥ सामुद्रज सागरज उदधिसम्भव । येह पाङ्गा लवण के नाम हैं ॥ ॥ ४७८ ॥ पाङ्गा पाकमें मधुर कुछ तिक्त मधुर भारी । अति उष्ण दीपन भेदी कुछ क्षार और अविदाही होताहै ॥ ४७९ ॥ और कफको करनेवाला वातका नाशक तिक्त स्निग्ध न अतिशीतल होता है ॥

अथ विरिया सोचर इति।] विडम्पाकञ्च कृतकं तथा द्राविड़ मासुरम् ॥ विडं सक्षार मूर्द्धाधः कफवातानु लोमनम् ॥ ४८० ॥ (क।(ऊर्द्धं कफ मधोवातं मन्वारयेदित्यर्थः।) दीपनं लघु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं रुच्यं व्यवायिच ॥ विबन्धानाह विष्टम्भ हृद्रुज गौरव शूलनुत् ॥ ४८१ ॥

भा० अनन्तर विडके नाम और गुण कहतेहैं ॥ विड़पाक कृतक तथा द्रा विड़ आसुर । येह नाम विड़के हैं ॥ विड़ कुछ क्षार ऊर्द्ध अध कफ वात का अनुलोमन करनेवाली है ४८० ॥ (क।) ऊपर कफ औरनीचे वात इनको निकालताहै ॥ दीपन हलका तीखा उष्ण रूखा रुचिको करनेवाला व्य वाई होताहै । और विबन्ध अफारा विष्टम्भ हृदयकी पीड़ा भारीपन औ र शूल । इनका नाशक होताहै ॥ ४८१॥

[अथ चौहार कीड़ा इति च।] सौवर्च्चलं स्याद्रुचकमन्ध पाकञ्च तन्मतम् ॥ रुचकं रोचनम्भेदी दीपनम्पाचनं स्परम् ॥ ४८२॥ सुस्नेहं वातनुन्नाति पित्तलं विशदं लघु॥ उद्गार शुद्धिदं सूक्ष्मं विबन्धानाह शूलजित् ॥४८३॥ (रेहगह गया प्रभृति।) औद्भिदम्पांशु लवणं यज्जातं भूमितः स्वयम् ॥ क्षारङ्गुरु कटु स्निग्धं शीतलं वातनाशनम् ॥ ४८४॥

भा० अनन्तर सोंचरके नाम और गुण कहतेहैं ॥ सौवर्चल रुचक अन्धपाक। ये सौचरकेनामहैं। सोंचर रुचिको करनेवाला भेदी दीपन अत्यन्त पाचन होताहै ॥ ४८२॥ चिक्कण वातका नाशक और न अतिपित्तको करनेवाला विषघ्न हलका होताहै॥ और डकारको शुद्ध करनेवाला सूक्ष्म विबंध अफारा और शूल इनका जीतनेवालाहै ॥ ४८३॥ अनन्तर कचलोन के नाम और गुण कहतेहैं॥ औद्भिद पांसु लवण येह कचलोन के नामहैं॥ जो भूमिसे स्वयं उत्पन्न होता है॥ क्षार भारी कड़वा स्निग्ध शीतल वातका नाशक है॥ ४८४॥

[अथ चणकलोनी।] चणकाम्लक मत्युष्णं दीपनन्दन्तहर्षणम् ॥ लवणानुरसं रुच्यं शूलाजीर्ण विबन्धनुत्॥ ४८५॥ [अथ यवक्षारः साजीसोरा।] पाक्यः क्षारो यवक्षारो यावशूको यवाग्रजः॥ स्वर्जिकापि स्मृतः क्षारः कापोतः सुखवर्चकः॥ ४८६ कथितः स्वर्जिका भेदो विशेषज्ञो सुवर्च्चिकः॥ यवक्षारो लघुः स्निग्धः सुसूक्ष्मो वह्नि दीपनः ॥ ४८७॥

भा० अनन्तर चनेके खारको कहतेहैं॥ चनेका खार बहुत गरम दीपन। दांतों को रेंठनेवाला होताहै। और लवणके अनुरस रुचिको करनेवाला। तथा शूल अजीर्ण विबंध। इनका नाशक है ॥४८५॥

अनन्तर जवाखार, सज्जी, शोरा, इनके नाम और गुण कहतेहैं ॥ पाकाखार, यवाक्षार यवैश्कयवाग्रज येह यवाखार के नामहैं ॥ सज्जी भी क्षार कही गई है कापोत सुखवर्चक ॥ ४८६ ॥ येह सज्जीका भेद बुद्धिवानोंने सुवर्चिक कहाहै। जवाखार हलका स्निग्ध बहुत सूक्ष्म अग्निकोदीपन करनेवालाहै ॥ ४८७ ॥

निहन्ति शूलवातामश्लेष्मश्वासगलामयान् ॥ पा
ण्डुर्शो ग्रहणी गुल्मानाह प्लीह हृदामयान् ॥ ४८८ ॥
स्वर्जिकाल्पगुणा तस्माद्विशेषाद् गुल्म शूलहृत् ॥
सुवर्चिका स्वर्जिकावद् बोद्धव्या गुणतो जनैः ॥ ४८९ ॥
[अथ सोहागा।] सौभाग्यं टङ्कणं क्षारो धातुद्रावक मुच्यते ॥
टङ्कणं वन्हि कद्रूक्षं कफ हृद् वात पित्तकृत ॥ ४९० ॥

भा० और शूल वात आम कफ श्वास गलेके रोग इनको नाश करता है ॥ तथा पांडुरोग बवासीर संग्रहणी वायगोला अफारा प्लीह हृदय के रोग इन कोभी नाश करताहै ॥ ४८८ ॥ सज्जी उस्से अल्प गुण वाली है। और विशेष करके वायगोला को नाश करती है। और शोरा सज्जीके समान गुण से लोग कहतेहैं ॥ ४८९ ॥ अनन्तर सुहागेके नाम और गुण कहतेहैं ॥ सौभाग्य टंकण क्षार धातुद्रावक कहतेहैं ॥ सुहागा अग्निको करनेवाला और रूखा कफका नाशक वात पित्तको करनेवाला होता है ॥ ४९० ॥

अथ क्षारद्वयं क्षार यवम् ॥ स्वर्जिका यावशूकश्च क्षार द्व
यमुदाहृतम् ॥ टङ्कणेन युतं तत्तु क्षारत्रय मुदीरितम् ॥
॥ ४९१ ॥ मिलितस्तु क्षारत्रय गुणवद्विशेषाद्गुल्महृत्परम् ॥
[क्षाराष्टकं] पलाश वज्री शिखरिचिञ्चार्क तिलनालजाः ॥
यवजः स्वर्जिका चेति क्षाराष्टक मुदाहृतम् ॥ ४९२ ॥ क्षा
रा एतेऽग्निना तुल्या गुल्म शूलहरा भृशम् ॥

भा० अनन्तर क्षारद्वय और क्षारत्रयको कहते हैं ॥ सज्जीखार जवाखार इन को क्षार द्वय कहाहै ॥ सुहागेसे युक्त वोह क्षार त्रय कहागयाहै ॥ ४८१ ॥ वोह मिलेहुऐ उक्तगुणको करनेवालेहैं। विशेष करके अत्यंत वायगोलाके नाशकहैं ॥ अनन्तर क्षाराष्टकको कहते हैं ॥ पलास थूहर चिचेरा इमली आक तिल ॥ जव और सज्जी इन आठ खारोंको क्षाराष्टकहाहै ॥ ४८२ ॥ येह क्षार आगके समानहैं और वायगोला और शूल इनके अत्यन्त नाशकहैं ॥

[अथ चुक्रम्।] चुक्रं सहस्रवेधि स्याद्रसाम्लं शुक्तमित्यपि ॥
चुक्रमत्यम्लमुष्णञ्च दीपनं पाचनं परम् ॥ ४८३ ॥
शूल गुल्म विबन्धाम वात श्लेष्महरं सरम् ॥ क्रमि
तृष्णास्यवैरस्य हृत्पीडा वन्हिमान्द्यहृत् ॥ ४८४ ॥

भा० अनन्तर चोकके नाम और गुण कहते हैं ॥ चुक्र सहस्रवेधि रसाम्ल, शुक्त येह चोकके नामहैं ॥ चोक बहुत खट्टा गर्म दीपन पाचन होता है। शूल वाय गोला विबंध आमवात कफ इनका नाशक और दस्तावर होता है ॥ क्रमि तृषा मुखकी विरसता हृदयपीडा अग्निमान्द्य इनका नाशक है ॥ ४८४ ॥

इतिश्री मिश्र लटकन तनय श्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे हरीतक्यादि वर्गः ॥

अथ कर्पूरादि वर्गः। [तत्रादौ कर्पूरस्य नाम गुणाश्च]
पुंसि क्लीवे च कर्पूरः सिताभ्रो हिमवालुकः ॥ घ
नसारश्चन्द्र संज्ञः हिमनामापि सस्मृतः ॥ १ ॥
कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो लघुः ॥ सु
रभिर्म्मधुरस्तिक्तः कफ पित्त विषापहः ॥ २ ॥

भा० इतिश्री मिश्र लटकनके पुत्र श्रीभावमिश्रका विरचित भाव प्रकाशमें हरीतक्यादि वर्ग समाप्त ॥

अनन्तर कर्पूरादि वर्गः] उसमें प्रथम कर्पूरके नाम और गुण कहते

नेहैं ॥ पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंग में भी कर्पूर सिताभ्र हिमवालुक ॥ घनसार चन्द्र संज्ञ हिम नामवालाभी वोह कहा गया है ॥१॥ कर्पूर शीतल है वृष्य चक्षुके हित लेखन हलका ॥ सुगन्धयुक्त मधुर तिक्त होता है । और कफपित्त विष इनका नाशक है ॥२॥

दाह तृष्णास्य वैरस्य मेदो दौर्गन्ध्य नाशनः ॥ कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्व प्रभेदतः ॥३॥ पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ॥ [अथ चिनीआ कर्पूरः] चीनाक संज्ञः कर्पूरः कफक्षयकरः स्मृतः ॥ कुष्ठ कण्डू वमिहर स्तथा तिक्तरस श्च सः ॥४॥

अथ कस्तूरी ।] मृगनाभिर्मृगमदः कथितस्तु सहस्रभिन् ॥ कस्तूरिका च कस्तूरी वेधमुख्या च सा स्मृता ॥५॥ काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता ॥ कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत् ॥६॥

भा० दाह तृषा मुखकी विरसता मेद दुर्गंधता इनका भी नाशक है ॥ कर्पूर दो प्रकारका कहा गया है कच्चा और पक्का इस भेदसे ॥३॥ पक्के कर्पूरसे कच्चा कर्पूर गुणमें अधिक नर कहा है ॥ अनन्तर चिनियां कर्पूर । चिनाक संज्ञा चिनियां कर्पूर को है वोह कफ क्षय करनेवाला कहा गया है । कुष्ठ खुजली वमन इनका नाशक तथा तिक्त रसवाला वोह होता है ॥४॥ अनन्तर कस्तूरी के नाम और कहते हैं ॥ मृगनाभि मृगमद सहस्रभिन् येह कस्तूरी के नाम कहे हैं ॥ और कस्तूरिका कस्तूरी वेदमुख्या वोह कही गई है ॥५॥ काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरी । ऐसे तीन प्रकार की कही गई है ॥ कामरू में उत्पन्न होनेवाली श्रेष्ठ और नैपाल में होने वाली मध्यम होती है ॥६॥

कामरूपोद्भवा कृष्णा नैपाली नीलवर्णयुक् ॥ काश्मीरदेश सम्भूता कस्तूरी ह्यधमा मता ॥७॥ कस्तूरिका

कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः ॥ कफवात वि
षच्छर्दि शीतदौर्गन्ध्य शोषहृत् ॥ ८ ॥

[अथ मुसुकदाना।] लता कस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वी वृष्या हि
मा लघुः ॥ चक्षुष्या छेदिनी श्लेष्म तृष्णावस्त्या स्य
रोगहृत् ॥ ९ ॥

भा० कामरू में होनेवाली काली और नैपाल की नीली होती है। काश्मीर दे
श में उत्पन्न होनेवाली कस्तूरी अधम कही गई है ॥ ७॥ कस्तूरी कड़वी ति-
क्त क्षार उष्ण शुक्र को करनेवाली भारी होती है ॥ और कफ वात विष वम
न शीत दुर्गंधिता शोष इनकी नाशक भी है ॥ ८॥ [अनन्तर मुस्कदाना।]
कस्तूरिका लता तिक्त मधुर पुष्ट शीतल हलकी होती है ॥ चक्षु के हित छे
दन करनेवाली कफ तृषा और पेडू मुख के रोग की नाशक है ॥ ९ ॥ -

[अथ गौरा सारवभेद आराडी इति लोके।] गन्धमार्ज्जार
वीर्यन्तु वीर्यद्दात् कफवात हृत् ॥ कण्डू कुष्ठहरं
नेत्र्यं सुगन्धं स्वेद गन्धनुत् ॥ १०॥ [अथ चन्दनः।]
श्रीखण्डं चन्दनं नस्त्री भद्रः श्रीतैलपर्णिकः ॥ ग
न्धसारो मलयज स्तथा चन्द्र द्युति श्च सः ॥ ११ ॥

भा० अनन्तर गौरासारवभेद आंडी इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ गन्धमा-
र्जार वीर्य जो वेह बल करने वाला कफ वात का नाशक है ॥ और कण्डु कु
ष्ठ इनका नाशक नेत्र का हित सुगंध पसीना की गन्ध को नाश करनेवाला है
॥ १०॥ मुश्क बिल्ली लोग भी कहते हैं ॥ अनन्तर चंदन श्रीखण्ड च
न्दन भद्र श्रीतैलपर्णिक। गंधसार मलयज तथा चंद्रद्युति ये ह चंदन
के नाम हैं ॥ ११॥

स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम् ॥ ग्रन्थि
कोटरसंयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १२॥ चन्दनं शीत-

लं रूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु॥ श्रम शोष विषश्लेष्म तृषा।
पित्तास्र दाह नुत्॥ २३॥

भा० स्वादु में तिक्त घिसनेमें पीत और काटने में लाल और शरीरके लगाने में श्वेत होताहै॥ तथा गांठ और खोड़ सें युक्त चंदन श्रेष्ठहै॥ २२॥ चन्दन शीतल रूक्ष तिक्त हर्षको देने वालाहोताहै और हलकाहै॥ और श्रम शोष विषकफ तृषा रक्त पित्त दाह इनका नाशक है॥ २३॥

अथ पीतचन्दनम्।] (कलम्बक इति लोके।)

कालीयकन्तु कालीयं पीताभं हरिचन्दनम्॥ हरि
प्रियं कालसारं तथा कालानुसार्य्यकम्॥ २४॥ काली
यकं रक्तगुणं विशेषाद्व्यङ्गनाशनम्॥

अथ रक्तचन्दनम्॥ रक्तचन्दनमाख्यातं रक्ताङ्गं क्षुद्र
चन्दनम्॥ तिलपर्णं रक्तसारं तत् प्रवालफलं स्मृत
म्॥ २५॥ रक्तं शीतं गुरु स्वादु छर्दि तृष्णा पित्त हृत्॥
तिक्तं नेत्र हितं वृष्यं ज्वर व्रण विषापहम्॥ २६॥

भा० अनन्तर पीतचन्दन। कलम्बक इसप्रकार लोकमें कहतेहैं॥ कालीयक कालीय पीताभ हरिचन्दन॥ हरिप्रिय काल सार तथा कालानुसार्य्यक। येह पीतचन्दनके नामहैं॥ २४॥ पीतचन्दन रक्तचन्दन के समान गुणमेंहै विशेष करके मुखपर की झांई को नाश करताहै॥ अनन्तर रक्त चंदन। रक्तचन्दन रक्तांग क्षुद्रचंदन कहा गयाहै॥ और तिलपर्ण रक्तसार प्रवालफल कहागयाहै॥ २५॥ रक्तचंदन लाल शीतल भारी मधुर वमन तृषा रक्तपित्त इनका नाशक है॥ और तिक्त नेत्रकाहित वृष्य होताहै॥ तथा ज्वर ज़ख्म विष इनका नाशक भीहै॥ २६॥

[अथ वकम्।] पतङ्गं रक्तसारञ्च सुरङ्गं रञ्जनं तथा॥ प
ट्टरञ्जकमाख्यातं पत्तूरञ्च कुचन्दनम्॥ २७॥

अनन्तर पतंग के नाम और गुण कहते हैं ॥ रक्तसार पतंग सुरंग रञ्जन ॥ पट्टरंजक कहागया हैं । और पत्तूर कुचन्दन । येह भी पतंग के नाम हैं ॥ येह चन्दन की क़िस्म से होता है ॥ १७ ॥

पतङ्गं मधुरं शीतं पित्तश्लेष्म व्रणास्त्रनुत् ॥ हरिचंदनवद्वेद्यं विशेषाद्दाह नाशनम् ॥ १८ ॥ चन्दनानि तु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः ॥ गन्धेन तु विशेषोऽस्ति पूर्वः श्रेष्ठतमो गुणैः ॥ १९ ॥

भा० पतंग मधुर शीतल पित्त कफ व्रण रक्त इनका नाशक ॥ और हरीचन्दन के सदृश जानना चाहिये और विशेष करके दाह का नाशक है ॥ १८ ॥ सब चंदन रसादिकरके समान होते हैं ॥ और गन्ध से विशेष है उनमें पहले गुणों से श्रेष्ठ होते हैं ॥ १९ ॥ [अथ अगर ।]

(कृष्णागुरु अगुरु सन ।) अगुरु प्रवरं लोहं राजार्हं योगजं तथा ॥ वंशिकं कृमिजं चापि कृमिजग्ध मनार्यकम् ॥ २० ॥ अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णञ्च पित्तलम् ॥ लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीत वात कफ प्रणुत् ॥ ॥ २१ ॥ कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति ॥ अगुरु प्रभवः स्नेहः कृष्णागुरु समस्मृतः ॥ २२ ॥

मल्लदारु द्रुकिलिमं क्रान्तिमं सुरभूरुहः ॥ २३ ॥ देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटु पाकि च ॥ विबन्धाध्मान शोथाम तन्द्राहिक्का ज्वरास्रजित् ॥ २४ ॥ प्रमेह पीनस श्लेष्म कास कण्डू समीरनुत् ॥

[अथ धूपसरलः।] सरलः पीतवृक्षः स्यात्तथा सुरभिदारुकः ॥ सरसो मधुरस्तिक्तो कटुपाकरसो लघुः ॥२५॥ स्निग्धोष्णः कर्णकण्ठाक्षिरोगरक्षोहरः स्मृतः ॥ कफानिल स्वेददाह कास मूर्च्छा व्रणापहः ॥ २६ ॥

भा० अनन्तर देवदारु के नाम और गुण कहते हैं ॥ देवदारु, दारुभद्र, दारवी, इन्द्रदारु ॥ मल्लदारु, द्रुकिलिम क्रान्तिम सुरभूरुह, येह देवदारु के नाम हैं ॥ २३ ॥ देवदारु हलका चिकना तिक्त उष्ण पाक में कटु होता है। विबंध अफ़रा सूजन तंद्रा हिचकी ज्वर रक्त इनको जीतने वाला है ॥ २४ ॥ और प्रमेह पीनस कफ कास खुजली वात इनका भी नाशक है ॥ दूसरी क़िसम के देवदारु के नाम और गुण ॥ सरल पीतवृक्ष सुरभि दारुक येह दूसरी क़िस्म के देवदारु के नाम हैं ॥ देवदारु मधुर तिक्त पाक में कटुरस होता है ॥ २५ ॥ और स्निग्ध उष्ण तथा कर्ण कंठ नेत्ररोग और राक्षस इनका नाशक कहा गया है ॥ और कफ पसीना दाह कास मूर्च्छा व्रण इनका भी नाशक है ॥ २६ ॥

[अथ तगर।]

कालानुसार्य्यं तगरं कुटिलं नघुषं नतम् ॥ अपरं पिण्डतगरं दण्डहस्ती च बर्हिणम् ॥ २७ ॥ तगर द्वय मुष्णं स्यात् स्वादु स्निग्धं लघु स्मृतम् ॥ विषापस्मार शूलाक्षि रोगदोष त्रयापहम् ॥ २८ ॥

भा० अनन्तर तगर को कहते हैं ॥ कालानुसार्य तगर कुटिल नघुष नत। येह तगर के नाम हैं ॥ और दूसरे तगर को पिण्डतगर दण्ड हस्ति बर्हिण कहते हैं ॥ २७ ॥ दोनों तगर गर्म हैं और मधुर चिकने हलके कहे

गयेहैं ॥ तथा विष मिरगी मूल नेत्ररोग और त्रिदोष इनका नाशकहैं ॥२८॥

अथ पद्माक ।] पद्मकं पद्मगन्धि स्यात्तथा पद्माह्वयं स्मृतम् ॥ पद्मकन्तु परन्तिक्तं शीतलं वातलं लघु ॥२९॥ वीसर्प दाह विस्फोट कुष्ठ श्लेष्मास्र पित्तनुत् ॥ गर्भसंस्थापनं रुच्यं वमिव्रण तृषा भ्रमन् ॥३०॥

अथ गुग्गुलुः ।] गुग्गुलुर्देव धूपश्च जटायुः कौशिकःपुरः ॥कुम्भोलूखलकं क्लीबे महीषाक्षः पलङ्कषः ॥ ३१॥ महीषाक्षो महानीलः कुमुदः पद्म इत्यपि ॥ हिरण्यः पञ्चमो ज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्च जातयः ॥ ३२॥ भृङ्गाञ्जन सवर्णस्तु महिषाक्ष इति स्मृतः ॥ महानीलस्तु विज्ञेयः स्वनाम सम लक्षणः ॥ ३३॥

भा० अनन्तर पद्मकाष्ट को कहते हैं ॥ पद्मक पद्मगन्धि तथा पद्माह्व ये पद्मकाष्ट के नाम कहे हैं ॥ पद्मकाष्ट कसैला तिक्त शीतल वातको करनेवाला हलका है ॥ २९ ॥ और विसर्प दाह विस्फोट कुष्ट कफ रक्तपित्त इनका नाशक भी है ॥ तथा गर्भको करनेवाला रुचिके हित तथा वमन व्रण तृषा इनका भी नाशक होताहै ॥ ३० ॥

अनन्तर गूगल के नाम और गुण कहते हैं ॥ गुग्गुलु देवधूप जटायु कौशिक पुर । कुम्भोलूखलक येह गूगल के नाम नपुंसक लिंगमें कहेहैं ॥ और महिषाक्ष पलंकष येहभी गूगलके नामहैं ॥ ३१॥ महिषाक्ष महानील कुमुद पद्म ॥ और पांचवा हिरण्य भी येह गूगल पांच जातहैं ॥ ३२॥ भौंरे के सदृश स्याह रंग वाला महिषाक्ष कहागया है ॥ औरमहानील अपने नाम के समान लक्षण वाला जानना चाहिये ॥ ३३॥

कुमुदः कुमुदाभः स्यात् पद्मो माणिक्य सन्निभः ॥ हिरण्याक्षस्तु हेमाभः पञ्चानां लिङ्ग मीरितम् ॥ ३४॥

महिषाक्षो महानीलो गजेन्द्राणां हिता वुभो ॥ हया नां कुमुदः पद्मः स्वस्त्यारोग्य करौ परौ ॥ ३५॥ विशेषेण मनुष्याणां कनकः परिकीर्त्तितः ॥ कदाचिन्महिषाक्षश्च यतः केश्चिन्नृणामपि ॥ ३६॥ गुग्गुलुर्विशदस्तिक्तो वीर्य्योष्णः पित्तलः सरः ॥ कषायः कटुकः पाके कटू रूक्षो लघुः परः ॥ ३७॥ भग्न सन्धान कृद् वृष्यः सूक्ष्मः स्वर्यो रसायनः ॥ दीपनः पिच्छिलो बल्यः कफवात व्रणापची ॥ ३८॥

भा० और कुमुद स्वेत कमल के समान तथा पद्म माणिक के सदृश होता है ॥ हिरण्याक्ष सुवर्ण के सदृश होताहै । इस प्रकार पांचों का लक्षण कहाहै ॥ ३४॥ महिषाक्ष और महानील येह दोनों गजेन्द्रों के हित होते हैं । और घोड़ों को कुमुद तथा पद्म येह दोनों अत्यन्त अरोग्य करने वाले हैं ॥ ३५॥ विशेष करके मनुष्यों को कनक हितहै ऐसा कहा गयाहै । कदाचित् मनुष्यों कोभी महिषाक्ष हित होताहै ॥ ३६॥ गूगल विषद तिक्त वीर्य्य में उष्ण पित्त को करनेवाला सर ॥ कसैला कडुवा और पाक में कटु रूखा और बहुत हलका होता है ॥ ३७॥ टूटे हाड़ को जोड़ने वाला पुष्ट सूक्ष्म स्वर को अच्छा करनेवाला रसायन ॥ दीपन चेपदार बल को करनेवाला होताहै और कफ वात व्रण अपची ॥ ३८॥

मेदो मेहाश्म वातांश्च क्लेद कुष्ठाममारुतान् ॥ पिड़िका ग्रन्थि शोफार्शः गण्डमाला कृमीन् जयेत् ॥ ३९॥ माधुर्य्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्च पित्तहा ॥ तिक्तत्वात् कफजित्तेन गुग्गुलुः सर्व्वदोषहा ॥ ४०॥ स नवो वृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वति लेखनः ॥ स्निग्धः काञ्चन सङ्काशः पक्व जम्बू फलोपमः ॥ ४१॥

भा० मेद प्रमेह पथरी बात क्लेद पुष्ट आमवात इनको तथापि पिडिका ग्रन्थि सूजन ववासीर गंडमाल कृमि इनको जीनताहै ॥ ३९ ॥ मधुरता से वातको शमन करताहै । कषैले पनसे पित्त नाशक है । और तिक्त पनेसे कफको जीतनेवाला है ॥ उसरूक्ष गूगल सर्व्व दोष नाशक कहा गयाहै ॥ ४० ॥ वह गूगल नया धुक्र को बढानेवाला पुष्ट होता है । और पुराना सक्रन लेखन होताहै । चिकना सुवर्ण के सदृश अथवा पके जामन के सदृश होताहै ॥ ४१ ॥

नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः ॥ शुष्को दुर्गन्धकश्चैव त्यक्त प्रकृति वर्णकः ॥ ४२ ॥ पुराणः सतु विज्ञेयः गुग्गुलु वीर्य्य वर्ज्जितः ॥ अम्लं तीक्ष्णामजीर्णञ्च व्यवायं श्रम मातपम् ॥ ४३ ॥ मद्यं रोषन्त्यजेत् सम्यग्गुणार्थी पुर सेवकः ॥

भा० नया गूगल सुगन्ध चेपदार कहागयाहै । शुष्क दुर्गंधके करनेवाला तथा स्वभाविक वर्णसे रहित ॥ ४२ ॥ पुराना वोह जानना चाहिये जो गूगल वीर्य्य से रहितहै ॥ खटाई मिर्च अजीर्ण मैथुन श्रम धूप ॥ ४३ ॥ मद्य क्रोध इनको गूगलका सेवन करने वाला गुणार्थी त्याग देवे ॥

[अथ सरलनिर्य्यास गुग्गुलुः ।]

श्रीवासः सरलश्चाव ; श्रीवेष्टो वृक्षधूपकः ॥ श्रीवासो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः ॥ ४४ ॥ पित्तलो वात मूर्द्धाक्षि स्वर रोग कफापहः ॥ रक्षोघ्नः स्वेद दौर्गन्ध्यः यूका कण्डू व्रण प्रणुत् ॥ ४५ ॥

भा० अनन्तर अर्थात देवदारु का क़िस्म उस्के गोंदको गूगल कहतेहैं ॥ श्रीवास सरल श्राव श्रीवेष्ट वृक्षधूपक । येह सरलके नामहैं ॥ सरल मधुर तिक्त स्निग्ध उष्ण कसैला सर होता है ॥ ४४ ॥ और पित्तको करनेवाला तथा वात सिर नेत्र स्वर इनकेरोग और कफ इनका नाशक

है। और राक्षसों का नाशक, तथा पसीना दुर्गन्धता जूआं खुजली घाव इन का भी नाशक है॥ ५५॥

[अथ राल।]

रालस्तु शालनिर्य्यास स्तथा सर्ज्जरसः स्मृतः॥ देव धूपो यक्षधूप स्तथा सर्व रसश्च सः॥ ५६॥ रालो हिमो गुरु स्तिक्तः कषायो ग्राहको हरेत्॥ दोषास्त्र स्वेद वीसर्प ज्वर व्रण विपादिकाः॥ ५७॥ ग्रह भग्नाग्नि दग्धाश्च शूलातीसार नाशनः॥

(अथ कुन्दुरु सुगन्ध द्रव्य एक वृक्ष की निर्य्यासः) कुन्दुरुस्तु मुकुन्दः स्यात् सुगन्धः कुन्द इत्यपि॥ कुन्दुरु मेधुरस्तिक्त स्तीक्ष्णस्त्वच्यः कटुर्हरेत्॥ ५८॥ ज्वर स्वेद ग्रहालक्ष्मी मुखरोग कफाऽनिलान्॥

भा॰ अनन्तर रालको कहते हैं॥ राल साल निर्यास तथा सर्ज्जरस। कहा गया है। और देवधूप यक्षधूप तथा सर्ज्जरस येह रालके नाम हैं॥ ५६॥ राल शीतल भारी तिक्त कसेली ग्राहक है॥ और दोष रक्त पसीना विसर्प ज्वर घाव विपादिक इनको नाश करती है। और शूल अतीसार यह भी नाश करती है। ग्रह और टूटे हाड़ की तथा आगसे जले हुवेको नाश करती है॥ अनन्तर कुन्दरु नाम सुगन्धद्रव्य सोना दरख्त का गोंद है उस्के नाम और गुण कहते हैं॥ कुन्दुरु मुकुंद सुगंध कुंद। येह कुन्दुरु के नाम हैं॥ कुन्दुरु मधुर तिक्त तीक्ष्ण त्वचाके हित और कटु होता है॥ ५८॥ और ज्वर स्वेद ग्रह अलक्ष्मी मुखरोग कफ वायु इनको नाश करता है॥

अथ शिलारसः।] सिह्लकस्तु तुरुष्कः स्याद्यतो यवन देशजः कपितैलञ्च संख्याता स्तथा च कपिनामकः॥ ५९॥ सिल्हकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः शुक्रका-

निकृत् ॥ वृष्यः कण्ठ्यः स्वेद कुष्ठ ज्वर दाह ग्रहापहः ॥ ५०
अथ जायफल ।] जातीफलं जातिकोषं मालती फल मित्य
पि ॥ जातीफलं रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु ॥ ५१॥
कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम् ॥ निह
न्ति मुखवैरस्यं मद्य दौर्गन्ध्य कृष्णताः ॥ ५२॥ कृमि
कास वमि श्वास शोष पीनसहृद्रुजः ॥

भा० अनन्तर शिला रसकोकहते हैं ॥ सिल्हक तुरुष्क यवन देशज ॥ कपि-
ल तथा कपिनामक येह शिलारस के नाम हैं ॥ ४९ ॥ शिलारस कडुवा
मधुर चिकना शुक्र कान्ति कोकरनेवाला पुष्ट ॥ कंठ के हित और पसीना
कुष्ठ ज्वर दाह ग्रह इनका नाशक है ॥ ५०॥
अनन्तर जायफल के नाम गुण कहते हैं ॥ जातिफल जातिकोष मालती फ
ल । येह जायफल के नाम हैं ॥ जायफल रसमें तिक्त तीक्ष्ण उष्ण रुचिको करने
वाला हलका ॥ ५१॥ कडुवा दीपन ग्राही स्वरको अच्छाकरनेवाला ॥ कफ
वात का नाशक है । और मुखकी विरसता मद्यकी दुर्गन्धता और कृष्णता इन
का भी नाशक है ॥ ५२ ॥ तथा कृमि कास वमन श्वास शोष पीनस और हृद
की पीडा । इनको भी नाश करता है ॥

अथ जावत्री ।] जातीफलस्य त्वक् प्रोक्ता जातीपत्री भिष
ग्वरैः ॥ जातिपत्री लघुः स्वादुः कटूष्णा रुचि वर्णकृत् ॥
५३॥ कफ कास वमि श्वास तृष्णा कृमि विषापहा ॥
अथ लवङ्गः ।] लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञं श्रीप्रसूनकम् ॥
लवङ्गं कटुकं तिक्तं लघु नेत्र हितं हिमम् ॥ ५४ ॥ दीप
नं पाचनं रुच्यं कफ पित्तास्र नाशकृत् ॥ तृष्णां छर्दिं
तथाध्मानं शूलमाशु विनाशयेत् ॥ ५५॥ कासं
श्वासञ्च हिक्काञ्च क्षयं क्षपयति ध्रुवम् ॥

भा० अनन्तर जाविन्त्री के नाम और गुण कहते हैं ॥ वैद्यवरोंने जायफलकी छालको जावित्री कहाहै ॥ जावित्री हलकी मधुर कडुवी उष्ण रुचिवर्ण इन को करनेवालीहै ॥ ५३ ॥ कफ कास वमन श्वास तृषा कृमि विष इनकीनाश कहै ॥ [अनन्तर लवङ्ग के नाम और गुण कहते हैं ॥ लवंग देवकुसुम श्री संज्ञा श्रीप्रसूनक येह लोंग के नाम हैं ॥ लोंग कडुवी तिक्त हलकी नेत्रके हित शीतलहै ॥ ५४ ॥ दीपन पाचन रुचिकेदेनेवाली कफ रक्त पित्त इनके नाश करनेवाली है ॥ और तृषा वमन पेट फूलना शूल इनको शीघ्र नाश करतीहै ॥५५॥ और कास श्वास हिचकी क्षय इनको भी नाश करतीहै ॥

[अथ इलायची पूरबी।]

एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटापि च ॥ भद्रैला बृहदेला च चन्द्रबाला च निष्कुटिः ॥ ५६ ॥ स्थूलैला कटुका पाके रसे चानलकृल्लघुः ॥ रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्र कण्डू श्वास तृषा हरा ॥ ५७ ॥ हृल्लास विष बस्त्यास्य शिरो रुग् वमि कासनुत् ॥ ५८ ॥

अथ एला गुजराती।] सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुच्छा कोरङ्गी द्राविडी त्रुटिः ॥ एला सूक्ष्मा कफ श्वास कासार्शो मूत्र कृच्छ्र हृत् ॥ ५९ ॥ रसेतु कटुका शीता लघ्वी वात हरी मता ॥

छोटी इलायची कफ श्वास कास बवासीर मूत्रकृच्छ्र इनको नाश करतीहै ॥ ५९॥ रसमें कड़वी शीतल हलकी वातकी नाशक कही गई है ॥

अथ त्वच।] त्वक्पत्रञ्च वराङ्गं स्याद् भृङ्गंचोदन्तथोत्कटम् ॥ त्वचं लघूष्णं कटुकं स्वादु तिक्तञ्च रूक्षकम् ॥ ६०॥ पित्तलं कफवातघ्नं कण्डामारुचि नाशनम्॥ हृद्वस्ति रोग वातार्शः कृमि पीनस शुक्रहृत् ॥ ६१ ॥

दालचीनी।] त्वक् स्वादीतु तनुत्वक् स्यात्तथा दारु सिता मता ॥ अनन्तर दारचीनी के नाम और गुण कहतेहैं ॥ त्वक् पत्र, वराङ्ग भृङ्ग उत्कट उत्कट येह दारचीनीके नामहैं ॥ दारचीनी हलकी गर्म कड़वी मधुर तिक्त रूखी ॥ ६०॥ पित्तको उत्पन्न करनेवाली कफवात की नाशक और खुजली आम अरुचि इनकी नाशकहै ॥ और हृदय पेड़ू इनका रोग और वातबवासीर कृमि पीनस शुक्र इनकी नाशक है ॥ ६१॥ अनन्तर कलमी दाल चीनी को कहते हैं ॥ त्वक् तनुत्वक् तथा दारुसीता येह कलमी दारचीनी के नाम हैं ॥

उक्ता दारु सिता स्वाद्वी तिक्ता चानिल पित्तहृत् ॥ सुरभिः शुक्रला वर्ण्या मुखशोष तृषापहा ॥ ६२॥

अथ पत्रकम्।] पत्रन्तमालपत्रञ्च तथा स्यात् पत्रनामकम् ॥ पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं लघु ॥ ६३॥ निहन्ति कफ वातार्शो हृल्लासारुचि पीनसान्॥ भा० दारचीनी मधुर और तिक्त तथा वात पित्तको नाश करनेवाली कही गई है ॥ ६२॥ सुगन्धयुक्त शुक्रको बढ़ानेवाली रंगको अच्छा करने वालीहै ॥ और मुख शोष तृषा इनकी नाशकहै ॥

अनन्तर पत्रक ॥ पत्र तमालपत्र तथा पत्रनामक येह तेजपातके नामहैं ॥ तेजपात मधुर कुछ तीक्ष्ण उष्ण चेपदार हलका होता है ॥ ६३॥ और कफ वात

बवासीर मनली अरुचि पीनस रोग इनको नाश करता है ॥

अथ नागकेशर ।] नागपुष्पः स्मृतो नागः केशरो नागकेशरः ॥ चाम्पेयो नागकिञ्जल्कः कथितः काञ्चनाह्वयः ॥ ६४ ॥ अयं पुष्पेनु क्लीवे ।] नागपुष्पं कषायोष्णं रूक्षं लघ्वाम पाचनम् ॥ ज्वर कण्डू तृषा स्वेद च्छर्दि हृल्लास नाशनम् ॥ ६५ ॥ दौर्गन्ध्य कुष्ट वीसर्प कफ पित्त विषापहम् ॥

भा० अनन्तर नाग केसर ॥ नागपुष्प नाग केशर नागकेशर चाम्पेय नागकिंजल्क काञ्चनाह्वय येह नागकेशर के नाम हैं ॥ ६४ ॥ येह पुष्प मे नपुंसक है ॥ नागकेशर कसैला गर्म रूखा हलका आमका पाचन है ॥ और खुजली तृषा पसीना वमन मनली इनको नाश करता है ॥ ६५ ॥ और दुर्गन्धता कुष्ट विसर्प कफ पित्त विष इनका नाशक है ॥

अथ त्रिजात चातुर्जातके ।] त्वगेला पत्रकैस्तुल्यैः स्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम् ॥ नागकेशर संयुक्तं चातुर्जातक मुच्यते ॥ ६६ ॥ तद्द्वयं रेचनं रूक्षं तीक्ष्णोष्णं मुखगन्धहृत् ॥ लघु पित्ताग्नि कृद्वर्ण्यं कफ वात विषापहम् ॥ ६७ ॥

भा० अनन्तर त्रिजात चतुर्जातक ॥ दारचीनी इलायची पत्रक इनके समान भागको त्रिसुगन्धि त्रिजातक कहते हैं ॥ तथा नागकेशर से संयुक्त हुवा चतुर्जातक कहाहै ॥ ६६ ॥ वोह दोनों रेचन रूक्ष तीक्ष्ण उष्ण और मुखकी दुर्गन्धता के नाशक हैं ॥ और लघु पित्त अग्निको करनेवाला वर्णको अच्छा करनेवाला कफ वात विषका नाशक है ॥ ६७ ॥

अथ कुङ्कुमम् ।] कुङ्कुमं घुसृणं रक्तं काश्मीरं पीतकं वरम् ॥ सङ्कोचं पिशुनन्धीरं वाह्लीकं शोणिताभिधम् ॥ ६८ ॥ काश्मीर देशजे क्षेत्रे कुङ्कुमं यद्भवेद्धि तत् ॥

॥६९॥
सूक्ष्मकेशरमारक्तं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥ वाह्लीक
देशसञ्जातं कुङ्कुमं पाण्डु रमुत्तमम् ॥ केतकीगन्ध
युक्तन्तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ॥७०॥ कुङ्कुमंपा
रसीकेयत् मधुगन्धि तदीरितम् ॥ ईषत् पाण्डु र
वर्णं तद् धमं स्थूलकेशरम् ॥७१॥ कुङ्कुमं कटुकं
स्निग्धं शिरोरुग् व्रणजन्तुजित् ॥ तिक्तं वमिहरं
वर्ण्यं व्यङ्गदोषत्रयापहम् ॥७२॥

भा॰ अनन्तर केसर। कुंकुम घसृण रक्त काश्मीर पीतक वर ॥ संकोच, पिशुन धीर वाल्हीक शोणिताभिध। येह केसर के नाम हैं ॥ ६८॥ काश्मीर देशमें जो केशर होता है वोह। सूक्ष्म केशर रक्तवर्ण पद्मके सदृश गन्धवाला होताहै ॥ वाह उत्तम है ॥ ६९ ॥ वाल्हीक देश अर्थात् बलख देशमें उत्पन्न हुवा केशर श्वेत होता है। वोह केवड़े के गन्धके समान गन्धवाला सूक्ष्म केशर होताहै वोह मध्यम है ॥७०॥ जो केशर पारसमें होता है उसको मधुगन्धि कहा गया है। कुछ श्वेत वर्ण और स्थूल केशर होता है। वोह मध्यम है ॥७१॥ केशर कडुवा चिकना सिरके रोग ज़खम कृमि इनको जीतने वाला है ॥ और तिक्त वमनका नाशक रंगको अच्छा करनेवाला और झांई तीनों दोष इन का नाशक है ॥७२॥

[अथ गोरोचना।]

गोरोचना तु मङ्गल्या वन्द्या गौरी च रोचना ॥ गोरोच
ना हिमा तिक्ता वश्या मङ्गल कान्तिदा ॥७३॥ विषा
लक्ष्मी ग्रहोन्माद गर्भस्राव क्षतास्त्र हृत् ॥

अथ नख नखी गन्धद्रव्यम्।] नखं व्याघ्रनखं व्याघ्रा।
युधन्त चक्रकारकम् ॥ नखं स्वल्पं नखी प्रोक्ता हनु
र्हट्ट विलासिनी ॥ ७४ ॥ नख द्रव्य ग्रह श्लेष्म वाता

स्रज्वर कुष्ठ हृत् ॥ लघूष्णं शुक्रलं वर्ण्यं स्वादु व्रण विषापहम् ॥७५॥ अलक्ष्मी मुख दौर्गन्ध्य हृत्या कर सयो: कटुः ॥

भा० अनन्तर गोरोचन ।] गोरोचना मंगल्या वन्द्या गौरी रोचना येह गोरोचनके नाम हैं ॥ गोरोचन शीतल तिक्त वशकरनेवाला और मंगल और कांति इनको देनेवाला है ॥७३॥ तथा विष अलक्ष्मी ग्रह उन्माद गर्भस्राव तन रक्त इनको दूर करनेवाला है ॥ [अनन्तर नख नखीसुगन्ध द्रव्य । नख व्याघ्रनख व्याघ्रायुध चक्रकारक ॥ छोटे नखकोनखी और हनु हट्ट विलासिनी कहा है ॥७४॥ नख द्रव्य यह कफ वात रक्त ज्वर कुष्ठ इनका नाशक है ॥ हलका शुक्रको उत्पन्न करनेवाला वर्णको अच्छा करनेवाला मधुर जख्म तथा विष इनका नाशक है ॥७५॥ और अलक्ष्मी मुखकी दुर्गन्धि इनको नाशका है तथा पाक और रसमें कटु होता है ॥

अथ सुगन्धवाला ।] वालंह्रीवेर बर्हिष्ठो दीच्यकं शाम्बु नाम च ॥ वालकं शीतलं रूक्षं लघु दीपन पाचनम् ॥७६॥ हृल्लासा रुचि वीसर्प हृद्रोगा मातिसारजित् ॥

अथ वीरणम् ।] स्याद् वीरणं वीरतरु वीरञ्च बहु मूलकम् ॥ वीरणंपाचनं शीतं वान्ति हृल्लघु तिक्तकम् ॥७७॥ स्तम्भनं ज्वर नुद् वान्ति मदजित् कफ पित्तहृत् । तृष्णास्त्रविषवीसर्प कृच्छ्र दाह व्रणापहम् ॥७८॥

भा० अनन्तर सुगन्धवाला ॥ वाल ह्रीवेर बर्हिष्ठ उदीच्य केश अम्बुनाम येह सुगन्धवाला के नाम हैं ॥ सुगन्ध वाला शीतल रूखा दीपन हलका पाचन ॥७६॥ और मतली अरुचि विसर्प हृद्रोग आमातिसार इनकोदूर करनेवाला है ॥ [अनन्तर वीरण अर्थात् जिसकी जड़ खस है ॥ वीरण वीरतरु वीर बहुमूलक येह वीरणके नाम हैं ॥ वीरण पाचन शीतल वमन इनका नाशक हलका तिक्त है ॥७७॥ और स्तंभन ज्वरका नाशक भ्रान्तिमद

इनका दूर करनेवाला। कफ पित का नाशक। और तृषा रक्त विष विसर्प मूत्र कृच्छ्र दाह व्रण इनका नाशक है ॥ ७८ ॥

[अथ उशीर।]

वीरणास्यतु मूलंस्या दुशीरं नलदञ्च तत् ॥ अमृणा लञ्च सेव्यञ्च समगन्धिक मित्यपि ॥७९॥ उशी रम्पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् ॥ मधुरं ज्वर हृद्वान्ति मदनुत् कफ पित्त हृत् ॥ ८० ॥ तृषा स्र विष वीसर्प दाह कृच्छ्र व्रणापहम् ॥

भा० अनन्तर खस वीरणा की जड़ खस है उसको नलद उशीर ॥ अमृ णाल सेव्य समगन्धिक भी कहते हैं ॥ ७९ ॥ खस पाचन शीतल स्तम्भन हलका तिक्त मधुर ज्वर का नाशक वमन मदका नाशक और कफ पितका नाशक है ॥ ८० ॥ और तृषा रक्त विष विसर्प दाह मूत्र कृच्छ्र व्रण इनका नाशक है ॥

[अथ जटामांसी।] जटामांसी भूतजटा जटिला च तपस्वि नी ॥ मांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिबलप्रदा ॥ ८१ ॥ स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्र दाह वीसर्प कुष्ठ नुत् ॥ [अथ भूरछरील इति लोके ॥] शैलेयन्तु शिलापु ष्पं वृद्धकालानु सार्यकम् ॥ शैलेयं शीतलं हृद्यं कफ पित्त हरं लघु ॥ ८२ ॥ कण्डू कुष्ठाश्मरी दाह विष हृन्नुद रक्तहृत् ॥

भा० अनन्तर जटामांसी। जटामांसी भूतजटा जटिला तपस्विनी। ये जटामांसी के नाम हैं ॥ जटामांसी तिक्त कसैली पवित्र कान्ति औरबल को देनेवाली ॥ ८१ ॥ मधुर शीतल त्रिदोष रक्त दाह विसर्प कुष्ठ इन की नाशक है ॥ [अनन्तर भूरछरील इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है ॥ शैलेय शिलापुष्प वृद्धकालानुसार्यक ये बालछड़ के

नामहैं ॥ बालछड़ शीतल हृदय का प्रिय कफ पित्तका नाशक हलकाहोताहे ॥ ८२ ॥ तथा खुजली कुष्ठ पथरी दाह विष इनका नाशक और गुदाके रक्तका नाशक है ॥

मोथा नागरमोथा ।] मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिद नामकम् ॥ कुरु विन्द अलंख्यातोऽपर: क्रोड़कसेरुक: ॥ ८३ ॥ भद्रमुस्तञ्च गुन्द्रा च तथा नागरमुस्तक: ॥ मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपन पाचनम् ॥ ८४ ॥ कषायं कफ पित्तास्र तृट्ज्वरारुचिजन्तुहृत् ॥ अनूप देशे यज्जातं मुस्तकं तत् प्रशस्यते ॥ ८५ ॥ तत्रापि मुनिभि: प्रोक्तं वरं नागर मुस्तकम् ॥

भा० मोथा और नागर मोथा।] मुस्तक मुस्त वारिद नामक कुरुविंद सख्यान दूसरा क्रोड कसेरुक ॥८३॥ भद्रमुस्त गुन्द्रा तथा नागर मुस्तक ये नागर मोथाके नामहैं ॥ मोथा कडुवा शीतल दस्तको रोकनेवाला तिक्त दीपन पाचन ॥ ८४ ॥ कसैला कफ रक्त पित्त तृषाज्वर अरुचि कृमि इनका नाशकहै ॥ अनुपदेशमें जो नागर मोथा उत्पन्न होताहै वोह अच्छाहै ॥ ८५ ॥ उसमें भी मुनियोंने नागर मोथा श्रेष्ठ कहाहै ॥ [अथ कर्चूर ।]

कर्चूरो वेधमुख्यश्च द्राविड़: कल्पक: शटी ॥ कर्चूरो दीपनो रुच्य: कटुकस्तिक्त एव च ॥ ८६ ॥ सुगन्धि: कटुपाक: स्यात् कुष्ठार्शो व्रणकासनुत् ॥ उष्णो लघु: हरेच्छ्वासं गुल्मवात कफ कृमीन् ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तर कचूर ॥ कचूर वेधमुख्य द्राविड कल्पक शटी येह कचूर के नामहैं ॥ कचूर दीपन रुचिको करनेवाला कडुवा और तिक्तभी होताहै ॥ ॥ ८६ ॥ सुगन्धि युक्त और पाकमें कटु होताहै । तथा कुष्ठ बवासीर घाव कास इनका नाशक ॥ और गरम हलका होताहै ॥ और श्वासवायु गोला वात कफ कृमि इनको नाश करताहै ॥ ८७ ॥

[अथ मुरा।] मुरा गन्धकुटी दैत्या सुरभिः शालपर्णिका॥ मुरा तिक्ता हिमा स्वाद्वी लघ्वी पित्तानिलापहा॥ ८८॥ ज्वरासृग्भूतरक्षोघ्नी कुष्ठकासविनाशिनी॥

[अथ गन्धपलाशी।] (सुगन्धद्रव्यं काश्मीरे प्रसिद्धा।) शटी पलाशी षड्ग्रन्था सुव्रता गन्धमूलिका॥ गन्धारिका गन्धवधूर्वधूः पृथुपलाशिका॥ ८९॥ भवेद्गन्धपलाशी तु कषाया ग्राहिणी लघुः॥ तिक्ता तीक्ष्णा च कटुका उष्णास्यमलनाशिनी॥ ९०॥ शोथकासक्षतश्वासशूलहिध्माग्रहापहा॥

भा० अनन्तर मुरा॥ मुरा गन्धकुटी दैत्या सुरभि शालपर्णिका। ये मरोड फलीके नामहैं। मरोडफली तिक्त शीतल मधुर हलकी और पित्त वातको नाश करनेवालीहै॥ ८८॥ और ज्वर रक्त भूत राक्षस इनको नाशक तथा कुष्ठ कास इनकी भी नाशक है॥ [अनन्तर गन्धपलाशी॥ यह सुगन्धद्रव्य काश्मीरमें प्रसिद्ध है। शठी कचूर के किस्मसे होता है। शटी पलाशी षड्ग्रन्था सुव्रता॥ गन्धमूलिका गन्धारिका गन्धवधू वधू पृथुपलाशिका। येह गन्धपलाशी के नाम हैं॥ ८९॥ गन्धपलाशी कसैली दस्तको रोकनेवाली हलकी होतीहै॥ और तीखी कडवी उष्ण मुखके मलको नाश करनेवाली॥ ९०॥ और सूजन कास घाव श्वास शूल हिध्म ग्रह इनको नाशक है॥

[अथ प्रियङ्गुर्गन्धप्रियङ्गुः।]

प्रियङ्गुः फलिनी कान्ता लता च महिलाह्वया॥ गुन्द्रा गुन्द्रफला श्यामा विष्वक्सेनाङ्गनाप्रिया॥ ९१॥ प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता तुवरानिलपित्तहृत्॥ रक्तातियोगदौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा॥ ९२॥ गुल्मतृड्विषमोहघ्नी तद्वद्गन्धप्रियङ्गुकाः॥ तत्फलं

मधुरं रूक्षं कषायं शीतलङ्गुरु ॥ ६३ ॥ विबन्धाध्मा
न बलकृत् संग्राहि कफ पित्तजित् ॥

भा० अनन्तर प्रियङ्गु गन्ध प्रियङ्गु ॥ प्रियङ्गु फलनी कान्ता लता महिला ह्लया ॥ गुन्द्रा गुन्द्रफला श्यामा विष्वक्सेना अंगनाप्रिया ये प्रियंगु के नाम हैं ॥ ६१ ॥ प्रियंगु शीतल तिक्त कसैला वात पित्तका नाशक ॥ और रक्तका अतियोग दुर्गन्धता पसीना दाहज्वर इनका नाशक है ॥ ६२ ॥ और वायगोला तृषा विष मोह इनका नाशक है ॥ उसीके समान गन्ध प्रियङ्गुभी है ॥ उस्का फल मधुर रूक्ष कसैला शीतल भारी ॥ ६३ ॥ विबंध पेटका फूलना और बल इनकी करनेवाला तथा मलका अवरोध करनेवाला तथा कफ पित्तका दूर करने वाला है ॥ [अथ रेणुका मरिच सदृशा ।]

रेणुका राजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा ॥ भस्म
गन्धा पाण्डु पुत्री स्मृता कौन्ती हरेणुका ॥ ६४ ॥ रेणुका
कटुका पाके तिक्तामुष्णा कटुर्लघुः ॥ पित्तला दीपनी
मेध्या पाचिनी गर्भ पातिनी ॥ ६५ ॥ बलासवात हृच्चै
व तृट् कण्डू विषदाह नुत् ॥

भा० अनन्तर रेणुका येह मिरचके सदृश सुगन्धद्रव्य होताहै ॥ रेणुका, राजपुत्री नन्दिनी कपिला द्विजा । भस्मगन्धा पाण्डुपुत्री कौन्तीय हरेणुका येह रेणुकाके नामहैं ॥ ६४ ॥ रेणुका पाकमें कडुवी तिक्त उष्ण कटु हलकी होती है और पित्तको करनेवाली दीपन बुद्धि के बढानेवाली पाचन गर्भको गिरानेवालीहै ॥ ६५ ॥ और कफ वातको करनेवाली तथा तृषा खुजली विष दाह इनकी नाशक है ॥ [अथ ठिवन ।]

ग्रन्थिपर्णं ग्रन्थिकञ्च काकपुच्छञ्च गुच्छकम् ॥
नीलपुष्पं सुगन्धञ्च कथितन्नील पर्णकम् ॥ ६६ ॥
ग्रन्थि पर्णन्तिक्त तीक्ष्णं कटूष्णन्दीपनं लघुः ॥ कफ
वात विषश्वास कण्डू दौर्गन्ध्य नाशनम् ॥ ६७ ॥

अनन्तर ठीवन। ग्रन्थिपर्णी ग्रन्थिक काकपुच्छ गुच्छक नीलपुष्प, सुगन्ध नैलपर्णक येह भटेरा के नामहैं ॥९६॥ भटेरा तिक्त तीक्ष्ण, कटु उष्ण दीपन लघुहै। और कफ वात विष श्वास कण्डु दुर्गन्धता इनका नाशकहै ॥९७॥

(अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेद ईषत्सुगन्धः स्थौणेयं थनेर इति लोके प्रसिद्धम्।)

स्थौणेयकं वर्हिवर्ह शुक्रं वर्हञ्च कुक्कुरम्॥ शीर्ष रोम शुकञ्चापि शुष्कपुष्पं शुकच्छदम्॥९८॥

स्थौणेयकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्धन्त्रिदोष नुत्॥ मेधा शुक्रकरं रुच्यं रक्षोघ्नं ज्वरजन्तु जित्॥९९॥ हन्ति कुष्ठास्र तृड् दाह दौर्गन्ध्य तिलकालकान्॥

भा॰ अनन्तर भटेराही भेद कुछ सुगंधवाला स्थौणेय अर्थात् थनेर इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है। स्थौणेयक वर्हिष शुक्र वर्ह कुक्कुर शीर्षरोम शुक शुकपुष्प शुकच्छद येह ककरौंदा के नाम हैं ॥९८॥ थनेर कडुवा मधुर तिक्त स्निग्ध त्रिदोषका नाशक ॥ और बुद्धि शुक्र इन के करनेवाला रुचिकेहित राक्षसोंका नाशक और ज्वर तथा कृमि इनको भी दूर करनेवालाहै ॥९९॥ और कुष्ट रक्त तृषा दाह दुर्गंधता तथा तिलकालक इनको नाश करता है॥

[अथ ग्रन्थिपर्ण्यैव भेदः भटेउर इति नेपालदेशे भवति।] निशाचरो धनहरो कितवो गणहालकः॥ रोचको मधुरस्तिक्तः कटुपाके कटु लघुः॥२००॥ तीक्ष्णो हृद्यो हिमो हन्ति कुष्ठकण्डु कफानिलान्॥ रक्षाश्री स्वेद मेदोऽस्त्रज्वरगन्ध विषव्रणान्॥२०१॥

भा॰ अनन्तर कुकुरौंदे के किसमे भठउर इस नामसे नेपाल देश में

होताहै ॥ निशाचर धनहर किनव गणनाशक यह भटेउर के नामहैं ॥ भटेउर रुचिकेकरनेवाला मधुर तिक्त पाकमें कटु और कटु तथा हलका होता है ॥१००॥ और तीक्ष्ण हृदय के प्रिय शीतल होता है ॥ तथा कुष्ट कण्डु कफ वात इनको नाश करताहै ॥ और राक्षस कान्ति पसीना मेद रक्तज्वर गंध विषव्रण इनको भी नाश करता है ॥१०१॥

[अथ भूम्यामलकी सदृश। तालीसः।] तालीस
मुक्तम्पत्राढ्यं धात्रीपत्रञ्च तत् स्मृतम् ॥ तालीसं
लघु तीक्ष्णोष्णं श्वास कास कफा निलान् ॥१०२॥
निहन्त्य रुचि गुल्माम वन्हि मान्द्य क्षयामयान् ॥
अथ कङ्कोलं सुगन्ध द्रव्यम्।] सीतल चीनीति लोके।
कङ्कोलं कोलकम्प्रोक्तं तथा कोषफलं स्मृतम् ॥
कङ्कोलं लघु तीक्ष्णोष्णं तिक्तं हृद्यं रुचि प्रदम् ।१०३।
आस्य दौर्गन्ध्य हृद्रोग कफ वाता मयान्ध्यहृत् ॥

भा० अनन्तर भूमि आंवले के सदृश तालीसपत्र होता है ॥ तालीस पत्राढ्य धात्रीपत्र उसको कहाहै ॥ तालीसपत्र हलका तीखा उष्ण श्वास कास कफ वात इनको नाश करता है ॥१०२॥ और अरुचि गुल्म अग्नि मान्द्य क्षयरोग इनको भी दूर करताहै ॥ अनन्तर कङ्कोल सुगंध द्रव्य । जिसको लोकमें सीतल चीनी कहतेहैं ॥ कंकोल तथा कोशफल येह कंकोलके नाम हैं । कंकोल हलका तीखा उष्ण तिक्त हृदयका प्रिय और रुचि इनको देनेवाला है ॥१०३॥ और मुखकी दुर्गन्धता हृद्रोग कफ वातरोग अन्धापन इनको नाशकरता है ॥

[अथ गन्धकोकिला।] गन्धमालती। स्निग्धोष्णा
कफहृत्तिक्ता सुगन्धा गन्ध कोकिला ॥ गन्ध को

किलया तुल्या विज्ञेया गन्धमालती ॥ २०४ ॥

[अथ लामज्जकमुशीर वत् पीतच्छवि तृण विशेषः।]

लामज्जकं सुनालं स्याद मृणालं लयं लघुः ॥ इष्ट

का पथकं सेव्यं नलदञ्चा वदानकम् ॥ २०५ ॥ ला

मज्जकं हिमं तिक्तं लघुदोष त्रयास्त्रजित् ॥ त्वगा

मय स्वेद कृच्छ्र दाह पित्तास्र रोगनुत् ॥ २०६ ॥

भा० अनन्तर गन्ध कोकिला और गन्धमालती को कहते हैं ॥ येह च मेली की क़िस्मसे सुगन्धयुक्त होती है ॥ स्निग्ध उष्ण कफको दूरकरने वाली तिक्त सुगन्ध इस प्रकार गंधकोकिला होती है। और कोकिला के सदृश गन्धमालती को जानना चाहिये ॥ २०४ ॥ लघु
अनन्तर लामज्जक खसके सदृश पीली घास होती है ॥ लामज्जक सुनाल अमृणाल लय, येह लामज्जक के नाम हैं ॥ और इष्टिका पथक सेव्य नलद अवदानक येह भी लामज्जक के नाम हैं ॥ २०५ ॥ लामज्जक शीतल तिक्त हलकी त्रिदोष नाशक है ॥ और त्वचाके रोग पसीना मूत्रकृच्छ्र दाह रक्तपित्त इनकाभी नाशक है ॥ २०६ ॥

[अथ एलवालुकं कङ्कोल सदृशं कुष्ठगन्धि।] एलवा

लुक मैलेयं सुगन्धि हरि वालुकम्। एलवालुक

मेलालु कपित्थ पत्रमीरितम् ॥ २०७ ॥ एल्वालु क-

टुकं पाके कषायं शीतलं लघु ॥ हन्ति कण्डू व्र-

णच्छर्दि तृट् कासारुचि हृद्रुजः ॥ २०८ ॥ बलास

विष पित्तास्र कुष्ठ मूत्र गद कृमीन् ॥

भा० अनन्तर एलवालुक येह सीतलचीनी के सदृश कूटके गन्धयुक्त होता है। इसको वालुककाड़ी भी कहते हैं। एलवालुक, ऐलेय, सुगन्धि हरिवालुक एलवालुक एलालु कपित्थपत्र येह एलवालुक के नाम हैं ॥ २०७ ॥ एलवालुक कडुवा पाकमें कसैला शीतल हलका

होताहै ॥ और खुजली घाव वमन तृषा कास अरुचि इनका नाशक ॥ २०८ ॥ और पीड़ा कफ विष पित्त रक्त कुष्ठ मूत्ररोग कृमि । इनको नाश करताहै ॥

[कौसची मोथा]

गुड़ तज्जी इति च इयन्तु वितुन्नक नाम्नो वृक्षस्य त्वक् मुस्ताकृतिः । कुटन्नटं दासपुरं बालेयं परिपेलवम् ॥ प्लवं गोपुरगोनर्दं कैवर्ती मुस्तकानि च ॥ २०९ ॥ मुस्तावत्पेलवं पुटं शुक्लाभं स्याद्वितुन्नकम् ॥ वितुन्नकं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम् ॥ २१० ॥ कफपित्तास्रवीसर्प कुष्ठ कण्डू विषप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर जलमोथा के नाम ॥ कुटन्नट, दासपुर, बालेय, परिपेलव प्लव, गोपुर, गोनर्द, कैवर्तिमुस्तक, ॥ २०९ ॥ मोथाके सदृश पेलव, पुट शुक्लाभ वितुन्नक येह जलमोथा के नामहैं ॥ जलमोथा शीतल तिक्त कसैला कडुवा कान्ति के देनेवाला होता है ॥ २१० ॥ और कफ रक्त विसर्प कुष्ठ खुजली विष इनका नाशक है ॥

[अथस्पृक्का सुगन्धिद्रव्यं शाक विशेषः । लङ्कोपिक पुरीति लोके च ।] स्पृक्का स्पृक् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता लघुः ॥ समुद्रान्ता वधूः कोटि वर्षा लङ्कोपिकेत्यपि ॥ २११ ॥ स्पृक्का स्वाद्वी हिमा वृष्या तिक्ता निखिलदोषनुत् ॥ कुष्ठ कण्डू विषस्वेद दाहास्र ज्वर रक्त हृत् ॥ २१२ ॥

भा० अनन्तर स्पृक्का यह एक सुगंधद्रव्य शाक विशेषहै ॥ इसको पिंडित शाक कहतेहैं ॥ स्पृक्का स्पृक् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता। समुद्रांता वधूः कोटि वर्षा लङ्कोपिका येह स्पृक्का के नाम हैं ॥ २११ ॥

रसको मधुर शीतल धातुवों को बढ़ानेवाली तिक्त सम्पूर्ण दोषों की नाश कहै ॥ और कुष्ठ खुजली विष पसीना दाह रक्तज्वर और रक्त इनकी नाशक है ॥ ११२॥

अथ पर्पटी इति प्रसिद्धं पद्मावती इति च। उत्तर देशे सुगन्धि द्रव्य ॥ पर्पटी रञ्जना कृष्णा जतुकाजननी जनी ॥ तु कृष्णाग्नि संस्पर्शा जतुकचक्रवर्तिनी ॥ ११३॥ पर्पटी तुवरा तिक्ता शिशिरा वर्ण्या कृल्लघु ॥ विषव्रण हरी कण्डू कफ पित्तास्र कुष्ठनुत् ॥ ११४॥

भा०-अनन्तर पर्पटी इस प्रकार प्रसिद्ध है और पद्मावती इस नाम से उत्तर देशमें प्रसिद्ध है। और मालवें में चकवत् कहते हैं। परपटी रंजना कृष्णा जतुका जननीज नी जतुकृष्णा अग्निसंस्पर्शा जतुकृत् चक्रवर्तिनी ॥ ११३॥ पापड़ी कसैली तिक्त शीतल रंगको अच्छा करनेवाली हलकी होती है ॥ और विष जखम को दूर नेवाली तथा खुजली कफ रक्तपित्त कुष्ठ इनकी नाश करनेवाली है ॥ ११४॥

अथ नलिका उत्तरापथे प्रसिद्धा। सुगन्धा वला कृति थैवारी इति च क्वचित् प्रसिद्धा ॥

नलिका विद्रुम लता कपोत चरणा नटी ॥ धमन्यञ्जन केशी च निर्मध्या सुषिरा नली ॥ ११५॥ नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्त हृत् ॥ कृच्छ्राश्म वात तृष्णास्र कुष्ठ कण्डू ज्वरापहा ॥ ११६

भा० अनन्तर नलिका को कहते हैं। उत्तर देशमें प्रसिद्ध है। सुगन्ध वरियारे के क़िसिम से है ॥ और पवारी इस नाम से प्रसिद्ध है ॥ नलिका विद्रुमलता कपोतचरणा नटी ॥ धमनी अञ्जनकेशी

निर्मध्या सुषिरा नली यह नड़के नाम हैं ॥ २१५ ॥ नड़ शीतल हलका नेत्रके हित और कफ पित्तका नाशक है तथा मूत्रकृच्छ्र पथरी दाह तृषा रक्तकुष्ठ खुजली ज्वर इनका नाशक है ॥ २१६ ॥

अथ प्रपौण्डरीकं सुगन्धद्रव्यं पुण्डेरी इति लोके प्रसिद्धम् ॥ प्रपौण्डरी पौण्डर्य्यं चक्षुष्यं पौण्डरीयकम् ॥ पौण्डर्य्यं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम् ॥ ॥२१७॥ चक्षुष्यं मधुरं पाके वर्ण्यं पित्तकफ प्रणुत् ॥ ॥ इति भावप्रकाशे कर्पूरादि वर्गः ॥ ॥

भा० पुंडेरीके नाम । यह सुगन्ध द्रव्य है । प्रपौंडरीक- पौण्डर्य्य- चक्षुष्य -पौंडरीयक- यह पुंडेरीके नाम हैं ॥ अनन्तर प्रपौंडरीक यह सुगन्ध द्रव्य और पुंडेरी इस नामसे लोक में प्रसिद्ध है । पुंडरी मधुर तिक्त कसेली शुक्रको उत्पन्न करनेवाली शीतल ॥ २१७ ॥ चक्षुके हित पाक में मधुर वर्णको अच्छा करनेवाली पित्त कफकी नाशक है ॥

॥ ॥ इति भावप्रकाशे कर्पूरादि वर्ग समाप्त ॥ ॥

[अथ गुडूच्यादि वर्गः।

[तत्रादौ गुडूच्या उत्पत्तिर्नामानि गुणाश्च।]

अथ लङ्केश्वरो मानी रावणो राक्षसाधिपः ॥ रामपत्नीं बलात् सीतां जहार मदनातुरः ॥ २१८ ॥ ततस्तं बलवान् रामो रिपुं जाय पहारिणाम् ॥ ततो वावरसैन्येन जघान रण मूर्द्धनि ॥ २१९ ॥

भा० अनन्तर गुडूच्यादि वर्गः ॥ इसमें पहले गुडूची अर्थात् गिलोय की उत्पत्ति और नाम और गुण कहते हैं ॥ अभिमान वाला राक्षसोंका राजा लंकेश्वर रावण मदनातुर हुवा रामपत्नी सीता को बलात्कारसे चुरा लेगया ॥ २१८ ॥ उसके अनन्तर बलवान रामने पत्नी के चुरानेवाले

शत्रु को वानरों की सैनासे रण में मारा ॥२१९॥

हते तस्मिन् सुरारातौ रावणे वलगर्विते ॥ देवराजः सहस्राक्षः परितुष्टोऽति राघवे ॥२२०॥ तत्र ये वानराः केचिद्राक्षसैर्निहता रणे ॥ तानिन्द्रो जीवयामास संसिच्य मृतवृष्टिभिः ॥२२१॥ ततो येषु प्रदेशेषु कपिगात्रात् परिच्युताः ॥ पीयूषविन्दवः पेतुस्तेभ्यो जाता गुडूचिका ॥२२२॥

भा० वल करके गर्वित देवताओंका शत्रु उस रावण के मरने में ॥ देवताओंका राजा इन्द्र राम पर बहुत प्रसन्न हुवा ॥२२०॥ उस रणमें राक्षस के द्वारा जो मारे गये ॥ उन्को इन्द्रने अमृत की वर्षा से सींचकर जिवाया ॥ ॥२२१॥ जिस देशमें वानरोंके शरीर से जो अमृतकी बूंद गिरी उनसे गिलोय उत्पत्ति हुई ॥२२२॥

गुडूची मधुपर्णी स्यादमृताऽमृतवल्लरी ॥ छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीति च ॥२२३॥ जीवन्ती तन्त्रिका सोमा सोमवल्ली च कुण्डली ॥ चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या च रसायनी ॥२२४॥ चन्द्रहासी वयस्था च मण्डली देवनिर्मिता ॥ गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी ॥२२५॥ संग्राहिणी कषायोष्णा लघ्वी बल्याग्निदीपनी ॥ दोषत्रयामतृड्दाहमेहकासांश्च पाण्डुताम् ॥२२६॥ कामला कुष्ठवातास्रज्वरकृमिवमीन्हरेत् ॥ प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत् ॥२२७॥

भा० गुडूचीमधुपर्णी अमृता अंमृतवल्ली छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा मत्स्यादनी ॥१२३॥ जीवन्ती तन्त्रिका सोमा सोमवल्ली कुंडली ॥ चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या रसायनी ॥१२४॥ चन्द्रहासी वयस्था मंडली देवनिर्मिता॥ यह गिलोयके नामहैं ॥ गिलोय कड़वी तिक्त पाकमें मधुर रसायनी ॥१२५॥ संग्राहणी कसैली उष्ण हलकी बलको करनेवाली अग्निकेदीपन करनेवाली ॥ तीन दोष आम तृषा दाह प्रमेह कास पाण्डु रोग ॥१२६॥ कामला कुष्ठ वातरक्त ज्वर कृमि वमन इनको नाश करती है॥ और प्रमेह श्वास कास बवासीर मूत्रकृच्छ्र हृद्रोग वात इनकी नाशक है ॥१२७॥ [अथ पान।]

ताम्बूल वल्ली ताम्बूली नागिनी नागवल्लरी ॥ ताम्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम् ॥१२८॥ वश्यं तिक्तं कटु क्षारं रक्तपित्त करं लघुः ॥ बल्यं श्लेष्मास्य दौर्गन्ध्य मलवातश्रमा पहम् ॥१२९॥

[अथ बेल।] बिल्वः शाण्डिल्य शैलूषौ मालूर श्रीफलावपि ॥ श्रीफल स्तुवर स्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्नि पित्तकृत् ॥१३०॥ वातश्लेष्म हरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः

भा० अनन्तर पान। ताम्बूल वल्ली ताम्बूली नागिनी नागवल्ली। येह पान के नाम हैं ॥ पान विशद रुचिको करनेवाला तीक्ष्ण उष्ण कसैला सरहोता है ॥१२८॥ और वशीकरण तिक्त कटु क्षार तथा रक्तपित्तको करनेवाला हलका ॥ बलको करनेवाला तथा कफ मुखकी दुर्गंधता मल वात श्रम इनका नाशक है ॥१२९॥ अनन्तर बेल बिल्व शाण्डिल्य शैलूष मालूर श्रीफल येह बेलके नामहै। बेल कसैला तिक्त ग्राही रूखा अग्नि पित्तको करनेवाला है और वात कफ का नाशक बलको करनेवाला हलका उष्ण पाचन है॥

[अथ गम्भारी।]

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका ॥

काश्मीरी काश्मरी हीरा काश्मर्य्यः पीतरोहिणी ॥
१३१ ॥ कृष्णावृन्ता मधुरसा महा कुसुमिकापि च ॥
काश्मरी तुवरा तिक्ता वीर्य्योष्णा मधुरा गुरुः ॥ १३२॥
दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित् ॥ दो
ष तृषामशूलार्शो विषदाह ज्वरापहा ॥ १३३ ॥
तत् फलं बृंहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम् ॥ वा
तपित्त तृषा रक्त क्षय मूत्र विबन्धनुत् ॥ १३४ ॥
स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्ल विशुद्धि कृत् ॥ ह-
न्याद्दाह तृषा वात रक्तपित्त क्षतक्षयान् ॥ १३५ ॥

भा० अनन्तर गम्भारी ॥ गम्भारी भद्रपर्णी श्रीपर्णी मधुपर्णिका काश्मी री काश्मरी हीरा काश्मर्य पीतरोहणी ॥ १३१ ॥ कृष्णावृन्ता मधुरसा महाकुसुमिका येह गमभारी के नामहैं । कुम्भेर कसेली तिक्त वीर्यमें उष्ण मधुर भारी होती है ॥ १३२॥ और दीपन पाचन कांतिकोवढानेवाली भेदनकरनेवाली भ्रम शोषकोजीतनेवाली दोष तृषा आम शूल ववासीर विष दाह ज्वर इनको नाशक है ॥ ३३॥ उस्का फल उष्ट शुक्रको उत्पन्नकरनेवाला रसायन है ॥ वात पित्त तृषा रक्त क्षय मूत्रकावंद होना इनको नाश करताहै ॥ ३४ ॥ पाक में मधुर शीतल चिकना कसैला खट्टा शुद्धी को करनेवालाहै ॥ और दाह तृषा वातरक्त पित्त क्षत क्षयइनको भी नाश करता है ॥ १३५॥

[अथ पाडरि काठपाडरि ।]

पाटलिः पाटला मेघा मधुदूती फलेरुहा ॥ कृष्णावृ
न्ता कुवेराक्षी कालस्थाल्यलि वल्लभा ॥ १३६ ॥ ताम्र
पुष्पी च कथिता परास्यात् पाटला सिता ॥ मुष्कको
मोक्षको घण्टा पाटलिः काष्ठपाटला ॥ १३७ ॥

(कालस्थालीत्यत्र काचस्थाली त्येके।)

पाटला तुवरा तिक्तानुष्णा दोषत्रयापहा ॥ अरुचि श्वासशोथास्र छर्द्दि हिक्का तृषाहरी ॥२३८॥ पुष्पं कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफास्रनुत्॥ पित्तातिसार हृत्कण्ठ्यं फलं हिक्कास्र पित्तहृत्॥२३९॥

भा० अनन्तर पाढ़ला काष्टपाटला ॥ पाढ़लि पाटला मोघा मधुदूती फलेरुहा कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी कालस्थाली अलिवल्लभा ॥२३६॥ ताम्र पुष्पी येह पाटलाके नाम कहेहैं ॥ और दूसरी पाटला सिता। मुष्कक मोक्षक घराटा पाटली काष्टपाटला येह कटपाढ़लके नामहैं ॥२३७॥ कालस्थाली यहांपर कोई काचस्थाली भीकहतेहैं॥ पाटला कसैली तिक्त शीतल तीनों दोषोंका नाशकरनेवाली अरुचि श्वास शोथ रक्त वमन हुचकी तृषा इनकी नाशक है ॥२३८॥ उस्का पुष्प कसैला मधुर शीतल हृदयको हितकरनेवाला कफ रक्तका नाशक ॥ पित्तातिसारकानाशक कण्ठको अच्छाकरनेवाला है और उस्का फल हुचकी रक्तपित्त कफ इनका नाशक है ॥२३९॥

[अथ अगेंथ गनिआरि इति च।] अग्निमन्थो जयः स स्याच्छ्रीपर्णी गणिकारिका ॥ जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका ॥२४०॥ अग्निमन्थः श्वयथुनुद्वीर्य्योष्णः कफवातहृत् ॥ पाण्डुनुत् कटुक स्तिक्त स्तुवरो मधुरोऽग्निदः ॥ २४१॥

भा० अनन्तर अगेंथ जिस्को गनियारी भी कहतेहैं ॥ अग्निमन्थ जयः श्रीपर्णी गणिकारिका जया जयन्ती तर्कारी नादेई वैजयन्तिका। येह अरनीके नामहैं ॥२४०॥ अरनी शोथकी नाशक वीर्य्यमें उष्ण कफवात को दूर करनेवाली पाण्डुरोगकी नाशक कड़वी तिक्त कसैली मधुर अग्निको करनेवालीहै ॥२४१॥

[अथ सोनापाठा।]

स्योनाकः शोषणश्च स्यान्नटकट्वङ्ग टुण्टुकः ॥

मण्डूकपर्णपत्त्रोर्णी शुकनाशकुटन्नटाः ॥२५२॥ दीर्घवृन्तोऽरलुश्चापि पृथुशिम्बः कटम्भरः ॥ स्योनाको दीपनः पाके कटुकस्तुवरो हिमः ॥२५३॥ ग्राही तिक्तोऽनिलश्लेष्मपित्तकासप्रणाशनः ॥ टुण्टुकस्य फलं बालं रूक्षं वातकफापहम् ॥२५४॥ हृद्यं कषायं मधुरं रोचनं लघुदीपनम् ॥ गुल्मार्शःकृमिहृत्प्रौढं गुरुवातप्रकोपणम् ॥२५५॥

भा० अनन्तर सोनापाठा ॥ स्योनाक शोषण नट कट्वङ्ग टुन्टुक ॥ मण्डूकपर्ण पत्रोर्ण शुकनाश कुटन्नट ॥२५२॥ दीर्घवृन्त अरलू पृथुशिम्ब कटम्भर । येह सोनापाठाके नाम है ॥ सोनापाठा दीपन पाकमें कटु कसैला शीतल है ॥२५३॥ और दस्तकोबंद करनेवाला तिक्त वात कफ पित्त कास इनका नाशक है ॥ और सोना पाठे का कच्चा फल रूखा वात कफ का नाशक होता है ॥२५४॥ तथा हृदयको हित कसैला मधुर रुचिको करनेवाला हल्का दीपन होता है । वायगोला बवासीर कृमि इनका नाशक है ॥ तथा पका फल भारी वातका प्रकोपकरनेवाला है ॥२५५॥

[अथ बृहत्पञ्चमूलस्य लक्षणं गुणाः।]

श्रीफलः सर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका ॥ स्योनाकः पञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मतम् ॥२५६॥ पञ्चमूलं महत्तिक्तं कषायं कफवातनुत् ॥ मधुरं श्वासकासघ्नमुष्णं लघ्वग्निदीपनम् ॥२५७॥

भा० अनन्तर बृहत्पंचमूलका लक्षण और गुण कहते हैं ॥ कुम्भ पाटला अरणी सोनापाढा । इन पांचों से बृहत्पंच मूल होता है ॥ २५६ ॥ पंचमूल तिक्त कसैला कफ वातका नाशक है ॥ और मधुर श्वास कास का नाशक । उष्ण हल्का अग्निका दीपन होता है ॥ २५७ ॥

अथ सरिवन] शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी गुहा ॥ विदारि गन्धा दीर्घाङ्गी दीर्घपात्रां शुमत्यपि ॥ २४८ ॥ शालिपर्णी गुरुश्छर्दी ज्वर श्वासातिसार जित् ॥ शोष दोषत्रय हरी वृंहण्यु क्ता रसायनी ॥ २४६ ॥ तिक्ता विष हरी स्वादुः क्ष-न कास कृमि प्रणुत् ॥

भा० अनन्तर सरिवन । शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी । विदारीगंधा दीर्घाङ्गी दीर्घपत्रा अंशुमती येह सरवन के नामहैं ॥ २४८ ॥ सरिवन भारी होता है और वमन ज्वर श्वास अतीसार इनको दूर करता है । शोष त्रिदोष इनका नाशक धातुओं कापुष्ट करने वाला रसायन है ॥ और तिक्त विषका नाशक मधुर क्षत कास कृमी इनका भी नाशक है ॥

[अथ पिठवन ।]

पृश्निपर्णी पृथकपर्णी चित्रपर्ण्य हि पर्ण्यपि ॥ क्रोष्टु विन्ना सिंह पुच्छी कलशीद्धा वनिर्गुहा ॥२५० पृष्टिपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा ॥हन्ति दाह ज्वर श्वास रक्तातीसार तृड् वमीः ॥ २५१॥

भा० अनन्तर पिठवन ॥ पृश्निपर्णी प्रथक पर्णी चित्रपर्णीः हि पर्णी क्रोष्टविन्ना सिंहपुच्छी कलशी धावनी गुहा ॥ २५०॥ येह पिठवन के नाम हैं । पिठवन त्रिदोषकी नाशक धातुको पुष्ट करनेवाली उष्ण मधुर सरहोतीहै ॥ और दाह ज्वर श्वास रक्तातिसार तृषा वमन इनको नाशकरतीहै ॥ २५१॥

[अथ वरहण्टा ।]

वार्त्ताकी क्षुद्र भण्टाकी महती वृहतीकुली ॥ हिङ्गुली राष्ट्रिका सिंही महोष्ट्रीदुः प्रधर्षिणी ॥ २५२॥ वृहती ग्राहिणी हृद्या पाचनी कफ वात हृत् ॥

कटु तिक्तास्य वैरस्य मलारोचक नाशिनी ॥१५३॥
उष्णा कुष्ठं ज्वर श्वास शूल कासाग्निमान्द्य जित् ॥

[अथ भटकटैय्या रोगिणी इति च।]

कण्टकारी तु दुःस्पर्शा क्षुद्रा व्याघ्री निदिग्धिका ॥ क
ण्ठालिका कण्टकीनि धावनी वृहती तथा ॥१५४॥
उभे च वृहत्यौ । यत आह सुश्रुतः।

भा० अनन्तर बड़ी कटेली ॥ वार्ताकी क्षुद्रभण्टाकी महती वृहती कुली। हिंगुली राष्ट्रिका सिंही महोष्ट्री दुःप्रधर्षिणी॥१५२॥ येह बड़ी कटेली के नाम हैं ॥ बड़ी कटेली क़ाबिज़ हृदय के हित पाचन कफ वातकी नाशक है ॥ और कड़वी तिक्त मुखकी विरसता मल अरुचि इनकी नाशक है ॥ १५३॥ और उष्ण होतीहै तथा कुष्ठ ज्वर श्वास शूल कास अग्निमान्द्य इन कोजीतनेवाली है ॥ ॥ अनन्तर छोटी कटेली कण्टकारी दुस्पर्शा क्षुद्रा व्याघ्री निदग्धिका। कण्ठालिका कन्टकिनी धावनी वृहती येह छोटी कटेली के नाम हैं ॥ १५४॥ दोनो कटेली। जैसेकि कहा है सुश्रुतने॥

क्षुद्राया क्षुद्र भद्राख्या वृहतीति निगद्यते ॥ श्वेता
क्षुद्रा चन्द्र हासा लक्ष्मणा क्षेत्र दूतिका ॥ १५५ ॥
गर्भदा चन्द्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्करी ॥ कण्ट-
कारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः ॥ १५६ ॥ रूक्षो
ष्णा पाचनी कास श्वास ज्वर कफा निलान् ॥
निहन्ति पीनसं श्वास पार्श्व पीड़ा हृदामयान् ॥१५७

भा० छोटी कटेली और बड़ी कटेली इनको वृहती ऐसा कहतेहैं ॥ और सुफ़ेद कटेली को चन्द्र हासा लक्ष्मणा क्षेत्र दूतिका ॥ १५५॥ गर्भदा, चन्द्रप्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्करी ऐसा कहतेहैं ॥ कटेली सर तिक्त कड़वी दीपन हलकी ॥ १५६॥ रूखी गर्म पाचन कास श्वास ज्वर कफ

वात इनको नाश करती है ॥ और कास श्वास पसली की पीड़ा हृद्रोग। इनको भी नाश करती है ॥ २५७॥

नयोः फलं कटुरसे पाके च कटुकं भवेत् ॥ शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु ॥ २५८॥ हन्यात् कफ मरुत् कण्डू कास मेद क्रिमिज्वरान् ॥ तद्वच्छ्वेता सिता क्षुद्रा विशेषात् गर्भ कारिणी ॥ २५९॥

भा० इनका फल रसमें कड़वा और पाकमें भी कड़वा होता है ॥ शुक्र का रेचक भेदन करनेवाला तिक्त पित्त अग्निकी करनेवाला हलका होता है २५८ ॥ और कफ वायु खुजली कास मेद क्रिमिज्वर इनको नाश करताहै ॥ उसी प्रकार सुफ़ेद कटेलीके भी गुणहैं विशेष करकेगर्भ कोकरने वालीहै ॥ २५९॥

[अथ गोक्षुर।]

गोक्षुरः क्षुरकोऽपिस्यात् त्रिकण्टः स्वादुकण्टकः। गोकण्टको गोक्षुरको वन शृङ्गाट इत्यपि ॥ २६०॥ पलंकषाश्वदंष्ट्रा च तथा स्यादिक्षुगन्धिका ॥ गोक्षुरः शीतलः स्वादु र्बलकृद् वस्ति शोधनः॥ ॥२६१॥ मधुरो दीपनो वृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरी हरः॥ प्रमेह श्वास कासार्शः कृच्छ्र हृद्रोग वातनुत् २६२॥

भा० अनन्तर गोखरु ॥ गोक्षुर क्षुरक त्रिकट स्वादुकंटक ॥ गोकंटक गोक्षुरक वनशृंगाट ॥ २६०॥ पलङ्कष श्वदंष्ट्रा इक्षुगंधिका। येह गोखरू के नामहैं ॥ गोखरू शीतल मधुर बलको करनेवाला वस्ति शोधक ॥ २६१ ॥ मधुर दीपन पुरुषको बढ़ानेवाला पुष्टिको देनेवाला अश्मरीका नाशकहै ॥ और प्रमेह श्वास कास ववासीर मूत्रकच्छ्र हृद्रोग वात का नाशक है ॥ २६२॥

[अथ लघु पञ्च मूलस्य लक्षणं गुणाश्च

शालिपर्णी पृष्ठपर्णी वार्ताकी कण्टकारिका ॥
गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतैः कनिष्ठं पञ्चमूलकम् ॥२६३
पञ्च मूलं लघु स्वादु वल्यम्पित्तानिलापहम् ॥
नात्युष्णं बृंहणं ग्राहि ज्वर श्वासाश्मरी प्रणुत् ॥२६४

[अथ दशमूलस्य लक्षणं गुणाश्च।

उभाभ्यां पञ्च मूलाभ्यां दशमूल मुदाहृतम् ॥ द-
शमूलं त्रिदोषघ्नं श्वास कास शिरोरुजः ॥२६५॥
तन्द्राशोथ ज्वरानाह पार्श्वपीडा रुचिर्हरेत् ॥

भा॰ अनन्तर लघु पंच मूल के लक्षण और गुण ॥ सरिवन पिठवन दोनोंकटेली ॥ गोखरु इन पांचों से लघु पंच मूल होताहै ॥२६३॥ पंच मूल हलका मधुर बलको देनेवाला पित्त वातका नाशक है । और न बहुत गरम धातुको बढ़ानेवाला काबिज है और ज्वर श्वास पथरी इन का नाशक है ॥२६४॥ ॥ अनन्तर दश मूल का लक्षण और गुण। दोनों पंच मूलोंसे दशमूल कहा गया है ॥ त्रिदोष कानाशक और श्वास कास सिरकी पीडा ॥२६५॥ तन्द्रा शोथ ज्वर अफारा पसली की पीड़ा अरुचि इनको नाश करताहै ॥

[जीव इति शाक विशेषः । शर्करा वन्मधुर पुष्पा व्रततिः]

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा ॥ मङ्गल्या
नामधेया च शाकश्रेष्ठा पयस्विनी ॥ २६६ ॥ जीव-
न्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोष त्रयापहा ॥ रसाय-
नी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः ॥ २६७ ॥

भा॰ जीवन्ती शाक विशेष है । शर्करा के सदृश मधुर पुष्पवाली इन लिं है । जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनिया मधुस्रवा । मङ्गल्य नाम धेया शाकश्रेष्ठा पयस्विनी येह जीवन्ती के नाम हैं ॥ २६६ ॥ जीवन्ती

शीतल मधुर चिकनी त्रिदोषनाशक ॥ रसायन बलको करनेवाली चक्षुके हित काविज़ हलकी होती है ॥ २६७॥ [अनन्तर वन मूंग।]

अथ मुद्गपर्णी।] मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्ण्यल्पिकासहा ॥ काकमुद्गा च सा प्रोक्ता तथा मार्ज्जार गंधिका ॥ मुद्गपर्णी हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला ॥ चक्षुष्या क्षतशोथघ्नी ग्राहिणी ज्वर दाह नुत् ॥२६८॥ दोषत्रयहरी लघ्वी ग्रहण्यर्शोऽतिसार जित् ॥

अथ माषपर्णी।] माषपर्णी सूर्य्यपर्णी काम्बोजी हयपुच्छिका ॥ पाण्डु लोमशपर्णी च कृष्णवृन्ता महासहा ॥ २७०॥ माषपर्णी हिमा तिक्ता रूक्षा शुक्र बलासकृत् ॥मधुरा ग्राहिणी शोथ वात पित्त ज्वरास्र जित् ॥ २७१॥

भा० अनन्तर वन मूंग ॥ मुद्गपर्णि काकपर्णि सूर्यपर्णि अल्पिका सहा काकमुद्गा मार्जारगन्धिका ।येह वन मूंगके नामहैं ॥ २६७॥वन मूंग शीतल रूक्ष तिक्त मधुर शुक्रको उत्पन्न करनेवाला ॥ चक्षुके हित क्षत शोथ कानाशक काविज़ ज्वर दाह कानाशक ॥२६८॥ तीनों दोषोंको दूर करनेवाला हलकीहै और संग्रहणी बवासीर अतीसार इनकोजीतनेवालाहै ॥ अनन्तर वन उड़द ॥ माषपर्णि सूर्यपर्णि काम्बोजी हयपुच्छिका पाण्डु लोमशपर्णी कृष्णवृन्ता महासह ॥ २७०॥ येह वन उड़द के नामहैं ॥ वन उड़द शीतल तिक्त रूक्ष शुक्र और बलको करनेवाला मधुर काविज़ है ॥ ——— और शोथ वात पित्त ज्वर रक्त इनकोजीतनेवालाहै ॥२७१॥

[अथ जीवनीय गणस्य लक्षण गुणाश्च।]

अष्टवर्गः सयष्टीको जीवन्ती मुद्गपर्णिका ॥ माषपर्णी गणोऽयन्तु जीवनीयगणः स्मृतः ॥ ७२ ॥ जीवनो मधुरश्चापि नाम्ना स परिकीर्तितः ॥ जीवनीयगणः प्रोक्तः शुक्रकृद् बृंहणो हिमः ॥ ७३ ॥ गुरुर्गर्भप्रद स्तन्य कफकृत् पित्तरक्तहृत् ॥ तृषां शोषं ज्वरं दाहं रक्तपित्तं व्यपोहति ॥ ७४ ॥

भा० अनन्तर जीवनीय गणका लक्षण और गुण ॥ अष्टवर्ग । मुलहठीके साथ और जीवन्ती वनमूंग । वनउड़द ये जीवनीय गण कहा है ॥ ७२ ॥ जीवन और मधुर भी नामसे वोह कहा गया है ॥ जीवनीयगण शुक्रको करनेवाला धातुको बढ़ानेवाला शीतल ॥ ७३ ॥ भारी गर्भको देनेवाला दूध और कफको करनेवाला पित्तरक्तका नाशक है ॥ तृषा शोष ज्वर दाह रक्तपित्त इनको नाश करता है ॥ ७४ ॥

[अथ शुक्लरक्तैरण्डः।]

शुक्ल एरण्ड आमण्डश्चित्रो गन्धर्वहस्तकः ॥ पञ्चाङ्गुलो वर्द्धमानो दीर्घदण्डोऽप्यदण्डवः ॥ ७५ ॥ वातारि स्तरुणश्चापि रुबूकश्च निगद्यते ॥ रक्तोऽपरो रुबूकः स्याद् रुबूको रुबूस्तथा ॥ ७६ ॥ व्याघ्रपुच्छश्च वातारिश्चञ्चु रुत्तानपत्रकः ॥ एरण्डयुग्मं मधुरमुष्णं गुरु विलाप्रायेन ॥ ७७ ॥

भा० अनन्तर श्वेत अरंड ॥ अरंड ॥ आमण्ड चित्र गंधर्वहस्तक । पंचांगुल वर्द्धमान दीर्घदण्ड अदण्डव ॥ ७५ ॥ वातारि तरुण रुबूक ये ह एरण्डके नाम हैं ॥ दूसरा लाल अरण्ड ॥ उरुबूक रुबु ॥ ७६ ॥ व्याघ्रपुच्छ वातारि चंचु उत्तानपत्रक येह लाल । एरण्डके नाम हैं येह दोनों एरंड मधुर उष्ण भारी होते हैं ॥ ७७ ॥

शूल शोथ कटीवस्ति शिरःपीड़ोदर ज्वरान ॥ ब्रध्न

श्वास कफा नाह कास कुष्ठा ममारुतान् ॥ २७८॥
एरण्ड पत्रं वातघ्नं कफ कृमि विनाशनम् ॥ मूत्र
कृच्छ्र हरञ्चापि पित्तरक्त प्रकोपणम् ॥ २७९॥
वातार्य्य ग्रदलं गुल्मं वस्तिशूल हरं परम् ॥ कफ
वात कृमीन् हन्ति वृद्धिं सप्त विधामपि ॥ २८०॥
एरण्ड फल मत्युष्णं गुल्म शूला निलापहम् ॥
यकृत् प्लीहोदरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम् ॥ २८१॥
तद्वन्मज्जा च विड् भेदी वात श्लेष्मोदरा पहः ॥

भा॰ शूल शोथ तथा कमर पेडू सिर इनकी पीड़ा उदररोग ज्वर बद श्वास कफ अफारा कास कुष्ट आमवात इनको नाश करता है ॥ २७८॥ अंडीका पत्ता वात नाशक कफ कृमि को दूर करनेवाला ॥ और मूत्र कृच्छ्रका नाशक तथा पित्त रक्त को प्रकोप करनेवाला है ॥ २७९॥ अंडी का अग्रदल वायगोला पेडूका शूल इनका अत्यन्त नाशक है। कफ वात कृमि और सात प्रकार की अंडवृद्धि इनकोभी नाश करता है ॥ २८०॥ अंडीका फल बहुत गरम होता है और वायगोला शूल वात इनका नाशक तथा यकृत प्लीह उदर बवासीर इनका नाशक कटु अत्यन्त दीपन ॥ २८१॥ होताहै उसीप्रकार उसकीगिरी मलको भेदन करनेवाली वात कफ उदरकी नाशक होती है ॥

[अथ शुक्ल रक्तार्क इति लोके।]

अलर्को गुणरूपः स्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च ॥ श्वेत
पुष्पः सदापुष्पः सबालार्कः प्रतापसः ॥ २८२॥ र
क्तोऽपरोऽर्क नामा स्या दर्कपर्णो विकीरणः ॥ रक्त पु
ष्पः शुक्ल फल स्तथा स्फोटः प्रकीर्त्तितः ॥ २८३॥

अर्कद्वयं सरं वात कुष्ठ कण्डू विष व्रणान् ॥ निहन्ति प्लीह गुल्मार्श श्लेष्मोदर शकृत् कृमीन् ॥ २८४॥
अलर्क कुसुमं वृष्यं लघुदीपन पाचनम् ॥ अरोच क प्रसेकार्श : कास श्वास निवारणम् ॥ २८५॥
रक्तार्क पुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठ कृमिघ्नं कफनाश नञ्च । अर्शो विषं हन्ति च रक्त पित्तं संग्राहि गुल्मे श्वयथौ हितं तत् ॥ २८६॥ क्षीर मर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु ॥ कुष्ठ गुल्मोदर हरं श्रेष्ठ मे त-द् विरेचनम् ॥ २८७॥

भा॰ अनन्तर सफेद और लाल आक को कहते हैं ॥ अलर्क गुणरूप मंदार वसुक ॥ श्वेतपुष्प सदापुष्प सबाल्लार्क प्रतापस । येह सफेद आक के नामहैं ॥ २८२॥ दूसरा लाल सूर्यके नामवाला होताहै । और अर्कपल विकीर्ण । रक्तपुष्प शुक्लफल तथा स्फोट येह नाम कहेहैं ॥ ॥ २८३॥ दोनों आक सर वात कुष्ठ कण्डु घाव विष । इनको नाश कर ताहै । औरपलही वायगोला ववासीर कफ उदर मल कृमि इनको भी नाश करताहै ॥ २८४॥ आक का फूल धातूकोवढ़ानेवाला हलका दी पन पाचन होता है । और अरुचि प्रसेक ववासीर कास श्वास । इनका दूर करनेवाला है ॥ २८५॥ लाल आकका फूल मधुर तिक्त होता है । और कुष्ट कृमि इनका नाशक और कफका भी नाशक है ॥ ववासीर विष इनको नाश करता है और रक्त पित्तका भी नाशकहै । और का-विज तथा वायगोला सूजनमें भी येह हितहै ॥ २८६॥ आकका दूध तिक्त उष्ण चिकना लवण के सहित होता है हलका ॥ तथा कुष्ठ गुल्म उदर इनका नाशक और यह श्रेष्ठ रेचन है ॥ २८७॥

[अथ सेहुण्ड ।] सेहुण्ड: सिंहतुण्ड: स्याद्वज्री वज्रद्रु मो: पिच । सुधासमन्त दुग्धा च स्नुक् स्त्रियां स्या न् स्नुही गुडा ॥ २८७ ॥ सेहुण्डो रेचन स्तीक्ष्णो दीपन:

कटकोगुरुः ॥ शूलमष्ठीलिका ध्मानः कफगुल्मो दरानिलान् ॥ १८९ ॥ उन्माद मोह कुष्ठार्शः शोथ मेदोऽश्म पाण्डुताः ॥ व्रण शोथ ज्वर स्लीह विष दूषी विषं हरेत् ॥ १९० ॥ उष्णावीर्य्यं स्नुही क्षीरं स्निग्धञ्च कटुकं लघु ॥ गुल्मिनां कुष्ठिनाञ्चापि तथैवोदर रोगिणाम् ॥ १९१ ॥ हितमेतद्विरेकार्थे येचान्ये दीर्घ रोगिणः ॥

भा० अनन्तर थूहर ॥ सेहुण्ड सिंहतुण्ड वज्री वज्रद्रुम । सुधा समन्त दुग्धा स्नुक स्नुही गुडा येह थूहर के नामहैं ॥ १८८ ॥ थोहर रेचन तीक्ष्ण दीपन कटु भारी होता है और शूल अष्ठिलिका आध्मान कफ वायु गोला उदरवात ॥ १८९ ॥ उन्माद मोह कुष्ट बवासीर शोथ मेद पथरी पांडुरोग व्रण शोथ ज्वर स्लही विष दूषिविष इनको नाश करता है ॥ १९० ॥ थूहर का दूध उष्ण वीर्य्य स्निग्ध कटु लघु होता है । और गुल्म वाले और कुष्ठ रोगवाले तथा उदर रोगवाले इनको ॥ १९१ ॥ यह विरेचन के अर्थ हितहै तथा और दीर्घ रोगियों को हितहै ॥

[अथ सेहुण्ड भेदः ।] शातला अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा ।]

शातला सप्तला सारा विमला विदुला च सा ॥ तथा निगदिता भूरि फेना चर्मकषेत्यपि ॥ १९२ ॥ शातला कटुका पाके वातला शीतला लघुः ॥ तिक्ता शोथ कफानाह पित्तोदावर्त्त रक्तजित् ॥ १९३ ॥

भा० अनन्तर थोहर भेद । शातला इस नामसे प्रसिद्ध है । शातला सप्तला सारा विमला विदला तथा भूरिफेना चर्मकषा येह सीकाकाईके नाम हैं ॥ १९२ ॥ सीकाकाई पाक में कटु वायुको करनेवाली शीतल हलकी होतीहै ॥ और तिक्त होती है । तथा शोथ कफ अफारा पित्त उदावर्त्त रक्त इनको जीतनेवालीहै ॥ १९३ ॥

अथ कलिहारी।] कलिहारी तु हलिनी लाङ्गली शक्र पुष्प्यपि ॥ विशल्याग्नि शिखानन्ता वह्नि वक्रा च गर्भनुत् ॥ २९४ ॥ कलिहारी सरा कुष्ठ शोफार्शो व्रण शूलजित् ॥ सक्षारा श्लेष्म जित्तिक्ता कटुका तुवरापि च ॥ २९५ ॥ तीक्ष्णोष्णा क्रमिहल्लघ्वी पित्तला गर्भ पातिनी ॥

भा० कलिहारी कलिहारी हलनी लाङ्गली शक्रपुष्पी विशल्या अग्निशिखा अनन्ता वन्हिवक्रा गर्भनुत् येह कलिहारी के नामहैं। २९४ ॥ कलिहारी सर कुष्ट शोफ ववासीर व्रण शूल इनको जीतने वाली है। कुछेक क्षारवाली कफको जीतनेवाली तिक्त कड़वी कसैली भी होती है ॥ २९५ ॥ तीक्ष्ण उष्ण क्रमिको नाश करनेवाली हलकी पित्तको उत्पन्न करने वाली गर्भको गिरानेवाली होती है ॥

अथ श्वेत रक्त करवीर:।] करवीर: श्वेत पुष्प: शतकुम्भो ऽश्व मारक: ॥ द्वितीयो रक्त पुष्पश्च चण्डातोलगुड़ स्तथा ॥ २९६ ॥ करवीर द्वयं तिक्तं कषायं कटुकञ्च तत् ॥ व्रणलाघव कृन्नेत्र कोप कुष्ठव्रणापहम् ॥ २९७ ॥ वीर्य्योष्णं क्रमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम् ॥

भा० अनन्तर सुफेद और लाल कनेरको कहते हैं ॥ सफ़ेद फूलके कनेरको। शतकुम्भ अश्वमारक कहते हैं ॥ और दूसरे लालफूल के कनेर को चंडातलगुड कहते हैं ॥ २९६ ॥ दोनों कनेर तिक्त कसैले कड़वे होते हैं और व्रणमें हलका करनेवाले और नेत्र को कुष्ट व्रण इनके नाशक होते हैं ॥ २९७ ॥ तथा वीर्य्यमें उष्ण क्रमि खुजली इनकी नाशक है ॥ और खानेसे विषके समान होते हैं ॥

[अथ धनूरः।] धनूर धूर्त धत्तूरा उन्मत्तः कनकाह्वयः॥
देवना कितव तूरी महामोही शिवप्रियः॥ १९८॥
मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः॥ धत्तूरो
मद वर्णाग्नि वातकृज्ज्वर कुष्ठनुत्॥ १९९॥ कषा
यो मधुरस्तिक्तो यूका लिक्षा विनाशकः॥ उष्णो
गुरुर्व्रण श्लेष्म कण्डू कृमि विषापहः॥ २००॥

भा० अनन्तर धतूर ।धतूर धतूरा उन्मत्त स्वर्णके नामवाला ।देवना कि
तवतूरि महामोही शिवप्रिया॥१९८॥ मातुल मदन येह धतूरे के ना
म हैं। और इसके फलको मातुल पुत्रक कहते हैं॥ धतूरा मद अग्निवा
त इनको करनेवाला ज्वर कुष्ठ का नाशक॥ १९९॥ कसैला,मधुर,तिक्त,
होता है जूवां लीक इनका नाशक। गरम भारी होताहै। व्रण कफ खुजली
कृमि विष इनका नाशक है॥ २००॥

[अथ अरूसा।] वासको वाशिका वासा भिषङ्माता च
सिंहिका॥ सिंहास्यो वाजिदन्ता स्यादाटरूषोऽटरू
षकः॥ २०१॥ आटरूषो वृषस्ताम्रः सिंहपर्णश्च स
स्मृतः॥ वासको वातकृत् स्वर्य्यः कफ पित्तास्र ना-
शनः॥ २०२॥ तिक्तस्तुवरको हृद्यो लघुः शीतस्तृ-
डर्त्तिहृत्॥ श्वास कासज्वर च्छर्द्दि मेह कुष्ठ क्षया
पहः॥ २०३॥ [अथ दवन पापरा।]

अनन्तर वांसा।] वासक वाशिका वासा भिषङ्माता सिंहिका॥ सिंहास्य
वाजिदन्ता आटरूष अटरूषक ये वांसेके नाम हैं। और वृष नाम्र सिंघ
पर्णी वांसा वातको करनेवाला स्वरको अच्छा करनेवाला कफ रक्त पित्त
इनका नाशक॥ २०१॥ तिक्त कसैला हृदयको अच्छाकरनेवाला हलका
शीत तृषा पीड़ा इनको नाश करनेवाला। श्वास कांस ज्वर वमन प्रमेह

कुष्ठ और क्षय इनका नाशक होता है ॥२०३॥ [पित्त पापड़ा]

पर्पटोवर तिक्तश्च स्मृतः पर्पटकश्च सः ॥ कथितः पांशु पर्य्याय स्तथा कवच नामकः ॥ २०४ ॥ पर्पटो हन्ति पित्तास्त्र भ्रम तृष्णा कफ ज्वरान् ॥ संग्राही शीतल स्तिक्तो दाह नुद्वातलो लघुः ॥ २०५ ॥

अथ निम्बः।] निम्बः स्यात् पिचुमर्द्दश्च पिचुमन्दश्च तिक्तकः ॥ अरिष्टः पारिभद्रश्च हिङ्गु निर्य्यास इत्यपि ॥ २०६ ॥ निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटु पाकोऽग्नि वात नुत् ॥ अहृद्यः श्रमतृट् कासज्वरारुचि कृमिप्रणुत् ॥ २०७ ॥ व्रण पित्त कफ छर्द्दि कुष्ठ हृल्लास मेह नुत् ॥ निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमि पित्त विषप्रणुत् ॥ २०८ ॥ वातलं कटु पाकञ्च सर्व्वारोचक कुष्ठ नुत् ॥ निम्ब फलं रसे तिक्तं पाके तु कटु भेदनम् ॥ २०९ ॥ स्निग्धं लघूष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शः कृमि मेह नुत् ॥

भा० अनन्तर पित्तपापड़ा ॥ पर्पट वरतिक्त पर्पटक पांशुपर्याय कवचनामक । येह पित्त पापड़े के नाम हैं ॥ २०४॥ पित्तपापड़ा पित्त भ्रम तृषा कफज्वर इनको नाश करता है । और काबिज शीतल तिक्त दाह इनको नाश करने वाला वातको करनेवाला हलका ॥ २०५ ॥ [अनन्तर नींब के नाम और गुण।] नीम्ब पिचुमर्द्द पिचुमन्द तिक्तक अरिष्ट पारिभद्र हिंगुनिर्यास । येह नींब के नाम हैं ॥ २०६॥ नीम्ब शीतल हलका काबिज पाकमें कटु अग्नि वायु को करनेवाला हृदय का अप्रिय श्रम तृषा कास ज्वर अरुचि कृमि इनका नाशक है ॥ २०७ ॥ और व्रण पित्त कफ वमन कुष्ठ हृल्लास प्रमेह इनका नाशक है ॥ नीम का

पत्ता आंखों को हित कृमि पित्त विष इनका नाशक ॥ २०८॥ और वायुकी करने वाला पाकमें कटु सम्पूर्ण अरुचि कुष्ठ इनका नाशक है ॥ और निम्बोली रसमेंतिक्त और पाकमें तिक्त तथा कड़वी भेदन होती है ॥ २०९ ॥ चिकनी हलकी गरम तथा कुष्ठकी नाशक वायगोला बवासीर कृमि प्रमेह इनका नाशक है ॥

अथ वकाइन ।] महानिम्बः स्मृतो द्रेका रम्यको विषमुष्टिका: ॥ केशमुष्टि निम्बकश्च कार्मुको जीव इत्यपि ॥ २१० ॥ महानिम्बो हिमो रूक्ष स्तिक्तो ग्राही कषायक: ॥ कफ पित्त भ्रम च्छर्दि कुष्ठ हृल्लास रक्त जित् ॥२११॥ प्रमेह श्वास गुल्मार्शो मूषिका विष नाशन: ॥ [अथ फरहद ।] पारि भद्रो निम्बतरुर्मन्दार: पारिजातक: ॥ पारि भद्रो ऽनिल श्लेष्म शोथ मेद: कृमिप्रणुत् ॥ २१२ ॥ पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधि विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर वकाइन । महानिम्ब उद्रेक अरम्यक विषमुष्टिक ।केशमुष्टि निम्बक कार्मुक जीव येह बकाइन के नामहैं ॥ २१० ॥ बकाइन शीतल रूक्ष तिक्त काबिज़ कसैला ॥कफ पित्त भ्रम वमन कुष्ठ हृल्लास रक्त इनको जीतनेवालाहै ॥ २११ ॥ प्रमेह श्वास वायगोला बवासीर मूषेके विषका नाशक है ॥ ॥ अनन्तर फरहद ।] पारिभद्र निम्बतरु मंदार पारिजातक । येह जलनीम के नामहैं ॥जलनीम वात कफ शोथ मेद कृमि इनका नाशक है ॥ २१२ ॥ और इसका पत्र पित्तरोगका नाशक और कर्णरोगका भी नाशक है ॥

अथ कचनार: ।] काञ्चनार: काञ्चनको गण्डारि: शोणपुष्पक: ॥ [अथ कचनार भेद: ।] कोविदारश्च मरिक: कुद्दालो युगपत्रक: ॥ कुण्डली ताम्रपुष्पश्च

स्मन्तकः स्वल्पकेशरी ॥ २१३ ॥ काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरः श्लेष्म पित्तनुत् ॥ कृमि कुष्ठ गुद भ्रंश गण्डमाला व्रणा पहः ॥ २१४ ॥ कोविदारोऽपि तद्वत्स्यात्तयोः पुष्पं लघुस्मृतम् ॥ रूक्षं संग्राहि पित्तास्त्र प्रदर क्षय कासनुत् ॥ २१५॥

भा॰ अनन्तर कचनार ॥ काञ्चनार काञ्चनक गंडारी शोणपुष्पक । येह कचनार के नामहैं ॥ [अनन्तर दूसरी कचनार के नाम ।] कोविदार मरिक कुद्दाल युगपत्रक ॥ कुंडली ताम्रपुष्प अस्मन्तक स्वल्पकेशरी ॥ २१३ ॥ यह दूसरी क़िस्मकी कचनार के नामहैं ॥ कचनार शीतल क़ाबिज़ कसैला कफ पित्तका नाशक ॥ कृमि कुष्ठ गुदभ्रंश गंडमाला व्रण इनका नाशक हैं ॥ २१४ ॥ दूसरे क़िस्मका कचनार भी उसीके समान होताहै ॥ और उनका फूल हलका होता है ॥ रूखा क़ाबिज़ रक्तपित्त प्रदर क्षय कास इनका नाशक है ॥ २१५ ॥

अथ सहिञ्जन श्यामः श्वेत रक्तश्च ॥] शोभाञ्जनः शिग्रु तीक्ष्ण गन्धका क्षीवमोचकः ॥ तद्बीजं श्वेत मरिचं मधु शिग्रुः सलोहितः ॥ २१६॥ शिग्रुः कटुः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः ॥ दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत् ॥ २१७ ॥ संग्राही शुक्लो हृद्यो पित्त रक्त प्रकोपनः ॥ चक्षुष्यः कफ वातघ्नो विद्रधि श्वयथु कृमीन् ॥ २१८ ॥

भा॰ अनन्तर सहजना काला सुफेद लाल ॥ शोभांजन शिग्रु तीक्ष्ण गंधक आक्षीव मोचक । उसका बीज सफ़ेद मिरचके समान है । मधुर सेहजना कुछ लाल होता है ॥ २१६ ॥ सेंजना कडुवा पाकमें कटु तीक्ष्ण उष्ण मधुर हलका दीपन रोचन रूखा क्षार तिक्त विदाहको करनेवाला। ॥ २१७ ॥ क़ाबिज़ शुक्रको उत्पन्न करनेवाला हृदयको अच्छा करनेवाला पित्तरक्तका कोप करनेवाला चक्षुके हित कफ वातका नाशक विद्रधी

सजन कृमि। इनको नाश करता है ॥ २१८॥

मेदो प ची विष प्लीह गुल्म गराड व्रणान् हरेत् ॥ श्वेतः प्रोक्त गुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाह कृद्भवेत् ॥ २१९ ॥

प्लीहानं विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नः पित्त रक्त हृत् ॥ मधु शिग्रुः प्रोक्त गुणो विशेषाद्दीपनः सरः ॥ २२० ॥

शिग्रु वल्कल पत्राणां स्वरसः परमार्त्तिहृत् ॥ चक्षुष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम् ॥ २२१॥

अवृष्यं कफ वातघ्नं तन्नस्येन शिरोर्त्तिनुत् ॥

भा॰ मेद अपचि विष पिलही वायगोला गराड व्रण इनको नाश करता है। सुफेद कहे हुवे गुण के समान जान लेना। विशेष करके दाह को करता है ॥ २१९ पिलही विद्रधी को नाश करता है व्रणका नाशक है पित्त रक्तको दूर करता है ॥ सहेजन का बीज कहे हुवे गुणवाला विशेष करके दीपन ॥ २२०॥ सहेजन की छाल पत्र इनका स्वरस अत्यन्त पीडाको नाश करनेवाला है और चक्षुकाहित सहजने का बीज तीखा उष्ण विषका नाशक है ॥ २२१॥ धातुको वक्षीण करनेवाला कफ वातका नाशक और योह नास लेनेसे सिरकी पीडाको नाश करना है ॥

[अथ श्वेतपुष्पा नीलपुष्पा अपराजिता।] आस्फोता गिरिकर्णी स्या द्विष्णुक्रान्ता पराजिता ॥ अपराजिते कटु मेध्ये शीते कण्ठ्ये सुदृष्टि दे ॥ २२२ ॥ कुष्ठ मूत्र त्रिदोषाम शोथ व्रण विषापहे ॥ कषाये कटु के पाके तिक्ते च स्मृति बुद्धिदे ॥ २२३॥

भा॰ अनन्तर सुफेद फूल और नीले फूलकी विष्णुक्रान्ता ॥ आस्फोता गिरिकर्णी विष्णुक्रान्ता अपराजिता येह विष्णुक्रान्ताके नाम हैं ॥ विष्णुक्रान्ता कड़वी और बुद्धीको उत्पन्न करनेवाली शीतल कंठको अच्छाकर

नेवाली ॥ २२२ ॥ अच्छी दृष्टिको देनेवाली कुष्ठ मूत्रदोष आम शोथ व्रण विष इनकी नाशक ॥ कसैली कड़वी पाकमें तिक्तभी । और स्मृतिबुद्धी-को देनेवालीहै ॥ २२३ ॥

अथ मेउडी सम्भालू । सिन्दुवार इति च ।] सिन्दुवा-र: श्वेतपुष्प: सिंदुक: सिन्दुवारक: ॥ नीलपु-ष्पी तु निर्गुण्डी शेफाली सुवहा च सा ॥ २२४ ॥ सिन्दुक: स्मृतिदस्तिक्त: कषाय: कटुको लघु: ॥ केश्या नेत्रहितो हन्ति शूल शोथा ममारुतान् ॥ २२५ ॥ क्रिमि कुष्ठारुचि श्लेष्म ज्वरान्नीलापि तद्विधा । सिन्दुवारदलं जन्तु वातश्लेष्म हरं लघु ॥ २२६ ॥

भा० अनन्तर मेउडी संभालू ॥ सिंदुवार इस प्रकार भी कहतेहैं ॥ सिंदुवार श्वेतपुष्प सिंदुक सिंदुवारक नीलपुष्पी निर्गुंडी शिफाली सुबाहा येह मेउडी के नामहैं ॥ २२४ ॥ मेउडी स्मृति को देने वाली तिक्त कसै-ली कड़वी हलकी ॥ केशको अच्छा करनेवाली । नेत्रके हितहोतीहै ॥ और शूल शोथ आम वायु इनको नाश करतीहै ॥ २२५ ॥ क्रमि कुष्ठ अ रुचि कफ ज्वर इनको नाश करतीहै ॥ वोह नीलीभी दो प्रकारकी होती है । मेउडी का पत्र क्रमि वात कफ इनका नाशक हलका होता है ॥ २६

अथ कौरैया ।] कुटज: कूटज: कौटी वत्सको गिरिम ल्लिका ॥ कालिङ्ग: शक्र शाखी च मल्लिका पुष्प इत्यपि ॥ २२७ ॥ इन्द्रो यवफल: प्रोक्तो वृक्षक: पा-ण्डु रद्रुम: ॥ कुटज: कटुको रूक्षो दीपन: स्तुवरो हिम: ॥ २२८ ॥ अर्शोऽतिसार पित्तास्त्र कफतृष्णा मकुष्ठनुत् ॥

भा० अनन्तर कुरैय्या कुटज कूटज कौटी वत्सक गिरि मल्लिका कालिंग शक्र शाक मल्लिका पुष्प । येह कुरैया के नाम हैं ॥ २२७ ॥ और इन्द्रयव फलवृसक पांडुर द्रुम पहभी कुरैया के नाम हैं । कुरैया कडवी रूखी दीपन कसैली ठंढी ॥ २२८ ॥ होती है । और ववासीर अतीसार रक्त पित्त तथा आम कुष्ठ इनकी नाशक है ॥

अथ करटकरेंजा करञ्ज घोरा करञ्ज ॥ करञ्जो नक्तमालश्च करञ्जश्चिर विल्वकः ॥ घृतपूर्णकरञ्जोऽन्यः प्रकीर्य्यः पूतिकोऽपि च ॥ २२९ ॥ स चोक्तः पूतिकरञ्जः सोमवल्कश्च स स्मृतः ॥ करञ्जः कटुकस्तीक्ष्णो वीर्य्योष्णो योनि दोषहृत् ॥ २३० ॥ कुष्ठोदावर्त्त गुल्मार्शो व्रण कृमि कफापहः ॥ तत्पत्रं कफ वातार्शः कृमि शोथ हरं परम् ॥ २३१ ॥ भेदनं कटुकं पाके वीर्य्योष्णं पित्तलं लघु ॥ तत्फलं कफ वातघ्नं मेहार्शः कृमि कुष्ठजित् ॥ २३२ ॥ घृतपूर्णकरञ्जोऽपि करञ्ज सदृशो गुणैः ॥

भा० अनन्तर करटकरेंजा करंज घोर करंज को कहते हैं ॥ करंज नक्त माल चिरविल्वक घृतपूर्ण और दूसरा करंज प्रकीर्य पूतिक भी कहते हैं ॥ २२९ ॥ वोह पूतिकरंज कहा गया है ॥ और वही सोमवल्क भी कहा गया है ॥ करंजवा कड़वा तीखा उष्ण वीर्य में उष्ण योनि दोषका नाशक है । और कुष्ठ उदावर्त्त गुल्म ववासीर व्रण कृमि कफ इनका नाशक है ॥ उस्का पत्र कफ वात ववासीर कृमि सूजन इन का नाशक है ॥ २३१ ॥ भेदन कड़वा पाकमें वीर्य्यमें उष्ण पित्तको करनेवाला ॥ हलका होता है ॥ उस्का फल कफ वातका नाशक प्रमेह ववासीर कृमि कुष्ठ इनका जीतनेवाला ॥ २३२ ॥ घृतपूर्ण नाम दूसरा करंजवा

भी करञ्जवे के सदृश गुणमें है ॥ [अथ अगारि।]

उदकीर्य्य स्तृतीयोऽन्यः षड्ग्रन्था हस्तिवारुणी ॥
मर्कटी वायसी चापि करञ्जी करभञ्जिका ॥२३३॥
करञ्जी स्तम्भनी तिक्ता तुवरा कटु पाकिनी ॥ वी-
र्य्योष्णा वमि पित्तार्शः कृमि कुष्ठ प्रमेह जित् ॥२३४

अथ श्वेत रक्त गुञ्जा।] श्वेता रक्तोच्चटा प्रोक्ता कृष्णला-
चापि सा स्मृता ॥ रक्ता सा काक चिञ्ची स्यात् का-
कानन्ता च रक्तिकः ॥ २३५॥ काकादनी काकपी
लुः सा स्मृता काकवल्लरी ॥ गुञ्जाद्वयन्तु केश्यं
स्यात् वात पित्त ज्वरापहम् ॥ २३६ ॥ मुख शोष
भ्रम श्वास तृष्णा मद विनाशनम् ॥ नेत्रामय हरं
वृष्यं बल्यं कण्डू व्रणं हरेत् ॥ २३७ ॥ कृमीन्द्रलु-
प्त कुष्ठानि रक्ता च धवलापि च ॥

भा० अनन्तर डार करञ्ज। उदकीर्य्य और तीसरा करंजवा हस्ति वारुणी षड्ग्रन्था ॥ मर्कटी वायसी करंजी करभंजिका येह डार करंज के नामहैं ॥ २३३॥ डार करंज स्तंभन करनेवाली तिक्त कसैली कटु पाकवाली ॥ वीर्य्यमें उष्णहोती है ॥ और वमन पित्तकी बवासीर कृमि कुष्ठ प्रमेह इनको जीतनेवाली होती है ॥ २३३॥

अनन्तर सुफेद और लाल चिरमिठी कोकहते हैं ॥ सफेद और लाल को उच्चय और कृष्णला भी कहाहैं ॥ और लालको काकचिञ्ची काकानन्ता रक्तिक ॥ २३४॥ काकादनी काकपीलू काकवल्लरी। येह लाल चिरमिठीके नाम हैं ॥ दोनों चिरमिठियां केशको हित करती हैं और वात पित्त ज्वरकी नाशक हैं ॥ २३६ ॥ तथा मुख शोष भ्रम श्वास तृषा मद इनकी नाशक है ॥ और नेत्र रोग को दूर करनेवाली पुष्ट बलकोकर

ने वाली तथा कण्डु व्रण इनको भी नाश करती है ॥ २३७॥ और क्रमि लुप्त कुष्ट लाल सुफेद भी इनको नाश करती है ॥

कपिकच्छुरात्मगुप्ता वृष्या प्रोक्ता च मर्कटी ॥ अजरा कण्डुराव्यङ्गा दुःस्पर्शा प्रावृषायणी ॥ २३८॥ लाङ्गली शूकसिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ कपिकच्छूर्भृशं वृष्या मधुरा बृंहणी गुरुः ॥ २३९ ॥ तिक्ता वातहरी बल्या कफपित्तास्त्रनाशिनी ॥ तद्बीजं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम् ॥ २४०॥

भा० अनन्तर किमांच ॥ कपिकच्छू आत्मगुप्ता वृष्या मरकटी ॥ अजरा कण्डुरा,व्यंगा दुस्पर्शा प्रावृषायणि ॥ २३८॥ लांगली सूक शिम्बी येह किमांच के नाम महर्षियों ने कहे हैं ॥ किमांच अत्यन्त धातुको बढ़ाने वाली मधुर पुष्ट भारी होती है ॥ २३९॥ और तिक्त वात की नाशक बलकरनेवाली कफ रक्त पित्त की नाशक होती है। और उसका बीज वात का नाशक होता है अत्यन्त वाजीकरण कहा गया है ॥ २४०॥

अथ रोहिणी। मांसरोहिण्यतिरुहा वृत्ता चर्मकरी कृशा ॥ प्रहारवल्ली विकशा वीरवत्यपि कथ्यते ॥ ॥ २४१॥ स्यान्मांसरोहिणी वृष्या सरा दोषत्रयापहा ॥ [अथ चिलह।] चिह्लको वातनिर्हारी श्लेष्मघ्नो धातुपुष्टिकृत् ॥ आग्नेयो विषवद्यस्य फलमस्य निषूदनम् ॥ २४२ ॥

भा० अनन्तर रोहिणी ॥ मांसरोहिणी अतिरुहा वृत्ता चर्मकारी कृशा प्रहारवल्ली विकषा वीरवती येह रोहणी के नाम हैं ॥ २४१॥ मांसरोहणी पुष्ट सर दोषत्रय की नाशक होती है ॥ [अनन्तर चिलह।

चिल्हक वातनिरहार श्लेष्मघ्न ।येह चील्ह के नामहैं ॥ चील्ह श्लेष्म का नाशक धातुका पुष्ट करनेवाला ॥ और इसका जिस्का फल विषके समान मञ्जरीका नाशक होनाहै ॥ २५२॥ [अथटङ्कारि।]

टङ्कारि वातजिज्जिक्ता श्लेष्मघ्नी दीपनी लघु: ॥
शोथोदर व्यथा हन्त्री हिता पीठ विसर्प्पिणाम् ॥
॥२५३॥ [अथवेतस:। वेतसो नम्रक:प्रोक्तो
वानीरो वञ्जुलस्तथा॥ अभ्रपुष्पश्च विदुलो र-
थ शनिश्च कीर्तित:॥२५४॥ वेतस:शीतलो दाह
शोथार्शो योनिरुक् प्रणुत् ॥ हन्ति विसर्प कृच्छ्रा-
स्र पित्ताश्मर कफानिलान् ॥२५५॥

भा० अनन्तर टंकारी ॥ टंकारी वातको जीतनेवाली कफ नाशक दीपन हलकी ॥ शोथ उदर व्यथा इनकी नाशकरनेवाली और पीठ विसर्परोगवालोंको हित होतीहै ॥ २५३॥ अनन्तर वेतस। वेतस नम्रक:वानीर वञ्जुल अभ्रपुष्प विदुल रथशीत येह वेतके नामहैं ॥ २५४॥ शीतल दाह शोथ ववासीर योनि पीड़ा इनको नाशकरनेवालीहै ॥ और विसर्प मूत्र कृच्छ्र रक्तपित्त अश्मरी कफ वायु इनको नाशकरताहै ॥ २५५॥

अथ जलवेतस:।] निकुञ्चक: परिव्याधो नादेयो ज-
लवेतस: ॥जलजो वेतस:शीत:कुष्ठहृद्वातकोप-
न: ॥२५६॥ [अथ इज्जल समुद्रफल इतिलोके]
इज्जलो हिज्जलश्चापि निचुलश्चाम्बुजस्तथा ॥
जलवेतसवद्वेद्यो हिज्जलोऽयं विषापह: ॥२५७॥

भा० अनन्तर जलवेत्स ॥ निकुञ्चक परिव्याध नादेय जलवेतस येहनाम जलवेतके ॥ जलवेत शीतल कुष्टकानाशक वातका प्रकोप करनेवाला है ॥ २५६॥ अनन्तर इज्जल समुद्रफल ऐसा लोकमें । इज्जल हिज्ज

ल निचुल अम्बुज। येह समद्रफल के नामहैं ॥ जलवेत के समान इस्कोज नना चाहिये। येह विषका नाशक हे ॥ २४७॥

अथ देरा। अङ्कोटो दीर्घकीलः स्यादङ्कोलश्च निकोचकः ॥ अङ्कोटकः कटुस्तीक्ष्णः स्निग्धोष्णस्तुवरो लघुः ॥ २४८ ॥ रेचनः कृमिशूलाम शोफग्रह विषापहः ॥ विसर्प कफ पित्तास्र मूषकाहि विषापहः ॥ २४९ ॥ तत् फलं शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं बृंहणं गुरु ॥ बल्यं विरेचनं वात पित्तदाह क्षयास्रजित् ॥ २५० ॥

भा०अनन्तर अंखोठ ॥ अंकोट दीर्घकील अंकोल निकोचक येह हिंगोट के नाम है ॥ हिंगोट कड़वा तीक्ष्ण चिकना उष्ण कसैला हलका ॥ २४८ ॥ रेचन कृमि शूल आंव शोथ ग्रह विष इनका नाशहै ॥ विसर्प कफ रक्त पित्त चूहा सर्प इनके विषका नाशक है ॥ २४९ ॥ उसफल शीतल मधुर कफका नाशक धातुकोबढ़ानेवाला भारी ॥ बलको करनेवाला रेचक वात पित्त दाह क्षय रक्त इनका जीतनेवाला है ॥ २५० ॥

(अथ बरि आर सहदेवी ककहिआ गुलसकरी। इति बलाचतुष्टयम्।)

बाट्या वाट्यालिका वाट्या सैव वाट्यालका ऽपि च ॥ महाबला पीतपुष्पा सहदेवी च सा स्मृता ॥ २५१॥ ततोऽन्यातिबला ऋष्य प्रोक्ता कङ्कतिका च सा। गाङ्गेरुकी नागबला झषा ह्रस्वा गवेधुका ॥ २५२॥ बलाचतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्ति कृत् ॥ स्निग्धं ग्राहि समीरास्र पित्तास्र क्षत नाशनम् ॥ २५३॥

बला मूलत्वचश्चूर्णं पीतं सक्षीरशर्करम् ॥ मूत्रा
तिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः ॥ २५४ ॥ हन्ति म-
हाबला कृच्छ्रं भवेद्वातानुलोमनी ॥ हन्यादति ब-
ला मेहं पयसा सितया समम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर वरिया सहदेई वा या गुलशकरी येह बला चूर्य्य हे ॥ वाध्या वाघालिक । येह वरियारि के, महाबला शीतपुष्पा सहदेवी येह सहदेई के नाम हैं ॥ २५१ ॥ और उस्से दूसरी काकनिका अतिबला येह ककरैया के नाम ऋषियोंने कहेहैं ॥ गाङ्गेरुकी नागबला ह्रस्वाग वेधुका येह गुलशकरी के नाम हैं ॥ २५२ ॥ येह चारों शीत मधुर बलकान्ति को करनेवाली ॥ चिकनी काबिज वात रक्त पित्त रक्त क्षत इनको नाश करनेवाली है ॥ २५३ ॥ वरियारे की जड़के छालके चूर्णको दूध और शक्कर के साथ पीनेसे मूत्रातीसार को नाश करता है । यह देखा है इस्मे संशय नहीं ॥ और महाबला मूत्र कृच्छ्र को नाश करती है ॥ और वातको अनुलोमन करनेवाली है ॥ और गुलशकरी दूध और चीनी के साथ पीने से प्रमेह को नाश करती है ॥ २५५ ॥

और ‡ और इसीको घाघालका भी कहते हैं।

अथ लक्ष्मणा ।] पुत्रकाकाररक्ताल्पबिन्दुभिर्ला-
ञ्छिता सदा ॥ लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धा
कृतिर्भवेत् ॥ २५६ ॥ कथिता पुत्रदावश्यं लक्ष्म-
णा मुनिपुङ्गवैः ॥ [स्वर्णवल्ली ।]
स्वर्णवल्ली रक्तफला काकायुः काकवल्लरी ॥ स्व
र्णवल्ली शिरःपीडां त्रिदोषान् हन्ति दुग्धदा ॥ ५७

भा० अनन्तर लक्ष्मणा ॥ पुत्रकाकार रक्तअल्प बिंदुओंसे लांछित होती है लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धा ॥ २५६ ॥ पुत्रदा येह लक्ष्मणा के नाम हैं ॥ मुनि श्रेष्ठोंने लक्ष्मणा अवश्य पुत्रको देनेवाली है ऐसा

कहाहे ॥ [अनन्तर स्वर्णवल्ली] स्वर्णवल्ली रक्तफला कैंकायु काकवल्ली ॥ स्वर्णवल्ली सिरकीपीड़ाको और त्रिदोषको नाशकरती है । और दुग्धको करनेवाली है ॥२५७॥

अथ कपास] कार्पासी तुण्डकेरी च समुद्रान्ता च कथ्यते ॥ कर्पासको लघुः कोष्णा मधुरा वातनाशनी ॥ २५८ ॥ तत्पत्रं समीरघ्नं रक्तकृन्मूत्रवर्द्धनम् ॥ तत्कर्णपीड़का नाद पूयास्राव विनाशनम् ॥२५९॥ तद्बीजं स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफ करं गुरु ॥

भा० अनन्तर कपास। कार्पासी तुण्डकेरी समुद्रान्ता । येह कपासके नाम हैं-कपास हलका कुछ गरम मधुर वातनाशक है ॥ २५८॥ उसका पत्ता वातकानाशक रक्तको करनेवाला और मूत्रका बढ़ानेवालाहै। और कर्णपीड़ा नाद पूयकाश्राव इनका भी नाशक है ॥ २५९॥ उसका बीज दूधको बढ़ानेवाला शुक्रको उत्पन्न करनेवाला कफ करनेवाला भारी होताहे ॥

अथ वंश।] वंशस्त्वक् सारकर्मार त्वचिसारः तृणध्वजः ॥ शतपर्वा शतफली वेणु मस्कर तेजनाः ॥ ॥२६०॥ वंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो वस्तिशोधनः ॥ छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्रव्रणशोथजित् ॥२६१॥ तत करीरः कटुःपाके रसे रूक्षो गुरुः सरः ॥ कषायः कफकृत् स्वादु विदाही वातपित्तलः ॥ २६२॥ तद्यवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः ॥ वातपित्तकरा उष्णा बद्धमूत्राः

कफापहाः ॥ २६३॥ [अथ नलः।]

नलः पोटगलः शून्य मध्यश्च धमनस्तथा ॥

नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफ रक्तजित् ॥ २६४॥

उष्णो हृद्वस्ति योन्यर्त्तिदाह पित्त विसर्प हृत् ॥

भा० अनन्तर वांस । वंश त्वक्सार कर्म्मार त्वचिसार तृणध्वज ॥ शतपर्वा, शतफली वेणु मस्कर तेजन, येह वांस के नाम हैं ॥ २६०॥ वांस वायु को अनुलोम करनेवाला शीतल मधुर कसैला वस्तिका शोधन ॥ छेदन कफ पित्तका नाशक कुष्ठ रक्त घाव शोथ इनको जीतनेवाला है ॥ २६१॥ उसका अङ्कुर पाकमें कड़वा रसमें कड़ुवा रूखा भारी दस्तावर ॥ कसैला कफको करनेवाला मधुर विदाही वातपित्तको करनेवाला होता है ॥ २६२॥ उसके जो वायुको अनुलोम करनेवाले रूखे कसैले कटुपाकवाले ॥ वात पित्तको करनेवाले उष्ण मूत्रको रोकनेवाले कफके नाशक होते हैं ॥ २६३॥

अनन्तर नड़ ।] नल पोटगल शून्यमध्य धमन येह नरकट के नाम हैं ॥ नरकट मधुर तिक्त कसैला कफ रक्तको जीतनेवाला होता है ॥ २६४॥ उष्ण हृदय वस्ति योनि इनकी पीड़ा दाह पित्त विसर्प इनका नाशक है ॥ [अथ रामशर ।] (शरपत इति वा।

भद्र मुञ्जः शरो वाणः तेजनश्चक्षु वेष्टनः ॥

अथ मुञ्जः।] मुञ्जो मुञ्जातको वाणः स्थूलदर्भः सुमेखलः ॥ २६५॥ मुञ्जद्वयन्तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा ॥ दाह तृष्णा विसर्प्पास्रमूत्र कृच्छ्राक्षि रोग जित् ॥ २६६॥ दोषत्रय हरं वृष्यं मेखलासूपयुज्यते ॥

भा० अनन्तर रामशर या सरपत ।] भद्रमुञ्ज शर वाण तेजन चक्षुवेष्टन येह सरपत के नाम हैं। [अनन्तर मुञ्ज।] मुंज मुंजातक वाण स्थूलदर्भ सुमेखल येह मूंजके नाम हैं ॥ २६५॥ दोनो मूंज मधुर कसै

ले शीतल होतेहैं ॥ और दाह तृषा विसर्प मूत्र कृच्छ्र नेत्र रोग इनकोजी नने वालेहैं ॥ २६६॥ तथा तीनोंदोषोंके नाशक धातुके पुष्ट करनेवाले होते हैं ॥ और मेखला में उस्का उपयोग किया जाताहै ॥

अथ काशः।] काशः काशेक्षुरुद्दिष्टः स स्यादिक्षु सरस्तथा ॥ इक्ष्वालिके क्षुगन्धा च तथा पोटगलस्मृतः ॥२६७॥ काशःस्यान्मधुरस्तिक्तः स्वादु पाको हिमः सरः ॥ मूत्र कृच्छ्राश्मदाहास्र क्षय- पित्तज रोगजित् ॥ २६८॥

भा० अनन्तर कांस।] कांस कंसेक्षु इक्षुसर इक्ष्वालिक इक्षुगन्धा पोटगल येह कांसके नामहैं ॥ २६७॥ कांस मधुर तिक्त पाकमें मधुर शीतल दस्तावर ॥मूत्र कृच्छ्र पथरी दाह रक्तक्षय पित्तके रोगोंको जीतनेवाला होताहै ॥ २६८॥ [गन्दपटेर इति च।]

गुन्द्रः पटेरकोरञ्छः शृङ्गवेराभ मूलकः॥ गुन्द्रः कषायो मधुरः शिशिरः पित्त रक्तजित् ॥ २६९॥ स्तन्यः शुक्र रजो मूत्र शोधनो मूत्र कृच्छ्र हृत् ॥ मोथीतृण विशेषः।] एरका गुन्द्रमूला च शिविर्गुन्द्रा शरीति च ॥ एरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वात कोपिनी ॥ २७०॥ मूत्र कृच्छ्राश्मरी दाह पित्त शोणित नाशिनी ॥

भा० अनन्तर गन्धपटेर ॥गुन्द्र पटेर कोरञ्छ शृंगवेराभ मूलक येह गंध पटेरके नाम हैं ॥ गन्ध पटेर कसैला मधुर शीतल पित्तरक्त को जीतनेवाला ॥ २६९॥ दूधको उत्पन्न करनेवाला शुक्र रज मूत्र इनका शोधक और मूत्र कृच्छ्र का नाशक होताहै ॥

अनन्तर मोथी तृण विशेष है ॥ शरका गुन्द्रमूला शिवी गुन्द्रा यारी येह मो थी के नाम हैं ॥ मोथी शीतल धातुको ग्रष्ट करनेवाली नेत्रके बातको प्रकोप करनेवाली ॥ २७०॥ मूत्रकृच्छ्र अश्मरी दाह रक्तपित्त इनको नाश करनेवाली है ॥

[अथ कुशा।]

कुशो दर्भस्तथा बर्हिः सूच्यग्रो यज्ञभूषणः ॥
[अथ डाभ।] ततोऽन्यो दीर्घपत्रः स्यात् क्षुरपत्रस्तथैव च ॥ दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम् ॥
॥ २७१ ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरी तृष्णा वस्तिरुक् प्रदरास्रजित् ॥ [अथ कर्तृणम्।] (रोहिस सोधि आ इति च।) कत्तृणं रौहिषं देवजग्धं सौगन्धिकं तथा।
भूतीकं ध्यामपौरञ्च श्यामकं धूमगन्धिकम् ॥ २७२
रौहिषं तुवरं तिक्तं कटुपाकं व्यपोहति ॥ हृत्कण्ठव्याधिपित्तास्रशूलकासकफज्वरान् ॥ २७३॥

भा० अनन्तर कुशा ॥ कुश दर्भ बर्हि सूच्यग्र यज्ञभूषण येह कुश के नाम हैं ॥ अनन्तर डाभ।] उससे दूसरे क़िस्म का कुशा॥ दीर्घ पत्र क्षुरपत्र येह डाभके नाम हैं॥ येह दोनों कुशा त्रिदोष नाशक मधुर कसैली शीतल ॥ २७१॥ मूत्रकृच्छ्र अश्मरी तृषा पेड़ूकी पीड़ा प्रदर रक्त इनको नाशक है ॥ [अनन्तर कर्तृण। रोहिश सोध्या इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ कत्तृण रोहिश देवजग्ध सौगन्धिक ॥ भूतीक, ध्याम, पौर, ध्यमक, श्यामक, धूमगन्धिक। येह पीले किस्म की खसके नाम हैं ॥ २७२॥ कत्तृण कसैला तिक्त कटु पाक में होता है ॥ और हृदय कंठके रोग रक्त पित्त शूल कास कफ ज्वर इनको नाश करता है ॥ २७३॥

[अथ भूस्तृणम्।

गुह्यबीजन्तु सूतीकं सुगन्धं जम्बुकप्रियम् ॥

भूतृणं तु भवेच्छत्रा माला तृणकमित्यपि ॥ २७४ ॥ भूतृणं कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रेचनं लघु ॥ विदाहि दीपनं रूक्षमनेत्र्यं मुखशोधनम् ॥ २७५ ॥ अवृष्यं बहुविट्कञ्च पित्तरक्तप्रदूषणम् ॥

भा० अनन्तर भूतृण ॥ गुह्यबीज भूतीक सुगंध जम्बुकप्रिय येभूतृणके नामहैं ॥ येहभी एक घाससुगंधकी क़िस्मसेहै ॥ भूतृण छत्रा माला तृणक । येहभी उसीकेनाम हैं ॥ २७४ ॥ भूतृण कड़ुवा तिक्त तीक्ष्ण उष्ण रेचन हलका ॥ विदाही दीपन रूक्ष नेत्रके अहित मुखका शोधन ॥ २७५ ॥ नपुंसकता को करनेवाला बहुत मलको उत्पन्न करनेवाला पित्त रक्तको विगाड़नेवाला होताहै ॥

[अथ नीलदूर्वा ।] नीलदूर्वा रुहानन्ता भार्गवी शतपर्विका ॥ शाद्वं सहस्रवीर्य्या च शतवल्ली च कीर्त्तिता ॥ २७६ ॥ नीलदूर्वा हिमा तिक्ता मधुरा तुवरा हरा ॥ कफपित्तास्रवीसर्पतृष्णादाहत्वगामयान् ॥ २७७ ॥ [अथ श्वेतदूर्वा ।] दूर्वा शुक्ला तु गोलोमी शतवीर्य्या च कथ्यते श्वेता दूर्वा कषाया स्यात् स्वाद्वी व्रण्या च जीवनी ॥ २७८ ॥ तिक्ता हिमा विसर्पास्रतृट् पित्तकफदाहहृत्

भा० अनन्तर नील दूर्वा ॥ नीलदूर्वा रुहा अनन्ता भार्गवी शतपर्विका । येह नील दूर्वाके नामहैं ॥ शाद्व सहस्रवीर्या शतवल्ली, येह काली दूबके नाम हैं ॥ २७६ ॥ कालीदूब शीतल तिक्त मधुर कसेलीहोतीहै ॥ और कफ रक्तपित्त विसर्प तृषा दाह त्वचाके रोग इनको नाश करनेवालीहै ॥ २७७ ॥ अनन्तर सफ़ेद दूब । श्वेतदूर्वा गोलोमी शतवीर्या यह सफ़ेद दूबके नामहैं ॥ सफ़ेद दूब कसेली मधुर घावको अच्छा करनेवाली जीवन ॥ २७८ ॥ तिक्त शीतल कसैली विसर्परक्त

तृषा पित्त कफ दाह इनकी नाशक है ॥

[अथ गाण्डरि दूविपाच इति च।]

गण्ड दूर्व्वातु गण्डाली मत्स्याक्षी शकुलादनः॥ गण्ड दूर्व्वा हिमा लोह द्राविणी ग्राहिणी लघुः॥ ॥२७९॥ तिक्ता कषाया मधुरा वात कृत्कटु पाकि-नी॥दाह तृष्णा बलासास्त्र कुष्ठ पित्त ज्वरापहा॥८० २८०॥ [अथ विदारीकन्दः क्षीर विदारी गेंगिठ इति लो-के।] वाराही कन्द एवान्ये श्चर्मकारा लुकोमतः॥ अनूप सम्भवे देशे वाराह इव लोमवान्॥२८१॥ विदारी स्वादुकन्दा च सातु क्रोष्ट्री सिता स्मृता॥

भा० अनन्तर गाण्डर ॥ गंडदूर्वा· गंडाली· मत्स्याक्षि· शकुला· अ क्षक येह गांडर के नाम हैं ॥ गांडर शीतल लोहे को गलानेवाली ग्राहि हलकी होती है ॥२७९॥ और तिक्त कसैली मधुर वातको करने वाली पाकमेंकटु ॥ दाह तृषा कफ रक्त कुष्ठ पित्तज्वर इनकी नाशक है ॥२८०॥ [अनन्तर विदारीकन्द को कहते हैं। क्षीर विदारी गैंठी ऐसा भी लोकमें कहते हैं।] वाराहीकन्द ही को कोई आचार्य्य चर्मका रालुक कहतेहैं॥ अनूपदेश में वाराह के समान रोमवाला होता है। ॥२८१॥ विदारी स्वादुकन्दा क्रोष्ट्री सिता ॥ इक्षुगंधा· क्षीरवल्ली· क्षी र शुक्ला· पयस्विनी ॥

इक्षुगन्धा क्षीर वल्ली क्षीरशुक्ला पयस्विनी॥२८२॥ वाराह वदना गृष्टि र्व्वदरे त्यपि कथ्यते॥ विदारी मधुरा स्निग्धा बृंहणी स्तन्य शुक्रदा॥२८३॥ शीता-स्वर्य्या मूत्रला च जीवनी बल्य वर्णदा॥गुरुः पित्तास्र

पवन दाहान् हन्ति रसायनी ॥ २८४ ॥

[अथ मुशलीकन्दम् ॥] ताल मूली तु विद्वद्भि र्मुशली यरि कीर्त्तिता ॥ मुशली मधुरा वृष्या वीर्य्योष्णा बृंहणी गुरुः ॥ २८५ ॥ तिक्ता रसायनी हन्ति गुद जान्यनिलन्तथा ॥

भा० वराह वदना ग्रष्टी वदरा येह नाम विदारीकन्द के हैं ॥ विदारीकंद मधुर स्निग्ध पुष्ट दुग्ध शुक्र को उत्पन्न करनेवाला ॥ २८३ ॥ पीत स्वर को अच्छा करनेवाला मूत्र को उत्पन्न करनेवाला जीवन बल वर्ण को देनेवाला ॥ भारी है और रक्त पित्त वात दाह इनका नाश करना है और रसायन है ॥ २८४ ॥ [अनन्तर मूसली । ताल मूली को विद्वानों ने मूसली ऐसा कहा है । मूसली मधुर पुरुषत्व को उत्पन्न करनेवाली वीर्य में उष्ण और पुष्ट भारी होती है ॥ २८५ ॥ और तिक्त रसायन है तथा ववासीर वात इनको नाश करती है ॥

[अथ शतावरी महाशतावरी ।] शतावरी बहु सुता भीरु रिन्दीवरी वरी ॥ नारायणी शत पदी शत-वीर्य्या च पीवरी ॥ २८६ ॥ महा शतावरी चान्या शत मूल्यर्द्ध कण्टिका ॥ सहस्र वीर्य्या हेतु म्ब ऋष्या प्रोक्ता महोदरी ॥ २८७ ॥ शतावरी गुरुः शीता तिक्ता स्वाद्वी रसायनी ॥ मेधाग्नि पुष्टिदा स्निग्धा नेत्र्या गुल्मातिसार जित् ॥ २८८ ॥ शुक्र स्तन्य करी वल्या वात पित्तास्र शोथ जित् ॥ महा शतावरी मेध्या हृद्या वृष्या रसायनी ॥ २८९ ॥ शीत वीर्य्या निहन्त्यर्शो ग्रहणी नयना मयान् ॥

भा० अनन्तर शतावर और महाशतावर ।] शतावरी-बहुसुता-भीरु-इन्दीवरी-वरी-नारायणी-शतपदी-शतवीर्य्या-पीवरी ॥ २८६ ॥ येह शतावर के नाम हैं ॥ दूसरी महाशतावरी ॥ शतमूली-अर्धकुण्टिका-सहस्रवीर्य्या-हेतु चरिष्या-महोदरी-येह बड़ी शतावर के नाम हैं ॥ २८७ ॥ भारी शीत तिक्त मधुर रसायन होती है और कान्ति अग्नि पुष्टि इनको देनेवाली स्निग्ध होती है ॥ और नेत्र को हित करने वाली। वायुगोला अतिसार को जीतनेवाली ॥ २८८ ॥ और शुक्र दुग्ध को करनेवाली बलके हित वात पित्त रक्त शोथ इनको जीतने वाली है ॥ बड़ी शतावर कान्तिको करनेवाली। दिलको ताकत देनेवाली पुरुषत्व को बढ़ानेवाली रसायनी होती है ॥ २८९ ॥ बडी शतावर बवासीर संग्रहणी नेत्ररोग इनको नाश करती है ॥

अथ असगन्धः।] गन्धान्तावाजि नामादि रश्वगन्धा हयाह्वया ॥ वराह कर्णी वरदा वरदा कुष्ठ गन्धिनी ॥ २९० ॥ अश्वगन्धा निल श्लेष्म श्वित्र शोथ क्षयापहा ॥ बल्या रसायनी तिक्ता कषायो ष्णाति शुक्रला ॥ २९१ ॥

भा० अनन्तर असगन्ध ॥ गन्धान्त घोड़े के नाम आदिवाला। अश्वगंधा-हयाह्वया-वराहकर्णी-वरदा-कुष्ठगन्धनी-येह असगंध के नाम हैं ॥ २९० ॥ असगंध वात कफ श्वित्र शोथ क्षय इनका नाशक बलको देनेवाला रसायन तिक्त कसैला और खानेसे शुक्रको उत्पन्न करनेवाला है ॥ २९१ ॥

अथ पाठा।] पाठांवष्ठा वष्टकीच प्राचीना पाप चेलिका ॥ एकष्ठीला रसा प्रोक्ता पाठिका वरतिक्तिका ॥ पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वात श्लेष्म हरी लघुः ॥ हन्ति शूल ज्वर छर्दि कुष्ठा तीसार हृद्रुजः ॥ २९३ ॥ दाह कण्डु विष श्वास क्रमि-

गुल्म गर व्रणान् ॥ [अथ श्वेतपनिलर।]

श्वेता त्रिवृता भण्डी स्यात् त्रिवृता त्रिपुटापि च ॥

सर्व्वानुभूतिः सरला निशोत्रा रेचनी तिच ॥ २६४॥

श्वेता त्रिवृद्रेचिनी स्यात् स्वादु रुष्णा समीर हृत् ॥

रूक्षा पित्तज्वर श्लेष्म पित्त शोथोदर प्रहा ॥ २६५॥

भा० अनन्तर पाठा ॥ पाठा अम्बष्ठा अम्बष्ठकी प्राचीना पापचेलिका ॥ एकष्ठीला रसा पाटिक वरतिक्तिका ॥ २६२॥ येह पाठाके नामहैं ॥ पाठा उष्ण कड़वी तीखी वात कफ को नाश करनेवाली हलकी होतीहै ॥ और शूलज्वर वमन कुष्ठ अतीसार हृदय की पीड़ा ॥ २६३ दाह खुजली विष स्वास कृमि वायगोला व्रण इनको नाशकरतीहै ॥ [अनन्तर सफ़ेद निसोत ॥ स्वेता त्रिवृता भण्डी त्रिपुटा सर्वानुभूति सरला निशोत्रा रेचनी • येह सुफ़ेद निसोत के नाम हैं ॥ २६४ ॥ सुफेद निसोत दस्तावर होतीहै । मधुर उष्ण वातकी नाशक ॥ रूक्ष पित्तज्वर श्लेष्मपित शोथ उदर इनकी नाशक है ॥ २६५॥

अथ श्यामपनिलर।] त्रिवृत् श्यामार्द्ध चन्द्रा च पालिन्दी च सुषेणिका ॥ मसूर विदला कोल कैषिका काल मेषिका ॥ २६६॥ श्यामा त्रिवृत् ततो हीन गुणा तीव्र विरेचनी ॥ मूर्च्छादाह मद भ्रान्ति कण्ठोत् कर्षण कारिणी ॥ २६७॥

भा० अनन्तर काला निसोत ॥ त्रिवृत श्यामा अर्द्धचन्द्रा पालिन्दी सुषेणिका, मसूर विदला, कोल कैषिका काल मेषिका येह कालीनिसोत के नामहैं ॥ २६६॥ कालीनिसोत उस्से हीन गुण वाली और अधिक दस्तावर होती है ॥ तथा मूर्च्छा दाह मद भ्रान्ति कंठका उत्कर्षण करनेवाली होती है ॥ २६७॥

अथ लघुदन्ती।] लघुदन्ती विशल्या च स्यादुदुम्बर पर्य्यपि ॥ तथैरण्ड फला शीघ्रा श्येन घण्टा घुणा प्रिया ॥ २९८ ॥ वाराहाङ्गी च कथिता निकुम्भश्च मकूलकः ॥ [अथ वृहत्दन्ती।] एरण्ड पत्र विटपा।] द्रवन्ती सा वरी चित्रा प्रत्यक पर्णाखु पर्णापि ॥ चत्राप चित्रान्यगोर्ध प्रत्यक् श्रेणया खुकर्णयापि ॥ दन्ता द्वयं सरम्पाके रसे च कटु दीपनम् ॥ गुदाङ्कुराश्म शूलाशो कण्डू कुष्ठ विदाहनुत् ॥ ३०० ॥ तीक्ष्णोष्णौ हन्ति पित्तास्त्र कफ शोथोदर क्रमीन् ॥

भा० अनन्तर छोटी दन्ती।] लघुदन्ति, विशल्या, उदुम्बरपर्णि, ॥ एरण्डफला, शीघ्रा श्यन घंटा गुणप्रिया वराहांगी ॥ २९८ ॥ निकुम्भ मकूलक येह छोटी दन्तीके नामहैं जिस्का फल जमालगोटा है ॥ अनन्तर बड़ीदन्ती इस्के पत्ते अरण्डीके पत्तोंके समान होतेहैं ॥ द्रवन्ती, वरी, चित्रा प्रत्यकपर्णी आखुपर्णी ॥ चित्रोपन्चित्रान्योग्रोधि प्रत्यगश्रेणिं आखुकर्णी येहदन्तिके नामहैं ॥ २९९ ॥ दोनों दन्ति दस्तावर पाक और रसमें कडवी दीपन ॥ ववासीर पथरी शूल क्वासीर खाजकुष्ट विदाह इनकी नाशक है ॥ ३०० ॥ तीखी और उष्णहै तथा रक्तपित्त कफ शोथ उदर रोग कृमि इनकी नाशक है ॥

अथ लघुदन्ती फलम्।] क्षुद्र दन्ती फलन्तु स्यान् मधुरं रस पाकयोः ॥ शीतलं स्पृष्ट विन्मूत्रं गर शोथ कफापहम् ॥ ३०१ ॥ जयपालो दन्ति बीजं विर्श्रेत न्तिन्तिलो फलम् ॥ जयपालो गुरुः

स्निग्धो रेचि पित्त कफापहः ॥ ३०२॥
इन्द्रारुण बड़ी इन्द्रकला।] ऐन्द्रीन्द्र वारुणी चित्रा गवाक्षी च गवादिनी ॥ वारुणी च पराप्युक्ता सा विशाला महाफला ॥ ३०३॥ श्वेतपुष्पा मृगाक्षी च मृगेर्वारु मृगादनी ॥ गवादिनी द्वयं तिक्तं पाके कटु सरं लघु ॥ ३०४॥ वीर्य्योष्णं कामला पित्त कफप्लीहो दरापहम् ॥ श्वास कासा पहकुष्ठ गुल्म ग्रन्थि व्रण प्रणुत् ॥ ३०५॥ प्रमेह मूढ गर्भा म गण्डामय विषापहम् ॥

भा० अनन्तर छोटे जमालगोटेका फल रस और पाकमें मधुर होता है ॥ और शीतल होता है। तथा मिलेहुवे मल मूत्र को निकालनेवाला विष के शोथको कफको इनको नाश करताहै ॥ ३०१॥ जयपाल, दन्तिबीज, तिन्तिली फल येह जमालगोटे के नामहैं ॥ जमालगोटा भारी चिकना रेचन पित्त कफका नाशक है ॥ ३०२॥ [अनन्तर इन्द्रायन।]
ऐन्द्री इन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षि गवादिनी ॥ वारुणी येह इन्द्रायन के नामहैं ॥ दूसरी इन्द्रायण के नाम] विशाला महाफला ॥ ३०३॥ श्वेतपुष्पा मृगाक्षि मृगेर्वारु मृगादनी येह बड़ी इन्द्रायन के नामहैं ॥ दोनों इन्द्रायन तिक्त पाकमें कड़वे दस्तावर हलके ॥ ३०४॥ वीर्य्य में उष्ण हैं तथा कामला पित्त कफ पिलही उदररोग इनके नाशक हैं ॥ और श्वास कास के नाशक तथा कुष्ठ वायगोला गांठ व्रण इनके भी नाशक हैं ॥ और प्रमेह मूढ़गर्भ स्राव गण्डरोग गण्डमाला विष इनकी नाशक हैं।

अथ नील।] नीलीतु नीलिनी तूली काल दोला च नीलिका ॥ रञ्जनी श्रीफली तुच्छा ग्रामीणा मधुपर्णिका ॥ क्लीनका कालकेशी च नील पुष्पा च

सा स्मृता ॥ नीलिनी रेचिनी तिक्ता केश्या मोह भ्र
मा पहा ॥ ३०७ ॥ उष्णा हन्त्यु दर प्लीह वात रक्त क-
फानिलान् ॥ आमवात मुदावर्त्तं मन्दं च विष मु-
द्धृतम् ॥ ३०८ ॥

भा० अनन्तर नील ॥ नीली निलनी तूली कालदोला नीलिका ॥ रंज-
नी श्रीफली तुच्छ ग्रामिणा मधुपर्णिका ॥ ३०६ ॥ क्लीतका कालकेशी
नीलपुष्पा । येह नीलके नाम हैं ॥ नील रेचन तिक्त केश के हित मोह
भ्रम को नाशक है ॥ ३०७ ॥ उष्ण तथा उदर रोग पिलही वातरक्त कफवा
त आमवात उदावर्त्त मन्दाग्नि इनको नाशकरती है ॥ विष निकालीहुई
॥ ३०८

अथ सरफोका ।] शरपुङ्खः प्लीह शत्रु नीली वृक्षा
कृति श्च सः ॥ शर पुङ्खो यकृत प्लीह गुल्म व्रण वि-
षापहा: ॥ ३०६ ॥ तिक्तः कषायः कासास्र श्वासः
ज्वर हरो लघुः ॥

भा० अनन्तर सरफोका ॥ शरपुंखा प्लीह शत्रु येह सरफोका के नाम हैं
येह नीलके वृक्षके आकार होतीहै ॥ सरफोंखा तिल्ली पिलही वायगोला
व्रण विष इनकोनाशकहै ॥ ३०६ ॥ और तिक्तकसैला कास रक्त श्वास ज्व-
र इनको नाशक और हलका है ॥ [अथ जवासा दुराला ।

यासोप वासो दुःस्पर्शो धन्वयास : कुनाशकः ॥
दुरालभा दुरालम्भा समुद्रान्ता च रोदिनी ॥ ३१० ॥
गान्धारी कच्छुरा नन्ता कषाया हर विग्रहा ॥ या
सः स्वादुः सरस्तिक्तः स्तुवरः शीतलो लघुः ॥ ३११
कफ मेदो मदभ्रान्ति पित्तास्र कुष्ठ कास जित् ॥
तृष्णा विसर्प वातास्र वमि ज्वर हरः स्मृतः ॥ ३१२ ॥

यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा ॥

भा० अनन्तर जवासा ॥ यास उपवास दुस्पर्श धन्वयास दुरालभा दुराल भा, समुद्रान्ता रोदनी ॥ ३१० ॥ गान्धारी कच्छुरा नन्ता कषाय हर विग्रह ॥ येह जवासे के नामहैं ॥ जवासा मधुर दस्तावर तिक्त कसैला शीतल हलका है ॥ ३११ ॥ और कफ मेद मद भ्रान्ति रक्तपित्त कुष्ठ कास इनको जीतने वाला है ॥ और तृषा विसर्प वातरक्त वमन ज्वर इनका नाशक कहा गया है ॥ ३१२ ॥ पंडितों ने जवासे के गुण के समान दुरालभा के गुण कहे हैं ॥

अथ मुण्डी ।] मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना ॥ श्रवणाह्वा मुण्डतिका तथा श्रवणशीर्षका ॥ ३१३ ॥ महाश्रावणिका न्यातु सा स्मृता भूकदम्बिका ॥ कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथातितपस्विनी ॥ ३१४ ॥ मुण्डितिका कटुःपाके वीर्य्योष्णा मधुरा लघुः ॥ मेध्या गण्डापची कृच्छ्र कृमियोन्यर्त्ति पाण्डुनुत् ॥ ३१५ ॥ श्लीपदारुच्यपस्मार प्लीह मेदो गुदार्त्तिहृत् ॥ महामुण्डी च तत्तुल्या गुणैरुक्ता महर्षिभिः ॥ ३१६ ॥

भा० अनन्तर मुन्डी । मुण्डी भिक्षु श्राव णी तपोधना । श्रवणा ह्व मुंडतिका । श्रवण शीर्षका येह मुण्डी के नाम हैं ॥ बड़ी मुण्डी महाश्रावणिका भूकदम्बिका । कदम्ब पुष्पिका अव्यथा अतितपस्विनी ॥ ३१४ ॥ मुन्डी पाक में कड़वी वीर्य्य में उष्ण मधुर हलकी होती है ॥ कान्ती को देनेवाली गण्डमाला अपची मूत्रकृच्छ्र कृमि योनिपीड़ा पाण्डुरोग इनको नाश करनेवाली ॥ ३१५ ॥ और फ़ीलपाव अरुचि मिरगी पिलही मेद गुदाकी पीड़ा इनको नाश करनेवाली है ॥ बड़ी मुण्डी गुणों में इसीके समान महर्षियों ने कही है ॥ ३१६ ॥

अथ चिरचिरि ।] अपामार्गस्तु शिखरी ह्यधः

शल्यो मयूरकः ॥ मर्कटी दुर्ग्रहा चापिकिणाही खरमञ्जरी ॥ ३१७॥ अपामार्गः सरस्तीक्ष्णःदीपनः स्तिक्तकः कटुः ॥ पाचनो रोचनश्छर्दि कफमेदो ऽनिलापहः ॥ ३१८ ॥ निहन्ति हृद्रुजाध्मानार्शः कण्डू शूलोदरापची ॥ [अथ रक्त चिरचिरा। रक्तोन्योव शिरोवृत्त फलोधामार्गवो ऽपि च ॥ प्रत्यक् पर्णी केशपर्णी कथिता कपिपिप्पली ॥३१९ अपामार्गो ऽरुणो वातविष्टम्भी कफकृत् हिमः॥ रूक्षः पूर्व गुणैन्र्यूनः कथितो गुणवेदिभिः ॥ ३२०॥ अपामार्ग फलंस्वादु रसेपाके च दुर्ज्जरम् ॥ विष्टम्भि वातलंरूक्षं रक्तपित्त प्रसादनम् ॥३२१॥

भा० अनन्तर चिर्चेड़ा ॥ अपामार्ग शीखरी अधशल्य मयूरक ॥ मर्कटी दुर्ग्रहा किणाही खरमंजरी - येह चिर्चेंड़े के नाम हैं ॥ ३१७॥ चिर्चेड़ा दस्तावर तीक्ष्ण उष्ण दीपन तिक्त कटु ॥ पाचन रोचन कफ मेद वमन वात इन का नाशक है ॥ ३१८ ॥ हृदय की पीड़ा आफमान ववासीर खुजली शूल उदर रोग अपची इन्को नाश करता है ॥ [अनन्तर रक्त चिर्चेंड़ा। दूसरा लाल। वशिर वृत्तफल अपामार्गव ॥ प्रत्यक् पर्णी केशपर्णी कपिपिप्पली येह लाल चिर्चेरे के नाम हैं ॥ ३१९ ॥ लाल चिर्चेरा अरुण वात को विष्टंभ करने वाला कफको करनेवाला शीतल ॥ रूक्ष और पहले के गुणों से हीन गुणके जाननेवालोंने ऐसा कहा है ॥ ३२० ॥ चिर्चेरेका फल रसमें मधुर और पाकमें भी मधुर विरुग्ध ॥ विष्टंभ को करने वाला वात को करनेवाला रूखा रक्त पित्त को अच्छा करने वाला होता है ॥ ३२१॥

अथ तालमखाना।] कोकिलाक्षस्तु काकेक्षु रिक्षुरः क्षुरकः क्षुरः ॥ भिक्षुः काण्डेक्षुरप्युक्तः इक्षु

गन्धेक्षु बालिका ॥३२२॥ क्षुरकः शीतलो वृष्यः स्वाद्वम्लः पित्तलस्तथा ॥ तिक्तो वातामशोथाश्म तृष्णादृष्टि निलास्रजित् ॥३२३॥

अथ हड़ सङ्गारि ।] ग्रन्थिमानस्थि संहारी वज्राङ्गी वा स्थिशृङ्खला ॥ अस्थिसंहारकः प्रोक्तो वातश्लेष्म हरोऽस्थियुक ॥३२४॥ उष्णः सरः कृमिघ्नश्च दुर्नामघ्नोऽक्षि रोगजित् ॥ रूक्षः स्वादुर्लघुर्वृष्यः पाचनः पित्तलः स्मृतः ॥३२५॥ काण्डत्वग्विरहितमस्थि शृङ्खलाया माषार्द्धं द्विदलमकं चुकं तदर्द्धम् ॥ सम्पिष्टं तदनु तत स्तिलस्य तैले सम्पक्कं वटक मतीव वातहारि ॥३२६॥

भा० अनन्तर तालमखाना ।] कोकिलाक्ष, काकेक्षुः, इक्षुर, क्षुरक, क्षुर ॥ इक्षु कांडेक्षु इक्षुगन्धा इक्षुवालिका येह तालमखाने के नाम हैं ॥ तालमखाना शीतल शुक्रको उत्पन्न करनेवाला मधुर अम्ल पित्तको उत्पन्न करनेवाला तिक्त आम वात पथरी शोथ तृषा दृष्टिरोग वातरक्त इनको जीतने वाला है ॥३२३॥ [अनन्तर हर सिंगार । ग्रन्थिमान अस्थिसंहार वज्रांगी अस्थिश्रृंखला । अस्थिसंहारक, येह हर सिंगार के नाम हैं ॥ हर सिंगार वात कफ का नाशक और हड्डियों को जोड़नेवाला उष्ण दस्तावर कृमिका नाशक बवासीर का नाशक नेत्ररोगको जीतनेवाला रूखा मधुर हलका शुक्रको उत्पन्न करनेवाला पाचन पित्तको करनेवाला कहा गया है ।३२५। ताल मखाना त्वचासे रहित हार सिंगार का भी गीला उड़द चुक उस्से आधा ॥ इनको पीसके उस्के पश्चात् उस्को तिलके तेलमें पकायावड़ा अति वातका नाशक है ॥३२६॥

अथ घीउकुआरि ।] कुमारी गृहकन्या च कन्या

घृतकुमारिका ॥ कुमारी भेदिनी शीता तिक्ता नेत्र्या रसायनी ॥ ३२७ ॥ मधुरा बृंहणी बल्या वृष्या वात विषप्रणुत ॥ गुल्म प्लीह यकृद् वृद्धि कफ ज्वर हरी हरेत ॥ ३२८ ॥ ग्रन्थ्यग्नि दग्ध विस्फोट पित्तरक्त त्वगामयान् ॥

भा० अनन्तर घीकुवार ॥ कुमारी गृहकन्या कन्या घृतकुमारी । येह घीकुवार के नामहै ॥ घीकुवार भेदन शीत तिक्त नेत्रका हित रसायन ॥ ३२७ ॥ मधुर पुष्ट बलको बढ़ानेवाला शुक्रको उत्पन्न करनेवाला वात विषका नाशक । गुल्म वायगोला पिलही तिल्ली अंडवृद्धि कफ ज्वर इनका नाशक है ॥ ३२८ ॥ और ग्रन्थि अग्निदग्ध विस्फोट पित्तरक्त त्वचाकेरोग इनको नाश करताहै ॥

[अथ श्वेत पुनर्नवा ।]

पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घपत्रिका ॥ कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी सरा ॥ ३२९ ॥ शो फानिलगर श्लेष्महरी व्रणोदर प्रणुत ॥

[अथ रक्तपुष्पा पुनर्नवा ।] पुनर्नवापरा रक्ता रक्तपुष्पा शिलाटिका ॥ शोथघ्नः क्षुद्र वर्षाभू वृषकेतुः कपिल्लकः ॥ ३३० ॥ पुनर्नवारुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः ॥ वातला ग्राहिणी श्लेष्म पित्तरक्त विनाशिनी ॥ ३३१ ॥

भा० अनन्तर सफेद गदहपूरना ॥ पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नि दीर्घपत्रिका । येह सफेद गदहपूरना के नामहैं ॥ सफेद पुनर्नवा कसेला पाण्डुरोगका नाशक दीपन है और वात विष कफ इनकी नाशक है तथा व्रण उदररोगका भीनाशक है ॥ [अनन्तर गदापूरना । पुनर्नवा दूसरी रक्तपुष्पा शिलाटिका । येह लाल पुनर्नवाके नामहैं ॥

शोथघ्न. क्षुद्र. वर्षाभू. वृषकेतू. कपिल्लक. येह पुनर्नवा के नामहैं ॥ ३३०॥ पुनर्नवा लाल तिक्त पाक में कटु शीतल हलका। वात को उत्पन्न करने वाला अग्नि कफ पित्त रक्तका नाशकहै ॥ ३३१॥

अथ गन्धप्रसारणी।] प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रतापनी ॥ सरणी सारणी भद्रा बलाचापि कटम्भरा ॥ ३३२॥ प्रसारिणी गुरुर्वृष्या बलसन्धानकृत्सरा ॥ वीर्य्योष्णा वातहृत् तिक्ता वातरक्त कफापहा ॥ ३३३॥

भा० अनन्तर गन्धप्रसारणी।] प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रतापनी ॥ सरणी सारणी भद्रा बला कटुम्भ। यह गन्धप्रसारणी के नाम हैं ॥ ३३२॥ गन्धप्रसारणी भारी शुक्र को उत्पन्नकरनेवाली बलको देनेवाली हड्डियों को जोड़नेवाली दस्तावर ॥ वीर्य्य में उष्ण वातकीनाशक तिक्त वातरक्त कफ इनको नाशकरनेवाली है ॥ ३३३॥

अथ कारिआवांसा।] इन्द्रजम्बूकवत्पत्रा सुगन्धा कलघण्टिका ॥ कृष्णातु शारिवा श्यामा गोपी गोपवधूश्च सा ॥ ३३४॥ [गोरिआ सांउ।]

इयमपि जम्बूवत्पत्रा दुग्धगर्भा व्रततिर्भवति।

धवला शारिवा गोपी गोपकन्या कृशोदरी ॥ स्फोटा श्यामा गोपवल्ली लतास्फोता च चन्दना ॥ ३३५॥

भा० अनन्तर काला सारिवा। बड़े जामन के पत्तों के समान पत्ते होते हैं ॥ और सुगन्ध भी होता है। कलघंटिका, सुगन्धा, इन्द्रजम्बूकवत्, पत्रा ॥ कृष्णा. सारिवा. श्यामा. गोपी. गोपवधू. येह काले सारिवा के नाम हैं ॥ उसको पूर्व में सांऊ कहते हैं ॥ ३३४॥ अनन्तर श्वेत सारिवा। इसके भी जामन केसे पत्ते होते हैं ॥ भीतर दूध होता है। और लता वाला होता है। धवला, सारिवा, गोपी, गोपकन्या, कृशोदरी, स्फोटा, श्यामा, गोपवल्ली, लता-

आस्फोता चन्दना ॥ ३३५॥

(क) गोपी। गोपस्य स्त्री। पुंयोगादीप्। गोपा। गांपा तीति गोपा गोपकन्या। श्यामा पदेन कृष्णा श्वेतापि सारिवा कथ्यते। श्वेतेन सारिवा पदस्य प्रयुक्तत्वात्।

तद्यथा] सारिवायां निशि श्यामा श्यामो च हरिता सितावि नि ॥ सारिवा युगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु ॥ अग्निमान्द्या रुचिश्वास कासामविष नाशनम् ॥ ३३६ ॥ दोषत्रयास्र प्रदर ज्वरातीसार नाशनम्

भा० यह स्वेत सारिवा के नामहैं। (क) (गोपी) गोपकी स्त्री। पुंयोग से ईप् प्रत्ययहै। (गोपा) गायको जोरक्षण करताहै वोह गोप है॥ (गोपकन्या) श्यामा पदसे काली और सुपेद सारिवा कहीहै। वोह स्वेत सारिवा पदके प्रयोग होनेसे। वोह जैसे-

सारिवा में निशि, श्यामा, श्यामो, हरिता, सिता- इस प्रकार कहाहै॥ दोनों सारिवा मधुर, चिकने शुक्रको उत्पन्न करनेवाले भारीहैं॥ और अग्निमान्द्य अरुचि श्वास कास आम विष इनके नाशक हैं॥ ३३६॥ तथा त्रिदोष रक्त प्रदर ज्वरातिसार इनको नाश करते हैं॥

अथ भृङ्गरा। भृङ्गराजो भृङ्गरजो मार्कवो भृङ्ग एव च ॥ अङ्गारकः केशराजो भृङ्गारः केशरञ्जनः ॥ ३३७ ॥ भृङ्गारः कटुकस्तीक्ष्णो रूक्षोष्णः कफवातनुत् ॥ केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वास कास शोथामपाण्डुनुत् ॥ ३३८ ॥ दन्त्यो रसायनो वल्यः कुष्ठनेत्र शिरोर्त्तिनुत् ॥

भा० अनन्तर भंगरा ॥ भृंगराज- भृंगरज- मार्कव- भृंग- अंगारक- केशराज-

भृंगारो केशरंजन. येह भंगरेके नाम हैं ॥ भंगरा कड़वा तीखा रूखा गरम कफ वातका नाशक है ॥ और केशके हित त्वचाको अच्छा करने वाला और कृमि स्वास कास शोथ पांडुरोग का नाशक है ॥३३८॥ और दांतों को अच्छा करनेवाला रसायन बलको देने वाला कुष्ट मेदरोग शिरकी पीड़ा इनका नाश करनेवाला है ॥

[शणपुष्पा इति च ढुली । शण इव पुष्पा ।) शणपुष्पी स्मृता घण्टा शणपुष्प समाकृतिः ॥ शणपुष्पी कटुस्तिक्ता वामिनी कफ पित्तजित् ॥ ॥३३९॥ [अथ त्रायमाना] बलभद्रा त्रायमाना त्रायन्ती गिरिसानुजा । त्रायन्ती तु वरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा ॥३४०॥ ज्वर हृद्रोग गुल्मार्शी भ्रमशूल विषप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर प्राणपुष्पा । इसको ढुली भी कहते हैं । इसके फूल सनके फूलके सदृश होते हैं ॥ शणपुष्पी घंटा शणपुच्छ समाकृति । यह ढुली के नाम हैं । ढुली कड़वी तिक्त वमन को करानेवाली कफ पित्तको जीतनेवाली है ॥ ३३९ ॥ [अनन्तर त्रायमाणा । बलभद्रा. त्रायमाणा, त्रायंति, गिरिसानुजा ॥ येह त्राय माणाके नाम हैं ॥ त्रायमाणा कसैली तिक्त दस्तावर पित्तकफकी नाशक है ॥३४०॥ और ज्वर हृदरोग वायगोला बवासीर भ्रमशूल विष इनकी नाशक है ॥ [अथ चूर्णहार]

मूर्वा मधुरसा देवी मोरटा तेजनी स्रुवा ॥ मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलु पर्ण्यपि ॥ ३४१ ॥ मूर्वा सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तास्र मेह नुत ॥ त्रिदोष तृष्णा हृद्रोग कण्डू कुष्ठ ज्वरापहा ॥ ३४२॥

भा० अनन्तर मरोड़फली । मूर्वा मधुरसा देवी मोरटा तेजनी स्रुवा ॥

मधूलिका.मधुश्रेणी.गोकर्णी. पीलुपर्णी. येह मरोड़फली के नामहैं ॥ ३४१॥ मरोड़ फली मलवात को नीचे करने वाली भारी मधुर तिक्त रक्त पित्त प्रमेह इनकी नाशक है ॥ और त्रिदोष तृषा हृदरोग खुजली कुष्ट ज्वर इन की भी नाशकहै ॥ ३४२॥

[अथ कवैथ्या।]

काकमाची ध्वाङ्क्षमाची काकाह्वा चैव वायसी ॥ काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वर शुक्रदा ॥ ३४३॥ तिक्ता रसायनी शोथ कुष्टार्शो ज्वर मेहजि त् ॥ कटु नेत्र हिता हिक्का च्छर्दि हृद्रोग नाशिनी ॥३४४॥ [कौआठोढी।] काकनासा तु काकाङ्गी काकतुण्ड फला च सा ॥ काकनासा कषायोष्णा कटुका रस पाकयो: ॥३४५॥ कफघ्नी वाम नी तिक्ता शोथार्श: श्वित्र कुष्ठ हृत् ॥

भा॰ अनन्तर किमांच। काकमाची ध्वांक्षमाची काकाह्वा वायसी। येह किमांच केनामहैं ॥ किमांच त्रिदोषनाशक चिकनी उष्ण स्वर शुक्रको करनेवाली ॥ ३४३॥ तिक्त रसायन शोथ कुष्ठ बवासीर ज्वर प्रमेह इनको दूर करनेवालीहैं ॥कड़वी नेत्रके हित कुचकीवमन हृद्रोग इनको नाशकर नेवालीहै ॥ ३४४॥ अनन्तर कौआठोढी।] काकनासा काकाङ्गी काकतुंडफला। येह कौवा ठोढ़ीकेनामहैं ॥ कौवाठोढ़ी कसैली गरम रस पाक में कड़वीहोती है ॥ ३४५॥ और कफकी नाशक वमनकरने वाली तिक्त सूजन बवासीर श्वित्रकुष्ट इनका नाशक है ॥ [अथ काकजंघा मसीनि लोके।] काकजङ्घा नदीकान्ता काकतिक्ता सुलोमशा ॥ पारावतपदी दासी काका चापि प्रकीर्त्तिता ॥ ३४६॥ काकजङ्घा हिमा तिक्ता कषाया कफ पित्त जित् ॥

निहन्ति ज्वर पित्तास्त्र ज्वरकण्डु विषक्रमीन् ४७

[अथ नागपुष्पी] नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रामदूतिका ॥ नागिनी रोचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफपित्तनुत् ॥ ३४८ ॥ विनिहन्ति विषं शूलं योनिदोषवमिक्रमीन् ॥

भा० अनन्तर काकजंघा इसको लोकमें मसी ऐसा कहते हैं ॥ काकजंघा नदीकांता काकतिक्ता सुलोमशा ॥ पारावतपदी दासी काका । येह मसी के नामहैं ॥ ३४६ ॥ काकजंघा शीतल तिक्त कसैली कफ पित्त की नाशक है ॥ और ज्वर पित्त रक्त क्रमि कण्ड विष इनको नाश करतीहै ॥ ४७ ॥ अनन्तर नागपुष्पी । नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागनी रामदूतिका येह नागनीके नामहैं ॥ नागनी रुचिको करनेवाली तिक्त तीखी उष्णा कफ पित्त की नाशक है ॥ ३४८ ॥ और विष शूल योनिदोष वमन क्रमि इनको दूर करतीहै ॥

[अथ मेढ़ासिङ्गी]

मेषशृङ्गी विषाणी स्यान्मेषवल्ल्यज शृङ्गिका ॥ मेषशृङ्गी रसे तिक्ता वातला श्वासकास हृत् ॥ ३४९ रूक्षा पाके कटुस्तिक्त व्रणश्लेष्माक्षि शूलनुत् ॥ मेषशृङ्गी फलं तिक्तं कुष्ठ मेह कफ प्रणुत् ॥ ३५० ॥ दीपनं स्रंसनं कास क्रमिव्रण विषापहम् ॥

भा० अनन्तर मेढ़ासींगी ॥ मेषशृंगी विषाणी मेषवल्ली अजशृंगिका । येह मेढ़ासींगी के नामहैं ॥ मेढ़ासींगी रसमें तिक्त वातको उत्पन्न करनेवाली । श्वास कास कीनाशक है ॥ ३४९ ॥ और रूखी पाकमें कटु तिक्त व्रण कफ नेत्र शूल इनको नाश करनेवाली है ॥ मेढासींगी का फल तिक्त कुष्ठ प्रमेह कफ इनका नाशक ॥ ३५० ॥ दीपन दस्तावर कास क्रमि व्रण विष इनका नाशक है ॥

[अथ हंसपदी ।]

हंसपादी हंसपदी कीटमाता त्रिपादिका ॥ हंस-

पादी गुरुः शीता हन्ति रक्त विष व्रणान् ॥ ३५१॥
विसर्प दाहातीसार लूता भूताग्नि रोहिणी॥
[अथ सोमलता।] सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्वि
जप्रिया ॥ सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसा
यनी ॥ ३५२॥

[अथ आकाशवल्ली।] (अमरवेलि इति च।)
आकाशवल्ली तु बुधैः कथितामरवल्लरी ॥ ख
वल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिला क्ष्मामयापहा ॥
तुवराग्निकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी ॥ ३५३॥

भा० अनन्तर हंसपदी। हंसपादी· हंसपदी· कीटमाता· त्रिपादका· येह हंसपदी के नामहैं ॥ हंसपदी· भारी·शीत·रक्त·विष·व्रण· को नाश करतीहै ॥ ३५१॥ और विसर्प· दाह· अतीसार· लूता· भूत· अग्नि· रोहणी· इनकोभी नाशक रतीहै ॥ [अनन्तर सोमलता। सोमवल्ली· सोमलता· सोमक्षीरी· द्विज- प्रिया। येह सोमलताके नामहैं। सोमलता· त्रिदोषनाशक· कड़वी· तिक्त· रसायनी है ॥ ३५२॥ [अनन्तर अमरवेल। आकाशवल्ली को पंडित अमरवल्ली कहतेहैं। आकाशवल्ली·काबिज तिक्त·चेपदार· राजयक्ष्मा रोगकोनाशक ॥ कसैली अग्निको करनेवाली। हृद्य पित्त कफ आम इनकीनाशक है॥ ३५३॥

[अथ पातालगरुडी।] छिलिहिण्टो महामूलः
पातालगरुडाह्वयः ॥ छिलिहिण्टः परं वृष्यः क
फघ्नः पवनापहः ॥ ३५४॥ [अथ वन्दा।]
वन्दा वृक्षादनी वृक्ष भक्ष्या वृक्षरुहापि च ॥
वन्दाकः स्याद्धिमस्तिक्तः कषायो मधुरो रसे ॥ ३५५॥
माङ्गल्यःकफवातास्र रक्षो व्रण विषापहः ॥

भा० अनन्तर पातालगरुडी।] छिलिहिराठ-महामूल-पातालगरुड़ नाम वाली ॥ येह पातालगरुड़ीके नामहैं ॥ पातालगरुड़ी- अत्यन्त शुक्रको उत्पन्न करनेवाली कफ नाशक और वात नाशक है ॥ ३५४॥ अनन्तर वन्दा] वृक्षादनी- वन्दा- वृक्षभक्षा- वृक्षरुहा- येह वन्दाकके नामहैं ॥ वन्दाक शीतल तिक्त कसैला रसमें मधुरहै ॥ ३५५॥ और मंगलकारक कफ वात रक्त राक्षस व्रण विष इनका नाशक है ॥

अथ वटपत्री।] वटपत्री तु कथिता मोहिनी रेचनी बुधैः॥ वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्र गदापहा॥ ३५६॥ अथ हिङ्गुपत्री तु कवरी पृथ्विका पृथुका पृथुः॥ हिङ्गुपत्री भवेद्रुच्या तीक्ष्णोष्णा पाचनी कटुः॥ ३५७॥ हृद्वस्ति रुग्विबन्धार्शः श्लेष्म:गुल्मा निलापहा ॥

भा० अनन्तर वटपत्री।] वटपत्री- मोहनी- रेचनी- येह वटपत्रीके नाम पंडितों ने कहेहैं ॥ वटपत्री कसैली गरमहै। और योनिरोग मूत्ररोग इनकी नाशक है ॥ ३५६॥ - अनन्तर हिंगुपत्री, हिंगुपत्री- कवरी- पृथ्वीका- पृथुका- पृथु।येह हिंगुपत्रीके नामहैं। हिंगुपत्री रुचिको करनेवाली तीखी उष्ण पाचन कड़वीहै॥ ३५७॥ और हृदय पेड़ूकी पीड़ा विबन्ध बवासीर कफ बाय गोला वात इनकी नाशक हैं ॥

अथ वंशपत्री।] वंशपत्री वेणुपत्री- पिङ्गा- हिङ्गुशिवाटिका॥ हिङ्गुपत्री गुणा विज्ञे वंशपत्री च कीर्त्तिता॥ ३५८॥ [अथ मत्स्याक्षी।] मछेछी इतिलोके। छछ मछरि आइनि च। मत्स्याक्षी वाह्लिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनीति च। च ॥मतस्याक्षी ग्राहिणी शीता कुष्ठ पित्त कफा

स्रजित् ॥ ३५९ ॥ लघुस्तिक्ता कषाया च स्वाद्वी क-
टु विपाकिनी ॥

भा० अनन्तर वंशपत्री ॥ वंशपत्री वेणुपत्री पिण्डा हिंगुशिवाटिका । येह वंशपत्री के नाम हैं ॥ वंशपत्री हिंगुपत्री के समान गुण में कही है ॥
अनन्तर मत्स्याक्षी इस्को मच्छेछी और मछरिया ऐसा कहते हैं ॥ मत्स्याक्षी वाल्हिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनी· येह मत्स्याक्षिके नामहैं ॥ मत्स्याक्षी काविज । शीतलहै । और पित्त कुष्ठ कफ रक्त इनको जीतनेवाली है ॥ ३५९ ॥ और हल-की तिक्त कसैली मधुर पाक में कटु होतीहै ॥

अथ सरहटी गण्डनीति च ।] सर्पाक्षी स्यात्तु गण्डा-
ली तथा नाडी कपालकः ॥ सर्पाक्षी कटुका तिक्ता से।
ष्णा कृमि विकन्तनी ॥ ३६० ॥ वृश्चिकोन्दु रसर्पाणां
विषघ्नी व्रण रोपिणी ॥ [अथ शङ्खपुष्पी ।]
शङ्खपुष्पी तु शङ्खाह्वा माङ्गल्य कुसुमापि च ॥ श-
ङ्खपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानस रोगहृत् ॥ ३६१ ॥
रसायनी कषायोष्णा स्मृति कान्ति वलाग्नि
दा ॥ दोषापस्मार भूतादि कुष्ठ कृमि विष प्रणुत् ॥ ३६२

भा० अनन्तर सरहटी गंडनी ऐसाभी कहतेहैं ॥ सर्पाक्षी गण्डाली तथा नाडी कपालक येह सर्पाक्षीके नामहैं ॥ सर्पाक्षी कडवी तिक्त कुछ गरमहोती है और कृमिकी नाशक है ॥ ३६० ॥ और विच्छू चूहा सांप इनके विष की नाशक और घावको भरनेवाली है ॥
अनन्तर शंखपुष्पी । शंखपुष्पी शंखाह्वा मांगल्य कुसुमा येह शंखपुष्पी के नामहैं ॥ शंखपुष्पी मल वातको अनुलोम करनेवाली कान्तीको बढाने वाली शुक्रको उत्पन्न करनेवाली मानस रोगकी नाशक ॥ ३६१ ॥ और रसायन कसैली गरम स्मृति कान्ति बल अग्निको देनेवाली और मिरगी भूत कुष्ठ कृमि विष इनकी नाशक है ॥ ३६२ ॥

अथ अर्कपुष्पी।] अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका ॥ अर्कपुष्पी कृमिश्लेष्ममेह पित्तविकारजित् ॥ ३६३॥ [अथ लज्जालुः। लज्जालुः स्यात् शमीपत्रा समङ्गा जलकारिका॥ रक्तपादी नमस्कारी नाम्ना खदिरकेत्यपि ॥ ३६४॥ लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित् ॥

भा० अनन्तर अर्कपुष्पी ॥ अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका ॥ येह अर्कपुष्पी के नामहैं ॥ अर्कपुष्पी कृमि कफ प्रमेह पित्तरोग इनकी नाशकहै ॥ ३६३॥ [अनन्तर लजालुः। लजालू शमीपत्री समंगा जलकारिका रक्तपादी नमस्कारी खदिरका। येह लजालू के नामहैं ॥ ३६४॥ लजालू शीतल तिक्त कसेली होतीहै। और कफ पित्त को जीतनेवाली तथा रक्त पित्त अतीसार योनिरोग इनको नाशकरतीहै ॥ ३६५॥

रक्तपित्तमतीसारं योनिरोगान् विनाशयेत् ॥३६५॥ लज्जालूभेदः।] अलम्बुषा।] अलम्बुषा खरत्वक् च तथा मेदोगला स्मृता ॥ अलम्बुषा लघुः स्वादुः कृमिपित्तकफापहा ॥ ३६६॥ अथ दुग्धी।] दुग्धिका स्वादुपर्णी स्यात् क्षीरा विक्षीरणी तथा ॥ दुग्धिकोष्णा गुरू रूक्षा वातला गर्भकारिणी ॥ ३६७ स्वादु क्षीरा कटुस्तिक्ता सृष्टमूत्र मलापहाः ॥ स्वादुर्विष्टम्भिनी वृष्या कफकुष्ठकृमिप्रणुत् ॥ ३६८॥

भा० अनन्तर लज्जालूका भेद ॥] अलम्बुषा। अलम्बुषा खरत्वक मेदोगला येह होवेर केनामहैं ॥ हाऊवेर हलका मधुर, कृमि, पित्त, कफका नाशकहै ॥ ३६६॥ अनन्तर दूधी। दुग्धका स्वादुपर्णी क्षीरा,

क्षीरणी, येह दुद्धी के नामहैं ॥ दुद्धी गरम भारी रूखी वात को करने वाली और गरभको करनेवाली ॥ ३६७॥ और मधुर दुग्धवाली कड़वी तिक्त मूत्र को करनेवाली मुलनाशक मधुर विष्टम्भको करनेवाली शुक्र को उत्पन्न करनेवाली और कफ कुष्ठ कृमी इनकी नाशक है ॥ ३६८॥

[अथ भुइआंवरा।

भूम्यामलकिका प्रोक्ता शिवातामलकीति च ॥
बहुपत्रा बहुफला बहुवीर्य्या जटापि च ॥ ३६९
भूधात्री वातकृत्तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ॥
पिपासा कास पित्तास्र कफकण्डू क्षतापहा ॥ ३७०
अथ ब्रंभी।] ब्राह्मीकपोत वङ्का च सोमवल्ली सरस्वती ॥ [ब्रह्म माण्डूकी। मण्डूक पर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ॥ ३७१॥ ब्राह्मी हिमा सरा तिक्ता लघुर्मेध्या च शीतला ॥ कषाया मधुरा स्वादु पाका युष्मा रसायनी ॥ ३७२॥ स्वर्य्या स्मृतिप्रदा कुष्ठ पाण्डु मेहास्र कासजित् ॥ विषशोथ ज्वरहरी तद्वन्मण्डूक पर्णिनी ॥ ३७३॥

भा० अनन्तर भुइआंवला ॥ भूम्यामलिक शिवा तामलकी ॥ बहु पत्रा बहुफला बहुवीर्य्या जटा। येह भुई आंवले के नाम हैं ॥ ३६९॥ भुई आवला वातको करनेवाला तिक्त कसैला मधुर शीतल है ॥ और प्यास कास रक्त पित्त कफ खुजली क्षत इनका नाशक ॥ ३७०॥
अनन्तर ब्रह्मी ॥ ब्राह्मी कपोतवंका, सोमवल्ली सरस्वती ॥ मण्डूक पर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ॥ येह ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी के नामहैं ॥ ३७१॥ ब्राह्मी शीतल सर तिक्त हलकी बुद्धी को बढाने वाली है। शीतल कसैली मधुर पाकमें मधुर आयुकोदेनेवाली रसायनी है ॥ ३७२॥

और स्वरको अच्छा करनेवाली स्मृतिको देनेवाली तथा कुष्ठ पाण्डुरोग प्रमेह रक्त कास इनकोजीतनेवालाहै ॥ और विष शोथज्वर इनकी नाशक है मण्डूक पर्णीभी ब्राह्मीके समान गुण में है ॥ ३७३॥

[अथ गूमा।] द्रोणा च द्रोणपुष्पी च फलेपुष्पा च कीर्त्तिता ॥ द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादु रूक्षोष्णा वातपित्तकृत् ॥ ३७४॥ स तीक्ष्णा लवणा स्वादु पाका कट्वीच भेदिनी ॥ कफाम कामला शोथ तमक श्वास जन्तुजित् ॥ ३७५॥

भा० अनन्तर गूमा।] द्रोणा द्रोणपुष्पी फलेपुष्पा येह गोमाके नाम कहे गयेहैं ॥ गोमा भारी मधुर रूखी गरम वात पित्तको करनेवालीहै ॥ ३७४॥ तीखी नमकीन पाकमें मधुर और कटुभीतथा भेदनहै ॥ और कफ आम कामला शोथ तमक श्वास कृमि इनको जीतनेवाली है ॥ ३७५॥

[अथ हुर हुर। द्वितीय हुर हुर।]

सुवर्च्चला सूर्य्यभक्ता वरदा वदरापि च ॥ सूर्य्यावर्त्ता रविप्रीता ऽपरा ब्रह्म सुवर्च्चला ॥ ३७६॥ सुवर्च्चला हिमा रूक्षा स्वादु पाका सरा गुरुः ॥ अपित्तला कटुः क्षारा विष्टम्भ कफ वात जित् ॥ ३७७॥ अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः ॥ निहन्ति कफ पित्तास्र श्वास कासारुचि ज्वरान् ॥ ३७८॥ विस्फोट कुष्ठमेहास्र योनिरुक्कृमि पाण्डुताः॥

भा० अनन्तर हुरहुर और दूसराहुरहुर ॥ सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा वदरा॥ सूर्यवर्त्ता रविप्रीता और दूसरी ब्रह्मसुवर्चला येह दूसरे हुरहुरके नाम

हैं ॥ ३७६ ॥ दूर दूर फैलनेवाली रूखी पाकमें मधुर, सर भारी ॥ पित्तकोन करनेवा
ली कड़वी क्षार है । और विष्टंभ कफ वातको जीतने वाली है ॥ ३७७ ॥
और दूसरी तिक्त कसैली गरम सर रूखी हलकी कड़वी ॥ और कफ रक्त पि
त्त श्वास कास अरुचि ज्वर इनको नाश करती है ॥ ३७८ ॥ तथा किट्टीर कुष्ठ
प्रमेह रक्त योनिपीड़ा कृमि पाण्डुता इनको भी नाश करती है ॥

अथ वाभूखखसा ।] बन्ध्या कर्क्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरीति च ॥ नागारि नक्रदमनी विषकण्टकिनी तथा ॥ ३७९ ॥ बन्ध्या कर्क्कोटकी लघ्वी कफनुद् व्रणशोधिनी ॥ सर्पदर्पहरी तीक्ष्णा विसर्प विषहारिणी ॥ ३८० ॥

भा० अथ वाँझखकसा ॥ बन्ध्या कर्कोटकी, देवी, कन्या, योगीश्वरी ॥ ना
गारी, नक्रदमनी, विषकंटकिनी येह वांझखकसा के नाम हैं ॥ ३७९ ॥ वां
झ खकसा हलका कफ नाशक व्रण शोधन सर्पके दर्पको दूर करनेवाला
तीखा विसर्प विष नाशक है ॥ ३८० ॥

[अथ भूइखखसा । वल्ली भूमिप्रसरणशीला ।] मार्कण्डिका भूमिवल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी ॥ मार्कण्डिका कुष्ठहरी ऊर्द्धाधःकायशोधिनी ॥ ३८१ ॥ विषदुर्गन्धकासघ्नी गुल्मोदर विनाशिनी ॥

भा० अनन्तर भुईखकसा ॥ येह लता भूमिपर फैलनेवाली होती है ॥ मा
र्कंडिका भूमिवल्ली मार्कंडी मृदुरेचनी येह भी खकसा के नाम हैं ॥ खक
सा कुष्ठनाशक ऊपर और नीचेसे शरीरको शोधन करने वाली है ॥ ३८१ ॥
और विष दुर्गंध कास इनकी नाशक और वायगोला उदररोग इनकी भी
नाशक है ॥

अथ देवदाली सोनैआ । खखसा वत् फलव्रततिः ।] देवदाली तु वेणी स्यात् कर्कटी च

[अथ वरवेलं ।] वेलन्तरो जगति वीरतरुः प्रसिद्धः श्वेता सितारुणविलोहितनीलपुष्पः ॥ स्याज्जातितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः ॥ स्यात्कण्टकी विजलदेशज एष वृक्षः ॥ ३६२ ॥

वेलन्तरो रसेपाके तिक्तः तृषाकफापहः ॥ मूत्राघाताश्मजित् ग्राही योनिमूत्रानिलार्त्तिजित् ६३

भा० अनन्तर वरवेल । वेलन्तर जगतमें वीरतरु नाम प्रसिद्ध है ॥ वोह सुफेद काला अरुण लाल नीला ऐसे फूलवाला होताहै ॥ अपनी जाति के सदृश फूल होतेहैं ॥ और शमी वृक्षके समान सूक्ष्म पत्र होतेहैं । तथा कांटोंके सहित निर्जल देशमें यह होताहै ॥ ३६२ ॥ वरवेल रस और पाक में तिक्त होताहै और तृषा कफका नाशक । मूत्राघात पथरी इनको जीतने वाला काबिज़ तथा योनिरोग मूत्रवातकी पीड़ा इनको जीतने वालाहै ॥ ६३

[छिक्कनी ।] छिक्कनी क्षवकृत्तीक्ष्णा छिक्किका घ्राणदुःखदा ॥ छिक्कनी कटुका रुच्या तीक्ष्णोष्णा वन्हिपित्तकृत् ॥ ३६४ ॥ वातरक्तहरी कुष्ठ कृमि वातकफापहा ॥ [अथ कुकुन्दर ।]

कुकुन्दरस्ताम्रचूड़ः सूक्ष्मपत्रो मृदुच्छदः ॥ कुकुन्दरः कटुस्तिक्तो ज्वररक्तकफापहः ॥ ३६५ ॥ तन्मूलमार्द्रं निःक्षिप्तं वदने मुखशोषहृत् ॥

भा० अनन्तर नकछिकनी ॥ छिक्कनी क्षवकृत तीक्ष्णा छिक्किका घ्राणदुःखदा येह नकछिकनी के नामहैं ॥ नकछिकनी कड़वी रुचिको करने वाली तीखी और गरम अग्नि पित्तको करनेवालीहै ॥ ३६४ ॥ और वात रक्तकी नाशक तथा कोष्ठ कृमि वात कफकी नाशकहै ॥

अनन्तर ककरौन्दा। कुकुन्दर. ताम्रचूड़. सूक्ष्मपत्र. मृदुच्छद, येह ककरौंदाके नामहैं ॥ ककरौंदा कडुवा तिक्त ज्वर रक्त कफका नाशक है ॥ ३९५ ॥ उस्की गीलीजड़ मुंहमें डालेसे मुखशोषको नाश करतीहै ॥

[अथ सुदर्शनः] सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपर्णिका ॥ सुदर्शना स्वादु रुष्णा कफ शोफास्रवातजित् ॥ ३९६ ॥ [अथ मूसाकर्णी] आखुकर्णी त्वाखुकर्णपर्णिका भूदरी भवा ॥ आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः ॥ ३९७ ॥ विपाके कटुका मूत्र कफामय कृमिप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर सुदर्शन। सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपर्णिका ॥ येह सुदर्शनके नामहैं ॥ सुदर्शन मधुर उष्ण कफ शोथ रक्तवातको जीतनेवालीहै ॥ ३९६ ॥ [अनन्तर मूसाकर्णी। आखुकर्णी आखुकर्णपर्णिका, भूदरी भवा येह मूसाकर्णीके नामहैं ॥ मूसाकर्णी कड़वी तिक्त कसैली शीतल, हलकी होती है ॥ ३९७ ॥ और पाकमें कड़वी तथा मूत्र कफ रोग कृमि इनकी नाशक है ॥

[अथ मयूरशिखा।

मयूराह्व शिखा प्रोक्ता सहस्राह्विर्म्मधुच्छदा ॥
नीलकण्ठशिखा लघ्वी पित्तश्लेष्मातिसारजित् ॥

इति भावप्रकाशे गुडूच्यादिवर्गः।

[अथ पुष्पवर्गः।]

[तत्रादौ कमलस्य नामानि गुणाश्च।] वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम् ॥ १ ॥ सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ॥ २ ॥ पङ्केरुह

गरागरी ॥ देवताडी वृत्तकोश स्तथा जीमूत इत्यपि ॥३०२॥ पीता परा खरस्पर्शा विषघ्नी गर नाशिनी॥ देवदालीरसे तिक्ता कफार्शः शोफ पाण्डुता :॥३०३ ॥नाशयेत् वामनी तिक्ता क्षय हिक्का कृमिज्वरान्॥ देवदाली फलं तिक्तं कृमि श्लेष्म विनाशनम्॥३०४ स्रंसनं गुल्म शूलघ्न मर्शोघ्नं वात जित्परम् ॥

भा० अनन्तर देवदाली । जिस्को सोनया भी कहते हैं ॥ येह खाकस के समान फल और लतावाली है॥ देवदाली वेणी कर्कटी गरागरी ॥ देवताडी वृत्तकोश तथा जीमूत येह सोनयाके नाम हैं ॥ ३०२॥ और दूसरी पीली खरस्पर्शा विषघ्नी गरनाशिनी ॥ येह पीली सोनेयाके नाम हैं ॥ सोनैया रसमें तिक्त कफ ववासीर पाण्डुरोग इनको नाश करती है ॥ ३०३ और कैलाने वाली तिक्त है तथा क्षय हिचकी कृमिज्वर इनको नाश करती है ॥ सोनैया का फल तिक्त कृमिकफ का नाशक है ॥ ३०४॥ और दस्तावर वायगोला शूल इनका नाशक ववासीर का नाशक वात पित्त को जीतनेवाला है ॥

[अथ जल पिप्पली पनिसगा इति लोक ।]

जलपिप्पल्य भिहिता शारदी शकलादनी ॥ मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गलीत्यपि कीर्त्तिता ॥ ३०५॥ जलपिप्पलिका हृद्या चक्षुष्या शुक्रला लघुः ॥ संग्राहिणी हिमा रूक्षा रक्तदाह व्रणा पहा ॥ ३०६॥ कटुपाक रसा रुच्या कषाया वन्हि वर्द्धिनी ॥

भा० अनन्तर जलपिप्पली इस्को पनीसगा ऐसा लोकमें कहते हैं ॥ जलपिप्पली शारदी शाकलादनी ॥ मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गली येह जलपिप्पली के नाम हैं ॥ ३०५॥ जलपिप्पली हृद्य नेत्रके हित शुक्रको उत्पन्न करनेवाली हलकी काबिज़ शीतल गरूखी रक्तदाह व्रणको नाशकरै ॥ ३०६

और पाक रसमें कटु रुचिको करनेवाली कसेली अग्निको बढ़ानेवालीहै ॥

[अथ गोभी।] गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपर्णिनी ॥ गोजिह्वा वातला शीता ग्राहिणी कफपित्तनुत् ॥ ३८७ ॥ हृद्या प्रमेह कासास्त्र व्रणाज्वरहरी लघुः ॥ कोमला तुवरा तिक्ता स्वादुपाक रसा स्मृता ॥ ३८८ ॥

भा० अनन्तर गावज़ुबाँ ॥ गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपर्णिनी। येह गावज़ुबाँ के नामहैं ॥ गावज़ुबाँ वातको करनेवाली शीतल काविज़ कफ पित्तकी नाशक है ॥ ३८७ ॥ और हृद्य प्रमेह कास रक्त व्रण ज्वर इन की नाशक है ॥ और हलकी होती है तथा कोमल कसैली तिक्त पाक और रसमें मधुर कही गई है ॥ ३८८ ॥

[अथ नागदमनी।]

विज्ञेया नागदमनी बला मोटा विषापहा ॥ नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरीति च ॥ ३८९ ॥ बला मोटा कटुस्तिक्ता लघुः पित्त कफापहा ॥ मूत्रकृच्छ्र व्रणान् रक्षो नाशयेज्जालगर्द्दभम् ॥ ३९० ॥ सर्वग्रह प्रशमनी निःशेष विषनाशिनी ॥ जयं सर्वत्र कुरुते धनदा सुमतिप्रदा ॥ ३९१ ॥

भा० अनन्तर नागदमन। नागदोन। नागदमनी बला मोटा विषापहा ॥ नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरी ॥ ३८९ ॥ नागदमन कड़वी तीखी हलकी पित्तकफकी नाशक है और मूत्रकृच्छ्र घाव राक्षस इनको नाश करती है। और जाल गर्दभ नाम फुनसीको नाश करती है ॥ ३९० ॥ और संपूर्ण ग्रहों को नाश करती है ॥ तथा अशेष विषकी नाशक है ॥ और सर्वत्र जय को करती है तथा धनको देनेवाली है। तथा अच्छी मतिको देनेवाली है ॥ ३९१ ॥

न्तामरसं सारसी सरसीरुहम् ॥ विश प्रसून राजी-
व पुष्कराम्भोरुहाणि च ॥ २॥ कमलं शीतलं
वर्ण्यं मधुरं कफपित्तजित् ॥ तृष्णा दाहास्त्र वि-
स्फोट विषवीसर्प नाशनम् ॥ ३॥ विशेषतः सि-
तं पद्मं पुण्डरीक मिति स्मृतम् ॥ रक्तं कोकनदं ज्ञे-
यं नील मिन्दीवरं स्मृतम् ॥ ४॥ धवलं कमलं शी-
तं मधुरं कफपित्त जित् ॥ तस्मादल्पगुणं किञ्चि-
दन्यद् रक्तोत्पलादिकम् ॥ ५॥

भा० अनन्तर मोर शिखा ॥ मयूराह्व शिखा सहस्रा अहि मधुच्छदा नीलकंठ शिखा ॥ येह मोर शिखा के नाम हैं। मोरशिखा इसको पित्त अतीसार को जीतने वाली है ॥ ३८९॥

इति भावप्रकाशे गुडूच्यादि वर्ग समाप्त ॥ ॐ ॥

अनन्तर पुष्पवर्ग ॥ [उसमें पहले कमल के नाम और गुण कहते हैं।] पद्म नलिन अरविंद महोत्पल ॥ सहस्रपत्र कमल शतपत्र कुशेशय ॥ ॥ १॥ पंकेरुह तामरस सारस सरसिरुह ॥ विषप्रसून राजीव पुष्कर अम्भोरुह॥ २॥ येह कमल के नाम हैं। कमल शीत वर्ण को अच्छा करनेवाला मधुर कफ पित्त को जीतनेवाला ॥ और तृषा दाह रक्त विस्फोट विष विसर्प इनका नाशक है ॥ ३॥ विशेषकरके स्वेत पद्म को पुण्डरीक, ऐसा कहा है ॥ लालको कोकनद जानना चाहिये और नीले को इन्दीवर ऐसा कहा है ॥ ४॥ स्वेत कमल शीतल मधुर कफ को जीतनेवाला है उससे कुछ अल्पगुणवाले दूसरे लाल कमलादिक हैं ॥ ५॥

अथ पद्मिनी।] मूलनाल दलोत् फुल्लः फलैः
समुदिता पुनः ॥ पद्मिनी प्रोच्यते प्राज्ञै र्बिसिन्या
दि च सा स्मृता ॥ ६॥

(क) आदि शब्दान्नलिनी कमलिनी त्यादि।

पद्मिनी शीतला गुर्व्वी मधुरा लवणा च सा ॥ पित्ता
सृक्कफनुद्रूक्षा वात विष्टम्भकारिणी ॥ ७ ॥

भा० अनन्तर पद्मिनी ॥ मूलनाल पत्रपुष्प फल इन करके युक्तको पद्मिनी घास कहतेहैं ॥ और मूल बिसनी आदि कही गईहै ॥ ६ ॥
(क) आदि शब्द से नलिनी कमलिनी इत्यादिक । पद्मिनी शीतल भारी मधुर लवण रसोंकरके युक्त होती है । और वोह रक्त पित्त कफ इन को नाश करनेवाली तथा वातको विष्टम्भ करनेवाली है ॥ ७ ॥

अथ नव पत्रादि ।] सम्वर्त्तिका नवदलं वीजकोशस्तु कर्णिका ॥ किञ्जल्कः केसरः प्रोक्तो मकरन्दो रसः स्मृतः ॥ ८ ॥ पद्मनालं मृणालं स्यात्तथा विश मिति स्मृतम् ॥ सम्वर्त्तिका हिमा तिक्ता कषाया दाह तृट् प्रणुत् ॥ ९ ॥ मूत्र कृच्छ्र गुद व्याधि रक्तपित्त विनाशिनी ॥ पद्मस्य कर्णिका तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ॥ १० ॥ मुख वैशद्य कृल्लघ्वी तृष्णास्र कफ पित्तनुत् ॥ किञ्जल्कः शीतलो वृष्यः कषायो ग्राहकोऽपि सः ॥ ११ ॥ कफपित्त तृषादाह रक्तार्शो विष शोथ जित् ॥ मृणालं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्र जिद्गुरु ॥ १२ ॥ दुर्जरं स्वादु पाकञ्च स्तन्यानिल कफ प्रदम् ॥ संग्राहि मधुरं रूक्षं शालूक मपि तद्गुणम् ॥ १३ ॥

भा० अनन्तर नौ पत्रादि ।] कवलके नये पत्तोंको संवर्त्तिका कहतेहैं ;

और बीजको कोश तथा कार्णिका कहते हैं ॥ और तिर्रियों को किंजल्क केसर कहते हैं ॥ तथा रसको मकरन्द ऐसा कहते हैं ॥ ८॥ और उस्के नाल को मृणा मृणाल पद्मनाल विष ऐसा कहते हैं ॥ नर्वान पत्त शीतल कसैल दाह तृषा के नाशक हैं ॥ ९॥ और मूत्र कृच्छ्र गुदारोग रक्तपित्त इनकी नाशक है ॥ और उस्के बीज तिक्त कसैले शीतल होते हैं ॥ १०॥ और मुखको स्वच्छ कर ने वाले हलके तथा तृषा रक्त कफ पित्त इनकी नाशक है ॥ तिर्रियां शीतल शु क्र की उत्पन्न करने वाली कसैली क़ाबिज़ होती हैं ॥ ११॥ कफ पित्त तृषा दाह रक्त की बवासीर विष सूजन इनको जीतने वाला ॥ कमल की नाल शीतल शुक्र को उत्पन्न करने वाली और पित्त दाह रक्त इनको जीतने वाली भारी है। ॥ १२॥ दुर्जर पाकमें मधुर दुग्ध वात कफ इनको उत्पन्न करने वाली है॥ तथा क़ाबिज़ मधुर रूखी होती है और शालूक अर्थात् उस्की जड़ भी उसीके समा न गुणमें हैं ॥ १३॥

[अथ स्थल कमल] पद्मचारिण्यति चराव्यथा पद्मा न्च शारदा ॥ पद्मानुष्णा कटु स्तिक्ता कषाया कफ वात जित् ॥ १४॥ मूत्र कृच्छ्राश्म शूलघ्नी श्वास का स विषापहा ॥

२ अथ कुमुदिनी कोई इति लोके।

श्वेतं कुवलयं प्रोक्तं कुमुदं कैरवं तथा ॥ कुमुदं पि च्छिलं स्निग्धं मधुरं हृद्य शीतलम् ॥ १५॥

१ अथ कुमुद। कुमुद्वती कैरविका तथा कुमुदिनीति च ॥ सा तु मूलादि सर्वाङ्गैः रुक्ता समुदिता बुधैः ॥ ॥ १६॥ पद्मिन्या ये गुणाः प्रोक्ता कुमुदिन्याश्च ते स्मृताः।

भा॰ अनन्तर स्थलकमल ॥ पद्मचारिणी। अतिचराव्यथा॰ पद्मा॰ शार दा॰ यह स्थल कमल के नाम हैं। थलकमल शीतल कड़वा तिक्त कसैला कफ वात को जीतने वाला है ॥ १४॥ और मूत्रकृच्छ्र पथरी शूल॰ इनका

नाशक तथा श्वास कास विष इनका भीनाशक ॥
अनन्तर कुमुद कहतेहैं ॥ स्वेत कमलको कुमुद तथा कैरव कहते हैं ॥
स्वेत कमल चिकना चेपदार मधुर हृद्य शीतल होताहै ॥ २५॥
अनन्तर कुमुदिनी ॥ कुमुदवती कैरविका कुमुद्वती येह कुमुदिनीके नामहैं
॥ वोह मूल आदि सब अंगोंसे खिलीहुई होतीहै ॥ ऐसा पण्डितोंने कहाहै
॥ २६ ॥ जो पद्मिनी के गुण कहे गयेहैं वोही कुमुदनी के भी कहेहैं ॥

अथ जलकुम्भी सेवार ।। वारिपर्णी कुम्भिका स्या च्छैवालं शैवलञ्च तत् ॥ वारिपर्णी हिमा तिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा कटुः ॥ २७ ॥ दोषत्रय हरी रुक्षा शोणित ज्वर शोष कृत ॥ शैवालं तुवरं तिक्तं मधुरं शीतलं लघु ॥ २८ ॥ स्निग्धं दाह तृषा पित्त रक्त ज्वर हरं परम् ॥

भा० अनन्तर जलकुंभी और सिवार ॥ वारिपर्णी कुंभिका । येह जलकुंभीके नामहैं ॥ शैवाल शैवल येह सैवारके नामहैं । जलकुम्भी शीतल तिक्त हलकी मधुर सर कटु होताहै ॥ २७ ॥ और त्रिदोष को नाश करनेवाली रुखी रक्त ज्वर शोष इनको करनेवालीहै ॥ और सिवार कसैला तिक्त मधुर हलका चिकना और दाह तृषा पित्त रक्तज्वर इनको दूर करनेवालाहै ॥

अथ सेवती । गुलाव इति च । शतपत्री तरुण्यु क्ता कर्णिका चारु केशरा ॥ महाकुमारी गन्धाढ्या लाक्षा कृष्णाति मञ्जुला ॥ २९ ॥ शतपत्री हिमा हृद्या ग्राहिणी शुक्रला लघुः ॥ दोषत्रयास्त्रजि द्वर्ण्या तिक्ता कट्वी च पाचनी ॥ ३० ॥

भा० अनन्तर सेवती ।। शतपत्री तरुणी कर्णिका चारु केशरा ॥ महा

महा कुमारी, गन्धाढ्या, लाक्षा कृष्णा अतिमञ्जुला। येह सेवती के नाम हैं ॥१९॥ सेवती शीतल हृदयको प्रिय क्राबिज़ शुक्रको उत्पन्न करने वाली। हलकी। और त्रिदोष रक्तइनको जीतने वाली और व्रणको अच्छा करने वाली तिक्त कड़वी पाचनहै ॥२०॥

अथ वसंती। [नेवारि इति लोके।] नेपाली कथिता तज्ज्ञैः सप्तला नवमालिका॥ वासन्ती शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयास्त्र जित्॥२१॥

[अथवा वार्षिकी। वेल इति लोके।] श्रीपदी षट् पदानन्दा वार्षिकी मुक्त बन्धना॥ वार्षिकी शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रया पहा॥ २२॥ कर्णाक्षिमुखरोगस्या तत्तैलं तद्गुणं स्मृतम्॥

भा॰ अनन्तर निवारी। नैपाली, सप्तला, नवमालिका, येह निवारीके नाम हैं। निवारी शीतल हलकी तिक्त त्रिदोषको जीतनेवालीहै॥२१॥ अनन्तर वार्षिकी वेल, अर्थात् वर्सानी वेल॥ श्रीपदी षट्पदा नंदा वार्षिकी मुक्तबन्धना। येह वर्सानी वेलके नामहैं। वर्सानी शीतल तिक्त हलकी त्रिदोषकी नाशक है॥२२॥ और कान आंख मुख इनके रोगोंकी नाशक है उसका तेल उसीके समान गुणमें कहा गयाहै॥

अथ चम्बेली। [स्वर्णजाती।] जातिर्जाती च सुमना मालती राजपुत्रिका॥ चेतिका हृद्यगन्धा च सा पीता स्वर्णजातिका॥२३॥ जातीयुगं तिक्त मुष्णं तुवरं लघु दोषजित्॥ शिरोक्षि मुख दन्तार्ति विषकुष्ठा निलास्रजित्॥२४॥

भा॰ अनन्तर चमेली। [पीली चमेली] जाति जाती सुमना मालती राज

पुत्रिका- येह चमेलीके नाम हैं ॥ और चेतिका हृद्यगन्धा स्वर्णजातिका, येह पीली चमेली के नाम हैं ॥२३॥ दोनों चमेली तिक्त उष्ण कसैली हलकी दोषकोजीतने वाली हैं ॥ और सिर नेत्र मुख दांत इनकी पीड़ा और विषकुष्ठ वातरक्त। इनकोजीतनेवालीहैं ॥ २४॥

अथ जुही सुवर्णजुही।] यूथिका गणिकाम्बष्ठा सापीता हेमपुष्पिका ॥ यूथी युगं हिमं तिक्तं कटुपाकरसं लघु ॥२५॥ मधुरं तुवरं हृद्यं पित्तघ्नं कफवातलम् ॥ व्रणास्रमुखदन्तादि शिरोरोग विषापहम् ॥ २६ ॥ अथ चम्पा।] चाम्पेयश्चम्पकः प्रोक्तो हेमपुष्पश्च सस्मृतः ॥ एतस्य कलिका गन्धफलीति कथिता बुधैः ॥ २७ ॥ चम्पकः कटुकस्तिक्तः कषायो मधुरो हिमः ॥ विषक्रिमिहरः कृच्छ्र कफवातास्रपित्तजित् ॥ २८ ॥

भा० अनन्तर जुही। और पीलीजुही।] यूथिका-गणिका-अम्बष्ठा। येह जुहीके नामहैं ॥ और हेमपुष्पिका- येह पीली जुहीके नाम हैं ॥ दोनों जुही शीतल तिक्त पाकमें कड़वी हलकी होतीहैं ॥ २५ ॥ और मधुर कसैली हृद्य पित्तनाशक। कफ वातको करनेवाली है ॥ और घावरक्त मुख दन्त नेत्र शिर इनके रोग तथा विष इनकी नाशक है ॥ २६ अनन्तर चम्पा।] चाम्पेय चम्पक हेमपुष्प येह चम्पेके नाम कहेहैं ॥ इसकी फली को गन्धफली ऐसा पंडितों ने कहाहै ॥ २७ ॥ चम्पा- कड़वा,

[illegible]

पाकरसो गुरुः॥ २९॥ कफपित्त विषश्वित्र क्रमि दन्त गदापहः॥ [अथ वकुल वृहद् बोलसरीति च] शिवमल्ली पाशुपत एकाष्ठीलोबुको वसुः॥ बुको ऽनुष्णः कटुस्तिक्तः कफ पित्त विषापहः॥३०॥ योनिशूल तृषादाह कुष्ठ शोथास्त्र नाशनः॥

भा० अनन्तर मौरसरी॥ वकुल मधुगन्ध सिंह केसरक येह मोलसिरी के नामहैं॥ मोलसरी कसेली शीतल पाक रसमें कटु हलकी भारीहै कफ पित्त विष स्वित्र क्रमि दन्तरोग इनका नाशक है॥
अनन्तर बड़ी मोलसरी। शिवमल्ली पाशुपत एकाष्टील बुक वसु येह बड़ी मोलसरी के नाम हैं॥ मोलसिरी शीतल कड़वी तिक्त है और कफ पित्त विषकी नाशक है॥ ३०॥ योनिशूल तृषा दाह कुष्ट रक्तशोथ इनका नाशक है॥

[अथ कदम्बः।] कदम्बः प्रियको नीपो वृत्तपुष्पो हलिप्रियः॥ कदम्बो मधुरः शीतो कषायो लव णो गुरुः॥ ३१॥ सरो विष्टम्भ कृद्रूक्षः कफस्तन्या निलप्रदः॥ [अथ कूजा।] कुब्जको भद्र तरणि वृहत्पुष्पोऽति केसरः॥ महा सहा कण्टकाढ्या नीला तिकुल सङ्कुला॥ ३२॥ कुब्जकः सुरभिः स्वादुः कषायानुरसः सरः॥ त्रिदोष शमनो वृष्यः शीत हृत्स्त्र स स्रृतः॥ ३३॥

भा० अनन्तर कदम्ब। कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्तपुष्प, हरिप्रिय येह कदम्बके नामहैं॥ कदम मधुर शीतल कसेला नमकीन भारी॥ ३१॥ सर विष्टम्भ करनेवाला रूखाहै। और कफ दुग्ध वात इनको करनेवालाहै॥ [अथ कूजा। कुब्जक भद्रतरणी वृहत्पुष्प अतिकेसर।

महासहा, कराटकाच, नीलाम्लिकुल संकुल, येह कूजाके नामहैं ॥ येह फूल सेवती की क़िस्मसे होताहै ॥ ३२ ॥ कूजा सुगन्धयुक्त मधुर पीछे से कसैला सर ॥ त्रिदोष शमन शुक्र कोउत्पन्न करनेवाला शीत कहा गया है ॥ ३३ ॥

अथ मल्लिका।] मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च भूपदी ॥ मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका हरेत् ॥ ३४ ॥ वात पित्तास्य दृग्व्याधि कुष्ठा रुचि विष व्रणान् ॥ [अथ माधवी। माधवीस्यात्तु वासन्ती पुण्ड्र को मण्डकोऽपिच ॥ अतिमुक्तो विमुक्त श्च कामुको भ्रमरोत्सवः ॥ ३५ ॥ माधवी मधुरा शीता लघ्वी दोष त्रया पहा ॥

भा० अनन्तर मालती ॥ मल्लिका मदयन्ति शीत भीरु भूपदी ॥ येह मालती के नामहैं ॥ मालती गरम हलकी शुक्रको उत्पन्न करनेवाली तिक्त कड़वी होती है ॥ ३४ ॥ और वात पित्त मुख दृष्टि रोग कुष्ठ अरुचि विषव्रण इनको नाशकरती है ॥ [अनन्तर माधवी। माधवी वासन्ती पुन्ड्रक मन्डक अतिमुक्त विमुक्त कामुक भ्रमरोत्सव ॥ ३५ ॥ येह मोतियाके नाम हैं। मोतिया शीतल मधुर हल्का दोषत्रय का नाशक होता है ॥

[केवरा सुवर्णकेतकी।] केतकः सूचिकापुष्पो जम्बुकः क्रकच च्छदः ॥ सुवर्ण केतकी त्वन्या लघु पुष्पा सुगन्धिनी ॥ ३६ ॥ केतकः कटुकः स्वादु र्लघुस्तिक्तः कफापहः ॥ उष्णा तिक्त रसा ज्ञेया चक्षुष्या हेमकेतकी ॥ ३७ ॥

भा० अनन्तर केवड़ा।] और सुनहरी केवड़ा।] केतक सूचिकापुष्प जंबुक क्रकच च्छद येह केवडे के नामहैं ॥ और दूसरा सुनहरी केवडा छोटे फूलवाला सुगन्धयुक्त होता है ॥ ३६ ॥ केवड़ा मधुर हलका तिक्त कफ

नाशक होता है ॥ और सुनहरी केवड़ा उष्ण रसमें तिक्त नेत्रके हितहोताहै ३७

[अथ किङ्किरात इति गौड़ादौ प्रसिद्धः।]

किङ्किरातो हेम गौरः पीतकः पीत भद्रकः ॥
किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेद्सो॥ ३८॥
कफ पित्त पिपासास्त्र दाह शोथ वमिक्रमीन् ॥

[अथ कर्णिकारः।] कर्णिकारः परिव्याधः पाद
पोत्पल इत्यपि ॥ कर्णिकारः कटु स्तिक्त स्तुवरः
शोधनो लघुः ॥ ३९ ॥ रञ्जनः सुखदः शोथ श्ले-
ष्मास्त्र व्रण कुष्ठ जित् ॥

भा॰ अनन्तर किङ्किरात इस प्रकार प्रसिद्ध है ॥ किंकिरात हेमगौर पीतक पीतभद्रक येह किंकिरात के नामहैं ॥ किंकिरात शीतल तिक्त कसैला है ॥ ३८ ॥ और कफ पित्त तृषा रक्त दाह शोथ वमन कृमिइन कोजीतताहै ॥ अनन्तर कर्णिकारः ॥ कर्णिकार परिव्याध पाद-पोत्पल ॥ येह कर्णिकार के नामहैं ॥ कर्णिकार कड़वी तिक्त कसै-ली शोधन हलकी ॥ ३९॥ रञ्जन सुखदेनेवाली शोथ कफ रक्त व्रण कुष्ठ इनको जीतनेवाली है ॥

[अथ अशोक असोगि।]

अशोको हेम पुष्पश्च वञ्जुल स्ताम्र पल्लवः ॥
कङ्केलिः पिण्ड पुष्पश्च गन्ध पुष्पो नटस्तथा ॥ ४०॥
अशोकः शीतल स्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः
॥ दोषापची तृषा दाह कृमि शोथ विषास्त्र जित् ४१

भा॰ अनन्तर आसोक । अशोक हेमपुष्प वंजुल ताम्रपल्लव अंकेली पिंडपुष्प गंधपुष्प नट येह अशोक के नामहैं ॥ ४०॥ अशोक शीतल तिक्त काबिज़ वर्ण को अच्छा करनेवाला कसैला है ॥ दोष अपचि तृषा

दाह कृमि शोथ विषरक्त इनका जीतने वालाहै ॥ ५१॥

[अथवाणपुष्प इति गौड़ादौ प्रसिद्धः।] अम्ला तोऽम्लातनः प्रोक्तस्तथाम्लानक इत्यपि ॥कु रण्टको वर्णपुष्पः स एवोक्तो महासह ॥५२॥ अम्लातनः कषायोष्णः स्निग्धः स्वादुश्च तिक्तकः॥ [अथ कटशैरेआ। सैरेयकः श्वेतपुष्पः सैरेयः कटसारिका ॥ सहाचरः सहचरः। सच भिन्द्यपि कथ्यते ॥ ५३॥ कुरण्टकोऽत्र पीते स्याद्रक्ते कुरबकः स्मृतः॥ नाले वाणद्वयोरुक्तो दासेआर्त्तगलश्च सः॥ ५४॥ सैरेयः कुष्ठ वातास्र कफकण्डू विषापहः॥ तिक्तोष्णो मधुरोऽनम्लः सुस्निग्धः केशरञ्जनः ॥ ५५॥

भा० अनन्तरवाणपुष्प ॥ अम्लात अम्लातन तथा अम्लातक कुरंटक वर्णपुष्प महासह येह वाणपुष्प के नामहैं ॥ ५२॥ वाणपुष्प कसैला गरम चिकना मधुरतिक्त होता है ॥ [अनन्तर कटसैरेआ।] सैरेक स्वेतपुष्प सैरेय कटसारिका ॥ सहाचर सहचर भिंदि येह कटसैरैया के नाम हैं ॥ ५३॥ कटसैरैया पीली फूलवाली को कुरंटक कहते हैं ॥ और लालफूलवाली को कुरबक कहाहै ॥ और नीले फूल वाली को वाण कहाहै। और दुरंगे फूलवाली को दास आर्त्तगल कहा है ॥ ५४॥ कटसैरैया कुष्ठ वातरक्त कफ खुजली विष इनकीनाशक है ॥ और तिक्त गरम मधुर वे खट्टी चिकनी केशकी रंजन होतीहै ॥ ५५॥

अथ कुन्दः।] कुन्दन्तु कथितं माध्यं सदापुष्पञ्च तत्स्मृतम् ॥कुन्दं शीतं लघु श्लेष्म शिरोरुग् विष पित्तहृत् ॥ ५६॥

अथ मुचकुन्द नाम्नैव प्रसिद्धः॥ मुचुकुन्दः क्षत्र वृक्ष श्चित्रकः प्रति विष्णुकः॥ मुचुकुन्दः शिरः पीड़ा पित्तास्र विष नाशनः॥ ४७॥

अथ तिलाख्यपुष्प स्तिलक नाम्नैव प्रसिद्धः॥ तिलकः क्षुरकः श्रीमान् पुरुष श्छिन्न पुष्पकः॥ तिलकः कटुकः पाके रसे चोष्णो रसायनः॥ ४८॥ कफ कुष्ठ कृमीन् वस्ति मुख दन्त गदान् हरेत्॥

भा० अनन्तर कुन्द ॥ कुन्द मांस सदापुष्प येह कुन्द के नामहैं॥ कुन्द शीतल हलका कफ शिरकी पीड़ा विष पित्त इनका नाश करता है। ४६॥ अनन्तर मुचकुन्द ॥ मुचुकुन्द क्षत्रवृक्ष चित्रक प्रतिविष्णुक येह मुचुकुन्दके नाम हैं॥ मुचकुन्द शिरकी पीड़ा रक्तपित्त विष इनका नाशक है॥ ॥४७॥ अनन्तर तिलक इनका फूल तिलके फूल समान होताहै और इसी नामसे प्रसिद्ध है॥ तिलक क्षुरक श्रीमान् पुरुष छिन्नपुष्पक। येह तिलक के नाम हैं। तिलक पाक रसमें कडुवा उष्ण रसायन होताहै॥४८ और कफ कुष्ठ कृमि वस्ति मुख दन्त इनके रोगों को नाश करताहै॥

[अथ गेजुनिया।] बन्धूको बन्धुजीवश्च रक्तो माध्यान्हिकोऽपि च॥ बन्धूकः कफ कृत् ग्राही वातपित्त हरो लघुः॥ ४९॥ [अथ गोड़हुल।] तथा साम्फी। ऊर्द्ध पुष्पञ्जपा चाथ त्रिसन्ध्या सारुणा सिता॥ जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफ वात जित्॥ ५०॥

भा० अनन्तर दुपहरिया ॥ बन्धूक बन्धु जीव रक्त मध्यान्हिक। येह दुपहरिया के नामहैं। दुपहरिया कफको करने वाला क़ाबिज़ वातपित्त का नाशक हलका होता है॥ ४९॥ [अनन्तर जवा वृक्ष।] ऊर्द्धपुष्प जयापुष्प त्रिसन्ध्या, सारुणा, सिता, येह जवा पुष्पके नामहैं॥ जवापुष्प क़ाबिज़ केश

को अच्छा करनेवाला। कफ वातको जीतनेवाला है ॥ ५०॥

अथ सिन्दूरिआ। सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सु-कोमला ॥ सिन्दूरी विष पित्तास्त्र तृष्णा वान्ति हरी-हिमा ॥ ५१॥ [अथागस्तिः। अथागस्त्यो वङ्गसेनो मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः॥ अगस्तिः पित्तकफजित् चा तुर्थक हरो हिमः ॥ ५२॥ रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रति श्याय निवारणः ॥

भा० अनन्तर सिन्दूरिया। सिन्दूरी रक्तबीजा रक्तपुष्पा सुकोमला येह सि न्दुरियाके नामहैं ॥ सिन्दूरी विषरक्त पित्त तृषा वमन इनको दूर करनेवाली शीतल होती है ॥ ५१॥[अनन्तर अगस्त] अगस्त्य वंगसेन मुनिपुष्प मुनि द्रुम येह अगस्त्यके नाम हैं ॥ अगस्त्य पित्तकफ कोजीतनेवाला और चातु-र्थकज्वरका नाशकरनेवाला। शीतल है ॥ ५२॥ और रूखा वातको करनेवा ला। तिक्त जुकाम को दूर करनेवाला है ॥

[अनन्तर तुलसी शुक्ला कृष्णा च]

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी ॥ अपे तराक्षसी गौरी शूलघ्नी देवदुन्दुभिः ॥ ५३॥ तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाह पित्त कृत् ॥ दीपनी कुष्ट कृच्छ्रास्त्र पार्श्वरुक्कफवातजित् ॥ ५४॥ शुक्ला कृष्णा च तुलसी गुणैस्तुल्या प्रकीर्त्तिता ॥

भा० अनन्तर काली और श्वेत तुलसी ॥ तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहु मञ्जरी। अपेतराक्षसी गौरी शूलघ्नी देवदुन्दभी। येह तुलसीके नामहैं। ॥ ५३॥ तुलसी कड़वी तिक्त हृद्य उष्ण दाह पित्तकोकरनेवाली है ॥ औ रदीपनहै ॥ तथा कुष्ठ मूत्रकृच्छ्र रक्तपसली की पीड़ा कफ वात इनको जीतनेवालीहै ॥ ५४॥ काली और सेत तुलसी गुणमें समानकही गई है ॥

[अथ मरुआ।] मारुतोऽसौ मरुवको मरुन्मरुरपि स्मृतः॥ फणी फणिज्जकश्चापि प्रस्थपुष्पः समीरणः॥ ५५॥ मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्त-लो लघुः॥ वृश्चिकादि विषश्लेष्म वात कुष्ठ कृमि प्रणुत्॥ ५६॥ कटुपाक रसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकः॥

भा० अनन्तर मरुआ॥ मारुत मरुवक मरुण मरु। येह मरुआके नाम कहे हैं॥ ५५॥ मरुआ अग्निको करनेवाला हृद्य तीक्ष्ण उष्ण पित्तको करनेवाला हलका होताहै। और विच्छू आदियों के विषकफ वात कुष्ठ कृमि इनका नाशक है॥ ५६॥ और पाक रसमें कडुवा रुचिको करनेवाला तिक्त रूखा सुगन्धिक होता है॥

[अथ दवना।] उक्तो दमनको दान्तो मुनिपुत्रस्तपोधनः॥ गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कलपत्रकः॥ ५७॥ दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यः सुगन्धिकः॥ ग्रहणी द्विषकुष्टास्त्र क्लेदकण्डू त्रिदोषजित्॥ ५८

भा० अनन्तर दमना॥ दमनक दान्त मुनिपुत्र तपोधना॥ गन्धोत्कट ब्रह्मजट विनीत कलमत्रक येह दमना के नामहैं॥ ५७॥ दमना कसैला तिक्त हृद्य शुक्रको उत्पन्न करनेवाला सुगंधिक होता है॥ और मीनें विष कुष्ठ रक्त क्लेद खुजली त्रिदोष इनको जीतता है॥ ५८॥　　:से

[अथ वर्वरी।] वर्वरी तुवरी तुङ्गी खरपुष्पाजगंधिका॥ पर्णाशस्तत्र कृष्णे तु कठिञ्जक कुठेरकौ॥ ५९ तत्र शुक्लेऽर्जकः प्रोक्तो वटपत्रस्तथा परः॥ वर्वरीत्रितयं रूक्षं शीतं कटु विदाहि च॥ ६०॥

तीक्ष्णा रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च ॥ पित्त-
लं कफवातास्त्र कण्डू कृमि विषापहम् ॥ ६१॥
इति श्री भावप्रकाशे पुष्पादिवर्गः॥

[अथ वटादिवर्गः तत्रादौ वटस्य नामानि गुणाश्च।]

वटोरक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः ॥ क्षी-
री वैश्रवणो वासो बहुपादो वनस्पतिः ॥ ६२॥ वटः
शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्त व्रणापहः ॥ वर्ण्यो वि-
सर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोष हृत् ॥ ६३॥

भा० अनन्तर वर्वरी ॥ वरवरी सुवरी तुंगी खरपुष्पा अजगन्धिका ॥ पर्णी
ण ये हवर्वरीके नामहै ॥ उसमे काला कठिलक और कुठेरक होताहे ॥ ५९
॥ उन्में सुफ़ेद अरजक वटपत्र कहा गयाहे ॥ तीनो वर्वरी रूखी शीतल
कड़वी विदाह को करनेवाली होतीहै ॥ ६०॥ तथा तीखी रुचिको करनेवाली
हृद्य दीपन और पाकमें हलकी होतीहै ॥ और पित्तको करनेवाली कफ
वातरक्त खुजली कृमि विष इनकी नाशक ॥ ६१॥
इतिश्री भावप्रकाशे पुष्पादि वर्गः॥ ॐ ॥ अनन्तर वटादि वर्गः ॥
उनमें पहले वटके नाम और गुण ॥ वट, रक्तफल, शृंगी, न्यग्रोध, स्कंधज,
ध्रुव ॥ क्षीरी वैश्रवण वास बहुपाद वनस्पति ॥ ६२॥ यह बड़ के नामहैं ॥
बड़ शीतल भारी क़ाबिज़ कफ पित्त व्रणका नाशक है ॥ और वर्णको
अच्छा करनेवाला तथा विसर्पदाहका नाशक कसैला और योनि दोष
का नाशक हैं॥ ६३॥

[अथ पीपर। बोधिद्रुः पिप्पलोऽश्वत्थ श्चलपत्रो
गजाशनः ॥ पिप्पलो दुर्जरः शीतः पित्तश्लेष्म
व्रणास्त्र जित् ॥ ६४ ॥ गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्ण्यो यो
नि विशोधनः ॥ [अथ पिप्पलभेदः।]

गजदण्ड सहोरा इति लोके ।] पारीषोऽन्यः पलाश श्च कपिरुलः कमण्डलः ॥ गर्द भाण्डष्कन्दरालः कपीतन सुपार्श्वकः ॥ ६५ ॥ पारीषो दुर्ज्जरः स्निग्धः क्रमि शुक्र कफप्रदः ॥ फलेऽम्लो मधुरो मूले कषायः स्वादु मज्जकः ॥ ६६ ॥

भा० अनन्तर पीपल ॥ वोधिद्रु पीपल अश्वत्थ चलपत्र गजशन । येह पीपल के नाम हैं ॥ पीपल दुर्ज्जर शीतल पित्त कफ व्रण रक्तको जीतने वाला है ॥ ६४ ॥ और भारी कसैला रूखा वर्णों को अच्छा करनेवाला योनि का शोधक है ॥ अनन्तर पीपलका भेद ॥ गजदण्ड सोहरा इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ पारीष अन्यपलाश कपिरुल कमण्डल गर्दभाण्ड कंदराल कपीतन सुपार्श्वक । येह रसपीपलके नाम हैं ॥ ६५ ॥ पा[पारस पीपल ।] दुर्जर चिकना क्रमि शुक्रको कफको करनेवाला है ॥ फलमें खट्टा मूलमें मधुर गिरी कसैली और मधुर होती है ॥ ६६ ॥

[अथ वेलिया पीपर ।] नन्दीवृक्षोऽश्वत्थ भेदः प्ररोही गजपादपः ॥ स्थालीवृक्षः क्षयतरुः क्षीरी च स्याद्वनस्पतिः ॥ ६७ ॥ नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुः तिक्तस्तुवर उष्णकः ॥ कटु पाक रसो ग्राही विषपित्तकफास्रजित् ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर वेलिया पीपर ॥ नन्दीवृक्ष अश्वत्थवेल प्ररोही गजपादप- ॥ स्थालीवृक्ष क्षयतरु क्षीरी वनस्पति येह वेलिया पीपर के नाम हैं ॥ ६७ ॥ वेलिया पीपर हलका मधुर तिक्त कसैला गरम होता है ॥ और पाक रसमें कटु ग्राही विष पित्त कफ रक्त का नाशक है ॥ ६८ ॥

अथ उदुम्बर ॥ उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेम-

दुग्धकः ॥ उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्त कफास्रजि-
त् ॥ ६९ ॥ मधुर स्तुवरो वर्ण्यो व्रण शोधन रोपणः ॥
[अथ कटुम्बरी ।] काको दुम्बरिका फल्गु र्मलयू-
र्ज्जघने फला ॥ मलपूस्तम्भ क्षालिका शीतला तु-
वरा जयेत् ॥७०॥ कफ पित्त व्रणश्वित्र कुष्ठ पा-
ण्डुर्श कामला: ॥

भा० अनन्तर गूलर ।] उदुम्बर जंतुफल यज्ञांग हेमदुग्धक । येह गूलर के नामहैं । गूलर शीतल रूखा भारी पित्त कफ रक्तकोजीतने वाला है ॥ ६९ ॥ और मधुर कसैला वर्णको अच्छा करनेवाला व्रणका शोधन रोपण है ॥ [अनन्तर कठिया गूलर । काको दुम्बरिका फलगु मल यूर्ज्ज घफला । येह कठियागूलर के नाम हैं ॥ कठिया गूलर स्तंभनकरनेवाला तिक्त शीतल कसैला है ॥७०॥ और कफ पित्त व्रण श्वित्र कुष्ठ पांडुरोग ववासीर कामला इनकोजीतना है ॥ [अथ पाकरि ।]

प्लक्षो जटीपर्क्करी च पर्क्कटी च स्त्रियामपि ॥ प्लक्षः
कषायः शिशिरो व्रणयोनि गदापहः ॥ ७१ ॥ दाह
पित्त कफास्रघ्नः शोथहा रक्तपित्त हृत् ॥
[अथ शिरीषः ।] शिरीषो भण्डिलो भण्डी भण्डीरश्च
कपीतनः ॥ शुकपुष्पः शुकतरु मृदुपुष्पः शुकप्रि-
यः ॥७२॥ शिरीषो मधुरोऽनुष्ण स्तिक्तश्च तुवरो
लघुः ॥ दोषशोथ विसर्पघ्नःकासव्रण विषापहः ॥७३

भा० अनन्तर पाकर ।] प्लक्ष जटी पर्क्करी फरकटी । येह पाकर के नाम हैं ॥ पाकर कसैला शीतल व्रण योनिरोग इनका नाशकहै ॥७१॥ और दाह पित्त कफ रक्त इनका नाशक शोथ नाशक रक्त पित्तको दूर करने वाला है ॥ [अनन्तर सिरीष । शिरीष भण्डिल भन्डि भण्डीर कांपनन

शुकपुष्प शुकतरु मृदुपुष्प शुकप्रिय । येह शिरीष के नाम हैं ॥७२॥
सिरस मधुर शीतल तिक्त कसैला हलका होताहै ॥ और दोष शोथ विसर्प इनका नाशक तथा कास व्रण इनका नाशक हैं विषका नाशक है ॥ ७३॥

[अथ क्षीरवृक्षः पञ्च वल्कल योर्लक्षणं गुणाश्च ।]

न्यग्रोधो दुम्बराश्वत्थ पारीषप्लक्ष पादपाः ॥ पञ्चै
ते क्षीरिणो वृक्षा स्तेषां त्वक् पञ्च वल्कलम् ॥ ७४॥
केचित्तु पारीषस्थाने शिरीषं वेतसं परे वदन्तीतिशेषः
। क्षीरवृक्षा हिमा वर्ण्या योनिरोग व्रणापहाः ॥ रू
क्षाः कषायामेदोघ्ना विसर्पामय नाशनः ॥७५॥
शोथ पित्त कफास्रघ्नाः स्तन्या भग्नास्थि योजका ।
त्वक् पञ्चकं हिमं ग्राहि व्रण शोथ विसर्प जित् ॥
७६ ॥ तेषां पत्रं हिमं ग्राह् कफवातास्र नुल्लघु ॥
विष्टम्भाध्मान जित् तिक्तं कषायं लघु लेखनम् ॥७७॥

भा० अनन्तर क्षीर वृक्ष ॥ पच वल्कलों का लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ बड़ गूलर पीपल पार्श्वपीपल पाकर ॥ पांच येह क्षीर वृक्ष हैं ॥ उनकी छाल पंचवल्कल हैं ॥७४॥ कोई पार्श्व पीपल को सिरी और कोई वेतस को कहतेहैं येह शेषहैं । क्षीर शीतल वर्णको अच्छा करनेवाले योनिरोग व्रण इनके नाशक हैं ॥ रूखे कसैले मेदके नाशक विसर्प रोगके नाशकहैं ॥७५॥ तथा शोथ पित्त कफ रक्त इनके नाशक दूधकरने वाले टूटे हाड़ को जोड़नेवाले हैं ॥ और पांचोंकी छाल शीतल क़ाबिज़ व्रण शोथ विसर्प इनको जीतने वाली हैं ॥ ७६॥ इनके पत्ते शीतल क़ाबिज़ कफ वातरक्त के नाशक हलके होतेहैं ॥ और विष्टंभ आध्मान इनको जीतने वाले तिक्त कसैले लेखन हैं ॥७७॥

[अथ शालः ।]

शालस्तु सर्जकार्श्याश्वकर्णिका शस्य सम्बरः ॥

अश्वकर्णः कषायः स्याद् व्रणस्वेद कफ कृमीन्
॥७८॥ व्रध्म विद्रधि बाधिर्य्य योनिकर्ण गदान्
हरेत् ॥ [अथ शालभेदः।] सर्ज्जकोऽजक क
र्णः स्याच्छालो मरिचपत्रकः॥ अजकर्णः कटु
स्तिक्तः कषायोष्णो व्यपोहति ॥७९॥ कफ पा
ण्डु श्रुति गदान् मेह कुष्ठ विषव्रणान् ॥

भा० अनन्तर शाल ॥ शाल सर्ज कार्श्य अश्वकर्णिका शस्य शम्बर येह सालके नामहैं ॥ साल कसैला होता है और व्रण स्वेद कफ कृमि ॥ ७८ ॥ वद विद्रधी वहरापन योनिरोग कर्णरोग इनको नाश करताहै ॥ [दूसरा शालभेद। स र्जक अजकर्ण शालमरिच पत्रक येह शाल भेदके नामहैं ॥ दूसरा शाल कडुवा तिक्त कसैला उष्ण होता है और ॥७९॥ कफ खुजली कर्णरोग प्रमेह कुष्ठ विष व्रण इनको नाश करता है ॥

अथ शालई।] शाल्लकी गज भक्ष्या च सुवहा सुर-
भी रसा ॥ महेरुणा कुन्दुरुकी वल्लकी च बहुस्रवा
॥८०॥ शाल्लकी तुवरा शीता पित्त श्लेष्मातिसार
जित् ॥ रक्तपित्त व्रणहरी पुष्टिकृत् समुदीरिता ॥८१॥

भा० अनन्तर सलेई ॥ शाल्लकी गजभक्षा सुवहा सुरभिरसा ॥ महेरुणा कुन्दुरुकी वल्लकी बहुश्रुवा ॥८०॥ येह सलई के नाम हैं ॥ सरई कसैली शीतल पित्त कफ अतिसारको जीतनेवाली रक्त पित्त व्रण इनको नाश करनेवाली पुष्टिको करनेवाली कहीगईहै ॥८१॥

[अथ शीसव।] कपिलवर्णा शीसव।]
शिंशिपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा च सा गुरुः।
कपिला सैव मुनिभिर्भस्मगर्भेति कीर्त्तिता ॥८२॥
शिंशिपा कटुका तिक्ता कषाया शोष हारिणी ॥

ओरि मेदक । येह दुर्गन्ध खैर के नाम हैं ॥ दुर्गन्ध खदिर कसैला गरम मुखदंत के रोग रक्त इनको जीतने वाला है ॥ ६१॥ और खुजली विष कफ कृमि कुष्ठ विष व्रण इनको नाश करता है ॥

[अथ रोहितकः।] रोहीतको रोहित को रोही दाडिमपुष्पकः॥ रोहीतकः प्लीह घाती रुच्यो रक्त प्रसाधनः ॥ ६२॥ [अथ बबूल।] बबूलः किङ्किरातः स्यात् किङ्किराटः सपीतकः॥ स एव कथित स्तज्ज्ञै राभाषपद मोदिनी ॥ ६३॥ बब्बूलः कफनुद् ग्राही कुष्ठ कृमि विषापहः॥

[अथ रीठा।] अरिष्टकस्तु माङ्गल्यः कृष्णा वर्णोऽर्थ साधनः॥ रक्तबीजः पीतफेनः फेनिलो गर्भपातनः ॥ ६४ ॥

भा० अनन्तर रोहितक इस्से अनारकेसे फूल होते हैं ॥ रोहितक रोहीतक रोही दाड़िमपुष्पक। येह रोहिके नाम हैं ॥ रोही पिलहीकोनाश करनेवाली रुचिको करनेवाली रक्तको स्वच्छ करनेवालीहै ॥ ६२॥
अनन्तर कीकर ॥ बबूल किंकरात किंकराट सपीतक ॥ येह बबूल के नाम हैं ॥ वसीको उसके जाननेवालोंने आभाषपद मोदनी । ऐसाकहाहै ॥ ६३ ॥ कीकर कफनाशक काबिज़ कुष्ठ कृमि इनका नाशकहै ॥
अनन्तर रीठा ॥ अरिष्टक मांगल्य कृष्णवर्ण अर्थसाधन ॥ रक्तबीज पीतफेन फेणिल गर्भपातन । येह रीठेके नामहैं ॥ ६४॥

[अथ पितौजिआ।] पुत्रजीवो गर्भकरो यष्टीपुष्पोऽर्थसाधकः॥ पुत्रजीवो गुरुर्वृष्यो गर्भदः श्लेष्म वातहृत ॥ ६५॥ सृष्ट मूत्रमलो रूक्षो हिमः स्वादुः

पटु:कटु:॥ [अथ इङ्गुदी।] इङ्गुदीऽङ्गार वृक्ष
श्च तिक्तकस्तापसद्रुम:॥ इङ्गुद:कुष्ठ भूतादि
ग्रह व्रण विष क्रमीन्॥ ९६॥ हन्त्युष्ण: श्वित्र
शूलघ्न: स्तिक्तक:कटु पाकवान्॥

भा॰ अनन्तर पुत्रजीवा के नाम॥ पुत्रजीव गर्भकर यष्टीपुष्प अर्थसाध
क। येह पुत्रजीवाके नामहैं॥ पुत्रजीवा भारी शुक्रको उत्पन्न करनेवाली।
गर्भकेकरनेवाली रूखी शीतल मधुर नमकीन कड़वी होती है॥ गर्भको
करने वाली कफ की नाशक है॥ ९५॥ [अनन्तर हिंगोट।]
इंगुद अंगारवृक्ष तिक्तक तपसद्रुम येह हिंगोटके नाम हैं॥ हिंगोट कुष्ठ
भूतादि ग्रह व्रण विष क्रमि इनको नाश करता है॥ ९६॥ और उष्णहै त-
था श्वित्र शूलका नाशक तिक्त कटु पाकवाला है॥

[अथ जिङ्गिनी।] जिङ्गिनी भिङ्गिनी भिङ्गीसु-
निर्य्यासा प्रमोदिनी॥ जिङ्गिनी मधुरा सोष्णा क
षाया व्रण शोधिनी॥ ९७॥ कटुका व्रण हृद्रोग
वातातीसार हृत्पटु:॥ तमाल: शाल वद्देयो दा-
ह विस्फोट हृत्पुन:॥ ९८॥

भा॰ अनन्तर जिंगनीके नाम॥ जिंगनी भिंगिनी भिंगी सुनिर्य्यासा
प्रमोदनी येह जिंगनीके नामहैं॥ जिंगनी मधुर कुछ गरम कसैली
व्रण शोधकहै॥ ९७॥ और कड़वीहै तथा व्रण हृदरोग वातातिसा
र इनकी नाशक नमकीन होतीहै॥ तमाल और सालके सदृश वृक्ष
को जानना चाहिये और दाह विस्फोट के नाशक होती है॥ ९८॥

[अथ तूणि।]
तूणी स्तुन्नक आपीनस्तुणिक:कच्छकस्तथा॥
कठिक:कान्तलकोनन्दि वृक्षश्च नन्दक:॥ ९९॥

उष्णवीर्य्या हरेन्मेदः कुष्ठ श्वित्र वमि क्रिमीन्॥
॥८३॥वस्तिरुग्व्रणदाहास्त्र बलासान् गर्भपातिनी

भा० अनन्तर शीशम॥ और कपिलवर्ण शीशम। शिंशिपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा। येह शीसमकेनामहैं। और वोह भारीहोताहै॥ कपिला भस्मगर्भा ऐसा मुनियोंने उसीकोकहाहै॥८२॥ शीशम कड़वा तिक्त कसैला शोषनाशक॥उष्णवीर्य्य होताहै और मेद कुष्ठ श्वित्र वमन कृमि इनको नाश करताहै॥८३॥ और पेडूकी पीड़ा व्रण दाह रक्त कफ इनको भीनाशकरताहै॥ और गर्भका गिरानेवालाहै॥

[अथ कोह।] ककुभोऽर्जुन नामाख्यो नदीसर्ज्जश्च कीर्त्तितः॥ इन्द्रद्रुर्वीर वृक्षश्च वीरश्च धवलःस्मृतः।
॥८४॥ ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षय विषास्त्रजित्॥ मेदो मेह व्रणान् हन्ति तुवरः कफ पित्त हृत॥८५॥

भा० अनन्तर अर्जुन वृक्ष॥ ककुभ अर्जुननामाख्य नदीसर्ज॥इन्द्रद्रु वीरवृक्ष,वीर,धवल, येह अर्जुन वृक्षके नाम कहेहैं॥८४॥ अर्जुन शीतल हृद्य क्षत क्षय विषरक्त इनकोजीतनेवालाहै॥ और मेद प्रमेह व्रण इनको नाश करताहै और कसैलाहै तथा कफ पित्तका नाशक है॥८५॥

[अथासन विजयसार इति च।] बीजकः पीतसारश्च पीतशालक इत्यपि॥ बन्धूक पुष्पः प्रियकः सर्ज्जक आसनः स्मृतः॥८६॥ बीजकः कुष्ठ वीसर्प श्वित्र मेह गुद क्रिमीन्॥ हन्ति श्लेष्मास्त्र पित्तञ्च त्वच्यः केश्यो रसायनः॥८७॥

भा० अनन्तर आसन और विजयसार भी कहते हैं॥बीजक,पीतसार पीतशालक,बन्धूकपुष्प, प्रियकसरजक आसन येह विजयसारके नामहैं॥८६॥ विजयसार कुष्ठ विसर्प श्वित्र प्रमेह गुद कृमि इनको नाश

करताहै ॥ श्रौर कफ रक्त पित्तको भी नाशकरताहै ॥ तथा त्वचाका हित केश कां हित रसायनहै ॥ ८७ ॥

[अथ खदिर ।]

खदिरो रक्त सारश्च गायत्री दन्तधावनः ॥ कण्ठकी बाल पत्रश्च बहु शल्यश्च यज्ञियः॥ ८८॥ खदिरः शीतलो दन्त्यः कण्डु कास रुचिप्रणुत् ॥ तिक्त कषायो मेदोघ्नः कृमिमेह ज्वर व्रणान् ॥ ८९॥ श्वित्र शोथाम पित्तास्र पाण्डु कुष्ठ कफान् हरेत् ॥

भा० अनन्तर खैर । खदिर रक्तसार गायत्री दन्तधावन ॥ कन्टकी बालपत्र बहुशल्य यज्ञीय येह खैरके नामहैं ॥ ८८ ॥ खैर शीतल दान्तको अच्छाकरनेवाला कन्डू कास अरुचि इनका नाशक ॥ तिक्त कसैला मेदका नाशक कृमि प्रमेह ज्वर व्रण ॥ ८९ ॥ शोथ आम रक्त पित्त पांडुरोग कुष्ठ कफ इनको नाश करता है ॥

[अथ श्वेत खदिर पपरी खयर इतिच ।] खदिरः श्वेत सारोऽन्यः कदरः सोम वल्कलः ॥ कदरो विशदो वर्ण्यो मुखरोग कफास्र जित् ॥ ९० ॥

[अथ इरिमेद दुर्गन्ध खदिर इति च ।] इरिमेदो विट् खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदकः ॥ इरिमेदः कषायोष्णो मुखदन्त गदास्र जित् ॥ ९१ ॥ हन्ति कण्डू विषश्लेष्म कृमि कुष्ठ विष व्रणान् ॥

भा० अनन्तर सुफ़ेद कात्था जिस्को पपड़ी खैर कहतेहैं ॥ खदिर स्वेतसार कद सोमवल्कल । येह पपड़ी खैरके नाम हैं ॥ पपड़ीखैर विशद वर्णको अच्छा करनेवाला मुखरोग कफ रक्त इनको जीतनेवाला ॥ ९० ॥ अनन्तर इरिमेद अर्थात् दुर्गन्धखैर ॥ इरिमेद, विट्खदिर कालस्कन्ध,

तुणिरक्तः कटुः पाके कषायो मधुरो लघुः॥ तिक्तो ग्राही हिमो वृष्यो व्रण कुष्ठास्र पित्त जित्॥२००॥

अथ भूर्जपत्र।] भूर्जपत्रः स्मृतो भूर्ज चर्म्मी बहुल वल्कलः॥ भूर्ज्जो भूतग्रह श्लेष्म कर्णरुक् पित्त रक्त जित्॥२०१॥ कषायो राक्षसघ्नश्च मेदो विष हरः परः॥

भा॰ अनन्तर तुन॥ तुणि तुन्नक आपील तुणिक कच्छक॥ कुठरक कान्तलक नन्दीवृक्ष नन्दक येह तुनके नामहैं॥१९९॥ तुन पाकमें कड़वा कसैला मधुर हलका होता है॥ और तिक्त ग्राहि शीतल शुक्रको उत्पन्न करनेवाला व्रण कुष्ठ रक्त इनकोजीतनेवालाहै॥२००॥
अनन्तर भोजपत्र।] भूर्जपत्र भूर्ज चर्म्मी बहुलवल्कल। येह भोजपत्र के नामहैं॥ भोजपत्र भूत ग्रह कफ कर्णपीड़ा पित्तरक्त इनकोजीतनेवाला है॥ २०१॥ और कसैला राक्षस का नाशक मेद विषका नाशक है॥

अथ पलाश।] पलाशः किंशुकः पर्णो यज्ञियो रक्त पुष्पकः॥ क्षार श्रेष्ठो वात हरो ब्रह्म वृक्षः समिद्वरः॥२०२॥ पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णो व्रण गुल्म जित्॥ कषायः कटुक स्तिक्तः स्निग्धो गुदजरोग जित्॥२०३॥

हर य

भा॰ अनन्तर पलाश॥ पलाश किंशुक पर्णि यज्ञी रक्तपुष्प क्षारश्रेष्ठ वातें ब्रह्मवृक्ष समिद्वर॥ येह पलाशके नामहैं॥ पलाशदीपन शुक्रकोउत्पन्न करनेवाला सर॥२०२॥ उष्णहै। और व्रण वायगोला इनको जीतने वाला है॥ तथा कसैला कड़वा तिक्त चिकना गुदाके रोगोंको जीतनेवाला।३।

भग्न सन्धान कृद्दोष ग्रहण्यर्श कृमीन् हरेत्॥
तत्पुष्पं स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम्।२०४

वातलङ्कफ पित्तास्र कृच्छ्र जिद् ग्राहि शीतलम् ॥ तृड् दाह शमकं वात रक्त कुष्ठ हरम्परम् ॥ १०५॥ फलं लघूष्णं मेहार्श क्रमि वात कफापहम् ॥ विपाके कटुकं रूक्षं कुष्ठ गुल्मोदर प्रणुत ॥१०६॥ [अथ शाल्मलिः।] शाल्मलिस्तु भवेन्मोचा पिच्छिला पूरणीति च ॥ रक्तपुष्पा स्थिरायुश्च कण्टकाढ्या च तूलिनी ॥१०७॥ शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी ॥ श्लेष्मला पित्त वातास्र हारिणी रक्त पित्तजित् १०८

भा० टूटेहुवे हाड़को जोड़नेवाला और संग्रहणी ववासीर क्रमि इनको नाश करता है। उस्का पुष्प पाकमें मधुर कड़वा तिक्त कसैला होता है। ॥ १०४॥ तथा वातको करनेवाला कफ रक्त पित्त मूत्रकृच्छ्र इनकोजीतनेवाला क़बिज़ शीतल होताहै। और तृषा दाह का शमन करने वाला अत्यन्त वातरक्त और कुष्ठ इनका नाशक है ॥१०५॥ उस्का फल हलका उष्ण होता है और प्रमेह ववासीर क्रमि वात कफ इनका नाशक है॥ विपाक में कटु रूखा होताहै ॥तथा कुष्ठ वायगोला उदररोग इनका नाशक है ॥१०६॥ अनन्तर सेमल। शाल्मली मोचा पिच्छिल पूरणी ॥ रक्तपुष्पा स्थिरायु कण्टकाढ्या तूलिनी येह सेमलके नाम हैं ॥ १०७ ॥ सेमल शीतल रसमें और पाकमें मधुर रसायनी कफको करनेवाली पित्तवातरक्त की नाशक रक्तपित्त कोजीतनेवालीहै ॥ १०८

अथ मोचरसः।] निर्य्यासः शाल्मलेः पिच्छा शाल्मली वेष्टकोऽपि च ॥ मोचास्रावो मोचरसो मोचनिर्य्यास इत्यपि ॥१०९॥ मोचास्रा-

हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः ॥ प्रवाहि
कातिसाराम कफपित्तास्र दाहनुत् ॥ ११० ॥
[अथ कूठ शाल्मलिः।] कुतसितः शाल्मलिःप्रो
क्तो रोचनः कूटशाल्मलिः ॥ कूठ शाल्मलिक
स्तिक्तः कटुकः कफवातनुत् ॥ १११ ॥ भेद्युष्णः
प्लीह जठरः यकृद् गुल्म विषापहः ॥ भूलाना-
ह विवन्धास्र मेदः शूल कफापहः ॥ ११२ ॥

भा० मोचरस येह सेमल का गोंदहै ॥ पिच्छा शाल्मली वेष्टक। मोचा
स्राव मोचरस मोच निर्यास येह मोचरसके नाम हैं ॥१०९॥ मोचरस,
शीतल क़ाबिज़ चिकना शुक्रको उत्पन्न करनेवाला कसैला होताहै ॥ औ
रप्रवाहिका अतिसार आम कफ रक्त पित्त इनको नाश करनेवालाहे ॥
११०॥ अनन्तर कूठ शाल्मलि ॥ कुतसिता शाल्मली रोचन कूट
शाल्मली। येह कूट शाल्मली के नामहैं। कूट सेमल तिक्त कटु कफ वा-
तनाशक ॥१११॥ भेदन करनेवाली उष्ण होती है और पिलही उदररोग य-
कृत वायगोला विष इनकी नाशकहै। और भूत अफारा विवन्ध रक्त
भेद शूलकफ इनकी नाशक है ॥ ११२ ॥

[अथ धवः।]

धवो धटो नन्दि तरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः ॥ धवः
शीत प्रमेहर्शः पाण्डुतिक्त कफापहः ॥११३॥
मधुरस्तुवर स्तस्य फलञ्च मधुरं मनाक् ॥
अथ धामिन।] धन्वङ्गस्तु धनुर्वृक्षो गोत्रवृक्षः
सुतेजनः ॥ धन्वङ्गः कफ पित्तास्र कासहृत्तुव
रो लघुः ॥ ११४ ॥ वृंहणो बलकृद्रूक्षः सन्धि

कृत्व्रणरोपणः ॥ [अथ करीर।]
करीरः क्रकरो पत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः ॥
करीरः कटुकस्तिक्तः स्वद्युष्णो भेदनः स्मृतः ॥२१५
दुर्नाम कफवातामगरशोथव्रणप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर धव ॥ धवन्धितरु स्थिर गौर धुरंधर ॥ येह धवके नाम हैं ॥ धव शीतल प्रमेह ववासीर पाण्डु पित्तकफ इनका नाशक है ॥२१३ ॥ मधुर कसैला होता है उस्का फल कुछ मधुर होता है ॥
अनन्तर धामिन ॥ धन्वंग धनुर्वृक्ष गोत्रवृक्ष सुतेजन ॥ येह धामिन के नामहैं ॥ धामिन कफ रक्त पित्त कास इनको नाश करने वाली हलकी होतीहै ॥ और पुष्ट बलको करनेवाली रूखी संधीको करनेवाली घावकोभर लानेवाली है ॥ अनन्तर करील । करीर क्रकर पत्र ग्रन्थिल मरुभूरुह । येह करीर के नाम हैं। करील कडुवा तिक्त पसीना लानेवाला उष्ण भेदन कहागया है ॥ २१५ ॥ और ववासीर कफ वात आम विष शोथ व्रण इनका नाशक है ॥

[अथ सहोरा।] शाखोटः पीतकलको भूतावासः स्वरच्छदः ॥ शाखोटो रक्तपित्तार्शो वातश्लेष्मातिसारजित् ॥२१६॥ [अथ वरुणः।]
वरुणो वरुणः सेतुस्तिक्त शाकोऽग्निदीपनः ॥
कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रूक्षको लघुः ॥२१७॥

भा० अनन्तर सहोरा ॥ शाखोट पीतकलक भूतावास स्वरच्छद येह सहोराके नामहैं । सहोरा रक्तपित्त ववासीर वात कफ अतीसार । इनकोजीतनेवाला है ॥ २१६॥ [अनन्तर वरना । वरुण,वारुण,सेतु तिक्तशाक येह वरुण के नाम हैं ॥ वरुण अग्निदीपन कसैला मधुर तिक्त कडुवा रूखा हलका होताहै ॥

[अथ कदंभी।]

कदंभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणुः कदम्बरः ॥

कट्भीतु प्रमेहार्शः नाड़ी व्रण विष कृमीन् ॥
॥२२७॥ हन्त्युष्णा कफ कुष्ठघ्नी कटू रूक्षा च की
र्त्तिता ॥ तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात् कफ शु
क्र हृत् ॥२२८॥

भा० अनन्तर कट्भि ॥ कट्भी स्वादपुष्प मधुरेणु कटम्भर । यह कट्भी के नामहैं ॥ येह मालकंगनी की क़िस्म से है ॥ कट्भि प्रमेह बवासीर नाड़ी व्रण विष कृमि इनको नाश करती है ॥ २२७ ॥ और उष्ण होती है तथा कफ कुष्ठ की नाशक कड़वी रूखी कही गई है ॥ इस्का फल कसैला जानना चाहिये विशेषकरके कफ शुक्र का नाशक है ॥ २२८ ॥

[अथ मोक्ष पलाशवत् पर्वत वृक्षः।] मोक्षस्तु
मोक्षको ऽपि स्याद्गोलीढ गोलि हस्तथा ॥ क्षार
श्रेष्ठः क्षार वृक्षो द्विविधः श्वेत कृष्णकः ॥२२९॥
मोक्षकः कटु कस्तिक्तो ग्राह्युष्णः कफ वात हृत् ॥
विषमेदो गुल्म कण्डू वस्ति रुक्कृमि शुक्रनुत् ॥२३०

भा० अनन्तर मोक्ष अर्थात् घंटा पाटला ॥ येह लोधकी क़िस्मसे होता है । इस्के पत्ते पलास के से होते हैं और पहाड़ी दरख़्त है ॥ मोक्ष मोक्षक गोलीढ गोलिः क्षारश्रेष्ठ क्षारवृक्ष येह घंटा पाटला के नाम हैं ॥ येह दो प्रकार का होता है काला और सुफ़ेद ॥ २२९ ॥ घंटा पाटल कड़वा तिक्त क़ाबिज़ उष्ण कफ वात का नाशक है । और विष मेद वायगोला खुजली वस्तिकी पीड़ा और कृमि शुक्र का नाशक है ॥ २३० ॥ [अथ जल सिरषि-
टिंटिणि इति च।] शिरिषिका टिरिटरिणका दुर्व
लाम्बु शिरीषिका ॥ त्रिदोष विष कुष्ठार्शो हरी
वारि शिरीषिका ॥ २३१ ॥ [अथ शमी।]

शमी शक्तु फला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ॥ मङ्गल्या च तथा लक्ष्मी शमीरः साल्पिका स्मृता ॥ २२२॥ शमी तिक्ता कटुः शीता कषाया रेचनी लघुः॥ कफ कास भ्रम श्वास कुष्ठार्शः क्रिमि जित् स्मृता ॥ २२३॥

भा० अनन्तर सिरीश ॥ इसको टिंटणी भी कहते हैं। शिरसीका टिंटिणिका दुर्बला, अंबुशिरीष का। येह जल शिरीष के नाम हैं ॥ जल-सिरीष त्रिदोष विष कुष्ठ बवासीर इनको नाश करनेवाली है ॥ २२१॥ अनन्तर शमी ॥ शमि शक्तफला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ॥ मंगल्या लक्ष्मी शमीर साल्पिका येह शमि के नाम हैं ॥ २२२ ॥ शमि कडवी तिक्त शीतल कसैली दस्तावर हलकी होती है ॥ और कफ कास भ्रम श्वास कुष्ठ बवासीर क्रमि इनको जीतने वाली कही गई है ॥ २२३॥

अथ छितिवन।] सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः ॥ सप्तपर्णो व्रणश्लेष्म वात कुष्ठास्र जन्तु जित् ॥ २२४॥ दीपनः श्वासगुल्मघ्नः स्निग्धोष्णः स्तुवरः सरः ॥

अथ तिनिशः तिरिच्छ इति च।] तिनिशः स्यन्दनो नेमी रथद्रुर्वञ्जुलस्तथा ॥ तिनिशः श्लेष्म पित्तास्र मेदः कुष्ठ प्रमेह जित् ॥ २२५॥ तुवरः श्वित्रदाहघ्नो व्रण पाण्डु क्रमि प्रणुत् ॥ ल

भा० अनन्तर छितवन ॥ सप्तपर्ण विशालत्वक् शारद विषमच्छद येह छितवन के नाम हैं ॥ छितवन व्रण कफ वात कुष्ठ रक्त जन्तु इनको जीतता है ॥ २२४ ॥ और दीपन श्वास गोला इनका नाशक चिकना उष्ण कसैला सर है ॥ अनन्तर तिनीश। इसको तिरिछ भी कहते हैं

तिनिस स्पंगन नेमी रथद्रुह वञ्जुल येह तिनीश के नाम हैं ॥ तिनीश कफ रक्त पित्त मेद कुष्ठ प्रमेह इनको जीतने वाला है ॥ १२५॥ और कसैला व्रिन दाह का नाशक व्रण पांडु कृमि इनकाभी नाशक है ॥

अथ भुइसहा।] भूमीसहो द्वार दारु नरिदारुः स्वरच्छदः ॥ भूमीसहस्तु शिशिरो रक्त पित्त प्रसादनः ॥१२६॥

इतिश्री भावप्रकाशे वटादिवर्गः ॥ ※ ॥

भा० अनन्तर भुईसहा ॥ भूमिसहो द्वारदारु नरिदारु स्वरच्छद। येह भुइसहा के नाम हैं ॥ भुइसहा शीतल रक्तपित्त को अच्छा करनेवाला है ॥ १२६ ॥ इति भावप्रकाशे वटादि वर्गः ॥ ※ ॥

अथाम्रादि, फलवर्गः ॥ तत्रादावाम्रस्य नामानि गुणाश्च।] आम्रः प्रोक्तो रसालश्च सहकारोऽति सौरभः ॥ कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः पिकवल्लभः ॥ १२७॥ आम्रपुष्पमतीसारं कफ पित्त प्रमेह नुत् ॥ असृग्दुष्टि हरं शीतं रुचि कृद् ग्राहि वातलम् ॥ १२८ ॥

भा० आम्रादि फलवर्गः॥ उसमें पहले आम्रके नाम और गुणको कहते हैं ॥ आम्र रसाल सहकार अतिसौरभ ॥ कामांग मधुदूत माकंद पिकवल्लभ येह आमके नाम हैं ॥ १२७॥ आम्रका पुष्प अतिसार कफ पित्त प्रमेह इनका नाशक है। और दुष्टरक्त का नाशक शीतल रुचिकरनेवाला काबिज़ वात की करनेवाला है ॥ १२८ ॥

आम्रं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुत पित्तकृत्

तरुणन्तु तदत्यम्लं रूक्षं दोषत्रयास्रकृत् ॥१२९॥
आम्रमामं त्वचाहीन मातपेऽति विशोषितम् ॥
अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफ वातजित् १३०
पक्वन्तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बल सुख प्रदम् ॥ गुरु
वात हरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम् ॥ १३१ ॥
कषायानुरसं वन्हि श्लेष्म शुक्र विवर्द्धनम् ॥
तदेव वृक्षसम्पक्कं गुरुवात हरं परम् ॥ १३२ ॥
मधुराम्ल रसं किञ्चिद्भवेत् पित्त प्रकोपनम् ॥
आम्रं कृत्रिम पक्कञ्च तद्भवेत् पित्तनाशनम् ॥१३३
रसस्याम्लस्य हीनस्तु माधुर्य्याच्च विशेषतः ॥

भा० कैरी कसैली खट्टी रुचिको करनेवाली वात पित्तको करने वाली है ॥ और कच्चा आम अत्यन्त खट्टा रूखा होताहै तथा तीनों दोष और रक्त को करनेवाला है ॥ १२९ ॥ वेछिलके का कच्चा आम धूपमें सुखाया हुवा ॥ खट्टा मधुर कसैला होताहै ॥ और भेदन कफ वातको जीतने वालाहै ॥ १३० ॥ और पका हुवा मधुर शुक्रको उत्पन्न करने वाला चिकना बल सुखको देनेवाला है ॥ और भारी वात नाशक हृद्य वर्णको अच्छा करनेवाला शीतल पित्तको करनेवाला ॥ १३१ ॥ पीछेसे कसैला अग्नि काफ शुक्र इनको बढ़ानेवाला है ॥ और वोही वृक्षपर पकाहुवा भारी परम वातनाशक होता है ॥ १३२ ॥ और मधुर कुछेक खट्टा पित्तको करनेवालाहै ॥ अम्ल रससे हीन और अधिक मधुरता से वोह पालका पकाहुवा पित्त नाशक होताहै ॥ १३३ ॥ और रक्ताहुवा वोह परम रुचि को करनेवाला बलको देनेवाला शुक्र को उत्पन्न करने वाला हलका होता है ॥ १३४ ॥ उषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्य्य करं
लघु ॥ ३५ ॥ शीतलं शीघ्रपाकि स्या द्वातपित्त

हरं सरम् ॥ तद्रसो गालितो बल्यो गुरु वात हरः सरः ॥ २३५ ॥ अहृद्य स्तर्पणो ऽतीव बृंहणः कफ बर्द्धनः ॥ तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिर पाकि च ॥ २३६ ॥ मधुरं बृंहणं बल्यं शीतलं वात नाशनम् ॥ वात पित्त हरं रुच्यं बृंहणं बल बर्द्धनम् ॥ २३७ ॥ वृष्यं वर्ण करं स्वादु दुग्धाम्रं गुरु शीतलम् ॥ मन्दानलत्वं विषमज्वरञ्च रक्तामयं बद्ध गुदोदरञ्च ॥ आम्राति योगो नयनामयं वा करोतितस्मादति तानि नाद्यात् ॥ २३८ ॥ एतदम्लाम्र विषयं मधुराम्र परं नतु ॥

भा० और शीतल शीघ्र पाक वाला वात पित्तका नाशक सर होता है ॥ उसका निचोड़ा हुवा रस बलको देनेवाला भारी वात नाशक सर होताहै ॥ २३५ ॥ और हृद्य तर्पण और बहुत पुष्टिको करनेवाला कफका बढ़ाने वालाहै ॥ और उसका टुकड़ा भारी अत्यन्त रुचि का करने वाला बहुत काल में पाक होनेवालाहै ॥ २३६ ॥ और मधुर पुष्ट बलको करने वाला शीतल वात नाशक है ॥ दूध आम बात पित्त को करने वाला रुचिको करने वाला पुष्ट बलको बढ़ानेवाला ॥ २३७ ॥ शुक्रको उत्पन्न करनेवाला वर्णको करनेवाला मधुर भारी शीतल होता है ॥ बहुत आमका सेवन मन्दाग्नि विषमज्वर रक्त के रोग बद्ध गुदोदर ॥ औरनें रोग इनको करता है । इस वास्ते बहुत न सेवन करे ॥ २३८ ॥ यह खट्टे आम के विषय में कहा है नकि मधुर आमके विषय में ॥

मधुरस्य परं नेत्र हितंत्वाद्या गुणा यतः ॥ २३९ ॥ शुण्ठ्याम्भसो ऽनुपानं स्या दाम्राणा मतिभक्ष-

णे ॥ जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सहसौवर्चलेन च ॥२४९

[अथाम्रावर्त्तस्य लक्षणं गुणाश्च।] पक्वस्य सह

कारस्य पटे विस्तारितो रसः ॥ घर्म्मे शुष्को मुहु-

र्दत्त आम्रावर्त्त इति स्मृतः ॥ २५० ॥

अम्बवट इति लोके।

आम्रावर्त्तस्तृषाच्छर्दिवातपित्तहरः सरः ॥

रुच्यः सूर्य्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च स हि कीर्त्ति

तः ॥ २५१ ॥

भा॰ मधुर परम नेत्रको हित होता है ॥ क्योंकि पहले कहे हुवे गुणों से ॥ ॥ आम्रके अति भक्षणमें पीछेसे सोंठ और पानी पीवे अथवा जीरा और सोंचल नमक मिलाके पीवे ॥ २४९ ॥ अनन्तर अमवट के लक्षण और गुण ॥ पके हुवे आम के रसको कपडे पर फैलाके धूपमें सुखाया हुवा और फिर भी पुट दिये हुवेको आम्रावर्त्त ऐसा कहते हैं ॥ २५० ॥ और अमवट ऐसा लोकमें कहते हैं ॥ अम्बवट तृषा वमन वात पित्त इनका नाशक सर ॥ रुचिको करने वाला है और सूर्य्यकी किरणों के द्वारा पाक होने से वोह हलका कहा गया है ॥ २५१ ॥

[अथ कोइलीया।]

आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम्।

ईषदम्लञ्च मधुरं तथा हृदयदाहनुत् ॥ २५२ ॥

[अथ नवपल्लवः।] आम्रस्य पल्लवं रुच्यं कफपित्त

विनाशनम् ॥

भा॰ अनन्तर आमकी गुठली ॥ आम की गुठली कसैली और वमन अतीसार की नाशक कुछ खट्टी मधुर तथा हृदय दाह की नाशक ॥ २५२ ॥ अनन्तर आम के नवीन पत्ते ॥ आमके पत्ते रुचिको करने वाले कफ पित्त

के नाशक हैं ॥ [अथ अम्बरा।]

आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाम्रः कपीतनः ॥ आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृत्सरम् ॥ २५३॥ पक्वन्तु तुवरं स्वादु रसेपाके हिमं स्मृतम् ॥ तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि वृंहणम् ॥ २५४॥ गुरु बल्यम्म रुत्पित्त क्षतदाह क्षयास्त्र जित् ॥

भा० अनन्तर अम्बाडा। आम्रातक पीतन मर्कटाम्र कपीतन। यह अम्बाडे के नामहैं। अम्बाडा खट्टा बातनाशक भारी गरम रुचिको करनेवाला सर है ॥ २५३॥ पक्का कसैला पाक रसमें मधुर और शीतल कहाहै ॥ तर्पण कफको करनेवाला चिकना शुक्रको उत्पन्न करनेवाला विष्टम्भि पुष्टहै ॥ २५४ तथा भारी बलके हितहै और वात पित्त क्षत दाह क्षयरक्त इनकोजीतने वाला है ॥

[अथ राजाम्रः।] राजाम्रष्टङ्क आम्रातः कामाह्वो राजपुत्रकः ॥ राजाम्रस्तुवरं स्वादु विशदं शीतलं गुरु ॥ २५५॥ ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्म वात कृत्कफ पित्तनुत् ॥

[अथ कोशाम्र कोशम्भ इति च।] कोशाम्र उक्तः क्षुद्राम्रः कृमि वृक्षः सुकोशकः ॥ कोशाम्रः कुष्ठशोथास्त्र पित्त व्रण कफापहः ॥ २५६॥ तत्फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोऽस्त्रं गुरु पित्तलम् ॥ पक्वन्तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत् ॥ २५७॥

भा० अनन्तर राजाम्र।] राजाम्र, टङ्क, आम्रात कामाव्ह राजपुत्रक। ये ह कसैला मधुर विशद शीतल भारी ॥ २५५॥ काविज़ रूखाहै और विब-

न्थ आध्मान वात इनको करनेवाला और कफ पित्तका नाशक है ॥
अनन्तर कोशाम्र इसको कोशम्भ भी कहते हैं ।] कोशाम्र क्षुद्राम्र कमिवृक्ष सुकोशक । यह कोशाम्र के नामहैं ॥ कोशम्भ रक्त पित्त कुष्ठ सूजन व्रण कफ । इनको दूर करने वाला है ॥ १४६॥ उस्का फल क्राबिज वात नाशक खट्टा और पाकमें भी खट्टा होता है । भारी पित्तको करनेवाला है । तथापका हुवादीपन रुचिको करनेवाला हलका उष्ण कफ वात का नाशक है ॥ १४७॥

[अथ कटहर ।] पणशः कण्टकिफलः पणसोऽति वृहत् फलः ॥ पणशं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानि लापहम् ॥ १४८॥ तर्पणं वृंहणं स्वादु मांसलं श्ले ष्मलं भृशम् ॥ वल्यं शुक्र प्रदं हन्ति रक्त पित्त क्षतव्रणान् ॥ १४९॥ आमन्तदेव विष्टम्भि वातल न्तुवरं गुरु ॥ दाह कृत् मधुरं बल्यं कफ मेदो विवर्द्धनम् ॥ १५०॥ पणसोद्भूत बीजानि वृष्याणि मधुराणिच ॥ गुरूणि बद्ध विट्कानि सृष्ट मूत्राणि संवदेत् ॥ १५१॥

भा० अनन्तर कटहर ।] पणश कंटकी फल पणस अति वृहत् फल यह कटहल के नाम हैं ॥ कटहल शीतल और पका हुवा चिकना पित्त वातका नाशक है ॥ १४८ ॥ तृप्तिको करनेवाला पुष्ट मधुर मांसको करनेवाला और अत्यन्त कफ को करनेवाला है ॥ तथा बलको करनेवाला और शुक्र को करनेवाला है । रक्त पित्त क्षत व्रण इनको नाश करता है ॥ १४९॥ वोही कच्चा विष्टम्भ करनेवाला वातल कसैला भारी है ॥ और दाहको करने वाला मधुर बलके हित कफ मेद का बढाने वाला है ॥ ५०॥ कटहल के बीज शुक्र को उत्पन्न करने वाले मधुर हैं ॥ और भारी मलको रोकने वाला तथा मूत्रको करनेवाले हैं ॥ १५१॥

अन्यच्च ।

सञ्ज्ञा पणस जो वृष्यो वात पित्त कफापहः ॥

विष्टम्भात्पनसो वर्ज्यः गुल्मिभिर्मन्दवन्हिभिः॥ २५२॥

[अथ बड़हर।]

लकुचः क्षुद्र पनसो लकुचोडहु इत्यपि॥ आमं लकुचमुष्णञ्च गुरु विष्टम्भकृत्तथा॥ २५३॥ मधुरञ्च तथाम्लञ्च दोषत्रितय रक्तकृत्॥ शुक्राग्नि नाशनं चापि नेत्रयोरहितं स्मृतम्॥२५४॥ सुपक्वन्तु मधुरमम्लञ्चानिल पित्त हृत्॥ कफ वन्हि करं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकञ्च तत्॥ २५५॥

भा० कटहल की गिरी शुक्र को करनेवाली वात पित्त कफ की नाशक है॥ विशेष करके वायगोला वाले और मन्दाग्निवाले कटहल को न सेवन करें। ॥ २५२॥ अनन्तर बड़हर॥ लकुच क्षुद्रपनस लकुचोडुह। इतने नाम बड़हर के हैं॥ कच्चा बड़हल गरम भारी विष्टम्भ को करने वाला है॥ २५३॥ और मधुर तथा खट्टा तीनों दोषों को और रक्त को करनेवाला है॥ और शुक्र तथा अग्नि का नाशन और नेत्रों के अहित कहा है॥ २५४॥ और अच्छे प्रकार पकाहुआ खट्टा और मीठा होता है तथा वात पित्त को नाश करने वाला है। और कफ अग्निको करनेवाला रुचिके हित शुक्रको करने वाला और विष्टम्भक है॥ २५५॥

[अथ कदली।] कदली वारणा मोचाम्बुसारां शुमती फला॥ मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफ नुद् गुरु॥ २५६॥ स्निग्धं पित्तास्र तृट् दाह क्षत क्षय समीरजित्॥ पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यञ्च बृंहणम्॥ २५७॥ क्षुत्तृष्णा नेत्र गद हन्मेहघ्नं रुचि मांस कृत्॥

माणिक्य मर्त्या मृत जम्यकाद्या भेदाः कदल्याः

बहवोऽपि सन्ति ॥ उक्ता गुणास्ते ह्यधिका भवन्ति निर्दोषता स्याल्लघुता च तेषाम् ॥ १५८ ॥

भा० अनन्तर केला । कदली वारणा मोचा अम्बुसरा अंशुमती फला । येह केले के नाम हैं ॥ केला मधुर शीतल विष्टंभकरनेवाला कफ नाशक भारी है ॥ १५६ ॥ और चिकना पित्त रक्त तृषा दाह का नाशक और क्षत क्षय वात इनको जीतने वाला है ॥ पका हुवा शीतल मधुर और पाक में मधुर शुक्र को करनेवाला और पुष्ट है ॥ १५७ ॥ क्षुधा तृषा नेत्र रोग इनका नाशक प्रमेह का नाशक और रुचि मांस को करनेवाला है ॥ माणिक्य मर्त्य अमृत चंपक आदि केले के बहुत भेद हैं । उनमें येह कहे हुवे गुण अधिक हैं ॥ और उनमें निर्दोषता तथा लघुता है ॥ १५८ ॥ मे

[अथ गुरुभीहं भुकुर इति च ।] चिर्भिट धेनुदुग्धञ्च तथा गोरक्ष कर्कटी ॥ चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्त कफापहम् ॥ १५९ ॥ अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि पक्कं तूष्णञ्च पित्तलम् ॥

भा० अनन्तर भुकुर ॥ चिरभिट धेनुदुग्ध गोरक्ष कर्कटी ॥ येह भुकुर के नाम हैं ॥ भुकुर मधुर रूक्ष पित्त कफ का नाशक भारी है ॥ १५९ ॥ और उष्ण काबिज़ विष्टम्भि है और पका हुवा उष्ण तथा पित्त को करने वाला है

[अथ नारिकेल ।] नारिकेरो दृढफलो लाङ्गली कूर्च्चशीर्षकः ॥ तुङ्गस्कन्धफलश्चैव तृणराजः सदाफलः ॥ १६० ॥ नारिकेरफलं शीतं दुर्जरं बस्तिशोधनम् ॥ विष्टम्भि बृंहणं बल्यं वात पित्तास्र दाह नुत् ॥ १६१ ॥ विशेषतः कोमल नारिकेरं निहन्ति पित्तज्वर पित्तदोषान् ॥ सदैव जीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग

निलापहम् ॥ तेषु यच्चाम्लमधुरं सक्षारञ्च रसा इवेत् ॥ २६७ ॥ रक्तपित्त करन्तत्तु मूत्रकृच्छ्रकरम्परम् ॥ [अथ लघु खीरा वालमखीरा। त्रपुसं कण्टकिफलं सुधावासः सुशीतलम् ॥ त्रपुसं लघु नीलञ्च नवं तृट् क्लमदाहजित् ॥ २६८॥ स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरम्परम् ॥ तत्पक्वमम्लमुष्णं स्यात् पित्तलं कफवातनुत ॥ २६९॥ तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित् ॥

भा० अनन्तर खरबूजा ।] दशांगुल खरबूज । येह खरबूजे के नाम हैं। अनन्तर उस्के गुण कहते हैं ॥ खरबूज मूत्रको करनेवाला बलको करनेवाल कोष्ठकी शुद्धि करनेवाला और भारी होताहै ॥ २६६॥ और चिकना बहुत मधुर शीतल शुक्रको करनेवाला पित्त वातका नाशक है ॥ उनमें जो खट्टा मधुर क्षारके सहित रस से होता है। वोह रक्तपित्तको करनेवाला और मूत्रकृच्छ्रको करनेवाला है ॥ २६७ ॥

अनन्तर वालम खीरा । त्रपुस कंटकीफल सुधावास सुशीतल । येह वालम खीरे के नाम हैं ॥ खीरा हरा और नया खीरा हलका होता है। वो तृषा क्लम दाह इनको जीतनेवाला है ॥ २६८॥ और मधुर पित्तनाशक । शीतल और रक्तपित्तका नाशक होताहै ॥ वो पका हुवा खट्टा उष्ण और पित्तको करनेवाला कफवातका नाशक है ॥ २६९॥ उस्का बीज मूत्रको करनेवाला शीतल रूखा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्र इनको जीतनेवाला है

अथ सुपारी छोटी ।] घोण्टा: पूगी पूगञ्च गुवाकः क्रमुकोऽस्य तु ॥ फलम्पूगी फलम्प्रोक्तमुद्वेगञ्च तदीरितम् ॥ २७०॥ पूगङ्गुरु हिमं रूक्षं कषायङ्कफपित्तजित् ॥ मोहनं दीपनं रुच्यं मास्यवैरस्य नाशनम् ॥ २७१॥ आर्द्रं तद्गुर्वभिष्यन्दि

वन्हि दृष्टि हरं स्मृतम् ॥ स्विन्नं दोषत्रयच्छेदि दृढ़ मध्यन्तदुत्तमम् ॥ १७२॥

भा० अनन्तर छोटीसुपारी ॥ घोंरंट पूगी पूग गुवाकः क्रमुक ॥ फल पूगीफल उद्वेग । येह सुपारी के नाम हैं ॥ १७०॥ सुपारी भारी शीतल रूखी कसैली कफ पित्त को जीतनेवाली है ॥ और मोहन दीपन भारी रुचिको करनेवाली मुखके विरसता को नाशक है ॥ १७१॥ वोह गीली भारी अभिष्यंदी होती है ॥ और अग्नि दृष्टिकी नाशक कही गई है ॥ चिकनी तीनों दोषों को नाश करनेवाली बीच में जो दृढ़ होती वोह उत्तम है ॥ १७२॥

अथ तालः ।] तालस्तु लेखपत्रः स्यात् तृणराजो महोन्नतः पक्कं तालफलं पित्त रक्त श्लेष्म विवर्द्धनम् ॥ १७३॥ दुर्ज्जरंबहु मूत्रञ्च तन्द्राभिष्यन्दि शुक्रदम् ॥ तालमज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मद करो लघुः ॥ १७४॥ श्लेष्मलो वात पित्तघ्नः सस्नेहो मधुरः सरः ॥

भा० अनन्तर ताड़ ॥ ताल लेखपत्र तृणराज महोन्नत । येह ताड़ के नाम हैं ॥ पकाहुवा ताड़फल रक्त पित्त कफ इनको बढ़ानेवाला ॥ १७३॥ दुर्जर बहुत मूत्रको करनेवाला तन्द्रा अभिष्यन्दी और शुक्रको देनेवाला है ॥ पके हुवे तालकी गिरी कुछ नशा करनेवाली और हलकी होती है ॥ १७४ ॥ और कफको करनेवाली वात पित्तकी नाशक कुछ चिकनी मधुर सर होती है ॥

अथ ताड़ी ।] तालजन्तरुणन्तोय मतीवमादकृन्मतम् ॥ अम्ली भूतन्तदा तु स्यात् पित्तकृद्वात दोषहृत् ॥ १७५॥ [अथ बेल ।]

विल्वः शाण्डिल्य शैलूषो मालूर श्रीफलावपि ।

बालं बिल्वफलं बिल्व कर्कटी बिल्व पेशिका ॥ ७६
ग्राहिणी कफ वाताम शूलघ्नी बिल्व पेषिका ॥

भा० अनन्तर नाड़ी ।] नाड़ी बड़त नशाके करनेवाली होतीहै ॥ औरजब खट्टी होती है नव पित्तको करनेवाली और वात दोष की नाशक है ॥ २७५॥ अनन्तर बेल ।] बिल्व कशाण्डिल्य शैल्यूष मालूर श्रीफल । येहबेल फलके नाम हैं ॥ और कच्चे बेलफल बिल्वकर्कटी और बिल्व पेशिका कहतेहैं ॥ २७६॥ कच्चाबेल क़ाबिज़ कफ वात आम शूल इनका नाश करैहै ॥

[अन्यच्च ।

बालं बिल्वफलं ग्राहि दीपनम्पाचनङ्कटु ॥ कषायोष्णं लघु स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् ॥ २७७ ॥ पक्वं गुरु त्रिदोषं स्यात् दुर्जरं पूति मारुतम् ॥ विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वन्हिमान्द्यकृत ॥ २७८ ॥ फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ विल्वादन्यत्र विज्ञेय मामन्तु द्विगुणाधिकम् ॥ २७९ ॥ द्राक्षा विल्व शिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ॥

भा० औरभी । कच्चा बेलफल क़ाबिज़ दीपन पाचन कटु कसैला उष्ण हलका चिकना तिक्त वात कफ का नाशक है ॥ २७७॥ और पकाहुवा भारी त्रिदोषको करनेवाला होताहै और सड़ाहुवा दुर्गंधि और वात को करताहै तथा विदाहको करनेवाला विष्टम्भी मधुर अग्नि मांद्यको करने वाला है ॥ २७८ ॥ फलोंमे पकाहुवा जो होता है वोह गुणयुक्त होता है ॥ परन्तु बेलसे अतिरक्तों को जानना चाहिये येह कच्चा गुणमें अधिक होता है ॥ २७९ ॥ दाख बेल आमले इत्यादिकों के फल सूखहुवे गुणमें अधिक होताहै ॥

[अथ कैथि ।] कपित्थस्तु दधित्थः स्यात् तथा पुष्पफलः स्मृतः ॥ कपिप्रियो दधिफल

स्तथा दन्त पाठोऽपि च ॥ २००॥ कपित्थ मामं सं-
ग्राहि कषायं लघु लेखनम् ॥ पक्वं गुरु तृषा हि-
क्का शमनं वात पित्तजित् ॥ २०१॥ स्यादल्पन्तु-
वरङ्कुराठ शोधनं ग्राहि दुर्ज्जरम् ॥

भा० अनन्तर कैथ । कपिथ्य दधिथ्य पुष्पफलं । येह कैथ के नामहैं ॥ और कपिप्रिय दधिफल तथा दन्तशठ येहभी कैथके नामहैं ॥ २००॥ कच्चा कैथ क़ाविज़ कसैला हलका रेचन होताहै ॥ और पकाहुवा भारीहोता है और तृषा हिचकी शमन करनेवाला वात पित्त का नाशक है ॥ २०१॥

[अथ नारङ्गी ।] नारङ्गो नागरङ्गः स्यात्त्वक सुग-
न्धो मुखप्रियः ॥ नारङ्गो मधुराम्लः स्याद्दीपनं वा-
त नाशनम् ॥ २०२॥ अपरन्त्वम्ल मत्युष्णं दुर्ज्जरं
वात हृत सरम् ॥ [अथ तेंदु ।] तिन्दुकः
स्फूर्ज्यकः काल स्कन्धश्चासित कारकः ॥ स्या-
दामन्तिंदुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ॥ २०३॥
पक्वं पित्त प्रमेहास्र श्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु ॥

भा० छोटा कसैला कंदशोधन क़ाविज़ होताहै ॥
अथ नारंगीके नाम गुण ॥ नारङ्ग नागरङ्ग त्वक्सुगन्ध मुखप्रिय यह नारङ्गीके नामहैं ॥ नारङ्गी मिठी और खट्टी होतीहै मीठी दीपन वात नाश कहोतीहै ॥ २०२॥ और खट्टी वज़न गरम दुर्ज्जर वात नाशक सर होताहै ॥ अनन्तर तेन्दु ॥ तिन्दुक स्फूर्ज्यक कालस्कन्ध असितकारक । येह तेन्दुके नामहैं ॥ कच्चा तन्दु क़ाविज़ वात को करनेवाला शीतल हलका होता है ॥ २०३ ॥ और पकाहुवा पित्त प्रमेह रक्त कफ इनका नाश करनेवाला । मधुर और भारी होता है ॥

[अथ कुपीलु ।] यस्य फलं कुचिला इति लोके

मकरतेंदुश्चा इति च।] तिन्दुको यस्तु कथितो जलदो दीर्घ पत्रकः॥ कुपीलः कुलकः कालस्तिन्दुकः काल पीलुकः॥ १८४॥ काकेन्दु विषतिन्दुश्च तथा मर्कट तिन्दुकः॥ कुपीलुः शीतलं तिक्तं वातलं मदकृल्लघु॥ पादव्यथा हरं ग्राहि कफ पित्तास्र नाशनम्॥ १८५॥

भा॰ अनन्तर कुपीलु जिसके फलको लोकमें कुंचलाकहते हैं॥ तिन्दुक जलद दीर्घपत्रक॥ कुपीलु॰ कुलकः कालः तिन्दुकः कालपीलुक॥ ॥१८४॥ काकेन्दु विषतिन्दु तथा मर्कट तिन्दुक यह कुचिलाके वलकाना महै॥ कुपीलु शीतल तिक्त वातको करनेवाला और नशा करनेवाला हलका है॥ और पावोंकी पीड़ाको दूरकरनेवाला क़ाबिज़ तथा कफ रक्त पित्त इनको नाशकरनेवाला है॥ १८५॥

[अथ फलेन्द्रा।] फलेन्द्रा कथिता नन्दी राजजम्बू महाफला॥ तथा सुरभि पत्रा च महाजम्बू रपिस्मृता॥ १८६॥ राजजम्बू फलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रोचनम्॥ [अथ जामुनी नदी जामुनी।] क्षुद्रोजम्बूः सूक्ष्मपत्रा नादेयी जलजम्बुका॥ जम्बूः संग्राहिणी रूक्षा कफ पित्तास्र दाह जित्॥ १८७॥

भा॰ अनन्तर बड़े जामन॥ फलेन्द्रा नन्दीराज जम्बू महाफल॥ तथा सुरभिपत्रा महाजम्बू। येहभीनाम कहे हैं॥ १८६॥ बड़े जामन का फल मधुर विष्टम्भ करनेवाला॥ भारी रोचन है॥
अनन्तर जामुनी और नंदी जामुनीभी॥ क्षुद्रजम्बू सूक्ष्मपत्रा नादेयी जलजम्बुका। अनंतर छोटीजामुनके नाम हैं॥ छोटीजामुन क़ाबिज़ कफ रक्त पित्त दाह इनको जीतनेवाला है॥ १८७॥

[अथ वेरि।] पुंसिस्त्रियाञ्च कर्कन्धु बदरी कोल

मित्यपि ॥ फेनिलं कुवलं घोंठा सौवीरं वदरं मह
त ॥ २८८॥ अजप्रिया कुहा कोली विषमो भय
कण्टका ॥ [तत्र वदर विशेषाणां लक्षणानि गुणा
श्च] पच्यमान सुमधुरं सौवीरं वदरं महत ॥ सौवी
रं वदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥ २८९ ॥ वृंह
णम्पित्तदाहास्त्र क्षय तृष्णा निवारणम् ॥ सौवी-
रं लघु सम्यक्कं मधुरं कोल मुच्यते ॥ २९० ॥

भा० अनन्तर बेर । पुल्लिंग और स्त्री लिंग में कर्कन्धु वदरी और कोल यहभी होता है ॥ फेनिल कुवलय घोंठा सौवीर वदर ॥ अज प्रिया कुहाकोली विषम उभयकण्टक ॥ २८८ ॥ येह बेरके नाम हैं । उसमें बेर विशेषणों के लक्षण और गुणोंको कहते हैं ॥ पकेहुवे अच्छे मीठे को सौवीर और बड़ा बेर कहते हैं ॥ सौवीर वदर शीतल भेदन भारी शुक्रको करनेवाला है ॥ ॥ २८९ ॥ और वृंहण पित्त दाह रक्त क्षय तृषा इनको दूर करनेवालाहै ॥ बड़ाबेर पकाहुवा पकाहुवा और मधुर ऐसे को कोल कहते हैं ॥ २९० ॥

कोलन्तु वदरं ग्राहि रुच्य मुष्णञ्च वातलम् ॥
कफ पित्त करञ्चापि गुरु सारक मीरितम् ॥ २९१ ॥
कर्कन्धु क्षुद्र वदरं कथितं पूर्व्व सूरिभिः ॥ अ
म्लं स्यात् क्षुद्र वदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥ २९२ ।
स्निग्धं गुरु च तिक्तञ्च वात पित्ता पहं स्मृतम् ॥
शुष्कं भेद्यग्नि कृत्सर्व्वं लघु तृष्णा क्लमास्त्र जित् ९३

भा० कोल बेर का बील रुचिको करने वाला गरम वात को करनेवालाहै ॥ और कफ पितको करनेवाला भारी सारक कहाहै ॥ २९१ ॥ पहिले विद्वानों ने छोटे बेर को कर्कन्धु ऐसा कहाहै ॥ छोटा बेर खट्टा कसैला और थोड़ा

मीठा होता है ॥ २६२॥ और चिकना भारी तिक्त वात पित्तका नाशक कहा है ॥ तथा सूखा भेदन करनेवाला और अग्निको करनेवाला है। और सब हलके होते हैं। तथा तृषा कृमिरक्त इनको जीतनेवाला है ॥ २६३॥

अथ मनि अस्वरा। प्राचीना मालकं लोके पानीया मलकं स्मृतम् ॥ प्राचीना मलकं दोष त्रय जिद् ज्वरघाति च ॥ २६४॥

[अथ लवली। हरफारी इति च।] सुगन्धमूला लवली पाण्डुः कोमल वल्कला ॥ लवली फलम श्मार्शः कफ पित्त हरं गुरु ॥ २६५॥ विशदं रोचनं रूक्षं स्वादम्लन्तु वरं रसे ॥

भा० अनन्तर पानी आंवला ॥ प्राचीना मालकं को लोकमें पानीया मलक कहा है ॥ प्राचीना मलक त्रिदोष को जीतनेवाला और ज्वर नाशक है ॥ २६४॥ [अनन्तर हरफा रेवडीय सुगन्धमूला लवली पांडु कोमल वल्कला येह हरफा रेवडी के नाम हैं ॥ हरफारी —। का फल पथरी और बवासीर कफ पित्त इनका नाशक भारी ॥ २६५॥ विशद रोचन रूखा मधुर खट्टा और कसैला रसमें होता है ॥

[अथ करौंदा। करौंदी]

करमर्द्दः सुषेणः स्यात् कृष्ण पाक फलस्तथा ॥ तस्माल्लघु फलायास्तु सा ज्ञेया करमर्द्दिका ॥ २६६॥ करमर्द्द द्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषा हरम् ॥ उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्त कफप्रदम् ॥ २६७॥ तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्त समीरजित् ॥

भा० अनन्तर करौंदा। और करौंदी।] करमर्द्द सुषेण कृष्ण पाकफल

येह करोंदा के नाम हैं ॥ और छोटे को करमर्द्द का कहते हैं ॥ १९६ ॥ दोनों करोंदे खट्टे भारी तृषा नाशक है। और उष्ण रुचिको करनेवाले तथा रक्त पित्त कफ को देनेवाले कहेहैं ॥ १९७ ॥ वोह पका हुवा मधुर रुचिको करनेवाला हलका और वात पित्त कोजीतने वाला है ॥

[अथ पियाल चिरोञ्जी।] पियालस्तु खरस्कन्ध श्चारो बहुल वल्कलः ॥ राजादनस्तापसेष्टः सन्नकद्रुर्धनुष्पदः ॥ १९८ ॥ चारः पित्तकफास्रघ्नस्तत् फलंमधुरं गुरु ॥ स्निग्धं सरं मरुत्पित्त दाहज्वर तृषापहम् ॥ १९९ ॥ पियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ॥ हृद्योऽतिदुर्ज्जरः स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः ॥ २०० ॥

भा० अनन्तर चिरोंजी ॥ पियाल खरस्कन्ध चार बहुल वल्कल। राजादन तापसेष्ट सन्नकद्रु धनुष्पद। येह चिरोंजी के नामहैं ॥ १९८ ॥ चिरोंजी पित्त कफ रक्त इनका नाशक है। और उस्का फल मधुर भारी चिकना सर होताहै और वात पित्त दाहज्वर तृषा इनका नाशक है ॥ १९९ चिरोंजी की गिरी मधुर शुक्रकोकरनेवाली पित्त वातका नाशक ॥ हृद्य अति दुर्ज्जर स्निग्ध विष्टंभी आमको बढ़ानेवाली है ॥ २०० ॥

[अथ क्षीरणी।] राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या क्षीरिकापि च ॥ क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु ॥ २०१ ॥ तृषा मूर्च्छामदभ्रान्ति क्षय दोषत्रयास्त्रजित् ॥

[अथ कराटाइ।] विकङ्कतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलः स्वादुकण्टकः ॥ स एव यज्ञवृक्षश्च कण्ट-

की व्याघ्र पादपि ॥ २०२ ॥ विकङ्कत फलं प-
क्वं मधुरं सर्वदोषजित ॥

भा० अनन्तर खिरनी। राजादन फलाध्यक्ष राजन्या। यह खिरनी के नाम हैं ॥ खिरनी का फल शुक्रको करनेवाला बलकोदेनेवाला चिकना शीतल भारी होताहे ॥ २०१ ॥ और मूर्छा मद भ्रान्ति क्षय त्रिदोष रक्त इनकोजीतनेवालाहे ॥ [अनन्तर कंटाई। विकङ्कत स्रुवावृक्ष ग्रन्थिल स्वादुकंटक ॥ यज्ञवृक्षकंटकी व्याघ्रपाद येह कंटाई के नाम हें ॥ २०२ ॥ कंटाई का पकाफल मधुर और सब दोषोंको जीतनेवालाहे ॥

[अथ कमलगट्टा।]

पद्मबीजन्तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी ॥ प-
द्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकंगुरु ॥२०३॥
विष्टम्भि वृष्यं रूक्षञ्च गर्भसंस्थापकं परम् ॥
कफ वात करं बल्यंग्राहि पित्तास्त्र दाहनुत् ॥२०४

[अथ मखाना।] माखान्नं पद्मबीजाभं पानीय फ
ल मित्यपि ॥माखन्नं पद्मबीजस्य गुणैस्तुल्यं-
विनिर्द्दिशेत् ॥ २०५॥

भा० अनन्तर कमलगट्टा। पद्मबीज पद्माक्ष गालोड्य पद्मकर्कटी ॥ यह कमलगट्टा के नामहैं ॥ कमलगट्टा शीतल मधुर कसैला तिक्त भारी ॥ २०३ ॥ विष्टम्भी शुक्रको करनेवाला रूखा गर्भको स्थापन करनेवालाहे ॥ और कफ वात को करनेवाला बलके हित काबिज रक्त पित्त और दाह इनका नाशक है ॥ २०४ ॥ [अनन्तर मखाना] माखान्न पद्मबीजाभ पानीयफल। यह मखानेके नाम हैं ॥ मखाना कमलगट्टे के समान गुणमें जानना चाहिये ॥ २०५ ॥

[अथ सिंघाड़ा।] शृङ्गाटकं जलफलं त्रिकोणफल

मित्यपि ॥ शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषाय-
कम् ॥ २०६ ॥ ग्राहि शुक्रानिल श्लेष्मप्रदं पित्ता-
स्र दाहनुत् ॥ [अथ भेंट।] उक्तं कुमुद बीजन्तु
बुधैः कैरविणी फलम् ॥ भवेत् कुमुद्वती बीजं स्वा
दु रूक्षं हिमं गुरु ॥ २०७ ॥ [अथ महुआ वन-
महुआ।] मधूको गुडपुष्पः स्यान् मधुपुष्पो म-
धुस्रवः ॥ वानप्रस्थो मधुष्ठीलो जलजेत्र मधू
लकः ॥ २०८ ॥ मधूक पुष्पं मधुरं शीतलं गुरु
वृंहणम् ॥ बल शुक्र करं प्रोक्तं वात पित्त बिना-
शनम् ॥ २०९ ॥ फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वा
त पित्त नुत् ॥ अहृद्यं हन्ति तृष्णास्र दाह श्वा-
स क्षत क्षयान् ॥ २१० ॥

भा० अनन्तर सिंघाड़ा ॥ शृंगाटक जलफल त्रिकोणफल यह सिंघाड़े के नामहैं ॥ सिंघाड़ा शीतल मधुर भारी शुक्रको करनेवाला कसैला ॥ २०६ ॥ काविज़ और शुक्र वात कफ इनको देनेवाला तथा पित्तरक्त दाह इनका नाशकहै ॥ [अनन्तर भेंट।] कुमुद के बीज को कैरविणी फल ऐसा पंडितोंने कहाहै ॥ कुमुदवती का बीज मधुर रूखा शीतल होता है ॥ २०७ ॥ [अनन्तर महुवा और वन महुवा। मधूक गुड़पुष्प मधुपुष्प मधुस्रव ॥ वानप्रस्थ मधुष्ठील जलजेत्र मधूलक ॥ २०८ ॥ यह महुवे के नामहैं ॥ महुवा मधुर शीतल भारी पुष्ट ॥ बल शुक्रको करने वाला और वात पित्तका नाशक कहाहै ॥ २०९ ॥ उसका फल शीतल भारी मधुर शुक्र का करनेवाला वात पित्तका नाशक ॥ और अहृद्य होता है तथा तृषा रक्त दाह श्वास क्षत क्षय इनको नाश करता है ॥ २१० ॥

[अथ फरुसा।] परूषकन्तु परुषमल्पास्थिच

परापरम् ॥ परूषकं कषायाम्लमामं पित्तकरं लघु ॥२११॥ तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम् ॥ हृद्यन्तु पित्त दाहास्र ज्वरक्षय समीर हृत ॥२१२॥ [अथ तूत।]

तूतःस्थूलश्च पूगश्च क्रमुको ब्रह्मदारु च ॥
तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्त निलापहम् ॥२१३॥
तदेवामं गुरु सर मम्लोष्णं रक्त पित्त कृत ॥

भा० अनन्तर फालसा।] परूषक परुष अल्पास्थि परापर ॥ येह फ़ालसे के नामहैं ॥ फालसा कसैला खट्टा पित्तको करनेवाला हलका होता है ॥ २११॥ वोह पकाहुवा पाकमें मधुर शीतल विष्टम्भी पुष्ट होता है ॥ और हृद्य पित्त दाह रक्त ज्वरक्षय वात इनका नाशक है ॥२१२॥ [अनन्तर तूत।] तूत स्थूलश्च पूग क्रमुक ब्रह्मदारु । यह तूतके नाम हैं ॥ पकाहुवा तूत भारी मधुर शीतल पित्त वातका नाशक है ॥२१३॥ और वोही कच्चा भारी सर खट्टा उष्ण रक्त पित्त को करने वाला है ॥

[अथ अनार।] दाड़िमःकरको दन्त बीजोलोहित पुष्पकः॥ तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम् ॥२१४॥ तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड् दाह ज्वर नाशनम् ॥ हृत्कण्ठ मुख गन्धघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु ॥२१५॥ कषायानु रसं ग्राहि स्निग्धं मेधा बलापहम् ॥ स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्त करं लघु ॥२१६॥ अम्लन्तु पित्तजनक मम्लं वात कफापहम् ॥

भा० अनन्तर अनार। दाडिम करको दन्तबीज लोहितपुष्पक ।यह

अनार के नाम हैं ॥ उस्का फल तीन प्रकार का होता है ॥ मधुर मधुरखट्टा और केवल खट्टा ॥ २२४॥ उन्मे मधुर त्रिदोषनाशक और तृषा दाह ज्वर इन का भी नाशक है ॥ हृदय कण्ठ मुखगंध इनका नाशक तर्पण शुक्र को करनेवाला हलका होता है ॥२२५॥ पीछेसे कसैला ग्राहि चिकना होता है ॥ और मेधा वल इनका नाशक है ॥ और खट्टा मीठा दीपन रुचिको करनेवाला कुछएक पित्तका करनेवाला हलका होता है ॥ २२६॥ खट्टा पित्तको करनेवाला और वात कफ का नाशक है ॥

[अथ बहुआर।] बहुवारस्तु शीतः स्यादुद्दालो बहुवारकः ॥ शेलुः श्लेष्मातकश्चापि पिच्छिलो भूतवृक्षकः ॥२२७॥ बहुवारो विषस्फोट व्रण वीसर्पकुष्ठनुत् ॥ मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफ पित्त हृत् ॥ २२८॥ फलमामन्तु विष्टम्भि रूक्षं पित्त कफास्र जित् ॥ तत् पक्वं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ॥ २२९॥

भा० अनन्तर बहुवार ॥ बहुवार शीत उद्दाल बहुवारक ॥ शेलुः श्लेष्मांतक पिच्छिल भूतवृक्षक। यह बहुवार के नाम हैं ॥ २२७॥ बहुवार विष विस्फोट व्रण वीसर्प कुष्ठ इनका नाशक है ॥ और मधुर कसैला तिक्त केशके हित कफ पित्तका नाशक है ॥ २२८ ॥ कच्चा फल रूखा विष्टम्भकरनेवाला रूखा पित्त कफ रक्त कोजीतनेवाला है ॥ और वोह पका हुवा मधुर चिकना कफको करनेवाला शीतल भारी है ॥ २२९॥

[अथ कतकः।] पयःप्रसादि कतकङ्कतकं तत् फलञ्च तत् ॥ कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मलताकरम् ॥२३०॥ वातश्लेष्म हरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥

[अथ द्राक्षा।] द्राक्षा स्वादुफला प्रोक्ता तथा मधुरसापि च ॥ मृद्वीका हारहूरा च गोस्तनी चापि कीर्त्तिता ॥ २२१ ॥ द्राक्षा पक्का सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः ॥ स्वादुपाकरसा स्वर्य्या तुवरा सृष्टमूत्रविट् ॥ २२२ ॥ कोष्ठमारुतकृद् वृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा ॥ हन्ति तृष्णा ज्वर श्वास वात वातास्र कामलाः ॥ २२३ ॥ कृच्छ्रास्र पित्त संमोह दाह शोष मदात्ययान् ॥ आमा स्वल्पगुणा गुर्व्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत् ॥ २२४ ॥ वृष्या स्याद् गोस्तनी द्राक्षा गुर्व्वी च कफपित्तनुत्

भा० अनन्तर निर्मली ॥ पयःप्रसादि कतक। और उस्का फल भी कतक है ॥ निर्मली का फल नेत्र के हित और जलकी निर्मलता करनेवाला है ॥ २२० ॥ और वात कफको दूर करनेवाला शीतल मधुर कसैला भारी है ॥ [अनन्तर दाख।] द्राक्षा स्वादुफला मधुरसा मृद्वीका हारहूरा गोस्तनी येह दाखके नाम हैं ॥ २२१ ॥ पकी हुई दाख सर शीतल नेत्र को हित करनेवाली पुष्ट भारी होता है ॥ और पाक रसमें मधुर स्वरको अच्छा करनेवाली कसैली मल मूत्रको करनेवाली है ॥ २२२ ॥ और कोष्ट वात को करनेवाली शुक्र की उत्पन्न करनेवाली तथा कफ पुष्टि रुचि इनको देनेवाली है ॥ और तृषा ज्वर श्वास वात वातरक्त कामला इनको नाश करती है ॥ २३ ॥ और मूत्र कृच्छ्र रक्त पित्त मोह दाह शोष मदात्य इनकोभी नाश करता है ॥ और कच्ची दस्से अल्प गुणवाली भारी होती है और वोही खट्टी रक्तपित्त को करनेवाली है ॥ २२५ ॥ गोस्तनी दाख शुक्र की उत्पन्न करनेवाली। भारी और कफ पित्तकी नाशक होती है ॥

[गोस्तनी मुनक्का इति लोके।] अबीजान्या स्वल्पतरा गोस्तनीसदृशी गुणैः ॥ द्राक्षा पर्वतजा लघ्वी

साम्ला श्लेष्मास्त्र पित्तकृत् ॥ २२५ ॥ द्राक्षा पर्वतजायाहक् नाहश्री करमर्दिका ॥

(क) अबीजा । ईषद्बीजा । किसमिस इति लोके । पर्वजा पहारी इति लोके । करमर्दिका करोंदी इति लोके । [अथ क्षुद्र खर्ज्जूरी । पिण्ड खर्ज्जूरी छोहारा ।] भूमिखर्ज्जूरिका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा ॥ तथा स्कन्धफला काककर्कटी स्वादुमस्तका ॥ २२६ ॥ पिण्डखर्ज्जूरिका त्वन्या सादेशे पश्चिमे भवेत् ॥ खर्ज्जूरी गोस्तनाकारा परद्वीपादिहागता ॥ २२७ ॥

भा० गोस्तनी मुनक्का इसप्रकार लोके में कहतेहैं ॥ दूसरी बीजसे रहित बहुत छोटी मुनक्का से समान गुणमें होती है ॥ पहाडीदाख हलकी होती है और कुछ खट्टीहोती है ॥ तथा कफ अम्लपित्त को करनेवालीहै ॥ २२५ ॥ जिस प्रकारकी पहाड़ी दाख होती है वैसेही करोंदी करोंदी होती है ॥ (क) अबीज अर्थात् थोडे बीजवाली जिसको किसमिस कहतेहैं ॥ पर्वतजा पहाड़ी इस प्रकारलोकमें कहतेहैं ॥ करमर्दिका करोंदी इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ अनन्तर खजूर भूमि खजूरका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा ॥ स्कंधफल काककर्कटी स्वादुमस्तका । येह खजूरके नामहैं ॥ २२६ ॥ और दूसरी पिण्डखजूर वोह पश्चिम में होतीहै ॥ मुनक्काके समान जो खजूर होतीहै वाह और दीपसे यहाआई है ॥

जायते पश्चिमे देशे साच्छोहारेति कीर्त्यते ॥ खर्ज्जूरी त्रितयं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ २२८ ॥ स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षय हरंगुरुः ॥ तर्पण

रक्त पित्तघ्नं पुष्टि विष्टम्भ शुक्रदम् ॥ २२६॥ कोष्ठ मारुत हृद्बल्यं वान्ति वात कफापहम् ॥ ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णा कास श्वास निवारकम् ॥ २३०॥ मदमूर्च्छा मरुत्पित्त मद्योद्भूत गदान्तकृत् ॥ महती भ्यां गुणैरल्पा स्वल्प खर्ज्जूरिका स्मृता ॥ २३१॥ खर्ज्जूरी तरुतोयन्तु मद पित्तकरं भवेत् ॥ वात श्लेष्म हरं रुच्यं दीपनं बल शुक्र कृत् २३२

भा० और पश्चिमदेश में होती है उस्को छुहारा ऐसा कहते हैं ॥ तीनो खजूर शीतल रस पाक में मधुर होती हैं ॥२२८॥ और चिकनी रुचिको करनेवाली हृद्य क्षत क्षय इनको नाश करनेवाली भारी ॥ तर्पण रक्त पित्तकी नाशक पुष्टि विष्टम्भ शुक्र इनको करनेवाली ॥२२६॥ कुष्ठवात कीनाशक बलकोदेनेवाली वमन वात कफ इनकी नाशक ॥ज्वर अतिसार क्षुधा तृषा कास श्वास इनको दूर करनेवाली ॥२३०॥ मद मूर्च्छा वात पित्त और मद्य के सेवन से उत्पन्नहुवे रोगोंको नाश करने वाली है ॥ बड़ी खजूरसे छोटी खजूर गुणमें न्यून कहीगई है ॥२३१॥ खजूर के वृक्षका जल मद पित्त इनको करनेवाला है ॥ और वातकफ नाशक रुचिको देनेवाला दीपन बल शुक्रको करनेवाला है ॥ २३२ ॥

[अथ पिण्ड खर्ज्जूरी भेदः सुलैमानी।] सुलेमानी तु मृदुला दलहीन फला च सा ॥ सुलेमानी श्रम भ्रान्ति दाह मूर्च्छास्र पित्त हृत् ॥ २३३॥

[अथ बादाम।] वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपम फलस्तथा ॥ वाताद उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः शुक्रकृद् गुरुः ॥ २३४॥ वाताद मज्जा मधुरो

रूक्षः पित्त निलापहः ॥ स्निग्धोष्णः कफकृन्नेष्टो रक्तपित्त विकारिणाम् ॥ २३५ ॥

भा॰ अनन्तर पिंड खजूरका भेद सुलेमानी है ॥ सुलेमानी मृदुला दलहीन फला। यह सुलेमानी खजूर के नाम हैं ॥ सुलेमानी खजूर श्रम शान्ति दाह रक्त पित्त इनको नाश करनेवाला है ॥ २३३॥
अनन्तर बादाम ॥ वाताद वातवैरी नेत्रोपमफल ॥ येह बादामके नाम हैं ॥ बादाम उष्ण स्निग्ध वात नाशक शुक्र करनेवाला भारी होताहै ॥ २३४ ॥ बादाम की गिरी मधुर शुक्रको करनेवाली पित्त वातकी नाशक ॥ स्निग्ध उष्ण कफ करनेवाली होतीहै ॥ और रक्त पित्तके रोगवालों को हित नहिं होती ॥ २३५॥

[अथ सेव।]

मुष्टिप्रमाणं वदरं सेवं सिवितिकाफलम् ॥ सेवं समीर पित्तघ्नं वृंहणं कफकृद् गुरु ॥ २३६॥
रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचि शुक्रकृत ॥

[अथामृतफलम्।] यत् वदक् सान् काविल प्रभृति षु देशेषु नासपातीनि प्रसिद्धः ॥

अमृत फलं लघु रुच्यं सुस्वादु त्रीन् हरेत् दोषान् देशेषु मुङ्गलानां वहुलन्त लभ्यते लोकैः ॥

भा॰ अनन्तर सेव। मुष्टिप्रमाण वदर सेव सिवितिका फल। येह सेवके नाम हैं ॥ सेव वात पित्तका नाशक पुष्ट कफको करनेवाला भारी होता है ॥ २३६॥ और रसपाक में मधुर शीतल रुचि और शुक्रको करनेवाला।
॥ अनन्तर अमृतफल यह काबिल आदि देशोंमें नासपाती इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ अमृतफल हलका शुक्रको उत्पन्न करने वाला मधुर होताहै और तीनों दोषोंको नाश करताहै ॥ मुगलों के देशोंमें धित विशेष करके मिलता है ॥

[अथ पीलु।] पीलुगुल्लफलः संस्री तथा शीत

फलोऽपि च ॥ पीलुः श्लेष्म समीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत् ॥ २३७ ॥ स्वादु तिक्तञ्च यत् पीलु तन्नात्युष्णान्त्रिदोष हृत् ॥

[अथ अखरोट पीलुः ।] पीलुः शैल भवो ऽक्षोटः कर्परालश्च कीर्तितः ॥ अक्षोट कोऽपि वाताम सदृशः कफ पित्तकृत् ॥ २३८ ॥

भा० अनन्तर पीलू ।] गुल्फफल अंसी तथा शीनफल । येह पीलूके नामहैं ॥ पीलू कफ वातका नाशक पित्तको करनेवाला भेदन करनेवाला वायगोलाका नाशक होताहै ॥ २३७ ॥ और जो पीलू मधुर तिक्त होताहै । वोह बहुत गरम नहीं होता और त्रिदोषको नाश करता है ॥

[अनन्तर अखरोट । पीलू शैलभव शोट कर्पराल येह अखरोट के नाम कहेहैं ॥ अखरोट भी बादामके समान गुण में होताहै और कफ पित्तको करनेवाला है ॥ २३८ ॥

अथ बिजौरा ।] बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फल पूरकः ॥ बीजपूर फलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु ॥ २३९ ॥ रक्त पित्तहरं कण्ठ जिह्वा हृदय शोधनम् ॥ श्वास कासारुचि हरं हृद्यं तृष्णा हरं स्मृतम् ॥ २४० ॥

भा० अनन्तर बिजौरा । बीजपूर मातुलुङ्ग रुचक फलपूरक येह बिजौरे के नामहैं बिजौरे का फल रसमें मधुर और अम्ल होताहै । दीपन हलका होताहै ॥ २३९ ॥ रक्तपित्त का नाशक होताहै कण्ठ जिह्वा हृदय इनका शोधन । तथा श्वास कास अरुचि इनका नाशक हृद्य और तृषा का नाशक कहा गयाहै ॥ २४० ॥

[अथ बिजौर भेद मधुकाकड़ि ।] बीजपूरोऽपरः

प्रोक्तो मधुरी मधुकर्कटी ॥ मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥ २५१॥ रक्तपित्त क्षय श्वास कास हिक्का भ्रमापहा ॥

[अथ जम्बीरी द्वयम् ।] स्याज्जम्बीरी दन्तशठो जम्भजम्भीर जम्भलाः ॥ जम्बीर मुष्णं गुर्व्वम्लं वात श्लेष्म विबन्धनुत ॥ २५२ ॥ शूल कास कफोत् क्लेश छर्द्दि तृष्णा मदोष जित ॥ आस्य वैरस्य हृत्पीड़ा वन्हि मान्द्य कृमीन हरेत ॥ २५३ ॥ स्वल्पजम्बीरिका तद्वत् तृष्णा छर्दि निवारणी ॥

भा० [अनन्तर विजोरे का भेद मधुककड़ी ॥] और बिजोरे को मधुककड़ी कहते हैं ॥ मधुककड़ी मधुरुचिको करनेवाली शीतल भारी ॥ २५१ रक्त पित्त क्षय श्वास कास हिचकी भ्रम इनकी नाशक होती है ॥ अनन्तर दोनों क़िस्मके जंभीरी नीबू ॥ जंवीर दन्तशठ जंम्भ जम्भीर जंभला । येह जंवीरी नीबू के नामहैं ॥ जंवीर उष्ण भारी खट्टा वात कफ विबन्ध इनका नाशक ॥ २५२ ॥ और शूल कास कफ मतलीवमन तृषा और आमदोष इनको जीतने वाला है ॥ और मुखकी विरसना हृदय पीड़ा अग्निमान्द्य कृमि इनका नाश करना है ॥ २५३॥

[नीम्बु ।]

निम्बूस्त्री निम्बुकं क्लीवे निम्बूकमपि कीर्त्तितम् ॥ निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु ॥ ॥ २५४ ॥ [अन्यच्च ।] निम्बूक कृमि समोह नाशनन्तीक्ष्णमम्लमुदर ग्रहापहम् । वात पित्त कफ शूलिने हितं कष्ट नष्ट रुचि रोचनम्

परम् ॥ २५५ ॥ त्रिदोष वन्हि क्षयवात रोग नि-
पीड़ितानां विष विव्हलानां । मन्दानले बद्ध
गुदे प्रदेयं विसूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ २५६
[अथ मिष्टनिम्बू ।] मिष्ट निम्बू फलं स्वादु गुरु
मारुत पित्तनुत् ॥ गर रोग विषध्वंसि कफोत्क्ले
शिच रक्तहृत् ॥ २५७ ॥ शोषा रुचि तृषा छर्दि
हरं बल्यञ्च बृंहणम् ॥ [अथ कर्म्मरङ्ग ।
कर्म्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफ वातहृत् ॥

भा० छोटी जंभीरी उसीके समान गुणमें होतीहै और तृषा वमनको नाश करनेवाली है ॥ [अनन्तर नींबू । नींबू ये स्त्रिलिंग में और नपुंसक लिङ्गमें निंबुक और नीबूक भी कहा गयाहै ॥ नीबू खट्टा वात नाशक दीपन पाचन हलका होताहै ॥ २५५ ॥ नींबु कृमि मोह इन-का नाशक तीखा खट्टा होता है। और ननेऊवे पेटको नाशकरता है। और वात पित्त कफ इनके शूलमें हित तथा कष्ट साध्य और नष्टऐसी अरुचि रोगमें अत्यन्त रुचिको करनेवाला है ॥ २५५ ॥ त्रिदोष अग्निक्षय वातरोग इनसे पीडित और विषसे विह्वल इनको। और मन्दाग्नि में बद्धगुद में तथा विसूचिका में देना चाहिये ऐसा मुनियों ने कहाहै ॥ ॥ २५६ ॥ [अनन्तर मीठा नीबू ।] मधुर भारी वात पित्तका नाशक है। और गर रोग विष इनका नाशक,जो उरेवेड़नेवाला रक्तकानाशक ॥ २५७ ॥ शोष अरुचि तृषा वमन इनका नाशक बलका हित और पुष्ट होताहै। ॥ अनन्तर कमरख ॥ कर्मरंग येह कमरखका नाम है ॥ कमरख शीतल काविज़ मधुर खट्टा कफ वातका नाशक होताहै ॥

अथ अम्बिली ॥ अम्लिका चुक्रिकाम्लीच
चुक्रा दन्त शठापिच । अम्लाच विच का वि

म्ला तिन्तिड़ी काचतिन्तिड़ी ॥२४८॥ अम्लिका-
म्ला गुर्वीत हरी पित्त कफास्रकृत् ॥ पक्वातुदी
पनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत् ॥२४९॥
अथाम्लवेतसः।] स्यादम्लवेतसश्चुक्रं शतवेधि
सहस्रनुत् ॥ अम्लवेत समत्यम्लं भेदनं लघु दीप
नम् ॥२५०॥ हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमह-
र्षणम् ॥ रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं सीहोदावर्त्तनाश-
नम् ॥२५१॥ हिक्कानाहारुचिश्वासकासाजीर्ण
वमिप्रणुत् ॥ कफवातामयध्वंसि छाग मांस
द्रवत्वकृत् ॥२५२॥ चणकाम्ल गुणं ज्ञेयं लोह
सूची द्रवत्वकृत् ॥

भा० अनन्तर इमली ॥ अम्लिका चुक्रिका अम्ली चुक्रा दन्तशठा ॥ अम्ला चिंचिका चिंचा तिंतड़ी काचतिंतडी येह इमली के नाम हैं ॥२४८ इमली खट्टी भारी वातकी नाशक पित्त कफ रक्त को करनेवाली है ॥ और पकीहुई दीपन रूखी सर उष्ण कफ वातकी नाशक होतीहै ॥२४९ अनन्तर अम्लवेत ॥ अम्लवेतस चुक्र शतवेधि सहस्रनुत् येह अमलवेत के नाम हैं ॥ अमलवेत वहुत खट्टा भेदन हलका दीपन होता है ॥ २५०॥ और हृद्य रोग शूल वायगोला इनका नाशक पित्तको करनेवाला और रोमांच के करनेवाला ॥ रूखा मल मूत्र दोषका नाशक। और पिलही उदावर्त्त इनका भी नाशक है ॥ २५१॥ और हिचकी अफारा अरुचि श्वास कास अजीर्ण वमन इनका नाशक ॥ तथा कफवातके रोगोंको नाश करनेवाला और बकरीके मांसको गलानेवाला है ॥ २५२॥ चणकाम्ल के समान गुणसे है। और लोहेकी सुई को गलाने वाला है ॥

अथ विषाम्बिल।] वृक्षाम्लं तिन्तिड़ीकञ्च

चुक्रं स्यादम्लवृक्षकम् ॥ वृक्षाम्लमाममग्राहि वातघ्नं कफ पित्तलम् ॥ २५३ ॥ पक्वन्तु गुरु संग्राहि कटुकन्तुवरं लघु ॥ अम्लोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं कफवातकृत् ॥ २५४ ॥ तृष्णार्शो ग्रहणी गुल्म शूल हृद्रोग जन्तुजित् ॥

अथ चतुरम्ल पञ्चाम्लयोर्लक्षणम् ।] अम्लवेतस वृक्षाम्ल वृहज्जम्बीर निम्बुकैः ॥ चतुरम्लं हि पञ्चाम्लं वीज पूरयुते र्भवेत् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर वृक्षाम्ल। वृक्षाम्ल तिंतिड़ीक चुक अम्लवृक्षक ॥ ये बिषाम्बिल के नामहैं ॥ बिषाम्बिल कच्ची खट्टी उष्ण वातनाशक कफ पित्त को करनेवाली होती है ॥ २५३॥ और पकीहुई भारी काबिज़ कडवी और कसैली हलकी ॥ खट्टी गरम अरुचिको करनेवाली रूखी दीपन कफ वात को करनेवाली ॥ २५४ ॥ और तृषा ववासीर संग्रहणी वायगोला शूल हृदरोग कृमि इनको जीतने वाली है ॥
अनन्तर चतुरम्ल और पंचाम्ल इनदोनों का लक्षण कहतेहैं ॥ अम्लवेत वृक्षाम्ल और वड़ाजंभीर नींबू । इनसे चतुराम्ल होताहै और बिजौरे के मिलानेसे पंचाम्ल होताहै ॥ २५५ ॥

अथ परिभाषा ।] फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ विल्वादन्यत्र विज्ञेय मामं तद्धि गुणाधिकम् ॥ २५६ ॥ फलेषु सरसं यत्स्याद्गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ द्राक्षा विल्व शिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ॥ २५७ ॥ फल तुल्य गुणं सर्वं मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ फलं हिमाग्नि दुर्वात व्याल कीटादि दूषितम् ॥ २५८ ॥ अकालजन्तु मू

मोजम्याका तीतं न भक्षयेत् ॥
पाकमतीतं पाकमति क्रम्य स्थितम् ॥

इतिश्री भावप्रकाशे फलवर्गः ॥ ॥

भा० अनन्तर परिभाषा । फलोंमें जो पका हुवा है वोह गुणवाला कहा गयाहै ॥ बेलके सिवा जानना चाहिये कच्चा बेल गुणमें अधिक होताहै ॥ २५६ ॥ फलोंमें रसके सहित जो होता है वोह गुणमें अधिक कहाहै ॥ परन्तु दाखबेल आंवले इनके फल सूकेहुवे गुणमें अधिक होतेहैं ॥ २५७ ॥ सबके मज्जाओंका गुण फलके समान होता है ॥ हिम अग्नि दुष्टवात सर्प कीट आदिसे दूषित ॥ २५८ ॥ और बे ऋतुका फल कुत्सित भूमिका वे पकाहुवा ऐसे फलको भक्षण न करे ॥
इति भावप्रकाशे फलवर्गः ॥ ॥

अथ धातूपधातु रसोपरस रत्नोपरत्न विषोप विष वर्गः ॥ [तत्र धातूनां लक्षणानि गुणाश्च ॥] स्वर्णं रूप्यञ्च ताम्रञ्च रङ्गं यसदमेवच ॥ सीसं लोहञ्च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः ॥ १ ॥ वली पलित खालित्य कार्श्यी बल्यजरा मयान् ॥ निवार्य्य देहं दधति नृणां तद्धातवो मताः ॥ २ ॥

भा० अनन्तर धातु उपधातु रस उपरस रत्न उपरत्न और विष उपविष इनका वर्ग ॥ ॥ उसमें धातुवोंका लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ सोना रूपा ताम्बा रांग जस्त ॥ सीसा लोहा · येह सात पहाड़से उत्पन्न होनेवाली धातुहैं ॥ १ ॥ झुर्रियां बालोंकी सुफ़ेदी गंजापन कृशता और दुर्बलता बुढ़ापा । इन रोगोंको दूर करके जो मनुष्यों के शरीर को धारण करतेहैं वोह धातु कहेगयेहैं ॥ २ ॥

[तत्रादौ सुवर्णस्योत्पत्ति नाम लक्षण गुणाश्च ।

पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम्॥ पत्नीर्विलोक्य लावण्य लक्ष्मीसम्पन्न यौवनाः॥ ॥३॥ कन्दर्प्प दर्प विध्वस्त चेतसो जातवेदसः॥ पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेमतामगात्॥४॥ वशिष्ठश्चे ति सप्तैते कीर्त्तिताः परमर्षयः॥ मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥५॥ कृत्रिमञ्चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः॥ स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेमहाटकम्॥६॥ तपनीयञ्च गाङ्गेय कलधौतञ्च काञ्चनम्॥चामीकरं शातकुम्भं तथा कार्त्तस्वरञ्च तत्॥७॥ जाम्बूनदं जातरूपं महारजत इत्यपि॥ दाहे रक्तं सितं च्छेदे निघेके कुङ्कुम प्रभम्॥८॥

भा॰ इनमें पहले सुवर्णकी उत्पत्ति नाम लक्षण और गुण कहते हैं॥ पहले निज आश्रम में रहनेवाले जितेन्द्रिय सप्त ऋषियोंकी लावण्य लक्ष्मी इन करके युक्त यौवनवाली स्त्रियोंको देखकर॥३॥ कंदर्पके दर्पसे ध्वस्त होगयाहै चित्त जिस्का ऐसे अग्निका जो पृथ्वीपर शुक्र गिरा वोह सोना होगया॥४॥ मरीची अंगिरा अत्री पुलस्त्य पुलः क्रतु॥ वशिष्ट, येह सातमहर्षि कहे गयेहैं॥५॥ कृत्रिम भी सुवर्ण होताहै वोह पारेके भेदसे॥ स्वर्ण सुवर्ण कनक हिरण्य हेम हाटक तपनीय गांगेय कलधौत कांचन॥चामीकर शातकुम्भ तथा कार्त्तस्वर॥७॥ जाम्बूनद जातरूप महारजत, येह सुवर्णके नामहैं॥ दाह में लाल काटनेमें सुफेद और कसौटीमें केसरके समान होताहै॥८॥

तारं शुल्बोज्जितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेमसत्॥ (सत्तमम्।) तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं

दलम् ॥ दाहे छेदे सितं श्वेतं कषेत्याज्यं लघुस्फु-
टम् ॥ ९ ॥ दलञ्जोर इति लोके। स्फुटं यद्घना-
हतं स्फुटति ।] सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु
रसायनम् ॥ स्वादु तिक्तञ्च तुवरं पाके च स्वादु
पिच्छिलम् ॥ १० ॥ पवित्रं वृंहणं नेत्र्यं मेधा स्मृ-
ति मतिप्रदम् ॥ हृद्यमायुः करं कान्ति वाक् वि-
शुद्धि स्थिरत्व कृत ॥ ११ ॥ विषद्वय क्षयोन्माद त्रि-
दोषज्वर शोष जित ॥ बलं सवीर्य्यं हरते नराणां
रोगव्रजान् शोषयतीह काये ॥ असौख्य कर्त्ता च
सदा सुवर्ण मशुद्ध मेतन्मरणञ्च कुर्य्यात ॥ १२ ॥
असम्यक् मारितं स्वर्णं बलं वीर्य्यञ्च नाशयेत् ॥
करोति रोगान्मृत्युञ्च तद्धन्या द्यत्न तस्ततः ॥ १३ ॥

भा० और चांदी ताम्बेको जीतने वाला। चिकना कोमल भारी ऐसा सुव-
र्ण बहुत अच्छा है॥ और जो कठिन रूखा विवर्ण समदल दलवाला
दाहमें और काटनेमें श्वेत हलका अ लग होनेवाला वोह छेत है। वोह
त्यागने योग्य है ॥ ९ ॥ दलजोर इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ सोना शीत
ल शुक्रको उत्पन्न करने वाला बलकारी भारी रसायन ॥ मधुर तिक्त कसै
ला और पाकमें भी मधुर पिच्छिल ॥ १० ॥ पवित्र पुष्ट करने वाला नेत्रके
हित मेधा स्मृति बुद्धि इनको देने वाला हृद्य आयु को करने वाला कान्ति
वाणीकी शुद्धि स्थिर इनको करने वाला ॥ ११ ॥ संसर्ग विषको नाश कर
नेवाला उन्माद त्रिदोषज्वर शोष इनको जीतने वाला है ॥
अशुद्ध स्वर्ण मनुष्यों का बल वीर्य्य के सहित हरता है। और बहुत से रोगों
को करता है और काया को सुकाता है ॥ तथा क्लेश को करने वाला होता है
॥ तथा मरण को भी करता है ॥ १२ ॥ अच्छी तरह न फूका हुवा सोना बल वी
र्य को नाश करता है ॥ और रोगों को तथा मृत्युको भी करता है इसवास्ते यत्न

से फूंके ॥२३॥

[अथ रूप्यस्योत्पत्तिनाम लक्षणगुणाश्च।

त्रिपुरस्य बधार्थाय निर्न्निमिषै र्विलोचनैः॥ नि-
रीक्षया मास शिवः क्रोधेन परिपूरितः॥ २४॥ अ
ग्निस्तत् कालमपतत्तस्यैकस्माद्विलोचनात्॥
ततो रुद्रः समभवद्वैश्वानर इव ज्वलन्॥ २५॥
द्वितीयादपतच्चेत्रादश्रुविन्दुस्तु वामकात्॥ त-
स्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्म्मसु योजयेत्॥ २६॥
कृत्रिमञ्च भवेतद्धि वङ्गादि रसयोगतः॥ रूप्य-
न्तु रजतं तारञ्चन्द्रकान्ति सितप्रभम्॥ २७॥ गु
रु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे घनक्षमम्॥ वर्णा
ढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं रूप्यं नवगुणं शुभम्॥ २८॥
कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु॥ दाहच्छे-
द घनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्त्तितम्॥ २९॥

भा० अनन्तर चांदीकी उत्पत्ति नाम और लक्षण गुण ॥ त्रिपुरासुर के मारनेके अर्थ क्रोधसे भरे हुवे शिवजीने निमेष रहित नेत्रों से देखा ॥२४॥ उसी काल उनके एक नेत्र से अग्नि निकला ॥ अग्नि के समान जाज्वल्यमान उससे रुद्र हुवा ॥ २५॥ दूसरी बांई आंखसेजो आंसूगिरी ॥ उससे चांदीउत्पन्न हुई उसको कहे हुवे काममें योजनाकरे ॥ २६॥ और वोह रांग और पारा आदिकी योजनासे कृत्रिमभी होती है ॥ रूप्य रजत तार चन्द्रकान्ति सितप्रभ ॥२७॥ येह चांदीके नाम हैं। चांदी भारी चिकनी मुलायम दाहमें और काटने में श्वेत और चोट सहनेवाली ॥ और चांद के समान श्वेत स्वच्छ येह चांदी के नौ गुण शुभ हैं ॥ २८॥ और कृत्रिम कठिन रूखी लाल पीले परदों से युक्त हलकी दाहमें काटने में और चोटमें नष्ट

होनेवाली इसप्रकार की चांदी खराब होतीहै ॥ १९ ॥

रूप्यं शीतं कषायाम्लं स्वादु पाकरसम् सरम् ॥ वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वात पित्त जित् ॥ ॥ २० ॥ प्रमेहादिक रोगांश्च नाशयत्य चिराद् ध्रुवम् ॥ ॥ तारं शरीरस्य करोति तापं बिद्धं घनं यच्छति शुक्र नाशम् ॥ वीर्य्यं बलं हन्ति तनोश्च पुष्टिं महा गदान् शोषयति ह्य शुद्धम् ॥ २१ ॥

भा० चान्दी शीतल कसैली खट्टी और रस पाक में मधुर सर ॥ वयको स्थापन करने वाली चिकनी लेखन वात पित्तको जीतने वाली है ॥ २० ॥ और प्रमेह आदि रोगों को निश्चय नाश करती है ॥ बिन सोधि चांदी शरीर में जलन करती है ॥ और बन्धे हुए तथा गाढे शुक्र को नाश करती है ॥ और वीर्य्य बल तथा शरीर की पुष्टि को नाश करती है और बड़े रोगों को सुकाती है ॥ २१ ॥

अथ ताम्रस्योत्पत्तिर्नाम लक्षण गुणाश्च ॥ शुक्रं यत् कार्त्तिकेयस्य पतितं धरणी तले ॥ तस्मात्ताम्रं समुत्पन्न मिदमाहुः पुरा विदः ॥ २२ ॥ ताम्र मौदुम्बरं शुल्व मुदुम्बर मपि स्मृतम् ॥ रविप्रियं म्लेच्छमुखं सूर्य्यपर्य्याय नामकम् ॥ २३ ॥ जपा कुसुम सङ्काशं स्निग्धं मृदु घनक्षमम् ॥ लोहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥ २४ ॥ कृष्णं रूक्षमति स्तब्धं श्वेतञ्चापि घनासहम् ॥ लोहनाग युतञ्चेति

शुल्वं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥ २५ ॥ ताम्रं कषायं म-
धुरञ्च तिक्तं मम्लञ्च पाके कटुसारकञ्च ॥ पि-
त्तापहं श्लेष्महरञ्च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघुले
खनञ्च ॥ २६ ॥ पाण्डूदरार्शो ज्वरकुष्ठकास
श्वासक्षयान् पीनसमम्लपित्तम् ॥ शोथं कृ-
मिं शूलमपाकरोति प्राहुः परे बृंहणमल्पमेत-
त् ॥ २७ ॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वसम्यग् मारि
तेऽष्टते ॥ दाहः स्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छा क्लेदो रेको वमि
र्भ्रमः ॥ २८ ॥ (रेकः विरेकः)

भा० अनन्तर ताम्बेकी उत्पत्ति नाम लक्षण और गुणको कहते हैं ॥ कार्तिकेयका जो शुक्र पृथ्वीपर गिरा ॥ उससे ताम्बा उत्पन्न हुवा ऐसा पहिले लोग कहते हैं ॥ २२ ॥ ताम्र औदुम्बर शुल्व उदुंबर। रविप्रिय म्लेच्छमुख और सूर्य्यके पर्य्यय नाम येह ताम्बेके नाम हैं ॥ २३ ॥ जवाफूल के सदृश वर्ण चिकना मुलायम चोटको सहनेवाला ॥ लोह शीशा इनसे रहित ताम्बा फूकनेके वास्ते अच्छा होता है ॥ २४ ॥ काला रूखा अति श्वेत और चोटको न सहनेवाला ॥ लोह शीशेसे युक्त ऐसा ताम्बा खराब कहाहै ॥ २५ ॥ ताम्बा कसैला मधुर तिक्त अम्ल पाकमें कटु और सारक ॥ तथा पित्तका नाशक कफनाशक शीतल होता है और रोपण और हलका लेखन भी होताहै ॥ २६ ॥ और पांडुरोग उदररोग ज्वर कुष्ठ कास श्वास क्षय पीनस अम्लपित्त ॥ शोथ कृमि शूल इनको नाश करताहै और आचार्य्य उस्को अल्पबृंहण भी कहते हैं ॥ २७ ॥ विषमें एक दोष और अच्छी तरह न फुके हुवेमें आठ दोष होते हैं ॥ दाह स्वेद अरुचि मूर्छा क्लेद वमन विरेचन भ्रम। येह आठ दोष हैं ॥ २८ ॥ (क्लेद: मोह:)

अथ रङ्गस्य नाम लक्षण गुणाः।

रङ्गं वङ्गं त्रपु प्रोक्तं तथा पिच्चटमित्यपि ॥ खुरकं मिश्रकञ्चापि द्विविधं वङ्ग मुच्यते ॥ २९ ॥

उत्तमं खुरकं तत्र मिश्रकं त्ववरं मतम् ॥ रङ्गं ल-
घुसरं रूक्ष मुष्णं मेह कफ कृमीन् ॥ ३०॥ निह
न्ति पाण्डुं सश्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक् ॥
सिंहो यथा हस्ति गणं निहन्ति तथैव वङ्गो ऽखि
ल मेह वर्गम् ॥ देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं न
रस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ ३१॥

भा॰ अनन्तर रांगके नाम और लक्षण और गुण कहते हैं ॥ लाल रांगेको त्र
पु तथा पिचटभी कहते हैं ॥ खुरक और मिश्रक ऐसे दो प्रकारका रांगा हो
ताहे ॥ २९॥ उसमें उत्तम खुरक और मिश्रक खराब होता है ॥ रांग
हलका सर रूखा गरम होता है और प्रमेह कफ कृमि इनको ॥ ३०॥
नाश करता है और पांडुरोग श्वास इनकोभी नाश करता है ॥ तथा नेत्र
के हित और अल्पपित्त करनेवाला होताहे ॥ जैसे सिंह गज गणों को नाश क
रताहे वैसे रांगा सम्पूर्ण प्रमेह वर्गको नाश करता है ॥ और देहका सौख्य
इन्द्रियकी प्रबलता और पुष्टिको भी निश्चय करता है ॥ ३१॥

[अथ यसद । यसदं रङ्ग सदृशं रीति हेतुश्च त-
न्मतम् ॥ यसदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफ पित्तह-
न् ॥ ३२॥ चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासञ्च
नाशयेत् ॥ [अथ सीसस्योत्पत्ति र्नाम गुणाश्च ।
दृष्ट्वा भोगि सुतां रम्यां वासुकिस्तु मुमोचयत् ॥ वी
र्य्यं जात स्ततो नागः सर्व रोगापहो नृणाम् ॥ ३३॥
सीसं व्रध्नञ्च वप्रञ्च योगेष्टं नागनामकम् ॥
[नागनामकम् । नागः भुजङ्गः इत्यादि ।)

सीसं रङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान् मेह नाशनम् ॥३४॥
नागस्तु नाग शत तुल्य बलं ददाति व्याधिं विना-
शयति जीवन मातनोति । वन्हिं प्रदीपयति का
मबलं करोति मृत्युञ्च नाशयति सन्तत सेवितः
सः ॥ ३५ ॥ पाकेन हीनौ किल बङ्गनागौ कुष्ठा-
नि गुल्मांश्च तथाति कष्टान् ॥ कण्डूं प्रमेहानल
साद पीथ भगन्दरादीन् कुरुतः प्रभुक्तौ ॥ ३६॥

भा॰ अनन्तर जस्त । यसद् रंगसदृश रीति हेतु अर्थात् पीतलका कार
णउसेको कहाहै ॥ जस्त कसैला तिक्त शीतल कफ पित्तका नाशक ॥
॥ ३२॥ परम नेत्रका हित प्रमेह पाण्डुरोग श्वास इनकोभीनाशकरताहै
अनन्तर सीसेकी उत्पत्ति नाम और गुण कहतेहैं ॥ वासुकी ने सुंदर
नाग कन्याओं को देखकर वीर्यको छोड़ा उससे मनुष्यों के सब रोगों का
नाशक सीसा उत्पन्न हुआ ॥ ३३॥ सीस वध्र वप्र योगेष्ठ नाग नामक
अर्थात् सांपके नामवाला येह सीसेके नामहैं ॥ सीसा गुण में रंगके स
मान होताहै ॥ और विशेषकरके प्रमेह का नाशक है ॥ ३४ ॥ सीसा सौ
हाथी के समान बलको देताहै और रोगों के नाश करता है तथा जीवन को दे
ताहै और अग्निको दीपन करता तथा काम बलको देताहै ॥ निरन्तर सेव
न करनेसे वोह मृत्युको नाश करताहै ॥ ३५॥ अच्छी तरह न फुंके हुवे
नाग और बंगी को खानेसे वोह कुष्ठ वायगोला तथा अति कष्ट खुजली
॥ प्रमेह अग्निमान्द्य सूजन भगन्दर आदियों को करते हैं ॥ ३६॥

[अथ लोहस्योत्पत्ति नाम लक्षण गुणाश्च ।]

पुरा लोमिन दैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि ॥ उत्प
न्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥ ३७॥
लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसा-
यसी ॥ गुरुता दृढतोत्क्लेदः कश्मलं दाह कारि

ता ॥ ३७ ॥ अश्मदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्ताय सस्य नु ॥ लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥ ॥ ३९ ॥ रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ कफं पित्तं गरं शूलं शोथार्श प्लीह पाण्डुताः ॥ ४० ॥ मेदो मेह क्रमीन् कुष्ठं तत्त किट्टं तद्वदेव हि ॥ पाण्डुत्व कुष्ठामय मृत्युदं भवेत् हृद्रोगशूलौ कुरुते ऽश्मरीञ्च ॥ नाना रुजानाञ्च तथा प्रकोपं करोति हृल्लासमशुद्ध लोहम् ॥ ४१ ॥ जीवहारी मदकारी चायसं देह शुद्धि मद संस्कृतं ध्रुवम् ॥ पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजाञ्च यच्छति ॥ ४२ ॥ कूष्माण्ड तिल तैलञ्च माषान्नं राजिकां तथा ॥ मद्य मम्ल रसञ्चापि त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ४३ ॥

भा० अनन्तर लोहकी उत्पत्ति नाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥ देवताओं की लड़ाई में मारे हुवे लोमिन दैत्यों के ॥ शरीरों में से नाना प्रकार के लोह उत्पन्न हुवे ॥ ३७ ॥ लोह शस्त्रक तीक्ष्ण पिण्ड काल आयस । यह लोहके नाम हैं ॥ भारीपन दृढता मतलीकरना कस दाह करना ॥ ॥ ३८ ॥ अश्मरीदोष मृदु दुर्गन्धता यह सात दोष लोहे के हैं ॥ लोह तिक्त सर शीतल मधुर कसैला भारी ॥ ३९ ॥ रूखा रसायन नेत्र के हित । लेखन और वातल है ॥ और कफ पित्त विष शूल सूजन बवासीर पिलही पांडुरोग ॥ ४० ॥ मेद प्रमेह कृमि कुष्ठ इनको जीतता है । और उसका कीट भी उसीके समान होता है ॥

अशुद्ध लोहा पांडुत्व कुष्ठ रोग और मृत्यु इनको करने वाला है और हृद रोग शूल अश्मरी इनको भी करता है । तथा अनेक प्रकार की पीड़ाओं का

प्रकोप और हल्लास इनको भी करता है ॥ ५१॥ बिन शुधा लोहा जीवन का ना शक मद करनेवाला और वमन विरेचन करने वाला निश्चय है ॥ और शरीर में चैतन्य ना नहीं करता तथा हृदय में दारुण पीड़ा भी करता है ॥५२॥ पेठा तिल तैल उड़द राई ॥ मदिरा खटाई इनको लोह का सेवन करने वाला त्याग देवे ॥ ५३॥

[तत्र सारलोहस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

क्ष्माभृच्छिखराकारान्यङ्गान्यम्लेन लेपयेत् ॥
लोहे स्युर्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते ॥५४
लोहं सारा ह्वयं हन्यात् ग्रहणीमतिसारकम् ॥
अर्द्ध सर्वाङ्गजं वातं शूलञ्च परिणामजम् ॥५५॥
छर्दिञ्च पीनसं पित्तं श्वासं कासं व्यपोहति ॥

भा० उसमें सार लोह के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ पहाड़ वा शिखराकार अंगों को खटाई से लेप करे ॥ उस लोहे में से जो सूक्ष्म अंश होते हैं ॥ उस को सार कहते हैं ॥ ५४ ॥ सार नामक लोह संग्रहणी अतीसार ॥ और अर्द्धा ङ्ग तथा सर्वाङ्ग वात तथा परिणाम शूल इनको नाश करता है ॥ ५५॥ और वमन पीनस पित्त श्वास कास इनको भी नाश करता है ॥

[अथ कान्तलोहस्य लक्षणं गुणाश्च।] यत्पा त्रेन प्रसरति जले तैलविन्दुः प्रतप्ते हिङ्गुर्गन्ध न्त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बकल्कः ॥ ५६॥ तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं कृ ष्णाङ्गः स्यात् सजलचणकः कान्तलोहं तदुक्त म ॥ ५७॥ गुल्मोदरार्शः शूलाममामवातं भग न्दरम् ॥ कामला शोथ कुष्ठानि क्षयं कान्तमयो

हरेत् ॥ ५८ ॥ प्लीहानमम्ल पित्तञ्च यकृच्चापि शिरो रुजम् ॥ सर्वान्रोगान् विजयते कान्तलो-हं न संशयः ॥ ५९ ॥ बलं वीर्य्यं वपुः पुष्टिं कुरु-तेऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥

भा० कान्त लोहका लक्षण और गुण कहते हैं ॥ जिस जलके भरे पात्र में तेलकी बून्द नहीं फैलती और तपाने में हींग सी गन्ध निकलती है ॥ तथा नीमकी छाल सा कडुवा होता है ॥ ५६ ॥ और जिसमें गरम दूध शिखर के आकार ऊंचा होता है परन्तु ज़मीन पर नहीं गिरता ॥ और जलके सहित चने काले हो जाते हैं उसको कान्तलोह कहा है ॥ ५७ ॥ कान्तलोह बायगोला उदररोग बवासीर शूल आम और आमवात भगंदर ॥ कामला सूजन कुष्ठ और क्षय इनको नाश करता है ॥ ५८ ॥ और पिलही अम्लपित यकृत शिरकी पीड़ा ॥ तथा सबरोग इनको कान्तलोह जीतता है इसमें कोई संशय नहीं ॥ ५९ ॥ और बलवीर्य्य शरीरकी पुष्टि करता है तथा अग्निको बढ़ाता है ॥

[अथ कीटी।]

ध्मायमानस्य लोहस्य मलं मण्डूरमुच्यते ॥ लोह सिंहानिका किट्टी सिंहानञ्च निगद्यते ॥ ५० ॥ यल्लोहं यद्गुणं प्रोक्तं तत् किट्टमपि तद्गुणम् ॥

भा० अनन्तर कीटी। तपाये हुये लोहेका जो कीट है उसको मंडूर कहते हैं ॥ लोह सिंहानिका किट्टी सिंहान भी कहते हैं ॥ ५० ॥ जो लोहा जिस गुण वाला कहा गया है उसका कीट भी उसी गुण वाला है ॥

अथोपधातवः।] तत्रोपधातूनां लक्षणं गुणाश्च।]

सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिकं तारमाक्षिकम् । तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु ॥ ५१ ॥

[उपधातवः गौणधातवः।] उपधातुषु सर्वेषु तत्त-द्धातु गुणा अपि ॥ सन्ति किं तेषु तेऽन्यूना तथ

माल्प भाषत:॥५२॥ [तत्र सुवर्णमाक्षिकस्य नामानि गुणाश्च । स्वर्णमाक्षिक माख्यातं ताापीजं मधुमाक्षिकम् ॥ ताप्यं माक्षिक धातुश्च मधु धातुश्च सस्मृतः॥ ५३॥ किञ्चित सुवर्ण साहित्यात स्वर्ण माक्षिक मीरितम् ॥ उपधा तु: सुवर्णस्य किञ्चित स्वर्ण गुणान्वितम् ॥५४

भा० अनन्तर उपधातु को कहते हैं ॥ उसमें उपधातुवों का लक्षण और गुण कहते हैं ॥ सोना माखी रूपा माखी लीला थोथा कांसा पीतल सिंदूर शिलाजीत । येह सात उपधातु हैं ॥ ५१॥ सब उपधातुवों में उन २ धातुवों के गुण भी हैं ॥ तो क्या उन में वो घट के हैं क्यों कि उन उन के अंश अल्प होने से ॥ ५२॥ उनमें सोना माखी के नाम और गुण कहते हैं ॥ सुवर्णमाक्षिक तापीज मधुमाक्षिक ॥ ताप्य माक्षिक धातु मधुधातु । येह उसके नाम हैं ॥ ५३॥ कुछ एक सोने के मिले होने से सोना माखी कही गई है ॥ सोने की उपधातु कुछ एक सोने के गुण से युक्त होती है ॥ ५४॥

तथाच काञ्चना भावे दीयते स्वर्ण माक्षिकम् किन्तु तस्मानुकं पत्वात किञ्चिदून गुणास्ततः ॥ ५५॥ न केवलं स्वर्ण गुणाः वर्तन्ते स्वर्ण माक्षिके ॥ द्रव्यान्तरस्य संसर्गात् सन्त्यन्येऽपि गुणास्ततः ॥ ५६ ॥सुवर्ण माक्षिकं स्वादु तिक्तं दृष्यं रसायनम् ॥ चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठ पाण्डु मेह विषोदरान् ॥ ५७॥ अर्शः शोथं विषकण्डुं त्रिदोष मपि नाशयेत् ॥

मन्दानलत्वं बलहानि मुग्रां विष्टम्भतां नेत्र गदान् सकुष्ठान् तथैव मालां व्रण पूर्व्विकाञ्च करोति तापीज मशुद्ध मेतद् ॥ ५८ ॥

भा० वैसेही स्वर्ण के अभाव में सोनामाखी दीजातीहै। क्योंकि उससे पीछे कहने से उससे कुछ एक गुण में न्यून है ॥ ५५ ॥ केवल सुवर्ण के ही गुण सोनामाखी में नहीं हैं। किन्तु द्रव्यान्तर के संयोग से और भी गुण हैं ॥ ५६ ॥ सोना माखी मधुर तिक्त शुक्र को उत्पन्न करनेवाली रसायन। नेत्र के हितहै। और वस्तिकी पीड़ा कुष्ट पाण्डुरोग प्रमेह विष उदर रोग ॥ ५७ ॥ बवासीर शोथ विष, कंडू त्रिदोष इनको भी नाश करती है ॥ बिना सोधी सोना मन्दाग्नि बलकी हानि अत्यन्त विष्टम्भ का होना नेत्ररोग कुष्ठ ॥ वैसे ही गंडमाला इनको करती है ॥ ५८ ॥

अथ तारमाक्षिकस्य नाम गुणाः। तार माक्षिक मन्यत्तु तद्भवेद्रजतोपमम्। किंचिद्रजत साहित्यात् तार माक्षिक मीरितम् ॥ ५९ ॥ अनुकल्प तया तस्य ततो हीन गुणाः स्मृताः ॥ नकेवलं रूप्य गुणाः यतः स्यात्तार माक्षिकम् ॥ ६० ॥ स्वादु पाके रसे किञ्चित् तिक्त वृष्यं रसायनम् ॥ चक्षुष्यं वस्तिरुक कुष्ठ पाण्डु मेह विषोदरम् ॥ ६१ ॥ अर्शः शोथं तयड्कण्डूं त्रिदोष मपि नाशयेत ॥

भा० अन तार रूपा माखीके नाम और गुण ॥ और दूसरी रूपा माखी चांदीके समान होतीहै ॥ कुछेक चांदीके मिलने से रूपामाखी कहीहै ॥ ५९ ॥ उसके पीछे कहनेसे उससे हीन गुण कहीगई है ॥ केवल चांदीके गुण रूपा माखी में नहीं हैं ॥ ६० ॥ जैसे पाक में मधु रस में कुछ तिक्त शुक्रको उत्पन्न करने वाली रसायन नेत्रके हितहै और पेड़ की पीड़ा और कुष्ठ पाण्डुरोग

प्रमेह विष उदर रोग ॥ ६१॥ ववासीर सूजन क्षय कंडू विषदोष इनको नाश करतीहै ॥

मन्दानलत्वं बलहानि मुग्रां विष्टम्भितान्नेत्र गदान् सकुष्ठान् । तथैव मालां व्रण पूर्व्विं काञ्च करोति तापीज मिदञ्च तद्वत् ॥ ६२॥

अथ तूतीआ ।] तुत्थं वितुन्नकञ्चापि शिखिग्रीवं मयूरकम् ॥ तुत्थ न्ताम्रोपधातु हिं किञ्चित्ताम्रेण तद्भवेत् ॥ ६३॥ किञ्चित्ताम्र गुण न्तस्मा द्वक्ष्यमाणा गुणाश्च तत् ॥ तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ॥ ६४॥ लेखनम्भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफ पित्तहृत ॥ विषाश्म कुष्ठ कण्डूघ्नं खर्परञ्चापि तद्गुणम् ॥ ६५॥

भा॰ बिन सोधी हुई रूपामाखी मन्दाग्नि बलहानी विष्टम्भता नेत्ररोग कुष्ठ गंडमाला इनको करतीहै ॥ ६२॥

अनन्तर तूतिया ।] तुत्थ वितुन्नक शिखीग्रीव मयूरक । येह नीलेथोथे के नाम हैं ॥ नीलाथोथा तांवेकी उपधातु और थोड़े ताम्बेसे होताहै इसवासे थोड़ेसे तांबेके गुण और कहेहुवे गुण होतेहैं ॥ नीला थोथा कड़वा क्षार कसेला वमन करानेवाला हलका ॥ ६४॥ लेखन भेदन शीतल नेत्र कोहित कफ पित्तका नाशक है । और विष अश्मरी कुष्ट कन्डू इनका नाशक होताहै ॥ और खपरिया भी उसीसमान गुणमें है ॥ ६५॥

अथ कांसी ।] ताम्र त्रपुज माख्यात ङ्कांस्यं घोषञ्च कंसकम् ॥ उपधातु र्भवेत् कांस्यं द्वयोस्तरणि रङ्गयोः ॥ ६६॥ कांसस्य तु गुणा ज्ञेयाः स्वयोनि

सदृशा जनैः ॥ संयोगज प्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृताः ॥ ६७ ॥ कांस्य कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम् ॥ गुरु नेत्र हितं रूक्षं कफ पित्त हरम्परम् ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर कांसा ।] ताम्बे और रांगा से उत्पन्न हुवा प्रसिद्ध है ॥ कांस्य घोष कंसक । येह कांसे के नाम हैं ॥ कांसा ताम्बा और रांगे का उपधातु है ॥ ६६ ॥ कांसे के गुण अपने कारण के समान जानने चाहिये ॥ संयोगज प्रभाव से उस्के औरभी गुण कहे हैं ॥६७॥ कांसा कसैला तिक्त उष्ण लेखन सर विषद ॥ भारी नेत्रके हित रूखा कफ पित्तका नाशक है ॥ ६८ ॥

[तथा पीतलं । काची पीतलं ।] पित्तलं त्वार कूटं स्यादारो रीतिश्च कथ्यते ॥ राजरीतिः ब्रह्मरीतिः कपिला पिङ्गलापि च ॥ ६९ ॥ रीतिरप्युपधातुः स्यात्ताम्रस्य यसदस्य च ॥ पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनि सदृशा जनैः ॥ ७० ॥ संयोगज प्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः ॥ रीतिका युगलं रूक्षं तिक्तञ्च लवणं रसे ॥ ७१ ॥ शोधनं पाण्डु रोगघ्नं कृमिघ्नं नाति लेखनम् ॥

भा० अनन्तर पीतल और कच्चा पीतल । पितल आरकूट आर रीति । येह पीतल के नाम हैं ॥ और राजरीति ब्रह्मरीत कपिला पिंगला । येह कच्चे पीतल के नाम गुण हैं ॥ ६९ ॥ पीतल भी ताम्बा और जस्त का उपधातु है पीतल के गुण अपने कारण के सदृश जानने चाहिये ॥ ७० ॥ संयोगज के प्रभावसे उस्के और गुण कहते हैं ॥ दोनों पीतल रूखे तिक्त लवण रस में हैं ॥ ७१ ॥ और शोधन पाण्डु रोग के नाशक कृमि नाशक

न बहुत लेखन है ॥

अथ सिन्दूर ।] सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भश्च सीसजम् ॥ सीसोप धातुः सिन्दूर गुणैस्तत् सीसवन्मतम् ॥ संयोगज प्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः ॥७३॥ सिन्दूर मुष्णं वीसर्प कुष्ट कण्डू विषापहम् ॥ भग्नसन्धान जननं व्रण शोधन रोपणम् ॥७४॥

भा० अनन्तर सिन्दूर ।] सिन्दूर रक्तरेणु नागगर्भ सीसज । येह सिन्दूर के नामहैं ॥ ७२ ॥ सिन्दूर सीसेका उपधातुहै और गुण शीसेके समान हैं ॥ तथा संयोगज प्रभावसे उस्केभी और गुण कहेहैं ॥ ७३ ॥ सिन्दूर गर्म विसर्प कुष्ठ खुजली इनकानाशक ॥ और टूटहुवे को जोडनेवाला । व्रण शोधन और रोपण है ॥७४॥

अथ शिलाजतु ।] तदुत्पत्तिर्नाम लक्षण गुणाश्च ।] निदाघे धर्म्म सन्तप्ता धातु सारन्धरा धराः ॥ निर्य्यासवत् प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्त्तितम् ॥७५॥ सौवर्णं राजतन्ताम्रं मायसन्तच्चतुर्विधम् ॥

भा० अनन्तर शिलाजीत ।] उस्की उत्पत्ति नाम लक्षण गुण ॥ ग्रीष्म में संतप्तहुवे पर्वत धातुके सारको गोंदके समान छोडतेहैं उस्को शिलाजीत कहतेहैं ॥ ७५ ॥ सोनेका चान्दीका ताम्बेका और लोहेका ऐसे चार प्रकारका वोह होता है ॥

शिलाजत्वद्रिजतु च शैल निर्य्यास इत्यपि ॥ ॥७६॥ गैरेयमश्मजञ्चापि गिरिजं शैल धातुजम् ॥ शिलाजं कटु तिक्तोष्णं कटु पाकं रसा-

यनम् ॥ ७७ ॥ छेदियोगवहं हन्ति कफमेदाश्म शर्करा: ॥ मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वाताशींसि च पाण्डुताम् ॥ ७८ ॥ अपस्मारन्तथोन्मादं शोथ कुष्ठोदर कृमीन् ॥ ७९ ॥ सौवर्णन्तु जवापुष्प वर्णं भवति तद्रसात् ॥ मधुरं कटु तिक्तञ्च शीतलं कटु पाकि च ॥ ८० ॥ राजतम्पाण्डुरं शीतं कटुकं स्वादु पाकि च ॥ ताम्रं मयूरकण्ठाभं तीक्ष्णमुष्णञ्च जायते ॥ ८१ ॥ लौहं जटायुपक्षाभं तत्तिक्तं लवणम्भवेत् ॥ विपाके कटुकं शीतं सर्वश्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ ८२ ॥

भा० शिलाजतु अद्रिजतु शैलनिर्य्यास ॥ ७६ ॥ गैरेय अश्मज गिरिज शैलधातुज येह शिलाजीत के नाम हैं ॥ शिलाजीत कड़ुवा तीता उष्ण पाकमें कटु रसायन है ॥ ७७ ॥ और छेदन करनेवाला तथा योग वाही है। और कफ मेद अश्मरी शर्करा इनको नाश करता है ॥ तथा मूत्रकृच्छ्र क्षय श्वास वातकी ववासीर पाण्डुता ॥ ७८ ॥ मिरगी उन्माद शोथ कुष्ठ रोग उदररोग कृमि इनको नाश करता है ॥ ७९ ॥ सौवर्ण शिलाजीत वर्णमें जवाफूल के समान होता है ॥ और रसमें मधुर कटु तिक्त शीतल पाकमें कटु होता है ॥ ८० ॥ चांदीके मैलका शिलाजीत वर्णमें श्वेत शीतल कटु पाकमें मधुर होता है ॥ तांबेका वर्णमें मोरके कंठके समान तीखा उष्ण होता है ॥ ८१ ॥ लोहे का रंगत में गिद्धके पंख समान होता है और वोह तिक्त लवण होता है ॥ तथा पाकमें कटु शीतल और सबमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ८२ ॥

[अथ रस: ।] तत्र रसस्य निरुक्तिः ।]

रसायनार्थिभिर्लोकै: पारदो रस्यते यत: ॥

ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ॥८३॥
[अथ पारदस्योत्पत्तिर्लक्षणं नाम गुणाः।]
शिवाङ्गात् प्रच्युतं रेतः पतितन्धरणीतले ॥ तद्देहसारजातत्वाच्छुक्लमच्छमभूच्च तत ॥८४॥
क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्य्यञ्चतुर्विधम् ॥ श्वेतं रक्तन्तथा पीतं कृष्णन्तत्तु भवेत् क्रमात् ॥८५॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलु जातितः ॥ श्वेतं शस्तं रुजां नाशे रक्तङ्किल रसायनम् ॥८६॥ धातुवेधेतु तत्पीतं खेगतौ कृष्णमेव च ॥ पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः ॥८७॥

भा० अनन्तर पारा।] और उस्की निरुक्ति। जिस कारण रसायन चाहनेवाले लोग पारा खाते हैं उसकारण रस इसप्रकारसे कहा है और वोह धातुभी कहा गया है ॥८३॥ अनन्तर पारेकी उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहते हैं ॥ शिवजी के अंगसे निकला हुवा वीर्य्य पृथिवपर गिरा ॥ उनके देह सारसे उत्पन्न होनेसे वोह श्वेत और स्वच्छ हुवा ॥ ८४॥ पारा क्षेत्र भेदसे चारप्रकार का जानना चाहिये ॥ सफेद लाल पीला काला क्रमसे ॥ ८५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनजातिसे होता है ॥ श्वेत रोगोंके नाशमें प्रशस्त है। और लाल रसायन ॥८६॥ धातु वेधमें पीला और और आकाश गमन में काला प्रशस्त है ॥ पारद रसधातु रसेन्द्र महारस ॥८७॥

चपलः शिववीर्य्यञ्च रसः सूतः शिवाह्वयः ॥
पारदः षड्रसः स्निग्धः त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥
॥८८॥ योगवाही महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः ॥

सर्वामय हरः प्रोक्तो विशेषात्सर्व्व कुष्ठनुत॥
॥ ८९ ॥ स्वस्थो रसो भवेद् ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो ज-
नार्द्दनः ॥ रञ्जितः क्रामितश्चापि साक्षाद्देवो
महेश्वरः ॥ ९० ॥ मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धन
मनुभूयखे गतिं कुरुते ॥ अजरी करोति हि मृ-
तः कोऽन्यः करुणा करः सूतात् ॥ ९१ ॥

भा० चपल शिववीर्य्य रससूत शिवनाम येह पारेके नामहैं ॥ पांच रससे युक्त चिकना त्रिदोषनाशक रसायन ॥ ८८ ॥ योगवाही अत्यन्त पुत्रको करनेवाला, और दृष्टिबलको देनेवाला है. ॥ तथा सब रोगोंका नाशक और विशेषकरके कुष्ट नाशक कहाहै ॥ ८९ ॥ स्वस्थ रस ब्रह्मा होताहै और बन्धाहुवा पारा विष्णु होताहै ॥ रंजित तथा क्रामित साक्षात् महादेव है ॥ ९० ॥ मूर्छित पारा रोगोंको नाश करताहै और बन्धनको जानकर आकाशमें गतिको करताहै ॥ तथा मराहुवा अजर करताहै । इसवास्ते पारेसे सिवाय और कौन करुणाकर है ॥ ९१

असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्य नास्ति चिकित्सि-
तम् ॥ रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जर वाजिना-
म् ॥ ९२ ॥ मलं विषं वह्नि गिरित्व चापलन्नैस-
र्गिकन्दोष मुशन्ति पारदे ॥ उपाधिजौ द्वौ त्रपु
नागयोगजौ दोषौ रसेन्द्रे कथितौ मुनिश्वरैः ॥
॥ ९३ ॥ मलेन मूर्च्छा मरणं वि षेण दाहोऽ
ग्निना कष्टतरः शरीरे ॥ देहस्य जाड्यङ्गिरिणा
सदास्यात् चाञ्चल्यतो वीर्य्य हतिश्च पुंसाम् ॥
॥ ९४ ॥ वङ्गेन कुष्ठम्भुजगेन षण्डो भवेद् नो-

ऽसो परिशोधनीयः॥वन्हिर्विष मलञ्चेति मुख्या दोषास्त्रयो रसे ॥ ६५ ॥ एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं मूर्च्छां नृणां क्रमात् ॥ अन्येऽपि कथिता दोषा भिषग्भिः पारदे यदि ॥ ६६ ॥ तथाप्येते त्रयो दोषा हरणीया विशेषतः ॥ संस्कार हीनं खलु सूत राजं यःसेवते तस्य करोति बाधाम् ॥ देहस्य नाशं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥ ६७ ॥

भा० जो रोग असाध्य होजाता है और जिसकी दवा नहीं है ॥ उस रोगको और मनुष्य घोड़ा हाथी इनके रोगोंको पारा नाश करताहै ॥ ६२॥ मल विष वन्हि गिरि त्वचपलता ये पारेमें नैसर्गिक दोष कहे हैं ॥ दो उपाधि सीसा और रांगा इनके योगसे उत्पन्न हुवे दोष पारेमें मुनिश्वरोंने कहाहै ॥ ॥ ६३ ॥ मलसे मूर्च्छा विषसे मरण अग्निसे शरीर में अत्यन्त कठिन दाह गिरिसे देहमें सदाजड़ता होती है और चंचलता से मनुष्यों के वीर्य्यका नाश होताहै ॥ ६४ ॥ रांगेसे कोढ़ सीसे से नपुंसकता होती है। इसवास्ते येह पारा शोधने योग्यहै ॥ पारेमें तीन दोष मुख्य हैं वन्हि विष और मल ॥ ६५॥ येह दोष मनुष्यों को क्रमसे सन्ताप मृत्यु मूर्च्छा करते है ॥ यदि औरभी दोषवैद्यों ने पारेमें कहेहैं ॥ ६६॥ परंतु तथापि येह तीनदोष विशेष कर के दूर करने चाहियें ॥ संस्कार हीन पारेको जो सेवन करताहै उसको बाधा करताहै ॥ और मनुष्यों की देहका नाश करताहै तथा अत्यन्त कष्ट साध्य रोगोंको भी करताहै ॥ ६७॥

अथोपरसानां लक्षणम्।] गन्धो हिङ्गुल मभ्र तालक शिलाः स्रोतोऽञ्जनटङ्कणम् ॥ राजावर्त्त कचुम्बकौ स्फटिकया शङ्खः खटी गैरिकम्

कासीसं रसकर्पूरं सिकता बोलाश्च कङ्कुष्ठकम् ॥ सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः ॥ ९२ ॥ (उपरसा गौणा रसाः।)

[हिङ्गुलस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हिङ्गुलन्दरदं म्लेच्छ मिङ्गुलं चूर्णपारदम् ॥ दरद स्त्रिविधः प्रोक्त श्चर्म्मारः शुकतुण्डकः ॥ ९३ ॥ हंसपादस्तृतीयः स्याद्गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥ चर्म्मारः शुक्लवर्णः स्यात्सपीतः शुकतुण्डकः ॥ ९४ ॥ जवाकुसुम सङ्काशो हंसपादो महोत्तमः ॥ तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफ पित्तहारि ॥ हृल्लासकुष्ठज्वर कामलांश्च प्लीहामवातौ च गरन्निहन्ति ॥ ९५ ऊर्द्ध्वपातन युक्त्या तु डमरुयन्त्रपाचितम् ॥ हिङ्गुलन्तस्य सूतन्तु शुद्धमेवं न शोधयेत् ॥ ९६

भा० अनन्तर उपरसोंका लक्षण ॥ गन्धक सिंगरफ अभ्रक हरताल मनसिल सुरमा सुहागा ॥ रेह चुम्बक पत्थर बिल्लौर पंरव खड़िया माटी गेरू ॥ ९८ ॥ हीरा कसीस रसकपूर कौड़ी रेत बो ल इसको फूल सत्वभी कहतेहैं पहाड़ीमट्टी ॥ सोरठीमाटी येह उपरस कहे गयेहैं ॥ पारेका कुछ एक गुण इनमें होना है ॥ ९२ ॥

उपरस अर्थात् गौणरस।] सिंगरफ के नाम और गुण ॥ हिंगुल दरद म्लेछ इंगुल चूर्णपारद । येह सिंगरफके नाम हैं ॥ सिंगरफ तीन प्रकारका होताहै ॥ चर्म्मार शुक तुंडक ॥ ९३॥ और तीसरा हंसपाद । येह उत्तरोत्तर गुणमें अधिक ॥ चर्म्मार सफ़ेद होताहै । और पीलाई के सहित शुकतुंडक होताहै ॥ ९४॥ हंसपाद जवा फूल के समान

होताहै। वोह बहुत उत्तम है॥ तिक्त कसेला कडुवा हिंगुल होता है॥ और ने त्ररोगका नाशक तथा कफ पित्तका नाशक होता है॥ और हृल्लास कुष्ठ ज्वर कामला इनको तथा पिलही आमवात और विष इनको भी नाश करता है॥ ९५॥ ऊर्द्ध पातनकी युक्ति से अथवा डमरूयंत्र से पकाया हुवा॥ हिंगुल उस्का पारा इसप्रकार सिद्ध होताहै इसको नशोधन करे॥ ९६॥

[अथगन्धकस्योत्पत्ति नाम लक्षण गुणाश्च]

श्वेत द्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्या रजसा प्लुतम्॥ दुकूलन्ते न वस्त्रेण स्नातायाः क्षीर नीरधौ॥ ९७॥ प्रसृतं यद्रज स्तस्मात् गन्धकः समभूत्ततः॥ गन्धको गन्धकश्चापि गन्धपाषाण इत्यपि॥ ९८॥ सौगन्धिकश्च कथितो बलिर्बलरसापि च॥ चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः॥ ९९॥ रक्तो हेम क्रियासु स्यात् ... पीत श्वेतो रसायने॥ व्रणादि लेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः॥ १००॥

भा॰ अनन्तर गन्धक की उत्पत्ति और नाम लक्षण गुणों को कहतेहैं॥ श्वेत द्वीपमें पहिले क्रीडा करती हुई पार्वतीजीका कपड़ा रजसे सनगया था उस कपडेसे॥ क्षीर सागर में स्नान करती हुई का उस साड़ीसे जो रज फैला उससे गन्धक हुवा। गन्धक गन्धिक गन्धपाषाण॥ ९८॥ सौगन्धिक बलि बलरस येह गन्धक के नामहैं॥ गन्धक चार प्रकार का होता है लाल पीला सुफेद काला॥ ९९॥ लाल सुवर्ण क्रियामें काम आताहै॥ और पीला सुफेद रसायन में कहाहै॥ और घाव आदि के लेपमें सुफेद तथा काला श्रेष्ठ होता है वो ह दुर्लभ है॥ १००॥

(श्रेष्ठः हेमक्रिया दिषु सर्वत्र प्रशस्ततरः,)

गन्धकः कटुक स्तिक्तो वीर्य्योष्ण स्तुवरः सरः॥

पित्तलः कटुकः पाके कण्डूवीसर्पजन्तुजित्॥ २०१॥ हन्ति कुष्ठ क्षय प्लीह कफ वातान् रसायनः॥ अशोधितो गन्धक एष कुष्ठं करोति तापं विषमं शरीरे॥ २०२॥ सौख्यञ्च रूपञ्च बलं तथौजः शुक्रं निहन्त्येव करोति चास्रम्॥

भा० (अथ सुवर्णक्रियादि में सब जगह में श्रेष्ठतर है) गन्धक कटु तिक्त वीर्य्य में उष्ण कसेला सर होता है॥ पित्त को करनेवाला पाक में कटु और खुजली वीसर्प कृमि इनको जीतनेवाला है॥ २०१॥ और कुष्ठ क्षय पिलही कफ वात इनको नाश करता है तथा रसायन है॥ बिन सुधा हुवा यह गन्धक कुष्ठ को और विषम सन्तापको शरीरमें करता है॥ २०२॥ सौख्य रूप बल तथा ओज शुक्र इनको नाश करता है और रक्त को करता है॥

[अथाभ्रकस्योत्पत्तिर्नाम लक्षण गुणाश्च।]

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम्॥ विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः॥ २०३॥ ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम्॥ तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम्॥ २०४॥ तद्वज्रं वज्रपातत्वादभ्रमभ्ररवोद्भवात्॥ गगनात् स्खलितं यस्माद् गगनञ्च ततो मतम्॥ २०५॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तत् स्याच्चतुर्विधः॥

भा० अनन्तर अभ्रक की उत्पत्ति नाम लक्षण और गुणको कहते हैं॥ पहिले इन्द्रने वृत्रासुर को मारने केवास्ते वज्र उठाया॥ उसे उसके चिंगारे आकाशमें फैलगये॥ २०३॥ बादल के गरज से पहाड़ों की चोटी पर गिरे॥ उसी से उन २ पहाड़ों में अभ्रक उत्पन्न हुवा॥ २०४॥ सोह

वज्र सेउत्पन्न होनेसे और अभ्र बादलों के गर्ज सेउत्पन्न होनेसे तथा आकाश से गिरनेसे गगन माना है ॥ २०५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन भेदोंसे वोह चार प्रकार का होताहै ॥

क्रमेणैवा सितं रक्तं पीतं कृष्णञ्च वर्णतः ॥ २०६ प्रशस्यते सितन्तारं रक्तं तत्तु रसायने ॥ पीतं हेमनि कृष्णन्तु गदेषु द्रुतयेऽपि च ॥ २०७॥ पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रञ्चेति चतुर्विधम् ॥ मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकन्दल सञ्चयम् ॥ २०८॥ अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठ प्रदायकम् ॥ दर्दुरं त्वग्निनिःक्षिप्तं कुरुते दर्दुर ध्वनिम् ॥ २०९॥ गोलकान्बहुशः कृत्वा सस्यान मृत्यु प्रदायकः ॥

भा० क्रमसे सफेद लाल पीला काला इन चार वर्णों से चार जातिका है ॥ २०६॥ सफेद चांदीमें प्रशस्त है और रक्त रसायन में प्रशस्त है ॥ तथा पीला सोनेमें और काला रोगमें तथा गलानेमें भी प्रशस्त है ॥ २०७ पिनाक दर्दुर नाग वज्र ऐसे चार प्रकारका अभ्रक होताहै ॥ पिनाक आगमें डालने से पत्र २ अलग होजाताहैं ॥ २०८॥ विनजाने उसको खाने से महाकुष्ठ उत्पन्न होता है ॥ दर्दुर आगमें डालने से दर्दुर शब्दको करताहै ॥ २०९॥ बहुत से गोलकों को करके वोह मृत्युदायक होताहै ॥ नाग अभ्रक सर्पके समान अग्निमें फूतकार शब्दोंको करताहै ॥ उसको खाने से अवश्य भगंदर होताहै ॥ २१०॥

नागन्तु नागवद् वन्हौ फुत्कारं परिमुञ्चति ॥ स तद्भक्षितं वश्यन्तु विदधाति भगन्दरम् ॥ २१०॥ वज्रन्तु वज्रवत्तिष्ठेत् तन्नाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥ सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधि वार्द्धक्य मृत्यु हृत् ॥ २११॥

अभ्र मुत्तर शैलोत्थं बहुसत्वं गुणाधिकम् ॥ दक्षिणाद्रि भवं स्वल्प सत्व मल्प गुण प्रदम् ॥ ११२॥ अभ्र कषायं मधुरं सुशीत मायुष्करं धातु विवर्द्धनञ्च ॥ हन्यात् त्रिदोषं व्रण मेह कुष्ठ प्लीहोदरं ग्रन्थि विष कृमींश्च ॥११३॥ रोगान् हन्ति दृढयति वपु वीर्य्य वृद्धिं विधत्ते ॥ तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥ ११४ ॥ दीर्घा युष्कान् जनयति सुतान् विक्रमैः सिंह तुल्यान् ॥ मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ ११५ ॥ पीड़ां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डु गदञ्च शोथम् ॥ हत्पार्श्व पीड़ाञ्च करोत्य शुद्ध मभ्रन्त्व सिद्धं गुरुता प्रदं स्यात् ॥ ११६ ॥

भा॰ वज्र अग्निमें वज्रके समान ठहरता है वोह अग्निमें विकारको नहीं प्राप्त होता। सब अभ्रकोंमें वज्र श्रेष्ठहै वोह रोग बुढ़ापा और मृत्यु इनका नाशक है ॥ ११२॥ उत्तर दिशाके पहाड़ोंमें उत्पन्न हुवा अभ्रक अधिक सत्वसे युक्त गुणमें अधिक होता है ॥ दक्षिण के पहाड़ोंमें उत्पन्न हुवा थोड़े सत्व वाला और अल्पगुणको देनेवाला है ॥ ११२॥ अभ्रक कसैला मधुर शीतल आयुको करनेवाला धातुको बढ़ानेवाला होता है ॥ और त्रिदोष व्रण प्रमेह कुष्ठ प्लीहोदर ग्रन्थि विष कृमि इनको नाश करता है ॥ ११३॥ सेवन किया हुवा अभ्रक का भस्म रोगोंको नाश करता है ॥ शरीरको दृढ़ करता है और शुक्रकी वृद्धिको करता है ॥

तारुण्य से भरी हुई सौ स्त्रियों को भोग करता है इसके सेवन करनेवाला मनुष्य वृद्धभी तारुण्यताको प्राप्त होता है ॥ ११४ ॥

सिंहके समान पराक्रम वाले और दीर्घ आयुवाले पुत्रों को उत्पन्न करता है

और मृत्यु के भय को दूर करता है ॥ २१५॥ विन सुधा हुआ और असिद्ध अभ्रक मनुष्यों को नाना प्रकारकी पीड़ा को करता है और कुष्ठ वाय पाण्डु रोग सूज़न। हृदय पसली की पीड़ा इनको करता है तथा भारीपन और सन्ताप इनको भी करने वाला है ॥ २१६॥

[अथ हरितालस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च। हरितालं तु तालंस्या दालं तालक मित्यपि ॥ हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिण्ड संज्ञकम् ॥ २१७॥ तयो राद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीन गुणं परम् ॥ स्वर्णो वर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत् ॥ २१८॥ पत्राख्यं तालकं विद्या द्गुणाढ्यं तद्रसायनम् ॥ निष्पत्रं पिण्ड सदृशं स्वल्प सत्वं तथा गुरु ॥ २१९॥ स्त्री पुष्प हारकं स्वल्प गुणं तत् पिण्ड तालकम् ॥ हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् ॥ २२०॥ कण्डु कुष्ठास्य रोगास्र कफ पित्त कच व्रणान् ॥ हरति च हरिताल ञ्चा रुतां देह जानाम् । सृजति च बहु तापा मङ्ग सङ्कोच पीड़ाम् ॥ वितरति कफ वातौ कुष्ठ रोगं विदध्या । दिद मशित मशुद्धम् मारित ञ्चाप्य सम्यक् ॥ २२१॥

भा० अनन्तर हरिताल के नाम और लक्षणों को कहते हैं ॥ हरिताल ताल आल तालक येह हरिताल के नाम हैं ॥ हरिताल दो प्रकार का होता है एक वरकी दूसरा गोवरिया ॥ २१७ ॥ उनमें पहिला गुण में-

श्रेष्ठहै और दूसरा हीन गुणहै ॥ रंगमें सोनेके समान भारी चिकना और वरक के सहित अभ्रक के वरके के समान जो होताहै ॥ २१८ ॥ उसको वरकी हरिताल जानना चाहिये वोह गुणमें अधिक और रसायनहै ॥ वे वरक पिंड के समान थोड़े सत्ववाला तथा भारी ॥ २१९ ॥ स्त्रीके रजका नाशक वोह पिंड हरिताल गुणमें न्यून होतीहै ॥ हरिताल कड़वी चिकनी कसेली गरम होतीहै और विष ॥ २२० ॥ खुजली कुष्ठ मुखरोग रक्त कफ पित्त कच व्रण इनको नाश करतीहै ॥ अशुद्ध और अच्छीतरह नफुकीहुई हरताल खाई हुई देहकी सुन्दरता को नाश करतीहै और अधिक सन्ताप शरीर का संकोच पीड़ा इनको करती है कफ वात बढ़ के कुष्ठ रोगको करते हैं ॥ २२ ॥

[अथ मनःशिलानामानि गुणाश्च]

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका ॥
नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता ॥
॥ २२३ ॥ मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी
कटुः ॥ तिक्ता स्निग्धा विषश्वास कासभूत कफा
स्रनुत् ॥ २२४ ॥ मनःशिला मन्दबलं करोति ज-
न्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण ॥ मलानुबन्धं किल मू
त्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदञ्च कुर्य्यात् ॥ २२५ ॥

भा॰ अनन्तर मैनशिल के नाम और गुण कहतेहैं ॥ मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका ॥ नैपाली कुनटी गोला शिलादिव्यौषधि यह मैनसिल के नाम कहेहैं ॥ २२३ ॥ मैनसिल भारी वर्णको अच्छा करनेवाली सर उष्ण लेखनी कड़वी ॥ तिक्त चिकनी होतीहै और विष श्वास कास भूत कफ रक्त इनको नाश करने वाली है ॥ २२४ ॥ शोधन के बिना मैनसिल बलको कम करतीहै और निश्चय कृमिको करतीहै ॥ तथा क़बज़ियत मूत्रका नहोना शर्कराके सहित मूत्र कृच्छ्र को करतीहै ॥ २२५ ॥

[अथ सुरमा। सौवीर।]

अञ्जनं यामुनञ्चापि कापोताञ्जन मित्यपि ॥ नत्तु स्रोतोऽञ्जनं कृष्णं सौवीरं श्वेतमीरितम् ॥ २२६ वल्मीकशिखराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम् ॥ घृष्टन्तु गैरिकाकारमेतत् स्रोतोऽञ्जनस्मृतम् ॥ २२७ ॥ स्रोतोऽञ्जनसमं ज्ञेयं सौवीरन्तत्तु पाण्डुरम् ॥ स्रोतोऽञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफ पित्त नुत् ॥ २२८ ॥ कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहि छर्दि विषापहम् ॥ सिध्मक्षयास्त्र हृच्छीतं सेवनीयं सदाबुधैः ॥ २२६ ॥ स्रोतोञ्जन गुणाः सर्वे सौवीरे ऽपि मता बुधैः ॥ किन्तु द्वयो रञ्जनयोः श्रेष्ठं स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥ २३० ॥

भा० अनन्तर सुरमा ॥ अंजन यामुन कापोतअंजन येहभी सुरमें के नाम हैं ॥ उसमें कालेसुरमे को स्रोतोंजन और सफ़ेद को सौवीर कहाहै ॥ ॥ २२६ ॥ बमई से शिखराकार भिन्नकाजल के समान होताहै और घिसनेसे गेरूके आकार होताहै इसको स्त्रोतोंजन कहाहै ॥ २२७ ॥ स्रोतोंजन के समान सौवीर कोजानना चाहिये येह सफ़ेद होताहै ॥ काला सुरमा मधुर नेत्रके हित कफ पित्तका नाशक ॥ २२८ ॥ कसैला लेखन चिकना क़ाविज वमन विषका नाशक होताहै ॥ और सिध्म क्षय रक्तका दूर करनेवाला शीतल होताहै और विद्वानों के द्वारा सदा सेवन करने के योग्यहै ॥ २२६ ॥ कालेसुरमें के सब गुण सफ़ेद सुरमें में भी पंडितोंने मानेहैं ॥ परन्तु दोनों अंजनों में काला अंजन श्रेष्ठ कहाहै ॥ २३० ॥

[अथ सोहागा।] टङ्कणोऽग्नि करो रूक्षः कफ घ्नो वात पित्तकृत् ॥ अथ मुपरसत्वात पुनरुक्तः। अथ फिटकिरी। स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता

भुभ्राच रङ्गदा ॥ दृढरङ्गा रङ्गदा च दृढारङ्गापि कथ्यते ॥ १३१ ॥ स्फटिका तु कषायोष्णा वातपित्त कफव्रणान् ॥ निहन्ति श्वित्रवीसर्पान् योनि सङ्कोच कारिणी ॥ १३२ ॥

भा० अनन्तर सोहागा । सोहागा अग्निको करनेवाला रूखा कफका नाशक वात पित्तकी करने वाला है । इसकी उपरस होनेसे फिरसे कहा ॥
अनन्तर फिटकरी । स्फटि स्फटिका श्वेता शुभ्रा रंगदा ॥ दृढरङ्गा रङ्गदा भी और दृढा तथा रंगा भी येह कही फिटकरी के नाम कहे हैं ॥ १३१॥ फिटकसेली गरम होतीहै और वात पित्त कफ व्रण इनको नाश करती है ॥ तथा श्वित्र वीसर्प को भी नाश करती हैं और योनि को सङ्कोच करने वाली है ॥१३२

[अथ रेवटी ।] राजावर्त्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्तनाशनः ॥ राजावर्त्तः प्रमेहघ्नः छर्दि हिक्का निवारणः ॥ १३३ ॥ अथ चुम्बकः। चुम्बकः कान्त पाषाणो यः कान्तो लोह कर्षकः ॥ चुम्बको लेखनः शीतो मेदो विषगरापहः ॥ १३४ ॥

[गेरु सुवर्णगेरू।] गैरिकं रक्तं धातुश्च गैरेयं गिरिजं तथा ॥ सुवर्णगैरिकन्त्वन्य त्ततो रक्ततरं हितम् ॥१३५॥ गैरिकं द्वितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम् ॥ चक्षुष्यं दाह पित्तास्त्र कफ हिका विषापहम् ॥ १३६ ॥

भा० अनन्तर रेवटी ॥ राजावर्त्त कड़वी तिक्त शीतल पित्त नाशक है ॥ राजावर्त्त प्रमेह नाशक और वमन हिचकी इनको दूर करने वाली है ॥ १३३ ॥ [अनन्तर लोह चुम्बक ।] चुम्बक कान्त पाषाण अयः कान्त लोह हर्षक । येह लोहचुम्बक के नाम हैं ॥ । चुम्बक

लेखन शीतल और शीतमेद विषगर इनका नाशक है ॥ २३४ ॥
अनन्तर गेरू और सोना गेरू ॥ गैरिक रक्तधातु गैरेय गिरिज येह गेरू के नामहैं ॥ सोना गेरू उससे दूसरा होताहै । और वोह बहुत लाल होता है ॥ २३५ ॥ दोनों गेरू चिकने मधुर कसैले शीतल ॥ नेत्रके हित और दाह रक्त पित्त कफ हिचकी विष इनके नाशकहैं ॥ २३६ ॥

[अथ खरी गोरखरी ।]

खटिका कठिनी चापि लेखनी च निगद्यते ॥ खटिका दाह जिच्छीता मधुरा विषशोथ जित् २३७
लेपादेतद्गुणा प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा ॥
खटी गौरखटी द्वेच गुणैस्तुल्ये प्रकीर्तिते ॥ २३८ ॥

[अथ वालू ।] वालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजापिच ॥ वालुका लेखनी शीता व्रणोरःक्षत नाशिनी ॥ २३९ ॥

भा० अनन्तर खड़िया और सफ़ेद खड़िया । खटिका खट नीलेखनी येह खड़िया के नामहैं ॥ खड़िया दाह को जीतनेवाली शीतलमधुर । और विष शोथको जीतने वाली है ॥ २३७ ॥ लेपसे येह कहे हुवे गुण होतेहैं । और खानेसे मट्टीके समान होतीहै ॥ खड़िया और सफेद खड़िया दोनों गुणमें समान कहेहैं ॥ २३८ ॥
अनन्तर रेत । वालुका सिकता शर्करा रेतजा । येह वालूके नामहैं ॥ वालू लेखन शीतल है और व्रण उर क्षत । इनको नाश करने वाली है ॥ २३९ ॥

खपरीश्चातुत्थभेदः । खर्प्परी तुत्थकं तुत्थादन्यत्तु रसकं स्मृतम् ॥ ये गुणाः तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणाः रसके स्मृताः ॥ २४० ॥

[काशीस माङ्गफूल । काशीशं धातुकाशीशं

पांशुकाशीशमित्यपि ॥ तदेव किञ्चित्पीतन्तु पुष्पकाशीशमुच्यते ॥ २४१ ॥ काशीशमम्ल मुष्णञ्च तिक्तञ्च तुवरं तथा ॥ वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकण्डू विषप्रणुत् ॥ २४२ ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरी श्वित्र नाशनं परिकीर्तितम् ॥ अथ सौराष्ट्री माटी ।] सौराष्ट्री तुवरी कांक्षी मृतालक सुराष्ट्रजे ॥ २४३ ॥ आढ़की चापि सा ख्याता मृत्स्ना च सुरमृत्तिका ॥ स्फटिकाया गुणाः सर्वे सौराष्ट्र्या अपि कीर्त्तिताः ॥ २४४ ॥

भा० अनन्तर खपरिया यह लीला थोथे का भेद है ॥ खर्परी तुत्थक है इसे दूसरी को रसक कहाहै ॥ जो गुण लीले थोथे में कहेहैं वो ही गुण खपरीया में कहेहैं ॥ २४० ॥ [कसीस माङ्गफूल ।] काशीश धातुकाशीश पांशुकाशीश । येह कसीस के नाम हैं ॥ वोही कुछ एक पीली को पुष्पकासीस कहतेहैं ॥ २४१ ॥ कसीस खट्टी गरम तिक्त तथा कसैली ॥ और वात पित्त कफकी नाशक केशके हित तथा नेत्र,खुजली विष इनकी नाशकहै ॥ २४२ ॥ और मूत्र पथरी श्वित्रकुष्ठ इनकी नाशक कहीगईहै ॥ ॥ [अनन्तर सोरठी माटी । सौराष्ट्री तुवरी कांक्षी मृत्तालक सुराष्ट्रजा ॥ २४३ ॥ आढ़की भी वोह कहीजाती है और मृत्स्ना तथा सुरमृत्तिका ॥ येहभी उस्के नामहैं । स्फटिक के सब गुण सोरठी में कहेहैं ॥ २४४ ॥ [अथ कर्दमः ।]

कर्दमो दाह पित्तार्त्ति शोथघ्नः शीतलः सरः ॥ २४५ ॥ [अथबोल । बोल इन्ध रसं प्राणः पिण्ड गोप रसाः समाः ॥ बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यन्दीपन पाचनम् ॥ मधुरङ्कटु तिक्तञ्च

दाहस्वेद त्रिदोषजित् ॥ २५६ ॥ ज्वरापस्मार कुष्ठ
घ्नं गर्भाशय विशुद्धिकृत् ॥

भा० अनन्तर कालीमाटी । काली माटी घात दाह प्रदर कफ पित्त इन को नाशक है ॥ [अनन्तर कीचड़ । कीचड़ दाह पित्त पीड़ा सूजन इनको नाशक शीतल सरहै ॥ २५५ ॥ अनन्तर बोल । बोल गन्ध रस प्राण । पिंड गोप रस सम यह बोलके नामहैं ॥ बोल रक्त नाशक शीतल मेधा को करनेवाला दीपन पाचन ॥ मधुर कटु तिक्त और दाह पसीना तथा त्रिदोष इनको जीतनेवाला है ॥ २५६ ॥ औरज्वर मिरगी कुष्ठ इनका नाशक और गर्भाशय को शुद्ध करने वाला होता है ॥

[अथ कङ्कुष्ठोत्पत्ति लक्षण नाम गुणाः ।
हिमवत् पाद शिखरे कङ्कुष्ठ मुपजायते ॥ तत्रै
कं रक्तकालंस्या त्तदन्य दण्डकं स्मृतम् ॥ २५८ ॥
पीत प्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठ ङ्कङ्कुष्ठ मादिशेत् ॥
श्यामं पीतं लघु त्यक्तं सत्वन्नेष्टन्तथाण्डकम् ॥
२५९ ॥ कङ्कुष्ठं काक कुष्ठञ्च वराङ्गं कोलका
कुलम् ॥ कङ्कुष्ठं रेचनन्तिक्तं कट्वष्णं वर्णकार
कम् ॥ २६० ॥ कृमि शोथोदराध्मान गुल्मानाह
कफापहम् ॥

भा० अनन्तर कंकुष्ठ यह एक क़िसमकी पहाड़ीमट्टी है उस्की उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहतेहैं ॥ हिमाचल पर कंकुष्ठ होताहै ॥ उस में एक रक्त काला होता है । और उस्से दूसरा अंडक कहा गया है २५८ पीला भारी चिकना ऐसेको श्रेष्ठ कंकुष्ठ कहतेहैं ॥ और काला पीला हलका और बे सत्त यह अच्छा नहीं इसको अंडक कहतेहैं ॥ २५९ ॥ कंकुष्ठ काककुष्ठ वराङ्ग कोलकाकुल । यह कंकुष्ठ के नाम हैं ॥

कंकुष्ट रेचन तिक्त कटु उष्ण वर्णको करनेवाला ॥ १५० ॥ और क्रमिसू-
जन उदर आध्मान वायगोला अफारा कफ इनका नाशक है ॥

[अथ रत्नस्य निरुक्तिः।]

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन् अतीव यत्
ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्द शास्त्र विशारदैः॥
१५१॥ ॥ अथ रत्नस्य नामानि स्वरूपणञ्च।
रत्नं क्लीवे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते॥
तत्तु पाषाण भेदोऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते।१५२॥
तथा- [चामर सिंहः।] रत्नं मणि द्वयो रश्म जा-
तौ मुक्तादि केऽपिच॥

भा० अनन्तर रत्नकी निरुक्ति ॥ धनार्थि सबलोग जिसे अधिक
करके रमतेहैं ॥ इसवास्ते व्याकरणके पंडितोंने रत्न ऐसा कहाहै १५१
अनन्तर रत्नके नाम और लक्षण निरूपण ॥ रत्न नपुंसकमें और मणि
पुल्लिंगमें तथा स्त्रीलिंग में भी होताहै ॥ १५२ ॥ वोह पाषाण का भेद है
और मुक्तादिक को कहताहूं ॥ उस प्रकार अमरसिंहने कहाहै ॥ रत्न
मणि यह दोनों पथ्थर की जातिहैं ॥ और मुक्तादिक में भी होताहै ॥

अथ रत्नानां निरूपणम्।] रत्नं गारुत्मतं पुष्पं
रागो माणिक्य मेवच ॥ इन्द्रनीलश्च गोमेद स्त-
था वैडूर्य्य मित्यपि ॥१५३॥ मौक्तिकं विद्रुमश्चे
ति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥

(क) रत्नं हीरा। गारुत्मतं पन्ना। माणिक्यं पद्मरा
गः। इन्द्रनीलः नीला।

[विष्णु धर्म्मोत्तरेऽपि नवरत्न निरूपणम्।]

मुक्ताफलं हीरकञ्च वैडूर्य्यं पद्मरागकम् ॥ पुष्प
रागञ्च गोमेदं नीलङ्गारुत्म नन्तथा ॥ २५४ ॥
प्रवाल युक्ता न्येतानि महा रत्नानि वै नव ॥
तत्र हीरकं हीरा इति लोके। तस्य नाम लक्षणं गुणांश्च।
हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रोमणि वरश्च सः।
सतु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः॥
२५५॥ पीतो वैश्योऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मक
श्च सः ॥ रसायने मतो विप्रः सर्वसिद्धि प्रदायकः
॥ २५६ ॥ क्षत्रियो व्याधि विध्वंसी जरा मृत्यु हरः
स्मृतः॥ वैश्यो धन प्रदः प्रोक्तः तथा देहस्य दा-
र्ढ्य कृत् ॥ २५७ ॥ शूद्रो नाशयति व्याधीन् वय
स्तम्भं करोति च ॥ पुंस्त्री नपुंसकानीह लक्षणी
यानि लक्षणैः॥ २५८॥ सुवृत्ताः फल सम्पूर्णास्ते
जो युक्ता बृहत्तराः॥ पुरुषास्ते समाख्याता रेखा
विन्दु विवर्ज्जिताः॥ २५९॥ रेखाविन्दु समायु-
क्ताः षड्स्रास्ते स्त्रियः स्मृताः॥

भा॰ अनन्तर रत्नादिकों का निरूपण ॥ रत्न, गारुत्मत पुष्पराग
और माणिक्य भी। नीलम गोमेद तथा वैडूर्य्य यह ॥ २५३॥ और
मोती मूंगा। इस प्रकार यह नव रत्न कहेहैं ॥
(क) रत्न हीरा। गारुत्मत पन्ना। मांणीक नीलम ॥ विष्णुधर्म्मी
त्तरमें भी नव रत्न कहेहैं ॥ मोती हीरा वैडूर्य्य मानीक। पुखराज गोमे
द नीलम पन्ना ॥ २५४॥ और मूंगा यह नव महारत्न हैं ॥ उसमें हीरक
हीरा इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है ॥ उसके नाम लक्षण और गुण कहतेहैं

हीरक पुल्लिंगमें और वज्र नपुंसकमें होनाहै चन्द्रमणि वर यह हीरे के नामहैं ॥ वोह श्वेत ब्राह्मण कहा गयाहै और लाल क्षत्रिय कहा गया है ॥ २५५ ॥ पीला वैश्य और काला शूद्र ऐसे हीरा चार वर्ण का होता है ॥ रसायन में ब्राह्मण और सब सिद्धियों को देनेवाला है ॥ २५६ ॥ क्षत्रिय रोगनाशक और बुढ़ापा तथा मृत्युका नाशक ॥ वैश्य धन देनेवाला कहाहै तथा शरीर की दृढ़ता करनेवाला है ॥ २५७ ॥ शूद्र रोगोंकी नाशक रताहै और वयको स्थापन करता है ॥ इसमें स्त्री पुरुष और नपुंसक इन के लक्षण होतेहैं ॥ २५८ ॥ अच्छे गोल सब फलवाले तेजो युक्त बहुत बड़े । और रेखा विन्दु से रहित ऐसे हीरे पुरुष कहे गयेहैं ॥ २५९ ॥ और रेखा विन्दुसे युक्त छ कौनवाले वे स्त्री कहे गयेहैं ॥

त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः ॥ तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धन कारिणः ॥ २६० ॥ स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः । नपुंसकास्त्ववीर्य्याः स्युरकामाः सत्ववर्जिताः ॥ २६१ ॥ स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीवं क्लीवे प्रयोजयेत् ॥ सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरुषाः वीर्य्यवर्द्धनाः ॥ २६२ ॥ अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथान्तथा ॥ पाण्डुताम्पङ्गुरत्वञ्च तस्मात् संशोध्य मारयेत् ॥ २६३ ॥

भा० त्रिकोण और अच्छे लम्बे वे नपुंसक जानने चाहियें ॥ उनमें पुरुष श्रेष्ठहैं और वे पारेको बान्धनेवाले हैं ॥ २६० ॥ स्त्री जातिके हीरे शरीर की कान्तिको करतेहैं ॥ और स्त्रियोंको सुख देनेवालेहैं ॥ नपुंसक अवीर्य्य होतेहैं ॥ और अकाम सत्वसे रहित होतेहैं ॥ २६१ ॥ स्त्री जातिके हीरे स्त्रियोंको देनेचाहियें ॥ और नपुंसक को नपुंसक देवे । और सबको सर्वदा वीर्यको बढ़ानेवाले पुरुषजाति के देने चाहियें ॥ २६२ ॥

विन क्षुधा द्रवा कोढ़ तथा पसलीकी पीड़ा॥ पांडुता और लूलापन इनको करताहै इसवास्ते शोधकर फूंके॥ २६३॥

[मारितस्य वज्रस्य गुणाः।]

आयुःपुष्टिं वलं वीर्य्यं वर्णं सौख्यं करोति च॥
सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रन्न संशयः॥ २६४॥

[अथ हरितमणिः। पन्ना इति लोके। तस्य नामानि।]

गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः॥

[अथ माणिक्य इति लोके तस्य नामानि। माणिक्यं पद्मरागः स्याच्छोणरत्नञ्च लोहितम्॥

अथ पुष्पराग नामानि। पुष्परागो मञ्जुमणिः स्याद्वाचस्पति वल्लभः॥ अथ इन्द्रनील गोमेदयो र्नामानि। नीलन्तथेन्द्रनीलञ्च गोमेदःपीतरत्नकम्

भा॰ हीरेकी भस्मका गुण। आयु पुष्टि वल वीर्य्य वर्ण सौख्य इनको करताहै॥ और हीरेका भस्म सेवन करने से सव रोगोंका नाशकहै इसमें कोई संशय नहीं है॥ २६४॥ अनन्तर पन्ना उसके नाम॥ गारुत्मत मरकत अश्मगर्भ हरिन्मणि। येह पन्नेके नामहैं॥
अनन्तर माणिक के नाम।] माणिक्य पद्मराग शोणरत्न लोहित। यह माणिक के नामहैं। [अनन्तर पुखराज केनाम। पुष्पराग मंजुमणि वाचस्पति वल्लभ। येह पुखराज के नामहैं॥ [अनन्तर नीलम और गोमेद के नाम॥ नील तथा इन्द्रनील। येह नीलम के नामहैं॥ और गोमेद तथा पीतरत्नक येह गोमेद के नामहैं॥

अथ वैदूर्य्यं।] वैदूर्य्यं दूरजं रत्नं स्यात्केतु ग्रह वल्लभम्॥ [अथ मौक्तिकस्य नामानि।]

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलञ्च तत्॥

शुक्तिः शङ्खो गज क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः॥ २६५॥ वेणुरेते समाख्याता स्तज्ज्ञैर्मौक्तिक योनयः॥ मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बलपुष्टिदम् [अथ प्रवालस्य नामानि। पुंसि क्लीवे प्रबालः स्यात् पुमानेव तु विद्रुमः॥ [अथ रत्नानां गुणाः।] रत्नानि भक्षितानि स्यु मधुराणि सराणि च॥ चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च॥ २६६॥ मङ्गल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोष हराणि च॥

भा० अनन्तर वैदूर्य्य दूरज रत्नकेतु ग्रहवल्लभ। येह वैदूर्य्य के नामहैं॥ ॥ अनन्तर मोतीके नाम॥ मौक्तिक शौक्तिक मुक्ता तथा मुक्ताफलं। येह मोतीकेनामहैं॥ सीप शंख हाथी शूकर सर्प मछली मेंडक॥ २६४॥ और बांस यह उसके जानने वालों ने मोतीके उत्पत्ति स्थान कहेहैं॥ मोती शीतल शुक्र को उत्पन्न करने वाला नेत्रके हित और बल पुष्टिको देने वालाहै॥ २६५॥ अनन्तर मूंगे के नाम। पुल्लिंग और नपुंसक मे प्रवाल होताहै और विद्रुम पुल्लिंग में ही होताहै॥ अनन्तर रत्नोंके गुण॥ रत्न भक्षण कियेहुवे मधुर और सर होतेहैं॥ तथा नेत्रके हित शीत विष नाशक होतेहैं। और धारण कियेहुवे॥ ६६॥ मङ्गल के करनेवाले मनोज्ञ तथा ग्रह दोषके नाशक होतेहैं॥

(क) किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीतिकारित्वेन दोष हरं भवतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह रत्नमालायां

माणिक्यन्तरणेः सुजात ममलं मुक्ताफलं शीतगो र्माहेयस्य तु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम्॥ २६७॥ देवेज्यस्य च पुष्पराग मसुरा-

चार्यस्य वज्रं शने। नीलं निर्म्मल मन्यथो निगदिते गोमेद वैडूर्य्यके ॥ १६८ ॥

[अथोपरत्नानां निरूपणम्।] उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैवच ॥ मुक्ता शुक्ति स्तथा शङ्ख इत्यादीनि बहून्यपि ॥ १६९ ॥

(क) उपरत्नानि गौण रत्नानि। कर्पूराश्मा कपनीया कपुनीआ। मुक्ता शुक्तिः सीप।

गुणा यथैव रत्नाना मुपरत्नेषु ते यथा ॥ किन्तु किञ्चित्ततो हीना विशेषोऽय मुदाहृतः ॥ १७० ॥

[अथ विषस्य नाम लक्षण गुणाः]

भा० (क) कौनसा रत्न किस ग्रह के प्रीतिकार होने से दोषनाशक होताहै। इस प्रश्नमें उस्का उत्तर कहतेहैं ॥ रत्नमालामें। सूर्य्य का माणिक• चन्द्रका मोती• मंगल का मूङ्गा• बुध का पन्ना कहा है ॥ १६७ ॥ बृहस्पति का पुखराज• शुक्र का हीरा• शनी का निर्मल नीलम• और राहु का गोमेद केतु का वैडुर्य्य। येह कहाहै ॥ १६८ ॥ [अनन्तर उपरत्नों का निरूपण ॥ कांच कापूरी पत्थर। और मोती की सीप तथा इत्यादि शंख बहुत से उपरत्न हैं ॥ १६९ ॥ उपरत्न अर्थात् गौणरत्न। कर्पूरी पत्थर• मोतीकी सीप• रत्नों के जैसे गुण हैं वैसेही उपरत्नों में भी गुण रहे। परन्तु कुछ उनसे कम हैं ॥ विशेष यह कहा है ॥ १७० ॥ [अनन्तर विषके नाम लक्षण और गुण कहे हैं ॥

विषंतु गरलः क्ष्वेड स्तस्य भेदानुदा हरे ॥ वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः ॥ १७१ ॥ सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूट स्तथैवच ॥ हालाहलो ब्रह्म पुत्रो विषभेदा अमीनव ॥ १७२ ॥

[तत्र वत्सनाभस्य स्वरूप निरूपणम्]

मिन्दुवार सदृश पत्रो वत्सनाभ्या कृति स्तथा ॥
यत्पार्श्वेन तरो र्वृद्धि र्वत्सनाभः स भाषितः॥२७३॥

[अथ हारिद्रस्य स्वरूप निरूपणम्]

हरिद्रा तुल्य मूलोयो हारिद्रः स उदाहृतः॥
अथ शक्तुकस्य स्वरूपम् ॥ यद् ग्रन्थिः सक्तुकेनैव पूर्णामध्यः स सक्तुकः ॥ अथ प्रदीपनस्य स्वरूपम् ॥ वर्णतो लोहितो यः स्या द्दीप्तिमान् दहनप्रभः। महादाह करः पूर्व्वैः कथितः सप्रदीपनः॥२७४

भा॰ विष गरल क्ष्वेड येह विषके नामहैं ॥ उनके भेदोंको कहते हैं। वत्सनाभ हारिद्र सक्तुक प्रदीपन ॥ २७१॥ सौराष्ट्रिक शृंगिक तथा कालकूट। हालाहल ब्रह्मपुत्र। यह नो विषके नामहैं ॥ २७२॥ उसमें वचनाकका निरूपण॥ लाल कचनार के समान पत्ते तथा बछड़ेके नाभिके आकार ॥ औरजो स्क तर्फ़से दृक्की वृद्धि होतीहैं उसको वचनाक कहते हैं ॥२७३॥ अनन्तर हारिद्रका स्वरूप निरूपण॥ जो हरदीकी जड़के समान होताहै उसे हारिद्र कहाहै॥ अनन्तर सक्तुक का स्वरूप॥ जो गांठ बीचमें सक्तुसे भरी हुई के समान होती है वोह सक्तुक है॥ अनन्तर प्रदीपनका स्वरूप॥ जो रंगतमें लाल होताहै और अङ्गारे के समान दीप्तिमान् होताहै। तथा बहुत दाह करनेवाला। ऐसेको प्राचीन लोगोंने प्रदीपन कहा है॥ २७४॥

अथ सौराष्ट्रिकस्य-स्वरूपम् ॥ सुराष्ट्र विषये यः स्यात्स सौराष्ट्रिक उच्यते ॥

[अथ शृङ्गिकस्य स्वरूपम्।]

यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धम्भवति लोहितम् ॥
स शृङ्गिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्व विशारदैः॥२७५॥

[अथ कालकूटस्य स्वरूपम् ॥ देवासुर रणेदेवै र्हत स्य पृथु मालिनः ॥ दैत्यस्य रुधिराज्जात स्तरुरश्वत्थसन्निभः ॥ २७६ ॥ निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिः परिकीर्त्तितः ॥ सो हि क्षेत्रे शृङ्गवेरे कोङ्कणे मलये भवेत् ॥ २७७ ॥

[अथ हालाहलस्य स्वरूपम् ॥ गोस्तनाभ फलो गुच्छ स्तालपत्रच्छदस्तथा ॥ तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः ॥ २७८ ॥ असौ हालाहलो ज्ञेयः किष्किन्धायां हिमालये ॥ दक्षिणाब्धि तटे देशे कोङ्कणेऽपि च जायते ॥ २७९ ॥

भा० अनन्तर सौराष्ट्रिक का स्वरूप ॥ सुराष्ट्र देशमें जो होताहै वोह सौराष्ट्रिक कहाहै ॥ [अनन्तर सिंगिया का स्वरूप ॥ जिसको गाय के सींगमें बांधनेसे दुग्ध लालहोता है ॥ उसको द्रव्यके तत्त्वोंके जानने वालोंने शृङ्गिक कहाहै ॥ ५७५ ॥

अनन्तर कालकूट का स्वरूप ॥ देवता और दानवके युद्ध में देवताओं से मारेगये पृथुमाली नाम दैत्य के रुधिरसे पीपल के समान वृक्ष उत्पन्न हुवा ॥ २७६ ॥ इसके गोन्दको कालकूट ऐसा मुनियों नेकहाहै ॥ वोह शृङ्गवेर क्षेत्रमें और कोङ्कणदेश तथा मलयाचल में होताहै ॥ ॥२७७ ॥ ॥

अनन्तर हालाहलका स्वरूप ॥ गाय के स्तनके से फलोंके गुच्छे तथा तालपत्र के समान पत्र होतेहैं ॥ और जिसके तेज से पासके वृक्षादिक जलजातेहैं ॥ २७८ ॥ इसको हालाहल जानना चाहिये और यह किष्किन्धा में हिमालमें दक्षिण समुद्र के किनारे परके देशों में और कोङ्कण देश में भी उत्पन्न होताहै ॥ २७९ ॥

[अथ ब्रह्मपुत्रस्य स्वरूपम् ॥] वर्णतः कपिलो

यः स्यात्तथा भवति सारतः॥ ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले ॥ १८०॥ ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रियो लोहितः प्रभः॥ वैश्यः पीतः सितः शूद्रो विष उक्तश्चतुर्विधः॥ १८१॥ रसायने विषं विप्रं क्षत्रियन्देहपुष्टये॥ वैश्यं कुष्ठ विनाशाय शूद्रन्दद्याद् वधाय हि ॥ १८२॥ विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ॥ आग्नेयं वात कफ हृद्योग वाहि मदावहम् ॥ १८३॥

भा० अनन्तर ब्रह्मपुत्र का स्वरूप ॥ जो रंगत से कपिल तथा सार से कपिल होताहै ॥ उस्को ब्रह्मपुत्र जानना चाहिये वोह मलयाचल में होताहै ॥ १८०॥ उसमें ब्राह्मणजात का श्वेत लाल क्षत्रिय ॥ पीला वैश्य और काला शूद्र । ऐसे विष चार प्रकार का कहाहै ॥ १८१॥ रसायन में सफ़ेद शरीर की पुष्टि के अर्थ लाल पीला कुष्ठ नाशके अर्थ और काला मरण के अर्थ देवे ॥ १८२॥ विष प्राणहर कहाहै और व्यवायि तथा विकाशि ॥ और अग्नि गुणवाला वात कफ का नाशक योगवाही तथा नशा करने वाला है ॥ १८३॥

(क) व्यवायि सकलकाय गुण व्यापन पूर्वकं पाक गमनशीलं ॥ विकाशि। ओजः शोषण पूर्वकं सन्धिबन्ध शिथिली करण शीलम्॥ आग्नेयम्। अधिकाग्न्यं योगवाहि सङ्गि गुण ग्राहकं। मदावहम्। तमो गुणाधिक्येन बुद्धि विध्वंसकम्॥ तदेव युक्ति युक्तन्तु प्राणदायि रसायनम्॥ योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्य्य वर्द्धनम्॥ ॥ १८३॥ ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे तेस्युर्हीना-

विशोधनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ १८४ ॥

भा० (क) सम्पूर्ण शरीर गुण व्यापन पूर्वपाक होनेवाला व्यवायिहै । ओज का शोषण पूर्वक जोड़ोंके बन्धन को शिथिल करनेवाला । आग्नेय अर्थात् बहुत गरम । योगवाही अर्थात् संगवाले के गुण को ग्रहण करनेवाला । तमो गुणकी अधिकता से बुद्धिका नाशक ॥ वोही युक्ति पूर्वक योजना किया हुवा प्राण देने वाला रसायन ॥ योगवाही त्रिदोष नाशक बृंहण वीर्य्यको बढ़ाने वाला है ॥ ॥१८३॥ जो दुर्गुण अशुद्ध विषमें है वोह शोधन से हीन हो जाता है ॥ इसवास्ते शोधकर विषका प्रयोग योजना करे ॥ १८४ ॥

[अथोपविषाणां निरूपणम्]

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः ॥ गुञ्जाहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥ १८५ ॥ उपविषाः गौणविषाः । एषाङ्गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः ।

इतिश्री भावप्रकाशे धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्न विषोपविष वर्गः ॥ ॥

भा० अनन्तर उपविषका निरूपण ॥ आक का दूध थूहर का दूध करिहारी कनेर चिरमिठी अफीम धतूरा यह सात जाति उपविष कीहैं ॥ १८५ ॥ उपविष अर्थात् गौणविष । इनका गुण वहाँ २ पर देखलेना ॥

इति भावप्रकाशे धातु उपधातु रस उपरस रत्न उपरत्न विष उपविष वर्ग समाप्त ॥ ॥ ॥ ॥ अथधान्यवर्गः । तत्र धान्यानां भेदाः

शालिधान्यं व्रीहिधान्यं शूकधान्यं तृतीयकम् ॥ शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम् ॥ १ ॥ शालयो रक्तशाल्याद्या व्रीहयः षष्टिकादयः ॥ यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बिधान्यकम् ।२।

कङ्ग्वादिकं क्षुद्र धान्यं तृणधान्यञ्च तत्स्मृतम् ॥
[तत्र शालिधान्यस्य लक्षणं गुणाश्च।
कण्डनेन विना शुक्ला हैमन्ताः शालयःस्मृता ॥
[अथ शालीनां नामानि। रक्तशालिःसकलमःपा
ण्डुकःशकुनाहृत ॥ सुगन्धकःकर्दमाकोमहा
शालिश्च दूषकः॥ ३॥ पुष्पाण्डकःपुण्डरीकस्त
थामहिषमस्तकः॥ दीर्घशूकःकाञ्चनको हाय
नोलोध्रपुष्पकः॥ ४॥ इत्याद्याः शालयःसन्ति
वहवो बहु देशजाः॥ ग्रन्थविस्तरभीतेस्ते सम
स्ता नात्र भाषिताः ॥ ५॥

भा० अनन्तर धान्यवर्गः॥ उसमें धान्योंके भेद। शालिधान्य व्रीहिधा
न्य तीसरा शूकधान्य। शिम्बीधान्य क्षुद्रधान्य इस प्रकार सात धान्य क
हेहैं ॥ १॥ लालधान्य शालिधान्य और साठी आदि व्रीहिधान्य ॥ जव
आदिक शूकधान्य मूंग आदि शिम्बिधान्य ॥ २॥ और कंगुनी आदि क्षुद्र
धान्य तथा उसे तृणधान्य भी कहतेहैं ॥ उसमें शालिधान्यका लक्षण औ
र गुण ॥ विना कूटे सुफ़ेद और हेमन्त में होनेवाले शालिधान्य कहे गयेहैं
॥ अनन्तर धानोंके नाम ॥ लालधान कललमीधान पांडुक शकुनाहृ
त। सुगन्धक कर्दमक महाशाली दूषक ॥ ३॥ पुष्पांडक पुण्डरीक तथा
महिष मस्तक। दीर्घशूक कांचनक हायन लोध्रपुष्पक ॥ ४॥ इतने प्रका
रकेधानहैं। और बहुत प्रकारके बहुतसे देशोंमें होते हैं ॥
ग्रन्थ बढजानेके भयसे सब यहांपर नहीं कहे ॥ ५॥

अथ तेषां गुणाः॥ शालयो:मधुराः स्निग्धा बल्या
बद्धाल्पवर्चसः॥ कषाया लघवो रुच्याः स्वर्य्या
वृष्याश्च बृंहणाः॥ ६॥ अल्पानिलकफाः शीताः।

पित्तला मूत्रला स्तथा ॥ शालयो दग्ध भूज्जाताः क-
षाया लघु पाकिनः ॥७॥ सृष्टमूत्र पुरीषाश्च रू
क्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥ कैदारा वात पित्तघ्नाः गु
रवः कफ शुक्रलाः ॥८॥ कषाया अल्प वर्च्च-
स्का मध्याश्चैव बलावहाः ॥

भा॰ अनन्तर उनके गुण ॥ धान मधुर चिकने बलको करनेवाले मलको बांधनेवाले और थोड़ा करनेवाले कसैले हलके रुचिको करनेवाले स्वरको अच्छाकरनेवाले शुक्र को अच्छा करनेवाले पुष्ट ॥ ६॥ अल्प वात कफको करनेवाले शीतल पित्तनाशक तथा मूत्रको करनेवाले होतेहैं ॥ दग्धभूमिमें उत्पन्न हुवे धान कसैले लघुपाकवाले होतेहैं ॥७॥ मल मूत्रको करनेवाले रूखे कफको घटानेवालेहैं ॥ खेतके वात पित्तके नाशक भारी कफ शुक्रकोकरनेवाले हैं ॥८॥ कसैले अल्पमलको करने वाले मेध्य बलको करनेवालेहैं ॥-

कैदाराः कृष्टक्षेत्रजाः उप्ताः।

स्थलजाः स्वादवः पित्तकफघ्ना वात पित्तदाः॥ कि
ञ्चितिक्ताः कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥९॥

स्थलजाः अकृष्ट भूमिजाताः ॥ स्वयंजाता ।

वापिता मधुरा वृष्या बल्याः पित्तप्रणाशनाः॥ श्ले
ष्मलाश्चाल्पवर्च्चस्काः कषाया गुरवो हिमाः॥१०॥

भा॰ कैदार अर्थात् जोतेहुवे खेत में बोयेहुवे। स्थलमें उत्पन्नहुवे मधुर पित्तकफके नाशक वात पित्तको करनेवाले। कुछ एक तिक्त और कसैले विपाकमें भी कटु होतेहैं ॥९॥ स्थलज अर्थात् विना जोतेहुवे जमीन मेंहुवे ॥ स्वयं उत्पन्न हुवे। बोयेहुवे मधुर शुक्रको करनेवाले बलको देनेवाले पित्त नाशकहैं ॥ कफको करनेवाले थोडे मलको करनेवाले कसैले भारी शीतल होतेहैं ॥ १०॥

(क) वापिताः कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे च ।

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चित् हीनाः प्रोक्ता अवापिताः। कृष्टेत्रे अकृष्टेत्रे वा।
रोपितास्तु नवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः॥
तेभ्यस्तु रोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः॥
॥११॥ च्छिन्नरूढाः हिमा रूक्षा बल्याः पित्तकफापहाः॥ बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चाल्पतिक्तकाः॥ १२॥

[अथ रक्तशालेर्गुणाः]

रक्तशालि वरस्तेषु बल्यो वर्ण्यस्त्रिदोषजित्॥ चक्षुष्यो मूत्रलः स्वर्य्यः शुक्रलस्तृट्ज्वरापहः॥
॥१३॥ विषव्रणश्वासकासदाहनुद्वह्निपुष्टदः॥
तस्मादल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः॥१४॥
रक्तशालिः दाउदखानी इति लोके। मगधदेशे प्रसिद्धः।

(कृ) बोयेहुवे जोते खेतमें और बे जोते खेतमें) बोयेहुवोंसे कुछ गुणमें हीन बे बोयेहुवे कहे हैं॥ जोतेहुवे खेतमें अथवा बे जोतेहुवे खेतमें। बोयेहुवे नये शुक्रको करनेवाले हैं। और पुराने हलके कहेहैं। उनसे वे बोयेहुवे शीघ्र पाकवाले और गुणमें अधिक कहेहैं॥ ११॥ कोमल कटाहुवे शीतल रूखे बलको करनेवाले पित्त कफके नाशक। मलको बांधनेवाले कसैले हलके थोड़े तिक्त होतेहैं॥ १२॥

[अनन्तर लालधानके गुण।] उनमें लाल धान श्रेष्ठहैं बलको वर्णको करनेवाले शुक्रको करनेवाले तृषा ज्वरके नाशक हैं॥ १३॥ और विष व्रण श्वास कास दाह इनके नाशक अग्नि और पुष्टिको देनेवाले हैं॥

उससे अल्पान्तर गुण महाशालि आदिहैं॥ १४॥ लाल धान इसको लोकमें दाउदखानी इस प्रकार कहतेहैं॥ यह मगध देशमें प्रसिद्ध है

[अथ व्रीहिधान्यस्य लक्षणं गुणाश्च। वार्षिकाः कण्डिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः॥ कृष्णव्रीहिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि॥ शालामुखो जतुमुख इत्याद्याः व्रीहयः स्मृताः॥१५॥ कृष्णव्रीहिः स विज्ञेयो यत् कृष्णतुषतण्डुलः॥ पाटलः पाटलापुष्पवर्णको व्रीहिरुच्यते॥१६॥ कुक्कुटाण्डाकृतिर्व्रीहिः कुक्कुटाण्डक उच्यते॥ शालामुखः कृष्णशूकः कृष्णतण्डुल उच्यते॥१७॥ लाक्षावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः॥ व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्य्यतो हिताः॥१८ अल्पाभिष्यन्दिनो बद्धवर्च्चस्काः षष्टिकैः समाः॥ कृष्णव्रीहिवरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे॥१९॥

भा० अनन्तर व्रीही धानका लक्षण और गुण कहतेहैं॥ बरसाती कुटे हुवे शुक्ल और देरमें पकनेवाले व्रीहि धान कहे गयेहैं॥१५॥ काला धान उसे जानना चाहिये जो काले छिलकेके चावल हैं॥ पाटलाके फूल समान वर्णवाली को पाटलव्रीहि कहतेहैं॥१६॥ मुर्गेके अण्डेके आकार वाली व्रीहिको कुकटाण्डक कहतेहैं॥ शालामुख कृष्णशूक कृष्णतण्डुल येभी उसके नामहैं॥१७॥ लाखके समान वर्ण जिसके मुख काहो उसे जतुमुख कहतेहैं॥ धान पाकमें मधुर वीर्य्य से हित कहेगयेहैं॥ १८॥ और अभिष्यन्दन करनेवाले मलको बान्धनेवाले साठीके समान होतेहैं॥ उनमें काला धान श्रेष्ठहै और बाकी सब उससे गुणमें थोड़ेहैं॥१९

अथ षष्टिकानां लक्षणं गुणाश्च॥ गर्भस्था एव ये पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः॥

[अथ षष्ठिकानां नामानि। षष्ठिकः शतपुष्पश्च प्रमोदक मुकुन्दकौ॥ महाषष्ठिक इत्याद्याः षष्ठिकाः समुदाहृताः॥ २०॥ एतेऽपि व्रीहयः प्रोक्ता व्रीहिलक्षणदर्शनात्॥ षष्ठिकाः मधुराः शीता लघवो बद्धवर्चसः॥ २१॥ वात पित्त प्रशमनाः शालिभिः सदृशाः गुणैः॥

भा० अनन्तर साठीका लक्षण और गुणको कहतेहैं॥ जो गरभ में रहते हुवेही पाकको प्राप्तहोतेहैं वो साठीहैं॥ अनन्तर साठीके नाम॥ षष्ठिक शतपुष्प प्रमोदक मुकुन्दक॥ महाषष्ठिक इत्यादिक षष्ठिक कहेगयेहैं॥ २०॥ धानके लक्षण देखनेसे यह धान कहे हैं॥ साठी मधुर शीतल हलके मलको बान्धनेवाले॥ २१॥ वातपित्तको शमनकरनेवाले और धानोंके समान गुणमें होते हैं॥

[तत्र षष्ठिकाया गुणाः।]

षष्ठिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोषजित्॥
स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी॥ २२॥
रक्तशालि गुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणापरे॥
षष्टिकः साठी इतिलोके। [अथ शूकधान्यानि।
तेषु यवः प्रसिद्धः।

भा० उसमें साठीका गुण कहतेहैं॥ उन्में साठी बहुत श्रेष्ठ हलकी चिकनी त्रिदोषको जीतनेवाली॥ मधुर मृदु ग्राहिणी बलको देनेवाली। ज्वर नाशक होतीहै॥ २२॥ लाल धानके समान गुणमें होती है उससे और गुणमें स्वल्प होती हैं॥ उसको लोकमें साठी ऐसा कहतेहैं॥ अनन्तर शूक धान्य उन्में जव प्रसिद्ध हैं॥

अतियवो अति शूकः कृष्णारुणो वर्णो यवः॥

तोक्यो हरितो निःशूकः स्वल्पो यवः यवेति प्रसिद्धः। [तेषां नामानि गुणाश्च। यवस्तु शितशूकः स्यान्निःशूकोऽतियवः स्मृतः॥ तोक्यस्तद्वत्स हरितस्ततः स्वल्पश्च कीर्त्तितः॥२३॥ यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः॥ व्रणेषु तिलवत् पथ्यो रूक्षो मेधाग्निवर्द्धनः॥२४॥

भा० अतियव अतिशूक कृष्ण। और अरुणवर्ण यव। तोक्य हरित निःशूकस्वल्पयवये यह यव इस नामसे प्रसिद्ध हैं॥ उनके नाम और गुण कहते हैं॥ जव तेजनोंक वाले होते हैं और वेनोंकवाले अतियव कहे गये हैं॥ तथा तोक्य उसीके समान और हरित उससे अल्पगुण कहा गया है॥२३॥ जव कसैला मधुर शीतल लेखन मुलायम॥ और व्रणमें तिलके समान पथ्य रूक्ष मेधा और अग्निको बढानेवाला है॥२४॥

कटुपाकोऽनभिष्यन्दी स्वर्य्यो बलकरो गुरुः॥ बहुवातमलो वर्णस्थैर्य्यकारी च पिच्छिलः॥२५॥ कण्ठत्वगामयश्लेष्मपित्तमेदप्रणाशनः॥ पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहिततृट्प्रणुत्॥२६॥ अस्मादतियवो न्यूनस्तोक्यो न्यूनतरस्ततः॥

भा० पाकमें कटु अभिष्यन्दन करनेवाला स्वरको अच्छा करनेवाला बलकारक भारी॥ बहुतवात मलको करनेवाला और वर्णस्थिरता को करनेवाला पिच्छिल है॥२५॥ और कंठरोग त्वचाके रोग कफ पित्त मेद इनका नाशक है॥ तथा पीनस श्वास कास उरुस्तम्भ रक्त तथा तृषा इनका नाशक है॥२६॥ इससे अतियव गुणमें न्यून है और तोक्य उससे भी गुणमें न्यून है॥

[अथ गोधूमस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

गोधूमः सुमनोऽपि स्यात् त्रिविधः स च कीर्त्तितः॥
महागोधूम इत्याख्यः पश्चाद्देशात् समागतः।२७॥
[महागोधूम।] बड़ गोधूमा इति लोके। मधूली तु
ततः किञ्चिदल्पा सा मध्य देशजा॥ निःशूको
दीर्घ गोधूमः क्वचिन्नन्दी मुखाभिधः॥२८॥ गो-
धूमो मधुरः शीतो वात पित्त हरो गुरुः॥ कफ शु-
क्र प्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धान कृत् सरः॥ २९॥
जीवनो बृंहणो वर्ण्यो व्रण्यो रुच्यः स्थिरत्वकृत्
कफ प्रदो नवीनो नतु पुराणः।
पुराण यव गोधूम क्षौद्र जाङ्गल शूलभागिति॥

भा० अनन्तर गेहूं के नाम लक्षण और गुण कहते हैं॥ गोधूम सुमन भी गेहूं के नाम हैं॥ वह तीन प्रकार का कहा है॥ बड़ा गेहू इस नाम से पश्चिम देशमें जाता है॥ २७॥ महागोधूम॥ बड़े गोधूमा इस नामसे लोक में प्रसिद्ध है॥ मधूली भी उस्से कुछ अल्प गुणमें होती है॥ वह मध्यदेशमें होनेवाली है॥ बेनोक लंबा गेहुं कहींपर नन्दी मुख नाम से है॥ २८॥ गेहूं मधुर शीतल वात पित्तका नाशक भारी॥ कफ शुक्रको करनेवाला बलको करनेवाला चिकना सन्धान करनेवाला सर॥ जीवन पुष्ट वर्णको अच्छा करनेवाला व्रणके हित रुचिको करनेवाला और स्थिरताको करनेवाला है॥
कफको करनेवाला नवीन नकि पुराना॥ पुराना जव गेहूं मधु हरिण आदियोंके मांसका कबाब इनका सेवन करनेवाला होता है॥

[वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात्॥ मधूली शीतला
स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः॥ शुक्रला बृंहणी प
थ्या तद्वन्नन्दीमुखः स्मृतः॥ ३०॥

[अथ शिम्बीधान्यम्। तत्पर्य्यायानाह।]

शमीजाः शिम्बिजाः शिम्बीभवाः सूप्याश्च वैदलाः॥ [तेषांगुणाः।] वैदलाः मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः॥ ३१॥ वातलाः कफपित्तघ्नः बद्धमूत्रमला हिमाः॥ ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारिणः॥ ३२॥

भा० वाग्भटनें वसन्तमें लियाहै। इसवास्ते मधूली अर्थात् नवज्ञत बड़ा नकीएण ऐसे गेहूं शीतल पित्तनाशक मधुर होतेहैं ॥ शुक्रको करनेवाले पुष्ट पथ्य अर्थात् हितहोतेहैं और इसीके समान नन्दीमुख कहेगयेहैं ॥ ३०॥ अनन्तर शिम्बीधान्य अर्थात् जो सेममें होताहै॥ उसके पर्य्यायोंको कहतेहैं॥ शमीज शिम्बिज शिम्बीभवा सूप्या वैदला येह शिम्बीधानके नाम हैं॥ उनकेगुण। शिम्बी धान्य मधुर रूखे कसैले पाकमें कटु॥ ३१॥ वातके करने वाले कफ पित्तके नाशक मल मूत्रको रोकने वाले शीतल॥ होतेहैं॥ मूंग मसूरको छोड़के बाक़ी सब पेटको फुलाते हैं॥ ३२॥

मुद्गमसूरयोराध्मानकारित्वमन्यवैदलापेक्षया नतु सर्व्वथा एतयोरपि किञ्चिदाध्मानकारित्वात्।

[तत्र मुद्गस्य गुणाः।]

रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः॥ स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा॥ मुद्गो बहुविधः श्यामो हरितः पीतकस्तथा॥ ३३॥ श्वेतो रक्तश्च तेषान्तु पूर्व्वः पूर्व्वो लघुः स्मृतः॥ सुश्रुतेन पुनः प्रोक्तो हरितः प्रवरो गुणैः॥ ३४॥

चरकादिभिरप्युक्तः एष एव गुणाधिकः॥

भा० मूंग मसूरोंको आध्मान कारित्व और दालोंकी अपेक्षासे है न किस र्वथा इनमें भी कुछ आध्मान कारित्व होनेसे। उसमें मूंगके गुण। रूखा हलका क़ॅबिज़ कफ पित्तका नाशक शीतल॥ मधुर अल्पवातकोक रने वाला नेत्रके हित ज्वर नाशक होताहै। वैसेही बन मूंग होताहै॥ मूंग अनेक प्रकारके होतहें। काले हरे पीले॥ ३३॥ सुफ़ेद लाल उन्में पहिले २ हलके कहेहैं॥ जो सुश्रुतने कहाहै कि हरामूंग गुणमें अधि क होताहै॥ ३४॥ और चरकादि मुनियोंने भी कहाहै कि येही गुणमें अधिक होता है॥

[अथ उड़द।]

माषो गुरुः स्वादु पाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः।
स्रंसनस्तर्पणो बल्यः शुक्रलो बृंहणः परः। ३५।
भिन्नमूत्रमलस्तन्यो मेदःपित्तकफप्रदः॥ गुद
कीलार्दित श्वास पंक्ति शूलानि नाशयेत्॥३६॥
कफपित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि॥
कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत्। ३७॥

भा० माष अर्थात् उड़द भारी पाकमें मधुर चिकना रुचिको करनेवाला वात नाशक॥ स्रंसन तर्पण बलके हित शुक्रको करनेवाला पुष्ट होता है॥ और मल मूत्र का करनेवाला दुग्धको करनेवाला मेद पित्त और कफको करनेवालाहै॥ और गुद अर्दित श्वास पंक्ति शूल इनको ना श करताहै॥ ३६॥ उड़द कफ पित्तको करनेवालाहै। और दही क फ पित्तको करनेवालीहै। और मछलियां कफ पित्तको करनेवालीहैं तथा बेङ्गन कफ पित्तको करनेवाला है॥ ३७॥

[अथ बोड़ा यस्य च वेशतरा लोविआ इत्यादयो भेदाः]

राजमाषो महामाष श्चपल श्चवलः स्मृतः॥
राजमाषो गुरुः स्वादु स्तुवर स्तर्पणो सरः॥३८॥
रूक्षो वातकरो रुच्यः स्तन्यभूरि बलप्रदः॥

श्वेतो रक्तस्तथा कृष्ण स्त्रिविधः स प्रकीर्त्तितः ३९॥
यो महांस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः॥

भा॰ अनन्तर वोडा यह नाम बनारस में प्रसिद्ध है॥ और चेरा नरा लोबिया इन नामोंसे भी कई शहरोंमें प्रसिद्ध है॥ राजमाष महामाष चपल चवल येह लोबियाके नाम कहेहैं॥ लोबिया भारी मधुर कसैला तृप्तिको करनेवाला सर॥३८॥ रूखा वातकारी रुचिको करनेवाला दुग्ध और रुक्त बलको देनेवाला है॥ सुफ़ेद लाल तथा काला ऐसे वोह तीन प्रकार का कहा है॥३९॥ उनमें जो वड़ा है वोह गुणमें अधिक होता है॥

[अथ निष्पावः।सतु राज सिम्बीवीजं भटवासु इति लोके॥ ॥ निःष्पावो राजशिम्बिः स्याद् वल्लकः श्वेतशिम्बिकः॥ निष्पावो मधुरो रूक्षो विपाके ऽम्लो गुरुः सरः॥४०॥ कषायस्तन्य पित्तास्र मूत्रवात विबन्धकृत्॥ विदाह्युष्णो विषश्लेष्म शो थ हृत् च्छुक्र नाशनः॥४१॥

भा॰ निष्पाव। इस्को दखन में पावय कहते हैं॥ और पूरब में भटवांस भी कहते हैं॥ यह वड़ी सेमका बीज है। निष्पाव राजशिम्बी वल्लक श्वेत शिम्बिक यह सेमके बीजोंके नाम हैं॥ सेमका बीज मधुर रूखा विपाक में खट्टा भारी सर॥४०॥ कसैला और दुग्ध रक्तपित्त मूत्रवात विबन्ध इनको करनेवाला है॥ तथा विदाही गरम विष कफ सूजन इन का नाशक और शुक्रका नाशक है॥४१॥

[अथ मोठ।मकुष्ठो वनमुद्गः स्यान्मकुष्ठक मुकुष्ठको॥ मुकुष्ठो वातलो ग्राही कफ पित्त हरो लघुः॥४२॥ वन्हिजिन् मधुरः पाके कृमिकृत ज्वर नाशनः॥

[अथ मसूर] ।मङ्गल्यको मसूरः स्यान् मंङल्या

च मसूरिका ॥ मसूरो मधुरः पाके संग्राहि शीत
लो लघुः ॥ ५३॥ कफ पित्तास्र जिद्रूक्षो वात-
लोज्वरनाशनः ॥ [अथ रहरी।] आढ़की तुवरी
चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका ॥ आढ़की तुवरा
रूक्षा मधुरा शीतला लघुः ॥ ५५॥ ग्राहिणी वात
जननी वर्ण्या पित्त कफास्र जित् ॥

भा० अनन्तर मोठ ॥ मकुष्ठ वनमुद्ग मुकुष्ठक मकुष्ठक। यह मोठके नामहैं ॥ मोठ वातको करनेवाला क़ाबिज़ कफ पित्तका नाशक हलकाहोता है॥ ५२॥ अग्निकोजीतने वाला पाकमेंमधुर कृमिको करनेवाला ज्वर नाशक है ॥ ॥ अनन्तर मसूर ॥ मङ्गल्यक मसूर और मङ्गल्या मसूरिका। येह मसूर के नामहैं। मसूर मधुर पाकमें और क़ाबिज़ हलका शीतल होताहै ॥ ५३॥ तथा कफ रक्तपित्त इनकोजीतने वाला वातको करनेवाला ज्वर नाशकहै ॥ [अनन्तर रहरी। आढ़की तुवरी और शणपुष्पिका। यह हरर के नाम हैं ॥ रहरी कसैली रूखी मधुर शीतल हलकी ॥ ५५॥ क़ाबिज़ वातको करनेवाली वर्णको अच्छा करने वाली पित्त कफ रक्तको जीतनेवाली है ॥ [अथ छोला]

चणको हरिमन्थः स्यात् सकल प्रिय इत्यपि ॥ च-
णकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्त कफापहः ॥ ५५॥
लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः ॥ स चा-
ङ्गारेण सम्भृष्टस्तैलभृष्टश्च तत् गुणः ॥ ५६॥ आ-
र्द्रे भृष्टोबलकरो रोचनश्च प्रकीर्त्तितः ॥ शुष्क भृ-
ष्टोऽति रूक्षश्च वात कुष्ठ प्रकोपणः ॥ ५७॥ स्विन्नः
पित्त कफं हन्यात् रूढ़ः क्षोभकरो मतः ॥ आर्द्रोऽ

ति कोमलो रुच्यः पित्त शुक्र हरो हिमः ॥ ४८ ॥ क
षायो वातलो ग्राही कफ पित्त हरो लघुः ॥

भा॰ अनन्तर छोला ॥ चणक हरिमन्थ और सकल प्रिय। येह चने के नाम हैं ॥ चना शीतल रूखा पित्त कफ रक्त इनका नाशक है ॥ ४५॥ और हलका कसैला विष्टम्भी वातको करने वाला। ज्वर नाशक है। वोह अंगारे से भूना हुवा तथा तेलसे भूना हुवा वोही गुण वाला है ॥ ४६॥ गीला भूना हुवा बल करने वाला और रुचिको करनेवाला कहाहै ॥ सूखा भुना हुवा बहुत रूखा वात कुष्ट का प्रकोप करने वाला है ॥ ४७॥ पकी हुई इसकी दाल पित्त कफ को नाश करती है ॥ और क्षोभको करनेवाली कहीहै अति गीली अति कोमल रुचिको देनेवाली पित्त शुक्रकी नाशक होतीहै ॥ ॥ ४८ ॥ और कसैली वातको करने वाली क़ाबिज़ कफ पित्तकोनाशक हलकीहै

[केराव] कलायो वर्त्तुलः प्रोक्तः सतिनश्च हरेणुकः
॥ कलायो मधुरः स्वादु पाके रूक्षश्च शीतलः ॥
॥४९॥ [अथ खेसारी।] त्रिपुटः खण्डकोऽ
पिस्यात् कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ त्रिपुटो मधुर स्ति
क्त स्तुवरो रूक्षणो भृशम् ॥ ५०॥ कफ पित्त हरो रु
च्यो ग्राहकः शीतल स्तथा ॥ किन्तु खञ्जत्व प
ङ्गुत्व कारी वातातिकोपनः ॥ ५१॥

भा॰ अथ केराव। कलाय वर्त्तुल सतिन हरेणुक। यह मटर के नामहैं ॥ मटर मधुर और पाकमें मधुर रूखा शीतल है ॥ ४९॥

[अनन्तर खेसारी। त्रिपुट खंडिक येह खेसारी के नाम हैं ॥ अनन्तर उसके गुण कहते हैं ॥ खेसारी मधुर तिक्त कसैली अत्यन्त रूखी। ॥ ५०॥ कफ पित्तकी नाशक रुचिको करनेवाली क़ाबिज़ तथा शीतल होती है ॥ किन्तु खञ्जा पङ्गुला करनेवाली और अधिक वात को करने वाली है ॥ ५१॥

[अथ कुलत्थी।] कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत् ॥ ५२॥ लघुर्विदाहि वीर्य्योष्णः श्वास कास कफानिलान् ॥ हन्ति हिक्काश्मरी शुक्र दाहानाहान् सपीनसान् ॥ ५३॥ स्वेद संग्राहको मेदो ज्वर क्रमि हरः परः ॥

भा॰ अनन्तर कुरथी। कुलत्थिका कुलत्थ। येह कुरथी के नाम हैं। और अनन्तर इसके गुण कहते हैं ॥ कुलथी पाकमें कड़वी कसैली पित्त रक्तको करने वालीहै ॥ ५२॥ और हलकी विदाही वीर्य्यमें उष्ण श्वास कास कफ वात इनको नाश करती है ॥ और हिचकी पथरी शुक्र दाह अफारा पथरी। इनको नाश करती है ॥ ५३॥ पसीनों को रोकनेवाली मेद ज्वर क्रमि इन की नाशक है ॥

[अथ तिलः।] तिलः कृष्णः सितो रक्तः सवर्णोऽल्प तिलः स्मृतः ॥ तिलोरसे कटु स्तिक्तो मधुर स्तुवरो गुरुः ॥ ५४॥ विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफ पित्तनुत् ॥ बल्यः केश्यो हिमस्पर्शः त्वच्य स्तन्यो व्रणे हितः ॥ ५५॥ दन्त्योऽल्प मूत्र कृद् ग्राही वातघ्नोऽग्नि मतिप्रदः ॥ कृष्णः श्रेष्ठ तमस्तेषु शुक्लो मध्यमः सितः ॥ ५६॥ अन्ये हीन तराः प्रोक्ता स्तज्ज्ञै रक्तादय स्तिलाः ॥

भा॰ अनन्तर तिल ॥ तिल काला सफ़ेद लाल सवर्ण और अल्पतिल। ऐसा कहाहै ॥ तिल रसमें कटु तिक्त मधुर कसैला भारी ॥ ५४॥ विपाक में कटु मधुर चिकना गरम कफ पित्तका नाशकहै ॥ और बलके हित केशको अच्छा करनेवाला शीतल स्पर्श वाला त्वचा के हित दुग्धको करने वाला

ग्रणमें हित ॥ ५५॥ दांतोंके हित अल्प मूत्रको करनेवाला काबिज वातनाश
क अग्नि और मतिको देनेवाला है ॥ उनमें काला बहुत श्रेष्ठ है और मुक्तको
करनेवाला मध्य स्वेत है ॥ ५६॥ और लाल आदिक तिल उनके जाननेवालों
ने अत्यन्त ही गुण कहे हैं ॥

[अथातिसि।]

अनसी नीलपुष्पी च पार्व्वती स्यादुमा क्षमा ॥ अ-
नसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटु र्गुरुः ॥ ५७ ॥
उष्णा दृक् शुक्र वातघ्नी कफपित्त विनाशिनी ॥
[अथ नोरी तोड़िसेति लोके।] तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता ल-
घ्वी कफ विषास्र जित् ॥ तीक्ष्णोष्णा वह्निदा क-
ण्डू कुष्ठ कोष्ठ कृमि प्रणुत् ॥ ५८ ॥
[अथ रक्त सरीसो पिअरी सरीसो।] सर्षपः कटुकः
स्नेह स्तुन्तुभश्च कदम्बकः ॥ गोरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः
सिद्धार्थः इति कथ्यते ॥ ५९ ॥ सार्षपस्तु रसे पाके
कटु स्निग्धः स तिक्तकः ॥ तीक्ष्णोष्णः कफ वा-
तघ्नो रक्त पित्ताग्नि वर्द्धनः ॥ ६० ॥

भा० अनन्तर अलसी। अनसी नीलपुष्पी पार्वती उमा क्षमा ॥ यह अलसी
के नामहैं ॥ अलसी मधुर चिकनी तिक्त पाकमें कटु भारी ॥ ५७॥ गरम होती
है और दृष्टि शुक्र वात इनकी नाशक और कफ पित्त इनकी नाशक है ॥

अनन्तर नोरी इसको तोडिस इस प्रकार कहते हैं ॥ नोरी काबिज हल
का कफ विष रक्त इनको जीतने वाला है ॥ तीखा उष्ण अग्निको करनेवाला
है और खुजली कुष्ठ कोष्ट कृमि इनका नाशक है ॥ ५८ ॥

[अनन्तर लाल सरसों और पीली सरसो]

सर्षप कटुक स्नेह तुंतुभ कदंबक येह लाल सरसोंके नाम हैं ॥ पीलीसरसों
को बुद्धिवानों ने सिद्धार्थ ऐसा कहाहै ॥ ५९ ॥ सरसों रस और पाक

में कटु चिकना कुछ तिक्त ॥ तीखा उष्ण कफ वातका नाशक और रक्त पित्त अग्नि इनका बढ़ानेवाला है ॥

रक्षोहरो जयेत् कण्डू कुष्ठ कोष्ठ कृमिग्रहान् ॥ यथा रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥ ६१॥

[अथ राई कृष्णा राई । राजीतु राजिका तीक्ष्ण गन्धा कुञ्जनिका सुरी ॥ क्षवं क्षताभिजनकः कृमि कृत कृष्ण सर्षपः ॥ ६२ ॥ राजिका कफ पित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा रक्त पित्त कृत ॥ किञ्चिद्रूक्षाग्निदा कण्डू कुष्ठकोष्ठ कृमीन् हरेत् । ६३। अति तीक्ष्ण विशेषेण तद्वत् कृष्णापि राजिका ॥

भा० राक्षसों का नाशक है कंडू कोढ़ कृमि ग्रह इनको जीतता है ॥ जैसे लाल वैसे पीला किन्तु पीला श्रेष्ठ कहा है ॥ ६१॥ [अनन्तर राई काली राई] राजि राजिका तीक्ष्णगन्धा कुञ्जनिका सुरी ॥ येह राईके नाम हैं । छींक और घावको करने वाला कृमिको करनेवाला काला सरसों होता है ॥ ६२॥ राई कफ पित्तकी नाशक तीखी गरम रक्त पित्त को करनेवाली । कुछेक रूखी अग्नि दीपन खुजली कुष्ठ कोष्ठ कृमि इनको नाश करती है ॥ ६३ ॥ बहुत तीखी इस विशेषण से उसीके सदृश काली राई होती है ॥

[अथ क्षुद्र धान्यम् ।] क्षुद्र धान्यं कुधान्य ञ्च तृणधान्य मितिस्मृतम् ॥ क्षुद्र धान्य मनुष्णं स्यात् कषायं लघु लेखनम् ॥ ६४ ॥ मधुरं कटुकं पाके रूक्षञ्च क्लेद शोषकम् ॥ वात कृत् बद्ध विट्क ञ्च पित्त रक्त कफापहम् ॥ ६५ ॥ [तत्र कङ्गुनी ।]

स्त्रियां कङ्गु प्रियङ्गु द्वे कृष्णा रक्ता सिता तथा ॥

पीता चतुर्व्विधा कङ्गुस्तासाम्पीता वरास्मृता ॥ ६६
कङ्गुस्तु भग्नसन्धान वातकृत् बृंहणी गुरुः ॥ रूक्षा
श्लेष्म हरा तीव वाजिनां गुणकृद् भृशम् ॥ ६७॥
[अथ चीना] चीनाकः कङ्गु भेदोऽस्ति संज्ञेयः क
ङ्गुवद्गुणैः ॥ [अथ श्यामा] श्यामाकः शोषणो
रूक्षो वातलः कफपित्त हृत् ॥

भा० अनन्तर क्षुद्रधान्य । क्षुद्रधान्य कुधान्य तृण धान्य येह छोटे ना
ज के नामहैं ॥ क्षुद्रधान्य शीतल कसैला हलका लेखन ॥ ६४॥ मधुर
पाकमें कटु रूखा कफको सुखानेवाला ॥ वातको करनेवाला और मलको
बान्धने वाला पित्त रक्त और कफका नाशक है ॥ ६५॥
उनमें कंगुनी । स्त्री लिङ्गमें कङ्गु प्रियङ्गु येदोनों होतेहैं । काली लाल सुफ़ेद
तथा पीली ऐसी चार प्रकार की कंगुनी होतीहै ॥ उनमें पीली श्रेष्ठ कहीहै ॥
॥ ६६॥ कंगुनी टूटे हाड़को जोड़नेवाली वातकृत पुष्ट भारी ॥ रूखी कफकी
अत्यन्त नाशक है और घोड़ोंको अत्यन्तही गुण करनेवालीहै ॥ ६७॥
अनन्तर चीना ॥ चीना कंगुनी का भेदहै उसको गुणमें कंगुनी के समान जा
नना चाहिये ॥ [अनन्तर सांवा । सांवा शोषण रूखा
वात को करने वाला कफ पित्तका नाशक है ॥

[अथ कोद्रवः]

कोद्रवः कोर दूषःस्यादुद्दालो वनकोद्रवः ॥कोद्र
वो वातलो ग्राही हिम पित्त कफापहः ॥ ६८॥उद्दा
लस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥
[अथ चारुकः सरबीजः । चारुकः सरबीजः स्यात्
कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ चारुको मधुरो रूक्षो रक्त
पित्त कफापहः ॥ ६९ ॥शीतलो लघु वृष्य श्च।

कषायो वातकोपनः ॥ [अथ वंशबीजः।] यवा वंश भवा रूक्षाः कषायाः कटु पाकिनः ॥ बद्धमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्त कराः सराः ॥७०॥

[अथ वरेकुसुम्भबीज।] कुसुम्भ बीजं बरटा सैव प्रोक्ता वरट्टिका ॥ वरटा मधुरा स्निग्धा रक्त पित्त कफापहा। ।७१॥ कषाया शीतला गुर्वी स्याद्वृष्या निलापहा ॥

भा० [अनन्तर कोदों।] कोद्रव कोरदूष यह कोदों के नाम हैं और वनकोद्रव उद्दाल थेह वन कोदों के नाम हैं ॥ कोदों वात को करनेवाला क़ाबिज़ शीतल कफ का नाशक है ॥ ६८ ॥ वनकोदों उष्ण क़ाबिज़ और अत्यन्त वात को करने वाला है ॥ [अनन्तर चारुक सरबीज का नाम हैं।] अनन्तर उसका गुण कहते हैं ॥ सरबीज मधुर रूखा रक्तपित्त कफ इनका नाशक है ॥ ६९ ॥ और शीतल हलका शुक्र को उत्पन्न करने वाला कसैला वात को करने वाला है ॥

[अनन्तर बांस के बीज ॥ बांस के बीज रूखे कसैले और कटु पाकवो ले हैं ॥ मूत्र को रोकने वाले कफ नाशक वात पित्त को करने वाले सर होते हैं ॥ ७०॥

[अनन्तर वरे कुसुंभ बीज।] कुसुंभ बीज वरटा और वही वरट्टिका भी कहाते हैं। वरटा मधुर चिकना और रक्त पित्त कफ का नाशक है ॥७१॥ और कसैला शीतल भारी शुक्र को करने वाला वात नाशक होता है ॥

[अथ गरहेडुआ। गवेधुका तु विद्वद्भि र्गवेधुः कथिता स्त्रियाम् ॥ गवेधुः कटुका स्वाद्वी कार्श्यकृत्त् कफ नाशिनी ॥ ७२ ॥ [अथ नीनी। प्रसाधिका तु नीवार स्तृणान्न मितिच स्मृतम् ॥ नीवारः शीतलो ग्राही पित्तघ्नः कफ वात कृत् ॥७३॥

[अथ पुनेरा।]

पवनाः लोहितः स्वादु र्लोहितः श्लेष्म पित्तजित्।

अवृष्य स्तुवरो रूक्षः क्लेदकृत कथितो लघुः ॥७४॥ धान्यं सर्व्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्म करं स्मृतम् ॥ तत्तु वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हितम् ॥७५॥ वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति ॥ नतु त्यजति वीर्य्यं स्वं क्रमान् मुञ्चत्यतः परम् ॥७६॥ एतेषु यव गोधूम तिलमाषा नवा हिताः ॥ पुराणा विरसा रूक्षा न तथा गुणकारिणः ॥७७॥

भा॰ अनन्तर गरहेडुआ। गवेधुका को जो विद्वानों ने गवेधु ऐसा स्त्रीलिंग में कहा है ॥ इसको देवधान कहते हैं। देवधान कडुवा मधुर कृशता को करने वाला कफ पित्तका नाशक है ॥७२॥
[अनन्तर तिन्नी ॥ प्रसाधिका नीवार और तृणान्न। येह तिन्नी के नामहैं। तिन्नी शीतल क्राविज़ पित्त नाशक कफ वातकी करने वाला है ॥ ७३॥
[अनन्तर पुनेरा।] यवना लोहित येह पुनेरा के नाम हैं ॥ पुनेरा लालमधुर कफ पित्तको जीतनेवाला है ॥ और शुक्र का नाशक कसैला ग्लानि को करनेवाला हलका कहाहै ॥ ७४॥
सब नया धान मधुर भारी और कफ को करनेवाला कहा है ॥ वोह ऊपर से बरसात निकला हुवा हित होता है क्यों कि वोह बहुत हल्का होता है ॥ ७५॥
ऊपर से बरसात गुजर जानेपर सब धान भारीपनको छोड देते हैं ॥ परन्तु अपने वीर्य्यको नहीं छोडते इसके उपरान्त क्रमसे छोड देते हैं ॥ ७६॥
इनमें जव गेहूं तिल उड़द ये नये हितहैं ॥ पुराने वेरस रूखे और वैसे गुणकारी भी नहीं हैं ॥ ७७॥

(क) पुराणा वर्ष द्वया दुपरि स्थिताः। यवाद्यो नवाः स्वास्थ्यान् प्रतिहिताः। पथ्याशिनान्तु पुराणा हिताः। पुराण यव गोधूम क्षौद्र जाङ्गल शूल्य भुगिति चासन्ते वाग्भटे नोक्तत्वात् ॥

इति श्री भावप्रकाशे धान्यवर्गः ॥ ॥

भा० (क) पुराने अर्थात् दो वरस से ऊपर के जव आदिक नये निरोगियों को हितहै ॥ और पथ्य भोजन करने वालों को तो पुराने हितहैं ॥
पुराने जव गेहूं मधु हरिण आदियों के मांस का कवाब इनको भोजन करनेवा ला ॥ इस प्रकार वसन्त ऋतुमें वाग्भट ने कहा है इस्से ॥
इति श्री भावप्रकाश में धान्य वर्गः ॥ ॥

अथ शाक वर्गः। तत्र शाक निरूपणम्।]

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा ॥ शाकं षड् विध मुद्दिष्टं गुरु विद्या यथोत्तरम् ॥७८॥
[अथ शाकानां गुणाः। प्रायः शाकानि सर्व्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च ॥ रूक्षाणि बहु वर्च्चांसि सृष्ट विण् मारुतानि च ॥ ७९॥ शाकं भिनत्ति वपुर स्थि निहन्ति नेत्रम् ॥ वर्णं विनाशयति रक्त मथा पि शुक्रम् ॥ ८०॥ प्रज्ञा क्षयश्च कुरुते पलितञ्च नूनम् ॥हन्ति स्मृतिं गति मिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ८१

भा० अनन्तर शाकवर्ग उस्में शाक निरूपण ॥ पत्र फूल फल नाल कन्द तथा संस्वेदज ॥ इस प्रकार छःप्रकार का साग कहाहै ॥ उनमें यथोत्तर भारी जा ने ॥ ७८॥ [अनन्तर शाकों के गुण] प्राय सब शाक विष्टम्भी और भारी हैं। तथा रूखे बहुत मलको करने वाले और मल वानको करने वाले हैं ॥
॥७९॥ साग शरीर की अस्थिको भेदन करता है और नेत्रको नाश करती है ॥ तथा वर्णको नाश करता है और रक्त तथा शुक्रको भी नाश करता है ॥ ॥८०॥ बुद्धिका क्षयभी करता है ।सिरके बाल धौले भी होते हैं ॥ और स्मृ ति तथा मतिको भी नाश करता है ऐसा उस्के जानने वालों ने कहा है ॥८१

शाकेषु सर्व्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देह विनाश-

नाय ॥ तस्मात् बुधः शाक विवर्ज्जनन्तु कुर्य्यात्त
थाम्लेषु स एव दोषः ॥ ८२॥ एतानि शाक निन्द
कानि वचनानि सामान्यानि ॥

अथ शाकेषु विशिष्टानि वचनानि। [तत्र पत्र शाका
नि] [तत्रापि वास्तूक द्वयस्य नामानि गुणाश्च।]

वास्तुकं वास्तुकञ्च स्यात् क्षार पत्रञ्च शाकराट् ॥
तदेवतु वृहत्पत्रं रक्त स्यात् गौड़ वास्तुकम् ॥८३॥
प्रायशो यव मध्ये स्याद्यवशाकं मतः स्मृतम् ॥
वास्तू कद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम् ॥८४॥
दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्र वल प्रदम् ॥ सरं
प्लीहास्र पित्तार्शः क्रमिदोष त्रयापहम् ॥८५॥

भा० सब सागों में रोग बसते हैं वेही देह नाशके कारण हैं ॥ इस वास्ते बुद्धिवान् साग न सेवन करे वैसेही अम्लमें भी वोही दोष है ॥८२॥ यह साग की निन्दाके सामान्य वचन हैं ॥ अनन्तर शाकमें विशेष वचन को कहते हैं ॥ [उसमें पत्र शाक। उनमें भी दोनों बथुवों के नाम और गुण कहते हैं-॥ वास्तूक और वास्तुक भी होता है ॥ क्षारपत्र शाकराट्। येह बथुवे के नाम हैं। वोही बड़े पत्तोंका लाल होता है। उसको गौड़ वास्तुक कहते हैं ॥८३॥ प्रायः जवके बीचमें होता है इसवास्ते जवशाक कहा है ॥ दोनों बथुवे मधुर क्षार पाकमें कड़वे कहेहैं ॥८४॥ और दीपन पाचन रुचि को करनेवाले हलका शुक्र वल को देनेवाले हैं। सर पिलही रक्त पित्त ववासीर क्रमी तीनों दोष इनके नाशक हैं ॥८५॥

[अथ पोतकी] पोतक्यु पोदिका सा तु मालवा मृत व-
ल्लरी ॥ पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वात-

पित्तनुत् ॥८६॥ अकराठ्या पिच्छिला निद्रा शु-
क्रदा रक्त पित्तजित् ॥ बलदा रुचिकृत् पथ्या बृं-
हणी तृप्तिकारिणी ॥८७॥

[अथ श्वेतमरुसा।] लोहितमरुसा नवडा इति च।
मारिषो वाष्यको मार्षः श्वेतो रक्तश्च स स्मृतः॥
मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुत गुरुः॥८८
वातश्लेष्मकरो रक्त पित्तनुत विषमाग्नि जित् ॥
रक्तमार्षो गुरुर्नाति सक्षारो मधुरः सरः॥८९॥
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः॥

भा० अनन्तर पोईकी साग ॥ पोनकी उपोदिका मालवा अमृतवल्लरी येह पोईकेनामहैं॥ पोई शीतल चिकनी कफको करनेवाली वात पित्तकी नाशक है ॥८६॥ कंठके अहित पिच्छिल निद्रा और शुक्र कोकरनेवाली तथा रक्त पित्तको जीतनेवालीहै ॥ और बलकोदेनेवाली रुचिको करनेवाली पथ्य पुष्ट तथा तृप्तिको करनेवालीहै ॥ ८७ ॥ अनन्तर सुफ़ेद मरसा ॥ और लाल मरसा नवडा इस प्रकार भी कहतहैं॥ मारिष वाष्यक मार्ष येह मरसेके नामहैं ॥ वोह लाल और सुफ़ेद कहाहै ॥ मरसा मधुर शीतल विष्टंभ करनेवाला पित्तका नाशक भारीहै ॥८८॥ वातकफको करनेवाला रक्त पित्तका नाशक विषम अग्निको जीतनेवालाहै ॥ लाल मरसा बहुत भारी नहींहोता। और क्षारके सहित मधुर सर होताहै ॥८९॥ और कफको करनेवाला पाकमेंकटु और अल्पदोष करनेवाला कहाहै ॥

[अथ चवराई। अल्पमरुसा इतिच। तराडुलीयो
मेघनादः काराडे रस्तराडुलेरकः॥ भराडीरस्त
राडुलीबीजो विषघ्नश्चाल्पमारिषः॥९०॥ त-

तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्रजित् ॥
सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः॥ ६१॥
[अथ चवराई भेदः। जलतण्डुलीयं शास्त्रे कच्चटमिति।
प्रसिद्धम् ॥ पानीयं तण्डुलीयन्तु कच्चटं समुदाहृत-
म् ॥ कच्चटं तिक्तकं रक्त पित्तानिलहरं लघु ॥ ६२॥
[अथ पलकी। पलक्या वास्तुका कारा च्छुरिका चीरि
तच्छदा ॥ पलक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी
गुरुः॥ ६३॥ विष्टम्भिनी मदश्वास पित्तरक्तकफापहाः।

भा० अनन्तर चवराई। छोटा मरसा इस प्रकार कहते हैं। तण्डुलीय मेघ नाद काण्डेर तंडुलेरक ॥ मंडीर तंडुली बीज विषघ्न अल्पमारिष। ये ह चवराई के नाम हैं॥ ६०॥ चवराई हलकी शीतल रूखी पित्त कफ रक्त इनको जीतनेवाली है॥ और मल मूत्रको करनेवाली रुचिको क रनेवाली दीपन। विष नाशक है ॥ ६१॥
अनन्तर दूसरे क़िसम की चवराई॥ पनिया चवराई शास्त्रमें कच्चट इस नामसे प्रसिद्ध है। पानीय तंडुलीयक कच्चट। इस प्रकार कहा है ॥ पनिया चवराई तिक्त रक्तपित्त और वात इनकी नाशक हलकी होती है ॥ ६२॥ [अनन्तर पालक। पलक्या वास्तुका कारा अर्थात् बथुवेकीसी च्छुरिका चीरी तच्छदा यह पालक के नाम हैं ॥ पालक वात कोकरनेवाला शीतल कफ को करनेवाला भेदन भारी है ॥ ६३॥ और विष्टम्भ को करने वाला तथा मद श्वास पित्त रक्त कफ इनकानाशक

[अथ नाडिचा कालशाकमिति च। नाडिकं काल
शाकञ्च श्राद्धशाकञ्च कालकम् ॥ कालशाकं
सरं रुच्यं वातकृत कफशोथहृत् ॥ ६४॥ बल्यं
रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥

[अथ पटुआ। पट्टशाकस्तु नाड़ीको नाड़ीशाकश्च सः स्मृतः॥ नाड़ीको रक्तपित्तघ्नो विष्टम्भी वातकोपनः॥ ९५॥ [अथ कलम्बी। कलम्बी शतपर्वी च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ कलम्बी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्रकारिणी॥ ९६॥

भा० अनन्तर नरेवा। इसको कालासागभी कहते हैं॥ नाड़ीक कालशाक श्राद्धशाक कालक। येह काले साग के नाम हैं। कालासाग रुचिको करने वाला सर वायुको करनेवाला और कफ शोथका नाशक है॥ ९४॥ तथा बलको करने वाला रुचिकर कान्तिको करने वाला रक्त पित्त का नाशक शीतल है॥

[अनन्तर पटुवा।]

पट्टशाक नाड़ीक नाड़ीशाक। येह पटुवा के नाम हैं॥ पटुवा रक्तपित्त का नाशक विष्टम्भ करनेवाला वातका कोपन है॥ ९५॥

अनन्तर कलंबी साग। कलंबी शतपर्वी। येह कलंगी सागके नाम हैं॥ अनन्तर उसके गुण कहते हैं। कलंगी दुग्धको करनेवाली कही है॥ और मधुर शुक्रको करनेवाली है॥ ९६॥

[अथ लोणि। वृहल्लोणी। लोणा लोणी च कथिता। वृहल्लोणी तु घोटिका॥ लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वातश्लेष्म हरी पटुः॥ ९७॥ अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला मन्दाग्नि विषनाशिनी॥ घोटिकाम्ला सरा चोष्णा वातकृत् कफ पित्त हृत्॥ ९८॥ वाग्दोष व्रणगुल्मघ्नी श्वास कास प्रमेह नुत्॥ शोथ लोचन रोगे च हिता तज्ज्ञै रुदाहृता॥ ९९॥

भा० अनन्तर नोनिया छोटी और बड़ी॥ लोणा लोणी येह नोनिया के नाम हैं॥ और बड़ी नोनिया को घोटिका कहते हैं॥ नोनिया रूखी कही है। और भारी वात कफकी नाशक नमकीन होती है॥ ९७॥

और बवासीर की नाशक दीपन खट्टी होती है ॥ तथा मन्दाग्नि विष इनकी नाशक है ॥ बड़ी नोनिया खट्टी सर गरम वातको करने वाली कफ पित्तकी नाशक है ॥ ९८ ॥ वाणी का दोष व्रण वायगोला इनकी नाशक है ॥ तथा श्वास कास प्रमेह इनकी नाशक ॥ तथा सूजन और नेत्र रोगमें भी हितहै । ऐसा उस्के जानने वालोंने कहा है ॥

[अथ चाङ्गेरी अम्बिली नारति च।]

चाङ्गेरी चुक्रिका दन्त शठाम्बष्टाम्ल लोणिका ॥ अश्मन्तकस्तु शफरी पिसली चाम्लपत्रकः ॥ १०० ॥ चाङ्गेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफ वात नुत् ॥ पित्तला म्ला ग्रहण्यर्शः कुष्ठाती सार नाशिनी ॥ १०१ ॥

[अथ चूक। चुक्रिका स्यात् तुपत्राम्ला रोचनी शतवेधिनी ॥ चुक्रा त्यम्ल तरा स्वाद्वी वातघ्नी कफ पित्त कृत् ॥ २ ॥ रुच्या लघु तरा पाके वृन्ताके नाति रोचनी ॥

भा० अनन्तर चाङ्गेरी येह चूकका भेदहै ॥ चांगेरी चुक्रिका दन्तशठा अम्बष्ठा अम्ललोणिका । येह चङ्गेरी के नाम हैं ॥ और अश्मन्तक शफरी पिसली अम्लपत्रक येह भी उस्के नाम हैं ॥ १०० ॥ चांगेरी दीपनी रुचि को करनेवाली रूखी उष्ण कफ वातकी नाशक ॥ पित्तको करने वाली है । खट्टी होतीहै । और संग्रहणी बवासीर कुष्ट अतीसार इनकी नाशक है ॥ १०१ ॥ [अनन्तर चूक] चुक्रिका पत्राम्ला रोचनी शतवेधिनी ॥ येह चूक के नाम हैं ॥ चूक बहुत खट्टी मधुर वात नाशक कफ पित्तको करने वाली ॥ १०२ ॥ रुचिको करनेवाली पाकमें बहुत हलकी वेंगनमें बहुत रुचिको करनेवाली नहीं होती ॥

[अथ चेबुना। नाडीच वत्।]

चिञ्चा चञ्चु श्च ञ्चु को च दीर्घ पत्रा सतिक्तका ॥

चुञ्चुः शीता सरा रुच्या स्वादी दोषत्रयापहा ॥ १०३
धातु पुष्टि करी बल्या मेध्य पिच्छिलिका स्मृता ॥
[अथ हिलमोचिका । हुर हुर इति लोके ॥
ब्राह्मी शङ्खधरा चारी ब्राह्मी च हिल मोचिका ॥
शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिल मोचिका ॥ १०४ ॥
[अथ शिरी आरी । शितिवार ः शितिवरः स्वस्तिकः
सुनिषराकः ॥ श्रीवारकः सूचिपत्रः परीकः
कुक्कुटः शिखी ॥ १०५ ॥ चाङ्गेरी सदृशः पत्रैश्च-
तुर्दल इतीरितः ॥ शाको जलान्विते देशे चतुः
पत्रीति चोच्यते ॥ १०६ ॥ सुनिषण्णो हिमो ग्राही
मोह दोष त्रयापहः ॥ अविदाही लघुः स्वादुः
कषायो रूक्ष दीपनः ॥ १०७ ॥ वृष्यो रुच्यो ज्वर
श्वास मेह कुष्ठ भ्रम प्रणुत ॥

भा० अनन्तर चेवुना । चिन्चा चञ्चु । चंचुकी दीर्घपत्रा सतिक्तका येह चावुना के नामहैं ॥ चावुना शीतल सर रुचिको करनेवाला मधुर तीनों दोषोंका नाशक है ॥ १०३ ॥ धातु पुष्ट करने वाला बलको करने वाला कान्तिको करनेवाला पिच्छिलकहा है ॥
[अनन्तर हुरहुर । ब्रह्मी शंखधरा चारी ब्राह्मी हिलमोचिका येह हुर हुरके नामहैं ॥ हुरहुर सूजन कुष्ठ कफ पित्त इनको हरता है ॥ १०४ ॥ [अनन्तर शिरीयारी ॥ शितिवार शितिवर स्वस्तिक सुनिषण्णक ॥ श्रीवारक सूचिपत्र परीक कुक्कुट शिखी यह शिरी यारीके नामहैं ॥ १०५ ॥ येहचंङ्गेरीके समान पत्र चौपत्ती कहाग याहै ॥ येह साग जलान्वितदेशमें चौपत्ती ऐसा कहतेहैं ॥ १०६ ॥ शिरीयारी शीतल काबिज़ होतीहै और मोह तथा तीनोदोष इनकी

नाशक है ॥ और अविदारी हलकी मधुर कसैली रूखी दीपन है ॥ ॥ २०७ ॥ और शुक्रको करनेवाली और रुचिको करनेवाली है। और ज्वर श्वास प्रमेह कुष्ठ भ्रम इनकी नाशक है ॥

[अथ मूरई पत्रम् ॥ पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूलकजं नवम् ॥ स्नेह सिद्धं त्रिदोषघ्नमसिद्धं कफपित्तकृत् ॥ २०८ ॥ [अथ गुम्मा। द्रोणपुष्पी दलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत ॥ भेदनं कामला शोथ मेह ज्वर हरं कटु ॥ २०९ ॥

अनन्तर मूलीके पत्ते ॥ नये मूलीके पत्ते पाचन हलके रुचिको करने वाले उष्ण होते हैं ॥ और चिकनाई में सिद्ध किये हुवे त्रिदोष नाशक और कच्चे कफ पित्तको करने वाले हैं ॥ २०८ ॥ [अनन्तर गुम्मा। गुम्माका पत्र मधुर रूखा भारी पित्तको करनेवाला है ॥ और भेदन कामला सूजन प्रमेह ज्वर शूलका नाशक कटु है ॥ २०९ ॥

[अथ जवाइन।]

यवानी शाकमाग्नेयं रुच्यं वात कफ प्रणुत् ॥ उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं लघु शूलहृत् ॥ २१० ॥

[अथ चकवंड। दद्रुघ्न पत्रं दोषघ्नमम्लं वात कफापहम् ॥ कण्डू कास कृमि श्वास दद्रू कुष्ठ प्रणुल्लघु ॥ २११ ॥ [अथ सेहुण्ड। सेहुण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रेचनं हरेत् ॥ आध्मानाष्ठीलिका गुल्म शूल शोथोदराणि च ॥ २१२ ॥

भा० अनन्तर अजवाइन का साग।] अजवाइन का साग गरम रुचि को करनेवाला वात कफका नाशक है। और उष्ण कटु तिक्त पित्तको करनेवाला है ॥ हलका और शूल को हरनेवाला है ॥ २१० ॥

[चकवड़। चकवड़ के पत्र दोष नाशक खट्टे और वात कफ के नाशक हैं॥ और खुजली कास कृमि श्वास दाद कोढ़ इनका नाशक है॥ २११॥

[अनन्तर थूहर के पत्ते। सेहुंड के पत्ते तीखे दीपन रोचन होते हैं॥ और आध्मान अष्ठीला वायगोला शूल सूजन और उदर रोग इनका नाश करता है॥ २१२॥

[अथ दवनपापरा।]

पर्प्पटो हन्ति पित्तास्त्र ज्वर तृष्णा कफ भ्रमान्॥ संग्राही शीतलस्तिक्तो दाह नुद्वातलो लघुः॥ २१३॥

[अथ गोभी] गोजिह्वा कुष्ठ मेहास्त्र कृच्छ्र ज्वरहरो लघुः॥ [अथ पटोल पत्र। पटोल पत्रं पित्तघ्नं दीपनम्पाचनं लघु॥ स्निग्धं वृष्यं तथोष्णञ्च ज्वर कास कृमि प्रणुत्॥ २१४॥

भा० अनन्तर पित्त पापड़ा। पित्तपापड़ा रक्तपित्त ज्वर तथा कफ भ्रम इनका नाश करता है। और क़ाबिज़ शीतल तिक्त दाह इनकी नाशक वातको करने वाला हलका होता है॥ २१३॥

अनन्तर गोभी। गोभी कोढ़ प्रमेह रक्त मूत्र कृच्छ्र ज्वर इनकी नाशक हलकी। चिकनी शुक्रको करने वाली तथा उष्ण ज्वर कास कृमि इनकी नाशक है॥ २१४॥

[अथ गुडूची। गुडूची पत्र माग्नेयं सर्व्व ज्वर हरं लघु॥ कषायं कटु तिक्तञ्च स्वादुपाकं रसायनम्॥ २१५॥ बल्य मुष्णञ्च संग्राहि हन्यात् दोष त्रयं तृषाम्॥ दाह प्रमेह वातास्रक् कामला कुष्ठ पाण्डुताम्॥ ॥ २१६॥ [अथ कसोदी।

काम मर्द्दोऽरि मर्दश्च कासारिः कर्क्कश स्तथा॥

कासमर्द्दलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्रनुत् ॥ ११७॥ मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम् ॥ विशेषतः कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु ॥ ११८ ॥

भा० अनन्तर गिलोय के पत्ते ॥ गिलोय के पत्र गरम सब ज्वरके नाशक हलके ॥ कसैले कड़वे तिक्त पाकमें मधुर रसायन ॥ ११५॥ बलको करनेवाले उष्ण काबिज होतेहैं। और तीनों दोष तथा तृषा इनका नाश करतेहैं ॥ और दाह प्रमेह वातरक्त कामला कुष्ठ पाण्डुरोग इनको भी नाश करताहै ॥ ११६ ॥ अनन्तर कसौंदी। कासमर्द अरिमर्द कासारि तथा कर्कश यह कसौन्दीके नामहैं ॥ कसौन्दी के पत्र रुचिको करनेवाले शुक्रको करनेवाले और कास विष रक्त इनके नाशक हैं ॥ ११७॥ और मधुर कफवातके नाशक पाचन कण्ठ के शोधन है ॥ विशेषकरके कास नाशक पित्तनाशक हैं और काबिज हलके हैं ॥ ११८॥ [अथ चणाक।

रुच्यश्चणकशाकं स्याद् दुर्ज्जरं कफवातकृत् ॥ अम्लं विष्टम्भजनकम्पित्तनुद् दन्तशोथहृत् ॥ ११९॥

[अथ केराव। कलायशाकम्भेदि स्याल्लघु तिक्तन्त्रिदोषजित् ॥

[अथ सरिसो।] कटुकं सार्षपं शाकं बहुमूत्रमलं गुरु ॥ अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषजित् ॥ १२०॥

भा० अनन्तर चनेका साग। चनेका साग रुचिको करनेवालाहै। और दुर्जर कफ वातको करनेवाला ॥ और खट्टा विष्टंभकरनेवाला पित्तनाशक और दांतों की सूजनको दूर करनेवालाहै ॥ ११९॥ [अनन्तर मटरकासाग। मटर की साग भेदनकरनेवाला हलका तिक्त त्रिदोषको जीतनेवालाहै ॥ [अनन्तर सरसोंकासाग। सरसोंका साग कड़वा बहुत मूत्र मलको करनेवाला भारी ॥ पाकमें अम्ल विदाही उष्ण रूखा त्रिदोषको जीतनेवालाहै। १२०

सक्षारं लवणन्तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम् ॥

[अथ पुष्पशाकानि। तत्रागस्तिपुष्पस्य गुणाः ॥

अगस्ति कुसुमं शीतं चातुर्थक निवारणम् ॥ नक्तान्ध्य नाशनन्तिक्तं कषायं कटु पाकिच ॥ २२१ ॥ पीनस श्लेष्म पित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥

[अथ कदली पुष्पम् ।] कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु ॥ वात पित्त हरं शीतं रक्तपित्त क्षयप्रणुत् २२२

[शोभाञ्जन ।] शिग्रोः पुष्पन्तु कटुकन्तीक्ष्णोष्णं स्नायु शोथकृत ॥ कृमिहृत् कफ वातघ्नं विद्रधि प्लीह गुल्म जित ॥ २२३ ॥ मधु शिग्रो स्त्वक्षिहितं रक्तपित्त प्रसादनं

भा० क्षार के सहित नमकीन तीखी मधुर और सागोंमे निन्दितहै ॥ अनन्तर पुष्प शाकोंको कहतेहैं ॥ उनमें अगस्तिके फूलका गुण कहते हैं ॥ अगस्तिका फूल शीतल और चौथैया को दूर करने वाला है ॥ और रतौन्धीका नाशक तिक्त कसैला पाकमें कटु होताहै ॥ २२१ ॥ और पीनस कफ पित्तका नाशक वातनाशक होता है । ऐसा मुनियोंने कहाहै ॥

[अनन्तर केलेका फूल । केलेका फूल चिकना मधुर कसैला भारी ॥ वात पित्तका नाशक शीतल और रक्त पित्त क्षय इनका नाशक है ॥ २२२ ॥ सहिंजना । सहिंजनेका फूल कड़वा तीखा उष्ण स्नायु शोथ को करने वाला ॥ कृमिका नाशक कफ वातका नाशक और विद्रधि पिलहि वायगोला इनको जीतने वालाहै ॥ २२३ ॥ लाल सहिंजना नेत्रके हित रक्त पित्तको अच्छा करनेवाला है ॥

अथ शाल्मली पुष्पम् । शाल्मली पुष्प शाकन्तु घृत सैन्धव साधितम् ॥ प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यञ्च न संशयः ॥ २२४ ॥ रसे पाकेच मधुरं कषायं शीतलं गुरु ॥ कफ पित्ता स्त्र जिद् ग्राहि वातलञ्च प्रकीर्त्तितम् ॥

[अथ फल शाकानि ।] तत्र कुष्माण्डस्य नामानि गुणाश्च ।

कूष्माण्डं स्यात्पुष्प फलम्पीत पुष्पं बृहत् फलम् ॥

कूष्माण्डं बृंहणं वृष्यं गुरु पित्तास्रवातनुत् ॥२२६॥ बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥ वृद्धं नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु ॥२२७॥ वस्ति शुद्धिकरं चेतो रोग हृत् सर्व्व दोष जित् ॥

भा० अनन्तर सेमलका फूल ॥ सेमल के फूलका साग घृत सेन्धव सेसिद्ध किया हुवा कष्टसाध्य प्रदरको भी नाशकरता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १२४ ॥ रस और पाकमें कटु मधुर कसैला शीतल भारी होता है ॥ और कफ रक्त पित्त इनको जीतने वाला है काबिज़ वातको करने वाला कहा है। ॥१२५॥ अनन्तर फूल शाक । उनमें पेठेके नाम और गुण । कूष्माण्ड पुष्पफल पीतपुष्प वृहत फल येह पेठेके नाम हैं ॥ पेठा पुष्ट शुक्रको करने वाला भारी रक्त पित्त और वात इनका नाशक है ॥२२६॥ छोटा पित्त नाशक और शीतल होता है और मध्यम कफ करनेवाला ॥ तथा बड़ा बहुत शीतल नहीं होता और मधुर क्षारके सहित दीपन हलका ॥ २२७ ॥ वस्तिको शुद्ध करनेवाला मानसिक रोगोंका नाशक और सब दोषों को जीतने वाला है ॥

[अथ कोहडी ।] कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुरपि कीर्तिता ॥ कर्कारुर्ग्राहिणी शीता रक्त पित्तहरा गुरुः ॥२२८ पक्का तिक्ताग्नि जननी सक्षारा कफवात नुत् ॥

[अथ लवलौआ । गृहलौआ ।] अलाबूः कथिता तुम्बी द्विधा दीर्घा च वर्त्तुला ॥ मिष्टतुम्बी दलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु ॥ २२९ ॥ वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टि विवर्द्धनम्

भा० अनन्तर छोटा पेठा ॥ छोटा पेठा बहुत हलका होता है । और इसको कर्कारुभी कहते हैं ॥ छोटा पेठा काबिज़ शीतल रक्त पित्तका नाशक और भारी होता है ॥ २२८ ॥ पक्का तिक्त अग्निको करनेवाला क्षारके सहित कफ वात का नाशक है ॥ अनन्तर लौकी । अलाबू तुम्बी येह लौकी के नाम हैं ॥ यह दो प्रकारकी होती है लंबी और गोल ॥ मीठी तुम्बीके पत्र हृद्य पित्त कफके ना-

शाक भारी होते हैं ॥ १२९ ॥ और शुक्र को करनेवाला रुचिकर धातु पुष्टि को बढ़ाने वाला है ॥

[अथ तीतलौकी।]

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात् सा तुम्बी च महा फला ॥ कटु तुम्बी हिमा हृद्या पित्तकास विषा पहाः ॥ १३० ॥ तिक्ता कटु विंपाके च वात पित्त ज्वरान्तकृत् ॥

[अथ ककड़ी।] एर्वारुः कर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः ॥ १३१ ॥ रुच्या पित्तहरा सामा पक्का तृष्णाग्नि पित्तकृत् ॥

भा० अनन्तर तीतिलौकी ॥ इक्ष्वाकु कटुतुंबी यह तीतिलौकी के नाम हैं यह बड़े फलवाली होती है ॥ कड़वीतुम्बी शीतल हृद्य पित्त कास विष इनको नाशक है ॥ १३० ॥ तिक्त विपाक में कटु होती है और वात पित्त ज्वर इनकी नाश करे है ॥ अनन्तर ककड़ी। एर्वारु कर्कटी येह ककड़ी के नाम हैं ॥ अनन्तर उसके गुण कहते हैं ॥ ककड़ी शीतल रूखी क़ाबिज़ मधुर भारी ॥ १३१ ॥ रुचि को करनेवाली पित्त नाशक कच्ची होती है ॥ और पकी हुई तृषा अग्नि पित्त इनको करै

[अथ चिचिण्डा।] चिचिण्डा श्वेतराजिःस्यात्सुदीर्घो गृहकूलकः ॥ चिचिण्डो वात पित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः ॥ शोषिणोऽति हितः किञ्चिद् गुणैर्न्यूनः पटोलतः ॥ १३२ ॥

अथ करेला करेली। कारवेल्लं कटिल्लं स्यात् कारवेल्ली ततो लघुः ॥ कारवेल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तमवातलम् ॥ १३३ ॥ ज्वरपित्त कफास्रघ्नं पाण्डु मेह कृमीन् हरेत् ॥ तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषा दीपनी लघुः ॥ १३४ ॥

भा० अनन्तर चिचेंड़ा ॥ चिचेंड़ा श्वेतराजि सुदीर्घ गृहकूलक। येह चिचें

ड़ेके नामहैं ॥ चिचिंडा वात पित्तका नाशक बलकेहित पथ्य रुचिको देनेवा-लाहै ॥ सुकनेवाले अतिहित और परवलसे कुछ एक गुणमें न्यून होताहै ।२३२॥ अनन्तर करेला और करेली ॥ कारवेल्ल कठिल्ल येह करलेके नामहैं और करेली उससे छोटी होतीहै ॥ करेला शीतल भेदनकरनेवाला हलका ति-क्त वातको न करनेवालाहै ॥२३३॥ और ज्वर पित्त कफ रक्त इनकी नाशक है ॥ और पांडुरोग प्रमेह कृमि इनको हरताहै । करेली उसीके समान गुणमें होतीहै विशेषकरके दीपन हलकीहै ॥ २३४ ॥

[अथ नेनुआ।]

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाफला ॥ धामार्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णश्च सस्मृतः ॥ २३५ ॥ महाकोशातकी स्निग्धा रक्तपित्तानिलापहा ॥

[अथ तोरई।] धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना । राजकोशातकी चेति तथोक्ता राजिमत्फला ॥ २३६॥ राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातला ॥ पित्तघ्नी दीपनी श्वासज्वरकासकृमिप्रणुत् ॥ २३७ ॥

भा० अनन्तर घीयातुरई ॥ महाकोशातकी हस्तिघोषा महाफला धामार्गव घोष हस्तिपर्ण यह घियातुरईके नाम कहेहैं ॥ २३५ ॥ घियातुरई चिकनी रक्त पित्त वात इनकी नाशक है ॥ [अनन्तर तुरई ॥ धामार्गव पीतपुष्प जालिनी कृतवेधना राजकोशातकी येह तोरईके नामहैं तथा ल-कीरोंसे युक्त फल होताहै ॥ २३६ ॥ तुरई शीतल मधुर कफ वातको करनेवाली पित्तनाशक दीपन होतीहै और श्वास ज्वर कास कृमि इनकी नाशक है ॥२३७॥

अथ पटोल। पटोलः कूलकस्तिक्तः पाण्डुकः कर्कशच्छदः ॥ राजीफलः पाण्डुफलो राजेयश्चामृताफलः ॥ २३८ ॥ बीजगर्भः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः ॥ पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥ २३९ ॥

स्निग्धोष्णा हन्ति कासास्र ज्वरदोषत्रयकृमीन् ॥ पटो लस्य भवेन्मूलं विरेचन करं सुखात् ॥ २४०॥ नालं श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारि फलं पुनः॥ दोषत्रय हरं प्रोक्तं तद्वत्तिक्ता पटोलिका ॥ २४१॥

[अथ कुन्दुरी।] विम्बी रक्तफला तुण्डी तुण्डकेरी च विम्बिका ॥ ओष्ठोपम फला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥ ॥२४२॥ विम्बिफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्र वातजित् ॥ स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मान कारकम् ॥ २४३॥

भा० अनन्तर परवल ॥ पटोल कूलक तिक्त पाण्डुक कर्कशच्छद ॥ राजीफल पाण्डुफल। राजेय अमृतफल ॥ २३८॥ बीजगर्भ प्रतीक कुष्ठहा कासभंजन यह परवल के नामहैं ॥ परवल पाचन हृद्य शुक्रको उत्पन्न करनेवाला हलका अग्निदीपन ॥ २३९ ॥ चिकना उष्णहै और कास श्वास ज्वर तीनोंदोष कृमि इनको नाश करताहै ॥ परवल की जड़ सुखसे विरेचन करनेवालीहै ॥ २४०॥ नाल कफ नाशक पत्र पित्त नाशक और फल ॥ त्रिदोषनाशक कहाहै उसी प्रकार तिक्त पटोलिका है ॥ २४१॥ [अनन्तर कुन्दरू ॥ विम्बी रक्तफला तुण्डी केरी विम्बिका ॥ ओष्ठोपम फला पीलूपर्णी येह कुन्दुरू के नाम कहेहैं ॥२४२॥ कुन्दुरूफल मधुर शीतल भारी रक्त पित्त वात इनको जीतने वाले हैं ॥ स्तंभन लेखन रुचिको करनेवाला विबन्ध और आध्मान करने वालाहै ॥२४३॥

[शिम्बिशेवा।] शिम्बिः शिम्बी पुत्तशिम्बीस्तथा पुत्तक शिम्बिका ॥ शिम्बीद्वयञ्च मधुरं रसेपाके हिमं गुरु ॥ २४४ ॥ बल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं वात पित्तजित् ॥ [अथ सुवर्णशिम्बि। कोलशिम्बिः कृष्णफला तथा पर्येङ्क पट्टिका ॥ कोलशिम्बिः समीरघ्नी गुरुस्तुवरा क-

फ पित्तकृत् ॥ २४५॥ शुक्राग्नि सादकृत् रूच्या रुचिकृत् बद्ध विड्गुरुः ॥ [अथ सोहिजना फल।]

सोभांजनफलं स्वादु कषायं कफ पित्तनुत ॥ शूलकुष्ठ क्षयं श्वास गुल्महृद्दीपनं परम् ॥ २४६ ॥

भा० अनन्तर सेम सेमा। शिम्बि शिम्बी शुक्तशिम्बी तथा पुत्तक शिम्बिका यह सेमके नामहैं ॥ दोनों सेम मधुर रस और पाकमें और शीतल भारी होती हैं ॥ २४४ ॥ बलके हित दाह कार कफको करनेवाले और वात पित्तको जीतने वालेहैं। [अनन्तर सुवरासेम इसको आलकुशीभी कहतेहै। कालशिम्बी कृष्णफला तथा पर्य्यङ्क पट्टिका यह आलकुषीके नामहैं॥ आलकुशी वातनाशक भारी उष्ण कफ पित्तको करनेवाली है ॥ २४५॥ और शुक्र अग्नि मान्द्य इनको करनेवाली शुक्रको करनेवाली रुचिको करनेवाली मलको बान्धनेवाली भारीहै ॥ अथ सोहिंजना। सहिंजनका फल मधुर कसैला कफ पित्तका नाशक है ॥ और शूल कुष्ठ क्षय श्वास वाय गोला इनका नाशक और अत्यन्त दीपन है ॥ २४६॥

[अथ भण्टा।] वृन्ताकं स्त्री तु वार्त्ताकु र्भण्टाकी भाण्टिकापि च ॥ वृन्ताकं स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाक मपित्तलम् ॥ २४७॥ ज्वर वात बलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु ॥ तद्बालं कफ पित्तघ्नं वृद्धं पित्तकरं लघु ॥ २४८॥ वृन्ताकं पित्तलं किञ्चित् अङ्गार परिपाचितम् ॥ कफ मेदो निलामघ्न मत्यर्थं लघुदीपनम् ॥ २४९॥ तदेवहि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितम् ॥ अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्ड सदृशं भवेत् ॥ २५०॥ तदर्शः सुविशेषेण हितं हीनञ्च पूर्व्ववत् ॥

भा० अनन्तर बैंगन। वृन्ताक वार्त्ताकु भंटाकी भाण्टिका। यह बैंगन के नामहैं ॥ बैंगन मधुर तीखा उष्ण पाकमें कटु और पित्तको न करने

वालाहै ॥ २४७॥ और ज्वर वात कफ इनका नाशक है। दीपन शुक्रको करनेवाला हलका है ॥ वैसेही कच्चा कफ पित्तका नाशक और बड़ा पित्त करनेवाला हलका होताहै ॥ २४८ ॥ अंगारे पर पकायाहुवा कुछएक पित्तको करनेवाला है ॥ और कफ मेद वात आम इनकानाशक अत्यन्त दीपन हलकाहै ॥ २४९ ॥ वोही भारी चिकना तेल और लवणके युक्त होताहै ॥ दूसरा सफ़ेद बैंगन मुर्गेके अण्डे समान होताहै ॥ ॥ २५० ॥ वोह ववासीर में विशेषकरके हितहै और पूर्ववत् हीनभी है ॥

अथ डिण्डिश। डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्यपि ॥ डिण्डिशो रुचिकृद्भेदी पित्तश्लेष्मापहः स्मृतः ॥ ॥२५१॥ सुशीतो वातलो रूक्षो मूत्रलश्चाश्मरी हरः ॥

अथ पिण्डारः ॥ पिण्डारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकारकम् ॥ पाके लघु विशेषेण विषशान्तिकरं स्मृतम् ॥२५२॥

[अथ खेखसा।] कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते ॥ कर्कोटी मलहृत् कुष्ठहृल्लासा रुचिनाशनी ॥ २५३॥ श्वास कास ज्वरान् हन्ति कटु पाकाच दीपनी ॥

भा० अनन्तर टिंडा ॥ डिण्डिश रोमशफल मुनिनिर्म्मित येह टिंडेके नाम हैं ॥ टिंडा रुचिको करनेवाला भेदन पित्त कफका नाशक कहाहै ॥ २५१ ॥ और सुशीतल वातको करनेवाला रूखा मूत्रको करनेवाला अश्मरी नाशकहै ॥ अनन्तर पिंडार ॥ पिडार शीतल बलको करनेवाला पित्तनाशक रुचिको करनेवाला ॥ पाकमें हलका और विशेषकरके विषकीशान्ती को करनेवाला कहाहै ॥ २५२ ॥ अनन्तर खेखसा ॥ कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजाली । यह खेखसेके नामहैं ॥ खेखसा मल नाशक और कुष्ठ हृल्लास अरुचि इनका नाशकहै ॥ २५३ ॥ और श्वास कास ज्वर इनको नाश करता है तथा पाकमें कटु दीपनहै ॥

अथ करेरुआ। डोडिका विषमुष्टिश्च डोडीत्यपि सुमुष्टिका ॥ डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वन्हिप्रदा लघुः ॥२५४

हन्ति पित्त कफार्शांसि क्रिमि गुल्म विषामयान् ॥
[अथ कण्टकारी फलम् । कण्टकारी फलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघुः ॥ रूक्षोष्णं श्वास कासघ्नं ज्वरानिल कफापहम् ॥ १५५ ॥ [अथ नालशाकानि ।]
तत्र सर्षप नालम् । तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वात श्लेष्म व्रणापहम् ॥ कण्डू वमिहरं दद्रू कुष्ठघ्नं रुचिकारकम् ॥ १५६ ॥

भा० अनन्तर करेरुआ । डोडिका विषमुष्टि डोडि सुमुष्टिका । यह करेरुआ के नामहै ॥ करेरुआ पुष्टिकरनेवाली अग्निदीपन हलकी होती है ॥ ॥ १५४ ॥ और पित्तकफ बवासीर कृमिवायगोला विषरोग इनको नाशक रतीहै ॥ अनन्तर कटेलीका फल ॥ कटेली का फल तिक्तकटु दीपन हलका ॥ रूखा उष्ण है और श्वास कास इनका नाशक तथा ज्वर वात कफ इनका नाशक है ॥ १५५ ॥ [अनन्तर नाल शाक ॥ उनमें सरसोका नाल ॥ सरसों का नाल तीखा गरम होताहै और वात कफ व्रण इनका नाशक है और खुजली वमन इनकानाशक तथा दाद कुष्ठ खुजली इनका नाशक तथा रुचिको करनेवाला हैं ॥ १५६ ॥ [अथ कन्द शाकानि ।

[तत्र सूरणस्य नामानि गुणाश्च । सूरणः कन्द ओलश्च कन्दलोऽर्शोघ्न इत्यपि ॥ सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डू कृत् कटुः ॥ १५७ ॥ विष्टम्भी विशदो रुच्यः कफार्शः कृन्तनो लघुः ॥ विशेषादर्शसे पथ्यः प्लीहा गुल्म विनाशनः ॥ १५८ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ दद्रुणां रक्तपित्तिनां कुष्ठिनां न हितो हि सः ॥ १६० ॥ सन्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥

भा० अनन्तर कन्दशाक ॥ उनमें सूरनके नाम ॥ और गुण । सूरणकन्द ओल

कन्द अर्शोघ्न यह सूरन के नाम हैं ॥ सूरन दीपन रूखा कसैला खाज करनेवाला कटु होताहै ॥ २५७ ॥ और विष्टम्भ करनेवाला विशद रुचिको करनेवाला कफ बवासीर का नाशक हलकाहै ॥ विशेषकरके बवासीर में पथ्यहै और पिलही वा अगोला इनका नाशक है ॥ २५८ ॥ सब कन्द शाकोंमें सूरण श्रेष्ठ कहाहै ॥ दाद वाले और रक्तपित्तवाले तथा कुष्ठवाले इनको वोह हित है ॥ २६० ॥ संधानयोग में प्राप्तहुवा सूरण अधिक गुणवाला होता है ॥

[अथ आरु।] आरुकमप्यालूकं तत् कथितम् ॥

[वीरसेनश्च।] काष्टालुक शङ्खालुक हस्त्यालुकानि कथ्यन्ते ॥ पिण्डालुक सप्तालुक रक्तालुकानि चोक्तानि। काष्टालुकं काठिन्ययुक्तं कठारु। शङ्खालुकं श्वेतता युक्तम्। शङ्खारु। हस्त्यालुकं दीर्घता युक्तं महा शरीरम्। पिण्डालुकं वर्त्तुलम। सुथनी। सप्तालुकं मधुरतायुक्तं रोमान्वितं दीर्घसुथनी। रक्तालू रक्तारुरतड़ा इति च। आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु ॥ सृष्ट मूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्त पित्तनुत् ॥ २६१ ॥ कफानिल करं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्नि वर्द्धनम् ॥

भा॰ अनन्तर आलू ॥ आरुक आलूक यह आलूके नामहैं। वीरसेननेभी। कठियाआलू संखालू हस्त्यालू कहेहैं ॥ पिंडालु सप्तालुक रक्तालु यह कहाहै ॥ काष्ठालुक काठिन्ययुक्त कठारु। शङ्खालुक श्वेतता युक्त। शङ्खारू। हस्त्यालुक दीर्घता के युक्त बड़ा। पिंडालु गोल। सुथनी। सप्तालुक मधुरता संयुक्त रोमोंकरके युक्त लंबी सुथनी होतीहै। रक्तालू अर्थात शकरकन्द। सब आलू शीतल विष्टम्भ करनेवाले मधुर भारी ॥ मल मूत्रको करनेवाले रूखे दुर्जर रक्त पित्तके नाशक हैं ॥ २६१ ॥ कफ वात को करनेवाले बलके हित शुक्रको करनेवाले अल्प अग्निको बढ़ानेवाले हैं ॥

[अथ अरुई।] रक्तालुभेदे पाटिया तन्वीच पृथितालुकी ॥

आलुकी बलकृत् स्निग्धा गुर्व्वी हृत्कफ नाशिनी ॥१६२॥
विष्टम्भकारिणी तैले ललितातिरुचिप्रदा ॥
[अथ वोची मुरई नेवारा मुरई ।] मूलकं द्विविधं प्रोक्तं
तत्रैकं लघुमूलकं ॥ शालमर्कटकं विस्रं शालेयं मरु
सम्भवम् ॥ १६३ ॥ चाणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूल क-
पोतिका ॥ नेपालमूलकं चान्यत् तद्भवेद् गज दन्तवत् ॥
॥ १६४ ॥ लघुमूलं कटूष्णं स्याद्रुच्यं लघुन्च पाचनम् ॥
दोषत्रय हरं स्वर्य्यं ज्वर श्वास विनाशनम् ॥ १६५ ॥
नासिका कण्ठ रोगघ्नं नयनामय नाशनम् ॥ महत्तदे-
व रूक्षोष्णं गुरुदोष त्रय प्रदम् ॥ १६६ ॥ स्नेह सिद्धं त-
देवं स्यात् दोषत्रय विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर अरवी ॥ रतालु का भेद छीलनेमें पतला छिलका होताहै वोह अरवीहै ॥ अरवी बलको करनेवाली चिकनी और भारी हृदय के कफकी नाशक है ॥ १६२॥ तेलमें भुनीहुई विष्टम्भ करनेवाली और रुचिको देनेवाली है ॥
अनन्तर मूली ॥ मूली दो प्रकारकी कहीहै। उसमें एक छोटीमूली। शालमर्कटक विस्र शालेय मरुसंभव ॥ १६३॥ चाणक्य मूलक तीक्ष्ण तथा मूलकपोतिका ॥ येह मूलीके नाम हैं। और दूसरी नेपाली मूली तथा उसका भेद हाथीके दांतके समान होतीहै ॥ १६४ ॥ छोटीमूली कड़वी गरम होतीहै ॥ और रुचिको करनेवाली हलकी पाचन होतीहै ॥ और तीनों दोषों की नाशक स्वरको अच्छा करनेवाली और ज्वर श्वास की नाशकहै ॥ १६५॥ और नासिका रोग तथा कंठरोग इनके नाशक और नेत्र रोगकी नाशक है ॥ वोही बड़ी रूखी गरम भारी तीनोंदोषोंकी छेदनेवालीहै ॥ १६६ ॥ स्नेह स्निग्ध सिद्धि वोहीहै तीनों दोषों की नाशक है ॥ -

[अथ गाजर। गाजरं गृञ्जनं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम् ॥
गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु ॥ १६७ ॥ संग्रा-

हि रक्तपित्तार्शो ग्रहणी कफवात जित्॥

[अथ केराकन्द। शीतलः कदली कन्दो वल्यः केश्योऽम्ल पित्तजित्॥ वन्हि कृद्दाह हारीच मधुरो रुचि कारकः॥ ॥२६८॥ [अथ मानकन्द। मानकः स्यात्महापत्रः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ मानकः शोथहृच्छीतः पित्त रक्त हरो लघुः॥२६९॥ अथ वाराहीकन्दः। गेठि इति लोके।]

वाराही पित्तला वल्या कट्वीतिक्ता रसायनी॥ आयु शुक्रा ग्निकृन् मेह कफ कुष्ठा निला पहा॥२७०॥

भा० अनन्तर गाजर। गाजर गृंजन नारंगवर्णक येह गाजर के नामहैं॥ गाजर मधुर तीखा उष्ण दीपन हलका होता है॥२६७॥ और काबिज़ रक्त पित्त बवासीर संग्रहणी कफ बात इनको जीतने वालाहै॥ :हित अनन्तर केलाकन्द। केलाकन्द शीतल बलको देने वाला केशके अम्लपित्तको जीतनेवालाहै॥ अग्निदीपन दाहका नाशक मधुर रुचिको करनेवालाहै॥ ॥२६८॥ अनन्तर मानकेचू। मानक महापत्र होतेहैं। अनन्तर इसके गुण कहतेहैं॥ मानकेचू शोथका नाशक शीतल पित्त रक्तका नाशक हलका होताहै॥२६९॥ अनन्तर वाराहीकन्द॥ इसको गेंठी इस प्रकार लोकमें कहतेहैं॥ वाराहीकन्द पित्तको करनेवाली बलकेहित कड़वी तिक्त रसायनी॥ और आयु शुक्र अग्निकी करनेवाली और प्रमेह कफ कुष्ठ वात इनकी नाशक है॥२७०॥ [अथ हस्तिकर्णी। गजकर्णीतु तिक्तोष्णा तथा वात कफाञ्जयेत्॥ शीतज्वर हरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्दकः॥२७१॥ पाण्डु शोथ कृमि प्लीह गुल्मानाहो दरा पहः॥ ग्रहण्यर्शो विकारघ्नो वनसूरण कन्दवत्॥२७२॥

[अथ केसुक। केसुआ इतिलोके।]

केमुकं कटुकं पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघुः ॥ दीपनं पाचनं हृद्यं कफ पित्त ज्वरापहम् ॥ १७३ ॥ कुष्ठ कास प्रमेहास्र नाशनं वातलं कटु ॥ [अथ कसेरु चिचोड़ ।] कसेरु द्विविधन्तनु महद्राजकसेरुकम् ॥ मुस्ताकृति लघु स्याद्यत्तच्चिचोड़ मिति स्मृतम् ॥ १७४ ॥ कसेरुक द्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥ पित्त शोणित दाहघ्नं नयनामय नाशनम् ॥ १७५ ॥ ग्राहि शुक्रानिल श्लेष्मारुचि स्तन्यकरं स्मृतम् ॥

भा० अनन्तर हस्तिकर्णी । हस्तिकर्णी तिक्त उष्ण तथा वात कफ इनको जीतती है और शीतज्वर की नाशक पाकमें मधुर होती है उसका कन्द ॥ १७१ ॥ पांडुरोग सूजन कृमि पिलही वायगोला आनाह उदररोग इनका नाशक है ॥ और संग्रहणी ववासीर विकारका नाशक है यह वनसूरन के समान होताहै ॥ १७२ ॥ अनन्तर केमुआ । केमुक कड़वा पाकमें तिक्त काबिज़ शीतल हलका होताहै ॥ दीपन पाचमें हृद्य कफ पित्तज्वर इनका नाशक है ॥ १७३ ॥ और कुष्ठ कास प्रमेह रक्त इनका नाशक वातको करनेवाला कटु होता है ॥ अनन्तर कसेरु और चिचोड़ ॥ कसेरु दो प्रकारका होता है उसमें बड़ा राजकसेरुक ॥ और माथेके आकार छोटा जो होता है उसको चिचोड़ ऐसा कहाहै । ॥ १७४ ॥ दोनों कसेरू शीतल मधुर कसेले भारी ॥ पित्त रक्त दाह इनके नाशक और नेत्र रोगों का नाशक है ॥ १७५ ॥ काबिज़ शुक्र वात कफ अरुचि दुग्ध इनको करने वाला कहाहै ॥

[अथ कसेरु भिसीड़ा ।] पद्मादिकन्द : शालूकइत्युदाहृतश्च कथ्यते ॥ मृणालं मूलम्भिस्साण्डं लजा शकञ्च कथ्यते ॥ १७६ ॥ शालूकं शीतलं वृष्य पित्तदाहास्र नुद् गुरु ॥ दुर्ज्जरं स्वादु पाकञ्च स्तन्यानिल कफप्रदम् ॥ १७७ ॥

संश्रादि मधुरं रूक्षम्भिसाण्ड मपि तद्गुणम् ॥ बालं ह्यनार्तवं जीर्णं व्याधितः क्रिमि भक्षितम् ॥ ७८ ॥ कन्दं विवर्ज्जयेत् सर्वं यच्चाऽग्न्यादि विदूषितम् ॥ अति जीर्णमकालोत्थं रूक्षं सिद्धमदेशजम् ॥ ७९ ॥ कर्कशं कोमलं चाति शीतव्यालादि दूषितम् ॥ संशुष्कं सकलं शाकं नाश्नीयान्मूलकं विना ॥ ८० ॥

भा० अनन्तर कसेरु मिसींडा ॥ पदम आदियों के कन्दों को शालूक और करहाट कहतेहैं ॥ मृणाल मूल भिस्साण्ड लजाशूक यहभी कवल ककड़ीके नामहैं ॥ ७६ ॥ कवलककड़ी शीतल शुक्रको करनेवाली पित्तदाह रक्त दूनकी नाशक भारीहै ॥ और दुर्ज्जर पाकमें मधुर दुग्ध वात कफ इनको करनेवालीहै ॥ ७७ ॥ तथा काविज मधुर रूखी मिसाण्ड भी उसीके समान गुणमें है ॥ कच्चा बेमौसम का जीर्ण व्याधित कीड़ोंने खाया हुवा ॥ ७८ ॥ ऐसा सब कन्द त्यागदेवे अथवा जो अग्नि आदि से दूषित ॥ बहुत जीर्ण बे मौसम का रूखा सिद्धकिया अदेशज ॥ ७९ ॥ अति कर्कश अतिकोमल और शीतल सर्प आदिसे दूषित ॥ बहुत सूखा हुवा सब शाक मूली के बिना नसेवन करे ॥ ८०

(क) अतैलादि सिद्धं रूक्षं अदेशजम शुभस्थानजम् ॥

[अथ स्वदेशज शाकानि तेषां नामानि गुणाश्च ।]

उक्तं संस्वेदजं शाक म्भूमिछत्रं शिलीन्ध्रकम् ॥ क्षिति गोमय काष्ठेषु वृक्षादिषु तदुद्भवेत् ॥ ८१ ॥ सर्वे संस्वेदजाः शीताः दोषलाः पिच्छलाश्च ते ॥ गुरवश्छर्द्यतीसार ज्वरश्लेष्मा मय प्रदाः ॥ श्वेत शुभ्रस्थली काष्ठवंशगो व्रण सम्भवाः ॥ नातिदोष करास्ते स्युः शेषास्ते भ्यो विगर्हिताः ॥ ८२ ॥ संस्वेदजा च्छत्ता इतिलोके ।

इति श्री भावप्रकाशे शाकवर्गः ॥ * ॥

तेल आदि से न सिद्ध हुवा रूक्ष शुभस्थान में हुवा ॥ अनन्तर संस्वेदज शाक उनके नाम और गुण ॥ संस्वेदज शाक उसे कहते हैं जो दबीपड़ीहुई जमीन से होता है ॥ उसे शिलीन्ध्रक कहते हैं ॥ पृथ्वी गोबर काष्ठ वृक्ष आदिमें वो उत्पन्न होता है उसे कुकुरमुत्ता कहते हैं ॥ १८१॥ सबसे स्वेदज शीतल दोषको उत्पन्न करनेवाले पिच्छिल जो होतेहैं। वे भारी होतेहैं। और वमन अतिसार ज्वर कफ के रोग इनको करनेवाले हैं ॥ १८२॥ श्वेत और शुभ्र बेवनीहुई जमीन काष्ठ बांस गोव्रज इन से उत्पन्न। अतिदोष करनेवाले नहीं हैं ॥ बाकी उनसे निन्दित हैं ॥ १८३॥ संस्वेदज इसको छाता इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥

इति भावप्रकाशे शाकवर्गः समाप्तः ॥ ॐ ॥

इति भावप्रकाशे शाकवर्गः समाप्तः ॥

श्री गणेशाय नमः॥

भाव प्रकाशः

अथ मांसवर्गः

तत्र मांसस्य नामानि

मांसं तु पिशितं क्रव्य मामियं पल लम्पलम् ॥ मांसं वात हरं सर्वं बृंहणं बल पुष्टि कृत् ॥१॥ प्रीणनं गुरु हृद्यञ्च मधुरं रस पाकयोः॥ अथ तद्भेदाः ॥ मांस वर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलोऽनुप भेदतः॥ ॥

तत्र जाङ्गलस्य लक्षणं गुणाश्च।

मांस वर्गोऽत्र जङ्गला विलस्थाश्च गुहाशयाः॥ तथा पर्णी मृगा ज्ञेया विष्किरा प्रतुदोऽपि च ॥ २॥ प्रसहाः। अथ ग्राम्या अष्टौ जाङ्गल जातयः।

भा० भाव प्रकाशः। अनन्तर मांस वर्गः। उसमें मांस के नाम। मांस पिशित क्रव्य आमिय पलल पल॥ येह मांसके नाम हैं॥ सब मांस वात नाशक बृंहण बल पुष्टि को करने वाले हैं॥१॥ और प्रीणन भारी हृद्य मधुर रस और पाक मेंभी॥ अनन्तर उनके भेद। मांस वर्ग दो प्रकार का जानना चाहिये जाङ्गल और अनूप इन भेदोंसे॥ उनमें जांगल का लक्षण और गुण। यहां पर मांस वर्ग जंगल में रहने वाले बिलमें रहनें वाले गुहामें रहने वाले॥ तथा पर्णी मृग विष्किर और प्रतुद भी॥ २॥ प्रसह। और ग्राम्य येह आठ मांस की जातीहै॥

जाङ्गला मधुरा रूक्षा स्तुवराः लघव स्तथा॥ वल्यास्ते बृंहणा वृष्या दीपना दोष हारिणः॥३॥

मूकतां मिन्मिनत्वं च गद्गदत्वार्दितं तथा॥ बाधिर्य्य मरुचिं च्छर्दिं प्रमेहं मुखजान् गदान्॥ ४॥ श्लीपदं गलगण्डञ्च नाशयत्यनिलामयान्॥

अथानूपस्य लक्षणं गुणाश्च।

कूलेचराः प्लवाश्चापि कोशस्थाः पादिनस्तथा॥ मत्स्या एते समाख्याताः पञ्चधाऽनुपजातयः॥ ५॥ अनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वन्हिसादनाः श्लेष्म-ला पिच्छला श्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम्॥ ६॥ तथाभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायः पथ्यतमाः स्मृताः॥

अथ जाङ्गलानां गणानां विशिष्य गुणाश्च॥

भा० जाङ्गल मधुर रूखे कसेले तथा हलके॥ बलको देनें वाले पुष्ट शुक्रको उत्पन्न करनें वाले दीपन दोष नाशक॥ ३॥ गूङ्गापन मिनमिनापन गद गदता तथा अर्द्दित॥ वहिरापन अरुचिवमन प्रमेह मुखके रोग॥ ४॥ श्लीपद गलगंड और वात के रोग इनको नाश करते है॥ अनंतर आनूप मांस का लक्षण और गुण कहते हैं॥ कूलेचर प्लव कोशस्थ पादिन तथा॥ मत्स्य येह पांच प्रकार की अनूप जाति कहीहै॥ ५॥ अनुप मधुर चिकने भारी अग्नि मान्द्य करनें वाले॥ कफकारी पिच्छिल और अत्यन्त मांस पुष्टिको करनें वाले है॥ ६॥ तथा अभिष्यन्दि और प्रायः पथ्यतम कहे हैं॥ अनन्तर जाङ्गलों की गणना और विशेष गुण॥

हरिणैणकुरङ्गर्ष्य पृषतन्यङ्कुसम्बराः॥ राजीवोऽपि च मुण्डी चेत्याद्याः जङ्गलसंज्ञकाः॥ ७॥ हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णः प्रकीर्त्तितः॥

भा० हरिण एण कुरङ्ग ऋष्य पृषत न्यंकु सम्बर॥ राजीव मुंडी इत्यादि येह जाङ्गल नाम हरिण के भेदहै॥ ७॥ लालरंग का हरिण

कहाहै॥ कुरङ्ग ईषत्ताम्रः स्यादेन तुल्या कृति महान्॥८॥ऋ
ष्यो नीलाङ्गको लोके सरोझ इति कीर्त्तितः॥ एयत
श्चन्द्र विन्दुः स्याद्धरिणान् किञ्चि दल्प कः॥९॥
न्यङ्कु र्वहु विषाणो ऽथ सम्बरो गवयो महान्॥ राजी
वस्तु मृगो ज्ञेयो राजाभिः परितो वृतः॥१०॥ यो मृगः
शृङ्ग हीनः स्यात् स मुण्डी ति निगद्यते॥ जङ्गलाः
प्रायशः सर्वे पित्त-श्लेष्म-हराः स्मृताः॥११॥
किञ्चि द्वात कराश्चापि लघवो बल वर्द्धनाः॥

भा॰ कुच्छ एक लाल कुरंग होताहै एण के समान अकृति बडा होताहै॥८॥ नीलाङ्गक इस को लोक में सरोहि इस प्रकार कहाहै॥ एयत सफेद बुन्द की वाला हरिण से कुछ एक छोटा होता है॥९॥ बहुत सीङ्ग वाला न्यङ्कु सावर महान गवय होताहै॥ जो मृग वहुत सी लकीरों से युक्त हो इस को राजीव मृग जानना चाहिये॥१०॥ जो मृग वेसीङ्ग का होताहै उसको मुंडी ऐसा कहते हैं॥ सब जाङ्गल प्रायः पित्त कफ के नाशक कहेहैं॥११॥ अल्प वात को करनें वाले हलके और बलको बढानें वाले हैं॥

अथ विलेशयानां गणना गुणाश्च

गोधा-शश-भुजङ्गाखु शल्लक्या द्या विले शयाः॥
विलेशया वात हरा मधुरा रस पाक योः॥१२॥
वृंहणा वद्ध विट मूत्रो वीर्य्यो ष्णाश्च प्रकीर्त्तिताः॥

अथ गुहाशयानां गणना गुणाश्च

भा॰ अनन्तर विलमें रहनें वालों की गणना और गुण कहेते हैं॥ गोह खर गोश सांप चूहा साहि आदि येह विलेशय हैं॥ विलेशय वात नाशक और रस पाक में मधुर है॥१२॥ तथा पुष्ट मल मूत्र को वान्धनें वाले और वीर्य्य में

उष्ण कहेहैं ॥ अनन्तर गुहाशयों की गणना और गुण ॥

सिंह व्याघ्र वृका ऋक्षतरक्षु द्वीपि नस्तथा ॥ वभ्रू-जम्बूक मार्ज्जारा इत्याद्याः स्युर्गुहा शयाः ॥ १३॥ तरक्षुः हुण्डा इति लोके। द्वीपी चिता व्याघ्र इति लोके। स्थूल पुच्छो रक्त नेत्रो वभ्रूः देहः स्तना कुलः ॥ गुहा शयो वात हरा गुरूष्णा मधुराश्च ते ॥ १४ ॥ स्निग्धा वल्या हिता नित्यं नेत्र गुह्य विकारिणाम् ॥

अथ पर्ण मृगाणां गणना गुणाश्च ॥

भा० शेर भेड़िया रीछ तेन्दुवा वाघ चीना तथा ॥ नउला गीदड़ विलाव इत्यादि येह गुहाशय हैं ॥ १३॥ तरक्षु हुण्डा इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ चीना व्याघ्र इस प्रकार लोक में कहते हैं। मोटी दुम लाल आखें पिंगल शरीर वो हनेवला है ॥ गुहाशय वात नाशक भारी उष्ण मधुर ॥१४॥ चिकने वलको करने वाले और सदा नेत्र लिंग रोग वालों को हित है ॥ ॥अनन्तर पर्ण मृगोंकी गणना और गुण ॥ ॥

वनौको वृक्ष मार्ज्जारो वृक्ष मर्कटि कादयः ॥ रात्रे पर्णमृगाः प्रोक्ताः सुश्रुता द्यै महर्षिभिः ॥ १५॥ वनौका वानरः वृक्ष मार्ज्जारो वृक्ष विड़ालः ॥

वृक्ष मर्कटि का रूखी इति लोके।

स्मृताः पर्ण मृगाः वृष्या श्चक्षुष्याः शोषिणे हिताः॥ श्वासार्शः कास शमनाः सृष्ट मूत्र पुरीषकाः ॥ १६॥

अथ विष्किराणां गणना गुणाश्च ॥

भा० वन्दर वृक्ष मार्जार वृक्ष मर्कटिका आदिक ॥येह पर्ण मृग सुश्रुतादि

महर्षियोंनें कहेहैं ॥१५॥ वानर । वृक्ष विडाल । रूखी । इस प्रकार लोकमें कहेते हैं । पर्ण मृग शुक्र को करनें वाले नेत्रके शोष वाले को हित ॥ औरश्वास ववामीर कास इनके नाशक मलमूत्र को करनेंवालेहैं॥१६॥

अनन्तर विष्किरों की गणना और गुण ॥

वर्त्तका लाव वर्त्तीर कपिञ्जल क तित्तिराः॥ कुलिङ्ग कुक्कुटा द्याश्च विष्किराः समुदा हृताः ॥१७॥ विकीर्य्य भक्ष यन्त्येते यस्मा त्तस्माद्धि विष्किराः॥ कपिञ्जल इति प्रोक्तः कथितो गौर तित्तिरिः॥ १८॥

कुलिङ्गः गवरै आ इति लोके ।

विष्किराः मधुराः शीताः कषायाः कटु पाकिनः॥

वल्या वृष्यास्त्रि दोषघ्नाः पथ्या स्ते लघवःस्मृताः १९

भा० जंगली चिड़ा लवा वटेर सफ़ेद तीतर तीतर चिड़े मुरगा आदिक येह विष्किर कहे हैं ॥१७॥ जो कितरा के खाते हैं इस वास्ते वे विष्किर हैं ॥सफेद तीतर को बुद्धि वानोंनें कपिंजल ऐसा कहाहै ॥१८॥ गवरै आ इस प्रकार लोक में कहेते हैं। विष्किर मधुर शीत ल कसेले पाक में कटु ॥ वलकोकरनेंवाले शुक्र को उत्पन्न करने वाले त्रिदोष नाशक पथ्य और ये हलके हैं ॥ १९॥

अथ प्रतुदानाङ्गणना गुणाश्च ॥

हरीतो धवलः पाण्डु श्चित्र पक्षो वृहच्छुकः॥ पारावतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः ॥२०॥ प्रतुद्य भक्ष यन्त्येते तुण्डेन प्रतुदा स्ततः॥

हारीतः हारिल इति लोके ॥

भा० अनन्तर प्रतुदों की गणना और गुण ।हरील कठफोर वा जंगली तीतर पहाड़ी तोता ॥ परेवा खंजन कोइल इत्यादिक येह प्रतुद कहे हैं ॥ २०॥

जो अपनी चोंचसे तोड कर खाते हैं इस वास्ते प्रतुद है। हरील इस प्रकार लोकमें कहेते हे। कपोतो: धवल पाण्डु: शतपत्रो वृहच्छुक:॥ दार्वा घाट इत्यमर:। कठफोरवा इति लोके।

प्रतुदा मधुरा: पित्त कफघ्नास्तु वरा हिमा:॥ लघवो वद्ध वर्च्चस्का किञ्चि द्वात करा: स्मृता:॥ २१॥

अथ प्रसहा नाङ्गणा ना गुणाश्च॥

काको गृध्र उलूकश्च चिल्लश्च शश घातक:॥ चाषो भासश्च कुरर इत्याद्या: प्रसहा: स्मृता:॥ २२॥

भा० कपोत धवल पाण्डु शत पत्र वृहच्छुक॥ दार्वा घाट इस प्रकार अमरमें कहाहै॥ कठ फोर वा इस प्रकार लोक में कहेते हैं॥ प्रतुद मधुर पित्त कफ के नाशक कसेले शीतल॥ हलके मलको वान्धनें वाले और कुछ एक वात को करनें वाले कहेहै॥२१॥ अनन्तर प्रसहों की गणना और गुण। कौव्वा गिद्ध उल्लू चील वाज नील कंठ भास येह गिद्ध का भेद है कुरीर इत्यादि येह पक्षी प्रसह कहेहै॥ २२॥

(क) शश घातक:। वाज इति लोके। चाषं नील कण्ठ इति लोके। "भासो गृध्र विशेष स्यात्" कुरर: करा कुर इति लोके। "प्रसहा: कीर्त्तिता: एते प्रसह्यच्छिद्य भक्षणात्।" प्रसहा: खलु वीर्य्योष्णा स्तन्मांसं भक्षयन्ति ये॥ २३॥ ते शोष-भस्म-की न्माद-शुक्र क्षीणा भवन्ति हि॥ अथ ग्राम्याणां गणाना गुणाश्च। छाग-मेष-वृषाश्वाद्या: ग्राम्या: प्रोक्ता महर्षिभि:। ग्राम्या: वात हरा: सर्वे दीपना: कफ पित्तला:॥२४॥

मधुरा रस पाकाभ्यां बृंहणा बल वर्द्धना:॥ इत्यनूपाज न्तव:॥ अथ कूले चराणां गणना गुणा श्च॥

भा० (क) बाज इस प्रकार लोक में कहेते है। येह गिद्ध के किसम में है। करा कुर इस प्रकार लोकमें कहेते है॥ येह जबर दस्ती काटके खातेहै इस वा स्ते प्रसह है॥ प्रसह वीर्य्य में उष्ण है उनके मांस को जो भक्षण करते है॥ २३॥ वे शोष भसक उन्माद शुक्र और शुक्र क्षीण हो जाते हैं॥ अनन्तर ग्राम्यों की गणना और गुण। बकरी मेंडा बैल घोड़ा इनको महर्षि येनें ग्राम्य कहा है॥ सब ग्राम्य वात के नाशक दीपन कफ पित्त को करनें वाले है॥२४॥ और रस पाक से मधुर पुष्ट बल को बढाने वाले हैं॥ इस प्रकार अनूप जीव हैं। अनन्तर कूले चरों की गणना और गुण।

लुलाप गण्ड वाराह चमरी वारणा दय:॥ एते कूल चरा: प्रोक्ता: यत:कूले चरन्त्य पाम्॥२५॥ (क) लुलापो, महिष गण्ड:, खड्ग:, (चमरी चमर पुच्छि गौ) कूले चरा मरुत्पित्त हरा वृष्या बला वहा:॥ मधुरा: शीतला: स्निग्धा मूत्रला: श्लेष्म वर्द्धना:॥ २६॥ प्लवानां गणना गुणा श्च। हंस सार सका रण्ड वक क्रौञ्च सरा रिका:॥ नन्दी मुखी सका द म्बा बला काद्या: प्लवा:स्मृता:॥२७॥ प्लवन्ति स- लिले यस्म देते तस्मात् प्लवा: स्मृता:॥

भा० भैंस गेण्डा सूवर चवर गाय हाथी आदिक॥येह कूले चर हैं क्योंकि येह जल के किनारे विचरते है॥२५॥ (क) भैंस। गेण्डा। चवर पुच्छ गौ। कूले चर वात पित्त के नाशक शुक्र को करनें वाले बल कारी॥ मधुर शी तल चिकने मूत्र को करने वाले और कफ को बढ़ाने वाले है॥२६॥ अनन्तर प्लवों की गणना और गुण। हंस, सारस, कुरंडु वा, बगला क्रौंच आदि॥ नन्दी

मुरवी येह वोह जान वर हैं जिसके चोंच पर जामन के सम गुठली होतीहै और वत्तक सा होताहै करवा वगुला आदि ये प्लव कहे हैं ॥२७॥ येह जल में रहते है इस वास्ते इनको प्लव कहाहे ॥

कारण्डः कपर्द्दि कारख्यो वृहद चकाश " क्रौञ्चः रद् विहङ्गः स्यात् " वेङ्क इति लोके । शारारिका सिन्धु इति । स्थूला कठोरा वृत्ताच यस्याश्च ञ्चू परि स्थिता ॥ गुटिका जम्बु सदृशी प्रोक्ता नन्दी मुरवी तिसा ॥२८॥ कादम्बः करवा इति लोके । वलाका वगुली इति लोके । प्लवाः पित्त हरा स्निग्धाः मधुरा गुरवो हिमाः ॥ वात श्लेष्म प्रदाश्चापि वल शुक्र कराः सराः ॥२९॥ अथ कोशस्थानां गणना गुणाश्च ॥ शङ्खः शङ्खनख श्चापि शुक्ति शम्बूक-कर्कटाः ॥ जीवा एवं विधा श्चान्ये कोशस्थाः परिकीर्त्तिताः ॥ ३०॥

शङ्ख नखः क्षुद्र शङ्खः ।

भा० कुरडुवा ढीक । आडी । इति । स्थूल कठोर गोल जिसके चोंच पर रहेताहै॥ जामुन की गुठली के समान वो नन्दी मुरवी कहाहे ॥२८॥ करवा इस प्रकार लोकमे कहेते हैं । वगुली इस प्रकार लोक में कहेते हे । प्लव पित्त नाशक चिकने मधुर भारी शीतल ॥ वात कफ को करने वाले और शुक्र को करने वाले सरहे ॥२९॥ अनन्तर कोशस्थों की गणना और गुण कहेते हे ॥ शंखछोटा शंख सीप घोंगा केकड़ा ॥ इस प्रकार के जीव और कोशस्थ कहे हे ॥३०॥ छोटा शंख ।

कोशस्था मधुराः स्निग्धाः वात पित्त हरा हिमाः ॥ वृंहणा बहु वर्चस्का वृष्याश्च वल वर्द्धनाः ॥ ३१॥

अथ पादिनां गणाना गुणा श्च ॥

कुम्भीर-कूर्म-नक्राश्च गोधा-मकर-शङ्कवः॥ घरिट कः शिशुमारश्चेत्यादयः पादिनः स्मृताः ॥ ३१ ॥

(क) कुम्भीरो मारको जलजन्तुः। कूर्मः कच्छपः। नक्रः नाक इति लोके। गोधा गोहि जलजन्तुः। मकर मगर इति लोके। शङ्कुः साकुच इति लोके। घरिटकः घरी आल इति लोके। शिशुमारः सूस इति लोके।

पादिनोऽपि च येने तु कोशस्था नाङ्गुणैः समाः।

भा० कोशस्थ मधुर चिकने वात पित्त के नाशक शीतल ॥ पुष्ट बहुतमलको करनेंवाले शुक्रको करने वाले और बलको बढाने वाले हैं ॥ ३१॥ अनन्तर पादियोंकी गणाना औरगुण। येह मगर का भेद है। कछुवा नाका गोहि मगर साकुच। घडियाल सूस इत्यादि येह पादिक हेहें ॥३१॥ (क) येह मारक जल जीव हे। कछुवा। नाका। गोहि। मगर। साकुच। घरिआल। सूस। जो पादिहे वेभी कोशस्थोंके समान गुण में हें ॥

अथ मत्स्य नामानि गुणा श्च ॥

मत्स्यो मीनो विकारश्च उयो वैशारिणोऽण्डजः ॥ शकुलो पृथु रोमाच स सुदर्शन इत्यपि ॥ ३२॥ रोहिताद्यास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परिकीर्तिताः ॥ मत्स्याः स्निग्धोष्णा मधुरा गुरवः कफ पित्तलाः॥ ३३॥

भा० मछलियों के नाम औरगुण। मत्स्य मीन विकार उष वैशारिण अंडज शकुल पृथु रोमा और सुदर्शन येह मछलियों के नाम हैं ॥ ३२॥ रोहु आदिक जो जीव है वे मत्स्य कहे हैं। मत्स्य चिकने उष्ण मधुर भारी कफ पित्तको करनें वाले हैं ॥३३॥

वातघ्ना बृंहणा वृष्या रोचका बल वर्द्धनाः॥ मद्यव्यवा-
य सक्तानां दीप्ताग्नी नाञ्च पूजिताः॥३४॥ (क)

अथ जङ्गला दीनां नामानि गुणाश्च। तत्र जङ्गलेषु हरिणस्य गुणाः। हरिणः शीतलो बद्ध विण्मूत्रो दीपनो लघुः॥रसे पाके च मधुरः सुगन्धिःसन्निपात हा॥ ३५॥ कृष्णसार हरिणः। एणः कषायो मधुरः पित्तासृक्कफ वात हृत्॥ संग्राही रोचनो वल्यो ज्वर प्रशमनः स्मृतः॥ ३६॥

भा० और वात नाशक पुष्ट शुक्र को करने वाले रोचक कबल को बढाने वालेहैं तथा मद्य मैथुन में आसक्तोंको और दीप्ताग्नि यों कोभी हितहै॥ ३४॥ (क) अनन्तर जांगल आदियों के नाम गुण। उनसें हरिण के गुण। हरिण शीतल मलमूत्र को वान्धने वाला दीपन हलका॥ रस और पाक में मधुर सुगन्धि सन्निपात के नाशक है॥ ३५॥ अनन्तर काला हरिण। एण कसैला मधुर रक्त पित्त कफ वात इनका नाशक है॥ और काबिज रोचन बलके हित ज्वर कोशमन करनें वाला कहाहै॥ ३६॥

अथ कुरङ्गः। कुरङ्गो बृंहणो वल्यः शीतलः पित्त हृद्गुरुः॥ मधुरो वात हृत् ग्राही किञ्चित्कफ करः स्मृतः॥ ३७॥ अथ रोऊ। ऋष्यो नीलाण्ड कश्चापि गवयो रोऊ इत्यपि॥ गवयो मधुरो वल्यः स्निग्धो ग्या कफ पित्त लः॥ ३८॥ अथ चित्तरि। एण तस्तु भवेत् स्वादुर्ग्राहकः शीतलो लघुः॥ दीपनो रोचनः श्वास ज्वर दोष त्रयास्र जित्॥ ३९॥

भा० अनन्तर कुरङ्गः। कुरंग बृंहण बलके हित शीतल पित्त नाशक भारी ॥ मधुर वात नाशक का विज और कुछ कफ़ करने वाला कहाहै ॥३७॥ अनन्तर रोऊ। अथ्य नीला एडक गवय रोऊ येह नील गाय के नाम हैं॥नील गाय मधुर बलके हित चिकनी उष्ण कफ पित्त को करनें वाली है ॥३८॥ अनन्तर चिन्नरि। चिन्नरि मधुर कार विज शीतल हलका॥ दीप्तन रोचन है और श्वास ज्वर तीनों दोष रक्त इनको जीतने वाला है ॥ ३९॥

अथ बारह सिङ्गा। न्यङ्कुः स्वादु र्लघु र्बल्यो शुक्लो दोषत्रया पहः॥ अथ सावर। सावरं पललं स्निग्धं शीतलं गुरु च स्मृतम्। रसे पाके च मधुरं कफदं रक्त पित्त हृत्॥४०॥ राजि वस्तु गुरो ज्ञेयः पृषतेन समोजनैः॥ अथ पीठी। मुण्डी तु ज्वर का सास्त्र क्षय श्वासो पहो हिमः॥ अथ विले शयेषु तत्र शशः स्यात्। लम्ब कर्णः शशः शूली लोम कर्णो विलशयः॥ शशः शीतो लघु र्ग्राही रूक्ष स्वादुः सदा हितः॥ ४१॥ वन्हि कृत्कफ वातघ्नो वात साधारणः स्मृतः॥ ज्वरातीसार शोषा स्त्रश्वासा मय हरश्च सः॥ ४२॥ अथ साही। सेधातु शल्यकः श्वावित कथ्यते तद्गुणा अथ। शल्यकः श्वास कासास्त्र शोष दोषत्रया पहः॥४३॥ अथ पक्षिणां नामानि गुणाश्च ॥

भा० अनन्तर बारह सिङ्गा। बारह सिंगा मधुर हलका बलको हित शुक्रको करनें वाला तीनों दोषों का नाशक है ॥ अनन्तर सावर। सावर का मांस चिकना शीतल भारी कहाहै ॥ रस पाक में मधुर कफ को करने वाला रक्त पित्त का नाशक है॥४०॥ रषा चिन्नरि के समान गुणमें लोग जानें॥ अनन्तर पीठी। पीठी ज्वर

कास रक्त क्षय श्वास इनका नाशक शीतल होताहै ॥ अनन्तर विले शयों में शश होताहै ॥ लम्व कर्णा शश शूली लोम कर्णा विलें येह खर गोशके नामहै खर गोश शीतल हलका काविज रूखा मधुर सदा शीतल ॥ ४१॥ अग्निदीपन कफ़ वात कानाशक साधारण वात को करनें वाला कहाहै ॥ और ज्वर अतीसार शोथ रक्त श्वास रोग इनका नाशक वोह है ॥४२॥ अनन्तर साही । सेधा तु शल्य क श्वाविन येह साहीके नाम है । अनन्तर गुण कहेते हैं । साही श्वास कास रक्त शोष और त्रिदोष इनका नाशक है ॥४३॥ अनन्तर पक्षियों के नाम और गुण ॥

पक्षी खगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः॥ शकुनिर्वि: पतत्रीच विष्किरो विकिरो ऽण्डजः॥ ४४॥ धान्याःकुरचरा येऽत्र तेषां मांसं लघुत्तमम् ॥ आनूपं वलकृन्मांसं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ४५ तेषु विष्किरे षु वटेरवटइ । वर्त्तिको वर्त्ते कश्चित्रस्ततो ऽन्या वर्त्तकाः स्मृताः॥ वर्त्तको ऽग्नि करः शीतो ज्वरदोष त्रयापहः ४६ ॥ सुरुच्यः शुक्रदो वल्यो वर्त्तकाल्प गुणास्ततः॥

भा० पक्षी खग हिङ्ग विहंग विहङ्गम॥ शकुनी वियत त्री विष्किर विकिर अंडज येह पक्षी यों के नाम है॥ ४४॥ धान्य और कुरचर जो इसें है उनके मांस हलके और अच्छे है ॥ आनूप मांस वल कारी चिकना गुरु तर कहाहै ॥ ४५॥ उन विष्किरोंमे वटेर वटई। वर्तिक वर्त्तक चित्र येह वटेर के नाम हैं। और उस्से दूसरा वर्तक कहाहै ॥ वटेर अग्नि दीपन शीतल ज्वर और तीनों दोष इनका नाशकहै॥४६॥ और अच्छा रुचि को करनें वाला शुक्र को करनें वाला वलके हित होताहै और वटई उस्से गुणमें अल्प है॥

अथ लावा । लावा विष्किर वर्गेसु ते चतुर्धा मता बुधैः॥ पांशुलो गौरको ऽन्य स्तु पौण्डरीकोद रस्तथा ॥ ४७॥ लावा वन्हि कराः स्निग्धा गरम्रा ग्रा-

हिका हिता: ॥ पांशुल: श्लेष्म लस्तेषु वीर्योष्ण निल नाशन: ॥४८॥ गौरो लघुतरो रूक्षो वन्हिकारी त्रिदोष जित् ॥ पौण्ड्रक: पित्तकृत् किञ्चि ल्लघु वात कफाप ह: ॥४९॥ दर्भरो रक्त पित्तघ्नो हृदामय हरो हिम: ॥

भा० अनन्तर लवा। विष्कर वर्ग में वोह चार प्रकार पंडितोंने मानाहै ॥ पांशुल गौरक और दूसरा पौण्डरीक उदर येह लावाके भेद हैं ४७॥ लवा अग्नि को करनें वाला चिकना विषनाशक का बिज और पथ्यहै ॥ और उनमें पांशुल कफकारि शुक्रको करनें वाला वात नाशक है ॥४८॥ गौर बहुत हलका रूखा दीपन और त्रिदोष को जीतने वाला है॥ पौण्ड्रक पित्त को करनें वाला कुछ हलका वात कफका नाशक है ॥४९॥ दर्भर रक्त पित्त का नाशक और हृदय रोग का नाशक शीतलहै॥

अथ वगेरा। वालीको वर्त्ति चटको वार्त्ती कश्चे व स स्मृत: ॥ वाली को मधुर: शीतो रूक्षश्च कफ पित्त नुत् ॥५०॥ अथ कृष्णा तित्ति रि गौरति त्ति री ॥ तित्तिरि: कृष्ण वर्ण: स्या च्चि त्रो ऽन्यो गौरतित्तिरि: ॥ तित्तिरी बल दो ग्राही हिक्का दोष त्रया पह: ॥ ५१॥ श्वास कास ज्वर हर स्तस्माद्गौ राधिको गुणै: ॥ अथ गवरै आ ॥ चटक: कल विङ्क: स्यात् कुलिङ्ग: काल कण्ठ क: । कुलिङ्ग: शीतल: स्निग्ध: स्वादु: शुक्र कफ प्रद: ॥५५॥ सन्नि पात हरो वेश्म चट कश्चाति शुक्रल: ॥

भा० अनन्तर वगेरा। वालीक वर्त्ति चटक वार्तीक येह वगेरा के नामहै॥ वगेरा मधुर शीतल रूखा कफ पित्त का नाशक है ॥ ५०॥ अनन्तर और सुफेद तीतर॥ काला तीतर चित्र और दूसरा सफेद तीतर होताहै ॥ तीतर वलको देने वाला काविज है और हिचकिश तीनों दोष ज्वर इनका नाशक है उस्से सफेद तीतर

गुणमें अधिक है ॥ अनन्तर गवरैआ ॥ चटक कलविङ्क कुलिङ्ग काल कंठ क ॥ येह गवरैआ के नाम है ॥ गवरैआ शीतल चिकना मधुर शुक्र और कफको करनें वाला ॥५२॥ तथा सन्निपातका नाशक और घरकी गवरैआ वहुत शुक्र को करने वालाहे ॥ कुक्कुटो वन कुक्कुटः । कुक्कुटः कृकवाकुः स्यात् कलयश्चरणा युधः ॥ ताम्र चूड स्तथा दक्षो पातरार्त्री शिखण्डिकः ॥ ५३॥ कुक्कुटो बृंहणः स्निग्धो वीर्य्योष्णो ऽनिल हृत् गुरुः ॥ चक्षुष्यः शुक्र कफ हृत् वल्यो वृष्य कषायकः ॥ ५४॥ आरण्य कुक्कुटः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्म लो गुरुः ॥ वात पित्त क्षय वमि विषम ज्वर नाशनः ॥५५॥ प्रतु देषु हारी तस्य ॥

भा० अनन्तर मुरगा औरवन मुरगा । कुक्कुट कृकवा कुकलय चरणायुध ॥ ताम्र चूड तथा दक्ष पातरार्त्री शिखिण्डिक येह मुरगेके नाम हैं ॥ ५३॥ मुरगा पुष्ट चिकना वीर्य्य में उष्ण वात नाशक भारीहे ॥ और नेत्रके हित शुक्र कफ को करनें वाला वलके हित शुक्र को करनें वाला कसेला है ॥५४॥ वन मुरगा चिकना पुष्ट कफको करनें वाला भारी है ॥ और वात पित्त क्षय वमन विषम ज्वर इनका नाशक है ॥५५॥ प्रतुद में हारील का ॥

हारीतो रक्त पीतःस्याद्ध रितो ऽपि सकथ्यते हारीतो हारील इति लोके ॥ हारीतो रूक्ष उष्णश्च रक्त पित्त कफा पहः ॥ स्वेदस्वर करः प्रोक्तः ईष द्वात करश्च सः ॥ पाण्डु धवल पाण्डु । पाण्डुस्तु द्विविधो ज्ञेय श्चित्र पक्षः कलध्वनिः ॥ द्वितीयो धवलः प्रोक्तो स कपोतः स्फुट स्वनः ॥ ५७ ॥ चित्र पक्षः चित्तरोया इति लोके ।

भा० हारीत रक्त पीत होताहै और हरित भी येह उसका नाम है इसको हरील

इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥ हारील रूखा गरम रक्त पित्त और कफका नाशक है। और स्वेदस्वर को करने वाला कहाहै ॥तथा अल्प शुक्र को करने वालाहै ॥५६॥ पाण्डु और धवल पाण्ड । पिडुका दो प्रकार का होताहै चित्र पक्ष और कल ध्वनि ॥ दूसरा धवल कहाहै कपोत स्फुट नये पेड कीके नाम है ॥ ५७॥ चित्र पक्ष पित्त रोया इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥

चित्र पक्षः कफ हरो वातघ्नो ग्रहिणी प्रणुत् ॥ धवलःपा
ण्डु रुक्षिष्टो रक्त पित्त हरो हिमः ॥ ५८॥ अथमयूरः।
मयूर श्चन्द्र की केकी मेघरावो भुजङ्ग भुक् ॥ शिखी शि
खावलो वर्ही शिखण्डी नील कण्ठ कः ॥ ५९॥ शुक्लो पा-
ङ्गः कलापीच मेघ नादः कलाप्यपि ॥ रसे पाके च मधुरः
संग्राही वात शान्ति कृत् ॥ ६०॥ कबूतर परेवा ॥
पारा वतः कलरवः कपोतो रक्त वर्द्धनः ॥ पारावतो गु-
रुः स्निग्धो रक्त पित्तानि ला पहः ॥ ६१॥ संग्राही शीत
लस्तज्ज्ञैः कथितो वीर्य्य वर्द्धनः ॥

भा० चित्र पक्ष कफ नाशक वात नाशक और संग्रहणी का नाशक है ॥ धवल और पाण्डु रक्त पित्त का नाशक शीतल कहाहै ॥ ५८॥ अनन्तर मोर ॥ मोर चन्द्र की केकी मेघराव भुजङ्ग भुक ॥ शिखी शिखावल वर्हि शिखण्डी नील कण्ठ क ॥५९॥ शुक्लो पाङ्ग कलापी मेघनाद कलापियेह मोरके नामहै ॥ मोर रस पाक में मधुर काबिज वात शमन करने वाला है ॥ ६०॥ अनन्तर कबूतर परेवा । पारावत कलरव कपोत रक्त वर्द्धन येह कबूतर के नाम है कबूतर भारी चिकना रक्त पित्त वात का नाशक है ॥ ६१॥ और काबिज शीतल उसको जानने वालोंने वीर्य्य का बढाने वाला कहाहै ॥

अथ पक्ष्यण्डस्य गुणाः ॥

नाति स्निग्धा नि वृष्याणि स्वादु पाकर सा नि च ॥ ॥

वातघ्नान्यपि शुक्राणि गुरूण्य ण्डानि पक्षिणाम् ॥
६२॥ ग्राम्येषु छागस्य । छागलो वर्कर श्छागो वस्तो
जः क्षेलकः स्तुभः॥ अजा छागी स्तुभा चापि छेलिका
च गलस्तनी ॥ ६३॥ छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादु पा
कं त्रिदोष नुत् ॥ नाति शीत मदा हिस्यान्न् स्वादु पीन
सनाशनम् ॥ ६४ ॥ परं बल करं रुच्यं बृंहणं वीर्य्य
वर्द्धनम् ॥ अजाया अप्रसूताया मांसं पीन सनाश नम् ॥
६५॥ शुष्क कासे ऽरुचौ शोषे हित मग्ने श्च दीप नम् ॥

भा० अनन्तर पक्षि योंके अंडो का गुण । न बहुत चिकनें शुक्रको करनें वाले र
स और पाक में मधुर ॥ वात नाशक अति शुक्र को करनें वाले भारी ऐसे पक्षी
योंके अंडे होते है ॥ ६२॥ ग्राम्य में बकरी का ॥ छागल वर्कर छाग वस्त ओज
क्षेल कस्तुभ येह बकरे के नाम है ॥ और अजा छागी स्तु भा छेलि का गलस्त
नी येह बकरी के नाम है ॥६३॥ छाग मांस हलका चिकना पाकमें मधुर त्रि-
दोष नाशक ॥ न बहुत शीतल अवि दाही मधुर होताहे और पीनस का नाशकहे
॥६४॥ अत्यन्त बलको करनें वाला रुचिको करनें वाला पुष्ट वीर्य्य को बढानें
वाला है ॥ विन बच्चों को दीहुई बकरी का मांस पीनस नाशक है ॥ ६५॥
सूकी खांसी में अरुचि में शोष में हित है और अग्नि दीपन ॥

अजा सुतस्य बालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम् ॥ ६६॥
हृद्यं ज्वर हरं श्रेष्ठं सुखदं बलदं भृशम् ॥ मांसं निः
का सिताण्डस्य छागस्य कफ कृद्गुरु ॥ ६७॥ स्रोतः
शुद्ध करं बल्यं मांसदं वात पित्त नुत् ॥ वृद्धस्य वा
तलं रूक्षं तथा व्याधि मृतस्य च॥ ६८॥ वर्द्ध जन्तु वि
का रव्यं छाग सण्डं रुचि प्रदम् ॥

भा० बकरी के बच्चे का मांस लघुज्वर कहाहै ॥ ६६॥ ह्रध ज्वर नाशक और सुख को देनें वाला और अत्यन्त बलको देने वालाहै ॥ आंड निकाले हुवे बकरे का मांस कफ को करनें वाला भारीहै ॥ ६७॥ और सोतों को शुद्ध करनें वाला बलके हित मांसको करने वाला वात पित्त का नाशक होताहै ॥ वृद्ध छाग का मांस वातल रूखा तथा रोगसे मरे हुवे का मांस भी वैसेही होताहै ॥ ६८॥ बकरी का सिर जत्रु के ऊपर होने वाले रोगका नाशक और रुचिको करनें वाला है ॥

अथ मेढा । मेढ्रो मेढो हुडो मेष उरणो ऽप्येडको ऽपिच॥ 'अवि रेष्टि स्तथो र्णा युस्क' कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ ६९ 'मेषस्य मांसं पुष्टौ स्यात्पित्त श्लेष्म करं गुरु ।' तस्यै वाण्ड विहीनस्य मांसं किञ्चि ल्लघुस्मृतम् ॥ ७०॥

अथ एडिका दुम्बिका इति लोके ।

दुम्बा । एडकः पृथु शृङ्गः स्यान्मे दः पुच्छ स्तु दुम्ब- कः॥ एड कस्य पलं ज्ञेयंमेषा मिषसमं गुणै ः॥ ७१ मेदः पुच्छो द्भवं मांसं हृद्यं वृष्यं श्रमा पहम् ॥ पित्त- श्लेष्म करं किञ्चि द्वात व्याधि विना शनम् ॥ ७२॥

भा० अनन्तर मेढा । मेढ्र मेढ हुड मेष उरण एडकभी ॥ अवि वृष्णि तथा उर्णा युस्क येह भेडके नाम है, अनन्तर उसके गुण कहेते हैं ॥ ६९॥ मेढे का मांस पुष्टहोताहै और पित्त कफ का करनें वाला भारी है ॥ अंड रहित उसका मांस किंचित हलका कहाहै ॥ ७०॥ अनन्तर दुम्बिका । दुम्बा । एडक पृथु शृङ्ग। मेद पुच्छ दुम्ब कयेह दुम्बेकेनाम है ॥ दुम्बे का मांस मेंढके मांस के समान गुणमें जानना चाहिये ॥ ७१॥ उस्के दुम्का मांस हृद्य शुक्र को उत्पन्न करने वाला श्रमनाशक है ॥ और पित्त कफ को करनें वाला तथा कुछ एक वात के रोग का नाशक है॥ ७२॥ अथ वर्द गावः । वली वर्दस्तु वृषभ स्त्रय सश्च तथा वृषः॥ अनड्वान् सौर भेयस्य गौरुक्षामद्र

द्धत्यापि ॥७३॥ सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौ
रु दाहृता। गोमांसन्तु गुरु स्निग्धं पित्त श्लेष्म विवर्द्ध
नम्॥७४॥ वृंहणं वात हृद्वल्य मपथ्यं पीन सप्रणुत्॥
अथ घोड़ा। घोटके पीजि तुरगा तुरङ्गश्च तुरङ्गमाः
वाजि वाहार्व्व गन्धर्व - हय सैन्धव सप्तयः॥ ७५॥
अश्व मांसन्तुक्षुवरं वन्हि कृत्कफ पित्तलम्॥ वात
हृद्वृंहणं वल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु ॥७६॥

अथ कूले चरेषु महिषस्य।

भा॰ अनन्तर वर्दगाव वली वर्द वृषभ ऋषभ तथा वृष॥ अनड्वान सौरभेय ल्य गौ उक्षा भद्र येह वैल के नाम है ॥७३॥ सुरभी सौर भेयी हाहेयी गौ येह गाय के नाम कहे हैं॥ गौ मांस भारी चिकना पित्त कफ़ का वढ़ानें वाला है॥ ७४॥ और पुष्ट वात नाशक वल को करनें वाला अहित और पीनस का नाशक है॥ अनन्तर घोड़ा ॥ घोटक पिजि तुरंग तुरङ्गम ॥ वाजि वाहार्व्व गंधर्व हय सैन्धव सप्तय येह घोडे के नाम हैं॥ घोड़े का मांस कसेला दीपन कफ़ पित्त को करनें वाला है॥ वात नाशक वृंहण वल के हित नेत्र के हित मधुर हलका है ॥७६॥ अनन्तर कूले चरों में भैंस का ॥

महिषो घोट कारिःस्यात्का सरश्च रजस्वलः॥ पी
न स्कन्धः कृष्ण कायो लुलापो यम वाहनः॥७७॥
महिषस्या मिषं स्वादु स्निग्धो ष्णं वात नाशनम्॥
निद्रा शुक्रप्रदं वल्यं तनु दार्ढ्य कृद्गुरु ॥७८॥ दुग्ध
न्च स्पष्ट विन्मूत्रं वात पित्ता स्र नाशनम्॥

भा॰ महिष घोट कारिका सार रज स्वल॥ पीनस्कन्ध कृष्णकाय लुलाय यम वाहन॥७७॥ येह भैंस के नाम हैं भैंस का मांस मधुर चिकना गरम वातनाशक

है॥ और निग्ध शुक्र को करनें वाला बलके हित शरीर को दृढ करनें वालाभारी ॥ ७८॥ पाकको करनें वाला औरमल मूत्र को करनें वाला वात रक्त पित्त इन का नाशक है ॥ अथ मण्डूकः। मण्डूकःप्लव गोभेको वर्षाभूर्दर्दुरो हरिः॥ मण्डूकः श्लेष्मलो नाति पित्तलो बलकारकः॥७९॥ अथ पादिषु कच्छुआ। कच्छपो गूढपात्कूर्मः कमठो दृढ पृष्ठकः। कच्छपो बल दो वातपित्तनुत्पुंस्त्व कारकः॥८०॥ अथ विशेषाः। अथ सद्योहतस्य मांसस्य गुणाः। सद्यो हतस्य मांसं स्यात् व्याधि घातियथामृतम्। वयस्थं वृंहणं सात्म्य मन्यथा तद्विवर्जयेत्॥ ८१॥

भा० अनन्तर मेडक। मंडूक प्लव गो भेक वर्षाभू दर्दुर हरि येह मेंडक के नाम हैं। मेंडक कफ करनें वाला और बहुत पित्त को करने वाला नहीहै तथा बल करने वाला है॥७९॥ अनन्तर पादि योंमें कच्छुवा। कच्छप गूढ पात कूर्म कमठ दृढ एष्टक येह कच्छुवे के नाम है। कच्छुवा बलको देने वाला वात पित का नाश क पुरुषत्वको करनें वाला है। ८०। और विशेष। अनन्तर तत कालके मारे हुवे के मांस का गुण। तत्काल के मारे हुवे का मास रोग नाशक जैसे अमृत॥ वयके हित पुष्ट सात्म्य होताहै॥ और इस्से विरुद्ध उसको त्याग देवे॥ ८१॥

स्वयं मृतस्य मांसम्। स्वयं मृतस्य चाबल्य मती सारकरंगुरु॥ वृद्ध वाल मांसम्॥ वृद्धानां दोषलं मांसं। वालानां वल्लहं लघु॥ सर्प दष्टस्य मांसञ्च शुष्क मांसं त्रिदोष कृत्॥ ८२॥ व्याल दष्टञ्च दुष्टञ्च शुष्कं। शूल करस्परम्॥ अथ विषादि मृतस्य मांसम्॥

भा० आपहीमरे हुवे के मांस। आपही मरे हुवे का मांस बल नाशक अतीसार को करनें वाला भारी होताहै॥ वृद्ध और वाल का मांस। वृद्धों का मांस दोषका

य कारक और बच्चों का मांस बलको देनें वाला हलका होताहै ॥ सांप के काटे का मांस और सूका मांस त्रिदोष कारक है ॥ ८२॥ सांपके काटे हुवे का मांस और दुष्ट तथा सूका मांस परम शूलकारक है ॥ अनन्तर विषादि से मरे हुवेका मांस॥ विषाम्बु रुङ्मृतस्यैतत् मृत्यु दोष रुजा करम् ॥ क्लिन्न शुत् क्लेश जनकं कृशं वात प्रकोप नम् ॥ ८३॥ तोय पूर्ण त्रिरा जालं मृतमप्सु त्रिदोष कृत् ॥ विहङ्गेषु पुमान् श्रेष्ठः स्त्री चतुष्पद जातिषु ॥ ८४॥ परार्द्धो लघु पुंसां स्यात् स्त्रीणां पूर्वार्द्ध मादि शेत् ॥ देह मध्यं गुरु प्रायं। सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम् ॥ ८५॥ पक्ष क्षेपा द्विहङ्गानां तदेव लघु कथ्यते ॥

भा० विष जल और रोग इनसे मरे हुवे का मांस मृत्यु दोष रोग इनकी करने वाला है ॥ और सड़ा उत्क्लेश को करनें वाला कृश वात के प्रकोप को करनें वाला है ॥ ८३॥ जलमें मरा हुवा जलसे भरा त्रिराजालवाला ऐसा मांस त्रिदोष को करने वाला है ॥ पक्षियोंमें नर श्रेष्ठ और चौपायों में स्त्री श्रेष्ठ है ॥ ८४॥ नरों का पिछला हिस्सा हलका होताहै। और स्त्रियों का अगला हिस्सा हलका ॥ सब जीवों का मध्य देह प्रायः भारी कहाहै ॥ ८५॥ पक्ष क्षेपसे परिन्दों का वोही हलका कहा है॥ गुरू ण्यण्डानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम् ॥ ८६॥ उरःस्कन्धो दरं कुक्षी पादौ पाणी कटी तथा ॥ पृष्ठ त्वग् यकृ दन्त्राणि गुरूणीह यथो त्तरम् ॥ ८७॥ लघु वात करं मांसं खगानां धान्य चारिणाम् ॥ मत्स्याशिनां पित्त करं वातघ्नं गुरु कीर्त्तितम् ॥ ८८॥

भा० सब पक्षियोंके अंडे भारी और गरदन भी भारी होतीहै ॥ ८६॥ और छातीकन्धा उदर कूख पाव हाथ तथा कमर ॥ पीठ त्वचा यकृत् आंत देह यथोत्तरभारीहै

॥८७॥ घात करने वाले पक्षियों का मांस हलका और वात करनें वाला है ॥ और म छली खानें वालों का पित्त वात नाशक भारी कहा है ॥ ८८॥

पलाशिनां श्लेष्म करं लघु रूक्ष मुदी रितम् ॥ बृंहणं गुरु वातघ्नं तेषा मेवं पलाशिनाम् ॥८९॥ तुल्य जाति ष्वल्प देहा महा देहेषु पूजिताः॥ अल्प देहेषु शस्यन्ते तथैव स्थूल देहिनः॥९०॥ मत्स्येषु रोहितस्य ॥ रक्तो दरो रक्त मुखो रक्ता क्षो रक्त पक्षतिः॥ कृष्ण पुच्छो मय श्रेष्ठो रोहितः कथितो बुधैः॥ ९१॥रोहितः । सर्व मत्स्यानां वरो वृष्यो ऽर्दिता र्तिजित्॥ कषाया नुरसः स्वादु वातघ्नो नाति पित्त कृत्॥ ९२॥ ऊर्ध्व जत्रु ग- ता न्रोगान् हन्या द्रोहित मुण्ड कम् ॥

भा० मांस खाने वालों का कफ करने वाला हलका रूखा कहा है ॥ उन्हीके । मांस को खाने वालों का मांस पुष्ट भारी वात नाशक होता है ॥ ८९॥ समान । जाति वाले बड़े देह वालों में अल्प देह वाले श्रेष्ठ है ॥ उसी प्रकार अल्प शरीर वालों में स्थूल देह वाले प्रशस्त है ॥९०॥ मछलियों में रोहू का मांस ॥ लाल उदर लाल मुख लाल पर ॥ काली पूंछ मछलियों में श्रेष्ठ रोहू पंडितों नें कहा है ॥९१॥ रोहू सब मछलियों में श्रेष्ठ शुक्र को करनें वाली अर्दित रोग को जीतने वाली ॥ पीछेसे कसेली मधुर वात नाशक न बहुत पित्त कोकर नेंवाली है ॥९२॥ रोहूका सिर गलेके ऊपर के रोगों को नाश करता है ॥

सिलन्धा । सिलन्धः श्लेष्म लो बल्यो विपाके म- धुरो गुरुः ॥ वात पित्त हरो हृद्यं आम वात करश्च। सः॥ ९३॥ अथ भाकुर । भकुरो मधुरः शीतो वृ- ष्यः श्लेष्म करो गुरुः ॥ विष्टम्भ जन कश्चापि रक्त ।

पित्त हरः स्मृतः ॥ ९४॥ मोमा चिका ॥

मोचिका वात हृद्बल्या वृंहणी मधुरा गुरुः ॥ पित्त
हृत कफ कृद्रुच्या वृष्या दीप्ता ग्नये हिता ॥ ९५॥ म
ठना चूआरी इति च पोठिया वोरी इति च ॥ पाठिनः
श्लेष्म लो बल्यो निद्रालुः पिशिता शनः॥ दूषये द्रु-
धिरं पित्त कुष्ठ रोगं करो तिच ॥ ९६॥

भा० सिलन्धा मछली । सिलन्ध कफ़ को करनें वाली वलके हित विपाक में मधुर भारी ॥ वात पित्त की नाशक हृद्य और वोह आम वात को करनें वाली है ॥ ९३॥ अनन्तर भाकुर । भकुर मधुर शीतल शुक्रको करनें वाली कफ कारक भारी होतीहै । और विष्टंभ जनक तथा रक्त पित्त की नाशक भी कही है ॥ ९४॥ अनन्तर मोचिका । मोचिका वात नाशक वलको करनें वाली पुष्ट मधुर भारी ॥ पित्त नाशक कफ़ को करनें वाली और दीप्ताग्नि वाले को हित है ॥ ९५॥ मठना चूआरी ॥ पोठिया वोरी । मठना कफ़को करनें वाली वलके हित निद्रा को करनें वाली है ॥ और मांस खाने वाले के रुधिर को विगाड तीहै तथा पित्त और कुष्ट रोग कोभी करतीहै ॥ ९६॥

अथ सींड़ी । शृङ्गी तु वात शमनी स्निग्धा श्ले
ष्म प्रकोपनी ॥ रसे तिक्ता कषाया च लघ्वी रुच्या ।
स्मृता बुधैः ॥ ९७॥ अथ हीलसा ॥ इल्लिसो
मधुरः स्निग्धो रोचनो वन्हि वर्द्धनः ॥ पित्त हृत्कफ
कृत्किञ्चि ल्लघु र्वृष्यो ऽनिला पहः ॥ ९८॥

भा० अनन्तर सींड़ी ॥ सींड़ी वातको शमन करनें वाली चिकनी कफ़ प्रकोप करनें वाली ॥ रस में तिक्त कसेली रुचि को करनें वाली पंडितों ने कहीहै ॥ ९७॥ अनन्तर हीलसा ॥ हीलसा मधुर चिकनी रुचि को करनें वाली दीपन ॥ पित्त नाशक कफ़ को करनें वाली कुछ हलकी शुक्र को करनें वाली वात नाशक है ॥ ९८॥

अथ सोरी । शष्कुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तुवरा स्मृता । अथ गर्गरा । गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजित्कफकोपनः। अथ कवइ । कविका मधुरा स्निग्धा कफघ्ना रुचिकारिणी ॥ किञ्चित् पित्तकरी वातनाशिनी वन्हिवर्द्धिनी ॥ ९९ ॥ अथ वाम्वी ॥ वर्मिमत्स्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिकरो लघुः ॥

भा० अनन्तर सोरि । सोरी का बिज हृद्य मधुर कसैली कहीहै ॥ अनन्तर गर्गरा । गर्गरा पित्त को करनें वाली कुछ एक वात को जीतनें वाली कफ को कुपित करनें वाली है । अनन्तर कवइ । कवई मधुर चिकनी कफ नाशक रुचिको करने वाली ॥ कुछ एक पित्त को करनें वाली वातनाशक अग्नि को बढानें वाली है ॥ ९९ ॥ अनन्तर वाम्वी ॥ वाम्वी मछली वात पित्त को हरती है और रुचि को करनें वाली हलकी है ॥

अथ दण्डारी । दण्डमत्स्यो रसे तिक्तः पित्तरक्तं कफं हरेत् । वातसाधारणः प्रोक्तः शुक्लो बलवर्द्धनः ॥ १०० ॥ अथ अरङ्गी । एरङ्गी मधुरः स्निग्धो विष्टम्भी शीतलो लघुः ॥ अथ पपता ॥ महासफरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकफापहः ॥ शिशिरो मधुरो रूक्षो वातसाधारणः स्मृतः ॥ १०१ ॥ अथ गरई ॥ गरघ्नी मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृत् ॥ कफघ्नी रुचिकृत् बल्या दीपनी बलवीर्य्यकृत् ॥ १०२ ॥ अथ मदुरी । मद्गुरी वातहृत्स्त्यो वृष्यः कफकरो लघुः ॥

भा० अनन्तर दण्डारी । दण्डारी मछली रसमें तिक्त और पित्त रक्त कफ इनको

हरती है ॥ तथा साधारण वात को करनें वाली शुक्र को करनें वाली और बल को बढानें वाली हे ॥१००॥ अनन्तर अरंगी। अरङ्गी। मधुर चिकनी विष्टंभ को करनें वाली शीतल हलकी होतीहै ॥ अनन्तर पापता। पापता तिक्त पित्त कफ की नाशक॥ शीतल मधुर रुचि को करनें वाली साधारण वात को करनें वाली कहीहै ॥१०१॥ अनन्तर गरई। गरई मधुर तिक्त कसैली वात पित्त की नाशक ॥ कफ नाशक रुचि को करनें वाली दीपन बल वीर्य्य को करनें वालीहै ॥ १०२॥ अनन्तर मङ्गुरी। मङ्गुरी वात नाशक बलके हित शुक्रको करनें वाली कफकारक हलकी है ॥

अथ टेङ्गरा। सपाद मत्स्यो मेधा कृत्मेह क्षय करश्चसः ॥ वात पित्त करश्चा पि रुचि कृत्परमो मतः ॥१०३॥

अथ सफरी पोठी इति च।

पोठी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रघ्नी कफ वात जित् ॥ स्नि ग्धा स्य कण्ठ रोगघ्नी रोचनी च लघुः स्मृतः ॥१०४॥

अथ क्षुद्र मत्स्याः। क्षुद्रा मत्स्याः स्वादु रसाः दोष त्रय विनाशनाः ॥ लघु पाका रुचिकरा बलदा स्ते हिता मताः ॥ १०५॥ अथा तिक्षुद्र मत्स्याः ॥ अति सू क्ष्माः पुंस्त्व हरा रुच्याः कासा निला पहाः ॥

भा० अनन्तर टेङ्गरा। टेङ्गरा कान्ति को करनें वाली और प्रमेह नाशक दों हद्दे तथा वात पित्त कर और परम रुचिको करनें वाली कहीहै ॥ १०३॥ अनन्तर सफरी और पोठी भी कहेते हैं। पोठी तिक्त कडवी मधुर शुक्रको करने वालीहै और कफ वात को जीतनें वाली है ॥ चिकनी मुख कंठ इनके रोगों की नाशक रुचिको करनें वाली हलकी कहीहै ॥१०४॥ अनन्तर छोटी मछलियां ॥ छोटी मछलियां रसमें मधुर तीनों दोषों की नाशक ॥ पाक में हलकी रुचि को करनें वाली बलको देने वाली वे हित है ॥ १०५॥ अनन्तर वहुत छोटि मछलियां। वहुत छोटी पुरुष त्व की नाशक रुचिको करनें वाली कास वात की नाशक है ॥

अथ मत्स्याण्डा।

मत्स्य गर्भो भृशं वृष्यः स्निग्ध पुष्टि करो लघुः॥ कफ मे
हःप्रदो बल्यो ग्लानि कृन्मेह नाशनः॥१०६॥
अथ सूरवढी। शुष्क मत्स्या नवा बल्याः दुर्जराः विड् वि
बन्धिनः। अथ दग्ध मत्स्याः। दग्ध मत्स्यो गुणैः श्रे
ष्ठः पुष्टि कृद्द्ल बर्द्धनः। अथ कूप जादि मत्स्य गुणाः
॥ कौप मत्स्याः शुक्र मूत्र कुष्ठ श्लेष्म विवर्द्धनाः॥स
रोजा मधुराः स्निग्धा बल्या वात विनाशनाः॥१०७
॥ नादेया वृंहणा मत्स्या गुरवो ऽनिल नाशनाः॥ र-
क्त पित्त करा वृष्याः स्निग्धोष्णाः स्वल्प वर्चसः॥१०८
चौण्ड्याः पित्त कराः स्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः॥

भा० अनन्तर मछलियों के अंडे। मछलिके अंडे अत्यन्त शुक्रको करनें वाले चिकनें पुष्टि को करने वाले हलके हे॥ और कफ प्रमेह को करनें वाले बलके दित ग्लानि को करनें वाले प्रमेह नाशकहे॥१०६॥ अनन्तर सूरवी। सूकी म छली नई बलको देनें वाली दुर्जर मलको वान्धनें वाली हे॥ अनंतर दग्ध मत्स्य। दग्ध मछली गुणमें श्रेष्ट पुष्टि को करनें वाली बलको बढ़ानें वाली है। अनन्तर कूवें आदि में की मछलियों केगुण॥ कुवेंकी मछलियां शुक्र मूत्र कुष्ट कफ इन कोबढ़ानें वाली हे॥ सरोवर की मछलियां मधुर चिकनी बलको करनेंवाली। वातकी नाशक हें॥१०७॥नदी की मछलियां पुष्ट भारी वात नाशक हे॥ और रक्त पित्त को करनें वाली शुक्रको करने वाली चिकनी उष्ण अल्प मलको करनें वाली हे॥१०८॥ गढ़ईकी मछलियां पित्त को करनें वाली चिकनीमधुर हलकी शीत ल होतीहे॥

ताडागा गुरवो वृष्याः शीतलाः बल मूत्रदाः॥१०९
॥ताडागा वाक्षिप्र जाताः बला युर्मति वृद्धकराः॥
अथर्तु विशेषे मत्स्य विज्ञायः।

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः॥ वसन्ते ते तु नादेया ग्रीष्मे चौञ्ज समुद्भवाः॥ ११०॥ तडाग जाता वर्षासु तास्व पथ्या नदी भवाः॥ नैर्झराः शरदि श्रेष्ठा विशेषो ऽय मुदा हृतः॥ १११॥

इति श्री भाव प्रकाशे मांस वर्गः।

भा० तालाव की मछलियां भारी शुक्रको करनें वाली शीतल वल मूत्र की देनें वाली है॥ १०८॥ तालाव और वावली की मछलियां वल आयु मति दृष्टि इन को करनेंवाली है ॥ अनन्तर ऋतु विशेष में मत्स्य विशेष । हेमन्त में कुवें की मछली शिशिर में सरो वर की हितहै ॥ वसन्त में नदीकी ग्रीष्म में गढ्ढे की हितहै॥ ११०॥ तालाव की वर सात में हित होतीहै और वरसात में नदी की अहित होतीहै ॥ झरनें की शरद में श्रेष्ठ होतीहै । येह विशेष कहा है॥ १११॥

इति भाव प्रकाशे मांस वर्गः।

अथ कृतान्न वर्गः॥

तत्रान्नानां साधन प्रकारः सिद्धानां गुणाश्च ॥

तत्र परि भाविता ।

समवा यिनि हेतौये मुनि भिर्गणिता गुणाः॥ कार्य्ये ऽपि ते ऽखिला ज्ञेयाः परि भायेति भाषिता ॥ ११२॥ क्वचित्संस्कार भेदेन गुणा भेदो भवे द्यतः॥ भक्तं लघु पुराणस्य शालेस्त च्चिपिटो गुरुः॥ ११३॥ क्वचि द्योग प्रभावेन गुणान्तर मपे क्ष्यते ॥ कदन्नं गुरु सर्पिश्च लघुक्तं सुहितं भवेत् ॥ अथ सक्तस्य नामानि साधनं गुणाश्च

भा० अनन्तर कीये हुवे अन्न का वर्गः। उसमें अन्नों के बनानें का प्रकार। और बनें हुवों का गुण। उसमें परिभाषा। समवाई कारण में जो गुण मुनियों नें माने हैं॥ वे सब कार्य्य मेंभी जाननें चाहिये इस प्रकार परि भाषा कहीहै॥११२॥ कही पर संस्कार भेदसे गुण भेद होताहै॥ जैसे पुराने चांवलों का भात हलका और उसका चिडवा भारी होताहै॥११३॥ कही पर योग के प्रभावसे गुणान्तर होजाता है॥ कदन्न भारी घृत हलका कहाहै वोह हित होताहै॥ अनन्तर भात के नाम साधन और गुण॥ ॥

भक्त मन्नं तथान्धश्च क्वचित्कूरञ्च कीर्त्तितम्॥ ओदनोऽस्त्री स्त्रियां भित्सा ही दिविदः पुंसि भाषितः॥११४
सुधौतास्तण्डुलाः स्फीतास्तोये पञ्च गुणे पचेत्॥ तद्भक्तं प्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम्॥ ११५॥
भक्तं वह्नि करं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघुः॥ अधौतम स्रुतं शीतं गुर्व रुच्यं कफ प्रदम्॥११६॥
अथ पहिति। दलितन्तु शिम्बी धान्यं दालि दाली स्त्रिया मुभे॥ दाली तु सलिले सिद्धा लवणार्द्रक हिङ्गुभिः॥११७॥ संयुक्ता सूप नाम्नी स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥
सूपो विष्टम्भको रूक्षः शीतस्तु स विशेषतः॥११८॥
निस्तुषो भृष्ट संसिद्धः लाघवं सुतरां व्रजेत्॥

भा० भक्त अन्न अन्ध और कही पर कूर कहा है॥ नपुंसक में ओदन स्त्री लिंगमें भित्सा दि विद पुल्लिङ्ग में कहाहै॥११४॥ अच्छी तरह धोये हुवे चांवल बढाये हुवे पांच गुने पानी में पकावे वोह पसेया हुवा गरम विशद गुण युक्त भात कहाहै॥११५॥ भात दीपन पथ्य तर्पण रोचन हलका होताहै॥ और बिन धोया तथा बिनच मे या शीतल भारी अरुचि को देनें वाला और कफ कारी होताहै॥११६॥ अनन्तर दाल। धुली हुई शिम्बी धान्य दालिः दाली येह दोनों स्त्रीलिंग

लिंग में होतेहै ॥ दाल जलमें सिद्ध और लवण अद्रक हींङ्ग ॥११७॥ इनसे युक्त कासपनामहैअनन्तर उस्के गुण कहेते है ॥ दाल बिष्टंभ करने वाली रूखी शीतल होती है विशेष से ॥ ११८॥ वे छिलके की भूनके सिद्ध की हुई वहुत हलकी होजा तीहै॥

अथ खिचिरी । तण्डु ला दालि संमिश्रा लवणार्द्रक हिङ्गु भिः॥ संयुक्ता सलिले सिद्धा कृशरा कथिता बुधैः॥ ११९॥ कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्त कफ प्रदा॥ दुर्जरा बुद्धि विष्टम्भ मल मूत्र करी स्मृता॥१२०

अथ तापहारी ताता हरी तिलोके ।

घृते हरिद्रा संयुक्ते माष जाम्भर्ज्ज येद्व टीम् ॥ तण्डु लां श्चापि निर्धौतान् सहैव परि भर्जयेत्॥ १२१॥ सिद्ध योग्यं जलं तत्र प्रक्षिप्य कुशलः पचेत्॥ लवणार्द्रक हिङ्गुनि मात्रायां तत्र निःक्षि पेत्॥ १२२॥

भा० अनन्तरखिचड़ी । दाल मिले हुवे चांवल लवण अद्रक हींङ्ग से युक्त॥ जलमें सिद्ध को पंडितों नें कृसरा कहाहै॥ ११९॥ खिचडी शुक्र को करनें वाली वलके हित भारी पित्त कफ को देनें वाली ॥ और दुर्जर बुद्धि विष्टंभ मल मूत्र को करनें वाली कहीहै ॥१२०॥ अनन्तर तारी । हरदी के साथ घृतमें उडद की बडियोंको भूने विन धोये हुवे चावलों कोभी साथहीं भूने ॥ १२१॥ उसमें पकनेंके अन्दाज से जल डाल कर चतुर पकावे ॥ लवण अद्रक हींङ्ग उसें हिसावसे डाले ॥ १२२॥

एषा सिद्धिःसमानज्ञा प्रोक्ता तापहरी बुधैः॥ भवेत्ताप हरी वल्या वृष्या श्लेष्मा न मा चरेत् ॥ १२३॥ वृंहणी तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्त हरा स्मृता ॥

भा० इस सिद्धि हुई को पंडितोनें तापरीकहाहै ॥ तापरी वलको देनें वाली शुक्र

को करनें वालीहै और कफ़ को करती है ॥ १२३॥ बृंहण तर्पण रुचि कोक रनें वाली भारी पित्त नाशक कहीहै ॥

अथ खीर। पायसं परमान्नं स्यात् क्षीरि कापि त-दुच्यते ॥ शुद्धे ऽर्द्ध पक्के दुग्धे तु घृताक्तां स्तण्डु लान् प चेत् ॥१२४॥ ते सिद्धा क्षीरिका ख्याता ससिताज्य युतो त्तमाः॥ क्षीरि का दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बल वर्द्धिनी॥ १२५॥नालि केरत्तनु कृत्य च्छि न्नं पयसि गोः क्षिपेत् ॥सिताग व्याज्य संयुक्ते तत्पचेन्मृदु ना ऽग्निना ॥१२६॥ नारी केरो द्भवा क्षीरी स्निग्धा शीताति पुष्टि दा ॥ गुर्वी सु मधुरा वृष्या रक्त पित्ता निला पहा ॥१२७॥ अथ सेवई ॥

भा० अनन्तर खीर। पायस पर मान्न क्षीरि का येह खीर के नामहैं ॥ शुद्ध अध औटे दूधमें घृत युक्त चाव लोंको पकावे ॥१२४॥ वो सिद्ध क्षीरि का चीनी घृतसे युक्त उत्तम कही है॥ दुर्जर खीर पुष्ट बलको बढानें वाली है ॥१२५ नारियल को छीलके गायके दूधमें डाले ॥चीनी गाय के घृत से युक्त उसको मन्दी आंचसे पकावे ॥१२६॥ नारियल की खीर चिकनी शीत अति पुष्टि को करनें वाली॥ भारी मधुर शुक्र को करनें वाली और रक्त पित्त वात इनकी नाशक है ॥ १२७ ॥ ॥ अनन्तर सेवई ॥ ॥

समितां वर्त्ति कां कृत्वा सूक्ष्मां तु यव सन्निभाम् ॥ शु ष्काक्षीरेण संसाध्या भोज्या घृत सिता न्विता ॥ १२८॥ सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्ता निला पहा ॥ ग्राहिणी सन्धि कृद्रुच्या तां खादे न्नाति मात्रया ॥ १२९॥

अथ मण्डा। गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोषि तास्ततः ॥ प्रोक्षिता यन्त्र निष्पिष्टा श्चालिताः समिताः

स्मृता: ॥१३०॥ वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत् ॥ हस्त लाल नया तस्या लोपूवीं सम्यक् प्रसारयेत् ॥ १३१॥ अधो मुख घटस्ये तत् विस्तृतं माक्षिपेद्द्विः ॥ मृदुना वन्हिना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते॥ १३२॥ लोपवी लोंइ इति लोके ।

दुग्धेन साज्य खण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नर: ॥ अथवा सिद्ध मांसेन सत क्रवट के नवा ॥ १३३॥ मण्ड को बृंहणो वृष्यो बल्यो रुचि करो भृशम् ॥ पाकेऽपि मधुरो ग्राही लघु दोष त्रया पहः ॥१३४॥

अथ पोरी कुत्रापि दुनोरी इतिच ॥

भा० सूक्ष्म जवके समान बराबर बत्ती को करके ॥ सुका कर दूधसे पकावे और घृत चीनीके साथ खावे ॥ १२८ ॥ सेवई तर्पणी बलको देनें वाली भारी पित्त बात की नाशक ॥ काविज संन्धिकरनें वाली रुचिको करने वाली होतीहै उस को बहुत नखावे ॥ १२९॥ अनन्तर मंडा ॥ सुफेद धोये कुटे हुवे और सुकाये हुवे गेहूं कोप्रोक्षित चक्की से पीसे हुवे तथा चलनी से छानें हुवे को समिता अर्थात् मैदा कहाहे ॥१३०॥ मैदे को पानीमें घोल करके अच्छी तरह मर्दन करे॥ हाथकी लालना से उसकी लोई अच्छी तरह करे॥ १३१॥ नीचे मुख घडेपरयेह फैली हुई को डाले ॥ मन्द अग्नि से सिद्ध हुई को मांडक कहेतेहै ॥ १३२॥ लोई इस प्रकार कहेते हे ॥ दूध घृत खांड इनसे मनुष्य मंडे कोखावे ॥ अथवा सिद्ध मांस से वांदही के बडे से खावे ॥ १३३॥ मंडा शुक्रको करनें वाला और बलकेहित अत्यन्त रुचिको करने वाला है ॥ पाकमें भी मधुर काविज हलका दोष त्रय का नाशक है ॥ १३४ ॥

अनन्तर पूरी और कही पर दुनौरी भी कहेते हैं ॥

कुर्यात्समितया ऽतीव तन्वीं पर्पटिकां ततः ॥स्वेद

येत्तप्तके तात्तु पोलि का जग दुर्बुधाः॥ १३५॥ तां खा देल्लप्सिका युक्तां तस्या मराडक वद्गुणाः॥ तप्त कन्त वा इति लोके ॥ अथ प्रसङ्गा ल्लप्सी ॥ समितां सर्पिषा भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत्॥ तस्मिन् घनी कृते न्यस्ये ल्लवङ्गं मरि चादि कम्॥ १३६॥ सिद्धे यालप्सिका ख्याता गुणा स्तस्या वदाम्यहम्॥ लप्सि का वृंहणी वृष्या वल्या पित्ता निला पहा॥ १३७॥ स्नि ग्धा श्ले ष्म करी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम्॥

भा० मैंदेसे अतीव सूक्ष्म पपड़ी करे उसके अनन्तर॥ उसको तवे पर से के उस को पोलिका विद्वानों नें कहाहै ॥ १३५॥ उसको लप्सी के साथ खावे उसका गुण मंडे के समान है ॥ तप्त कतवा इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥ अनन्तर प्रसङ्ग से लपसी । मैदे को घृतसे भूनके शर्करा के साथ दूधमें डाले ॥ वोह गाढ़ा हो जानें पर लोङ्ग मिरच आदिक डाले ॥ १३६॥ येह सिद्ध हुई लप्सी कहीहै उसके गुणों को कहेते हैं॥ लपसी पुष्ट शुक्र को करनें वाली वलको करनें वाली पित्त वात की नाशक॥ १३७॥ चिकनी कफ़ कारी भारी रोचनी तर्पणी है॥

अथ रोटी । शुष्क गोधूम चूर्णेन किञ्चि त्स्थूलाञ्च पो लिकाम्॥ तप्तके स्वेद येत्कृत्वा भूर्य ङ्गारैः पि तां पचे त्॥ १३८॥ सिद्धेया रोटिका प्रोक्ता गुणं तस्याः प्रचक्ष्महे रोटिका वल कृद्रुच्या वृंहणी धातु वर्द्धनी॥ १३९॥ वात घ्नी कफ कृद्गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिता॥

भा० अनन्तर रोटी । सूके गेहूं के आंटे से कुछ मोटी रोटी को ॥ तवे पर से के और सेकके उसको बहुत से अंगारोंपर पकावे॥ १३८॥ इसको सिद्ध ।

रोटिका कहाहै उसके गुण कहेते हैं ॥ रोटी वल को करने वाली रुचिकोहित । पुष्ट धातु को बढानें वाली ॥१३९॥ वात नाशक कफ को करने वाली भारी दीप्ता ग्नि वालों को श्रेष्ठहै ॥

अथ लीट्टी । शुष्क गोधूम चूर्णन्तु साम्बु गाढं विमर्द्दये त्॥ विधाय वटका कारं निर्धूमे ऽग्नौ शनैः पचेत् ॥१४०॥ अङ्गार कर्कटी ज्ञेया वृंहणी शुक्रला लघुः॥ दीपनी क फ कद् वल्या पीन सश्वास कास जित् ॥ १४१॥

अथ यव रोटी । यवजा रोटिका रुच्या मधुरा विशदा लघुः मल शुक्रा निल करी वल्या हन्ति कफा मयान् ॥ १४२॥

अथ माष रोटिका । माषानां दाल यस्तोये स्थापिता स्त्यक्त कञ्चुकाः॥ आतपे शोषिता यन्त्रे पिष्टास्ता धूमसी स्मृ ता ॥१४३॥ धूमसी रचिता चैव प्रोक्ता झर्झरिका बुधैः ॥ झर्झरी कफ पित्तघ्नी किञ्चिद्वात करी स्मृता॥१४४॥

भा० अनन्तर लीट्टी । सूके गेहूं के आटे को जलके साथ गाढा औसने ॥ वट का कार करके निर्धूम अग्नि में धीरे २ पकावे ॥१४०॥ येह अंगा कड़ी पुष्ट शुक्रको क रनें वाली हलकी है ॥ और दीपनी कफको करनें वाली व ल के हित और पीनस श्वास कास इन कोजीतनें वाली है ॥१४१॥ अनन्तर जवकी रोटी ॥ जवकी रोटी रुचि की करनें वाली मधुर विशद हलकी मल शुक्र बात को करनें वाली व ल के हित होतीहै ॥ और कफ के रोगों को नाश करती है ॥१४२॥ अनन्तर उड दकी रोटी और ॥ उड़द की दाल को पानी में भिगोय के छिलके निकाली हुई को धूप में सुकावें चक्की में पीसे उसको धूमसी कहाहै ॥ १४३॥ धूम सीसे बनी हुई वोही झर्झरिका कहीहै ॥ झर्झरी कफ पित्त की नाशक कुछ एक वात को करनें वाली कहीहै ॥ १४४॥

[अथ चनक रोटिका]

चनस्य रोटिका रूक्षा श्लेष्म पित्ता स्रनु द्गुरुः ॥

विष्टम्भिनी न चक्षुष्या तद्गुणा चाति शष्कुली॥१४५॥
अथ पिष्टिका। दालिः संस्था पिता तोये ततो ऽपह्नत
कञ्चुका॥ शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता
बुधैः॥१४६॥ अथ वेढड्॥ माष पिष्टि कया
पूर्णा गर्भा गोधूम चूर्णतः॥ रचिता रोटिका सैव प्रो-
क्ता वेढ मिका बुधैः॥१४७॥ भवेद्वेढ मिका बल्या
वृष्या रुच्या ऽनिला पहा॥ उष्ण सन्त र्पणी गुर्वी वृं-
हणी शुक्र ला परम्॥१४८॥ भिन्न मूत्र मला स्त-
न्य मेदः पित्त कफ प्रदा॥ गुद कील र्दित श्वासं प-
ङ्क्ति शूलानि नाशयेत्॥१४९॥ अथ पायर॥

भा० अनन्तर चनें की रोटी, चनेकी रोटी रूखी और कफ रक्तपित्त इनकी नाशक भारी॥ विष्टम्भ करनें वाली नेत्रके हित और उसी के गुण अति शुष्क लीहै॥१४५॥ अनन्तर पिट्ठी॥ दाल को पानीमें भिजोय के और उसका छिलका निकाल कर॥ सिल पर अच्छी तरह पीसी हुई को पिट्ठी पंडितोनें कहीहै॥१४६॥ अनन्तर वेढई॥ उडद की पिट्ठी को आटे के भीतर भरके॥ बनाई हुई को वेढई पंडितों नें कहाहै॥१४७॥ वेढमी बलको करनें वाली शुक्र को उत्पन्न करनें वाली रुचिको करनें वाली वात नाशक। गरम सन्तर्पणी भारी पुष्ट। शुक्र को करनें वाली है॥१४८॥ मल मूत्र को करनें वाली दुग्ध मेद पित्त कफ इनको देने वाली है॥ और गुद कील अर्दित श्वास पङ्क्ति शूल इनको नाशक रती है॥१४९॥ अनन्तर भाषड॥

धूमरी रचिता हिङ्गु हरिद्रा लवणै र्युता॥ जीर क
स्वर्जिका भ्याञ्च तनू कृत्य च वेल्लिता॥ १५०॥ पर्प्प
टास्ते सदाङ्गार भृष्टाः परम रोचकाः॥

दीपनाः पाचना रूक्षा गुरवः किञ्चिदीरिताः ॥ १५१
मौद्गाश्च तद्गुणाः प्रोक्ता विशेषाल्लघवो हिताः ॥ चन
कस्य गुणैर्युक्ताः पर्पटाश्चणकोद्भवाः ॥ १५२॥ स्ने-
हभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुणैः ॥

भा० पूर्वोक्त धूमसी से हींङ्ग हलदी लवण को मिलाके वनाया हुवा ॥ और जीरा सज्जी इन को मिलाके वारीक करके वेला हुवा पापड है ॥१५०॥ वे पापड अङ्गारे से भूने हुवे परम रोचक ॥ दीपन पाचन रूखे कुछ भारी कहेहे ॥ १५१॥ और मूङ्ग के उसी के समान गुण में कहे हैं विशेष करके हलके हित होते है ॥ चनेके पापड चनेके गुण के समान होतेहैं ॥ १५२॥ वे सव तेलके भूने हुवे गुणसे मध्यम हैं ॥

अथ पूरी । माषाणां पिष्टिकां पूत्या लवणार्द्रक हि-
ङ्गुभिः ॥ तया पिष्टिकया पूर्णा समिता कृत पोलिका॥
१५३॥ ततस्तैलेन पक्वासा पूरीका कथिता बुधैः ॥ रुच्या
स्वाद्वी गुरुः स्निग्धा बल्या पित्तास्रदूषिका ॥ १५४॥
चक्षुस्तेजो हरी चोष्णा याके वात विनाशिनी ॥ तथैव
घृत पक्वापि चक्षुष्या रक्त पित्त हृत ॥ १५५॥

अथ वरा । माषाणां पिष्टिका युक्ता लवणार्द्रक हिङ्गु
भिः ॥ कृत्वा विदध्या द्वटका स्तास्ते लेषु पचे च्छनैः ॥
१५६॥ विशुष्का वटका बल्या वृंहणा वीर्य्यवर्द्धनी ॥ वा
ता मय हरी रुच्या विशेषा दर्दिता पहा ॥१५७ ॥

भा० अनन्तर पूरी । उडद की पिठ्ठी लवण अद्रक हीङ्ग से युक्त करके ॥ उस पिठ्ठी से पूर्ण मैदा की कीहुई पोलिका ॥१५३॥ वो तेलसे पकी को पूरीका पडितोंनें कहीहे ॥ रुचि को करनें वाली मधुर भारी चिकनी वल के हित रक्त

पित्तको विगाडनें वाली कहीहै ॥१५४॥ नेत्र की तेजी को हरने वाली गरम पाक में वातको नाश करनें वाली ॥ वैसेही घीकी पकी हुई भी नेत्र के हित रक्त पित्त की नाशक है ॥१५५॥ अनन्तर वड़ा ॥ उड़दों की पिठी लवण अद्रक हींङ्ग इनसे युक्त ॥ करके वडे वनावे उनको तेलमें धीरे २ पकावे ॥१५६॥ सूके हुवे वडे । वलको करनें वाले पुष्ट धातू को वढाने वाले ॥ वात रोगोंके नाशक रुचिको करनें वाले विशेष करके अर्दित रोग के नाशक है ॥१५७॥

विवन्ध भेदिना श्लेष्म कारिणो ऽत्यग्नि पूजिता ॥ संचूर्ण्य निक्षि पेत्तक्रे भृष्टं जीरक हिङ्गु भिः ॥ १५८॥ लवणं ततस्तत्र तान् सकला नपि मज्ज येत् ॥ शुक्रलस्तत्र वको वल कृद्रो चनो गुरुः ॥१५९॥ विवन्ध हृद्दि दाही च श्लेष्म लः पवना पहः ॥ राज्यक्त पातितो वान्यान् पाचनां स्तास्तु भक्षयेत् ॥ १६०॥

राज्यक्ता राइता इति लोके । अथ काञ्जी वटः ।

भा० विवन्धको भेद न करनें वाली कफ को न करनें वाली अति अग्नि में पूजित है ॥ चूरा करके जीरा हींङ्ग के साथ मठे में डाले ॥१५८॥ और लवण । उसें सववड़ों को डुवोवे ॥ उसें का वड़ा शुक्र को करनें वाला वलको करनें वाला रोचन भारी है ॥ १५९ ॥ विवन्ध का नाशक विदाही कफको करनें वाला । वातनाशक ॥ राइता घोला हुआ वा और कुछ पाचन उनको खावे ॥ १६०॥ राइता इस प्रकार लोकमें कहेते हैं ॥ अनन्तर कांजी वड़ा ॥

मन्थनी नूतना धार्य्या कटु तैलेन लेपिता ॥ निर्मले नाम्बुना पूर्य्य तस्यां चूर्णं विनिः क्षिपेत् ॥ १६१॥ राजि काञ्जी रल वण हिङ्गु शुण्ठी निशा कृतम् ॥

भा० नवीन मन्थनी कडु तेलसे लेपित रक्खे ॥ उसें निर्मल जल भरके येह चूर्ण डाले ॥१६१॥ राईजीरा लवण हींङ्ग सोंठ हलदी इनसे किया हुवा ॥

निः क्षिपे द्वटकां स्तत्र भाण्ड स्या स्यञ्च मुद्रयेत् ॥ १६२॥ ततो दिन त्रया दूर्ध्व मम्लाः स्यु र्वटका ध्रुवम् ॥ काञ्जिको वटको रुच्यो वातघ्नः श्लेष्म कारकः ॥१६३॥ शीतो दाहं शूलमजीर्णं हरते दृगा मयेष्व हितः ॥

भा॰ उसमें वड़े डाले और इस वरतन का मुख ढक देवे ॥१६२॥ उससे तीन दिन के बाद बड़े निश्चय खट्टे होते हैं ॥ कांजी वड़ा रुचि को करने वाला वात का नाशक कफकारक ॥१६३॥ शीत दाह शूल अजीर्ण इनको हरता है और दृष्टि रोग में अहित है ॥

अथ इमली वड़ा। अम्लिकां स्वेद यित्वा तु जलेन सह मर्दयेत् ॥ तन्नीरे कृत संस्कारे वटका न्मज्जयेज्जनः ॥१६४ अम्लिका वट कास्तेतु रुच्या वन्हि प्रदीपनाः ॥ वटकस्य गुणैः पूर्वै रेषो ऽपि च समन्विताः ॥१६५॥

अथ मूगवड़ा। मुद्गानां वट कास्तक्रे भर्जिता लघवो हिमाः ॥ संस्कार ज प्रभावेन त्रिदोष शमना हिताः ॥१६६॥

अथ माषवटी। माषाणां पिष्ठिका हिङ्गु लवणार्द्र क संस्कृताः ॥ तया विर चिता वस्त्रे वटिकाः साधु शोषिताः १६७ भर्जिता स्तप्त तैलेस्ता अथ वाम्बु प्रयोगतः ॥ वटकस्य गुणै र्युक्ता ज्ञातव्या रुचिदा भृशम् ॥१६८॥

अथ कोह्डौरी। कुष्मा ण्डक वटी ज्ञेया पूर्वोक्त वटिका गुणा ॥ विशेषा त्पित्तर क्तघ्नी लघ्वी च कथिता बुधैः ॥ १६९ ॥ अथ मुद्ग वटी ॥

भा॰ अनन्तर इमली वड़ा। इमली को गरम करके जल के साथ मले ॥ मसाला

१६४

डाले हुवे उस जल में वड़ोंको डाल देवे ॥ वे इमली के बड़े रुचिको करनें वाले। अग्नि दीपन हैं ॥ पहिले वड़ों के गुणके समान हैं ॥१६५॥ अनन्तर मूङ्ग वड़ा मूंगकी वड़ियां भूनी हुई हलकी शीतल हैं ॥ और संस्कार के प्रभावसेत्रिदोष शमन तथा हित होती हैं ॥१६६॥ अनन्तर उड़द की वड़िया ॥ उड़द की पिट्ठी हींङ्ग लवण अद्रक इनसे संस्कार की हुई ॥ उसे बनी हुई कपड़े पर अच्छी तरह सूका ॥ १६७॥ के गरम तेल से भूनें अथवा जलमें पकावे। इसको वड़े के गुण के समान जान ना चाहिये। और अत्यन्त रुचि को करनें वाली है ॥१६८ अनन्तर कोहँडौरी। कोहँडौरी पूर्वोक्त वटिका के गुण के समान हैं ॥ विशेष कर के पित्त रक्त की नाशक हलकी पंडितोंनें कहीहै ॥ १६९॥ अनन्तर मुङ्ग की वड़ी॥

मुद्गानां वटिका तद्व द्रचि ता साधिता तथा॥ पथ्या रुच्या तथा लघ्वी मुद्ग सूपः गुणा स्मृता ॥ २७०॥

क्षरि कवच्छ। माष पिष्ठि कया लिप्तं नाग वल्ली द लं महत्॥ तत्तु संस्वे दयेत् युक्त्या स्थाल्या मास्तार क़ो परि ॥ २७१ ॥ ततो नि ष्का श्य तं खण्डश स्ततस्तै लेन भर्जयेत् ॥ खण्डं खण्डे न योग्य मिति यावत्॥ अलीक मत्स्य उक्तो ऽयं प्रकारः पाक पण्डितैः ॥ तं हत्वा कभटि त्रेण वास्तूकेन च भक्षयेत्॥ १७२॥

अथ कढी। स्थाल्यां घृतेवा तैलेवा हरिद्रा हिङ्गु भर्जयेत्॥ अवले हनसंयुक्तं तक्र न्तत्रैव निक्षिपेत् ॥१७३ राया सिद्दा समरीचा कथिता कथिता बुधैः॥

भा० मूंगकी वटिका बनाई हुई और साधित ॥ पथ्य रुचि को करनें वालीं तथा हलकीं मूंग की दाल के समान गुण में कहीहै ॥१७०॥ अनन्तर क्षरिक वच्छ। उड़दकी पिट्ठी से लिप्त बड़ा नागवेल का पान॥ उस्को तसलेमें कपडेके उपर युक्ति केसाथ पकावे ॥ १७१॥ उस्से निकाल कर उस के टुकड़े करके तेलके

साथ भूने ॥ टुकड़ा अर्थात् टुकडे करके युक्त ॥ अली कमत्स्य का येह प्रकार क-
हाहै पाक पंडितोंने ॥ उसको भरेके भरते के साथ अथवा बथुवे के साथ खावे ॥
१७२॥ अनन्तर कढ़ी ॥ तसले में घृत अथवा तेलमें हलदी हींङ्ग को भूने॥ अ
वलेह नके साथ मठ को उसीमें डाले ॥ १७३॥ ये सिद्ध मरिच के साथ औटाई हुई
को पंडितोंनें कढ़ी कहीहै ॥

अवलेहनम्। अरिहन इति लोके।

कथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वन्हि प्रदीपनी ॥ कफा
निल विबन्धघ्नी किञ्चित्पित्त प्रकोपिणी ॥ १७४॥ अ
लीकमत्स्याः शुष्का वा किं वा कथितया पुनः॥ वृं-
हणा रोचना वृष्या बल्या वात गदापहाः॥ १७५॥
कोष्ठ शुद्धि कराः युक्त्या किञ्चित्पित्त प्रकोपनाः॥

भा० हरिहन इस प्रकार लोकमें कहते हैं। कढ़ी पाचन रुचिको करनें वा
ली हलकी दीपन ॥ कफ वात विवन्ध की नाशक कुछ एक पित्त के प्रकोप को क
रनें वाली है ॥ १७४॥ अली कमत्स्य अर्थात् सूके, फिरसे औटाने से होतेहै। पुष्ट रोचन।
शुक्रको करनें वाले वलके हित वात रोग के नाशक है ॥ १७५॥ कोष्ट शुद्धि
को करनेंवाले शुक्ति के साथ कुछ पित्त प्रकोप करनेंवाले है ॥

आर्द्रितेसह नुस्तम्भे विशेषेण हिताः स्मृताः॥ १७६॥
अथ अदवरा। मुद्ग पिष्टा विरचितान् वटांस्तैलेनया
चितान्॥ हस्तेन चूर्णयेत्सम्यक् तस्मिंश्चूर्णे विनिः
क्षिपेत्॥ १७७॥ भृष्टं हिङ्ग्वार्द्रकं सूक्ष्मं मरीचं जीरकं त
था॥ निम्बूरसं जवानीं च युक्त्या सर्वं विमिश्रयेत्॥ १७८॥

भा० आर्द्रित सह नुस्तंभ में विशेष करके हित कहेहै ॥ १७६॥ अनन्तर अद
वरा मुङ्ग की पिठी से वनी वडी को तेलसे पकावे उसको हातसे अच्छी तरह चूर्ण
करे उस चूरे में इनकोंडाले ॥ १७७॥ भूनी हींङ्ग अद्रक मिरच तथा जीरा इनको

पीसकेडाले ॥और नीम्बू का रस अंज वाद्रत इनको युक्ति से सवको मिलावे॥१७८॥

मुद्ग पिष्टिं पचे त्सम्यक् स्थाल्या मास्तार को परि ॥ तस्यात्तु गोलकं कुर्य्यात् तन्मध्ये पूरणं क्षिपेत् ॥१७८॥ तैले तान् गोलकान् पक्त्वा क्वथितायां निमज्ज येत् ॥ गोलकाः पाचकाः प्रोक्ता स्ते त्वार्द्र कवटा अपि ॥१८० मुद्गार्द्र कवटा रुच्या लघवो वल कारकाः ॥ दीपना स्तर्पणाः पथ्या स्त्रियु दोषेषु पूजिताः ॥१८१॥

भा० तसले में कपडे के ऊपर मूद्ग की पिठ्ठी को अच्छी तरह पकावे ॥उसका गोलक करके उसके वीचमें पूरण भरे ॥१७८॥ इन गोल कों को तेलमें पकाके कढीमें डु वा देवे ॥गोलक पाचक हैं और आर्द्रक वटभी उसको कहेते हैं ॥ १८०॥मूंगके आर्द्र वटकरुचि को करतें वाले हलके वल कारकहै ॥ और दीपन तर्पण पथ्य और तीनों दोषोंकोअच्छे हैं ॥ १८१ ॥

अथ पकोरी । दाल यश्च न का नान्तु निस्तुषा यन्त्र पेषिताः ॥तच्चूर्णं वेशनं प्रोक्तं पाक शास्त्र विशार दैः॥ १८२॥ वटिका वेशनस्यापि कथिता या निभर्जिताः ॥ रुच्या विश्रम्भ जननी वल्या पुष्टि करी स्मृता ॥१८३॥

(क) एव मन्ये ऽपि वेशन भवाः प्रकाराः यएडन पएड प्रभृतयो वोद्धव्याः। अथ मांसस्य प्रकाराः ॥

भा० अनन्तर पकोरी । चने आदि योंकी दालों को वेछिल के करके चक्कीमें पीसे ॥उसचूर्णको वेसन पाक शास्त्र के जानने वालेंनें कहाहै ॥१८२॥ वेसन की वटिका धृनके कढ़ीमें पकी हुई रुचिको करनें वाली विश्रंभ की करनें वाली वलके हित पुष्टि को करनें वाली कहीहै ॥१८३॥ (क) ऐसे और भी वेसन के प्रकार खंड आदि जानना चाहियें ॥ अनन्तर मांसका प्रकार ॥

हरिद्रा मार्द्रकं शुण्ठी लवणं मरिचं निच ॥ तण्डुलां
श्चापि गोधूमान् जम्बीराणां रसान् बहून् ॥ १९४ ॥
यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि ॥ तथा पचे
न्तु निपुणो बहु मांसं क्षितिर्यथा ॥ १९५ ॥ एषा हरीसा
बल कृत् वात पित्त पहा गुरुः ॥ शीतोष्णाः शुक्रदाः स्नि
ग्धाः सरा सन्धान कारिणी ॥ १९६ ॥ अथ तलित मांसम्

भा० पकाने के बर तन में बड़े मांस के टुकड़े डाले ॥ पानी बहुत सा घृत बहुत हीं
गु जीरा ॥१९३॥ अद्रक हलदी सोंठ लवण मिरच ॥ चांवल और गेहूं जंवीरी का
बहुत रस ॥१९४॥ जिसमें सब मांस अच्छी तरह पक जावे ॥ वैसे सब वस्तु वों
को निपुण पकावे जैसे बहुत मांस को क्षिति ॥१९५॥ येह हरीसा बलको करनें
वाला वात पित्त का नाशक भारी ॥ शीत उष्ण शुक्र को करने वाला चिकना सरस
न्धान करने वाला है ॥१९६॥ तला हुवा मांस ॥

शुद्ध मांस विधानेन मांसं सम्यक् प्रसाधितम् ॥ पुनस्त
दाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ १९७ ॥ तलितं बल
मेधाग्नि मांसौजः शुक्र वृद्धि कृत् ॥ तर्पणं लघु सुस्नि
ग्ध रोचनं दृढ ताकरम् ॥ १९८ ॥ अथ सौंरव ॥
काल खण्डादि मांसानि ग्रन्थितानि शलाकया ॥ घृ-
तं सलवणं दत्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ १९९ ॥ तत्तु शू
ल्य मिदं प्रोक्तं पाक कर्म विचक्षणैः ॥ शूल्यं पलं सु
धा तुल्यं रुच्यं वन्हि करं लघुः ॥ २०० ॥ कफ वात हरं
बल्यं किञ्चित्पित्त करं हि तत् ॥ मांस शृंगाटकम् ॥

भा० शुद्ध मांस की विधि से मांस को अच्छी तरह पका करके ॥ फिरसे उस को

घृतमें भूने उसको तलित मांस कहेते हैं ॥१९७॥ तला हुवा मांस वल कान्ति। मांस ओज शुक्र इनको वढानें वाला ॥ तर्पण हलका बहुत स्निग्ध रोचन दृढता। करनें वाला है ॥१९८॥ अनन्तर सीखं ॥ लाल खंडादि मांसों को सींक में लगा कर ॥नमक घी दे कर निर्धूम अग्नि में पकावे ॥१९९॥ उसको शूल्य ऐसा कहाहै पाक कर्म में चतुर पुरुषोंने ॥ शूल्य मांस अमृत के समान रुचि। को करनें वाला दीपन हलका ॥ २०० ॥ कफ़ वात का नाशक वलको करनें वाला कुछ पित्त को करनें वाला वोह होताहै ॥

अनन्तर मांस के सिंघाडे ।

शुद्ध मांसं तनू कृत्य कर्त्तितं स्वेदितं जले ॥ लवङ्ग हिङ्गु लवण मरिचार्द्रक संयुतम् ॥२०१॥ एला जिरक धान्याक निम्बू रस समन्वितम् ॥ घृते सुगन्धे तद्भृष्टं। मांसं शृंगाटकोच्यते ॥२०२॥ मांसं शृंगाटकं रुच्यं वृंहणं वल कृद्गुरु ॥ वात पित्त हरं वृष्यं कफघ्नं वीर्य वर्द्धनम् ॥२०३॥ अथ मांस रसा ॥

भा० शुद्ध मांस वारीक करके जलमें पकावे ॥ लौंग हींङ्ग लवण मरिच और अद्रक इनसे युक्त ॥२०१॥ तथा इलाय ची जीरा धनियां नीम्बूका रस इनके युक्त ॥ अच्छे घृत में उसको भूने उसको मांस शृंगाटक कहेते हैं ॥२०२॥ मांस शृंगाटक रुचि को करनें वाला पुष्ट वल करनें वाला भारी होताहै ॥ और वात पित्त का नाशक शुक्रको करनें वाला कफ़ नाशक वीर्य्य को वढानें वाला है ॥२०३॥ अनन्तर मांस रस ॥

सिद्ध मांस रसो रुच्यः श्रम श्वास क्षयापहः ॥ प्रीणनो वात पित्तघ्नः क्षीण नाम ल्परेत सास् ॥ २०४॥ विश्लिष्टभग्न सन्धीनां शुद्धानां शुद्धि काङ्क्षिणाम् ॥ स्मृत्यो जो वल हीनानां ज्वर क्षीण क्षतैः रसाम् ॥ २०५॥ शस्यते स्वर हीनानां दृष्यायुःश्रव णार्थिनाम् ॥

तत्र शुद्ध मांसम्। सुधवा सु इति लोके।

पाक पात्रे घृतं दद्यात् तैलञ्च तद् भावतः॥ तत्र हिङ्गु हरिद्रांच भर्जयेत् तद नन्तरम्॥१८४॥ छागा देरस्थिर हितं मासं तत्खण्डितं ध्रुवम्॥ धौतं निर्गलितं तस्मि न् घृते तद्भर्जयेच्छनैः॥१८५॥ सिद्ध योग्यं जलं दत्वा लवणन्तु पचेत्ततः॥ सिद्धे जलेन सम्पिष्य वेशवारं परिक्षिपेत्॥१८६॥

वेशवारः वेगर इति लोके।

भा० उसे शुद्ध मांस। सुधवासु इस प्रकार लोकमें कहेते हैं। पकाने के वरतन में घृतडाले उस्के अभाव में तेल डाले॥ उसमें हींग हलदी को भूने और बाद॥१८४॥ बकरे आदि का बेहड्डी मांस टुकडे किया हुवा॥ और धोके साफ किया हुवा उस घी में उसको धीरे २ भूने॥१८५॥ उसमें पकने के योग्य जल देकर और लवण देकर पकावे उसके अनन्तर॥ सिद्ध हुवे उसमें पानी से गरम मसाला पीस कर उसमें डाले॥१८६॥

इसको वेगर इस प्रकार लोकमें कहेते हैं॥

द्रव्याणि वेशवारस्य नाग वल्ली दला निच॥ तण्डुलाश्च लवङ्गानि मरिचानी समासतः॥१८७॥ अनेन विधिना सिद्धं शुद्धं मांस मिति स्मृतम्॥ शुद्ध मांसं परं वृष्यं बल्यं रुच्यञ्च बृंहणम्॥१८८॥ त्रिदोषश मकं श्रेष्ठं दीपनं धातु वर्द्धनम्॥

भा० मसाले की वस्तु पान चांवल लवंग मरिच ये संक्षेप से हैं॥१८७॥ इस बिधिसे सिद्ध किया हुवा शुद्ध मांस ऐसा कहाहै॥ शुद्ध मांस परम शुक्रको करने वाला बलकारी रुचिको करनें वाला पुष्ट॥१८८॥ त्रिदोष का शमक श्रेष्ठ

दीपन धातुबढ़ाने से है ॥

अथ सेहुडक । सहवीसु इति लोके ।

छागादेर्मांसमूर्वादेः कुट्टितं खण्डितं पुनः ॥ शुद्ध मांस विधानेन पचेदेतत्सहद्रकम् ॥ १८८ ॥ सहद्रकं गुणे ग्रन्थे शुद्ध मांस गुणं स्मृतम् ॥ अथ अरवनी ॥ पाक पात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रा हिङ्गु भर्जयेत् ॥ छागादे सकल स्यापि खण्डान्यपि च भर्जयेत् ॥ १९० ॥ सिद्ध योग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदु तरं यथा ॥ जीरकादियुते तक्रे मांस खण्डानि तारयेत् ॥ १९१ ॥ तक्र मांसन्तु वातघ्नं लघु रुच्यं बल प्रदम् ॥ कफघ्नो पित्तलः किञ्चित् सर्वाहारस्य पाचनम् ॥ १९२ ॥ (क)

तक्र मांसम् अरवनी इति लोके ॥ अथ आस ॥

भा० अनन्तर सेहुडक । सहवीसु ऐसा लोक में कहते हैं । बकरे आदि के जांघ आदि का मांस कुटाहुवा और अलग २ टुकडे किये हुवे ॥ इसको शुद्ध मांसकी विधि से पकावे येह सहद्रक है ॥ १८९ ॥ सहद्रक निघंट में शुद्ध मांस के समान गुण में कहा है ॥ अनन्तर अरवनी ॥ पकाने के पात्र में घृत डाल कर हलदी और हींङ्ग को भूने ॥ और बकरे आदि सबके मांस के टुकड़ों कोभी भूने ॥ १९० ॥ पकने के योग्य जल देकर मन्द आंच से पकावे ॥ जीरा आदिक से युक्त मट्ठे में मांस के टुकडों को डाले ॥ १९१ ॥ येह तक्र मांस वात नाशक हलका । रुचि को करनें वाला बल का देने वाला ॥ कफ नाशक पित्त को करनें वाला कुछ सब अहार का पाचक है ॥ १९२ ॥ (क)
तक्र मांस अरवनी इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ अनन्तर आस ॥

पाक पात्रे तु छहनी मांस खण्डानि निःक्षेपेत् ॥ पानीयं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिङ्गु जीरकम् ॥ १९३ ॥

हरिद्रा मार्द्रकं शुण्ठी लवणं मरिचानि च ॥ तण्डुलां
श्चापि गोधूमान् जम्बीराणां रसान् बहून् ॥ १९४॥
यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्कानि भवन्ति हि ॥ तथा पचे
त् तु निपुणो बहु मांसं क्षितिर्यथा ॥ १९५॥ एषा हरीसा
बल कृत् वात पित्ता पहा गुरुः॥ शीतोष्णाः शुक्रदाः स्नि
ग्धाः सरा सन्धान कारिणी ॥ १९६ ॥ अथ तलित मांसम्

भा० पकाने के बरतन में बड़े मांस के टुकड़े डाले ॥ पानी बहुत सा घृत बहुत ही
ङ्ग जीरा ॥१९३॥ अद्रक हलदी सोंठ लवण मिरच ॥ चांवल और गेहूं जंबीरी का
बहुत रस ॥१९४॥ जिसमें सब मांस अच्छी तरह पक जावे ॥ वैसे सब वस्तु वों
को निपुण पकावे जैसे बहुत मांस को क्षिति ॥१९५॥ येह हरीसा बलको करनें
वाला वात पित्त का नाशक भारी ॥ शीत उष्ण शुक्र को करने वाला चिकना सरस
न्धान करने वाला है ॥१९६॥ तला हुवा मांस ॥

शुद्ध मांस विधा नेन मांसं सम्यक् प्रसाधितम् ॥ पुनस्त
दाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ १९७ ॥ तलितं बल
मेधाग्नि मांसौ जः शुक्र वृद्धि कृत् ॥ तर्पणं लघु सुस्नि
ग्धं रोचनं दृढ ताकरम् ॥ १९८ ॥ अथ सीख ॥
काल खण्डादि मांसानि ग्रन्थिलानि शलाकया ॥ घृ
तं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ १९९ ॥ तत्तु शू
ल्य मिदं प्रोक्तं पाक कर्म विचक्षणैः ॥ शूल्यं पलं सु
धा तुल्यं रुच्यं वन्हि करं लघुः ॥ २०० ॥ कफ वात हरं
वल्यं किञ्चित्पित्त करं हि तत् ॥ मांस शृङ्गाट कम् ॥

भा० शुद्ध मांस की विधि से मांस को अच्छी तरह पका करके ॥ फिरसे उस को

घृतमें भूने उसको तलित मांस कहेते हैं ॥१९७॥ तला हुआ मांस बल्य कान्ति। मांस ओज शुक्र इनको बढानें वाला ॥ तर्पण हलका बहुत स्निग्ध रोचन दृढता। करनें वाला है ॥१९८॥ अनन्तर सीख ॥ लाल खंडादि मांसों को सींक में लगा कर ॥ नमक घी दे कर निर्धूम अग्नि में पकावे ॥१९९॥ उसको शूल्य ऐसा कहाहै पाक कर्म में चतुर पुरुषोंने ॥ शूल्य मांस अमृत के समान रुचि। को करनें वाला दीपन हलका ॥ २०० ॥ कफ वात का नाशक बलको करनें वाला कुछ पित्त को करनें वाला वोह होताहै ॥

अनन्तर मांस के सिंघाडे ।

शुद्धमांसं तनूकृत्य कर्त्तितं स्वेदितं जले ॥ लवङ्गहिङ्गु लवण मरिचार्द्रक संयुतम् ॥२०१॥ एला जिरक धान्याक निम्बू रस समन्वितम् ॥ घृते सुगन्धे तद्भृष्टं । मांसं शृंगाटकोच्यते ॥२०२॥ मांसं शृंगाटकं रुच्यं बृंहणं बल कृद्गुरु ॥ वात पित्त हरं वृष्यं कफघ्नं वीर्य वर्द्धनम् ॥२०३॥ अथ मांस रसः ॥

भा० शुद्ध मांस बारीक करके जलमें पकावे ॥ लौंग हींङ्ग लवण मरिच और अद्रक इनसे युक्त ॥२०१॥ तथा इलायची जीरा धनियां नीम्बूका रस इनके युक्त ॥ अच्छे घृत में उसको भूने उसको मांस शृंगाटक कहेते हैं ॥२०२॥ मांस शृंगाटक रुचि को करनें वाला पुष्ट बल करनें वाला भारी होताहै ॥ और वात पित्त का नाशक शुक्र को करनें वाला कफ नाशक वीर्य्य को बढानें वाला है ॥२०३॥ अनन्तर मांस रस ॥

सिद्ध मांस रसो रुच्यः श्रम श्वास क्षयापहः ॥ प्रीणनो वात पित्तघ्नः क्षीणा नाम ल्परेत सास् ॥ २०४॥ विश्लिष्टभग्न सन्धीनां शुद्धानां शुद्धि काङ्क्षिणाम् ॥ स्मृत्यो जो बल हीनानां ज्वर क्षीण क्षतेरसाम् ॥ २०५॥ शस्यते स्वर हीनानां दृष्ट्यायुःश्रव णार्थिनाम् ॥

प्रकारा: कथिता: सन्ति वहवो मांस सम्भवा: ॥ ग्रन्थवि
स्तार भीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्त्तिता: ॥ शाक पाक विधि:

भा॰ सिद्ध मांस का रसा रुचि को करनें वाला श्रम श्वास क्षय इनका नाशक है ॥ और प्रीण न वात पित्त का नाशक और क्षीण तथा अल्प शुक्र वाले इनको ॥ २०४॥ और वि श्लिष्ट भग्न संधी वाले शुद्ध और शुद्धि चाहनें वाले ।स्मृति ओज वल इनसे हीन ज्वर क्षीण क्षत उर वाले इनको ॥२०५॥ हित है और हीन स्वर वाले तथा दृष्टि आयु श्रवण र्थि योंको भी हित हैं ॥ मांस की बहुत सी किस मवनाने कीहै ॥ परन्तु ग्रन्थ वढ़ जाने के डरसे उनको मैनें यहां पर नहीं कहा है ॥ अनन्तर शाक पाक विधि ॥ ॥

हिङ्गु-जीर युते तैले क्षिपे च्छाकं सुखण्डि तम् ॥ लवणां
चाम्ल चूर्णा दि सिद्धे हिङ्गु दकं क्षिपेत् ॥ २०७ ॥ इत्ये
वं सर्व शाकानां साधनो ऽभिहितो विधि: ॥
तत्र मराठ कं माठ इति लोके ।
समिता मर्द्द येदन्य जलेनापि च सन्न येत् ॥ तस्यास्तु ऽ
वटिका कृत्वा पचे त्सर्पिषि नीरसम् ॥ २०८॥ एला
लवङ्ग कर्पूर मरी चाद्यै रलङ्कृते ॥ मज्ज यित्वा सिता
पाके ततस्तन्च समुद्ध रेत् ॥ २०९ ॥ अयं प्रकार: सं
सिद्धो मठ इत्य भिधी यते ॥ सन्न येत् मर्द्द येत् ॥

भा॰ हीङ्ग जीरा के सहित तेलमें अच्छी तर वनाई हुई शाक को डाले ॥ लवणा आम चूर आदि सिद्ध हुवे में हीङ्ग का पानी डाले ॥ २०७॥ इस प्रकार सब शाकों के वनानें की विधि इष्टहै ॥ अनन्तर मठडी ॥ मैदेको मले और पानीसे साने उसकी वटि का करके घृतमें नीरस पकावे ॥ २०८॥ इलायची लवंग कपूर मरिच आदिसे युक्त ॥ इसको चीनी मे पागे उस के अनन्तर उसको निकाले ॥ २०९ इस तरह पर सिद्ध हुवेको मठडी ऐसा कहेते है ॥ मर्दन करे ॥

मठस्तु बृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः ॥ पित्तानिल हरो रुच्यो दीप्ताग्नीनां सुपूजितः ॥२१०॥ समिताः शर्करा सर्पि निर्मिता अपरेऽपिये ॥ प्रकारा असुना तुल्यास्ते ऽपि चे तद्गुणाः स्मृताः ॥ २११॥

अथ सम्पाव पेराक ॥ यर्पटाः साज्य समिता निर्मिता घृत भर्जिताः ॥ कुट्टि ताश्चालिताः शुद्ध शर्करा भिर्विमर्द्दिताः ॥ २१२॥ तत्र चूर्णं क्षिपे देला लवङ्ग मरिचानिच ॥ नालि केरं सकर्पूर म्वार वीजान्यनेकधा ॥२१३॥

भा॰ मठड़ी पुष्ट शुक्रको करने वाली बलके हित अच्छी मधुर भारी ॥ पित्त वात की नाशक रुचिको करने वाली दीप्ताग्नि वालों को अच्छी है ॥२१०॥ और भी जो मैदा शक्कर घी इनसे बना ये हुवे पदार्थ ॥ इसीके समान गुण में हे वेभी उसीके समान गुण वाले कहेहैं ॥२११॥ अनन्तर संपाक पेराक ॥ घृत के सहित मैदे से बनाये हुवे रोट घी में भूने हुवे ॥ तथा कूटके चालनी से चाले हुवे अच्छी चीनी को मिलाके मले हुवे ॥ २१२॥ उस चूर्ण में इलायची लवंग मरिच ॥ नारियल कपूर चिरोंजी और अनेकप्रकार ॥ २१३॥

घृताक्त समिता पुष्ट रोटिका रचिता ततः ॥ तस्यान्तः पूरणं तस्य कुर्य्यान्मुद्रां हढां सुधीः ॥ २१४॥ सर्पिषि प्रचुरे तान्तु सुपचे न्निपुणो जनः ॥ प्रकार ज्ञैः प्रकारोऽयं सम्पाव इति कीर्त्तितम् ॥२१५॥ अथ कर्पूर नालि ॥

घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः ॥ लवङ्गेल्वण कर्पूर युत या सितया ऽन्वितम् ॥ २१६ ॥ पचेदाज्येन सिद्धे या ज्ञेया कर्पूर नालिका ॥

सम्याव सदृशी ज्ञेया गुणैः कर्पूर नालि का ॥ २१७॥

[फेनिका फेनी ॥]

भा० डाले अनन्तर मैदे में घी मिला कर मोटी रोटी बनावे उस के अनन्तर॥ उसके बीचमें उसका पूरण देवे और दृढ मुद्रा बुद्धि वान करे ॥ २१४ ॥ बुद्धि वान उसको बहुत से घृत में पकावे ॥ तर कीबके जान नें वालों नें इसको संपाव ऐसा कहाहे ॥ २१५॥ अनन्तर कर्पूर नालि ॥ बहुत घृत डाल कर मैदे से लम्बा पुट करके अनन्तर ॥ लवंग अधिक कपूर के युक्त चीनी से युक्तको ॥२१६॥ घृतमें पकावे येह सिद्ध कर्पूर नालिका जाननी चाहि ये॥ संपाव के समान गुणमें कर्पूर नालि का जाननी चाहिये ॥२१७॥ अनन्तर फेनी ॥

समितायां घृताढ्यायां वर्त्तिं दीर्घां समाचरेत् ॥ तास्तु
सन्निहिता दीर्घाःपीठस्योपरि धारयेत् ॥ २१८ ॥
वेल्लयेद्वेल्लनेनैता यथैका पर्पटी भवेत् ॥ तत च्छु
रिकया तान्तु सलग्ना मेव कर्त्तयेत् ॥२१९॥ ततस्तु
वेल्लयद्रूप सट्टकेन च लेपयेत् ॥
शालि चूर्णं घृतं तोयं मिश्रितं दशकं वदेत् ॥ ततः
संवृत्य तल्लोपूत्नीं विदधीत पृथक् पृथक् ॥ २२०॥

भा० घृतके सहित मैदे से लंबी वत्ती करे ॥वोह सन्निहित दीर्घ पीढे के ऊपर रक्खे ॥ २१८॥ इनको वेलनें से वेले जिस्में एक रोटी होजावे ॥ उसके अनन्तर उनको छुरीसे लगी हुई को ही काटे ॥ २१९॥ फिरसे वेले और सट्टक अर्थात् चांवलका आटा उस्से लेपन करे ॥ चांवलका चूर्ण घृतजल इन सबमिले हुवे को दशक कहेते हैं ॥ उससे लोई गोल करके अलग२ रक्खे ॥ २२० ॥

पुनस्तां वेल्लयेल्लोपूत्नीं यथा स्यान्मण्डलाकृतिः ॥
ततस्तां सुपचेदाज्ये भवेयुश्च पुटाःस्फुटाः ॥ २२१॥

सुगन्धया शर्करया तदुद्धूलनमाचरेत् ॥ सिद्धेयाफे
निकानाम्नी मण्डकेन समागुणेः ॥२२२॥ ततः कि-
ञ्चिल्लघुरियंविशेषोऽयमुदाहृतः ॥
-(क) वेल्लयेत् प्रसारयेत् वेल्लनः । वेलन इति लोके
। पर्प्पटी रोटी । लोपूली लो इति लोके ।

अथ शष्कुली सोहाली इति लोके ।

समितायाघृताक्तायालोपूलीं कृत्वा च वेल्लयेत् ॥ आ
ज्ये तां भर्जयेत्सिद्धां शष्कुली फेनिकागुणा ॥२२३॥

भा० फिर उस लोई को वेले जिस्में मंडला कृति हो जावे ॥ उसके अनन्तर उस
को घृतमें पकावे उसके पुड़त खिल जाते हैं ॥२२१॥ सुगन्ध चीनी को उसके ऊप
र बुरकावे ॥ सिद्ध येह फेनि नाम मंडक के समान गुण में होती है ॥ २२२॥
उस्से कुछ हल की येह होती है येह विशेष कहा है ॥
(क) वेले । वेलन । रोटी । लोई । अनन्तर सोहारी । घृत के सहित मैदे की
लोई बना कर वेले ॥ उसको घृत में पकावे वोह सिद्ध हुई फेनि के समान गुण
में होती है ॥ २२३ ॥

॥ अथ सेवीका मोदक सेवका लाडू ।

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणितानि तु ॥ निपुणो
भर्जयेदाज्ये खण्डपाकेन योजयेत् ॥ ॥२२४॥ युक्ते
न मोदकान् कुर्य्यात्ते गुणे मण्डका यथा ॥

अथ मुक्ता मोदका मोति लाडू ।

भा० अनन्तर सेवका लड्डु । घृत के सहित मैदासे सूत्र करके उनको ॥ निपुण
घृत में पकादे अनन्तर खांड के पाक में उसको डाले ॥२२४॥ उनके लड्डु करे वे
गुणमें मंडक के समान होते हैं ॥ अनन्तर मोती चूर के लड्डु ॥

मुद्गानां धूमसी सम्यक् घोलये न्निर्मलाऽम्बुना॥ कटाह
स्य तटे स्थुल्डं झर्झरं स्थापये त्ततः॥ २२५॥ धूमसीन्तु
द्रवीभूतां प्रक्षिपेत् झर्झरो परि॥ पपन्ति विन्दव-
स्त स्मात् तान् सुपक्वान् समुद्धरेत्॥ २२६॥
सिता पाकेन संयोज्य कुर्य्याद्धस्तेन मोदकान्॥
झर्झरं झर्झरा इति लोके।

भा० मूङ्ग के आटे को निर्मल जलमें घोले॥कढाई के किनारे पर झारे को रक्खे॥ २२५॥ अनन्तर उस घोले हुवे मूङ्ग के आटेको झारे के ऊपर डाले॥ उस्से बून्द गिरते हैं उन पके हुवों को निकाल लेवे॥ २२६॥ चीनी के पाकमें मिलाकर हाथसे लड्डू बनावे॥ झारा) इस प्रकार लोकमें कहते हैं॥

लघुर्ग्राही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचिप्रदः॥ चक्षु
ष्यो ज्वरहृद्बल्य स्तर्पणो मुद्गमोदकः॥२२७॥

अथ सेवन मोदकः। सेवका लड्डूआ।

एवमेव प्रकारेण कार्य्याः सेवन मोदकाः॥ ते ब-
ल्या लघवः शीता किञ्चिद्वातकरास्तथा॥ २२८॥
विष्टम्भिनो ज्वरघ्नाश्च पित्तरक्तकफापहाः॥

[दुग्धं कूपिका॥]

भा० येह हलका काबिज त्रिदोष नाशक मधुर शीतल रुचि को करनें वाला॥ नेत्रके हित ज्वर नाशक बलकारी तर्पण मूङ्गके लड्डू होतेहैं॥२२७॥

अनन्तर सेवका लड्डू। ऐसे ही सेव के भी लड्डू बनावे॥ वे बल के हित हलके शीतल कुछ एक बात को करनें वाले हैं॥ २२८॥
और विष्टंभ करनें वाले ज्वर नाशक तथा रक्त पित्त कफ इन का नाशक है॥
अनन्तर दुग्ध कूपिका॥

तण्डुल चूर्ण विमिश्रित नष्ट क्षीरेणसान्द्र पिष्टेन ॥ दृढ़

कूपिका विदध्या तान्च पचे त्सर्पिया सम्यक् ॥ २२९ ॥

अथ तां कौरि तमध्वा घन पयसा पूर्ण गर्भान्च ॥ अट्ट

कमुद्रित वदनां सर्पिषि सपक्व वद नान्च ॥ २३० ॥ अथ

पाण्डुखण्ड पाके स्नापयेत् कर्पूर वासिते कुशल : ॥ अ

थदुग्ध कूपी सा बल्या पित्ता निला पहा ॥ २३१ ॥ वृष्या

शीता गुर्वी शुक्र करी बृंहणी रुच्या ॥ विदधाति कायपु

ष्टिं हर्षिं दूर प्रसारिणी सुचिरम् ॥ २३२ ॥

भा० चांवल के आटेको मिलाके फटे दूधकोस्लेम सा करके उससे दृढ कूपी करे उसको घीमें पकावे ॥ २२९॥ अनन्तर उस्को वीचमें से खाली करके उसमें खोया भरे ॥ औरउसका मुख चावल के आटे से बन्द करके घीमें पकावे ॥ २३० ॥ अनन्तर सुफेद खांड के पाक में डुबोवे कपूर के वासित में कुशल ॥ अनन्तर दुग्धकूपी वो वलके हित पित्त वात की नाशक है ॥ २३१ ॥ शुकको करने वाली शीतलभारी शुक्र को करने वाली पुष्ट रुचिको करने वाली है ॥ और शरीर की पुष्टिको करता है तथाव दुत काल तक अच्छी हर्षी को करती है ॥ २३२ ॥

कुण्डलिनी जलेबी । नूतनं घट मानीय तस्यान्तः कु-

श लो जनः ॥ प्रस्यार्द्धं परि माणेन दध्नाऽम्लेन प्रलेपये

त् ॥ २३३ ॥ द्वि प्रस्था समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसम्मि

तम् ॥ घृत मर्द्ध सरा वञ्च घोल यित्वा घटे क्षिपेत् ॥

२३४ ॥ आतपे स्थापये त्तावद्या वद्याति दत्म्ल ताम् ॥

ततस्त स्मक्षिपे त्पात्रे सच्छिद्रे भाजने तु तत ॥ २३५ ॥

परिभ्राम्य परिभ्राम्य तत्सन्तप्ते घृते क्षिपेत् ॥

पुनःपुनस्तदा कृत्वा विदध्यान्मण्डलाकृतिम् ॥२३६
तां सुपक्कां घृतान्नीत्वा सिता पाके ततु द्रवे ॥ कर्पूरादि
सुगन्ध्यञ्च स्नापयित्वो द्धरेत्ततः ॥२३७॥ एषा कुण्ड
लिनी नाम्ना पुष्टि कान्ति बल प्रदा ॥ धातु वृद्धिकरी
वृष्या रुच्या च क्षिप्र तर्पणी ॥ २३८॥

अथ पश्चा त्परि वेष्याणि । सिखरिणी ।

भा० अनन्तर जलेवी । कुशल मनुष्य नया घड़ा लाकर उसके भीतर ॥ आध सेर खट्टी दही से लेप करावे ॥२३३॥ उसमें दोसेर मैदा और एक सेर खट्टा दही ॥ पाव भर घृत इन को घोल कर घृतमें डाले ॥ २३४॥ इसको धूपमें रक्खे तब तक जब तक खट्टा पन इसमें न आवे ॥ अनन्तर छेक वाले बरतन में उसको डालें ॥ २३५॥ उसको घुमा २ कर जलते हुवे घी में डाले ॥ फिर २ उसकी फेरसे मंडला कृति करे ॥ २३६॥ उस पकी हुई को घृत से निकाल करची नी के पतले पाकमें ॥ कपूर आदि से युक्त में डाल कर निकाल लेवे ॥२३७ येह जलेवी पुष्टि कान्ति बल को देनें वाली है ॥ और धातु को बढ़ाने वाली शुक्रको करनें वाली रुचि को करनें वाली नेत्रकी तर्पण है ॥२३८॥
अनन्तर पश्चात् परि वेश्यनि सि खरिणी ।

आदौ माहिष मम्ल मम्बु रहितं दध्या ढकं शर्कराम् ॥
शुभ्रां प्रस्थ युगो न्मितां शुचि पटे किञ्चि च्च किञ्चित् ।
क्षिपेत् ॥ २३९॥ दुग्धे नार्द्ध घटेन मृण्मय यनवस्थः
त्यां दृढं स्राव येत् ॥ एला वीज लवङ्ग चन्द्र मरिचै
र्योग्यैश्च तद्यो जयेत् ॥२४०॥ भीमेन प्रिय भोज नेन
रचिता नाम्ना रसाला स्वयम् ॥ श्रीकृष्णे न पुरा पु
नः पुन रियं प्रीत्या समास्वादिता ॥ २४१ ॥

भा० पहिले भैंसकी जल रहित चार सेर दही को सफेद दो सेर शर्करा के सहित सुफ़ेद कपड़े पर थोड़ा २ डाले ॥ २३५ ॥ अर्द्ध घट दुग्ध से नई मिट्टी की स्थालीमें छन चावे ॥ इलाय ची लौंग चन्दन मरिच और उचित उस्से डाले ॥ अच्छे भोजन करने वाले भीम सेन ने रसाला नाम स्वयं बनाई है ॥ पहिले श्री कृष्ण ने बार बार इसको प्रीति से आस्वादन किया था ॥ २४१ ॥

यथा येन वसन्त वर्जित दिने संसेव्यते नित्यशः ॥ तस्य स्यादति वीर्य्य वृद्धि रनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम् ॥ २४२ ॥ ग्रीष्मे तथा शरदि ये रविशोषिताङ्गाः ये च प्रमत्त वनिता सुरताति खिन्नाः ॥ ये चापि मार्ग परिसर्पण शीर्ण गात्रा स्तेषां प्रियं वपुषि पोषणमाशु कुर्य्यात् ॥ २४३ ॥ रसाला शुक्रला बल्या रोचिनी वात पित्त जित् ॥ दीपिनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा ॥ २४४ ॥ रक्त पित्तं तृषा दाह प्रति श्यायं विनाशयेत् ॥ शर्करोदक सरवत ॥

भा० इसको जो वसन्त से रहित दिनों में नित्य सेवन करते है ॥ उस के अति वीर्य्य वृद्धि और सब इन्द्रियों का बल होता है ॥ २४२ ॥ ग्रीष्म में तथा शरद में जो सूर्य्य से शोषित अंग वाले है और जो प्रमत्त स्त्री के मैथुन से अति खिन्न ॥ तथा जो मार्ग चलनें से शीर्ण गात्र है उनके शरीर में येह पोषण शीघ्र करता है ॥ २४३ ॥ रसाला शुक्र को करनें वाली बल के हित रोचन वात पित्त को जीतनें वाली है ॥ और दीपन पुष्टिकरनी मधुर शीतल सर है ॥ २४४ ॥ रक्त पित्त तृषा दाह प्रति श्याय इनको नाश करती है ॥

अनन्तर सरवत । ॥

जलेन शीतलेनैव घोलिता शुभ्र शर्करा ॥ एला लवङ्ग कर्पूर मरिचैश्च समन्विता ॥ २४५ ॥

शर्करोदक नाम्ना तत् प्रसिद्धं विदुषां मुखे ॥ शार्करोदकमाख्यातं शुक्रलं शिशिरं सरम् ॥ २४६ ॥ वल्यं रुच्यं लघु स्वादु वातपित्तप्रशासनम् ॥ मूर्च्छा छर्दि तृषा दाह ज्वर शान्तिकरं परम् ॥ २४७ ॥

भा० शीतल जल से घोली हुई सुफेद चीनी ॥ और इलाय चीलवङ्ग कपूर मरिच इनसे युक्त ॥ २४५ ॥ शर्करोदक नाम से प्रसिद्ध पंडितों के मुख में है ॥ शर्करोदक प्रसिद्ध है शुक को करनें वाला शीतल सर है ॥ २४६ ॥ और वल के हित रुचि करनें वाला हलका मधुर वात पित्त का नाशक है ॥ और मूर्च्छा। वमन तथा दाह ज्वर की शान्ति को परम करनें वाला है ॥ २४७ ॥

अथ प्रपानकं पन्ना । तत्र आम्रफलप्रपानकम्
आम्र मामं जले स्विन्नं मर्दितं दृढपाणिना ॥ सिता शीताम्बु संयुक्तं कर्पूर मरिचान्वितम् ॥ २४ ॥ प्रपानकमिदं श्रेष्ठं भीमसेनेन निर्मितम् ॥ सद्यो रुचिकरं वल्यं शीघ्र मिन्द्रियतर्पणम् ॥ २४९ ॥

भा० अनन्तर पन्ना । उसमें आम का पन्ना । कच्चे आम को पानी में उवाल के। हाथ से खूब मले ॥ चीनी और शीतल जलसे युक्त और कपूर मरिच के साथ। ॥ २४८ ॥ येह प्रपानक श्रेष्ठ भीमसेन का बनाया हुवा है ॥ तत्काल रुचि। को करनें वाला बलके हित शीघ्र इन्द्रिय का तर्पण है ॥ २४९ ॥

अथाम्लिका फलपानकम् । आम्लिकायाः फलं पक्कं मर्दितं वारिणा दृढम् ॥ शर्करा मरिचै। र्मिश्रं लवङ्गेन्दु सुवासितम् ॥ २५० ॥

भा० अनन्तर इमली का पन्ना ॥ पकी इमली को पानी के साथ खूब मले ॥ शकर और मरिच से युक्त और लवङ्ग कपूर से सुवासित ॥ २५० ॥

आम्लिका फल सम्भूतं पानकं वात नाशनम् ॥ पित्त श्लेष्म करं किञ्चित् सुरुच्यं वन्हि बोधनम् ॥ २५१ निम्बूक फल पानकम् । भागे कं निम्बुजं तोयंषड् भागं शर्करोदकम् ॥ लवङ्ग मरिचैर्मिश्रं पानं पानक मुत्तमम् ॥ २५२ ॥ निम्बू फल भवं पानमत्यम्लं वात नाशनम् ॥ वन्हि दीप्ति करं रुच्यं समस्ता हार पाचकम् ॥ २५३ ॥ धान्याक पानकं ॥ शिलायां साधु सम्पिष्टं धान्यकं वस्त्र गालितम् ॥ शर्करो दक संयुक्तं कर्पूरा दिसुसंस्कृतम् ॥ २५४ ॥ नूतने मृण्मये पात्रे स्थितं पित्त हरं परम् ॥ अथ काञ्जी ॥

भा० येह इमली का पन्ना वात का नाशक है ॥ और पित्त कफ को करने वाला किञ्चित् तथा रुचि कर दीपन है ॥ २५१ ॥ नीम्बू का पन्ना ॥ एक भाग नीम्बु का रस छः भाग सरबत ॥ लौङ्ग मिरच से युक्त पन्ना पन्ना में श्रेष्ठ है ॥ २५२ नीम्बू का पन्ना बहुत खट्टा वात नाशक ॥ अग्नि दीपन रुचि कर संपूर्ण आहार को पकाने वाला है ॥ २५३ ॥ धनिया का पन्ना ॥ सिल पर अच्छी तरह पीसा हुवा धनिया कपड़ छान करके ॥ सर्बत के सहित कपूर आदि से युक्त ॥ २५४ ॥ नवीन मिट्टी के बरतन में रक्खा हुई परम पित्त का नाशक है ॥ अनन्त काञ्जी ॥

काञ्जी विधि र्वदका वसरे लिखितः । काञ्जी कं रोचनं रुच्यं पाचनं वह्नि दीपनम् ॥ शूल जीर्ण विबन्धघ्नं कोष्ठ शुद्धि करं परम् ॥ २५५ ॥ न भवेत् काञ्जिकं यत्र तत्र कालिः प्रदीयते ॥ अथ जारी ॥
आम मात्र फलं पिष्टं राजिका लवणान्वितम् ॥

भा० कांजी की विधि वटक के अवसर में कहीहै ॥ कांजी रोचन रुचि को करनें वाली पाचन अग्नि दीपन है ॥ और शूल जीर्ण विबन्ध का नाशक तथा परम कोष्ठ शुद्धि को करनें वालाहै ॥ २५५॥ जहां पर कांजी नहो वहां पर कालिःदी जातीहै। अनन्तर जारी। कच्चे आम के फलको पीस कर राई और लवण से युक्त ॥-

भृष्ट हिङ्गु युतं पूतं घोलितं जालि रुच्यते ॥ २५६॥ जालि हरति जिह्वायाः कुण्ठत्वं कण्ठ शोधनी ॥ मन्द मन्दन्तु पीतासा रोचिनी वन्हि बोधिनी ॥ २५७॥ अथ तक्रं। तूर्य्यां शेन जलेन संयुत मति स्थूलं सदम्लं दधि ॥ प्रायो माहिष मस्तुकेन विमले मृद्भाजने मालयेत् ॥ २५८॥ भृष्टं हिङ्गु च जीर कञ्च लवणं राजीञ्च किञ्चि न्मितम् ॥ पिष्टा नात्र विलिप्यते द्रवति तत्तक्रं न कस्य प्रियम् ॥ २५९॥ तक्रं रुचि कारं वन्हि दीपनं पांचनं परम् ॥ उदरे ये गदास्तेषां नाशनं तृप्ति कारकम् ॥ २६०॥ अथ दुग्धम् ॥

भा० भूनी हींङ्ग के सहित घोली हुई को जालि कहेते हैं ॥ २५६॥ जीभकी कुंठता को जालि नाश करती है औरकंठ की शोधन है ॥ मन्द मन्द पी हुई वोह रोचन अग्नि को जगाने वाली है ॥ २५७॥ अनन्तर मठा ॥ चौथाई जलसे युक्त अति स्थूल अच्छा खट्टा दही ॥ प्रायः भैंस का जल से विमल मिट्टीके बरतन में रक्खे। ॥ २५८॥ भूना हुवा हींङ्ग जीरा लवण राई भी कुछ युक्त ॥ पीसके उसमें मिलावे। वोह मठा किसके प्रिय नही होता ॥ २५९॥ मठा रुचि कर दीपन पाचन ॥ और उदरके जो रोग है उनका नाशक तृप्ति कारक है ॥ २६०॥ अनन्तर दूध ॥

विदाहि न्यन्न पानानि यानि भुङ्क्ते हि मानवः ॥ तद्विदाह प्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥ २६१॥

दुग्धस्या परे गुणा उक्ता एव दुग्ध वर्गे ॥ अथ शक्तवः
धान्यानि भ्राष्ट्र भृष्टानि यन्त्र पिष्टानि शक्त वः ॥
तत्र यव शक्तवः । यवजाः शक्तवः शीता दीपना लघ
वः सराः ॥ कफ पित्त हरा रूक्षा लेख नाश्च प्रकीर्त्ति
ताः ॥ २६२ ॥ ते पीता वलदा वृष्या वृंहणा भेदनास्तथा
॥ तर्पणा मधुरा रुच्याः परि णामे वला पहाः ॥ २६३ ॥
कफ पित्त श्रम क्षुत्तृट् व्रणि नेत्रा मया पहाः ॥ प्रशस्ता
घर्म दाहाढ्य व्यायामार्त्त शरी रि णाम् ॥ २६४ ॥

भा० मनुष्यजिन विदाहि अन्न पानों को भोजन करता है ॥ उसके विदाह प्रशा-
न्ति के अर्थ भोजन के अन्तमें दुग्ध पीवे ॥ २६१ ॥ दुग्ध वर्ग में दुग्ध के और गुण
कहेहैं । अनन्तर सत्तू । भाड में धान्य भूने चक्कीसे पीसे हुवे सत्तूहै ॥ उसमें ज
वके सत्तू ॥ जवका सत्तू शीतल दीपन हलका सर ॥ कफ पित्त का नाशक रूखा
लेखन कहाहै ॥ २६२ ॥ वे पीये हुवे वलको देने वाले शुक्र कारक पुष्ट भेदन
॥ तर्पण मधुर रुचिको करनें वाले और परिणाम में वलके नाशक हैं ॥ २६३
कफ पित्त श्रम क्षुधा तृषा व्रण नेत्र रोग इनके नाशक है ॥ घर्म दाहाढ्य कसर
त से पीडित शरीर वालो को हित है ॥ २६४ ॥

चणाक यव शक्तवः । निस्तुषै श्चणकै र्भृष्टै स्तुर्यां
शैश्च यवैः कृतः ॥ शक्तवः शर्करा सर्पि र्युक्ता ग्रीष्मे
ति पूजिता ॥ २६५ ॥ शालि शक्त वः ॥
शक्तवः शालि सम्भूता वन्हि दा लघवो हिमाः ॥ म-
धुरा ग्राहिणी रुच्या पथ्या श्च वल शुक्र दाः ॥ २६६

भा० अनन्तर चने जव का सत्तू । छिलके से रहित चनो को भून कर और
चौथाई जव से वनाया हुवा ॥ सत्तू शर्करा घृत से युक्त ग्रीष्म में अति पूजित

है॥ २६५॥ अनन्तर धानका सत्तू ॥ धानका सत्तू अग्नि दीपन हलका शीतल ॥ मधुर काविज रुचि करनें वाला पथ्य वल शुक्र को देने वाला है॥२६६

न भुक्ता न रदै श्छित्वा न निशायां नवा बहून्॥ न जलान्तरितान् तद्धि शक्तून्नाद्यान्न केवलान्॥ २६७॥ पृथक् पानं पुनर्दानं आमिषं पयसा निशि ॥ दन्तच्छेदनमुष्णञ्च सप्त शक्तुषु वर्जयेत्॥२६८

अथ बहुरी। यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियां॥ धानाः स्युर्दुर्जरा रूक्षास्तृट्प्रदा गुरवस्मृताः॥ २६९॥ तथा मेह कफ च्छर्दि नाशिन्यः सम्प्रकीर्त्तिताः॥ अथ लाजा ॥ येषां स्युस्तण्डुलास्तानि धान्यानि सतुषाणि च ॥ भृष्टानि स्फुटितान्यहुर्लाजा नीति मनीषिणः॥ २७०॥ लाजाः स्युर्मधुराः शीता लघवो दीपनाश्च ते ॥

भा० न भोजन करके न दांतों से काट कर न रात में न वहुत ॥ न जल से अन्तरित और उस सत्तू को केवल न खावे॥ २६७॥ अलग पान फिरसे देना मांस जल रात दन्तछेदन और गरम येह सात सत्तू में त्याग देवे ॥२६८॥ अनन्तर बहुरी। वे छिल के के भूने जव स्त्री लिंग में धाना इस प्रकार कहा है॥ धाना दुर्जर रूखे तृषा दाह को देने वाले भारी है॥ २६९॥ तथा प्रमेह कफ वमन इनको नाश करनें वाले कहे हैं॥ अनन्तर खीलें॥ जिनके चांवल होते है॥ वोह छिलके के सहित धान ॥ भुने हुवेंको विद्वानानें लाजा इस प्रकार कहा है॥ २७०॥ खीलें मधुर शीतल हलकी दीपन होत हैं॥

स्वल्पमूत्रमला रूक्षा बल्या पित्त कफच्छिदः॥ २७१॥ छर्द्यतीसार दाहास्त्र मेह मेदस्तृषापहाः॥

अथ चिडवा। शालयः सतुषा आर्द्रा भृष्टा अस्फुटिता श्च तत् ॥ कुट्टिताश्चिपिटाः प्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका अपि ॥२७२॥ पृथुका गुरवो वात नाशनाः श्लेष्म ला अपि ॥ सक्षीरा बृंहणा वृष्या बल्या भिन्न म- ला अपि ॥२७३॥ अथ होरहा ॥

अर्द्धपक्वैः शमी धान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलकः ॥ होलकोऽल्पानिलो मेदः कफ दोष त्रयापहः ॥२७४ भवेद्यो होलको यस्य सच तत्तद्गुणो भवेत् ॥

भा० वे अल्पमल मूत्र को करने वाले और वे बलको करनें वाले हैं और पित्त कफ़को काटनें वाले हैं ॥२७१॥ तथा वमन अतीसार दाह रक्त में ह मेद तृया इ- नका नाशक है ॥ अनन्तर चिड़वा ॥ छिलके वाले धान भी ले और भूने हुवे अस्फुटित ॥ कूटे हुवे चिपिट कहे हैं वे पृथुक भी कहे हैं ॥ २७२॥ चिडवा भारी वात नाशक भीहै ॥ और दूधके सहित पुष्ट शुक्रको करनें वाले बल करनें वाले॥ मल को अलग करनें वाले हैं ॥२७३॥ अनन्तर होरहा ॥ आधे पके हुवे शिम्बी धान्य तृण से भूने हुवों को होलक कहाहै ॥ होलक अल्प वात मेद कफ़ त्रिदोष इनके नाशक है ॥ २७४॥ जिसका जो होला होताहै वोह उ- सके गुण वाला होताहै ॥

अथ ऊची। मञ्जरी त्वर्द्ध पक्वाया यव गोधूमयो र्भवेत् ॥ तृणानलेन संभृष्टा बुधै रुचीति सा स्मृता॥ २७५॥ उमिया इति लोके ॥ ऊची कफ प्रदा बल्या लघ्वी पित्ता निला पहा ॥ अथ घुघुनी ॥

अर्द्ध स्विन्नास्तु गोधूमा अन्ये ऽपि चणकादयः ॥ कुल्माषा इति कथ्यन्ते शब्द शास्त्र विशारदैः ॥ २७६॥

कुल्माषा गुर वो रूक्षा वातला भिन्न वर्चसः॥

[अथ तिल कुट]

भा० अनन्तर ऊची। जब गेहूं की जो अध पकी वालें होतीहैं॥ तृणाग्नि से भूनी हुई उसको विद्वानों ने ऊची ऐसा कहाहे॥ २७५॥ लोक में उमि या कहेते हैं॥ ऊची कफ को करनें वाली बलके हित हलकी पित्त वात की नाशक है॥ अनन्तर घुघुनी॥ आधे पकाये हुवे गेहूं और चने आदि क॥ व्याकरण के पंडितोंने इस को कुल्माष ऐसा कहाहे॥ २७६॥ कुलमा ष भारी रूखे वात को करनें वाले मलको अलग करनें वाले हैं॥ अनंतर तिल कुट॥

पल लन्तु समाख्यातं सेक्ष वन्तिल पिष्टकम्॥ पललं मल कृद्दृष्यं वातघ्नं कफ पित्त कृत्॥ २७७॥ बृंहण ञ्च गुरु स्निग्धं मूत्रा धिक्य निवर्त्त कम्॥ अथपीना। तिल किट्टन्तु पिन्याकं स्तथा तिल खलिः स्मृता॥ पिण्याको लेखनो रूक्षो विष्टम्भी दृष्टि दूषणः॥ २७८ अथ चाउर। तण्डु लो मेह जन्तुघ्नः स नव स्त्वग्नि दु र्जरः॥

इति श्री भाव प्रकाशे कृतान्न वर्गः

भा० गुडके सहित तिलकी पिट्ठीकोपलल कहाहे॥ पलल मल कारी शुक्रको करनें वाला वात नाशक कफ़ पित्त को करनें वालाहै॥ २७७॥ पुष्ट भारी चिकना और मूत्राधिक्य को दूर करनें वाला है॥ अनन्तर खली॥ तिल किट्ट को पिन्याक तथा तिल खलि कही है॥ खली लेखन रूक्ष विष्टंभी दृष्टि दूष ण होतीहै॥ २७८॥ चावल प्रमेह कृमि का नाशक और नया अग्नि दुर्जर होताहै॥

इति भाव प्रकाशे कृतान्न वर्गः॥

अथ वारिवर्गः

तत्र पानीयनामानि गुणा श्च ।

पानीयं सलिलं नीरं कीलालञ्जल मम्बु च ॥ आपो वार्व्वारि कन्तोयं पयः पाथस्त थोद कम् ॥ १ ॥ जीवनं वन ममो ऽर्णो ऽमृतं घन रसो ऽपि च ॥

भा॰ अनन्तर जल वर्गः ॥ उसमें जल के नाम और गुण ॥ पानीय सलिल नीर की लाल जल अम्बु ॥ आप वार वारि कं तोय पय पाथ तथा उदक ॥ १ ॥ जीवन अंम अर्ण अमृत घन रस येह पानी के नाम हैं ॥

पानीयं श्रमना शनं क्लमहरं मूर्च्छा पिपासा पहम् ॥ तन्द्रा छर्दि विबन्ध हृद्बल करं निद्रा हरं तर्पणम् ॥ २ ॥ हृद्यं गुप्त रसं ह्यजीर्ण शमकं नित्यं हितं शीतलम् ॥ लघ्वच्छं रस कारणं तु निगतं पीयूष वज्जीवनम् ॥ ३ ॥ तस्य भेदाः पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौम मिति द्विधा ॥ दिव्यं च तु र्विधं प्रो क्तं धाराजं कर का भवम् ॥ ४ ॥ तौ षा र ञ्च तथा है मन्तेषु धारं गुणा धि कम् ॥

तत्र धारस्य लक्षणं गुणा श्च ।

भा॰ जल श्रम नाशक क्लम हर मूर्छा पिपासा का नाशक ॥ तन्द्रा वमन विबन्ध इनका नाशक बल कर निद्रा नाशक तर्पण ॥ २ ॥ हृद्य गुप्त रस अजीर्ण शमक नित्य हित शीतल होताहै ॥ हलका स्वच्छ रस कारण अमृत केसमान जीवन कहाहै ॥ ३ ॥ उसके भेद । मुनियों नें जल दो प्रकारका कहाहै दिव्य और भौ

म ॥ दिव्य चार प्रकार का कहाहे धारका ओलों का ॥ ४ ॥ तुषारका तथा हैं मन्त में धार का गुण में अधिक होताहे ॥

उसमें धार के लक्षण और गुण ।

धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्फीतवाससा ॥ शिला यां वा सुधा यां वा धौता यां पतितञ्च तत् ॥ ५ ॥ सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते ॥ भाजने मृण्मये वापि स्थापितं धारमुच्यते ॥ ६ ॥ धारं नीरं त्रिदोषघ्न मनि र्देश्य रसं लघु ॥

भा० धारा से गिरा हुवा साफ कपड़े मे लिया हुवा ॥ शिला पर सुधापर धोतर पर गिरा हुवा योह ॥ ५ ॥ सोने के चान्दी के ताम्बे के स्फटिक के काचके वने हुवे वरतन में ॥ अथवा मिट्टी के में रक्खा हुवा जल धार कहाहे ॥ ६ ॥ धारजल त्रिदोष नाशक अनि र्देश्य रस हलका ॥

सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादि जीवनम् ॥ ७ ॥ पाचनं मति कृन्मूर्च्छा तन्द्रा दाह श्रम क्लमान् ॥ तृष्णां हरति नात्यर्थं विशेषा त्प्रा वृषि स्थितम् ॥

अथ धारा जलस्य भेदाः

धारा जलञ्च द्विविधं गाङ्गा सामुद्र भेदतः ॥

तत्र गाङ्गा सामुद्र योर्लक्षणं गुणाश्च ।

आकाश गङ्गा सम्बन्धि जल मादाय दिग्गजाः ॥ मेघै रन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥ ८ ॥ गाङ्गमाश्वयुजेमासि प्रायो वर्षति वारिदः ॥ सर्वथा तज्जलं देयं तथैव चरके वचः ॥ ९ ॥

भा० सौम्य रसायन बल के हित तर्पण ल्हादि जीवन ॥७॥ पाचन मति को करने वाला मूर्च्छा तन्द्रा दाह भ्रम क्रम ॥ तृषा इनको नाश करता है न अत्यन्त विशेष करके प्रावृट काल में स्थित है ॥ अनन्तर धारा जलका भेद। धारा जल दो प्रकार का होता है गंगा और समुद्र से ॥ उसमें गंगा सामुद्रों का लक्षण ॥ और गुण कहते हैं ॥ दिग्गज आकाश गंगा सम्बन्धि जल लेकर ॥ मेघों से अन्तरित वृष्टि को करते हैं इस प्रकार सत पुरुषों का वचन है ॥ ८॥ मेघ गंगा जल को प्राय: आश्विन के महीने में वर्साते हैं ॥ सर्व था वोह जल देने योग्य है वैसेही चरक का वचन है ॥९॥

स्थापितं हेमजे पात्रे राजते मृण्मये। पिवा ॥ शाल्यन्नं येन संसिक्तं भवेदक्लेदि वर्णवत् ॥ १०॥ तद्गांगं सर्व दोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्रमन्यथा ॥ तन्नु सक्षार लवणं शुक्रदृष्टि बलापहम् ॥ ११॥ विस्त्रञ्च दोष लंनीक्षणं सर्व कर्म समाहितम् ॥ सामुद्रं त्वाश्विने मासि गुणो गांङ्गवदादिशेत् ॥ १२॥ यतोऽगस्त्यस्य दिव्यर्षे रुदयात्सकलं जलम् ॥ निर्मलं निर्विषं स्वादु शुक्लं स्याद दोषलम् ॥ १३॥ अत एवाह ॥

फूत्कार विषवातेन नागानां व्योमचारिणाम् ॥ वर्षासु सविषं तोयं दिव्यमप्याश्विनं विना ॥ १४॥

अथ नादेयवारिगुणाः।

भा० सोने का या चान्दी के अथवा मिट्टी के पात्र में रक्खे हुवे में ॥ धान भिजोये हुवे क्लेद रहित वर्ण वाला होवे ॥१०॥ वोह गंगा जल सब दोषों का नाशक जानना चाहिये इस्से विपरीत सामुद्र ॥ वोह क्षार के सहित शुक्र दृष्टि बल इनका नाशक है ॥११॥ दुर्गन्धियुक्त दोषको करने वाला तीक्ष्ण सर्व कर्म समाहित है और सामुद्र आश्विन के महीने में गुण में गंगा जल के समान होता है। १२॥

क्योंकि अगस्त ऋषि के उदय से संपूर्ण जल॥ निर्मल और निर्विष मधुर शुक्र को करनें वाला अदोव ल है ॥१३॥ इसी वास्ते कहाहै ॥ व्योम चारि सापों के फूत कार विष दानसे ॥ वर्षा में सविष जलदिव्य भी आश्विन के विना नहीं होता है ॥१४॥ अनन्तर वे रुत के जल के गुण ॥

अनार्तवं प्रमुञ्चन्ति वारि वारि धरास्तु यत् ॥ तत् नि
दोषाय सर्वेषां देहिनां परि कीर्त्ति तम् ॥ १५॥ अना
र्त्त वस्यौ षादि मास चतुष्टय विषयम् ॥

अथ करका जलस्य लक्षणं गुणा श्च।

दिव्य वाय्व ग्नि संयो गात् संहताःखात्पितन्ति याः ॥
पाषाण खण्ड वच्चा पस्ता : कारि को ऽमृतो पमाः॥१६
करका जज्जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थि रम् ॥ दारु
णं शीतलं सान्द्रं पित्त हृत्क फ वात कृत् ॥ १७॥

तौषार लक्षणं गुणा श्च ।

भा० वे रुत का जल मेघ जो छोड़ते है॥ वोह सब देहि यों के त्रिदोष वे अर्थ कहाहे ॥ १५॥ वे रुत का अर्थात् पौषादि मास चतुष्टय विषयहै॥ अनंतर ओलों के जल का लक्षण औरगुण । अन्त रिक्ष वायु अग्नि के संयोग से संहत पथ्थरके टुकडे के समान जल आकाश से जो गिरते है॥ वोह ओले अमृत के समान होतेहै ॥१६॥ ओलों का पानी रूखा विशदभारी स्थिर है॥ दारुण शीतल सान्द्र पित्त नाशक कफ वात को करनें वाला है ॥१७॥ तौषार अर्थात् पाला का लक्षण और गुण ।

अपि नद्याः समुद्रान्ते वन्हि रा पस्त दु द्भवाः॥ धूमा व
यवार्निर्मुक्ता स्तुषा राख्या स्तु ताः स्मृताः॥१८॥

भा० नदी से लेकर समुद्र पर्य्यन्त अग्नि होती है उस्से उत्पन्न धूमांश रहित ॥वोहजल तुषारनाम कहाहै ॥ १८॥

(क) अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्नि र्नदी मारभ्य समुद्र पर्य्यन्ते वह्निरस्ते तदुद्भवाः। वह्निभवा धूमा वयव निर्मुक्ताः धूमांशरहिताः। आपस्तुषाराख्याः। तुष इति लोके। तुषार इति च।

अपथ्याः प्राणिनां प्रायः भूरुहाणान्तु नाहिताः॥ तुषाराम्बुहिमं रूक्षं स्याद्वातलमपित्तलम्॥ १९॥ कफोरुस्तम्भ कण्ठाग्नि मेह गण्डादि रोगनुत्॥

अथ हिमजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

भा० (क) नदीसे लेकर समुद्र पर्य्यंत अग्नि होतीहै॥ उस अग्नि से उत्पन्न धूमांश रहित जल तुषार नामहै। तुष इस प्रकार लोकमें कहते है। और तुषार इस प्रकारभी। येह प्रायः प्राणियों को अहित है और वृक्षादियों को हित नहींहै॥ तुषार जल शीतल रूखा होता है और वात को करनें वाला तथा पित्त को नकरनें वालाहै॥ १९॥ और कफ उरुस्तंभ कंठ रोग अग्नि मान्द्य प्रमेह गण्डादि रोग का नाशक है॥ अनन्तर बरफ के पानी का लक्षण और गुण।

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवी भूयाभिवर्षति॥ यत्तदेवं हिमं हैमं जलमाहुर्मनीषिणः॥ २०॥ हिमाम्बु शीतं पित्तघ्नं गुरुवात विवर्द्धनम्॥ (क) हैमं जलम्। कुहेसजलम्। अन्ये तु। और्वानल धूमेरित मम्बु समुद्रस्य यत् घनीभूतम्। पवनानीतमुदीच्यान्तहिममिति कथ्यते सद्भिः। हिमं कुहेस इति लोके। हिमन्तु शीतलं रूक्षं दारुणं सूक्ष्ममित्यपि। न तद्दूषयते वातं न च पित्तं न वा कफम्॥ २१॥

भा० हिमालय के शिखरादि यों से पिघल के जो बरसता है वोह हिमहै उ-स्के जलको हैमजल मुनियोंने कहाहै ॥२०॥ बरफका पानी शीतल पित्तका नाशक भारी वायु को बढानें वाला है ॥ १क। वडवानल के घूम से प्रेरित समुद्र का जल जो गाढ़ा हुवा। वायु से लाया हुवा उत्तर में उसको हिम ऐसा विद्वानों ने कहाहै। लोकमें कुहेस ऐसा कहेते हैं॥ वरफ़ शीतल रूखी दारुण सूक्ष्म भीहै॥ वोह न वात को न पित्त को न कफ को विगाड़ता है ॥२१॥

[भौमं जलं तद्भेदाश्च ॥]

भौम मम्भो निग दितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः॥ जाङ्गलप रमानूपन्ततः साधारणं क्रमात् ॥ २२ ॥

तेषां लक्षणानि गुणाश्च।

अल्पोदको ऽल्प वृक्षश्च पित्त रक्ता मया न्वितः॥ ज्ञातव्यो जाङ्गलो देशस्तत्र त्यञ्जाङ्गलं जलम् ॥ २३॥

बहूदकस्तु बहु वृक्षश्च वात श्लेष्मा मया न्वितः॥ देशोऽनूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥ २४॥

भा० भूमिका जल और उसके भेद ॥ पंडितोंने भूमि का जल तीन प्रकार का प्रथम कहाहै॥ क्रमसे जाङ्गल दूसरा आनूप और साधारण ॥२२॥ उसके लक्षण और गुण। थोडा जल थोडे वृक्ष पित्त रक्त रोग युक्त ॥ऐसा देश जङ्गल जानना चाहिये उसी का जाङ्गल जानना चाहिये॥ २३॥ बहुत जल बहुत वृक्ष वात कफ रोगसे युक्त ॥ ऐसा अनूप देश प्रसिद्ध है वहां का जल आनूप है॥ २४॥

मिश्र चिन्हस्तु यो देशः सहि साधारणः स्मृतः॥ जस्मिन्देशे यदुदकं तत्तु साधारणं स्मृतम् ॥ २५॥ जाङ्गलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्त नुत्॥ वन्हि कृत्कफ कृत्पथ्यं विकारान् हरते बहून् ॥ २६॥

भा० और मिले हुवे लक्षण वाला जो देश है वोह साधारण कहाहै ॥ उस देश में जोजल होता है वोह साधारण कहाहै ॥२५॥ जाङ्गल जल रूखा नमकीन हलका पित्त नाशक ॥ अग्नि को करनें वाला कफ का करने वाला हृद्य और बहुत से विकारों को हरता है ॥ २६ ॥

आनूपं वार्य्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु ॥ वन्हिकृत्कफ कृत् हृद्यं विकारान् हरते बहून् ॥ २७ ॥ साधारण न्तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु ॥ तर्पणं रोचनं तृष्णा दाह दोष त्रय मशुत् ॥ २८ ॥

अथ भौमानामेव नादे यादीनां लक्षणानि गुणा श्च ॥

भा० अनूप जल अभियन्दि होताहै और मधुर चिकना घन भारी होताहै ॥ अग्नि को करनें वाला कफ़ कारी हृद्य तथा बहुत से रोगों को हरता है ॥२७॥ साधारण जल मधुर दीपन शीतल हलका ॥ तर्पण रोचन होताहै और तृषा दाह तीनों दोष इनका नाशक है ॥ २८॥ अनन्तर भूमि के हीनदियों के जलों का लक्षण और गुण ॥

तत्र नादेयस्य लक्षणं गुणा श्च ॥

नद्या नदस्य वा नीरं नादेय मिति कीर्त्तितम् ॥ नादेयमुदकं रूक्षं वातलं लघु दीप नम् ॥ २९ ॥ अन भिष्यन्दि विशदं कटुकं कफ पित्त नुत् ॥ नद्यः शीघ्र वहाः लघ्व्यः सर्वा याश्चा मलो दकाः ॥ ३० ॥ गुर्व्यः शैवल सञ्छन्ना मन्दगाः कलु षाश्च याः ॥

भा० नदका अथवा नदी का जोजल है उसको ना देय ऐसा कहाहै ॥नादेय जल रूखा वात को करनें वाला हलका दीपन ॥ २९॥ अन भिष्यन्दि विशद कटुक कफ पित्त का नाशक होताहै ॥ शीघ्र बहनें वाली और स्वच्छ उदक वाली सब नदियां हलकी होताहै ॥३०॥ सेवार में ढकी मन्द चलनें वाली औरजो काली हो-

तीहै वोह भारी है ॥ हिमवत्प्रभवाः पथ्यो नद्यः प्रमाद्द नयाथसः ॥३१

॥ गङ्गा शत द्रुसरयू यमु नाद्या गुणो त्तमाः ॥ सह्यःशैल भवा नद्यो वेणा गोदावरी मुखाः ॥ ३२॥ कुर्वन्ति प्रायः पः कुष्ठ मीष द्वात कफा वहाः ॥ नदी सरस्तड़ागस्थे कूप प्रस्रव णादिजे ॥ ३३॥ उदके देश भेदेन गुणान् दोषाश्च लक्षयेत् ॥ अथौ द्भिदस्य लक्षणं गुणा श्च ।

विदार्य भूमिं निम्नाय महत्या धारया स्रवेत् ॥ तत्तोऽ य मौद्भिदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥ ३४॥ औद्भि दं वारि पित्त घ्नम विदाह्यति शीत लम् ॥ प्रीणनं म धुरं वल्यमीष द्वात करं लघु ॥ ३५॥

नैर्झरस्य लक्षणं गुणा श्च ।

भा० हिमालयसे निकली और पाषाण से हत जल वाली नदिया हित है ॥ ३१
गङ्गा शत द्रुज सरयू यमुना आदि गुण में उत्तम है ॥ सह्य पहाड़ से निकली वेणा गोदावरी गु रव है ॥ ३२॥ प्रायः कुष्ट को करती है और कुछ वात कफ को भी करती है ॥ नदी सरोवर तालाव इनका और कूवा झरना आदि के ॥ ३३॥ जलोंमें देश भेद से गुण दोषों को जानें। अनन्तर औद्भिद का लक्षण और गुण। भूमि को दाल वा रदन के वड़ी धारसे जो जल गिरता है ॥ उस जल को औद्भिद ऐसा महर्षि योंने कहा है ॥ ३४॥ औद्भिद जलज पित्त नाशक अविदाहि अति शीतल होता है ॥ और प्रीणन मधुर वलके हित थोड़ा वात को करनें वाला हलका होता है ॥ ३५॥

अनन्तर झरनेंके जलका लक्षण और गुण कहते हैं ॥

शैल सानु स्रव द्वारि प्रवाहे निर्झरो झरः ॥ सतु प्रस्र वण श्चापि तत्रत्यं नैर्झरं जलम् ॥ ३६॥

नैर्झरं रुचि कृत्नीरं कफघ्नं दीपनं लघु ॥ मधुरं कटुका कञ्च वातं स्यादपि पित्तलम् ॥ ३७ ॥

अथ सारसस्य लक्षणं गुणाश्च ।

नद्याः शैला दि रुद्धाया यत्र संस्नुत्य तिष्ठति ॥ तत्सरो जल सञ्छन्नं तदम्भः सारसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥ सारसं सलिलं वल्यं तृष्णाघ्नं मधुरं लघुः ॥ रोच नन्तु वरं रूक्षं वद्ध मूत्र मलं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

अथ ताडागस्य लक्षणं गुणाश्च ।

भा० पहाडी तराई से झिरनें वाला जल प्रवाह से जो आताहै उसको निर्झर ॥ और प्रस्रवण भी कहेते है । उसमें का पानी नैर्झर है ॥ ३६ ॥ झरनें का पानी रुचि को करनें वाला कफ नाशक दीपन हलका ॥ मधुर पाक में कटु वात तथा पित्त को करनें वालाहै ॥ ३७ ॥ अनन्तर सारस का लक्षण और गुण । पहाड़ आदि से रुकी हुई नदी का जल जहां पर बहे कर ठहरता है ॥ वोह आच्छादित सरो जल है उसका पानी सारस कहाहै ॥ ३८ ॥ सारस जल बलदे। हित तृषा नाशक मधुर हलका ॥ रोच नक सैला रूखा मल मूत्र को रोकने वाला कहा है ॥ ३९ ॥ अनन्तर तालाव के जल का लक्षण और गुण ।

प्रशस्त भूमि भागस्थो वहु संवत्सरो षितः ॥ जला शय स्तडागः स्यात्ताडागं तज्जलं स्मृतम् ॥ ४० ॥ ताडाग मुदकं स्वादु कषायं कटु पाकि च ॥ वातलं वद्ध विण् मूत्र मसृक् पित्त कफा पहम् ॥ ४१ ॥

वाप्य लक्षणं गुणाश्च ॥

भा० प्रशस्त भूमि भाग का बहुत बरस का पुराना जला शय ॥ तालाव होता है उसका पानी ताड़ाग कहाहै ॥ ४० ॥ तालाव का पानी मधुर कसैला पाक में

कटु॥ वातल मल मूत्र को बान्धनें वाला॥ और रक्तपित्त कफ़ इन का नाशक है॥४१॥ अनन्तर वावडी का लक्षण और गुण॥

पाषाणै रिष्ट का भिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः॥ ससो पाना भवेद्वापी तज्जलं वाप्य मुच्यते॥४२॥ वाप्यं वारि यदि क्षारं पित्त कृत् कफ वात हृत्॥ तदेव मिष्टं कफ कृत् वात पित्त हरं भवेत्॥४३॥

अथ कौपस्य लक्षणं गुणा श्च।

भूमौ खातो ऽल्प विस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः॥ बद्धोऽबद्धः स कूपं स्यात्त दम्भः कौप मुच्यते॥४४॥ कौपं पयो यदि स्वादु त्रिदोषघ्नं हितं लघु॥ तत् क्षारं कफ वातघ्नं दीपनं पित्त कृत्परम्॥४५॥

भा० पथ्थर अथवा इटोंसे बहुत बड़ा बनाया हुवा कूवा॥ सीढियोंके सहित वोह वावडी हे और उसके जलको वाप्य कहेते हैं॥४२॥ वावडी का पानी यदि खारी होवे तो वोह पित्त करनें वाला कफ़ वात का नाशक होताहे॥ वोही मीठा कफ़ करनें वाला वात पित्त का नाशक होताहे॥४३॥ अनन्तर कुवेके जलका लक्षण और गुण। भूमि में थोड़ा चौडा गहेरा गोल खोदा हुवा॥ वन्धा वा वे वन्धा हुवा वो कूप है उस्का जल कौप कहाहे॥४४॥ कूवें का पानी यदि मधुर होतो त्रिदोष नाशक हलका हित होताहै॥ और वोह खारी कफ वात का नाशक दीपन अत्यन्त पित्त करनें वाला है॥४५॥

अथ चौञ्ज्यस्य लक्षणं गुणा श्च।

शिला कीर्णं स्वयं श्वभ्रं नीलाञ्जन समोदकम्॥ लता वितान संछन्नं चौञ्ज्या मित्य भिधीयते॥४६॥ अश्मादि भिर बद्धं यत्तु चौञ्ज्य मिति वा परे॥

तत्रत्य मुदकं चौञ्ज्यं मुनिभिस्तदुदाहृतम् ॥ ४७॥
चौञ्ज्यं वन्हि करं नीरं रूक्षं कफ हरं लघु ॥ मधुरं पित्त
नुद्रुच्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

अथ पल्वलस्य लक्षणं गुणाश्च

अल्पं सरः पल्वलं स्याद्यत्र चन्द्र र्क्षगे रवौ ॥ (क)
रवौ सूर्य्ये चन्द्र क्षगे कर्करा शिस्थे श्रावणे मासि इति
यावत् ।१। चन्द्र र्क्षं मृग शिर स्तत्र गे मुख्य पाठः ।
न तिष्ठन्ति जलं किञ्चि त्तत्रत्यं वारि पाल्वलम् ॥ पा
ल्वलं वार्य्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु त्रिदोष कृत् ॥४९॥

अथ चिकिरस्य जलस्य लक्षणं गुणाश्च ।

भा० अनन्तर चौञ्ज का लक्षण और गुण । शिला औंसे आकीर्ण खुद गढा
हुवा नीला सुर में के समान उदक ॥ लताओं के फैलाव से ढका हुवा चौञ्ज्य ।
ऐसा कहाहै ॥ ४६ ॥ और आचार्य पथ्थर आदि से बन्धे हुवे को चौञ्ज्य
ऐसा कहेते है ॥ उसमें के जल को चौञ्ज ऐसा मुनियोंने कहाहै ॥ ४७॥
चौञ्ज्य जल अग्नि को करनें वाला रूखा कफ़ नाशक हलका ॥ मधुर पित्त नाश
क रुचि को करनें वाला पाचन विशद कहाहै ॥ ४८ ॥ अनन्तर पल्वल का ।
लक्षण और गुण ॥ श्रावण मासमें छोटी गढई ॥ जो होती है उसकी पल्वल क
हतेहैं ॥ (क। कर्क राशि स्थसूर्य्य में अर्थात् श्रावण मासमें । चन्द्रर्क्ष अ
र्थात् मृग शिर उसमें हुवा येह मुख्य पाठ है । नही रहे ता जल कुछ भी उसीं
का जल पाल्वल है ॥ गढई का जल अभिष्यन्दि भारी मधुर त्रिदोष करनें वा
ला है ॥ ४९ ॥ अनन्तर चिकिर के जल का लक्षण और गुण ॥

नद्यादि निकटे भूमिर्या भवेद्वालुकामयी ॥ उद्धाव्यते
ततो यत्तु तज्जलं चिकिरं विदुः ॥ ५० ॥

चिकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दोषं लघु च स्मृतम् ॥ तुवरं स्वादु पित्तघ्नं क्षारं नाति तलं मनाक् ॥५१॥

अथ कैदारस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

केदारं क्षेत्र मुद्दिष्टं केदारं तज्जलं स्मृतम् ॥ कैदारं वार्य्यभिष्यन्दि मधुरं गुरु दोष कृत् ॥ ५२॥

अथ वृष्टि जलस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

भा० नदी आदि के निकट जो रेत की जमीन होतीहै ॥ उस्से जो जल निकलताहै उस जलको चिकिर कहेते है ॥५०॥ चिकिर शीतल स्वच्छ निर्दोष हलका कहाहै ॥ कसेला मधुर पित्त नाशक खारी और वोह थोड़ा पित्त को करनें वाला है ॥५१॥ अनन्तर कैदार का लक्षण और गुण । केदार खेत को कहते है और उसमें के जलको कैदार कहाहै ॥ कैदार जल अभिष्यन्दि मधुर भारी दोष को करनें वाला है ॥ ५२॥ अनन्तर वारिश के जल का लक्षण और गुण ॥

वार्षिकं नद हृ र्दृष्टं भूमिस्थ महितं जलम् ॥ त्रिरात्र मुषितं तत्तु प्रसन्न ममृ तो य मम् ॥५३॥

अथ हेमन्तादि काल विरोधे विहित जल विशेषः ॥

हेमन्ते सार सन्तोयं ताड़ागं वा हितं स्मृतम् ॥ हेमन्ते विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥ ५४ ॥ वसन्त ग्रीष्म योः कौपं वाप्यं वा नैर्झरं जलम् ॥ नादेयं वारि नादेयं वसन्त ग्रीष्म यो र्बुधैः ॥५५॥

भा० दिनका वरसा हुवा जमीन का जो जल है वोह वार्षिक है वोह अहित होता है ॥और तीन दिन का रक्खा हुवा वोह स्वच्छ अमृत के समान होता है ॥ ५३॥ अनन्तर हेमन्तादि काल विरोध में विहित जल विशेष को कहेते हैं ॥ हेमन्त में सारस जल अथवा तालाव का हित कहाहै ॥ हेमन्त में कहा हुवा जल

शिशिर मेंभी प्रशस्त है ॥ ५४॥ वसन्त ग्रीष्म में कुवें का बावड़ी का भरने का जल ॥ वसन्त और ग्रीष्म काल में नदी का जल न देवे ॥ ५५॥

विष वद्व नद्द क्षाराां पत्रा द्यै दूषितं यतः॥ औद्भिदं वा नारिक्षं वा कौपं वा प्रावृषि स्मृतम् ॥ ५६ ॥ शस्तं शरदि नादेयं नीरमं शूदकं परम् ॥ दिवा रवि करैं र्जुष्टं निशि शीत करां शुभिः॥ ५७॥ ज्ञेय मं शूद कन्नाम स्निग्धं दोष त्रया पहम् ॥ अन भिष्यन्दि निर्दोष मान्त रीक्षं जलो प मम् ॥ ५८॥ बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधा समम् ॥　　(कं)

भा० क्योंकि विष वाले वन वृक्षों के पत्र आदि से दूषित होताहै ॥ औद्भिद आन्तरिक्ष कौप येह जल प्रावृट काल में कहेहैं ॥ ५६॥ शरद में नदीका और अंशुदक जल परम प्रशस्त है ।दिन में सूर्य्य की किरणों से जुष्ट और रात में चन्द्र की किरणों से सेवित ॥ ५७॥ को अंशुदक नाम जानना चाहिये वोह चिकना दोषत्रय का नाशक है ॥ और अन भिष्यन्दि दोष रहित आन्त रिक्ष जलके समान होताहै ॥ ५८॥ बल के हित रसायन मेध्य शीतल हल का अमृत के समान होताहै ॥　(क)

रवि करैं र्जुष्ट मित्युक्ते दिवापदं समस्त दिव स प्राप्त्यर्थं शीत करांशु भिर्जुष्ट मित्यु क्ते निशी थि पदं समस्त रात्रि प्राप्त्य र्थम् अन्य च्च शरदि, स्वच्छ मुद याद गस्त्य स्याखिलं हितम् ॥　वृद्ध सुश्रु तस्तु ॥

पौषे वारि सरो जातं माघे तत्तु तड़ा गजम् ॥ फाल्गुने कूप सम्भूतं चैत्रे चौंड्या हितं मतम् ॥ ५९॥

भा० सूर्य्य की किरणोंसे जुष्ट इस प्रकार के कहेनें से दिवा पद समस्त दिवस

की
प्राप्ति के अर्थ है ॥ चन्द्र किरणों से जुष्ट इस प्रकार के कहेनें से रात्रि पद समस्त रात्रि प्राप्त्यर्थ है और भी। शरद में, स्वच्छ अगस्ति के उदय से संपूर्ण जल हित है॥ वृद्ध सुश्रुत नें कहा है। पौष में सरोवर का पानी माघ में तालाव का पानी॥ फाल्गुण में कुंवें का पानी चैत्र में जोहड का पानी हित कहा है ॥ ५९॥

वैशाखे नैर्झरं नीरं ज्येष्ठे शस्तन्तयो द्भिदम्॥ आषा ढे शस्यते कौपं श्रावणे दिव्य मेव च ॥ ६०॥ भाद्रे कौप्यं पयः शस्तम् आश्विने चौड्य मेवच ॥ कार्त्तिके मार्ग शीर्षे च जल मात्रं प्रशस्यते ॥ ६१ ॥

जल ग्रहण कालः। भौमा नामम्भ साम्प्रायो ग्रहणं प्रा त रिष्यते ॥ शीतत्वं निर्मल त्वञ्च यतस्ते षां मतो गुणाः॥ ६२॥ अथ जलस्य पान विधिः ॥

भा० वैशाख में झरनें का जल और ज्येष्ट में औद्भिद प्रशस्त है ॥ आषाढ में कुंवें का और श्रावण में आन्तरिक्ष प्रशस्त है ॥ ६०॥ भाद्र पद में कुंवें का जल। प्रशस्त होता है आश्विन में चौड्य॥ और कार्तिक मार्ग शीर्ष में जल मात्र प्रशस्त है॥ ६१॥ जल ग्रहण का काल ॥ प्रायः भूमि के जल का ग्रहण प्रातःकाल प्रशस्त है॥ क्योंकि शीतल ता और निर्मल ता उनका गुण है इस वास्ते॥ ६२॥ अनन्तर जल पान की विधि ॥

अत्यम्बु पाना न्न विपच्यते ऽन्नं निरम्बु पानाच्च स एव दोषः॥ तस्मान्नरो वह्नि विवर्द्धनाय मुहुर्मुहु र्वारि पिबेद भूरि॥ ६३॥ अथ शीतल जल पान स्य विषयाः॥

मूर्च्छा पित्तोष्ण दाहेषु विषे रक्ते मदा त्यये ॥ श्रमे भ्रमे विदग्धे ऽन्ने तमके वमथौ तथा ॥ ६४॥ ऊर्द्धगे रक्त पित्ते च शीत मम्बु प्रशस्यते ॥

भा० अधिक जलके पीनें से अन्न परि पाक नहीं होता औरजलके पीनें से वो। ही दोष होताहै ॥ इस वास्ते मनुष्य अग्नि वृद्धि के अर्थ जल को वार वार पीवे॥ ६३॥ अनन्तर-शीतल जल पानका विषय। मूर्च्छा पित्त उष्णा दाह में। और विष रक्त मदात्यय॥ श्रम भ्रम विदग्ध अन्न तमक में तथा वमन में॥ ६४॥ ऊर्द्ध्वगरक्त पित्त में भी शीतल जल प्रशस्त है॥

अथ तन्निषेधः। पार्श्व शूले प्रति श्याये वात रोगे गलग्रहे॥ आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नव ज्वरे॥ ६५॥ अरुचि-ग्रहणी-गुल्म श्वास-कासेषु विद्रधौ॥ हिक्कायां स्नेह पाने च शीताम्बु परि वर्जयेत्॥ ६६॥

अथाल्पजल पानस्य विषयः

भा० अनन्तर उसका निषेध। पार्श्व शूल में प्रति श्याय में वात रोग में गलग्रह में॥ आध्मान मेंस्तिमित कोष्ठ में सद्यः शुद्धि में नव ज्वर में॥ ६५॥ और अरुचि संग्रहणी वाय गोला श्वास कास इनमें विद्रधि में हिचकी में स्नेह पान में भी शीतल जल त्याग देवे॥ ६६॥ अनन्तर अल्पजल पान का विषय॥

अरोचके प्रति श्याये मन्देऽग्नौ श्वयथौ क्षये॥ मुख प्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रा मये ज्वरे॥ ६७॥ व्रणे च मधु मेहे च पिबेत्पानीय मल्प कम्॥

जल पानस्यावश्यकता॥

जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वन्तु तन्मयम्॥ अतोऽत्यन्त निषेधेन कदा चिद्वारि वार्य्यते॥ ६८॥ हारी तश्च। तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राण विनाशिनी॥

भा० अरुचि प्रति श्याय मन्दाग्नि सूजन क्षय॥ मुख प्रसेक उदर रोग कुष्ठ नेत्र रोग ज्वर॥ ६७॥ व्रण में मधुप्रमेह मेंभी थोड़ा जल पीवे॥ जल पानकी अवश्यक

ना ॥जल प्राणियोंका प्राण है और संपूर्ण जगत तन्मय है ॥ इस वास्ते अत्य न्त निषेध में भी जल कदाचित भी विलकुल मना नहीहै ॥ ६८॥ हारीतने कहाहै ॥ वडी तृषा घोर सद्यः प्राण को नाश करनें वाली है ॥

तस्मा द्देयं तृषा र्त्ताय पानीयं प्राण धार णम् ॥ ६९ ॥
तृषितो मोह मायाति मोहा त्प्राणान् विमुञ्चति ॥ अ
तः सर्वा स्ववस्था सुन क्वचि द्वारि वर्ज येत् ॥ ७० ॥
अथ प्रशस्तं जलम् । अगन्ध मव्यक्त रसं सुशीतं
तर्ष नाश नम् ॥ अच्छं लघु च हृद्य ञ्च तोयं गुण व
दुच्यते ॥ ७१ ॥ अथ निन्दि त जलम् ॥
पिच्छिलं क्रमिलं क्लिन्नं पर्ण शैवाल कर्दमैः ॥ विव
र्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं निन्दितं जलम् ॥ ७२ ॥ कलु
षं छन्नं मम्भोज पर्ण नीली तृणा दिभिः ॥

भा० इस वास्ते तृषा के पीड़ित के अर्थ जल प्राण धारण है ॥ ६९॥ प्यासामोहको प्राप्त होताहै मोहसे प्राणों को छोड़देताहै ॥ इस वास्ते सब अवस्था में कहीं पर जल को न त्याग देवे ॥ ७०॥ अनन्तर प्रशस्त जल ॥ गन्ध रहित अव्यक्त रस अच्छा शीतल तृषाका नाशक ॥ स्वच्छ हलका और हृद्य ऐसा जल अच्छा कहा है ॥ ७१॥ अनन्तर निन्दित जल ॥ पिच्छिल कृमि युक्त और पत्ता से वालकी चड़ इनसे सड़ा हुवा ॥ विवर्ण विरस गदला दुर्गन्ध युक्त रक्खा हुआ जल ॥ ७२ काला और कमल पत्ते नील तृण आदि योंसे ढका हुवा ॥

दुः स्पर्श नम संस्पृष्टं सौर चान्द्र मरी चिभिः ॥ ७३ ॥
अनार्त्तवं वार्षिकन्तु प्रथमं तच्च भूमि गम् ॥ व्यापन्नं प
रि हर्त्तव्यं सर्व दोष प्रको पणम् ॥ ७४ ॥ तत् कुर्य्यात्
स्नान पानाभ्यां तृष्णा ध्मान चिर ज्वरान् ॥

भा० दुःस्पर्श और सूर्य तथा चान्द की किरणों से स्पर्श किया गया ॥७३॥ दे ऋतु का वारिश का पहिला और वोह ज़मीन परका ॥ व्यापन्न जल त्यागने योग्य सब दोषों को प्रकोप करने वाला है ॥७४॥ वोह स्नान और पान से तृषा आध्मान पुराना ज्वर इन को करता है ॥

कासाग्नि मान्द्याभिष्यन्दक एडु गराडादिकं तथा ॥७५

अथ दुष्ट जलस्य निर्दोषी करणो पायः ॥ ॥

निन्दितञ्चापि पानीयं क्वथितं सूर्य्य तापितम् ॥ सुवर्ण रजतं लोहं पाषाणं सिकता मपि ॥७६॥ भृशं सन्ताप्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा ॥ कर्पूर जाति पुन्नाग पाटलादि सुवासितम् ॥७७॥ शुचि सान्द्र पट आदि क्षुद्र जन्तु विवर्जितम् ॥

भा० और कास अग्नि मान्द्य अभिष्यन्द कंडू तथा गंडादिक इनको करता है ॥७५॥ अनन्तर दुष्ट जल को निर्दोष करने का उपाय ॥ निन्दित भी जल औटाया हुवा और सूर्य्य के द्वारा गरम हुवा ॥ तथा सोना चान्दि लोहा पथ्थर और सिकता भी इनको ॥७६॥ खूब गरम करके सात वार बुझाकर तथा सिद्ध किया हुवा और कपूर चमेली सुफेद कमल और पाटला आदि से सुवासित ॥७७॥ पवित्र सान्द्र छना हुवा क्षुद्र जन्तु से रहित ॥

स्वच्छं कनक मुक्ता द्यैः शुद्धं स्याद्दोष वर्जितम् ॥७८॥ पर्णमूल बिस ग्रन्थि मुक्ता कनक शैवलैः ॥ गोमेदेन च वस्त्रेण कुर्य्याद म्बु प्रसादनम् ॥७९॥

अथ पीतस्य जलस्य पाक विधिः।

पीतं जलं जीर्य्यति यामयुग्मा त्तू यामैक मात्रात्शृत शीत स्वच्छ ॥ तदर्द्ध मात्रेण शृतं कदुष्णं पयः प्रपाके त्व

य एव कालाः ॥ ८०॥

इति श्री भावप्रकाशे वारिवर्गः।

भा० स्वच्छ सोना मोती आदिसे शुद्ध दोष वर्जित होताहे ॥ पन्ने मूल विय गांठ मोती सोना सेवाल इनसे॥ और गोमेद तथा वस्त्र से जलको स्वच्छ करे॥७९॥ अनन्तर पीये हुवे जल की पाक विधि। पीया हुवा जल दो पहर में पकताहे और औटाके शीतल किया हुवा एक पहर में पचताहे ॥ उसके ऊपर औटे मात्र से जल कटु उष्ण होताहै जल के पाक में तीन ही कालहे ॥८०॥

इति भावप्रकाशे जल वर्गः ॥ ॥

अथ दुग्ध वर्गः।

दुग्धस्य नाम गुणाः।

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं बालजीवन मित्यपि॥ दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वात पित्त हरं सरम्॥१॥ सद्यः शुक्र करं शीतं सात्म्यं सर्वशरीरिणाम्॥ जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजि करं परम्॥२॥

भा० अनन्तर दुग्धवर्गः ॥ दुग्धके नाम और गुण ॥ दुग्ध क्षीर पयः स्तन्य बाल जीवन येह दूध के नाम हे ॥ दूध मधुर चिकना वात पित्त का नाशक सर ॥१॥ तत्काल शुक्र को करने वाला शीतल सब शरीरियोंको सात्म्य होताहे॥जीवन पुष्ट बलको करने वाला परम वाजि कर ॥ २॥

वयः स्थापन मायुष्यं सन्धि कारि रसायनम्॥ विरेकवान्ति वस्तीनां तुल्य मोजो विवर्द्धनम्॥३॥ जीर्ण ज्वरे मनो रोगे शोष मूर्च्छा भ्रमे षुच॥

ग्रहण्यां पाण्डु रोगे च दाहे तृषि हृदा मये ॥४॥ शूलो
दावर्त्त गुल्मे षु वस्ति रोगे गुदाङ् कुरे ॥ रक्त पित्ते ऽति
सारे च योनि रोगे श्रमे क्लमे ॥५॥ गर्भ स्रावे च सततं
हितं मुनि वरैः स्मृतम् ॥ बाल वृद्ध क्षत क्षीणाः क्षुद्
व्यवाय कृशाश्च ये ॥ ६॥ तेभ्यः सदा ति पथितं हित
मेत दुदा हृतम् ॥ अथ गोदुग्ध स्य गुणाः ॥

भा० वयःस्थाप न आयुको करनें वाला सन्धि कारि रसायन है ॥ और विरेक वमन व स्ति इनको तुल्य ओजको बढ़ानें वाला ॥३॥ जीर्ण ज्वर मान सिक रोग शोष मूर्च्छा भ्रम इनमें भी ॥ और ग्रहणी पांडु रोग दाह और तृषा इनमें तथा हृद रोगमें ॥४॥ शूल वदावर्त्त गुल्म इनमें वस्ति रोगमें गुदा ङ् कुरमें रक्त पित्त में अति सार में योनि रोगमें श्रममें क्लम में ॥५॥ गर्भ स्राव में भी हितहै ए सा मुनि वरों नें कहाहै ॥ बाल वृद्ध क्षत क्षीण क्षुधा मैथुन इनसे जो कृश हैं ॥६॥ उनको सदा अति पथ्य करकेयेह हित कहाहै ॥ अनन्तर गो दुग्ध का गुण ॥

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रस पाकयोः ॥ शीतलं स्तन्य कृ
त् स्निग्धं वात पित्ता स्त्रना शनम् ॥७॥ दोष धातु मल स्रो
तः किञ्चित् क्लेद करं गुरु ॥ ज्वरा समस्त रोगाणां शा
न्ति कृत् सेवि नां सदा ॥८॥ वर्ण विशेषे गुण विशेषाः ॥
कृष्णा या गोर्भवं दुग्धं वात हारि गुणा धि कम् ॥ पीता
या हरते पित्तं तथा वात हरं भवेत् ॥९॥ श्लेष्मलं गुरु ।
शुक्लाया रक्त चित्रा च वात हृत् ॥

भा० गाय का दूध विशेष करके रस पाक में मधुर कहाहै ॥ और शीतल दुग्ध को करनें वाला चिकना वात रक्त पित्त इनका नाशक है ॥७॥ दोष धातु मलास्रोत किंचित क्लेद को करनें वाला भारी ॥ सदा सेवन करनें वालों केज्वर और रस

स्त रोगों की शान्ति करनें वाला है ॥ ८॥ अनन्तर वर्ण विशेष में गुण विशेष को कहेते है ॥ काली गाय का दूध वात नाशक गुण में अधिक है ॥ पीली का दूध पित्त को नाश करता है तथा वात हरभी है ॥९॥ सुफेद गाय का दूध कफकारि भारी और लाल चित कबरी का भीवात नाशक होताहै ॥

अथ धेनो विवत्सा याश्च गुणाः।

बालवत्स विवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोष कृत् ॥
वकेनीगो गुणाः। वष्क यिण्या स्त्रि दो षघ्नं तर्पणं बल कृत् पयः ॥ अथ देश विशेषेण गुण विशेषः ॥
जाङ्गलो नूपशैलेषु चरन्तीनां यथो त्तरम् ॥ पयो गुरु तरं स्नेहो यथा हारं प्रवर्त्तते ॥ १०॥

अथा हार विशेषे गुणविशेषः ॥

भा० वेवच्चे वाली गायके दूध का गुण ॥ छोटे बच्चे वाली और वे बच्चे वाली गायों का दूध त्रिदोष को करनें वाला है ॥ वकेनी गायके दूधका गुण ॥ वकेनी का त्रिदोष नाशक तर्पण वल को करनें वाला दूध होताहै ॥ अनन्तर देश विशेष करके गुण विशेष को कहेते है ॥ जाङ्गल आनूप पहाड़ इनमें चरनें वालियें का दूध यथो त्तर ॥ बहुतभारी होता है और घृत आहार के अनुसार निकलताहै ॥ १०॥ अनन्तर आहार विशेष में गुण विशेष ॥

स्वल्पान्न भक्षणा ज्जातं क्षीरं गुरु कफ प्रदम् ॥ तत्तु बल्यं परं वृष्यं स्वस्थानां गुण दाय कम् ॥ ११ ॥ पला- ल तृण कार्पासि वीज जातं गुणै र्हितम् ॥

अथ माहिषी दुग्धस्य गुणाः।

माहिषं मधुरङ्ग व्यात् स्निग्धं शुक्र करं गुरु ॥ निद्रा करम भिष्यन्दि क्षुधा धिक्य करं हिमम् ॥ १२॥

भा० स्वल्प अन्न भक्षण से हुवा क्षीरा भारी कफ़ को करनें वाला होताहे ॥ वीह वल के हित अत्यन्त शुक्र को करनें वाला और स्वस्थों को गुण देने वाला है ॥ ११॥ खल घास कपास के बीज इनके खानें से हुवा दूध गुण करके हित होताहे ॥ अनन्तर भैंस के दूधका गुण । भैंस का दूध मधुर गायके से चिकना शुक्र को करनें वाला भारी ॥ निद्राको करनें वाला अभिष्यन्दि अधिक क्षुधाको करनें वाला शीतल ॥ १२॥

छागी दुग्धस्य गुणाः।

छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु ॥ रक्त पित्तातिसारघ्नं क्षय कास ज्वरा पहम् ॥ १३॥ अजानामल्प काय त्वात् कटु तिक्त निषेवणात् ॥ स्तोकाम्बु पाना च्छा भात् सर्व रोगा पहं पयः ॥१४॥

मृगादि दुग्धस्य गुणाः

मृगीणां जाङ्गलोत्थानाम् अजा क्षीर गुणं पयः ॥ भेडी दुग्ध गुणाः । आविकं लवणं स्वादु स्निग्धोष्णं ग्वाश्मरी भरगुत् ॥ १५॥ अहृद्यं तर्पणं वृष्यं शुक्र पित्त कफ़ प्रदम् ॥ गुरु कासे १ निलोद् भूते केवले चा निले वरम् ॥ १६॥ अथ घोड़ी दुग्धं ॥

भा० अनन्तर बकरी के दूधका गुण ॥ बकरी का दूध कसेला मधुर शीतल काबिज तथा हलका होताहे ॥ और रक्त पित्त अतीसार इनका नाशक क्षय कास ज्वर इनका नाशक हे ॥१३॥ बकरियो का छोटा शरीर होनें से और कटु तिक्त के सेवन से ॥ थोडा जल पीने से कसरत से उसका दूध सर्व रोग का नाशक हे ॥१४॥ अनन्तर मृग आदियों के दुग्ध का गुण ॥ जंगल के मृगो का दूध बकरी के दूध के समान गुणमें होताहे ॥ अनन्तर भेडी के दूधका गुण ॥ भेडी का दूध नमकीन मधुर चिकना गरम और पथरी का नाशक हे ॥१५॥ अहृद्य तर्पण पुष्ट शुक्र पित्त कफ इनको करनें वाला ॥ भारी होताहे और वात

और
के कास में केवल वात मे श्रेष्ठ है॥ १६॥ अनन्तर घोड़ी का दूध॥

रूक्षोष्णं वडवा क्षीरं वल्यं शोषा निलापहम्॥
अम्लं पटु लघु स्वादु सर्व मेक शफं तथा॥ १७॥
अथ उष्ट्री दुग्धं। औष्ट्रं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीपनं तथा॥ कृमि कुष्ठ कफा नाह शोथो दर हरं सरम्॥ १८॥ हस्तिनी दुग्धं॥ वृंहणं हस्तिनी दुग्धं मधुरन्तुवरं गुरु॥ वृष्यं वल्यं हिमं स्निग्धं चक्षुष्यं स्थिरता करम्॥ १९॥ अथ नारी दुग्धं॥

भा० घोड़ी का दूध रूखा गरम बलके हित शोष वात का नाशक॥ खट्टा लवण हलका मधुर वैसेही सब एक शफ वालों का होताहै॥१७॥ अनन्तर ऊंटनी का दूध॥ ऊंटनी का दूध हलका मधुर लवण तथा दीपन॥ और कृमि कुष्ठ कफ़ अफारा सूजन उदर रोग इनका नाशक सर होताहै॥१८॥ अनन्तर हथनी का दूध॥ हथनी का दूध मधुर कसैला भारी॥ शुक्र को करनें वाला बलके हित शीतल चिकना नेत्र के हित स्थिरता को करनें वाला होताहै॥१९॥ अनन्तर स्त्री दुग्ध॥

नार्य्या लघु पयः शीतं दीपनं वात पित्त जित्॥ चक्षुः शूलाभि घातघ्नं नस्या श्च्योतन यो र्वरम्॥ २०॥

अथा धारोष्णा दि गुणाः

धारोष्णं गोपयो वल्यं लघु शीतं सुधा समम्॥ दीपनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धारा शिशिरं त्यजेत्॥ २१॥

भा० स्त्री का दूध हलका शीतल दीपन वात पित्त को जीतनें वाला॥ नेत्र शूल अभि घात इनका नाशक और नस्य आश्च्योतन में श्रेष्ठ है॥२०॥ अनन्तर धारोष्ण आदिका गुण॥ धारोष्ण गायका दूध बलके हित हलका शीतल

अमृत के समान होताहै ॥ और दीपन त्रिदोष नाशको होताहै ॥ और दो ह धारा शिशिर न सेवन करै ॥ २१ ॥

धारोष्णं शस्यते गव्यं धारा शीतन्तु माहिषम् ॥ शृतो ष्णमाविकं पथ्यं शृत शीत मजा पयः ॥ २२ ॥ आ मं क्षीर मभि ष्यन्दि गुरु श्लेष्मा म वर्द्धनम् ॥ ज्ञेयं सर्व मपथ्यन्तु गव्य माहिष वर्जितम् ॥ २३ ॥ नारी क्षी रन्त्वाम मेव हितं न तु शृतं हितम् ॥ शृतोष्णं कफ वातघ्नं शृतं शीतन्तु पित्त नुत् ॥ २४ ॥ अर्द्धो दकं क्षीर शिष्ट मामा लघु तरं पयः ॥

भा० धारोष्ण गायका हित होताहै और धारा शीत भैंस का अच्छा होताहै ॥ औटाया हुवा गरम भेड़ी का और औटाया हुवा शीतल बकरी का दूध हित हो ताहै ॥ २२ ॥ कच्चा दूध अभिष्यन्दि भारी कफ आम को बढ़ानें वाला होताहै ॥ गाय और भैंस का दूध छोडके सब अहित है ॥ २३ ॥ स्त्री का दूध कच्चा ही हितहै नाकि औटाया हुवा हितहै ॥ औटा गरम कफ वात का नाशक और औटा शीतल पित्त नाशक है ॥ २४ ॥ आधा पानी मिला के बाकी बचा हुवा दूध कच्चे से बहुत हलका होताहै ॥

जलेन रहितं दुग्ध मति पक्वं यथा यथा ॥ २५ ॥
तथातथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बल विवर्द्धनम् ॥

अथ पीयूष किलाट क्षीर शाकः तक्र पिण्ड मोर टानां लक्षणानि गुणा श्च ॥

क्षीरं तत्काल सूताया घनवे यूष मुच्यते ॥
पेयूषं पेवस इति लोके ।
नष्ट दुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाट कः ।

किलाटकः गिजिरी इति लोके ।

अपक्व मेव यन्नष्टं क्षीर शाकं हि तत्पयः ।

क्षीर शाकं तुथि भरा इति लोके ।

दध्ना तक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा ॥ द्रव भावेन सहितं तक्र पिण्डः स उच्यते ॥ २६ ॥ नष्ट दुग्धं भवन्नीरं मोरटञ्जेज्जटोऽब्रवीत् ॥

भा० जलसे रहित दूध जैसे २ वहुत औंटाया हुवा ॥२५॥ वैसे २ भारी चिकना शुक्रको करनें वाला बलको बढानें वाला होताहै ॥ अनन्तर पीयूष किलाट क्षीर शाक तक्र पिण्ड मोरट इनके लक्षण और गुण ॥ तत् काल बच्चा दी हुई गाय के दूधको पीयूष कहते हैं ॥ लोक में पेवसकहते है ॥ दूधके पिंड को किलाठ कहाहै ॥ किलाठ गिजरी इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥ कच्चा ही जोफटा हुवा दूधहै उसको क्षीर शाक कहेते हैं ॥ इसको लोक में तुथिभरा कहेते हैं ॥ दही अथवा मठे से फटे हुवे दूधको अच्छे कपडे से वान्ध कर ॥ उस द्रव भावके सहित को तक्र पिंड कहेते हैं ॥ २६॥ फटे हुवे दूधके पानी को मोरट जेज्जठ नें कहाहै ॥

पेयूषञ्च किलाटश्च क्षीर शाकं तथैव च ॥ २७ ॥ तक्र पिण्ड इमे वृष्या वृंहणा बल वर्द्धनाः ॥ गुरवः श्लेष्मला हृद्या वात पित्त विनाशनाः ॥ २८॥ दीप्ताग्नीनां विनिद्राणां विद्रधौ चाभि पूजिताः ॥ मुखशोष तृषा दाह रक्त पित्त ज्वर प्रणुत् ॥ २९॥

भा० पेयूष किलाट क्षीर शाक ॥२७॥ और तक्र पिण्ड येह वृष्य पुष्ट बलको बढानें वाले ॥ भारी कफ़को करनें वाले हृद्य वात पित्त के नाशक हैं ॥ २८॥ और दीप्ताग्नि यों को वे नींन्द वालों को और विद्राधि में श्रेष्टहै ॥ और मुख शोष तृषा दाह रक्त पित्त ज्वर इनका नाशक है ॥ २९॥

लघु वल करो रुच्यो मोरटः स्यात्सिता युतः॥ सन्ता
निका गुणाः। सन्ता निका साठी।
सन्ता निका गुरुः शीता वृष्या पित्त स्रवात नुत्॥ तर्प
णी बृंहणी स्निग्धा बला सवल शुक्रला॥ ३०॥

अथ खण्डादि युक्त दुग्ध गुणाः॥ ॥

खण्डेन सहितं दुग्धं कफ कृत् पवनापहम्॥ सिता
सितो पला युक्तं शुक्रलं त्रिमलापहम्॥ ३१॥ गु
डं मूत्र कृच्छ्रघ्नं पित्त श्लेष्म करं परम्॥

भा० चीनी के सहित मोरट हलका वल कर रुचि को करनें वाला है॥ मला
ई के गुण। मलाई भारी शीतल शुक्र को करनें वाली रक्त पित्त वात इनको
नाश करनें वाली॥ तर्पण पुष्ट चिकनी और कफ कवल शुक्र इनको करने वा
ली है॥ ३०॥ अनन्तर खाण्ड आदि से युक्त दुग्ध का गुण॥ खांड के सहित दु
ग्ध कफ़ को करनें वाला वात नाशक होता है॥ चीनी और मिश्री के युक्त शुक्र को
करनें वाला त्रिदोष का नाशक है॥ ३१॥ गुड के सहित मूत्र कृच्छ्र का नाश
क और परम पित्त कफ़ को करनें वाला है॥

अथ प्रभातादि भव दुग्ध गुणाः॥

रात्रौ चन्द्र गुणाधिक्याद् व्यायामा करणात्तथा॥
प्राभातिकं तदा प्रायः प्रादोषाद् गुरु शीतलम्॥ ३२॥
दिवाकर करा घातात् व्यायामानल सेवनात्॥ प्राभा
तिकात्तु प्रादोषं लघु वात कफापहम्॥ ३३॥

भा० अनन्तर प्रभातादि भव दुग्ध के गुण॥ रात्रि में चन्द्र गुण की अधिक
ता से तथा व्यायाम करनें से॥ सवेरे का दूध प्रायः सायं काल के से भारी शी
तल होता है॥ ३२॥ सूर्य्य की किरणों के आघात से और व्यायाम अग्नि

इनके सेवन से॥ सवेरें केस श्याम का हलका वात कफ का नाशक होताहै॥ ३३॥

अथ दुग्ध सेवन समय विशेषे गुण माह ॥

वृष्यं बृंहण मग्नि दीपन करं पूर्वाह्न काले पयो ॥ म-
ध्याह्ने तु बला वहं कफ हरं पित्ता पहं दीप नम् ॥ ३४॥
बाले वृद्धि करं क्षये क्षय करं वृद्धेषु रेतो वहम् ॥ रात्रौ
पथ्य मनेक दोष शमनं क्षीरं सदा सेव्यते ॥ ३५॥

भा० अनन्तर दुग्ध सेवन समय में गुण विशेष को कहेते है॥ पहिले पहर में पीया हुवा दूध शुक्र को करनें वाला पुष्ट अग्नि को दीपन करने वाला॥ और म-ध्यान्ह में बल करनें वाला कफ नाशक पित्त नाशक दीपन होताहै॥ ३४॥ बाल अवस्था में वृद्धि करनें वाला क्षय ग क्षय कर वृद्ध अवस्थामें शुक्र को करनें वा ला और रातमें हित अनेक दोषों को शमन करनें वाला। दूध है इसवास्ते सदा सेवनकिया जाताहै॥ ३५॥

वदन्ति पेयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहौ द ना
दि कम् ॥ अवन्य जीर्णो निशि पीत शर्करा क्षीराल्य पानस्य
तु शेष मुत्सृजे त् ॥ ३६॥ विदाही न्यन्य पानानि दिवा।
भुङ्क्ते हि यन्नरः॥ तद्वि दाह प्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं स दा
पिबेत् ॥ ३७॥ दीप्ता नले कृशे पुंसि वात वृद्धे पयः प्रि
ये॥ मतं हित तमं पथ्यं सद्यः शुक्र करं यतः॥ ३८॥

अथ मथि तस्य दुग्धस्य गुणाः।

भा० कहेते हैं कि रातमें केवल दूध पीना चाहिये उसके साथ चावल आदि क नखाने चाहिये॥ अजीर्ण के होनें में रातमें थोड़ा दूध शक्कर पीने वाले के। बाकी सब निकल जाताहै॥ ३६॥ जिस से मनुष्य विदाहि अन्न पानदिन में भोजन करताहै॥ उस कारण विदाह प्रशान्ति के अर्थ रातमें दूध को सदा पी

वे ॥३७॥ दीप्ताग्नि कृश वात वृद्धि और दुग्ध प्रिय ऐसे पुरुष को ॥ बहुत हि त और पथ्य है क्योंकि तत्काल शुक्रको करता है ॥ ३८ ॥

अनन्तर मथे हुवे दूधका गुण ॥

क्षीरं गव्य मथा जम्वा कोष्णं दण्डा हतं पिबेत् ॥ लघु वृष्यं ज्वर हरं वात पित्त कफा पहम् ॥ ३९ ॥

अथ गोज गुण ॥

गो दुग्ध प्रभवं किंवा छागी दुग्ध समुद्भवम् ॥ भवे देतत् त्रिदो षघ्नं रोचनं बल वर्द्धनम् ॥ ४० ॥

भा० गायका अथवा बकरी का कुछ गरम मथे हुवे को पीवे ॥ और हलका शुक्रको करनें वाला ज्वर नाशक वात पित्त कफ का नाशक है ॥३९॥ गो दुग्ध सेउत्पन्न हुवा अथवा बकरी के दूधसे हुवा ॥ त्रिदोष नाशक रोचन बल को बढ़ानें वाला ॥ ४० ॥

वन्हि वृद्धि करं वृष्यं सद्य स्तृप्ति करं लघुः ॥ अती सारे ग्नि मान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ ४१ ॥ निन्दितं दुग्धं । विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रथितं पयः ॥ वर्ज्जयेदम्ल लवण युक्तं कुष्ठादि कृद्यतः ॥४२॥

इति श्री भाव प्रकाशे दुग्ध वर्गः ॥

भा० अग्नि को करने वाला शुक्रको करनें वाला तत्काल तृप्ति को करनेंवाला हलका होता है ॥ और अतीसार अग्नि मान्द्य तथा जीर्ण ज्वर इनमें प्रशस्त है ॥ ॥४१॥ निन्दित दुग्ध ॥ विवर्ण विरस खट्टा दुर्गन्ध और गठील ऐसा दूध ॥ त्याग देवे क्योंकि अम्ल लवण युक्त कुष्ठ आदि का नाशक कहाहै ॥४२॥

इति भाव प्रकाश में दुग्ध वर्गः ॥

तत्र दध्नो गुणाः

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु ॥ पाकेऽम्लं श्वासरक्तपित्तशोथमेदःकफप्रदम् ॥ १॥ मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरे ॥ अतीसारेऽरुचौ कार्श्ये शस्यते बलशुक्रकृत् ॥ २॥

भा० उसमें दही के गुण ॥ दही उष्ण दीपन चिकना पीछे से कसेला भारी॥ पाकमें अम्ल श्वास रक्त पित्त शोथ मेद कफ इनको करनें वाला है ॥ १ ॥ मूत्रकृच्छ्र में प्रतिश्याय में शीत वाले विषमज्वर में ॥ अतीसार में अरुचि में कृशता में प्रशस्त है बल शुक्र को करनें वाला है ॥ २॥

अथ दधिभेदाः। आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लञ्च ततः परम् ॥ अम्लञ्चतुर्थमत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्चधा ॥ ३॥ अथ मन्दादीनां लक्षणं गुणाश्च ॥ मन्दं दुग्धं यदव्यक्तरसं किञ्चिद्घनं भवेत् ॥ मन्दं स्यात्सृष्टविण्मूत्रं दोषत्रयविदाहकृत् ॥ ४॥ यत्सम्यग्घनतां यातं व्यक्तस्वादुरसं भवेत् ॥ अव्यक्ताम्लरसं तत्तु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम् ॥ ५॥

भा० अनन्तर दही का भेद ॥ पहिले मन्द उसके अनन्तर मधुर और उस्के बाद खट मीठा ॥ चौथा खट्टा तथा पांचवा बहुत खट्टा ऐसे दही पांच प्रकार का होताहै ॥ ३॥ अनन्तर मन्दादियों के लक्षण और गुण ॥ मन्द दुग्ध जो अव्यक्त रस और कुछ गाढा होताहै ॥ मन्द मल मूत्र को करनें वाला त्रिदोष तथा विदाह इनको करनें वाला है ॥४॥ जो अच्छी तरह गाढी होजाती है और व्यक्त स्वादु रस जिस्में होताहै उसको बुधिवानों ने मधुर कहाहै ॥ ५॥

स्वादु स्या दत्य भिष्यन्दि वृष्यं मेदः कफा वहम् ॥ वा तघ्नं मधुरं पाके रक्त पित्त प्रसा द नम् ॥ ६ ॥ स्वा द्व म्ल सान्द्रं मधुरं कषाया नु रसं भवेत् ॥ स्वाद्व म्लस्य गुणा ज्ञेया सामान्य दधि वर्जनैः ॥ ७ ॥ यत्ति रोहि त माधुर्य्यं व्यक्ता म्लत्वं तद म्लकम् ॥ अम्लन्तु दीपनं पित्त रक्त श्लेश्म विवर्द्ध नम् ॥ ८ ॥

भा० मधुर अति अभिष्यन्दि होताहै शुक्र को करनें वाला और मेदकफ़ को। करनें वाला ॥ वात नाशक पाक में मधुर रक्त पित्त को अच्छा करनें वाला होताहै ॥ ६ ॥ मीठा खट्टा सान्द्र मधुर पीछेसे कसेला होताहै ॥ सामान्य दही के त्याग करके मीठे खट्टे का गुण जानना चाहिये ॥ ७ ॥ जो मधुर ता ढकी है और जिसमें अम्ल ता व्यक्त है वोह खट्टा है ॥ खट्टा दीपन रक्त पित्त कफ़ इनको बढानें वाला ॥ ८ ॥

तद त्यम्लं दन्त रोम हर्ष कण्ठा दि दाह कृत् ॥ अत्य म्लं दीपनं रक्त वात पित्त करं परम् ॥ ९ ॥ गो दधि गु- णाः । गव्यं दधि विशेषेण स्वा द्वम्ल ञ्च रुचि प्रदम् ॥ पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टि कृत् पवना पहम् ॥ १० ॥ उक्तं दध्ना मशे षाणां मध्ये गव्यं गुणा धिकम् ॥

भा० वोह वहुत खट्टा दांत हर्ष रोम हर्ष कंठ आदि का दाह करनें वाला है ॥ वहुत खट्टा दीपन रक्त वात पित्त इनको करनें वाला है ॥ ९ ॥ गायके दही का गुण ॥ गायका दही विशेष करके मधुर अम्ल रुचि को करनें वाला ॥ पवित्र दीपन हृद्य पुष्टि को करनें वाला वातका नाशक होताहै ॥ १० ॥ स व दही यों के वीचमें गायका दही गुण में अधिक कहा है ॥

माहिष दधिगुणाः ।

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत् ॥ स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्व्वस्त्रदूषकम् ॥ ११ ॥

छागी दधि गुणाः । आजन्दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रयापहम् ॥ शस्यते श्वासकासार्शः क्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥ १२ ॥ पक्व दुग्ध दधि गुणाः ॥

पक्वं दुग्धभवं रुच्यं दधि स्निग्ध गुणोत्तमम् ॥ पित्तानिलापहं सर्व धात्वग्नि बल वर्द्धनम् ॥ १३ ॥

निःसर दुग्ध दधि गुणाः ।

भा० भैंस की दही का गुण ॥ भैंसकी दही बहुत चिकनी कफ़ की करनें वाली वात पित्त की नाशक ॥ पाकमें मधुर अभिष्यन्दि शुक्र को करनें वाली भारी रक्त दूषक होतीहै ॥ ११ ॥ बकरीके दहीका गुण ॥ बकरी का दही बहुत उत्तम काबिज़ हलका तीनों दोषों का नाशक है ॥ और श्वास कास बवासीर क्षय कार्श इनमें प्रशस्तहै तथा दीपन होताहै ॥ १२ ॥ औटाये हुवे दूध के दही का गुण पके हुवे दूध की दही रुचि को करनें वाली चिकनी गुण में अच्छी ॥ पित्त वात की नाशक और सब धातु अग्नि बल इनको बढानें वाली है ॥ १३ ॥

निःसार दूधके दही का गुणः ॥

असारं दधि सङ्ग्राहि शीतलं वातलं लघु ॥ विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणी रोग नाशनम् ॥ १४ ॥

वाणी दधि गुणाः । गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं कफ़कद्गुरु ॥ बलपुष्टिकरं रुच्यं मधुरं नाति पित्तकृत् ॥ १५ ॥ शर्करादि सहित दधि गुणाः ॥

भा० असार दही काबिज शीतल वात को करनें वाली हलकी ॥ विष्टंभि दीपन रुचिको करनें वाली ग्रहणी रोग की नाशक है ॥ १४ ॥

निचोड़ी हुई दही का गुण। निचोड़ी दही बहुत चिकनी वात नाशक कफ को करनें वाली भारी॥ बल पुष्टि को करनें वाली रुचि कर मधुर और अति पित्त क रने वाली है॥ १५॥ शर्करा के सहित दही का गुण॥

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णा पित्ता स्रदाह जित्॥ सगु ड़ं वात नुद्दृष्यं वृंहणं तर्पणं गुरु॥ १६॥

अथ रात्रौ दधि भोजन निषेधः॥

न नक्तं दधि भुञ्जीत नचाप्य घृत शर्करम्॥ ना मुद्ग सूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामल कै विना॥ अस्य मर्थः॥

भा० शर्करा के सहित दही श्रेष्ठ तृषा रक्त पित्त दाह इनको जीतने वालीहै॥ और गुड़ के सहित वात नाशक शुक्र को करने वाली पुष्ट तर्पण भारी होतीहै ॥१७॥ अनन्तर रात मे दधि भोजन का निषेध ॥ रात में दही नखावे और विनाश करा घृत के भी नखावे॥ तथा विना मूङ्ग की दाल के औरविना मधु के भी नखावे और नगरम न आंव लौंके विना न खावे॥ येह अर्थ है कि।

रात्रौ दधि न भुञ्जीत भुञ्जीत चेत्त दा अघृत शर्कर नामुद्ग सूपं क्षौद्र मुष्णां विना मल कै श्च दधि न भु- ञ्जी त। तेन घृत शर्करा दि युक्तं दधि रात्रा वपि भु ञ्जीते त्यर्थः। तथा च। शस्यते दधिनो रात्रौ शस्त ञ्चाम्बु घृता न्वितम्॥ रक्त पित्त कफो त्थेषु विकारे ष्वु तु नैव तत्॥१७॥ तद स्तु घृता न्वित मपि॥

अथ तु विशेषेण विधि निषेधौ।

भा० रात में दही न खावे और खावेतो वे घी शक्कर मूङ्ग की दाल मधु उष्ण विना आंवलो केभी दही न खावे॥ उस्से घृत शर्करा दि युक्त दही रात मे भी खावे येह अर्थ है। वैसे कहाहै। रात में दही प्रशस्त नहीहे औरजल घृत मे युक्त

प्रशस्त है ॥ रक्त पित्त कफ के विकारों में वोह प्रशस्त नहीं है ॥ १७॥ वोह जल घृत युक्त भी । अनन्तर ऋतु विशेष करके विधि निषेध ।

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते ॥ शरद्ग्रीष्म वसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम् ॥१८॥

अथ विधिना दधिसेवने दोष माह ॥

ज्वरासृक् पित्त वीसर्प कुष्ठ पाण्डु मय भ्रमान् ॥ प्राप्नुयात् कामला ञ्चोग्रां विधिं हित्वा दधि प्रियः ॥१९

भा० हेमन्त शिशिर और वर्षा में दही प्रशस्त है ॥ और शरद ग्रीष्म वसन्त में प्रायः वोह निंदित है॥ १८॥ अनन्तर विना विधि के दधि सेवन में दोष कहेते है ॥ ज्वर रक्त पित्त वीसर्प कुष्ठ पांडु रोग भ्रम ॥ और उग्र कामला रोग येह विधि छोड के दहीसेवन करनें से होते हैं ॥१९॥

॥ अथ सरस्य मस्तु नश्च लक्षणं गुणा श्च

दध्नस्तु परि यो भागो घनः स्नेह समन्वि तः ॥ स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्ड स्तु मस्त्विति ॥ २०॥

सरःस्वादु गुरुर्वृष्यो वात वन्हि प्रणाशनः ॥ साम्लो वस्ति प्रशमनः पित्त श्लेष्म विवर्द्धनः ॥ २१॥

भा० अनन्तर सर और मस्तु इनका लक्षण और गुण ॥ दही के ऊपर का जो गाढा चिकना इसे युंहि स्ता है ॥ उसको लोकमें सर ऐसा कहा है और दही के पानी को मस्तु ऐसा कहा है ॥ २०॥ सर मधुर भारी शुक्र को करनें वाला वात अग्नि का नाशक ॥ और खटाई के सहित वस्ति का शमन करनें वाला पित्त कफ को वडानें वाला है ॥२१॥

मस्तु क्लम हरं बल्यं लघु भक्ता भिलाष कृत् ॥ स्रोतो विशो धनं ह्लादि कफ तृष्णा निला पहम् ॥ २२॥

अहृद्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसञ्चयम् ॥

इति श्री भाव प्रकाशे दधिवर्गः।

भा० दही का पानी क्लम नाशक बलकै हित हलका भोजन में रुचि को कर ने वाला ॥ सोतों का शोधन करने वाला ल्हादि कफ तृषा वात इनका नाश क है ॥२२॥ अहृद्य प्रीणन और शीघ्र मल के सचय को फोड़ता है ॥

इति भाव प्रकाशे दधि वर्गः।

अथ तक्र वर्गः

तत्र तक्रस्य भिन्नानि नामानि लक्षणानि गुणा श्च

घोलन्तु मथितं तक्र मुद श्विच्छ च्छिकापि च ॥ सस

रं निर्जलं घोलं मथि तन्त्व सरो द कम् ॥ २३॥

तक्रं पाद जलं प्रोक्त मुद श्वित्व र्द्ध वारि कम् ॥ छच्छि

का सार हीना स्यात् स्वच्छा प्रचुर वारि का ॥ २४॥

घोलं तु शर्करा युक्तं गुणै र्ज्ञेयं रसाल वत् ॥

भा०- अनन्तर तक्र वर्गः ॥ उसमें मठे के अलग नाम और लक्षण तथा गुण ॥ घोल मथित तक्र उद श्वित छच्छि का येह मठे के भेदके नाम है ॥ पूर्वोक्त सर के सहित निर्जल को घोल कहेते हैं और मथित जिसमें सर और जल नहो उसको कहेते है ॥ २३॥ जिसमें चौथाई जल होताहै उसको तक्र क हाहै और जिसमें आधा जल होताहै उसको उदश्वित कहाहै ॥ तथा सार हीन स्वच्छ बहुत जल से युक्त को छच्छिका कहेते हैं ॥ २४ ॥ शर्करा युक्त घोल रसाल के समान गुण में जानना चाहिये ॥

मथितं मठ्ठा इति लोके।

छच्छिका छाच्छ इति लोके ॥

वात पित्त हरं ह्लादि मथितं कफ पित्त नुत् ॥ तक्रंग्रा हि कषायाम्लं स्वादु पाकरसं लघुः ॥ २५ ॥ वीर्य्यो ष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वात नाशनम् ॥ ग्रहण्यादि मतां पथ्यं भवेत्सङ्ग्राहि लाघवात् ॥ २६ ॥ किन्त्व स्वादु विपाकित्वान्नच पित्त प्रकोपणम् ॥ कषायो ष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वात नाशनम् ॥ २७ ॥ कषायोष्ण विपाकित्वाद्रौक्ष्याच्चापि कफापहम् ॥

भा० महया इस प्रकार लोक में कहेते है ॥ छाछ इस प्रकार लोक में कहेते है ॥ मथित वात पित्त का नाशक ल्हादि कफ पित्त का नाशक है ॥ तक्र चा हिज कसेला खट्टा पाक रस में मधुर हलका ॥ २५ ॥ वीर्य्य में उष्ण दीपन शुक्र को करनें वाला प्रीणन वात नाशक है ॥ और संग्रहणी वाले के हितहै मठ्ठा काब्जि होताहै हलके पनसे ॥ २६ ॥ मधुर पाक होनें से पित्त प्रकोप करनें वाला नंहीहै ॥ कसेला उष्ण दीपन वृष्य प्रीणन वात नाशक है ॥ २७ ॥ कसेला उष्ण विपाक नहोनें से और रूक्ष तासे भी कफ नाशकहै ॥

न तक्र सेवी व्यथते कदाचित् न तक्र दग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ॥ यथा सुराणां अमृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ २८ ॥ उदश्वित्कफ कृद्बल्यं आमघ्नं परसंमतम् ॥ छच्छिका शीतला लघ्वी पित्त श्रम तृषा हरी ॥ २९ ॥ वात नुत्कफ कृत्सा तु दीपनी लवणान्विता ॥ अथो द्धृत घृत स्तोको द्धृता नुद्धृत घृतानां तक्राणां गुणाः ॥

भा० तक्र कासेवन करनें वाला कदा चित् क्लेश नहीं पाता तक्र से दग्ध रोग उत्पन्न नही होते ॥ जैसे देवताओंको सुख के वास्ते अमृत होताहै वैसेही मनुष्यों को भूलोक मे तक्र कहाहै ॥२८॥ उदश्वित् कफ को करनें वाला बलके हित परम आंव का नाशक कहाहै ॥ छच्छिका शीतल हलकी पित्त श्रम तृषा की नाशक है ॥२९॥ वात नाशक कफको करनें वाली है और वोह लवण से युक्त दीपन है ॥ अनन्तर घीनिकाला और थोड़ा घी निकाला तथा वे घृत निकाला हुवा ऐसे तक्रा का गुण ॥

समुद्धृतं घृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः ॥ स्तोकोद्धृत घृतं तस्माद् गुरु वृष्यं कफावहम् ॥ ३० ॥ अनुद्धृत घृतं सान्द्रं गुरु पुष्टि कफ प्रदम् ॥

अथ दोष विशेषे व्याधि विशेषे तक्र विशेषाः

वाते ऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठी सैन्धव संयुतम् ॥ पित्ते स्वादु सिता युक्तं सव्योष माधि के कफे ॥ ३१॥ हिङ्गु जीर युतं घोलं सैन्धवे नच संयुतम् ॥

भा० अच्छी तरह घी निकाला हुवा तक्र पथ्य और विशेष करके हलका होता है॥ थोड़ा घृत निकाला हुवा उस्से भारी शुक्र को करनें वाला और कफको करनें वाला है ॥ ३०॥ वे निकाला हुवा सान्द्र भारी पुष्टि कफको करने वाला है अनन्तर दोष विशेष में और रोग विशेष में तक्र विशेष को कहते है ॥ वातमें अम्लतक्र सोंठ सैन्धव मे युक्त ॥ पित्त में मधुर चीनी के सहित और कफमें त्रिकुटेके सहित हितहै ॥३१॥ हींङ्ग जीरेके सहित और सैन्धव के सहित ॥

भवेदती ववातघ्न मर्शो ऽती सार हृत्परम् ॥ ३२॥ रुचिदं पुष्टिदं बल्यं वस्ति शूल विनाशनम् ॥ मूत्र कृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डु रोगे स चित्र कम् ॥ ३३॥

अथामपक्वतक्रगुणाः

तक्रं मामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च ॥ पीनस

श्वास कासादौ पक्क मेव प्रयुज्यते ॥ ३४ ॥

भा० और सैन्धव के सहित घोल अती व वात नाशक और ववासीर अतीसार का परम नाशक है ॥ ३२ ॥ तथा रुचिको करनें वाला पुष्टि को देनें वाला बलके हित वस्ति शूल का नाशक है ॥ मूत्र कृच्छ्र में गुड़के सहित और पांडु रोग में चित्रक के सहित हितहै ॥ ३३ ॥ अनन्तर कच्चे और पक्के तक्र का गुण ॥ कच्चा मठा कोष्ठ में कफ़ को नाशकरता है । और कंठ में कफ को करता है ॥ पीनस श्वास कासा दिक में पकाही योजना किया जाताहे ॥ ३४ ॥

अथ तक्र सेवन निमित्तानि

शीत काले ऽग्नि मान्द्ये च तथा वाता मयेषु च ॥ अ-

रुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्याद मृतो पमम् ॥ ३५ ॥

तत्तु हन्ति गर च्छर्दि प्रसेक विषमज्वरान् ॥ पाण्डु

मेदो ग्रह ण्यर्शो मूत्र ग्रह भगन्दरान् ॥ ३६ ॥ मेहं

गुल्म मती सारं शूल प्लीहो दरा रुचीः ॥ श्वित्र कोठ

गत व्याधीन् कुष्ट शोथ तृषा कृमीन् ॥ ३७ ॥

भी० अनन्तर तक्र सेवन के कारण ॥ शीत काल अग्नि मान्द्य तथा वात रोग मेंभी ॥ अरुचि में स्रोतों के अवरोध में तक्र अमृत के समान होताहे ॥ ३५ ॥ वोह विष वमन प्रसेक विषम ज्वर इनको ॥ और पांडु रोग मेद ग्रहणी रोग ववासीर मूत्र ग्रह भगन्दर इनको ॥ ३६ ॥ तथा प्रमेह वाय गोला अतीसार शूल प्लीहोदर अरुचि ॥ श्वित्र कोढ गत रोग कुष्ट शोथ तृषा कृमि इनको नाशकरता है ॥ ३७ ॥

तक्रस्या विषयाः । नैव तक्रं क्षते द-

द्यान्नोष्ण काले न दुर्बले ॥ नमूर्च्छा भ्रम दाहेषु

न रोगे रक्त पित्त जे ॥ ३८ ॥

अथ गव्या दीनां तक्रा णां विशिष्टा गुणाः ॥
यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत् ॥
इति श्री भाव प्रकाशे तक्र वर्गः ।

भा० तक्रका अविषय ॥ तक्र क्षत में न देवे न उष्ण काल में न दुर्बल में ॥ न मूर्च्छा भ्रम दाह में न रक्त पित्त के रोग में देवे ॥ ३८ ॥ अनन्तर गाय आदि के तक्रों का विशेष गुण ॥ जो आठ दहीयों के गुण कहे हैं वोह गुण तक्र में जानलेवे ॥ इति भाव प्रकाशे तक्र वर्गः ॥

अथ नवनीत वर्गः

तत्र नव नीतस्य नामानि गुणाश्च

मृक्षणं सरजं हैयङ्ग वीनं नवनीत कम् ॥ नवनीतं हितं गव्यं दृष्यं वर्ण बलाग्नि कृत् ॥ ३९ ॥ संग्राहि वात पित्तासृक् क्षयार्शो ऽर्दित कास हृत् ॥ तद्धितं बालके वृद्धे विशेषाद मृतं शिशोः ॥ ४० ॥

[माहिषस्य गुणाः ।]

भा० अनन्तर माखन के वर्गः । उसमें माखन के नाम और गुण । मृक्षण सरज हैयङ्ग वीन नवनीत क येह माखन के नाम हैं ॥ गायका माखन पथ्य शुक्र को करनें वाला वर्ण बल अग्नि को करनें वाला ॥ ३९ ॥ काबिज वात पित्त रक्त क्षय ववासीर अर्दित कास इनका नाशक है ॥ वोह बालक वृद्ध को हित है विशेष करके बालक को अमृत के समान है ॥ ४० ॥
अनन्तर भैंस के माखन का गुण ॥

नवनीतं माहिष्यास्तु वात श्लेष्म करं गुरु ॥ दाह पित्त श्रम हरं मेदः शुक्र विवर्द्धनम् ॥ ४१ ॥

अथ पयसो नवनी तस्य गुणाः ॥

दुग्धोऽत्थं नवनी तंतु चक्षुष्यं रक्त पित्त शुक्र॥ वृष्यं
बल्य मति स्निग्धं मधुरं ग्राहि शीत लम्॥ ४२॥

अथ सद्यः समुद्धृत नवनीत गुणाः

भा० भैंस का मारवन वात कफ को करनें वाला भारी॥ दाह पित्त श्रमका नाशक मेद शुक्र का बढ़ानें वाला है ॥ ४१॥ अनन्तर दूध के मारवन का गुण ॥ दूधका मारवन नेत्र के हित रक्त पित्त का नाशक॥ शुकको करनें वाला बल के हित बहुत चिकना मधुर काबिज शीतल है॥ ४२॥
अनन्तर ताजे मारवन का गुण ॥

नव नी तन्नु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु॥ मेध्यं
किञ्चित्कषायाम्लं भीषत्तक्रां शसंक मात्॥ ४३॥

अथ चिरन्तन नवनीत गुणाः।

भा० ताजा मारवन मधुर काबिज शीतल हलका॥ कान्ति को करनें वाला कुछ एक कसेला थोड़े मठे के अंश मिलनें से॥ ४३॥
अनन्तर पुरानें मारवन का गुण॥

सक्षार कटु काम्ल त्वा च्छर्द्यर्शः कुष्ट कारकम्॥
श्लेष्मलं गुरु मे दस्यं नवनीतं चिरन्तनम्॥ ४४॥

इति श्री भाव प्रकाशे नवनीत वर्गः॥

भा० क्षार के सहित कडुक खट्टापन होनें से वमन ववासीर कुष्ट इनको करनें वाला है॥ कफ को करनें वाला भारी मेद को करने वाला पुराना मारवन है॥ ४४॥

इति भाव प्रकाशे मारवन वर्गः॥

अथ घृतवर्गः

तत्र घृतस्य नामानि गुणाश्च

घृत माज्यं हविः सर्पिः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ घृतं रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वन्हि दीपनम् ॥ ४५॥ शीत वीर्य्यं विषा लक्ष्मी पाप पित्ता निला पहम् ॥ अल्पा भिष्यन्दि कान्त्यो जस्ते जो लावण्य बुद्धि कृत् ॥ ४६ ॥ स्वरस्मृति करं मेध्य मायुष्यं बल कृद्गुरु ॥ उदा वर्त्त ज्वरोन्माद शूला नाह व्रणान् हरेत् ॥ ४७॥ स्निग्धं कफकरं रक्षः क्षय वीसर्प रक्त नुत् ॥

भा० अनन्तर घृत वर्गः । उसमें घृतके नाम और गुण । घृत आज्य हविः सर्पिः येह घृत के नाम हैं ॥ अनन्तर गुण कहेते हैं ॥ घृत रसायन मधुर नेत्र के हित अग्नि दीपन ॥ ४५॥ शीत वीर्य्य है और विष अ लक्ष्मी पाप पित्त वात इन का नाशक है ॥ थोड़ा अभिष्यन्दि कान्ति ओज तेज लावण्य बुद्धि इनको करनेंवाला ॥ ४६ ॥ स्वरस्मृति को करनें वाला मेध्य आयु के हित बल को करनें वाला भारी ॥ उदा वर्त्त ज्वर उन्माद शूल अफारा व्रण इनको हरता है ॥ ४७ ॥ चिकना कफ को करनें वाला रक्ष क्षय वीसर्प रक्त इनका नाशक है ॥

गव्यस्य घृतस्य गु० । गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्य मग्निकृत् ॥ स्वादु पाक करं शीतं वात पित्त कफा पहम् ॥ ४८॥ मेधा लावण्य कान्त्यो जस्ते जो वृद्धि करं परम् ॥ अलक्ष्मी पापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥ ४९ ॥ बल्य पवित्र मायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम् ॥ सुगन्धं रोचकं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥ ५० ॥

भा० गाय के घृत का गुण । गायका घृत विशेष करके नेत्र के हित शुक्र को कर नें वाला अग्नि को करनें वाला ॥ मधुर पाक को करनें वाला शीतल और वातपित्त कफ इनका नाशक है ॥ ४८ ॥ और मेधा लावण्य कान्ति ओज तेज इनकी परम वृद्धि को करनें वाला ॥ अलक्ष्मी पाप राक्षस इनका नाशक वयका स्थापक भारी ॥४९॥ बलके हित पवित्र आयुके हित सुमंगल्य रसायन ॥सुगन्ध रोचन सुन्दर सब घृतो से गुण में अधिक है ॥५०॥

माहिषस्य गुणाः। माहिषन्तु घृतं स्वादु पित्त रक्तानिला पहम् ॥ शीतलं श्लेष्मलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते ॥५१॥ छागस्य गुणाः। आज माज्यङ्करोत्यग्निं चक्षुष्यं बल वर्द्धनम् ॥ कासे श्वासे क्षये चापि हितं पाकेभवेत्कटुः ॥ ५२ ॥ अथ उष्ट्री घृतम् ॥ औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोष क्रिमि विषा पहम् ॥ दीपनं कफ वातघ्नं कुष्ठ गुल्मो दरा पहम् ॥ ५३ ॥

भा० अनन्तर भैंसके घृत का गुण ॥ भैंस का घृत मधुर पित्त रक्त वात इन का नाशक ॥ शीतल कफ़ को करनें वाला शुक्रको करनें वाला भारी और पाक में मधुर होताहै ॥ ५१॥ अनन्तर बकरी के घृत का गुण ॥ बकरी का घृत अग्निको करता है और नेत्र के हित बलको बढानें वाला ॥ कांस श्वास में भी हितहै और पाकमें भी कटु होता है ॥ ५२॥ अनन्तर ऊंटनी का घृत॥ ऊंटनी का घृत पाकमें कटु और शोष कृमि विष इनका नाशक ॥ दीपन कफ बात का नाशक कुष्ठ वाय गोला उदर रोग इनका नाशक है ॥५३॥

अथ आविकं घृतम् । पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्व रोग विनाशनम् ॥ वृद्धिं करोति चास्थ्नां नाम श्मरी शर्करा पहम् ॥५४॥ चक्षुष्य मग्नि स्तुवरं वात दोष निवारणम् ॥ अथ नारी घृतम् ॥

भा० अनन्तर भेड़का घृत ॥ भेडका घृत पाक में हलका सर्व रोग का नाशक ॥ और हड्डी यों की वृद्धि को करता है तथा पथरी शर्करा इनका नाशक है ॥ ५४॥ नेत्र के हित अग्नि को करनें वाला और वात दोष का निवारण है ॥

अनन्तर स्त्री घृत ॥ कफे ऽनिले योनि दोषे पित्ते रक्ते च तद्धितम् ॥ चक्षुष्यमाज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥ ५५ ॥ अथा श्वी घृतम् ॥ वृद्धिं करोति देहाग्ने र्लघु पाके विषापहम् ॥ तर्पणं नेत्र रोगघ्नं दाहनुद्वडवा घृतम् ॥ ५६ ॥ दुग्ध घृतस्य गुणाः। घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्र रोग हृत् ॥ निहन्ति पित्त दाहास्र मद मूर्च्छा भ्रमा निलान् ॥ ५७ ॥

भा० कफ वात योनि दोष पित्त रक्त इनमें वोह हित है ॥ स्त्री का घृत नेत्र के हित और घृत अमृत के समान होताहै ॥ ५५॥ अनन्तर घोडी का घृत ॥ देह अग्नि की वृद्धि को करता है और पाक में हलका विषनाशक ॥ तर्पण नेत्र रोग का नाशक दाह नाशक घोडी का घृत होताहै ॥ ५६॥ दूधके घृत का गुण ॥ दूधका घृत काविज शीतल नेत्र रोग का नाशक है ॥ और पित्त दाह रक्त मद मूर्च्छा भ्रम वात इनका नाशक है ॥ ५७॥

अथ हस्तिन दधिज घृतगुणाः।

हवि र्हस्तिन दुग्धोत्थं तत्स्याद्धैयङ्गवीनकम् ॥
हैयङ्गवीनं चक्षुष्यं दीपनं रुचिकृत्परम् ॥ ५८॥
बलकृद्बृंहणं वृष्यं विशेषात्ज्वरनाशनम् ॥

पुराण घृतस्य गुणाः ।

भा० अनन्तर हथनी के दही का घृत का गुण ॥ हथनी के घृतको हैयङ्गवीनक कहते हैं ॥ हथनी का घृत नेत्र के हित दीपन परम रुचि को करनें वालाहै ॥

॥५८॥ और वल को करनें वाला पुष्ट शुक्र का करनें वाला और विशेष करके ज्वरनाशक होताहे ॥ पुराने घीका गुण ॥

वर्षा दूर्द्धं भवे दाज्यं पुराणं तन्नि दोष नुत् ॥ मूर्च्छा कुष्ठ विषो न्मादा पस्मार तिमि रा पहम् ॥ ५९॥ यथा यथा ऽखिलं सर्पिः पुराण मधिकं भवेत् ॥ तथा तथा गुणैः स्वैः स्वै रधिकं तदु दा हृतम् ॥ ६०॥

अथ नूत नस्य घृतस्य विषयाः॥

भा० वरस के ऊपर घी पुराना होताहे वोह त्रिदोष नाशक हे ॥ और मूर्च्छा कुष्ट विष उन्माद अपस्मार तिमिर इनका नाशक है॥५९॥ सब घृत जैसे२ पुराना होताहे ॥वैसे २ अपने२ गुणों करके गुण में अधिक कहाहे ॥ ६०॥ अनन्तर ताजे घीका विषय॥

योज येन्न व मे वाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे ॥ वलक्षये पाण्डु रोगे कामला नेत्र रोगयोः॥ ६१॥

घृत प्रयो गस्या विषयाः

भा० नया घृत भोजन में तर्पण में श्रममें ॥वल क्षय में पांडु रोगमें कामला और नेत्र रोगमें योजना करे॥ ६१॥ अनन्तर जिसें घृत न देना चाहिये सोक हे तेहें॥ राज यक्ष्मणि वालेच वृद्धे श्लेष्म कृते गदे ॥ रोगे सामे विसू च्या न्च विवन्धे च मदा त्यये ॥ ६२॥ ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पि र्वहु मन्यते ॥

इति श्री भाव प्रकाशे घृत वर्गः॥

भा० राज रोग में वालक और वृद्धको कफ के रोगमें ॥आमके रोग में विसूचिमें विवन्धमें मदात्यय में ॥६२॥ और ज्वर में मन्दाग्नि में वहुत घृत अच्छा नहीं

है ॥ इति भावप्रकाशे घृत वर्गः ॥

अथ मूत्र वर्गः

तत्र गो मूत्र गुणाः ॥

गो मूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्त कषाय कम् ॥ ल-
घ्वग्नि दीपनं मेध्यं पित्त कृत्कफ वात हृत् ॥ ६३ ॥ शू
ल गुल्मो दरा नाह कण्डू क्षि मुख रोग जित् ॥ किला
सग दवा ताम वस्ति रुक् कुष्ठ नाशनम् ॥ ६४ ॥ कास
श्वासा पहं शोथ कामला पाण्डु रोग हृत् ॥

भा० अथ मूत्र वर्गः । उसमें गो मूत्र का गुण । गो मूत्र कटु तीखा उष्ण क्षार तिक्त कषायक ॥ हलका अग्नि दीपन मेध्य पित्त को करनें वाला कफ वातका नाशक ॥ ६३ ॥ शूल वाय गोला उदर अनाह कंडू नेत्र रोग मुख रोग इनको जीतनें वाला है। किलास रोग आम वात वस्ति पीड़ा कुष्ट इनका नाशक है ॥ ६४ ॥ कास श्वास इनका नाशक सूजन कामला पांडु रोग इनका नाशक है ॥

कण्डू किलास गद शूल मुखा क्षि रोगान् गुल्मा ति
सार मरु दा मय मूत्र रोधान् कासं स कुष्ठ जठर क्रि
मि पाण्डु रोगान् गो मूत्र में कमपि पीत मपा करोति
॥ ६५ ॥ सर्वेष्वपि च मूत्रे षु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम् ।
अतोऽवि शेषात् कथने मूत्रं गोमूत्र मुच्यते ॥ ६६ ॥
प्लीहो दर श्वास कास शोथ वर्चोग्रहा पहम् ॥ शूलगु
ल्म रुजा नाह कामला पाण्डु रोग हृत् ॥ ६७ ॥ कषायं
तिक्त तीक्ष्णं च पूर णान्कर्ण शूल नुत् ॥

॥५८॥ और बल को करनें वाला पुष्ट शुक्र का करनें वाला और विशेष करके ज्वरनाशक होताहे ॥ पुराने घीका गुण ॥

वर्षा दूर्द्धं भवे दाज्यं पुराणं तन्नि दोष नुत् ॥ मूर्च्छा कुष्ठ वियो न्मादा पस्मार तिमि रा पहम् ॥ ५९॥ यथा यथा ऽखिलं सर्पिः पुराण मधिकं भवेत् ॥ तथा तथा गुणैः स्वैः स्वै रधिकं तदु दा हृतम् ॥ ६०॥

अथ नूत नस्य घृतस्य विषयाः॥

भा० वरस के ऊपर घी पुराना होताहे वोह त्रिदोष नाशक हे ॥ और मूर्च्छा कुष्ट विष उन्माद अपस्मार तिमिर इनका नाशक हे ॥५९॥ सब घृत जैसे२ पुराना होताहे ॥ वैसे २ अपने २ गुणों करके गुण में अधिक कहाहे ॥ ६०॥ अनन्तर ताजे घीका विषय ॥

योज येन्न व मे वाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे ॥ बलक्षये पाण्डु रोगे कामला नेत्र रोगयोः ॥ ६१॥

घृत प्रयो गस्या विषयाः

भा० नया घृत भोजन में तर्पण में श्रममें ॥ बल क्षय में पांडु रोगमें कामला और नेत्र रोगमें यो जना करे ॥ ६१॥ अनन्तर जिसें घृत न देना चाहिये सोक हे तेहें ॥ राज यक्ष्मणि बाले च वृद्धे श्ले ष्म कृते गदे ॥ रोगे सामे विसू च्या न्द्व विबन्धे च मदा त्यये ॥ ६२॥ ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पि र्बहु मन्यते ॥

इति श्री भाव प्रकाशे घृत वर्गः॥

भा० राज रोग में बालक और वृद्धको कफ के रोगमें ॥ आमके रोग में विसूचिमें विबन्धमें मदात्यय में ॥ ६२॥ और ज्वर में मन्दाग्नि में बहुत घृत अच्छा नहीं

है॥ इति भावप्रकाशे स्तन वर्गः॥

अथ मूत्र वर्गः

तत्र गो मूत्र गुणाः॥

गो मूत्रं कटु तीक्ष्णो ष्णं क्षारं तिक्त कषाय कम्॥ ल-
घ्वग्नि दीपनं मेध्यं पित्त कृत्कफ वात हृत्॥ ६३॥ शू
ल गुल्मो दरा नाह कण्डु क्षि मुख रोग जित्॥ किला
सग दवा ताम वस्ति रुक् कुष्ठ नाशनम्॥ ६४॥ कास।
श्वासा पहं शोथ कामला पाण्डु रोग हृत्॥

भा० अथ मूत्र वर्गः। उसमें गो मूत्र का गुण। गो मूत्र कटु तीखा उष्ण क्षार तिक्त कषायक॥ हलका अग्नि दीपन मेध्य पित्त को करनें वाला कफ वातका नाशक्॥ ६३॥ शूल वाय गोला उदर अनाह कंडू नेत्र रोग मुख रोग इनको जीतने वाला है। किलास रोग आम वात वस्ति पीडा कुष्ट इनका नाशक है॥ ६४॥ कास श्वास इनका नाशक सूजन कामला पांडू रोग इनका नाशक है॥

कण्डू किलास गद शूल मुखा क्षि रोगान् गुल्मा ति
सार मरु दा मय मूत्र रोधान् कासं स कुष्ठ जठर क्रि
मि पाण्डु रोगान् गोमूत्र मे कमपि पीत मपा करोति
॥ ६५॥ सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतो ऽधिकम्।
अतो ऽवि शेषात् कथने मूत्रं गोमूत्र मुच्यते॥ ६६॥
प्लीहो दर श्वास कास शोथ वर्चोग्रहा पहम्॥ शूलगु
ल्म रुजा नाह कामला पाण्डु रोग हृत्॥ ६७॥ कषायं
तिक्त तीक्ष्ण ञ्च पूर णात् कर्णशूल नुत्॥

भा॰ खुजली किलास रोग शूल मुख नेत्र रोग ॥ गुल्म अति सार वात रोग मूत्र रोध ॥ कास कुष्ठ के सहित उदर रोग क्रिमि पांडू रोग इनको ॥ एक गो मूत्र पिया हुवा नाश करता है ॥ ६५॥ सब मूत्रों में गो मूत्र गुण में अधिक है ॥ इस वास्ते विशेष करके कहनें में मूत्र गो मूत्र को कहते हैं ॥ ६६॥ प्लीहो दर श्वास कास सूजन मल ग्रह इनका नाशक है ॥ शूल वाय गोला पीड़ा अफारा कामला पाण्डू रोग इनका नाशक ॥ ६७॥ कसैला तिक्त तीखा डालने से कर्ण शूल का नाशक है ॥

मानुष मूत्र गुणाः । नर मूत्रं गरं हन्ति सेवि तन्तद्रसायनम् ॥ रक्त पामा हरं तीक्ष्णं सक्षार लवणं स्मृतम् ॥ ६८॥ गोजावि महिषीणां तु स्त्री णां मूत्रं प्रशस्यते ॥ खरोष्ट्रे भनरा श्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम् ॥ ६९॥ इति श्री भाव प्रकाशे मूत्र वर्गः ॥

भा॰ मनुष्य के मूत्र का गुण ॥ मनुष्य का मूत्र विषको नाश कारता है और सेवन किया हुवा वोह रसायन है ॥ और रक्त पामा का नाशक तीखा क्षार लवण युक्त कह्या है ॥ ६८॥ गाय बकरी भैंस इन स्त्रियों का मूत्र प्रशस्त है ॥ और गधा ऊंठ हाथी मनुष्य घोड़ा इन में नरों का मूत्र हित कहा है ॥ ६९ ॥

इति भाव प्रकाशे मूत्र वर्गः ॥

अथ तैल वर्गः

तत्र तैलस्य स्वरूप निरूपणम् ॥

तिला दि स्निग्ध वस्तू नां स्नेह स्तैल मुदा हृतम् ॥ तत्तु वात हरं सर्व विशेषा त्तिल सम्भवम् ॥ १॥

[अथ तिल तैल गुणाः]

भा॰ अनन्तर तैल वर्गः । इसमें तैल का स्वरूप निरूपण । तिलादि स्निग्ध पदार्थों की चिकनाई को तैल कहा है ॥ वोह सब वात नाशक है विशेष कर

के तिलका ॥१॥ अनन्तर तिल तेल का गुण ॥

तिल तैलं गुरु स्थैर्य्य बल वर्ण करं सरम् ॥ वृष्यं विकाशि विशदं मधुरं रस पाकयोः ॥ २ ॥ सूक्ष्मं कषायानुरसं तिक्तं वात कफ प्रहम् ॥ वीर्य्ये शोष्णं हिमं स्पर्शे बृंहणं रक्त पित्त कृत् ॥ ३ ॥ लेखनं बद्ध विण मूत्रं गर्भाशय विशोधनम् ॥ दीपनं बुद्धिदं मेध्यं व्यवायि व्रण मेह नुत् ॥ ४ ॥ श्रोत्र योनि शिरः शूल नाशनं लघुताकरम् । त्वच्यं केश्यञ्च चक्षुष्यमभ्यङ्गे भोजने ऽन्यथा ॥ ५ ॥

भा॰ तिलका तेल भारी स्थैर्य्य बल वर्ण इनको करने वाला सर ॥ शुक्रको करनें वाला विकाशि विशद रस पाकमें मधुर ॥ २॥ सूक्ष्म पीछे से कसेला तिक्त वात कफ का नाशक ॥ वीर्य्य में उष्ण शीतल स्पर्श में पुष्ट रक्त पित्तको करनें वाला ॥ ३॥ लेखन मल मूत्र को बान्धनें वाला गर्भाशय का शोधन ॥ दीपन बुद्धि को देनें वाला मेध्यके हित व्यवायि व्रण प्रमेह का नाशक ॥ ४॥ कर्ण योनि शिर इनके शूलका नाशक और हलका पन करनें वाला ॥ त्वचाके हित केशके हित नेत्र के हित अभ्यङ्ग में येह गुण हैं और भोजन में इसके विपरीत गुण हैं ॥५॥

छिन्न भिन्न च्युतो त्पिष्ट मथित क्षत पिच्चि ते ॥ भग्न स्फुटित विद्धाग्नि दग्ध विश्लिष्ट दारि ते ॥ ६॥ तथा भिहत निर्भुग्न मृग व्याघ्रादि विक्षते ॥ वस्ती पाने ऽन्न संस्कारे नस्ये कर्णा क्षि पूरणे ॥ ७॥ सेकाभ्यङ्ग वगा हेषु तिल तैलं प्रशस्यते ॥

भा॰ छिन्न भिन्न च्युत उत्पिष्ट मथित क्षत पिच्चित ॥ भग्न स्फुटित विद्ध । अग्नि दग्ध विश्लिष्ट दारित ॥ ६॥ तथा अभिहत निर्भुग्न मृग व्याघ्र आ। दि विक्षत ॥ इनका विशेष अर्थ भग्न निदान में किया है इनमें वस्ति में ।

पीनें में अन्न के संस्कार में नस्यमें कर्ण नेत्र में भरनें में ॥ ७॥ सेक अभ्यङ्ग अव गाह इनमें तिक्त का तेल प्रशस्त है ॥

(क) ननु बृंहण लेखन योः कथं सामाना धि करण्य मित्याह । रूक्षा दि दुष्टः पवनः स्रोतः सङ्कोचये द्य दा ॥ रसो सम्यग्वहन् कार्श्यं कुर्य्या द्रक्ता द्यवर्द्धयन्॥ ८॥ तेषु प्रवेष्टुं सरत्न सौक्ष्म्य स्निग्ध त्वमा र्द्वैः ॥ तैलं क्षमं रसं नेतु कृशानां तेन बृंहणम् ॥ ९॥

भा० (क) शंका। बृंहण और लेखन कार्के से सामाना धि करण्य सो कहे ते हैं। रूक्षादि करके दुष्ट हुवा पवन जवसं कोच करता है ॥ रस अच्छी तरह वहता हुवा रक्ता दियों को नब ढाता हुवा कृश ताको करता है ॥ ८॥सौक्ष्म्य स्निग्धता और मृदुता इन करके रससे उनमें प्रवेश करनें को ॥ तैल ही समर्थ है रसमें ले जानें को इस वास्ते कृशोंका पुष्ट करनें वाला है ॥ ९॥

व्यवायि सूक्ष्मती क्ष्णोष्ण सरत्वै र्मेदसः क्षयम् ॥ शनैः प्रकुरु ते तैलं तेन लेखन मीरि तम् ॥ १०॥ द्रुतं पुरीषं बध्नाति स्वलितं नत्र वर्त्त येत्रः॥ ग्राहकं सार कञ्चा पि तेन तैल मुदी रितम् ॥ ११॥ घृत मब्दा त्परं पक्वं हीन वीर्य्यं प्रजायते ॥ तैल पक्वम पक्वं वा चिर स्थायि गुणा धि कम् ॥ १२॥

सरिसब राई तेल गुणाः।

भा० व्यवायि सूक्ष्म तीक्ष्ण उष्ण और सरत्व इनसे मेदका क्षय ॥ धीरे २ कर ताहै इस वास्ते तेल लेखन कहा है ॥ १०॥ पतले मलको वान्ध ना है और उस स्वलित को निकाल ना है ॥ उस्से तेल का विज और सारक कहाहै ॥ ११॥ पका हुवा घृत वरस भर के ऊपर हीन वीर्य होताहै ॥ और तेल कच्चा वा पका हुवा

चिरस्थायि गुणमें अधिक है ॥१२॥ सरसों और राई इनके तेलका गुण ॥

दीपनं सार्षपं तैलं कटु पाक रसं लघु ॥ लेखनं स्पर्श वीर्य्योष्णं तीक्ष्ण पित्तास्र दूषकम् ॥ १३ ॥ कफमेदोऽनिला शोर्घ्न शिरः कर्णा मया पहम् ॥ कण्डू कुष्ट कृमि श्वित्र कोठ दुष्ट कृमि प्रणुत् ॥ १४ ॥ तद्वद्राजिक योस्तैलं विशेषा न्मूत्र कृच्छ्र कृत ॥

भा० सरसों का तेल दीपन पाक और रस में कटु हलका लेखन स्पर्श और वीर्य्य में उष्ण तीक्ष्ण रक्तपित्त का दूषक ॥१३॥ कफ मेद वात ववासीर त्रिगे रोग करणी रोग इनका नाशक ॥ और कंडू कुष्ट कृमि श्वित्र कोठ दुष्ट कृमि इनका नाशक ॥१४ वैसेही राइयोंका तेल है विशेष करके मलमूत्र कृच्छ्र का करनेवाला है ॥

राजि कयोः कृष्ण राई आरक्त राई द्वयोः ॥ १५ ॥ तौरी तैल गुणाः ॥ तीक्ष्णो ष्णं तुवरी तैलं लघु ग्राहि कफा स्त्रजित् ॥ वन्हि कृद्विय हृत्कण्डू कुष्ट कोठ कृमि प्रणुत् ॥ १६ ॥ मेदो दोषा पह ञ्चा पि व्रण शोथ हरं परम् ॥ अथ अतसी तैल गुणाः ॥

भा० राई काली और लाल दोनों का ॥ तुवरी तैल । तुवरी तैल तीखा उष्ण हलका काबिज कफ रक्त को जीतनें वाला ॥ अग्नि को करनें वाला विष नाशक और खुजली कुष्ट कोठ कृमि इनका नाशक ॥ १६ ॥ मेद दोष का नाशक और परम व्रण शोथ का नाशक ॥ अनन्तर अलसी के तैल का गुण ॥

अतसी तैल माग्नेयं स्निग्धोष्णं कफ पित्त कृत् ॥ कटु पाक म चक्षुष्यं बल्यं वात हरं गुरु ॥ १६ ॥ मल कृद्र सतः स्वादु ग्राहि त्वग दोष हृद घनम् ॥

वस्तौ पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णस्य पूरणे ॥ १७ ॥ अ
नु पान विधौ चापि प्रयोज्यं वात शान्त ये ॥

भा० अलसी का तेल आग्नेय चिकना उष्ण कफ पित्त को करनें वाला ॥ पाक में कटु नेत्र के अहित बल के हित वात नाशक भारी होताहे ॥ १६ ॥ मलको करनें वाला रसमें मधुर काविज त्वचा के दोषका नाशक गाढ़ा होताहे ॥ वस्तिमें पीने में तथा अभ्यङ्ग में नासमें कानके डालनें में ॥ १७ ॥ अनुपान विधि मेंभी वात शान्ति के अर्थ योजना करनी चाहिये ॥

वर रे तैल गुण ॥ कुसुम्भ तैल मम्लं स्या दुष्णं गुरु
विदा हि च ॥ चक्षुष्यं मदितं वल्यं रक्त पित्त कफ प्र
द म् ॥ १८ ॥ अथ खाख सवीज तैलस्य गुण ॥
तैलं तु खस वीजानां वल्यं वृष्यं गुरु स्मृतम् ॥ वात
हृत्कफ हृच्छी तं स्वादु पाक रसं च तत् ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर कुसुंभ के तेल का गुण ॥ कुसुंभ का तेल खट्टा होताहे और उष्ण भारी विदाहि ॥ नेत्रों के अहित बलके हित रक्त पित्त कफ इनको करनें वालाहे ॥ १८ ॥ अनन्तर खस खस के तेलका गुण ॥ खस खस का तेल बलके हित शुक्र को करनें वाला भारी कहाहे ॥ वात नाशक और कफनाशक शीतल रसपाक में मधुर वोह होताहे ॥ १९ ॥

एरण्ड तैल गुण ॥ एरण्ड तैलं तीक्ष्णोष्णं दीप
नं पिच्छिलं गुरु ॥ वृष्यं त्वच्यं वयः स्थापि मेधा का
न्ति बल प्रदम् ॥ २० ॥ कषाया नु रसं सूक्ष्मं योनि शु-
क्र विशोधनम् ॥ विस्रं स्वादु रसे पाके सतिक्तं कटुकं
सरम् ॥ २१ ॥ विषम ज्वर हृद्रोग पृष्ठ गुह्यादि शूल
नुत ॥ हन्ति वातो दरा नाह गुल्मा ष्ठीला कटिग्रहान् ॥ २२

भा० अनन्तर अंडीके तेल का गुण ॥ अंडीका तेल तीखा गरम दीपन पिच्छिल भारी ॥ शुक्र को करनें वाला त्वचाके हित वयको स्थापन करनेंवाला मेधा कान्ति बल इनको करनें वालाहे ॥ २०॥ पीछेसे कसेला सूक्ष्म योनि शुक्र का शोधन ॥ दुर्गंधि युक्त रसमें मधुर और पाक में कुछ तिक्त कटुक सर ॥ २१ ॥ विषम ज्वर हृद् रोग पीठ गुदा आदिके मूलका नाशक है ॥ वातो दर अफारा वाय गोला अष्ठीला कटिग्रह ॥ २२ ॥

वात शोणित विड् बन्ध ब्रध्न शोथा मविद्र धीन् ॥ आम वात गजेन्द्रस्य शरीर वन चारिण: ॥ २३ ॥ एक एव निहन्ताय मेरण्ड स्नेह केशरी ॥ राल तैल गुणा: तैलं सर्जर सोद्भूतं विस्फोट व्रण नाशनम् ॥ कुष्ठ पामा क्रिमि हरं वात श्लेष्मा मया पहम् ॥ २४ ॥ सर्व तैल गुणा: । तैलं स्वयोनि गुण कृद्वाग् भटेना खिलं मतम् ॥ अत: शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेया स्वयोनि वत् ॥ २५ ॥ इति श्री भाव प्रकाशे तैल वर्ग: ॥

भा० वात रक्त बद्ध मल वद सूजन आम विद्रधि इनको नाश करता हे ॥ शरीर रूपी वन में विचरनें वाले आम वात रूपी गजेंद्र को ॥ २३ ॥ एकही नाश करनें वाला अंडी रूप सिंह है ॥ अनन्तर राल के तेलका गुण ॥ रालका तेल विस्फोट व्रण इन का नाशक है ॥ और कुष्ट पामा कृमि इनका नाशक तथा वात कफ़ के रोग का नाशक हे ॥ २४ ॥ सब तेल के गुण ॥ जिसका तेल होताहे उसीके समान गुण में होताहे ऐसा वाग भटने सब तेलों का गुण मानाहे ॥ इस वास्ते बाकी तेलके गुण अपनें कारण के समान। जानना चाहिये ॥ २५ ॥

इति भाव प्रकाशे तेल वर्ग: ॥

अथ सन्धानवर्गः

तत्र काञ्जिकस्य लक्षणं गुणाश्च।

सन्धितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः॥ काञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु॥ २६॥ दाहज्वरहरं स्पर्शात्पानात् वातकफापहम्॥ माषादिवटकैर्यत्तु क्रियते तद्गुणाधिकम्॥ २७॥ लघुवातहरन्तत्तु रोचनं पाचनं परम्॥

भा० अनन्तर सन्धान वर्गः॥ उसमें कांजी का लक्षण और गुण॥ सन्धान किया हुवा धान्य मंडादिक को जन कांजी कहेते हैं॥ कांजी भेदन करनें वाली तीखी उष्ण रोचन पाचन हलकी होतीहै॥ २६॥ स्पर्श से दाह ज्वर की नाशक और पीने से वात कफ की नाशक है॥ उड़द आदि के बड़े डालके जो की जाती है वोह गुणमें अधिक होतीहै॥ २७॥ हलकी वात नाशक रोचन परम पाचन होतीहै॥

शूलाजीर्णविबन्धाम नाशनं वस्तिशोधनम्॥ २८॥ शोषमूर्च्छाभ्रमार्त्तानां मदकण्डूविशोषिणाम्। कुष्ठिनां रक्तपित्तीनां काञ्जिकं न प्रशस्यते॥ २९॥ पाण्डुरोगे यक्ष्मणि च तथा शोथातुरेषु च॥ क्षतक्षीणे तथा श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते॥ ३०॥ रात्रेयान्तु हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम्॥

अथ तुषोदकस्य लक्षणं गुणाश्च

भा० शूल अजीर्ण विबन्ध आम इनका नाशक वस्ति शोधन॥ २८॥ शोष मूर्च्छा भ्रम इनसे पीडित को और मद कंडू विशोष वालोंको॥ कुष्ट वालोंको रक्त पित्त वालों को कांजी अच्छी नहींहै॥ २९॥ पांडु रोग राज यक्ष्मा तथा शोथ से

पीड़ित ॥ क्षत क्षीण तथा श्रान्त मन्द ज्वर से पीड़ित ॥ ३०॥ इनको कांजी और दोष कारक कहीहै ॥ अनन्तर तुषोदक का लक्षण और गुण ॥

तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः । यवैः उदके संहितैः सन्धानवर्गोक्तत्वात् ॥ तुषाम्बु दीपनं हृद्यं पाण्डुक्रमिगदापहम् । तीक्ष्णोष्णं पाचनं पित्तरक्तकृद्वस्तिशूलनुत् ॥ ३१॥

अथ सौवीरस्य लक्षणं गुणाश्च

सौवीरन्तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम् ॥ गोधूमैरपि सौवीरमाचार्य्याः केचिदूचिरे ॥ ३२॥ सौवीरन्तु ग्रहण्यर्शः कफघ्नं भेदि दीपनम् ॥ उदावर्त्ताङ्गमर्दास्थिशूलानाहेषु शस्यते ॥ ३३॥

भा० मे छिलके तक कच्चे टुकड़े किये हुवे जवों से तुषोदक होताहै ॥ उदकमे संहित यवों से क्योंकि संधान वर्ग में कहते से ॥ तुषोदक दीपन हृद्य पांडुरोग कृमि रोग इनका नाशक ॥ तीक्ष्ण उष्ण पाचन पित्त रक्तको करनेवाला वस्तिशूलका नाशक है ॥ ३१॥ अनन्तर सौवीर का लक्षण और गुण ॥
कच्चे जव अथवा पके हुवे वे छिलकों के से किया हुवा सौवीरहै ॥ कोई आचार्य्य गेहूं सेभी सौवीर होताहै ऐसा कहते हैं ॥ ३२॥ सौवीरसंग्रहणी ववासीर कफ इनका नाशक भेदि दीपन है ॥ उदावर्त्त अङ्गमर्द अस्थि शूल अफारा इनमें प्रशस्त है ॥ ३३॥

अथारनालस्य लक्षणं गुणाश्च।

आरनालन्तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ॥ पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ ३४॥

अथ धान्याम्लस्य लक्षणं गुणाश्च।

भा० अनन्तरआरनालका लक्षण और गुण। दे छिल के के कच्चे गेहूं यांसे आरनाल होताहै॥ अथ वा पके सन्धान किये उनसे वोह सो वीर के सदृश गुणमें होताहै॥ ३४॥ अनंतर धान्याम्ल का लक्षणऔर गुण॥

धान्याम्लं शालि चूर्णञ्च कोद्रवा दि कृतं भवेत्॥
धान्याम्लं धान्य योनि त्वात्प्रीणनं लघु दीपनम्॥३५
अरुची वात रोगेषु सर्वेष्वा स्थापने हितम्॥

अथ शिण्डा क्या लक्षणं गुणाश्च

शिण्डा की राजि का युक्तैः स्यान्मूलकदल द्रवैः॥-
सर्षप स्वर सेनापि शालि पिष्टक संयुतैः॥ ३६॥
सन्धि ते रिति शेषः।

भा० चावल का चूर्ण और कोदे आदि से बनाया हुवा धान्याम्ल होताहै॥ धान्य से होने से धान्याम्ल होताहै वोह प्रीणन हलका दीपन है॥३५॥ अरुचि में बात रोग में और सब आस्थापन में हितहै॥ अनन्तर शिण्डा की का लक्षण और गुण॥ राई से युक्त मूलीके पत्तों का रस॥ और सरसों के स्वरस से भी चावल की पिट्ठी से युक्त इनसे शिण्डा की होतीहै॥ ३६॥ सन्धिइति शेषः

शिण्डाकी रोचनी गुर्वी पित्त श्लेष्म करी स्मृता॥

अथ शुक्तस्य लक्षणं गुणाश्च

कन्द मूल फला दीनि सस्नेह लवणा नि च॥ यत्र
द्रव्येऽभि षूयन्ते तच्छु क्त मभि धी यते॥ ३७॥
शुक्तं कफ घ्नं तीक्ष्णोष्णं रोच नं पाचनं लघु॥ पां-
ण्डु क्रिमि हरं रूक्षं भेदनं रक्त पित्त कृत्॥३८॥

अथ सन्धा नस्य लक्षणं गुणाश्च।

भा० शिरड़ा की रोचन भारी पित्त कफ़ को करनें वाली कहीहै ॥ अनन्तर शुक्त का लक्षण और गुण। कन्द मूल फल आदि और चिकनाई लवण॥ येह जिस द्रव्य में पड़ते हैं उसको शुक्त कहेते हैं ॥ ३७॥
शुक्त कफ़ नाशक तीखा उष्ण रोचन पाचन हलका ॥ पाण्डु क्रिमि का नाशक रूखा भेदन रक्त पित्त का करनें वाला है ॥ ३८॥
अनन्तर सन्धान का लक्षण और गुण ॥

कन्द मूल फलाढ्यं यत् तत्तु विज्ञेय मा सुतम् । त द्रुच्यं पाचनं वात हरं लघु विशेषतः ॥ ३९ ॥

अथ मद्यस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

मद्यन्तु सी धुमैं रेय मिरा च मदिरा सुरा ॥ कादम्ब री वारुणी च हालापि बल वल्लभा ॥ ४० ॥ येयं यन्मादकं लोके स्तन्म द्य मभि धी यते ॥ यथा रि ष्टं सुरा सीधु रास वाद्य मने कधा ॥ ४१ ॥ मद्यं स र्वं भवे दुष्णं पित्त कृद्वा त नाशनम् ॥ भेदनं शीघ्र पाकञ्च रूक्षं कफ हरं परम् ॥ ४२ ॥ अम्लञ्च दीपनं रुच्यं पाचनं चाशु कारि च ॥ तीक्ष्णं सूक्ष्म ञ्च विशदं व्यवा यिच विकाशि च ॥ ४३ ॥

भा० कंद मूल फल से युक्त जो होता है उसको आसुत जानना चाहिये ॥ वोह रुचि को करनें वाला पाचन वात नाशक विशेष करके हलका होताहै ॥ ३९॥ अनन्तर मद्यके नाम लक्षण और गुण। मद्य सीधू मैं रेय इरा मदिरा सुरा॥ कादं वरी वारुणी हाला बल वल्लभा ॥ येह मदिरा के नाम हैं ॥ ४०॥ जो पानी नशा करनें वाला है उसको लोग मद्य कहेते हैं ॥ जैसे अरिष्ट सुरा सीधु और आसव आदि अनेक प्रकार के हैं ॥ ४१॥ सब मद्य उष्ण पित्त करनें वाले वात नाशक ॥ भेदन शीघ्र पाक रूखे परम कफ़ नाशक है ॥ ४२ ॥

और खट्टे दीपन रुचि को करने वाले पाचन आशुकारी ॥ तीक्ष्ण सूक्ष्म विशद व्यवायि और विकाशि होतेहैं ॥४३॥

अथारिष्टस्य लक्षणं गुणाश्च ।

पक्वौषधाम्बु सिद्धं यन्मद्यं तत् स्यादरिष्टकम् ॥ (क) अरिष्टं मद्य मिति लोके । यथा द्राक्षा रिष्टम् । दशमूला रिष्टम् । वव्बूला रिष्ट मिति । अरिष्टं लघु पाकेन सर्व तश्च गुणाधिकम् ॥ अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया वीज द्रव्य गुणैः समाः ॥ ४४॥

भा० अनन्तर अरिष्ट के लक्षण और गुण ॥ पक्क औषध का जो सिद्ध जल है उसको मद्य कहते हैं और वो अरिष्टक है ॥ (क) लोक में मद्य कहते हैं । जैसे द्राक्षा रिष्ट । दशमूला रिष्ट । ववूला रिष्ट इस प्रकार । अरिष्ट पाक करके हलका और सबसे गुण में अधिक होताहै ॥ वीज द्रव्य गुणके समान अरिष्ट का गुण जानना चाहिये ॥४४॥

अथ सुरापान लक्षणं गुणाश्च ॥

शालि षष्टि कपिष्टादि कृतं मद्यं सुरा स्मृता ॥ सुरा गुर्वी बलस्तन्य पुष्टि मेदः कफ प्रदा ॥४५॥ ग्राहि शोथ ज्वर गुल्मार्शो ग्रहणी मूत्र कृच्छ्र नुत् ॥ अथ सुरा भेदो वारुणी तस्या लक्षणं गुणाश्च ॥४६॥

भा० अनन्तर सुरा पानका लक्षण और गुण ॥ सांठी चांवल की पिठ्ठी आदिसे बनाया हुवा मद्यको सुरा कहाहै ॥ सुरा भारी बल दुग्ध पुष्टि मेद कफ को करनेवाली ॥४५॥ काविज सूजन वाय गोला ववासीर संग्रहणी मूत्र कृच्छ्र इनका नाशक है ॥ अनन्तर सुराका भेद वारुणी उसका लक्षण और गुण ॥४६॥

पुनर्नवा शिला पिष्टै र्वारुणी विहिता स्मृता ॥

संहिते स्ताल खर्जूर रसे या सापि वारुणी ॥४७॥

सुरा वद्वारुणी लघ्वी पीनसाध्मान शूलनुत् ॥

सुरा तो भेदार्थ लध्वी ति।

अथ सीधु द्वयस्य लक्षणं गुणा श्च।

भा० पुनर्नवा शिला पिष्ट से विहित वारुणी कही है ॥ और ताड खजूर इनके रसके संधान से जो होतीहै वोभी वारुणी है ॥४७॥ सुराके समान वारुणी हलकी और पीनस आध्मान शूल इनकी नाशक है ॥ सुरासे भेदार्थ हलकी ऐसा कहाहै ॥ अनन्तर दोनों सीधू का लक्षण और गुण ॥

इक्षोः पक्वैः रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्चसः ॥ आमै स्तै रेव यः सीधुः सच शीत रसः स्मृतः ॥४८॥

सीधुः पक्व रसैः श्रेष्ठः स्वराग्नि बल वर्ण कृत् ॥ वात पित्त करः सद्यः स्नेहनो रोचनो हरेत् ॥४९॥

विबन्ध मेदः शोफार्शः शोफो दर कफा मयान् ॥ तस्मा दल्प गुणः शीतः रसः संले खनः स्मृतः ॥५०

अथा सवस्य लक्षणं गुणा श्च।

भा० ईखके पक्व रससे सिद्ध सीधु और पक्व रस वोहै ॥ तथा उसी कच्चे रससे जो सीधू होताहै उसको शीत रस कहाहै ॥४८॥ पक्व रस सीधू श्रेष्ठहै वोह स्वर अग्नि बल वर्ण इनको करने वाला ॥ और वात पित्त को करने वाला तत्काल। स्नेहन रोचन होताहै ॥४९॥ और विबन्ध मेद शोफ बवासीर शोफोदर कफ के रोग इनको नाश करता है ॥ इस्से अल्प गुण शीत रस कहाहै ॥ और लेखन कहाहै ॥ ५०॥ अनन्तर आसव का लक्षण और गुण ॥

यद पक्वौष धाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥

यथा लोहास वादिः।

आसवस्य गुणा ज्ञेया वीज द्रव्य गुणैः समाः ॥

अथ नव पुराण मद्य गुणाः ॥

मद्यं नव मभिष्यन्दि त्रिदोष जनकं सरम् ॥ अहृद्यं वृंहणं न्दाहि दुर्गंधं विशदं गुरु ॥ ५१॥ जीर्णन्तदेव रोचिष्णु कृमि श्लेष्मा निला पहम् ॥ हृद्यं सुगन्धि गुण वल्लघु स्रोतो विशोध नम् ॥ ५२॥

भा० जो अपक्क औषध के जलसे सिद्ध मद्य वोह आसव है ॥ जैसे लोहा सव आदि । आसव के गुण वीज द्रव्य के गुणके समान जानना चाहिये॥ अनन्तर नया। और पुराने मद्य का गुण । नवीन मद्य अभिष्यन्दि त्रिदोष को करनें वाला सर॥ अहृद्य पुष्ट दाह को करनें वाला दुर्गन्ध विशद भारी ॥ ५१॥ और वोही जीर्ण पुराना रुचिका करनें वाला कृमि कफ वात इनका नाशक ॥ हृद्य सुगन्धि गुण युक्त हलका सोतों का शोधन करनें वाला है ॥ ५२॥

अथ सात्विकानां मद्यं पिवतां चेष्टा विशेषाः ॥ ॥

सात्विके गीत हास्या दि राजसे साहसा दिकम् ॥ तामसे निन्द्य कर्माणि निद्रा ञ्च मदिरा चरेत् ॥ ५३॥ आचरेत् कुर्य्यात् । विधिना मात्र या काले हितैरन्नै र्यथा वलम् ॥ प्रहृष्टो यः पिवे न्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ५४॥ ५५ ॥ ५४ ॥

भा० मद्य पीने वाले सात्विकादि योंके चेष्टा विशेष । सात्विक के गीत हास्य आदि राजसमें साहसा दिक ॥५३॥ तामसमें निन्द्य कर्म और निद्रा इनको मदिरा करती है ॥ विधि और मात्रा से समय पर हित अन्न के साथ वलानुसार ॥ हर्ष युक्त हुवा जो पीताहै उसको मद्य अमृत के समान जानना चाहिये ॥ ५४॥

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथै वान्नं तथा स्मृतम् ॥ अयुक्ति युक्तं रोगाय युक्ति युक्तं यथा मृतम् ॥ ५५ ॥

अथ मद्यानां गन्धनाशनोपायः॥

मुस्तैल वालु गद जीरकधान्य केलं। यश्चर्व यन् स दसि वाचं माभिव्य नक्ति॥ स्वाभा विकं मुखज मुज्झति पूति गन्धं गन्धञ्च मद्यल शुनादि भवञ्च नूनम्॥ ५६॥ इति श्री भाव प्रकाशे सन्धान वर्गः॥

भा॰ मद्य स्वभाव से जैसे अन्न वैसे कहाहै ॥ लेकिन वेतर कीव से पीया हुवा रोग को करता है और तर कीव के साथ पीया हुवा अमृत के समान होताहै ॥ ५५॥

अनन्तर मद्यों का गन्ध नाशन उपाय ॥ ॥ नागर मोथा लालुका कुट जीरा धनियां इलाय ची इनको चबाकर जो सभामें बोले उसकी स्वाभा विक मुखकी गन्धि होतीहै और दुर्गंध तथा मद्यल सुन आदिकी गन्ध निश्चय दूर होतीहै ॥ ५६॥

इति भाव प्रकाशे सन्धान वर्गः॥ ५॥

अथ मधुवर्गः

तत्र मधुनो नामानि गुणा श्च।

मधु माक्षी कमाक्षौद्रं क्षौद्रं सारघ्य मी रितम्॥ मक्षिका वरटी भृङ्ग वान्त पुष्पर सोद्भवम्॥ ५७॥ मधु शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेखनम्॥ चक्षुष्यं न्दीपनं स्वर्य्यं व्रण शोधन रोपणम्॥ ५८॥ सौकुमार्य्य करं सूक्ष्मं परं स्रोतो विशोधनम्॥ कषाया नुरसं ह्लादि प्रसाद जनकं परम्॥ ५९॥

भा॰ अनन्तर मधु वर्गः। उसमें मधुके नाम और गुण। मधु माक्षी कमाक्षीक क्षौद्र सारघ्य येह मधुकेनाम है॥ मक्खी वर्रै भौंवरा इनका गेरा हुवा पुष्परस से उत्पन्न है॥ ५७॥ मधु शीतल हलका मधुर रूखा काबिज लेखन। नेत्रके हित दीपन स्वरको अच्छा करने वाला व्रण शोधन रोपण ॥ ५८॥ सुकुमारता को करनें

वाला सूक्ष्म अत्यन्त सोतों का शोधन व पीछे से कसैला हर्षको देनें वाला और प रम स्वच्छता को करनें वाला ॥ ५९ ॥

वर्ण्यं मेधा करं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत् ॥ कुष्ठार्शः कास पित्तास्त्र कफ मेह क्लम क्रमीन् ॥ ६० ॥ मेदस्तृ ष्णा वमि श्वास हिक्कातीसार विड् ग्राहान् ॥ दाह क्षत क्षयांस्तत्तु योग वाह्य ल्प वात लम् ॥ ६१ ॥

अथ मधु भेदाः । माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पैत्तिकं छात्र मित्यपि ॥ आर्घ्य मौद्दालकं दाल मित्यष्टौ मधु जातयः ॥ ६२ ॥ अथ तेषां लक्षणं गुणा श्च ॥

भा० वर्णके हित कान्ति को करनें वाला शुक्र को करनें वाला विशद रोचन है और ॥कुष्ट ववा सीर कास रक्त पित्त कफ प्रमेह क्लम क्रमि इनको ॥ ६०॥ और मेद तृषा वमन श्वास हिचकी, अतीसार मल ग्रह इनको तथा ॥ दाह क्षत क्षय इनको भी दूरकरता है और योग वाही अल्प वात को करनें वाला है ॥ ६१॥ अनन्तर मधु के भेद। माक्षिक भ्रामर क्षौद्र पैत्तिक छात्र ॥ आर्घ्य औद्दाल क और दाल इस प्र० कार आठ मधुकी जातीहैं ॥ ६२॥ अनन्तर उनके लक्षण और गुण ।

तत्र माक्षि कस्य लक्षण म् ।

माक्षिकाः पिङ्ग वर्णा स्तु महत्यो मधु माक्षि का ॥ ता भिः कृतं तैल वर्णं माक्षिकं परि कीर्त्ति तम् ॥ ६३ ॥ माक्षिकं मधुषु श्रेष्ठं नेत्रा मय हरं लघु ॥ कामलार्शः क्षत श्वास कास क्षय विना शनम् ॥ ६४ ॥

अथ भ्राम रस्य लक्षणं गुणा श्च ॥

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः षट्प देभ्यो ऽलिभिश्चितम् निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतम् ॥ ६५ ॥

भा० अन्ते माक्षिक का लक्षण। माक्षिक पिङ्ग वर्ण बड़ी मधु मक्खी होतीहै ॥ उनसेकिया हुवा तेल के समान वर्ण ऐसे को माक्षिक कहाहे ॥ ६३॥ माक्षिक मधु श्रेष्ठ नेत्ररोगका नाशक हलका होताहै और कामला बवासीर क्षत श्वास कास क्षय इनका नाशक हे ॥ ६४॥ अनन्तर भ्रामर का लक्षण और गुण ॥ किंचित् सूक्ष्म प्रसिद्ध षट पद भँव ऐसे संचय किया हुवा ॥ निर्मल स्फटिक के समान जो होताहे। उसको भ्रामर कहतेहैं ॥ ६५॥

भ्रामरं रक्त पित्त घ्नं मूत्र जाड्य करं गुरु ॥ स्वादु पाक म
भिष्यन्दि विशेषा त्पिच्छिलं हिमम् ॥ ६६ ॥

अथ क्षौद्रस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

माक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्रा ख्यास्तत्कृतं मधु ॥
मुनिभिः क्षौद्र मित्युक्तं तद्वर्णात् कपिलं भवेत् ॥ ६७
गुणै र्माक्षिक वत् क्षौद्रं विशेषा न्मेहना शनम् ॥

अथ पौत्ति कस्य लक्षणं गुणाः ॥

भा० भ्रामर रक्त पित्त का नाशक मूत्र जड़ता इनको करने वाला भारी ॥ पाकमें मधुर अभिष्यन्दि विशेष करके पिच्छिल शीतल होताहे ॥ ६६॥

अनन्तर क्षौद्र का लक्षण और गुण ॥ ॥

सूक्ष्म कपिल क्षुद्र नाम जो मक्षिका होती हे उनका किया हुवा जो मधुहे ॥ उस्को मुनियोंनें क्षौद्र ऐसा कहाहे और वोह वर्ण में कपिल होताहे ॥ ६७॥ गुणमे माक्षिक के समान क्षौद्र होताहे विशेष करके प्रमेह नाशक है ॥

अनन्तर पौत्तिक का लक्षण और गुण ॥ ॥

कृष्णा या मशकोपमा लघुतरा प्रायो महा पीडिका ॥
वृक्षा नान्तरु कोट रान्तर गताः पुष्पा सवं कुर्वते ॥ ६८
तास्तज्ज्ञैरिह पूतिका निगदिता स्ताभिः कृतंसर्पिषा
तुल्यंयत् मधु तद्वने चरजनैः संकीर्त्तितं पौत्तिकम् ६९

पौत्तिकं मधु रूक्षोष्णं पित्त दाहास्र वात कृत् ॥ विदा
हि मेह कृच्छ्र घ्नं ग्रन्थ्यादि क्षत शोषि च ॥ ७० ॥

भा० जो काली मच्छर के समान बहुत छोटी प्राय: बड़ी पीड़िका ॥ पुराने वृक्ष के खोड़ में रहने वाली पुष्पके आसव को करती है ॥ ६८ ॥ उन को उनके जानने वाले मनुष्योंने यहां पर पुत्तिका ऐसा कहाहै ॥ उनका बनाया हुवा घृत के समान ॥ जो मधु होताहै उसको बनके विचर ने वाले जनोंने पौत्तिक कहाहै ॥ ६९ ॥ पौत्तिक मधु रूखा उष्ण पित्त दाह रक्त वात इनको करनेवाला ॥ विदाहि और प्रमेह मूत्र कृच्छ्र इनका नाशक तथा गांठ आदि क्षत शोषि भीहै ॥ ७० ॥

छात्रस्य लक्षणं गुणाः ॥

वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हिम वतो वने ॥ कुर्व
न्ति छत्र का कारं तज्जं छात्रं मधु स्मृतम् ॥ ७१ ॥
छात्रं कपिल पीतं स्यात् पिच्छिलं शीतलं गुरु ॥ स्वादु
पाकं कृमि श्वित्र रक्त पित्त प्रमेह जित् ॥ ७२ ॥
भ्रम तृण्मोह विष हृत् तर्पणं च गुणाधिकम् ॥

अथार्घ्यस्य लक्षणं गुणाः ।

मधूक वृक्ष निर्यासं जरत्कार्वाश्रमोद्भवम् ॥ स्रव
न्त्या र्घ्य न्तदा ख्यातं श्वेतकं मालवे पुनः ॥ ७३ ॥
तीक्ष्णा तुण्डा स्तु या पीता मक्षिकाः षट् पदोपमाः ।
आर्घ्यास्तास्तत्कृतं यत्तु दार्घ्य मित्य परे जगुः ॥ ७४
आर्घ्य मध्वति चक्षुष्यं कफ पित्त हरं परम् ॥ कषा
यं कटुकं पाके तिक्तञ्च बल पुष्टि कृत् ॥ ७५ ॥

भा० ॥ ॥ छात्र का लक्षण और गुण ॥ ॥ वर्रे कपिल पीली प्राय: हि

मान्लयके बनमें होतीहै ॥ वोह छाते के आकार को बनाती है। उसका मधु ॥ छावक हो ता है ॥ छात्र कपिल पीला होताहै और पिच्छिल शीतल भारी ॥ पाकमें मधुर होतीहै ॥ और कृमि श्वित्र रक्त पित्त प्रमेह इनको जीतने वाला ॥ ७२॥ तथा भ्रम तृषा मोह विष इनका नाशक तर्पण गुण में अधिक होता है ॥ ॥ ॥ अनन्तर आर्घ्यका लक्षण और गुण ॥ ॥ ॥

महुवे के वृक्षका गोन्द जरन्कार्या भ्रम में उत्पन्न ॥ फिरते है सफेद उसको आर्घ्य ऐसा कहाहै और मालवे में भी होताहै ॥ ७३॥ जो भौरे के समान मक्खिया तीक्ष्ण मुख वाली पीली होतीहै ॥ वोह आर्घ्य है उनका किया हुवा जो मधु है उस को और आचार्य्य अर्घ्य कहते हैं ॥ ७४॥ आर्घ्य मधु अति नेत्रके हित और अत्यन्त कफ पित्त का नाशक है ॥ और कसेला पाक में कटु तिक्त बल पुष्टिको करने वाला है ॥ ७५॥

अथौद्दालकस्य लक्षणं गुणाः।

प्रायो वल्मी कमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्प कीट काः।
कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत्स्या दौद्दालकं मधु ॥ ७६॥
औद्दालकं रुचि करं स्वर्य्यं कुष्ठ विषा पहम् ॥ कषाय मुष्ण मम्लञ्च कटु पाकञ्च पित्त कृत् ॥ ७७

अथ दालस्य लक्षणं गुणाः ॥

भा० अनन्तर औद्दालका लक्षण और गुण। प्राय लता ओंके बीच रहनेवाली कपिल छोटे कीड़े होतेहैं ॥ वोह थोड़ा कपिल वर्ण मधु करती है उसको औद्दालक मधु कहते हैं ॥ ७६॥ औद्दालक रुचि को करने वाला स्वरके हित कुष्ट विष का नाशक ॥ कसेला उष्ण खट्टा पाक मे कटु पित्त को करने वाला होताहै ॥ ७७॥

अनन्तर दाल का लक्षण और गुण ॥

संस्रुत्य पतितं पुष्पा द्यत्तु पत्रो परि स्थितम् ॥ मधुराम्ल कषायञ्च तद्दालं मधु कीर्त्ति तम् ॥ ७८ ॥ दालं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफा पहम् ॥

कषाया नुरसं रूक्षं रुच्यं छर्दि प्रमेह जित्॥ ७९ ॥अ
धिकं मधुरं स्निग्धं बृंहणं गुरु भारिकम् ॥
[लघु पाके गुरु भारिकं तुलितम् । अथ नव पु
राण मधु गुणाः ॥]

भा० जो पुष्प से चूकर पत्ते पर गिरा ठहरा रहता है ॥ मीठा खट्टा कसेला उस को दाल मधु कहते हैं ॥ ७८॥ दाल मधु हलका दीपन कफ नाशक कहा है। और पीछे से कसेला रूखा रुचि को करने वाला और वमन तथा प्रमेह को जीतने वाला है ॥ ७९॥ बहुत मीठा चिकना पुष्ट तोल में भारी ॥
पाक में हलका और तोल में भारी होती है । अनन्तर नये और पुराने मधु के गुण ॥

नवं मधु भवेत् पुष्टै नाति श्लेष्म हरं सरम् ॥ पु
राणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्न मति लेखनम् ॥ ८० ॥
मधुनः शर्करा याश्च गुड स्यापि विशेषतः ॥ एक स
म्वत्सरे त्वर्त्ति पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥ ८१॥
अथ मधुनः शीतस्य गुणाधिक्य मुष्णतायां निषेधः

भा० नया मधु पुष्ट होता है बहुत कफ नाशक नहीं होता तथा सर होता है ॥ पुराना काबिज रूखा मेद नाशक अति लेखन होता है ॥ ८०॥ मधु की शर्करा और विशेष करके गुड़ की भी शर्करा ॥ एक बरस के बाद पुरानी पंडित लोग कहते हैं ॥ ८१॥ अनन्तर शीत मधु का गुणाधिक्य और उष्णता में निषेध कहते हैं ॥

विष पुष्पा दपि रसं सविषा भ्रमरा दयः ॥ गृही
त्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुण वन्मधु ॥ ८२॥
विषान्वयात्तु दुष्टं तु द्रव्ये णोष्णेन वा सह ॥ उष्णा
र्त्तस्योष्ण काले च स्मृतं विषसमं मधु ॥ ८३॥

भा० विष पुष्प सेवी रस को विष वाले भ्रमरादि क ॥ लेकर मधु करते हैं तिस्से भीत गुण वाला मधु होता है ॥ ८२॥ विषसे उत्पन्न होने से वोह मधु उष्ण । द्रव्य के साथ ॥ उष्ण से पीड़ित को उष्ण कालमें विषके समान मधु कहा है॥ ८३॥

अथ मयनम् । मयनन्तु मधुच्छिष्टं मधुशेषञ्च । सिकूथकम् ॥ मध्वाधारो मदनकं मधूषित मपिस्मृतम् ॥ ८४॥ मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतघ्नं व्रण रोपणम् भग्नसन्धान कृद्वात कुष्ठ वीसर्प रक्तजित् ॥ ८५॥

इति श्री भाव प्रकाशे मधु वर्गः ।

भा० अनन्तर मोम ॥ मयन मधुच्छिष्ट मधु शेष सिकूथक ॥ मध्वाधार मदनक मधूषित येह मोम के नाम कहे हैं ॥ ८४ ॥ मोम मृदु चिकना भूतका नाशक व्रण रोपण ॥ टूटे हाड को जोड़ने वाला वात कुष्ट वीसर्प रक्त इनको जीतनेवाला है ॥ ८५॥ ॥ इति भाव प्रकाशे मधु वर्गः ॥ ॥

अथेक्षुवर्गः

तत्रादौ इक्षो र्नामानि गुणाश्च ॥

इक्षुर्दीर्घ च्छदः प्रोक्तस्तथा भूमि रसोऽपि च ॥ गुड़ मूलोऽसि पत्रश्च तथा मधु तृणः स्मृतः ॥ १॥ इक्षवो रक्त पित्तघ्ना बल्या वृष्या कफ प्रदाः ॥ स्वादु पाक रसाः स्निग्धा गुरवो मूत्र ला हिमाः ॥ २॥

अथेक्षुभेदाः

पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वंशकः शतपोरकः ॥का

न्तारस्तापसेक्षुश्च काण्डेक्षुः सूचिपत्रकः ॥३॥

नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकः इत्ये

ता जातयस्तेषां कथयामि गुणानपि ॥ ४ ॥

अथ श्वेत पौण्ड्रा भौर री गुणाः ॥

भा॰ अनन्तर ईख के भेद । पौण्ड्रक भीरुक वंशक शतपोरक ॥ कान्तारता पसेक्षु काण्ड क्षु सूचि पत्रक ॥३॥ नैपाल दीर्घ पत्र नील पोर और कोशक ॥ इस प्रकार ये जाति उनकी है और गुणों को कहते हैं ॥४॥

अनन्तर सुफेद पौण्ड्रा भौर री उनके गुण ॥

वातपित्तप्रशमनो मधुरो रसपाकयोः ॥ सुशीतो बृं-

हणो बल्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा ॥५॥

अथ कारेया कुशि क्षार गुणाः ॥

कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः ॥ ॥

कान्तारेक्षु गुणाः ॥ कान्तारेक्षुर्गुरुर्वृष्यः श्लेष्म

लो बृंहणः सरः ॥ वंशो या गुणाः ॥ दीर्घपोरः सु

कठिनः सक्षारो वंशकः स्मृतः ॥ शतपोरक गुणाः ।

शतपर्वा भवेत्किञ्चित्कोशकार गुणान्वितः ॥ विशे

षात्किञ्चिदुष्णश्च सक्षारः पवनापहः ॥६॥

भा॰ वात पित्त का शमन मधुर रस और पाक में ॥ सुशीत पुष्ट बल के हित पौं ड्रा और भौररी होते हैं ॥५॥ अनन्तर काले गन्ने के गुण ॥ ॥

काला गन्ना भारी शीतल रक्त पित्त क्षय इनका नाशक है ॥ कान्तार ईख के गुण ॥ कान्तार ईख भारी शुक्र को करने वाला कफ को करने वाला -

पुष्ट सर होताहै ॥ अनन्तर लंबी पोर का ईख ॥ बहुत कठिन क्षार के सहित वंशक कहा गया है ॥ अनन्तर श्वेत पोर का गुण ॥ श्वेत पोर कुछ कोश कारके समान गुणमें होताहै ॥ विशेष करके कुछ गरम क्षार के सहित वात नाशक है ॥ ६॥

तापसेक्षुगुणाः ॥

तापसे क्षुर्भवेन्मृद्वी मधुरा श्लेष्म कोपनी ॥ तर्पणी रुचि कृच्चापि वृष्याच बल कारिणी ॥ ७ ॥

काण्डेक्षुगुणाः । एवं गुणोस्तु काण्डेक्षुः स तु वात प्रकोपणः ॥ [अथ सूची पत्र नैपाली दीर्घ पत्र नील पोराणां गुणाः ॥] सूची पत्रो नील पोरो नैपालो दीर्घ पत्रकः ॥ ८ ॥ वातलाः कफ पित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥ [मनो गुप्ता गुणाः] मनो गुप्ता वात हरी तृष्णा मय विनाशिनी ॥ सुशीता मधुरा तीव रक्त पित्त प्रणाशिनी ॥ ९ ॥

अथ वाल युव वृद्धेक्षु गुणाः ।

भा॰ अनन्तर ताप से क्षु के गुण । तापसे क्षु मुलायम मधुर कोप को करनें वाला ॥ तर्पण रुचि को करनें वाला शुक्र को करनें वाला बल को करनें वाला है ॥ ७ ॥ कांडे क्षु का गुण । ऐसे ही गुण वाला काण्डे क्षु होताहै और वोह वात को करनें वाला है ॥ अनन्तर सूची पत्र नैपाली दीर्घ पत्र नील पोर इनके गुण ॥ सूची पत्र नील पोर नैपाल दीर्घ पत्रक ॥ ८ ॥ येह वात को करनें वाले कफ पित्त के नाशक कषाय के सहित विदाहि होते हैं ॥ मनो गुप्त के गुण ॥ मनो गुप्ता वात नाशक तृषा रोग का नाशक ॥ शीतल मधुर अतीव रक्त पित्त की नाशक है ॥ ९ ॥ अनन्तर वाल युवा वृद्ध ऐसे ईख के गुण ॥

वाल इक्षुः कफं कुर्य्यान्मेदो मेह कर श्च सः ॥ ५ ॥

युवा तु वात हृत् स्वादु रीष त्तीक्ष्ण श्च पित्त कृत् ॥१०॥
रक्त पित्त हरो वृद्धः क्षत हृद्बल वीर्य्य कृत् ॥

भा० वाल ईख कफ को करता है और मेद मेह को करनें वाला वोह है ॥ युवा वात नाशक मधुर थोड़ा तीखा पित्त नाश होताहै ॥१०॥ वृद्ध रक्त पित्त का नाशक क्षत नाशक और वल वीर्य को करनें वालाहै ॥

अथाङ्ग भेदेन भेदः ॥

मूले तु मधुरो ऽत्यर्थं मध्ये ऽपि मधुरः स्मृतः ॥ अग्रे ग्रन्थिषु विज्ञेय इक्षुः पटु रसो जनैः ॥११॥

अथ दन्त पीडितेक्षु रसस्य गुणा ॥

दन्त निष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्र नाशनः ॥ शर्करा सम वीर्य्यः स्यादवि दाही कफ प्रदः ॥१२॥

अथ यन्त्र पीडितेक्षु रसस्य गुणाः।

भा० अनन्तर अंगभेदसे भेद। मूल में अत्यन्त मधुर मध्य मेंभी मधुर कहा है॥ अग्र में और ग्रन्थि में ईख लवण रस जन जानते है॥ ११॥ अनन्तर दन्त पीड़ित ईख के रस का गुण। दन्त पीड़ित ईखका रस रक्त पित्त का नाशक है॥ शर्करा के सम वीर्य होता है और अवि दाही कफ को करनें वालाहै॥१२॥
अनन्तर कोल्हू में पेरे हुवे ईख के रस का गुण ॥ × ॥

मूलाग्रजन्तु ग्रन्थ्यादि पीडनान्मल सङ्करात् ॥ किंञ्चित्काल विधृत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः ॥ १३॥ तस्माद्विदाही विष्टम्भी गुरुः स्याद् यान्त्रिको रसः॥ अथ पर्युषितेक्षु रसस्य गुणाः ॥

रसः पर्युषितो नेष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरुः ॥ कफ पि-

न्नकरः शोषी भेद नश्यति मूत्रलः ॥ १५ ॥

अथ पक्कस्येक्षु रसस्य गुणाः ॥ ० ॥

भा० मूल अग्र गांठ आदि के पीड़न से मल संकर से ॥ कुछ देर रखनें से कोल्हू का बिगड़ जाता है ॥१३॥ इस वास्ते बिदाही विष्टंभी भारी कोल्हू का रस होता है ॥ अनन्तर वासी ईख के रस का गुण ॥ वासी रस अच्छा नहीं होता और खट्टा वात नाशक भारी ॥ कफ पित्त को करनें वाला शोष को करनें वाला है ॥१४॥

अनन्तर पके हुवे ईख के रस का गुण ॥

पक्को रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफ वात नुत् ॥ गु
ल्मा नाह प्रशमनः किञ्चि त्पित्त करः स्मृतः ॥ १५ ॥

अथेक्षुरस स्य विकाराणां गुणाः ॥

इक्षो र्विकारा स्तृड् दाह मूर्च्छा पित्तास्र नाशनाः ॥
गुर वो मधुरा बल्याः स्निग्धा वात हराः सराः ॥ १६
वृष्या मोह हराः शीता वृंहणा विष हारिणः ॥

अथ फाणित। इरकाराव च्छो था इति लोके।

भा० पके का रस भारी चिकना तीखा कफ वात का नाशक ॥ और वाय गोला अफारा इनका शमन करनें वाला कुछ पित्त को करनें वाला कहा है ॥१५॥ ॥ ॥ अनन्तर ईख के रस के बिकारों का गुण ॥ ॥ ईख के विकार तृषा दाह मूर्च्छा रक्त पित्त इनके नाशक हैं ॥ भारी मधुर बल के हित चिकने वात नाशक सर हैं ॥१६॥ शुक्र को करनें वाला मोह नाशक शीतल। पुष्ट विष नाशक है ॥

तस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

इक्षोः रसस्तु यः पक्कः किञ्चि द्गाढो बहु द्रवः ॥ स रा
वे क्षुवि कारेषु ख्यातः फाणित संज्ञया ॥ १७ ॥

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं कफ शुक्र कृत् ॥ वात पित्त श्रमान् हन्ति मूत्र वस्ति विशोधनम् ॥ १८ ॥

अथ मत्स्य ण्डी । राब काकब खण्ड राब इति लोके । तस्यं लक्षणं गुणा श्च ।

भा॰ अनन्तर राब । उसका लक्षण और गुण । ईख का रस पका हुवा कुछ गाढा बहुत पतला ॥ वोही ईख के विकारों मे फाणित नामसे प्रसिद्ध हे ॥ १७ ॥ राब भारी अभिष्यन्दि पुष्ट कफ शुक्रको करनें वाली ॥ वात पित्त श्रमों की नाश कर हे और मूत्र वस्ति शोधन है ॥ १८ ॥ अनन्तर खांड राब । उसका लक्षण और गुण ॥

इक्षो रसो यः सम्पक्को घनः किञ्चिद् द्रवान्वितः मन्दं यत् स्यन्दते तस्मा त्न्मत्स्यण्डी निगद्यते ॥ १९ ॥ मत्स्यण्डी भेदिनी बल्या लव्वी पित्तानिलापहा ॥ मधुरा बृंहणी वृष्या रक्त दोष पहा स्मृता ॥ २०

अथ गुडस्य लक्षणं गुणा श्च ॥

भा॰ ईखका रस जो पका हुवा गाढा कुछ पतला ॥ जो थोड़ा द्रि घलताहे । इस वास्ते उसको मत्स्यंडी कहेते हैं ॥ १९ ॥ मत्स्यंडी भेदन बलके हित हलकी पित्त वात की नाशक ॥ मधुर पुष्ट शुक्र को करनें वाली रक्त दोष की नाशक कहीहे २० ॥ अनन्तर गुड का लक्षण और गुण ॥

इक्षो रसो यः सम्पक्को जायते लोष्ट वद्दृढः ॥ स गुडो गौड देशे तु मत्स्यण्ड्येव गुडो मतः २१ गुडो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्र शोधनः ॥ नाति पित्त हरो मेदः कफ कृमि बल प्रदः ॥ २२ ॥

अथ पुराण गुडस्य गुणाः ॥

भा० ईखका रस जो पका हुवा ढेले के मानिन्द दृढ होताहै ॥ वोह गुड गौड देश में गत्स्यंडी को गुड कहेते हैं ॥ २३॥ गुड शुक्र को करनें वाला भारी चिकना वात नाशक मूत्रका शोधन करनें वाला ॥ न अति पित्त का नाशक मेद कफ कृमि बल इनको करनें वाला है ॥ २२॥ अनन्तर पुरानें गुडका गुण ॥

गुडो जीर्णो लघुःपथ्यो ऽन भिष्यन्द्य ग्नि पुष्टि कृत्
पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नो ऽसृक प्रसाद नः ॥ २३ ॥
नवीन गुडस्य गुणाः । गुडो नवः कफ श्वासकास कृमि करो ऽग्नि कृत् ॥ श्लेष्माण माशु विनि हन्ति सदार्द्र केण पित्तं निहन्ति च तदेव हरीत कीभिः ॥ शुण्ठ्या समं हरति वात मशेष मित्यं दोषत्रय क्षयक राय नमो गुडाय ॥२४॥ अथ खांड गुणाः ॥

भा० पुराना गुड हलका पथ्य अनभिष्यन्दि अग्नि पुष्टि को करनें वाला ॥ पित्त नाशक मधुर शुक्रको करनें वाला वात नाशक रुधिर को स्वच्छ करनें वाला है ॥ २३॥ अनन्तर नये गुड का गुण ॥ नया गुड कफ श्वास कास कृमि को करनें वाला अग्नि दीपन है ॥ गुड अद्रक के साथ शीघ्र कफ को नाश करता है हड्के साथ पित्त को नाश करता है सोंठ के साथ अशेष वात को नाश करता है ऐसे त्रिदोष नाशक गुड को नमस्कार ॥ २४॥ अनन्तर खांड का गुण ॥

खण्डन्तु मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं बृंहणं हिमम् ॥ वात पित्त हरं स्निग्धं बल्यं वान्ति हरं परम् ॥ २५॥
खण्ड मति प्रसिद्धम् । अथ सिता । चीनी इति लोके प्रसिद्धा । तस्य लक्षणं गुणाः । खण्ड न्तु सिकता रूपं सुश्वेतं शर्करा सिता ॥ सितासु मधुरा रुच्या वात पित्ता स्र दाह हृत ॥ २६ ॥

भा० खांड मधुर शुक्र को करनें वाली नेत्र के हित पुष्ट शीतल ॥ वात पित्त की नाशक चिकनी बलके हित परम वमन की नाशक है ॥ २५॥ खांड अति प्रसिद्ध है । अनन्तर चीनी । इस प्रकार लोक में प्रसिद्ध है ॥ उसका लक्षण और गुण ॥ खांड तो बालू सरीखी होतीहै और बहुत सुफेद शर्करा को चीनी कहते हैं चीनी बहुत मधुर रुचि को करनें वाली और वात रक्त पित्त दाह इनको नाश करनेंवाली है ॥ २६ ॥

सूर्च्छा छर्दि ज्वरान् हन्ति सुशीता शुक्र कारिणी ॥

अथ गुड़ शर्करा मिश्री द्वयो र्गुणाः ॥

भवेत्तुष्य सिता शीता रक्त पित्त हरी लघुः ॥ सितोपला सरा लघ्वी वात पित्त हरी हिमा ॥ २७॥

मधु खराड गुणाः । मधुजा शर्करा रूक्षा कफ पित्त हरीगुरुः ॥ छर्द्यतीसार तृड् दाह रक्त हृत्तुवरा हिमाः॥ २८॥ यथा यथैया नैर्मल्यं मधुरत्वं तथा तथा ॥ स्नेह लाघव शैत्यादि सरत्वञ्च तथा तथा ॥२९

॥ इति श्री भाव प्रकाशे इक्षु वर्गः समाप्तो द्रव वर्गः ॥

भा० और मूर्च्छा वमन ज्वर इनको नाश करती है बहुत शीतल शुक्र कोकरनें वाली है ॥ अनन्तर गुड शर्करा मिश्री दोनों के गुण । गुड शर्करा शीतल रक्त पित्त की नाशक हलकी होती है ॥ और मिश्री सर हलकी वात पित्त की नाशक शीतल है ॥२७॥ अनन्तर मधु खंडके गुण । मधुकी शर्करा रूखी कफ पित्त की नाशक भारी ॥ वमन अतीसार तृषा दाह रक्त इनकी नाशक कसेली शीतल होतीहै ॥ २८॥ जैसी जैसी सफाई होतीहै वैसी मधुरता और चिकनाई हलका पन शैत्य आदि और सरत्व होता है ॥ २९॥

इति भाव प्रकाशे इक्षुवर्गः ॥

अथानेकार्थनामवर्गः

(क) तत्र द्व्यर्थानि नामानि। यथा। अश्मन्तकः। अम्ललोणिकाकोविदारश्च कठिल्लकः कारवेल्लो रक्त पुनर्नवा च कुलकः। पटोलः कुपीलुश्च कुचिला इतिलोके प्रसिद्धः। कोशातकी। महाकोशातकी राजकोशातकी च दीप्यकः। यवान्यज मोदा च। मरुचकः फणिज्जकः पिण्डीतकः। मरुवकः। मरुषा इतिलोके पिण्डीतकः मयन फर इति लोके मधूलिकः। मूर्वा जल यष्टीच। रुचकम्

भा० — अनन्तर अनेकार्थनामवर्गः। (क) उस्में दो अर्थके नाम जैसे। अश्मन्तक। लोनिया साग और लाल कचनार दोनो का येह एक नाम है किठिल्लक। लाल गदह पूरना और करेला। कुलक। पटोल कुचिला। कोशातकी दोनो तुरई। दीप्यक। अजमोदा। अजवाइन। (मरुचक) मरसा मयन फल (मधूलिक) मरोड़ फली जलयष्टी। (रुचक)

सोवर्चलं बीजपूरकञ्च। लोणिका। लोणिशाकञ्चाङ्गेरीशाकञ्च वश्रुकः क्षारलवणश्च वालहीकम्। कुङ्कुमं हिङ्गु च। वितुन्नकम्। धान्यकं तुत्थञ्च। स्वादुकण्टकः। गोक्षुरो विकङ्कतश्च। अग्निमुखी। भल्लातकी लाङ्गलीच। अग्नि

शिखम् । कुङ्कुमं कुसुम्भश्च । अज शृङ्गी । मेष शृङ्गीच । प्रियङ्गुः । फलिनीकङ्गूश्च । भृङ्गः भृङ्गराजस्त्वकच । समङ्गा । मञ्जिष्ठा लज्जालूश्च । अमोघा । विडङ्ग पाटलाच । मोचा । कदली

भा० – सोंचल विजोरा (नोरिङ्गका) लोनिया चूक । (वसुक) लाल आंक खारीनमक । (वाल्हीक) । केसर हींङ्ग । वितुन्नक । धनिया लीला थोथा । स्वादुकंटक । गोखरू विककत । अग्निमुखी भिलावा करिहारी (अग्निशिख) केसर कुसुम । अजशृंगी । मेडासींङ्गी काकड़ासींङ्गी । प्रियङ्गु । कङ्गनी फूलप्रियंगू । भृङ्ग । भाङ्गरा दारचीनी । समङ्गा । मजीठ । छुईमुईला दरखत । अमोघा । वायविडंग पाटला । (मोचा) केला ।

शाल्मलिश्च । कुटन्नटः । श्योनाकः कैवर्त्तीमुस्त न्ञ्च । कुनटी । धनिकामनःशिलाच । घोण्टा । पूगो वदरीच । त्रिपुटा । त्रिवृत्सूक्ष्मैलाच । शटी । कर्चूरगन्धपलाशी च । दन्तशठः । जम्बीरः कपित्थश्च । दन्तशठा । अम्लिकाचाङ्गेरीच । अरुणाम् । मञ्जिष्ठा अति विषाच । कणा । पिप्पली जीरकञ्च । तालपर्णी । मुशली मुराच । पीलुपर्णी ।

भा० – सेमल । कुटन्नट । सोनापाठा जलमोथा (कुनटी) धनिया मैनसिल । घोण्टा । सुपारी वेर । त्रिपुटा । निसोथ । छोटी इलायची । शटी । कचूर गन्ध पलाशी । दन्त शठ । जंवीरी कैथ । (दन्त शठा) । इमली चूक । अरुणा । मजीठ । अतीस । (कणा) पीपल जीरा । तालपर्णी मुसली मुरा । पीलुपर्णी

मूर्वा विम्बीच । ब्राह्मणी । भार्ङ्गीस्फुका च । अपरा

जिता। विष्णुक्रान्ता शालिपर्णीच। आस्फोता। अपराजिता सारिवाच। पारावतपदी। ज्योतिष्मती काकजङ्घाच। शारदी। सारिवा जलपिप्पलीच। उग्रगन्धा। वचा यवानीच। परिव्याधः। कर्णिकारो जलवेतसश्च। अञ्जनम्। स्रोतोऽञ्जनं सौवीरञ्च। अग्निः चित्रको भल्लातश्च। कृमिघ्नः। विडङ्गो हरिद्राच। तेजनः। शरो वेणुश्च। तेजनी। तेजवती मूर्वाच। रोचनः। कम्पिल्यः रोचनाच। रोचना। गोरोचना। राजादनम्। क्षीरिका प्रियालश्च। शकुलादनी। कटुका जलपिप्पलीच। गोलोमी। श्वेतदूर्वा वचा। पद्मा। पद्मचारिणी भार्ङ्गीच। श्यामा

भा० – मरोड़फली कुन्दरू। (ब्राह्मणी) भारंगी स्टका। अपराजिता) विष्णुकन्ता साल पर्णी। आस्फोता। कुरंट सारिवा। पारावतपदी। माल कङ्गनी काक जंघा। शारदी। सारिवा जल पीपल। उग्रगन्धा। वच अजवायन। परिव्याध। असलतास जलवेत। अंजन। रसौत सुरमा। अग्नि। चित्रक भिलावा। कृमिघ्न। वायविडंग हलदी (तेजन) शर पन बांस। (तेजनी) मरोड़फली। मालकंगनी (रोचन) खूबकला गोरोचन। रोचना। गोरोचन (राजादन। खिरनी चिरौंजी। शकुलादनी। कुटकी जलपीपल। गोलोमी। सफेद दूव वच। पद्मा। कमलिनी भारंगी। श्यामा।

सारिवा प्रियङ्गुश्च। धान्यम्। धान्याकं शाल्यादिश्च। सहवीर्य्या नीलदूर्वा महाशतावरीच। सेव्यम्। उशीरं लामज्जकञ्च। उदुम्बरः। जन्तु

फलं ताम्रञ्च । ऐन्द्री । इन्द्रवारुणी इन्द्राणीच । कटम्भरा । कटुका श्योनाकञ्च । क्षारः । यवक्षारः स्वर्जिकाच । गण्डीरः शाकविशेषोगण्डीनीति लोके गण्डारी मञ्जिष्ठाच । गन्धारी । दुरालभा । गन्धपलाशीच । चित्रा । इन्द्रवारुणी दृहद्दन्तीच तुण्डिकेरी । कार्पासी विम्बीच । धारा । गुडूची क्षीरकाकोली च । बालपत्रः । खदिरो यवासश्च । वारि । बालकमुदकञ्च । अङ्गारवल्ली । भार्गीसुञ्जाच । अमृणालम् । लामज्जकम् उशीरञ्च । कुण्डली गुडूचीकोविदारश्च । गन्धफली । प्रियङ्गुः चम्पककलिकाच । दीर्घमूलः । यवासः

भा० – सारिवा प्रियंगु । (धान्य) धनियाधान । सहवीर्या । नीली दूब बड़ीसनावर । सेव्य । खस पीली ख । उडुंवर । गूलर ताम्बा । ऐन्द्री । इन्द्रायन इन्द्राणी । कटंभरा । कुटकीसोनापाठा । (क्षार) जवाखार सज्जीखार । (गण्डीर) गांडर मजीठ । (गन्धारी) जवासा गन्धपलाशी (चित्रा) इन्द्रायन वडी दन्ती । तुंडिकेरी । कपासी कुन्दरू (धारा) गिलो क्षीर का कोली । बालपत्र । खैर जवासा । वारि । सुगन्धवाला जल । (अङ्गारवल्ली) । भारंगी मूंज । अमृणाल पीली खस । (कुण्डली) गिलोय लाल कचनार । गन्धफली । प्रियंगु चंपक कलिका । (दीर्घमूल) जवासा ।

शालिपर्णीच । पिच्छिला शाल्मली शिंशिपाच । पुष्पफलः । कपित्थः कूष्माण्डश्च । पोटगलः । नलः काशश्च यवफलः । कुटजो वंशश्च । देवी । मूर्वा

स्टका च विश्वा। शुएठनतिविषाच। शीतशिवम् ।सैन्धवं मिश्रेया च। कर्कशः। काम्पिल्यः कास मर्द्दश्च। चर्मकषा। शातला मांस रोहिणी च। नन्दिवृक्षः। अश्वत्थ भेदो गो सुखपत्र शाखः। वेलिपापीपर इति लोके। तृणाश्च। पयः क्षीर मुदकश्च। रुहा। दूर्वा मांस रोहिणी च। सिंही। वृहती वासा च॥ अथ त्र्यर्थानि नामानि। क्रमुकः। पूग स्त्रूदः पट्टिका लोध्रश्च। क्षुरकः। कोकिलाक्षो गोक्षुरस्तिलक नाम पुष्पविशेषश्च। प्रियकः।

भा०– सालपर्णी।, पिच्छिला। सेमल सी सम। पुष्प फल। कैथ पेठा। पोठ गन्ध। नल कास। यव फल। कुरैया वांस (देवी) म रोड़ फली स्टका। विश्वा। सोंठ अतीस। शीत शिव। सेन्धा मिश्रे या। (कर्कश) कबीला कसौन्दी। (चर्म कषा) सीका काई मां स रोहिणी। (नन्दीवृक्ष) पीपल का भेद नून। (पयः) दूधपा नी। रुहा। दूर्वा मांस रोहिणी। (सिंही) कटेली वासा। अनंतर तीन अर्थवाले नाम। क्रमुक। सुपारी ब्रह्म दारु पठानी लोध। (क्षुरक) मखाना गोखरू तिलक नाम पुष्प विशेष। (प्रियक)

प्रियङ्गुः कदम्बो ऽसनश्च। पृथ्वीका। काला जाजी वृहदेला हिङ्गु पत्री च। भूतीकम्। भूनिम्बक तृणा भूस्तृणाश्च। सोमवल्कः। कह्लारः श्वेत खदिरो घृतपूर्णकञ्जश्च। सौगन्धिकं कह्लारं कतृणं गन्धकञ्च। भृङ्गः भृङ्गराजस्त्वग् भ्रमरश्च। अरिष्टः निम्बोर सोनं मद्यञ्च। २

मर्कटी कपिकच्छुरपामार्गः करञ्जी च। अम्बष्ठा पाठा चाङ्गेरी माचिका च। कृष्णा। पिप्पली काला जाजी नीली च। क्षीरिणी। दुग्धिका क्षीरकाकोली श्वेत सारिवा च। मधुपर्णी। गुडुची गम्भारी नीला च। मण्डूकपर्णी: स्योनाकः सः स्त्रियां तु मञ्जिष्ठा। ब्रह्ममाण्डूकी च। श्रीपर्णी। गम्भारी गणिकारिका कट्फलञ्च। अमृता। गुडूची। हरीतकी धात्री च। अनन्ता। दुरालभा नीलदूर्वा लाङ्गली च। ऋष्यप्रोक्ता। अतिबला महा शतावरी कपिकच्छुश्च कृष्णा वृन्ता। पाटली गम्भारी माषपर्णी च। जीवन्ती। गुडूची शाकविशेषो वन्दा च। लता। सारिवा प्रियङ्गु ज्योतिष्मती च।

भा०—प्रियंगु कदंब आसन (पृथ्वीका) स्याह जीरा बड़ी इलायची। हिङ्गुपत्री। (भूतिक) चिरायता कत्तृण भूतृण (सोमवल्क) कुम्भल सफेद कथ्था घन पूर्णकरंज। सौगन्धिक) कल्हार कत्तृण गन्धक। (भृङ्ग) भाङ्गरा त्वक भौरा। अरिष्ट) नीम लहसन मद्य। मर्कटि। केवांच अपामार्ग करंजी। अम्बष्ठा। पाढल। चौक किमांच। कृष्णा पीपल काला जीरा नील। क्षीरिणी। दुध्धी क्षीरकाकोली श्वेत सारिवा। मधुपर्णी। गिलोय। कुम्हेर नील। (मडूकपर्णी) सोनापाठा मजीठ। ब्रह्मी। श्रीपर्णी। कुम्हेर अरनी कायफल। अमृता। गिलोय हड आंवला। अनन्ता। जवासा नील दूर्वा लाङ्गली। ऋष्यप्रोक्ता। अतिबला। बडी सतावर। किवांच। कृष्णा वृन्ता। पाटली। कुम्हेर माषपर्णी। जीवन्ती। गिलोय शाकविशेष वन्दा। लता। सारिवा प्रियगु माल

कंगनी। समुद्रान्ता। दुरालभा कार्पासी स्पृक्का च। हैम वती। हरीतकी श्वेतवचा पीतदुग्धः सेहुराडः य स्य मूलञ्चोक इति प्रसिद्धम्। अव्यथा। हरीतकी महाश्रावणी पद्मचारिणीच। षड्ग्रन्था। वच ग न्ध पलाशी करञ्जीश्च। वरदा। सुवर्चला हुरहुर इति लोके अश्वगन्धा वाराही गेठीति लोके। इक्षु गन्धाः काशः कोकिला स्रो गो क्षुर क्षीरविदारीच। कालस्कन्धः तमाल स्तिन्दुकं कालखदिरश्च। महौषधम्। शुराठी रसोनो विषञ्च। मधु। क्षौद्र पुष्परसो मद्यञ्च। कपीतनः। आम्रातकः शिरी षी गर्द्दभाराडश्च। मदनः। पिराडीतको धत्तूरः सिक्थकञ्च। शतपर्वा। वंशो दूर्वा वचा च

भा०–समुद्रान्ता। जवासा कार्पासी स्पृक्का। हेमवती। हरीतकी श्वेतवच। पीतदुग्ध। सेहुराड। (अन्यथा) हरीतकी। बड़ी मुंडी पद्म चारिणी। षट्ग्रन्था। वच गन्ध पलाशी करञ्ज। (वरदा) हुरहुर असगंध सुथनी। (इक्षुगन्धा) काश ताल मखाना गोखरू क्षी र विदारी। कालस्कन्ध। तमाल तेन्दु कालखदिर। महौषध। सों ठ लहसन। विष। मधु। क्षौद्र। पुष्परस मद्य। कपीतन। अम्बा ड़ी। सिरस पिलखन। मदन मैनफल धतूरा मोम। (शतपर्वा) वांस दूब बच।

सहस्रवेधी अम्लवेतसो मृगमदा हिङ्गुच ताम्रपुष्पी धातकी पाटला श्यामा त्रिवृच्च सदापुष्पाः। श्वेता र्को रक्तार्कः कुन्दश्च। सुरभी मल्लकी मुरैलवालु

कम्। लक्ष्मीः। ऋद्धिर्वृद्धिः शमीच। कालानुसा र्य्यम्। कालीयकं तगरं शैलेयञ्च। चाम्पेयः। चम्पको नागकेसरः पद्मकेसरश्च। नादेयी। गणिकारिका जलजम्बूर्जलवेतसी च। पाक्यम्। विडं सौवर्चलं यवक्षारश्च। विशल्या। लाङ्गली गुडूची लघुदन्तीच। इन्द्रद्रुः। ककुभो देवदारुः कुटजश्च। काश्मीरम् कुङ्कुमं पुष्करमूलं काश्मीरी गम्भारी च। गुन्द्रः पटेरकः शरश्च। गुन्द्रा। प्रियङ्गुर्भद्रमुस्तकश्च। चुक्रम्। चुक्रमम्लवेतसं वृक्षाम्लश्च पारिभद्राः। निम्बः पारिजातो देवदारुश्च। पीतदारु। हरिद्रा देवदारु सरलश्च। वीरः। ककुभो वीरणं काकोली च वीरतरुः। ककुभो वीरणं शरश्च। मयूरः। अपामार्गोऽजमोदा तुत्थञ्च। रक्तसारः। रक्तचन्दनपतङ्गं खदिरश्च।

भा० – (मत्स्यवेधी) अमलवेत। कस्तूरी हींङ्ग। नागपुष्पी। धवपा दला काली निसोथ। सदापुष्प। सफेद आंक लाल आंक कुन्द। सुरभी) सलई मरोड़ फली ल्हालुका। लक्ष्मी। ऋद्धि वृद्धि शमी। कालानुसार्य्य) पीतचन्दन तगर शिलारस। (चाम्पेय चम्पा) नागकेसर पद्मकेसर। नादेयी। अरनी जल। जामुन जल वेत। पाक्य। विड सोचल जवाखार। विशल्या। करिहारी गिलोय छोटी दन्ती इन्द्रद्रु। अर्जुन देवदार कुरैय्या। काश्मीर। केसर पुष्करमूल कुम्हेर। गन्द्र। पटेरक शर। गुन्द्रा। प्रियंगु बड़ामोथा। चुक्र। अमलवेत चूक वृक्षाम्ल। पारिभद्र। नीम पारिजा देवदार। पीतदारु। हल्दी

देवदारु सरई । वीर । अर्जन वीरणाका कोली (वीरतरु) अर्जनवी
रण सरपन । (मयूर) अपामार्ग अजमोद कूतिया । रक्तसार । र
क्त चन्दन पतंग रैंवर । (

वदरा । सुवर्चला अश्वगन्धा वाराही च । वसिरः ।
(रक्तापामार्गो गजपिप्पली समुद्रलवणञ्च । सौ
वीरम् । अञ्जनभेदो वदर सन्धानभेदश्च । वञ्जु
लः, अशोको वेतसस्ति निशश्च । शिला । मनः
शिला जतु गैरिकञ्च सोमवल्ली । वाकुची गुडूची
ब्राह्मीच । अक्षीवः । शोभाञ्जनो महानिम्बः समु
द्रलवणञ्च । कारवी । कालाजाजी शताह्वाजमोदा
च । धामार्गवः । रक्तापामार्गो राजकोशातकी म
हाकोशातकीच । दुःस्पर्शः । यवासः कपिकच्छूः

भा० - वदरा । सुवर्चला असगन्ध वाराही । वसिर । लाल अपामार्ग
गज पीपल खारी नमक । (सौवीर) अंजनभेद बेर सन्धानभेद ।
वंजुल । अशोक बेत । तिनिस । (शिला) मैनसिल शिलाजीत गे
रू । सोमवल्ली । बावची गिलोयब्रह्मी । अक्षीव । सहिंजन महानि
म्ब समुद्रलवण । कारवी कालाजीरा सोफ अजमोदा (धामार्ग
व) लाल अपामार्ग दोनो तुरई । दुःस्पर्शः । जवासा किंमाच ।

करटकारी च । पलाशः किंशुको गन्धपलाशी प
त्रञ्च । कालमेषी । मञ्जिष्ठा वाकुची श्यामा त्रि
वृच्च पलंकषा गुग्गुलु गोक्षुरी लाक्षाच । मधुरसा
द्राक्षा मूर्वा गम्भारीच । रसा रास्ना शल्लकीपाठा
चाश्रेयसी । हरीतकी रसा गजपिप्पलीच ।

लोहम् । अयः कांस्य मगरु च । सहा । मुद्गपर्णी व
ल्ला भेदः कक ही इति लोके । शतपत्नी सेवती गुलाव
इति लोके । रास्ना नाकुली नीलपुष्पः । सिन्दुवारः ।

भा० – कटेली । पलाशा । गन्धपलाशी पत्रज । कालमेषी । मजीठ बावचीकाली निसोथ । पलंकषा । गूगल गोखरू लाक्षा मीच रसा । दाख मरोड़ फली कुहेर । रसा । रासना सलई पाठा । श्रेयसी । हड़ रास्ना गंज पीपल । लोह । लोहा कासा अगर । सहा मुद्गपर्णी कंही सेवती । रास्ना कुली नीलपुष्प सिन्दुवार ।

अथ बह्वर्थानि नामानि । अक्ष शब्दः स्मृतोऽष्टा
सु सौवर्चलविभीतके । कर्षपञ्चाक्ष शकटेन्द्रि
य पाशके । ककाख्यः काकमाची च काकोली का
कणन्तिका ॥ काकजङ्घा काकनासा काकोदुम्ब
रिकापि च । सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विच
क्षणैः ॥ सर्पद्विरदमेषेषु सीसके नागकेसरे ॥
नागवल्ल्यां नागदन्त्यां नागशब्दः प्रयुज्यते ॥
मांसे द्रवे चेक्षुरसे पारदे मधुरादिषु । बालरोगे
विषे नीरे रसो नवसु वर्त्तते ॥ इति श्रीभावप्रका
शे हरीतक्यादिद्रव्याणां नामानि गुणाश्च ॥

भा० – अनंतर बहुत अर्थवाले नाम । अक्ष शब्द आठमें कहा है सोचल बहेड़ा इन्द्रीय पासा और ककाख्य काकमाची काकोली गुञ्जा ॥ काकजंघा कौव्वा ठोठी कठिया गूलर सात अर्थों में काक शब्द बुद्धिवानों ने कहे हैं । साप गज मेंढा सीसा नागकेसर । नाग वल्ली नागदन्ती इनमें नागशब्द कहा है ॥ मांस में द्रव वस्तु ईखके

रसमे पारेमे मधुरादिकमें ॥ बाल रोगमें विषमें जलमें इन नवों में रस शब्द है ॥ इति श्री भाव प्रकाशे हरीत क्यादि द्रव्योंके नाम और गुण ॥

अथ मान परिभाषा

न मानेन विना युक्ति र्द्रव्याणां जायते क्वचित्। अतः प्रयोग कार्यार्थं मानं मत्रोच्यते मया॥ १॥ चरकस्य मतं वैद्यै राद्यै र्यस्मान्मतं ततः। विहाय स सर्वमानानि मागधं मान मुच्यते॥ २॥ त्रसरेणु बुधैः प्रोक्त स्त्रिंशता परमाणुभिः। त्रसरेणु स्तु पर्य्यायैर्नाम्ना वंशी निगद्यते॥ ३॥ जालान्तर गतैः सूर्य्य करै र्वंशी विलोक्यते। षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका॥ ४॥

भा० – अनंतर परिभाषा ॥ तौलके विना द्रव्योंकि युक्ति कहीं नहीं होती। इस वास्ते प्रयोग करनेके अर्थ यहांपर मान कहताहूं॥ १॥ चरक कामन और जिस्से प्राचीन वैद्योंने माना है उस्से ॥ सब मानों को छोड़ कर मागध मानको कहे ताहूं ॥ २॥ विद्वानोंने तीस परमाणुको त्रसरेणु कहा है ॥ त्रसरेणु पर्य्याय नामसे वंशी कहाहै ॥ ३॥ झरोकेकी सूर्य्य की किरणों से वंशी देखा जाता है ॥ छः वंशीकी मरीचि होती है और छः मरीचियोंकि राई ॥ ४॥

तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः। यवोष्ट सर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जास्या त्तच्चतुष्टयम्॥ ५॥ षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधानकौ। माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते॥ ६॥

टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते । क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते ॥ ७ ॥ कोलद्वयन्तु कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिका । अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ ८ ॥ विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता । करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ ९ ॥

भा० – तीन राई का सरसों पंडितोंने कहा है ॥ आठ सरसों का जव कहा है और चार जव की गुञ्जा होती है ॥ ५ ॥ छः रत्ती का मासा और उसको हेम धानक भी कहते हैं ॥ चार मासे का शाण उसको धरण भी कहते हैं ॥ ६ ॥ वोही टंक कहा गया है दो टंक को कोल कहते हैं ॥ उसको क्षुद्रक वटक द्रङ्क्षण कहते हैं ॥ ७ ॥ दो कोल का कर्ष होता है उसको पाणिमानिका भी कहा है ॥ अक्ष पिचु पाणितल किंचित् पाणि तिन्दुक ॥ ८ ॥ विडालपदक तथा षोडशिका येह भी उसके नाम कहे है ॥ करमध्य हंसपद सुवर्ण कवलग्रह ॥ ९ ॥

उदुम्बरञ्च पर्य्यायैः कर्षमेव निगद्यते । स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १० ॥ शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रञ्चतुर्थिका । प्रकुञ्चः षोडशी विल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ११ ॥ पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतञ्च निगद्यते । प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ १२ ॥

भा० – उदुम्बर येह पर्य्याय से कर्ष को ही कहा है ॥ दो कर्ष से अर्द्ध पल होता है उसको शुक्ति अष्टमिका कहते हैं ॥ १० ॥ दो शुक्तियों से पल जानना चाहिये उसको मुष्टि आम्र चतुर्थिका । प्रकुञ्च षोड

ते विल्व येह यहां परकहाहै ॥ ११ ॥ दो पलों से प्रसृति जाननी
चाहिये उसको प्रसृत भीकहतेहैं ॥ दो प्रसृतिकी अंजलि होती है
उसको कुडव अर्द्धशरावक ॥ १२ ॥

अष्टमानञ्च सज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका। शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ १३ ॥ शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थः चतुःप्रस्थैस्तथाढकः। भाजनं कांस्यपात्रं च चतुःषष्टिपलश्च सः ॥ १४ ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः। उन्मानञ्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञितः ॥ १५ ॥ द्रोणाभ्यां सूर्प्यकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः। सूर्प्याभ्याञ्च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ १६ ॥

भा० - अष्टमान जानना चाहिये दो कुडवों की मानिका होती है ॥ उसको शराव अष्टपल वैसेही यहां पर जानना चाहिये ॥ १३ ॥ दो शराव से प्रस्थ होता है वैसेही चार प्रस्थ से आढक होता है ॥ उसको भाजन कांस्य पात्र चतुषष्टिपल कहा है ॥ १४ ॥ चार आढक का द्रोण होता है कलश नल्वण अर्मण ॥ उन्मान घट राशि येह द्रोण पर्याय की संज्ञा कही है ॥ १५ ॥ दो द्रोण से सूर्प्यकुम्भ और चतुषष्टि शरावक होता है ॥ दो सर्प्य से द्रोणी होती है उसको वाह गोणी कहते है ॥ १६ ॥

द्रोणीचतुष्टयं खारीकथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः। चतुःसहस्रपलिका षष्ट व त्यधिका च सा ॥ १७ ॥ पलानां द्विसहस्रञ्च भार एकः प्रकीर्त्तितः। तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १८ ॥ मासटङ्काक्षविल्वानि कुडवप्रस्थमाढकम्। राशिगो

णी खारिके ति यथोत्तर चतुर्गुणाम् ॥ १९ ॥

भा० – चार द्रोणी की खारी सूक्ष्म बुद्धियोंनें कही है ॥ चौदह हजार छानवे पलिका की होती है ॥ १७ ॥ और दो हजार पल का एक भार कहा है ॥ सौपल की तुला जाननी चाहिये येह सब गह निश्चय है ॥ १८ ॥ मासा टंक अक्षबिल्व कुडव प्रस्थ आ क ॥ राशि गोणी खारी येह यथोत्तर चौगुनी है ॥ १९ ॥

(क) मागधपरिभाषाया षड्रत्तिको माषश्चतु र्विंशतिरत्तिकष्टङ्कः षणावति रत्तिकः कर्षः । आ यञ्चरक सम्मतः । सुश्रुतमते । पञ्चरत्तिको मा षो विंशति रत्तिकष्टङ्कोऽशीति रत्तिकः कर्षः । अ य मेव कालिङ्ग परिभाषायामपि । यतस्तत्राष्टर त्तिको माषो द्वात्रिंशद्रत्तिकष्टङ्कः सार्द्धटङ्क द्व य मितः कर्षः ॥

भा० – मागध परिभाषामें छ रत्तिका मासा चौवीस रत्तिका टंक वे रत्तिका कर्ष । येह चरक के सम्मत है । सुश्रुतके मतमें का मासा वीस रत्तिका टंक अस्सी रत्तिका कर्ष है ॥ यही कालिङ्ग रिभाषा मेंभी कहा है जैसे आठ रत्तिका मासा बत्तीस ... ८ टंक का कर्ष ॥

गुञ्जादि मान मारभ्य यावत् स्यात्कुडव स्थितिः । द्रवार्द्र शुष्क द्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ २० ॥
प्रस्थादि मान मारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः । मा नन्तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥ २१ ॥
मृद्वृक्ष वेणु लोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् । विस्ती

अतिमात्रं च दोषाय शस्तो मध्ये वहूदकम् ॥
इति मान परिभाषा ॥

भा० - आठ गुंजा का अथवा कहीं पर सात गुंजा का मासा होता है चार मासे का शाण उसकी निष्क और टंक भी कहते हैं ॥ २५॥ और छः मासे का गद्यान तथा दस मासे का कर्ष होता है ॥ चार कर्ष का पल कहा है दश शाण के बराबर होता है ॥ २६ ॥ चार पल का कुडव। और प्रस्थादिक पहिले जैसे माने हैं ॥ मात्रा की तो कुछ स्थिति नहीं है क्योंकि काल अग्नि वय बल ॥ २७॥ प्रकृति दोष और देश इनको देखकर मात्रा की कल्पना करे ॥ क्योंकि थोड़ी औषध रोग को दूर नहीं करती जैसे थोडा पानी बहुत आग को ॥ २८॥ बहुत मात्रा दोष को करती है जैसे खेत हान से खेत नाज में बहुत जल ॥ अनंतर औषधियों का विधान॥

अथ भेषजानां विधानानि ॥

स्वरसश्च तथा कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ।
ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २९॥

तत्रादौ स्वरसविधिः ॥

आहतात् तत्क्षणाकृष्टाद्द्रव्यात् क्षुण्णात्समुद्भवेत्। वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसो रस उच्यते ॥ ३०॥

(क) आहतात् शीताग्निकीटादिभिरनुपहतात्।

भा० - अनंतर औषधियों का विधान। स्वरस तथा कल्क क्वाथ हिम फाण्टक ॥ येह पांच प्रकार के कषाय उत्तरोत्तर हलके जानने चाहिये ॥ २९॥ उसमें पहिले स्वरस की विधि। उसी क्षण काटके लाई हुई को कूटकर कपडे से छानके जो निकलता है उसको स्वरस कहते हैं ॥ ३०॥ (क) पाला आग कीट आदि से खराब न हुई ॥

- क्षुण्णात्। संपिष्टात्। कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं च

द्विगुणे जले। अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः॥ ३१॥ चूर्णा तच्चूर्णकृतं। आदाय शुष्क द्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे। जलेऽष्टगुणिते सा ध्यं पादशिष्टं च गृह्यते॥ ३२॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत्। निशोषितञ्चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्॥ ३३॥ निशोषितं निशायामुषितं

भा० —पीसी हुई मे। अथवा चूरा कियेहुवे पाव भर द्रव्य को दुगने जल में॥ एक दिन रखे इस्से उत्तम रस होताहै॥ ३१॥ चूर्ण किया हुवा। स्वरसके अभावमें सूके द्रव्यको लेकर॥ आठ गुने जलमें सिद्ध करके चौथाई बाकी रहे तब निकालले॥ ३२॥ स्वरसको गुरुत्व होने से अर्द्ध पल देवे रातके बासी और अग्नि सिद्ध रसको पलभर पीवे॥ ३३॥ रातको रक्खा हुवा॥

सिता मधु गुड़ क्षारान् जीरकं लवणं तथा। घृतं तैलञ्च चूर्णादीन् कोलमात्रान् रसे क्षिपेत्॥ ३४॥ कोलष्टङ्कद्वयंच। तण्डुलजलविधिः।

कण्डितं तण्डुलपलञ्जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्। भावयित्वाजलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु॥ ३५॥ भावयित्वा कोमलीकृत्य। अथहिमविधिः

क्षुण्णं द्रव्यं पलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः श्रुतम्। निशोषितं हिमः सस्यात् तथा शीतकषायकः॥ ३६॥

भा० — चीनी मधु गुड क्षार जीरा तथा लवण॥ घृत तैल और चूर्ण आदि योंको दो टंक रसमें डाले॥ ३४॥ दो टंक। चावलके धोवन की विधि। कूटे हुवे पावभर चावलोंको अठगुने पानीमें डाले॥ धोके जल लेना चाहिये सब कामोंमें देना चाहिये॥ ३५॥ अनंतर हिमकी बिधि॥

जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य को छ पल पानी में भिजोवे ॥ वोह रात भर का भिजोया हुवा हिम है तथा शीत कषाय कहते हैं ॥ ३६ ॥

तस्य मानं सतं पाने पलद्वयमितं बुधैः । क्षुरणं चूर्णीकृतं ॥ अथ मंथ विधिः ॥ जले चतुःपले शीते क्षुरणं द्रव्यपलं क्षिपेत् । मृत्पात्रे मन्थयेत् सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिवेत् ॥ ३७ ॥ क्षुरणं चूर्णीकृतम् मन्थयेत् मथ्नीयात् । अथ फाण्ट विधिः । । क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यक् जलमुष्णं विनिःक्षिपेत् । मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ ३८ ॥

भा० - उसकी तोल पीनेमें दोपल कही है ॥ चूर्ण किया हुवा । अनंतर मन्थ विधि । शीतल चार पल जलमें जवकुट किया हुवा पल भर द्रव्य डाले मिट्टीके बरतन में अच्छी तरह मले उसमें से दो पल लेकर पीवे ॥ ३७ ॥ चूर्ण किया हुवा । मथे । अनंतर फाण्ट की विधि । जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य में पावभर गरम जल मिट्टी के बरतन में ले उसके अनंतर उसे कपडे से छनवा लेवे ॥ ३८ ॥

सस्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । क्षौद्रं सितागुडादींस्तु कर्षमात्रान्विनिःक्षिपेत् ॥ ३९ ॥ क्षुण्णे चूर्णीकृते स चूर्णद्रवः फाण्टः स्यादित्यन्वयः (अथ कल्क विधिः) द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् । प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्षसंमितम्

भा० - वोह चूर्ण द्रव है और उसको फांट भी कहते हैं । उसकी तोल दोपल है ॥ मधु चीनी गुड आदि उसमें कर्ष भर डाले ॥ ३९ ॥ चूर्ण किये हुवे में वोह चूर्ण द्रव फांट होता है इसप्रकार अन्वय है ॥ अनंतर कल्क की ।

विधि। गीली द्रवाको सिलपर पीसे अथवा सूकीको जलके साथ पीसे उसको कपडेमें डालकर निचोडे उसकी तोल तोलाभरहै ॥ ४० ॥

कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुण मात्रया। सिता गुड समं दद्याद्द्रवो देयश्चतुर्गुणः॥ ४१॥ अथचूर्णविधिः॥ अत्यन्त शुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्। तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ ४२॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता। चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ ४३ ॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः। पिबेच्चतुर्गुणैरेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः॥ ४४ ॥

भा० - कल्कमें मधु घृत तैल मात्रासे दुगना देना चाहिये ॥ चीनी गुड समभाग देवे और द्रव चौगुना देना चाहिये ॥ ४१ ॥ अनंतर चूर्णविधि॥ बहुत सूके हुवे द्रव्यको अच्छी तरह पीसकर कपड छान करे ॥ वोह चूर्ण है उसको रज क्षोदक हेते हैं ॥ उसकी मात्रा तोलाभर है ॥ ४२ ॥ चूर्णमें गुड सम भाग देना चाहिये और शर्करा दुगनी कही है ॥ चूर्णमें भूनके हींङ्ग देना चाहिये वोह उत्क्लेद कारी नहीं होता ॥ ४३ ॥ चूर्णको सब घृतादिक द्रव दुगने लेकर चाटे ॥ और चौगुने मिलाकर घोलके पीवे ॥ ४४ ॥

चूर्णावलेह गुटिका कल्कानामनुपानकम्। पित्त वात कफातङ्के त्रिद्व्येक पलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति। अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥ भावनाविधिः॥ द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतम्भवेत्। भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः॥ ४७॥

जव कुट किये हुवे पल भर द्रव्य को छ पल पानी में भिजोवे ॥ वोह रात भर का भिजोया हुवा हिम है तथा शीत कषाय कहते हैं ॥ ३६ ॥

तस्य मानं मतं पाने पलद्वयमितं सुधैः । क्षुरणं चूर्णी कृतं ॥ अथ मंथ विधिः ॥ जले चतुःपले शीते क्षुरणं द्रव्य पलं क्षिपेत् । मृत पात्रे मन्थयेत् सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिवेत् ॥ ३७ ॥ क्षुरणं चूर्णीकृतं मन्थयेत् मथ्नीयात् । अथ फाण्ट विधिः । । क्षुरणे द्रव्य पले सम्यक् जलमुष्णं विनिःक्षिपेत् । मृतपात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ ३८ ॥

भा० - उसकी तोल पीने में दो पल कही है ॥ चूर किया हुवा । अनंतर मन्थ विधि । शीतल चार पल जल में जवकुट किया हुवा पल भर द्रव्य डाले मिट्टी के बरतन में अच्छी तरह मले उसमें से दो पल ले कर पीवे ॥ ३७ ॥ चूर्ण किया हुवा । मथे । अनंतर फाण्ट की विधि । जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य में पावभर गरम जल मिट्टी के बरतन में ले उसके अनंतर उसे कपडे से छनवा लेवे ॥ ३८ ॥

स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । क्षौद्रं सितागुडादींस्तु कर्षमात्रान्विनिःक्षिपेत् ॥ ३९ ॥ क्षुरणे चूर्णीकृते स चूर्णद्रवः फाण्टः स्यादित्यन्वयः (अथ कल्क विधिः) द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा स जलं भवेत् । प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्षसंमितम्

भा० - वोह चूर्ण द्रव है और उसको फांट भी कहते हैं । उसकी तोल दो पल है ॥ मधु चीनी गुड आदि उसमें कर्ष भर डाले ॥ ३९ ॥ चूर्ण किये हुवे में वोह चूर्ण द्रव फांट होता है इस प्रकार अन्वय है ॥ अनंतर कल्क की ।

विधि। गीली दवाको सिलपर पीसे अथवा सूखीको जलके साथ पीसे उसको कपड़े में डालकर निचोड़े उसकी तोल तोलाभर है ॥ ४० ॥

कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया। सितागुड समन्द द्याद्द्रवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४१ ॥ अथचूर्णविधिः ॥ अत्यन्त शुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्। न त्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ ४२ ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता। चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ ४३ ॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः। पिबेच्चतुर्गुणैरेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ४४ ॥

भा० – कल्कमें मधु घृत तैल मात्रासे दुगना देना चाहिये ॥ चीनी गुड सम भाग देवे और द्रव चौगुना देना चाहिये ॥ ४१ ॥ अनंतर चूर्णविधि ॥ बहुत सूके हुवे द्रव्यको अच्छी तरह पीसकर कपड छानकरे ॥ वोह चूर्ण है उसको रज क्षोदक हेतेहैं ॥ उसकी मात्रा तोलाभर है ॥ ४२ ॥ चूर्णमें गुड सम भाग देना चाहिये और शर्करा दुगनी कही है ॥ चूर्णमें भूनके हींङ्ग देना चाहिये वोह उत्क्लेदकारी नहीं होता ॥ ४३ ॥ चूर्णको सब घृतादिक द्रव दुगने लेकर चाटे ॥ और चौगुनेमिलाकर घोलके पीवे ॥ ४४ ॥

चूर्णावलेह गुटिका कल्कानामनुपानकम्। पित्त वात कफातङ्के त्रिद्व्येकं पलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति। अनुपानबला दङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥ भावनाविधिः ॥ द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतम्भवेत्। भावनायाः प्रमाणन्तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ४७ ॥

॥ अथ पुटपाकविधिः ॥ पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यतेयतः । अतस्तुपुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ ४८ ॥ पुटपाकस्य पाकोऽयं लेपस्याङ्गारवर्णता । लेपञ्च द्व्यङ्गुलंस्थूलं कुर्याद्व्यङ्गुलमानकम् ।

भा०- चूर्ण अवलेह गोली कल्क इनका अनुपान ॥ पित्तवात कफके रोग में क्रमसे तीन दो एकपल लेवे ॥ ४५ ॥ जैसे तेल जलमें डाला हुवा क्षणमें फैलजाता है ॥ वैसे ही अनुपान केवल से शरीरमें औषध फैलता है ॥ ४६ ॥ अनंतर भावनाविधि ॥ जितने द्रवसे अच्छीतरह परसव चूर्ण तर होजाताहै ॥ वोह भावनाका प्रमाण चूर्णमें वैद्योंने कहाहै ॥ ४७ ॥ अनंतर पुटपाक विधि ॥ पुटपाक कल्क का स्वरस जिस कारण लियाजाताहै ॥ इसवास्ते पुट पाककी युक्ति यहांपरकहताहूं ॥ ४८ ॥ पुटपाक का पाक यह हैकि लेपका अंगारेके समान वर्ण होना ॥ लेप दोअंगुलमोटा दोअंगुलभरकरे ॥ ४९ ॥

काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् । पलमात्रोरसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधुक्षिपेत् ॥ ५० ॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाःकोलमिताबुधैः ॥ उष्णोदकविधिः ॥ अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेनवा अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकंभवेत् ॥ ५१ ॥ श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम् । कासश्वासज्वरान्हन्ति पीतमुष्णोदकं निशि ॥ ५२ ॥

भा०- कुंभेरवट जामन आदिके पत्तोंसे लपेटना उत्तमहै ॥ पलभर रसलेवे और तोलाभर मधुडाले ॥ ५० ॥ कल्क चूर्ण द्रव आदिक आठ मासे देवे ॥ गरम पानीकी विधि ॥ आठवां हिस्सा बाकी रहनेसे अथवा उबाल आनेसे ही सिद्ध उष्णोदक होताहै ॥ ५१ ॥ कफ आ

न वात मेद इनका नाशक वस्ति शोधन दीपन। है और कास श्वास ज्वर इनको नाश करता है रातमें पीयाहुवा गरम जल॥५२॥

उष्णोदकं सु इवटा इतिलोके। क्षीरपाकविधिः।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात् क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम्। क्षीराव शेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवंजयेत्॥५३॥ क्वाथविधिः॥

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपलेक्षिपेत्। मृत्पात्रे क्वाथयेद्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्॥५४॥ कर्षा

दौतु पलं यावद्दद्यात् षोड़षकं जलम्। ततस्तु कुड़ वं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत्॥५५॥ चतुर्गुणमत श्चो र्द्धं यावत्प्रस्थादिकं जलम्। (षोडशिकं षोडशगुणम्)

भा० — क्षीरपाक विधि॥ दूध द्रव्यसे अठगुना और दूध से पानी चौगुना बाकी रहे हुये उस दूधके पीनेसे शेष आमके शूलको जीतता है॥५३॥ काढ़ेकी विधि॥ सोलह गुने पानीमें पल भर द्रव्यको डाले॥ मिट्टीके वरतन में औंट वावे और आठवां हिस्सावाकी रहे तबनिकाललेवे॥५४॥ कर्षादिकमें पलभर जबतक दवा होतबतक सोलह गुना जलदेवे॥ उसके अनंतर पावभर जबतक हो अठगुना जल होनाचाहिये॥५५॥ इस के ऊपर चौगुनाजल जबतक सेरभरहो॥ सोलह गुना॥

तज्जलंपाययेद्धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्। श्रृ तः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते॥५६॥

(क्वाथपानमात्रामाह।)

मात्रोत्तमा पलेन तत् स्यात् त्रिभिरक्षैस्तु मध्यमा। ज घन्या च पलार्द्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च॥५७॥

तन्त्रान्तरे। क्वाथ्यद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते

चतुर्भागावशिष्टन्तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥ ५८ ॥ दीप्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम्। अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसिनिं तु चिकित्सकाः ॥ ५९ ॥

भा० – उस मन्द आंच से पकाया हुवा जलको सील गरम बुद्धिवान पीवे। श्रृत क्वाथ कषाय निर्यूह उस को कहते हैं ॥ ५६ ॥ काढेके पीनेकी मात्राको कहते हे। एक पलकी उत्तम मात्रा हे और तीन तोलेकी मध्यम मात्रा ॥ निकृष्ट दो तोले की स्नेह क्वाथ औषधोंमें भी ॥ ५७ ॥ तन्त्रान्तरमें। पल भर क्वाथ करने योग्य द्रव्यमें जल दुगना वा अठगुना कहा हे ॥ चौथाई बाकी रहे हुवे चार पल जलको पीना चाहिये ॥ ५८ ॥ दीप्ताग्नि और वड़े शरीर वालेको अंजली भर काढा पिलावे ॥ बाकीयोंको आधा छोड़के पैसे भर वैद्य पिलावे ॥ ५९ ॥

क्वाथत्यागमनिच्छन्नास्त्वष्टभागावशेषितम्। पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम् ॥ ६० ॥ (क) अष्टभागावशेषितस्य चतुर्भागावशिष्टापेक्षया गुरुत्वात् दीप्तानलं महाकायं पलद्वयं पाययेन्मध्याग्निमल्पकायं पलमात्रं पाययेत् मात्रोत्तमा पलेन स्यादित्यादिवचनात् ॥

भा० – काढेका छोड़ना न चाहनें वाले को अष्टमांश बाकी रहे हुवे दो पलको वृद्धवैद्य परंपराके उपदेश से देवे ॥ ६० ॥ (क) अष्टमांश बाकी बचेको चौथाई बाकी बचेकी अपेक्षासे भारी होनेसे दीप्ताग्नि और बड़ीकाया वालेको दो पल पिलावे। मध्य अग्नि और अल्पकाया वालेको पलभर पिलावे उत्तम मात्रा एक पल से होती हे इत्यादि वचन से ॥

क्वाथे क्षिपेत् सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः। वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ६१ ॥

जीरकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु। हिङ्गु
त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत्॥ ६२॥ क्षी
रं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यत् द्रवं तथा। कल्कं चूर्णा
दिकं क्वाथे निक्षिपेत् कर्षसंमितम्॥ ६३॥ तत्रोपवि
श्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः। औषधं हेमरजतं
मृद्भाजनपरिस्थितम्॥ ६४॥ पिबेत् प्रसन्न
हृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम्। विधायाचम्य स
लिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत्॥ ६५॥ अवलेहविधिः॥
क्वाथादेर्यत् पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया। सो
ऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता॥ ६६॥

भा०—काढेमें चीनी चतुर्थ अष्टम और षोडश भागों से क्रमके साथ वात पित्त कफ के रोग में डाले और मधु इस्से विपरीत कहा है॥ ६१॥ जीरा गूगल खार लवण शिलाजीत॥ हींङ्ग त्रिकुटा इनको काढे में च्यार मासे डाले॥ ६२॥ दूध घृत गुड तेल मूत्र और द्रव तथा। कल्क चूर्ण आदिक काढे में तोला भर डाले॥ ६३॥ वहां पर बैठ कर दम लेके प्रसन्न मुख दृष्टि होके सोने चान्दी वा माटी के बरतन में रखी हुई दवा को। ६४॥ प्रसन्न हृदय होके पीवे पीकर बरतन को औन्धा कर के कुल्ला कर पान आदि देवे॥ ६५॥ अनंतर अवलेह। काढा आदि योंका जो फिर से पकाकर गाढा करना उसको रसक्रिया कहते हैं॥ वोह अवलेह और लेह है उसकी मात्रा पल भर की है॥ ६६॥

सिता चतुर्गुणा कार्य्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः॥ द्रवं
चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः॥ ६७॥
सुपक्वे तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सु मज्जनम्॥

स्थिरत्व पीडिते मुद्रा गन्धवर्णरसोद्भवः ॥ ६८ ॥

दुग्धमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलकषायजम्। वासाक्काथं यथा योग्य मनुपानं प्रशस्यते ॥ ६९ ॥ वटकाविधिः

॥ वटका अथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी। मोदको वटिका पिण्डी गुड़ो वर्त्तिस्तथोच्यते ॥ ७० ॥ लेहवत् साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्करा थवा। गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥ ७१ ॥ तत्र वन्हिसिद्धे गुडादौ ॥ कुर्यादवन्हिसिद्धे न क्वचिद् गुग्गुलुना वटी द्रवेण मधुना वापि गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ७२ ॥

भा० — चूर्णसे चीनी चौगुनी और गुड़ दुगना ॥ द्रव चौगुना देवे इसप्रकार सब जगह निश्चय है ॥ ६७ ॥ अच्छी तरह पकी हुई से तारछूटते हैं और जलमें डूबता है ॥ और दवानेसे स्थिरताहोती है तथा गंध वर्ण रस मालूम होता है ॥ ६८ ॥ दूध ईखका रस पंचमूलके काढ़ेका जूस ॥ और वांसा का काढा यथा योग्य अनुपान प्रशस्त है ॥ ६९ ॥ अनंतर वटकाविधि। अनंतर वटका कहते हैं उसका नाम गुटिका वटि है ॥ मोदक वटिका पिंडी गुड तथा वर्त्ति कहते हैं ॥ ७० ॥ गुड अथवा शकर लेहके समान अग्निपर सिद्ध की जाती है ॥ अथवा उसमे गूगल डाले उससे बनाई हुई गोली है ॥ ७१ ॥ उसमे अग्नि सिद्ध गुड आदि में। कही पर बिन अग्नि सिद्ध गूगलसे गोली होती है ॥ जलसे वा मधुसे पंडित गोली बनावे ॥ ७२ ॥

सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः। चूर्णे चूर्णसमः कार्य्यो गुग्गुलुः मधु तत् समम् ॥ ७३ ॥

(तत्समम्। चूर्णसमम्।)

द्रवं तु द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ॥ द्रवं द्रवरूप

द्रव्यं, कर्षप्रमाणं तन्मात्रा वलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते। चल्न मिति कालादेरप्युपलक्षणम्। घृततैलयोर्विधिः। कल्काच्चतुर्गुणी कृत्य घृतं वा तैलमेव च। चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ ७४॥

(मात्रा पलोन्मिता। भक्षणाय।)

निक्षिप्य क्वाथ्ये तोयं क्वाथ्य द्रव्याच्चतुर्गुणम्। पाद शिष्टं गृहीत्वा तु स्नेहस्तेनैव साधयेत् ॥ ७५॥ चतुर्गुणं मृदु द्रव्ये कठिने ऽष्टगुणं जलम्। मृद्वादि क्वाथ्य संघाते दद्यादष्टगुणं पयः॥ ७६॥ अत्यन्त कठिने द्रव्ये नीरं षोड़शिकं मतम् ॥

भा० – गोलीमें चीनी दुगनी देनी चाहिये और गुड़ दुगना देना चाहिये॥ चूर्ण चूर्ण के सम करना चाहिये गूगल मधु उसके बराबर ॥ ७३॥ चूर्ण के समान। चेध मोदक में द्रव दुगना देवे॥ पतली वस्तु। उसकी मात्रा एक तोला देखकर देवे॥ काल आदि योंका उपलक्षण है। घृत तैल की विधि। घृत वा तैल कल्क से चौगुना करके॥ चौगुने द्रवसें सिद्ध कर उसकी मात्रा पलभर की है॥ ७४॥ भक्षण के अर्थ। चौगुने जलमें ओषध डालकर औटावे॥ चौथाइ वाकीको लेकर तेल उसीसे सिद्ध करे॥ ७५॥ चौगुना मुलायम दवा में और सख्त का दवा में अठगुना जल॥ मृदु आदि क्वाथ्य संघात में अठगुना पय देवे॥ ७६॥ अत्यन्त कठिन द्रव्य में जल सोलह गुना कहा है॥

(क) मृदु द्रव्ये आर्द्र द्रव्ये गुडूच्यादौ। कठिने शुष्क द्रव्ये शुण्ठ्यादौ अत्यन्त कठिने। चिरशुष्के देवदार्व्यादौ॥ कर्षादितः पलं यावत् क्षिपेत् षोड़शिकं जलम्। तदूर्द्ध कुडवं यावत् भवेदष्टगुणं पयः॥ ७७॥

प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणम्।(क)

पूर्वं चतुर्गुणमृदुद्रव्य इत्यादिना क्वाथ्य द्रव्यं तन्मृदुत्वादि गुण भेदेन जल गत परिमाण मुक्तम्। इदानीं केचिदाचार्याः कर्षादितः पलं यावदित्यादि वचने क्वाथ्य द्रव्य गत परिमाण भेदेन जलगत परिमाणं मन्यन्ते।

भा० – मुलायम गीली गिलोय आदिमें। कठिन सूकी सोंठ आदि अत्यन्त कठिनमें। बहुत दिनके सूके हुवे देव दार आदिमे। कर्षसे पल तक में सोलह गुना जल डाले। उसके ऊपर कुडवतक में अठगुना जल डाले॥ ७७॥ सेर भरसे लेकर खारीतक में चौगुना जल डाले (क) पहिले चौगुना मृदु द्रव्य इत्यादि करके क्वाथ्य द्रव्य उस मृदुत्वादि गुण भेदसे जलका तोल कहाहे। अब कोई आचार्य कर्षसे लेकर पलतक इत्यादि वचन से क्वाथ्य द्रव्यके परिमाण भेदसे जलका तोल मानते हैं॥

अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम्। कल्कस्यांशन्तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम्॥ ७८॥

(क) अस्यायमर्थः। अम्बुना स्नेह साधने कल्कं स्नेहस्य चतुर्थमंशं दद्यात्। क्वाथेन स्नेह साधने स्नेहस्य षष्ठ भागं कल्कं दद्यात्। स्वरसैः स्नेह साधने स्नेहस्याष्टम भागं कल्कं दद्यात्।

भा० – जल क्वाथ रसोंसे जहांपर अलग स्नेह साधन कहाहे॥ वहां पर कल्कका चतुर्थ षष्ठ अष्टम अंश देवे॥ ७८॥ (क) येह अर्थ है कि जलसे स्नेह साधनमें स्नेहका छटा भाग कल्क देवे। स्वरससे स्नेह सिद्धि करनेमें स्नेहका आठवांभाग कल्क देवे। पुनः विशेष कहे

(पुनर्विशेषमाह।)

दुग्धे दधिरसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशिकः। कल्का
च्च सम्यक् पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥७९॥
कल्कात्। कल्कद्रव्यात्। चतुर्गुणं तोयं पेषणार्थम्।
द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि। तत्र
स्नेहसमान्याहुर्यथा पूर्वञ्चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥
(क) अस्यायमर्थः। यत्र स्नेहेषु आदीनि पञ्च
द्रव्याणि दुग्ध दधि स्वरस तक्र कल्कोपयुक्तानि
प्रत्येकं स्नेहसमानि बोद्धव्यानि यथा पूर्वम् ॥
दुग्ध दधि स्वरस तक्रं समुदितं स्नेहाच्चतुर्गुणं भवति।
द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि। तत्रा
म्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलञ्चात्र चतुर्गुणम् ८१॥

भा० – पुनः विशेष कहते हैं॥ दूध दही रस मठा इनमें कल्क अ
ष्टमांश देवे॥ कल्क से अच्छी तरह पकनेके अर्थ यहां पर जल चौ
गुना देवे॥ ७९। कल्क द्रव्य से चौगुना जल पीसनेके वास्ते। जिस स्नेह
में द्रव्यादि पांच होते हैं॥ उस्में स्नेह सम कहा है जैसे पहिले चौगु
ना॥ ८०॥ (क) इसका येह अर्थ है कि जिस स्नेह में आदि पांच
दूध दही स्वरस मठा कल्क इनमें उपयुक्त जल प्रत्येक स्नेह सम
जानने चाहिये जैसे पहिले। दूध दही मठा स्वरस येह कहे हुवे स्ने
ह से चौगुने हैं॥ यदि केवल द्रव्य से ही स्नेह पाक होते॥ उसमें ज
लसे पीसके कल्क देवे और जल इसमें चौगुना देवे॥ ८१॥

अत्र कल्कद्रव्ये॥ क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रोदितः
क्वचित्। क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते
॥८२॥ कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे।

केवलेद्रवे। क्वाथेतरस्मिन् स्वरसादिरूपे॥

पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्रतोयं चतुर्गुणम्। स्नेहा न स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते॥ ८३॥

वर्त्तिवत् स्नेहकल्कः स्याद्यदाङ्गुल्याविवर्त्तितः। शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहःसिद्धोभवेत्तदा॥८४॥

यदा फेनोद्गमे तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि। वर्णगन्धरसोत्पत्तिः स्नेहःसिद्धोभवेत्तदा॥८५॥ ॥

भा०—अनंतरकल्क द्रव्यमें। जहां कहींपर केवल काढेसे ही पाक कहाहै॥ उस स्नेहमें काढेकी दवा काही कल्क दिया जाताहै॥८२॥ कल्कहीन जो स्नेह है वोह केवल द्रवसे सिद्ध करना चाहिये॥ केवल द्रवसे अर्थात् काढे से इतर स्वरसादिरूप द्रवमें॥ पुष्पकल्क का जो स्नेह है उसमें जल चौगुना डालना चाहिये॥ स्नेह से स्नेह का अष्टमांश पुष्पकल्क डाला जाताहै॥८३॥ जब अंगुली से चलानेसे बत्तीसी हो वोह स्नेह कल्क है॥ जब अग्निमें डलनेसे स्नेह शब्द हीन होवे तब सिद्ध हुवा जाने॥८४॥ जब झाग तेल में उठे और घृत में झाग जाते रहें॥ और वर्ण गन्ध रस होनेसे तब स्नेह सिद्ध होता है॥८५॥

स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा। ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत्॥८६॥ मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले। ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः॥८७॥ तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निःप्रयोजनः। आमपक्वश्च निर्वीर्यो वन्हिमान्द्यकरो गुरुः॥८८॥

भा०—स्नेहपाक तीन प्रकारका कहाहै मृदु मध्य और खर॥ थोडा रसके सहित कल्क वाला स्नेह पाक मृदु है॥८६॥ और रससे रहित कोमल

कल्क में मध्य पाक का सिद्ध स्नेह जानना चाहिये ॥ थोड़ा कठिन कल्क वाला स्नेह पाक खरहोता है ॥ ८७ ॥ इसके ऊपर दग्धपाक होता है वोह दाहकादि से प्रयोजन है ॥ और कच्चा पका हुवा निर्वीर्य्य अग्निमान्द्य को करने वाला भारी होता है ॥ ८८ ॥

नस्यार्थे स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु । अभ्यङ्गार्थः खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् ॥ ८९ ॥
घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नेकवासरे । प्रकुर्वन्त्युषितास्त्वेते विशेषाद्गुणसञ्चयम् ॥ ९० ॥
[अथसन्धानविधिः] द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत् । आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ ९१ ॥ भेषजेषु यदुचितं तद्भेषजोचितम् । [तत्र आसवारिष्टयोर्लक्षणमाह ।]
यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः क्वाथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ ९२ ॥

भा० नासके अर्थ मृदु पाक और मध्य पाक सबका मोंमें ॥ तथा अभ्यङ्ग के अर्थ खर पाक कहा है इस प्रकार यथोचित योजना करे ॥ ८९ ॥ घृत तेल गुड़ आदि योंका एकदिन में बनावे ॥ विशेष करके बासी हुवे येह गुण संचयको करते हैं ॥ ९० ॥ अनंतर सन्धान विधि । द्रवमें बहुत काल रहा जो द्रव्य सन्धित होता है ॥ और सब अरिष्ट इन भेदोंसे औषधोचित उसको कहता हूं ॥ ९१ ॥ औषधियोंमें जो उचित वोह भेषजोचित है । उस्में आसव अरिष्टों का लक्षण कहते हैं ॥ जो कच्चे औषधके जल से । सिद्ध मद्य होता है वोह आसव है ॥ अरिष्ट काढ़े से बनता है उनका तोल पल भर है ॥ ९२ ॥ (सामान्यतोऽरिष्टविधिः।) ॥

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवाद्द्रोणं गुडात्तुलम् । क्षौद्रं क्षि

पेद् गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ ९३ ॥ दश मांशिकम् । गुडस्यैव दशमांशं । द्विविधं सीधुमाह । ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः (मधुरद्रवै इक्षुरसादिभिः।) सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वम धुरद्रवैः। परिपक्वान्नसन्धानात् समुत्पन्ना सुराञ्ज गुः ॥ ९४ ॥ सुरामण्डः प्रसन्नास्यात्ततः कादम्बरी घना। तदधोजगलो ज्ञेयो मेदकोजगलाद्घनः॥ ९५॥

भा० सामान्यसे अरिष्टकी विधि। जिस अरिष्टमें तोल नही कही है उस में द्रोण जल और गुड तुला भर ॥ गुडके आधा मधु और प्रक्षेप गुडका दशवां भाग डाले ॥ ९३ ॥ गुडका दशमांश। दो प्रकारके सीधुको कहतेहे ॥ अपक्व मधुर द्रवों सेजो होताहे उसको शीतरस सीधु जानना चाहिये। अर्थात् ईख आदिकेरससे। पके हुवे मधुर द्रवसेजो सिद्ध होता है उसकोपक्वरस सीधुकहेतेहें ॥ परिपक्व अन्नके सन्धान से उत्पन्न हुई को सुराकहेतेहें ॥ ९४ ॥ सुरामण्ड प्रसन्नाहे उस्से कादंबरी . गाढी होती है ॥ उसके नीचेका अजगल जानना चाहिये और अजगलसे मेदक गाढा होताहे ॥ ९५ ॥

पक्वा सो हृतसारः स्यात् सुराबीजं च किण्वकम्। सुराबीजम् । यवगोधूमतण्डुलादि ॥ यत्ता लखर्जूररसैः सन्धिता साहि वारुणी। कन्दमूल फलादीनि सस्नेहलवणानि च॥ ९६ ॥ विनष्टं स न्धितोऽस्तु तच्छुक्तमभिधीयते। अभिद्रूयन्ते॥ द्रवेण प्लाव्य सन्धीयन्ते। विनष्टमम्लतां यातं म द्यं वा मधुरद्रवः। विनष्टं सन्धितो यस्तु तच्छुक्त

पं

मभिधीयते ॥ ९७ ॥ गुडाम्बुना सतैलेन कन्द शाक फलैस्तथा ॥ सन्धितञ्चाम्लतांयातं गुडचुक्रं प्रचक्षते ॥ ॥ ९८ ॥ एवमेव हि शुक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा। तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेय मामैर्विदलितैर्यवैः ॥ ९९ ॥

भा० पका वोह सार रहित होताहै उसको सुराबीज कियक कहतेहैं ॥ सूरबीज ॥ जव गेहूं तडुलादि ॥ जोताडु खजूरके रसोंसे सन्धानकी जातीहै वोह वारुणीहै ॥ कन्द मूल फल आदिक स्नेह स्नेहके सहित औरलवण ॥ ९६ ॥ सन्धान किया हुवा जोगल्न जाताहै उसको शुक्त कहतेहैं ॥ द्रवसे आप्लवन होकर सन्धान होताहै ॥ विनष्ट अथवा खट्टा हुवा जो मधुर द्रवहै ॥ विनष्ट सन्धानकिया जोहै उसको शुक्त कहतेहैं ॥ ९७ ॥ गुड जलका तैलके सहित तथा कन्द शाक फलके साथ ॥ सन्धान अर्थात खान डाला हुवा जो खट्टा होजाताहै उसको गुड चुक्र कहतेहैं ॥ ९८ ॥ ऐसे ही दाखका शुक्त होताहै ॥ कच्चा विद तिलजवों से सन्धान कियाहुवा तुषाम्बु जानना चाहिये ॥ ९९ ॥

यवैस्तु निस्तुषैः पक्कैः सौवीरं साधितं भवेत् ॥ आरनालन्तु गोधूमै रामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ॥ १०० ॥ पक्कैर्वा संहितै स्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः। कल्मा. षधान्यं मण्डादि संहितं काञ्जिकं विदुः ॥ १०१ ॥ शिण्डाकि सहिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥

भा० निस्तुष पके हुवे जवोंसेसिद्ध किया हुवा सौवीर होताहै ॥ वे छिल्नके के कच्चे गेहू वोने आरनाल होताहै ॥ १०० ॥ औरपके हुवे उनसे सन्धान किया हुवा सौवीरके समान गुणमें होताहै ॥ सुगन्धि युक्त धान्यके मंडादि से संहितको कांजिक कहतेहैं ॥ १०१ ॥ मूली सरसों से सहितको शिण्डाकी जानना चाहिये ॥

(अथधातूनां शोधन मारण विधिः।)

॥ तत्र मारणाय योग्यं सुवर्ण माह ॥

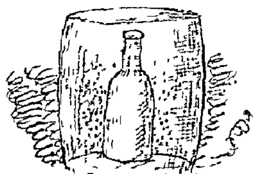
दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम् । तार
शुल्वोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेमसत् ॥ १०२ ॥
(सत् । उत्तमम्) । तच्छेदे कठिनं रूक्षं विवर्णं सम
लं दलम् । दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे स्फुटितं त्यजेत् ॥ १०३ ॥ [शोधनविधिः] पत्रलीकृत प
त्राणि हेम्नो वह्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत् तप्ततप्तानि
तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ १०४ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये तु त्रिधा त्रिधा । एवं हेम्नः परेषाञ्च धा
तूनां शोधनं भवेत् ॥ १०५ ॥

भा० अनंतर धातु शोधन मारण की विधिः । उसमें भस्म के योग्य सुवर्ण को कहते हैं ॥ दाहमें लाल काटनेमें सफेद कसौटी पर केसर के समान ॥ चान्दी ताम्बेसे रहित चिकना कोमल भारी ऐसा सोना उत्तम है ॥ १०२॥ और वोह काटनेमें कठिन रूखा विवर्ण समल पत्र ॥ दाह और काटने में सफेद कसमें स्फुट हलका ऐसे को न लेवे ॥ १०३ ॥ अनंतर शोधनविधि । पतले सोनेके वरक करके आगमें तपावे ॥ तपा २ कर तेल मठा कांजी ॥ १०४ ॥ गोमूत्र कुरथी का काढा इनमें तीन २ वार बुझाव देवे ॥ इसप्रकार सोनेका और धातुवोंका भी शोधन होता है ॥ १०५ ॥

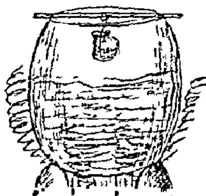
अथाशुद्धस्य सुवर्णस्य दोषमाह ।

बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं पोषयतीह काये। असौख्यकार्यं च सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्यात् ॥ १०६ ॥ [स्वर्णस्य मारणविधिः ।]
स्वर्णस्य द्विगुणं सूतं मर्दयेन् । तद्
गोलकसमं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम् ॥ १०७ ॥

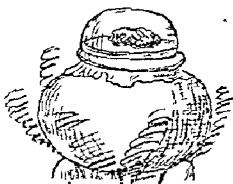
वालुका यंत्र



डोल का यंत्र



स्वेदन यंत्र





विद्याधर यंत्र





स्वर्णस्य अतितनू कृतपत्रस्य गन्धम्। गन्धकचूर्णम् गोलकञ्च ततो रुध्वा शराव दृढसंपुटे। त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येव चतुर्दश॥ १०८॥ निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः॥ ॥

भा० ॥ अनंतर अशुद्ध सोनेका दोष कहे तेहैं॥ मनुष्योंका बल वीर्य्यके मदिन हरताहै॥ और बहुत से रोगोंको शरीरमें करताहै॥ सदा असौख्य करताहै और अशुद्ध येह सोना मरण भीकरताहै॥१०६॥ अनन्तर सोनेको मारणविधि। सोनेका दुगनां पारा खटाईके साथ घोटे॥उस गोलक के समान ऊपर नीचे गन्धक देवे॥ १०७॥ सोनेका॥ बहुत पतले किये पत्रका। गन्धकचूर्ण। उसके अनंतर गोलककी सकोरेके दृढ संपुटमें बन्दकरके॥ तीस अरने उपलोंसे चौदह पुटदेवे॥ १०८॥ निरुत्थ भस्म होताहै गन्धक वार २ देनाचाहिये॥

(क) रुध्वा स वस्त्र कुट्टितं चिक्कण मृत्तिकया वनोपलः। गोइठा इति लोके निरुत्थं यत्पुनर्नजीवति। अथान्यप्रकारः। काञ्चने गलिते नाग षोडशांशेन निःक्षिपेत्। चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्टा कृत्वा तु गोलकम्॥ १०६॥ गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवा धरोत्तरम्। शराव सम्पुटे धृत्वा पुटे द्विंशद्वनोपलैः॥११०॥ एवंसप्त पुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते। अत्रापि पूर्ववद्गन्धः प्रदातव्या। [अन्यच्च]

भा० स वस्त्र कूटीहुई चिकनी माटीसे। गोइठा। निरुत्थ अर्थात् जो फिर सेनहीजीता। अनंतर दूसरा प्रकार। गलाहुवे सोनेमें सोलहवां भाग सीसा डाले॥ उसको पीसकर तथा खट्टे से घोटकर गोली करके॥ १०६॥ गोल क के समान गन्धक नीचे ऊपर देकर॥ शराव

सम्पुट मेंधरके वीस अरने उपलोंसे पुटदेवे॥ ११० ॥ ऐसी सात पुटोंसे सोना निरुत्थ भस्म होताहै ॥ इसमें भी पहिलेजैसा गन्धक देना चाहिये ॥ औरभी॥

काञ्चनाररसे घृष्ट्वा समसूतकगन्धयोः। कज्जलीं हेमपत्राणि लेपयेत् समया तथा ॥ १११॥ हेमपत्रसमया ॥ काञ्चनारत्वचः कल्कैर्मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् । धृत्वा तत्सम्पुटे गोलं स्वन्मृषा सम्पुटे च तत् ॥ ॥ ११२॥ निधाय सन्धिरोधञ्च कृत्वा संशोष्य गोलकम्। वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ ११३॥

भा० - सम भाग पारा गन्धक को कचनारकेरससे घोट करकजली करे ॥ उस कजलीको उसीके समान सुवर्ण के पत्रोंको लेपकरे ॥ १११ ॥ सुवर्णपत्रके समान। कचनारकी छालके कल्कसेदोघरियावनावे॥ उससंपुटमें गोलीको धरके और उसको मिट्टी के सम्पुट में ॥ ११२ ॥ रखकर कपड मिट्टी करके गोलेको सुकाके ॥ वहुततेज आंचदेवे ऐसे तीन पुट देनेसे ॥ ११३ ॥

निरुत्थं जायते भस्म सर्वकर्मसु योजयेत् । काञ्चनारप्रकारेण लाङ्गली हन्ति काञ्चनम् ॥ (लाङ्गली करिहारी) ॥ ज्वालामुखी तथा हन्यात् तथा हन्ति मनःशिला । शिलासिन्दूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः ॥ ११४॥ सप्तधा भावनां दद्याच्छोषयेच्च पुनःपुनः । ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः ॥ ११५॥

भा० निरुत्थ भस्म होताहै उसको सव कामोंमें लावे ॥ कचनारकी तौरपर करिहारीसो नेको मारती है ॥ करिहारी ॥ वैसेही अगिपारवरसोनेको मारताहै औरमैनसिल सोनेकोमारताहै।समभाग मैनासल्न और सिन्दूर इनके चूर्णको आंक के दूधसे ॥ ११४ ॥ सातवार भावनादेवे औरफिर

२सुकावे॥ उसके अनंतर सोनेको गलाकर येह सम भाग कल्क देवे॥ ११५॥

पुनर्द्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते। एवंवेला त्रयंदद्यात्कल्कं हेम मृतिर्भवेत्॥ ११६॥

|एवं मारितस्य सुवर्णस्य गुणाः॥|

सुवर्णं शीतलं वृष्यं वल्यं गुरु रसायनम्। स्वादु तिक्तं चतुवरं पाकेच स्वादुपिच्छिलम्॥ ११७॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृति मतिप्रदम्। हृद्य मायुष्करं कान्ति वाग्वि शुद्धिस्थिरत्वकृत्॥११८॥

भा० – फिर धोंके खूब जोरसे जिसमें कल्क जल जावे॥ इस प्रकार तीन वार कल्क देवे इस्से सोना मरजाताहै॥ ११६॥ ऐसे मारेहुवे सोनेका गुण॥ सोना शीतल शुक्र को करनेवाला वलकारी भारी रसायन॥ मधुर तिक्त कसेल्ला पाकमें मधुर पिच्छिल॥ ११७॥ पवित्र पुष्ट नेत्रके हित में धा स्मृति इनको देनेवाला॥ हृद्य आयुको करनेवाला कान्ति वाणी की शुद्धता स्थिरता को करने वाला॥ ११८॥

विषद्वयक्षयोन्माद त्रिदोषज्वर शोषजित्। वृष्य मृ त्वपायकासु काय हितम्॥ असम्यङ्मारितं स्वर्णंवलं वीर्यञ्च नाशयेत्। करोति रोगान्मृत्युञ्च तद्न्याद्यत्नतस्ततः॥ ११२॥ धात्वादि मारणोपयुक्तान् पुटप्रकारान्नाह रस प्रदीपे॥

भा० दोनों विष उन्माद सन्निपात ज्वर और शोष इनको जीतनेवालाहै। कामुक के हित। अच्छी तरह भस्म न किया हुवा सोना वल वीर्य्यको नाश करताहै॥ और रोगों को तथा मृत्यु को करताहै इसवास्ते उस्को यत्नसे मारे॥ ११९॥ रस प्रदीप में धात्वादिके मारणोपयोगी पुटप्रकारों

कोकहाहै ॥

लोहादेर पुनर्भाव स्तन्नु गत्वं गुणात्यता । सलि
ले तरणञ्चापि तत्सिद्धिः पुटनाद् भवेत् ॥ १२० ॥
गम्भीरे विस्तृते कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके । वनो
पल सहस्रेण पूरितं पुनरेष धम् ॥ १२१ ॥ कोष्ठे
रुद्धे प्रयत्नेन गोविष्टोपरि धारयेत् । वनोपल स
हस्रार्द्धं कोष्ठिकोपरि निः क्षिपेत् ॥ १२२ ॥ वह्निं
विनिःक्षिपेत्तत्र महापुटमिति स्मृतम् । कोष्ठं मृण
मूषा गोविष्टा गोइटा । [महापुटम् ।]

भा॰ धातु आदियोंका फिरसे नजीना उनका गुणत्व और गुणाढ्यता है ॥ जलके ऊपर तैरना भी उसकी सिद्धि पुटसे होती है ॥ १२० ॥ गहरे और बडे दो हाथके चौकोर कुंडमें ॥ हजार अरने उपले भरे फिर औषधको ॥ १२१ ॥ कोष्ठमें पल्लके साथ बन्दकरके गोइटोंके ऊपर रक्खे ॥ पान्सो अरने उपले कोष्ठिकके ऊपर डाले ॥ १२२ ॥ उसमें आंच लगावे इसको महापुट कहाहै मट्टीकी घरिया । गोइठा । महापुट ॥

सपाद हस्तमानेन कुण्डे निम्ने तथायते । वनोपल
सहस्रेण पूर्णे मध्ये विधारयेत् ॥ १२३ ॥ पुटन
द्रव्यसंयुक्तां कोष्ठिकां मुद्रितां मुखे । अथार्द्धानि
करण्डानि अर्द्धान्युपरि निक्षिपेत् ॥ १२४ ॥
एतद्गजपुटं प्रोक्तं स्यात्तं सर्वपुटोत्तमम् ॥

भा॰-सवाहाथके मानसे गहरे तथा चौडे कुंडसे ॥ हजार अरने उपलोंसे भरे कुंडमें ॥ १२३ ॥ पुटनद्रव्यसे युक्त मांटीकी घरियाको बन्दकरके रक्खें ॥ आधे कंडे नीचे और आधेको ऊपर डाले ॥ १२४ ॥ येह गज।

पुट कहाहै सब पुटोंमे उत्तमहै॥

(क) हस्तश्चतुर्विंशत्यङ्गुल्लप्रमाणः स सपादः तेन त्रिंशदङ्गुल्लप्रमाणेनेत्यर्थः अतएवोक्तम्। साधारणनराङ्गुल्या त्रिंशदङ्गुलको गजः।

| इति गजपुटम् | अरत्निमात्रके कुण्डे पुटं वाराह मुच्यते॥ वितस्तिमात्रके खाने कथितं कौक्कुटं पुटम् ॥१२५॥ अरत्निस्तु कनिष्ठेन मुष्टिनेत्यमरः॥ निःसृतकनिष्ठया मुष्ट्योपलक्षितो हस्तोऽरत्निरित्यर्थः

भा०-(क) चौवीस उंगल प्रमाण हाथ सपाद उस्से तीस अंगुल प्रमाण करके येह अर्थ है। इसीवास्ते कहाहै। साधारण मनुष्यकी तीस अंगुल। का गज होताहै ॥इतिगजपुट॥ कोहनीसे चिटली उंगलीतक के कुंड में जो पुट होताहै उसको वाराह पुट कहते हैं। विलस्तभरके गढेमे कौकुकुट पुट कहाहै॥१२५॥ कनिष्ठाके साथ मुष्टिसे इस प्रकार अमर में कहा है। निःकली हुई चिटली उंगली उसकरके उपलक्षित॥ हस्त अरत्नि है॥

षोडशाङ्गुलके खाने कस्यचित्कौक्कुटं पुटम्॥ यत्पुटं दीयते खाने अष्टसंख्यैर्वनोपलैः॥ १२६॥ कपोत पुटमेतत्तु कथितं पुटपण्डितैः। गोष्ठान्तर्गोखुरक्षुण्णं शुष्कं चूर्णित गोमयम्॥ १२७॥ गोवरं तत्समाख्यातं वरिष्ठं रससाधने। दृहद्भाण्डस्थिते यत्र गोवरे दीयते पुटम्॥ १२८॥

भा० किसीके सोलह अंगुलके गढेमें कौकुट पुट होताहै॥ जो गढेमे आठ अरने उपलोसे पुट दिया जाता है॥ १२६॥ उसको पुट पंडितोंने कपोत पुट कहाहै॥ गोशाला में गायके खुरसे खुदा सूका चूर्णित गोव

र होताहै ॥ १२७ ॥ उसको गोवर कहाहै वोह रस धानमें श्रेष्ठहै ॥ बड़े वरतन में रक्खे हुवे गोवर से जहां पर पुट दिया जाता है ॥ १२८ ॥

तद्गोवर पुटं प्रोक्तं भिषग्भिः सूतभस्मनि । वृहद्भा
ण्डे तुषैः पूर्णे मध्ये मूषां विधारयेत् ॥ क्षिप्त्वाग्निं
मुद्रयेत् भाण्डं तद्भाण्डं पुटमुच्यते ॥ १२९ ॥

[अथ यन्त्रप्रकारानाह तत्रैव ।]

भाण्डे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिका । कूपि
का कण्ठपर्यन्तं वालुकाभिश्च पूरिते ॥ १३० ॥ भेष
जं कूपिकासंस्थं वन्हिना यत्र पच्यते । वालुकायन्त्रमे
तद्धि यन्त्रं तत्रबुधैःस्मृतम् ॥ १३१ ॥ वालुकायन्त्रम् ॥

भा० उसको वैद्योंनें पारेके भस्ममें गोवर पुट कहाहै ॥ धानके छि लकोंसे पूर्ण बड़े बरतनके बीचमें घरियाको रक्खे ॥ आग डालकर ब रतनको बन्द करदे उसको भाण्ड पुट कहतेहैं ॥ १२९ ॥ अनन्तर उ सीमें यन्त्र प्रकारोंको कहाहै . . . . को
शीको रक्खे ॥ शीशीको रेतसे कंठतक भरे । जिसम ॥ १३० ॥ शीशी कीदवा आगसे पकाई जातीहै ॥ तोन . यन्त्र . है
॥ १३१ ॥ वालुकायन्त्र ॥

निबद्धं मौषधं सूतं भूर्जेनत्त्रिगुणंवरे । रसपोट
लिका काष्टे दृढं बध्वा गुणेनहि ॥ १३२ ॥ सन्धा
नपूर्णकुम्भान्तः खावलंबनसंस्थितम् । अध
स्तान्ज्वालयेदग्निंतत्तदुक्तक्रमेणहि ॥ १३३ ॥

भा० औषध और पारेको भोज पत्रमें बान्धे और उसको तीनपरद किये हुये कपडेमें बांधे ॥ अनंतर उस रस पोटलीको काष्टमें मजबूत डोरीसे बान्धकर ॥ १३२ ॥ कांजीसे भरेहुवे घडेके भीतर बीचमें लटका

कर रक्खे ॥ नीचे उसमें कहे हुवे क्रमसे आग वाले ॥ १३३॥

दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेवहि। [दोलायन्त्रम] सन्धानं (काञ्जिकादि) साम्बुस्थालीमुखे बद्धे वस्त्रे स्वेद्यं निधायच। पिधाय पच्यते यन्त्रं तद्यन्त्रं स्वेदनं स्मृतम् ॥ १३४ ॥ [स्वेदनं यन्त्रं] अधस्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि। स्थालीमूर्द्धमुखीं सम्यङ् निरुध्य मृदु मृत्स्नया ॥ १३५ ॥ ऊर्द्ध स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः। अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यावत्प्रहरपञ्चकम् ॥ १३६ ॥

भा० - इसको दोलायन्त्र कहा है और स्वेदनाख्य भीवोही है ॥ दोलायन्त्र। कांजी आदि। जलसहित तसले के मुखपर कपडेको बांधकर स्वेद वस्तु कोरखके बन्द करके पकाया जाता है। जिस यन्त्र में उसको स्वेदन यन्त्र कहा है ॥ १३४॥ स्वेदन यन्त्र ॥ नीचेके तसलेमें पारेको डालकर उसके मुखपर ऊपर मुख करके तसला रक्खे। उसको अच्छीतरह चिकनीमिट्टीसेबन्दकरके ॥ १३५॥ ऊपरके तसलेमें जल डालकर चूल्हे के ऊपर यत्न से रक्खे ॥ औरनीचे पांच पहर आग वाले ॥ १३६ ॥

स्वाङ्गशीतं ततो यन्त्राद्गृह्णीयाद्रसमुत्तमम्। विद्याधराभिधं यन्त्रमनन्तजन्मैरुदाहृतम् ॥ १३७॥ [विद्याधर यन्त्रम्।] वालुकाभिः समस्ताङ्गं गर्ते मूषां रसान्विताम्। दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं भूधरनामकम् ॥ १३८ ॥ [भूधरयन्त्रम] यन्त्रं डमरुसंज्ञं स्यात्तत्स्थाल्योर्मुद्रिते मुखे। डमरुयन्त्रम्

भा० - स्वाङ्गशीत होनेपर उसमें से यत्नके साथ उत्तम रसको लेवे ॥

उसको जाननेवालोंने इसको विद्याधर नाम यन्त्र कहा है ॥ १३७ ॥ विद्याधर यन्त्र ॥ रसयुक्त घरियाको गढेमें रेतसे और जलने उपलोंसे सम्पूर्ण अंगको बन्द करे उसको भूधर नामक यन्त्र कहे तेहैं ॥ १३८ ॥ भूधर यन्त्रम् । दोनो तसलों के मुख जोड़ देवे उसको डमरु यन्त्र कहते हैं ॥ डमरु यन्त्र ॥

[अथ मारणाय योग्यं रूप्यमाह ।]

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहच्छेदघनक्षमम् । स्वर्णादिरहितं स्वच्छं तारं नवगुणं शुभम् ॥ १३९ ॥ [अथायोग्यम्] कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु । दाहछेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥ १४० ॥ [अथशोधनविधिः] पत्तली कृतपत्राणि तारस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ १४१ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं रजतपत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ १४२ ॥

भा० अनन्तर मारणके योग्य चान्दीको कहतेहैं ॥ भारी चिकनी मुलायम सुफेद तपाने और काटनेमें चोट सहनेवाली ॥ स्वर्ण आदि से रहित स्वच्छ यह चान्दीके नव अच्छे गुण हैं ॥ १३९ ॥ अनन्तर योग्य । कठिन कृत्रिम रूखी लाल पीले पत्र वाली हलकी । दाहछेद और घनमें नष्ट ऐसी चान्दी को खराब कहा है ॥ १४१ ॥ अनंतर शोधनविधि । चान्दीके पतले पत्र करके आगमें तपावे ॥ तपा २ कर तेल मठा कांजी ॥ १४१ ॥ गोमूत्र और कुरथीके काढेमें तीन २ वार बुझावे ॥ इसप्रकार चान्दीके पत्रों की शुद्धि होतीहै ॥ १४२ ॥

(अथाशुद्धस्य रूप्यस्य दोषमाह)

रूप्यं त्वशुद्धं प्रकरोति तापं विबन्धकं वीर्य्यबलक्षयञ्च

देहस्य पुष्टिं हरते तनोति रोगांस्ततः शोधनमस्य कुर्यात्॥ १४३॥ [अथरूप्यमारण विधिः] ॥

भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित्। तेन भागत्रयं तारपत्त्राणि परिलेपयेत्॥ १४४॥ धृत्वा मूषापुटे रुध्वा पुटेत्त्रिंशद्वनोपलैः। समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत्॥ १४५॥

भा० - अनंतर अशुद्ध चान्दी के दोष कहते हैं ॥ अशुद्ध चान्दीताप विवन्ध और वीर्य बलका क्षय करती है ॥ शरीरकी पुष्टी हरती है और रोगों को करती है इसवास्ते इसका शोधन करे ॥ १४३॥ अनंतर चान्दीकी मारण विधि एक भाग हरताल को किसी खटाई के साथ एक पहर घोटकर ॥ उससे तीन भाग चान्दीके पत्रोंको लेप करावे ॥ १४४॥ उनको घरिये में रख कर वन्दकर के तीस अरने उपलों से पुट देवे ॥ उसको निकालकर फिर से हरताल दे कर वन्दकर पुट में पकावे ॥ १४४ ॥

एवं चतुर्दशपुटैस्तारभस्म प्रजायते। अथान्य प्रकारः। स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत्। तालकस्य प्रकारेण तारपत्त्रस्य बुद्धिमान्॥ १४६॥ पुटेच्चतुर्दश पुटैस्तारभस्म प्रजायते॥

[एवं मारितस्य रूप्यस्य गुणाः]

रौप्यं शीतं कषायञ्च स्वादुपाकरसं सरम्। वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित्॥ १४७॥ प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद्ध्रुवम्॥

भा० ऐसे चौदह पुट में चान्दी का भस्म होता है॥ अनंतर दूसरा प्रकार॥ रूपा माखीको थूहरके दूधमें पीसे उससे॥ हरताल के तरह चान्दी

केपत्रोंकोलेपकरे ॥ १४ ॥ चौदह पुंटदेवे इस्से चान्दीभस्महोतीहै। इस प्रकारचान्दीके भस्मका गुण है ॥ चान्दी शीतल कसेली पाकरस में मधुर ॥ वपकीस्थापन चिकनी लेखन वान पित्तको जीननेवाली है ॥ १४७॥ ओर प्रमेह आदिक रोगों को निश्चय नाश करती है ॥

[अथ मारण योग्य ताम्रमाह]

जवा कुसुम सङ्काशं स्निग्धं गुरु घन क्षमम्। लोह नागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥ १४८॥

[अथा योग्य ताम्रमाह]

कृष्णं रूक्ष मति स्वच्छं श्वेतं चापि घना सहम्। लोह नाग युतं चेति शुल्वं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥ १४९॥

अथशोधनविधिः पत्तलीकृतपत्राणि ताम्रस्याग्नौ प्रतापयेत्। निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ १५०॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा। एवं ताम्रस्य पत्राणां विशुद्धिः संप्रजायते ॥ १५१॥

भा० — अनन्तर मारण योग्य ताम्रको कहते हैं ॥ अडहुलके फूल के सदृश लाल चिकना भारी घन सहनेवाला ॥ लोहा और सीसा इनसे रहित ताम्बा मारणके अर्थ अच्छा है ॥१४८॥ अनन्तर अयोग्य ताम्र को कहते हैं। काला रूखा अति स्वच्छ श्वेत घनको नसहनेवाला ॥ लोह नाग से युक्त ऐसा ताम्बा दुष्ट कहा है ॥ १४९॥ अनन्तर शोधन की विधि॥ ताम्बे के पतले पत्र करके आगमें तपावे॥ उनको तपा २ करतेल मटा कांजी ॥ १५०॥ गोमूत्र कुरथी का काढा इनमें तीन २ वार बुझावे ऐसे ताम्बेके पत्रोंकी शुद्धि होती है ॥ १५१॥

एको दोषो विषे ताम्रे त्वशुद्धे ऽष्टौ भ्रमो वमिः। विरेकः स्वेद उत्क्लेदो मूर्छा दाहो ऽरुचिस्तथा ॥ १५२॥

नविषं विषमित्याहुस्ताम्रन्तु विषमुच्यते। एको दो
षो विषेताम्रे त्वष्टौ दोषाः प्रकीर्त्तिताः॥ १५३॥

अथ ताम्रस्य मारण विधिः।

सूक्ष्माणि ताम्र पत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः।
वासरत्रय मम्लेन ततः खल्वे विनिःक्षिपेत्॥१५४॥
पादांशं सूतकं दत्त्वा याम मम्लेन मर्द्दयेत्। तत उ
द्धृत्य पत्राणि लेपयेद्द्विगुणेन च॥ १५५॥

भा० विषमें एक दोष अशुद्ध ताम्रे में आठ दोष हे॥ भ्रम वमन विरेक स्वेद उत्क्लेद मूर्च्छा दाह अरुचि येह हे॥ १५२॥ विषको विष नही कहते हे ताम्रेको विष कहते हें॥ एक दोष विषमें कहाहे और आठ दोष ताम्रे में कहेहें॥ १५३॥ अनन्तर ताम्रेके मारण की विधि। सूक्ष्म ताम्रेके पत्र करके बुद्धिवान उनको संस्वेदन करे॥ तीन दिन खटाईके साथ उसके अनंतर खरलमें डाले॥ १५४॥ उसमें चौथाई पारा देकर एक पहर खटाईके साथ घोटे॥ उस्से लेकर दुगनें से उन पत्रोंको लेप करे॥ १५५॥

गन्धकेनाम्ल घृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम्। ततः पि
ष्ट्वा च मीनाक्षी चाङ्गेरीं वा पुनर्नवाम्॥ १५६॥
(चाङ्गेरी चतुष्पत्राम्ला लोनिका भेदः।)
तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेद्व्यङ्गुलोन्मितम्। धृत्वा
तद्गोलकं भाण्डे शरावेण चरोधयेत्॥ १५७॥

भा०-खटाईसे घोटे हुए गन्धक से उसकी गोली करे॥ उसके अनंतर मछेछी चांङ्गेरी अथवा पुनर्नवा इसको पीसकर॥ १५६॥ उसके कल्कसे दो अंगुल मोटा गोलकके बाहर लेप करे॥ उसे गोलक को बरतनमें रखकर सकोरेसे बन्द करदे॥ १५७॥

तान्तु काभिः प्रपूर्व्वाथ विभूतिलवणाम्बुभिः ॥ दत्त्वा भाण्ड मुखे मुद्रां ततश्चुल्यां विपाचयेत् ॥ १५८ ॥ क्रमवृद्ध्याग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम् । स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्यमर्दयेच्छूरणाद्रवैः ॥ १५९ ॥ यामैकं गोलकं तच्च निःक्षिपेच्छूरणोदरे ॥ मृदालेपस्तु कर्त्तव्यः सर्वतोऽङ्गुष्टमात्रकः ॥ १६० ॥ पाच्यं गजपुटे क्षिप्तं मृतं भवति निश्चितम् । वमनंच विरेकंच भ्रमंक्लम मथा रुचिम् ॥ १६१ ॥ विदाहं स्वेद मुत्क्लेदं नकरोति कदाचन ॥

भा० वालूसे भरके और विभूतलवण जल इसे भाण्ड सुखमें मुद्रां देकर उसके अनन्तर चूल्हे पर पकावे ॥ १५८ ॥ क्रमवृद्ध अग्निसे अच्छी तरह पर चार पहर आंच देवे ॥ स्वाङ्गशीत होनेपर निकालकर सूरण के रससे घोटे ॥ १५९ ॥ एक पहर उस गोलकको सूरणके भीतर रक्खे ॥ मिट्टीसे सब तरफ अंगुष्टमात्र लेपकरना चाहिये ॥ १६० ॥ पाच्यको गजपुटमें डालनेसे अवश्य मरताहै ॥ वमन विरेक भ्रमक्लम और अरुचि ॥ १६१ ॥ विदाह स्वेद उत्क्लेद इनको कभी नहीं करता ॥

एवं मारितस्य ताम्रस्य गुणाः ।

ताम्रं कषायं मधुरं सतिक्त मम्लञ्च पाके कटु सारकञ्च । पित्तापहं श्लेष्महरञ्च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनञ्च ॥ १६२ ॥ पाण्डूदराशोज्वर कुष्ट कास श्वास क्षयान् पीनस मम्लपित्तम् । शोथं कृमिं शूलमपाकरोति प्राहुर्बुधा वृंहण मल्पमेतत् ॥ १६३ ॥ एको दोषो विषेताम्रे त्वसम्यग्मारितेपुनः । दाहः स्वेदोऽरुचिर्मू

छर्दिक्लेदो रेको वमिर्भ्रमः॥१६४॥ रेको विरेकः॥

भा० - ऐसे मारित ताम्र का गुण॥ ताम्र कसेला मधुर तिक्त खट्टा पाक में कटु सारक। पित्तनाशक कफनाशक शीतल और रोपण हलका लेखन होताहै॥१६२॥ पांडुरोग उदररोग ज्वर कुष्ट कास श्वास क्षय पीनस अम्लपित्त॥ सूजन कृमि शूल इनको दूर करताहै, और पंडितोंने कहाहै कियह थोडा पुष्टभी है॥१६३॥ एकदोष विषमें और अच्छीतरह न मरे ताम्रमें॥ दाह स्वेद अरुचि मूर्च्छा क्लेद विरेचन भ्रम यह होतेहैं॥ १६४॥ विरेक॥

[अथ वङ्गस्वरूपनिरूपणम्॥]

वङ्गञ्च गिरिजं तच्च खुरकं मिश्रकं द्विधा। तयोस्तु खुरकं श्रेष्ठं मिश्रकं त्वहितं मतम्॥१६५॥

॥ तस्याशुद्धस्य दोषमाह॥

वङ्गं विधत्ते खलु शुद्धिहीनमामं गुल्मौ च किलास गुल्मौ। कुष्टानि शूलं किल वातशोथं पाण्डुप्रमेहञ्च भगन्दरञ्च॥१६६॥ विषोपमं रक्तविकारवृन्दं क्षयञ्च कृच्छ्राणि कफज्वरञ्च। मेहाश्मरी विद्रधिमुष्करोगान्नागोऽपि कुर्यात्कथितान्विकारान्॥१६७॥

भा० अनंतर वङ्ग का स्वरूप निरूपण। पहाडीरांगा दोप्रकारका होताहै, खुरक और मिश्रक॥ उन्मेंखुरक श्रेष्टहै। और मिश्रक अहितकारीहै॥ ॥१६५॥ उसके अशुद्धका दोष कहतेहैं॥ अशुद्ध रांगा आमगुल्म किलास कुष्ट वायगोला॥ कुष्ट शूल वातशोथ पांडुरोग प्रमेह भगन्दर॥१६६॥ इनको करताहै और विषके समान रक्तविकार का वृन्द क्षय मूत्रकृच्छ्र कफज्वर इन ... अंडकोशके रोग करताहै और सीसा भी ... १६७॥

तस्य शोधनमभिधायते वङ्गनागौ प्रतप्तौ च गलि

नौ नौनिषेचयेत् । त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्रवि दुग्धेऽपिचत्रिधा ॥ १६८ ॥ (क) निषेचयेत् तैल तक्र काञ्जिक गोमूत्र कुलत्थ क्वाथेषु प्रत्येकं त्रिधा त्रिधा ततोऽर्कदुग्धे ऽपि त्रिधा ।

भा० उसकी शोधनविधिकहतेहैं । राङ्ग और सीसा इनको गलायके । तीन २ वार तेल मठा कांजी गोमूत्र कुरथीका कादा इनमें वुझावे और आकके दूधमें भी तीन वार वुझावे । इससे शुद्ध होताहै ॥ १६८ ॥ (क) तेल मठे कांजी गोमूत्र कुरथी का काढा इनमें हर एकमें तीन २ वार अनंतर मदारके दूधमें भी तीन वार वुझावे ।

॥ अथ वङ्गस्य मारणविधिः ॥

मृतपात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चा ऽश्वत्थत्वचोरजः । क्षिप्त्वा वङ्ग चतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् ॥ १६९ ॥ चिञ्चा अमिली । रज श्चूर्णम् अयो दर्वी करछुली । ततो द्वियाममात्रेण वङ्गं भस्म प्रजायते ॥ अथ भस्म समं तालं क्षिप्त्वाम्लेन विमर्दयेत् ॥ ततो गज पुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥ १७० ॥ तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥ एवं दशपुटैः पक्वं वङ्गं भवति मारितम् ॥ १७१ ॥

भा० अनंतर राङ्गकी मारणविधि ॥ मिट्टीके वरतनमें पिघलायेहुवे राङ्गमें इमली पीपल इनकी छालका चूर्ण ॥ राङ्ग की चौथाई डालकर लोहे की कडछी से चलावे ॥ १६९ ॥ इमली । करछी उससे दो पहरमें राङ्ग भस्म होताहै ॥ अनंतर भस्मके समान हरताल को डालकर खटाई से घोटे ॥ १७० ॥ दशमांश हरतालसे एक पहर भर फिरसे पुट देवे ॥ ऐसी दस पुट देनेसे राङ्ग का भस्म होताहै ॥ १७१ ॥

एवं मारितस्य वङ्गस्य गुणाः

वङ्गं लघुसरं रूक्षं कुष्ठमेहकफ कृमीन॥ निहन्ति पाण्डुं सश्वासं नेत्र्यमीषत् तुपित्तलं॥ १७२॥ सिंहो गजौघं तु यथा निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेह वर्गम्। देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम्॥ १७३॥ अथ यशदस्य स्वरूपं॥ यशदङ्गिरिजं तस्य दोषाः शोधन मारणे। वङ्गस्येवहि बोद्धव्या गुणास्तु गण याम्यय॥ १७४॥

भा०-इसप्रकार भस्मकियेहुवे रङ्गकागुण॥ रङ्गा हलकासर रूखाहो ताहे और कुष्ठप्रमेह कफ कृमि इनकोनाशकरताहै और पांडुरोग श्वास इनकोभी नाश करता है तथा नेत्रकेहित थोडे पित्तको करनेंवालाहो॥ १७२॥ जैसे सिंह गजकेगिरोह कोनाशकरताहै वैसेही रङ्ग संपूर्ण प्रमेहवर्गको नाशकरताहै। मनुष्यके देहका सौख्य प्रबलेन्द्रियत्व इनको अवश्यकरता है॥ १७३॥ अनंतर जसदका स्वरूप॥ पहाडीजसदउसके दोष शोधनमारणमें। रङ्गकेही समान गुणजानने चाहिये और कहताहूं॥ १७४॥

यशदं वसरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत्। चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासञ्च नाशयेत्॥ १७५॥

[अथसीसकस्य शोधनम्॥]

तस्य साहजिका दोषा रङ्गस्येव निदर्शिता। शोधनञ्चापि तस्येव भिषग्भिर्गदितं पुरा॥ १७६॥

भा० जसद सर तिक्त शीतल कफ पित्तका नाशक। परमनेत्रकेहित और प्रमेह पांडुरोग श्वास इनकोनाशकरताहै॥ १७५॥ अनंतर सीसेका शोधन। उसके सहजिक दोष रङ्गकेसमान कहेहै। और शोधनभी वैद्योंने

उसी के समान कहा है ॥ १७६ ॥

॥ अथ सीसस्य मारणविधिः ॥

ताम्बूलरससंपिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः । द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थं भस्म जायते ॥ १७७ ॥ शिलामनः शिला । अन्यच्च ॥ अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णञ्च तुर्यांशेन निक्षिपेत् । मृतपात्रे विद्रुतो नागो लोहदर्व्या प्रचालितः ॥ १७८ ॥ यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्या स्यान्मनःशिला । काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद्गजपुटेन च ॥ १७९ ॥ स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया काञ्जिकेन च । पुनः पचेत्सरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः ॥

और भी ॥ पीपल इमली इनके छालका चूर्ण चतुर्थांश करके ॥ मट्टीके बरतन में गलाये हुवे नागपर डाले और लोहेकी करछी से चलाता जाय ॥ १७८ एक पहरमें भस्म होता है उसके समान मैनसिल ले कर ॥ दोनोंको कांजी में पीसकर गजपुटमें पकावे ॥ १७९ ॥ स्वाङ्गशीत होनेपर फिर से मैनसिल और कांजी के साथ फिर उसको ऐसे पकावे ऐसे साठ पुटसे मरता है १८०

एवं मारितस्य सीसस्य गुणाः ॥ सीसं वङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति । व्याधिञ्च नाशयति जीवनमातनोति । वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति । मृत्युञ्च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ १८१ ॥

भा॰ ऐसे नाग भस्मके गुण। सीसा रङ्ग के गुण जानना चाहिये विशेषक रके प्रमेह नाशक है। नाग सौहाथी के समान बलको देता है॥ रोगोंको नाश करता है। जीवनको करता है। अग्निको दीपन करता है काम बलको करताहै और मृत्युको नाश करताहै निरन्तर सेवन करनेसे॥ १८१॥

अथ लोहस्याशुद्धस्य दोषमाह॥ षण्डत्व कुष्ठामयमृत्युकारी हृद्रोग शूलौ कुरुते ऽश्मरीञ्च। नाना रुजानांच तथा प्रकोपं कुर्याच्च हृल्लास मशुद्ध लोहम्॥ ॥८२॥ अतस्तस्य दोष शान्तये शोधनमभिधीयते। पत्तली कृत पत्राणि लोहस्याग्नौ प्रतापयेत्। निषिञ्चेत्तप्त तप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके॥८३॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषांचत्रिधात्रिधा। एवं लोहस्य पत्राणां विशुद्धिः संप्रजायते॥ १८४॥

भा॰ अनन्तर अशुद्ध लोहेके दोषकहतेहैं॥ नपुंसकता कुष्ट मृत्यु इन को करनेवाला और हृदोग शूल इनको करता है और अश्मरी कोभी। अनेक रोगों का प्रकोप करता है तथा हृल्लास इनकोभी अशुद्ध लोहा करताहै इसवास्ते उसकी दोष शान्ति के अर्थ शोधन कहेताहूं॥ लोहेके पतलेपत्र करके अग्निसे तपावे॥ औरतपातपा करतेल मठा कांजी॥ १८३॥ गोमूत्र कुरथी का काढा इनमें तीन २ वार बुझावे। ऐसे लोह पत्रोंकी शुद्धि होतीहै॥ १८४॥

अथ लोहस्य मारणविधिः

शुद्धे लोहभवं चूर्णं पाताल गरुडीरसैः। मर्दयित्वा पुटे वन्हौ दद्या देवं पुटत्रयम्॥ १८५॥ पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छिन्नि कारसैः। पुटषटकं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत्॥ १८६॥ अन्यच्च।

क्षिपे द्वादशमांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णतः। मर्द्दयेत्क न्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत्॥ १८७॥ एवंसप्त पुटैर्मृत्युं लोहचूर्णमवाप्नुयात्। सन्यो ऽनुभूतो योगेन्द्रैः क्रमोऽन्यो लोहमारणे॥ १८८॥ कथ्यते रामराजेन कौतूहलधिया ऽधुना। सूतकात् द्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्य्याच्च कज्जलीम्॥ १८९॥

भा०-अनंतर लोहकी मारणविधि॥ शुद्धलोहेके चूर्णको पतालसूलीके रससे घोटकर अग्नि में देवे ऐसे तीन पुट देवे॥ १८५॥ तीनपुट घीकुवारके कुरैय्याके रससे॥ छःपुट देवे ऐसे लोह भस्म होता है॥ १८६॥ औरभी। लोहेसे बारह भाग करके सिंगरिफले॥ उसको घीकुवारसे दोपहर घोटवावे। उसके अनंतर पुट देवे॥ १८७॥ ऐसे सात पुट देनेसे लोह भस्म होता है॥ सन्य अनुभूत योगिराजोंसे क्रम दूसरा लोह भस्ममें॥ १८८॥ अवराम राजने कौतूहलबुद्धिसे। पारेसे दुगना गन्धक देकर कजली करके॥ १८९॥

द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्द्दयेत्कन्यकाद्रवैः। याम युग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके॥ १९०॥ धर्मे धृत्वा रुवूकस्य पत्रै राच्छादयेद्बुधः॥ यामद्वया द्भवेदुष्णं धान्यराशौ न्यसेत्ततः॥ १९१॥ दत्त्वोपरि सरावं तु त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्॥ पिष्टा च गालयेद्वस्त्राद्देवं वारितरं भवेत्॥ १९२॥

भा० दोनोंके समान लोहचूर्णको घीकुवारके रससे॥ दोपहर घोटे उसके अनंतर पिंडकरके ताम्रके पात्रमें॥ १९०॥ धरकर धूपमें अंडीके पत्रसे ढककर पंडित दोपहर। रक्खे उससे गरम होता है उसके अनंतर धानकी राशीमें रक्खे॥ १९१॥ सकोरेके ऊपर देकर तीन दिनके अनंतर निकाले॥ पीसकर कपडेमें छाने तब यह पानीमें तैर

ता है ॥१९२॥ दाडिमस्य दलं पिष्ट्वा तच्चतुर्गुणवारिणा।
तद्रसेनायसञ्चूर्णं सन्नीय प्लावयेद्दिनि॥ १९३॥
आतपे शोषयेत्तच्च पुटेदेवं पुनः पुनः। एकविंश
ति वारैस्तन्म्रियते नात्र संशयः॥ १९४॥ सर्वंस
र्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि मारयेत्।

एवं मारितस्य लोहस्य गुणाः॥

लोहं तिक्तं सरं शीतं कषायं मधुरं गुरु। रूक्षं वय
स्यं चक्षुष्यं लेखनं वानलं जयेत्॥ १९५॥ क
फं पित्तङ्गरं शूलं शोफार्शः प्लीहपाण्डुताः। मेदो
मेह क्रिमीन् कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेवहि॥ १९६॥

भा० - अनारके पत्तोंको उस्से चौगुनें पानीके साथ पीसकर॥ उसरस से लोहचूरको सानकर भिजोदेवे॥ १९३॥ इसको धूपमें सुकावे इसप्रकार वार२ पुटदेवे॥ इक्कीस दफेमें लोह मरजाता है इसमें कोई संशय नहीं॥ १९४॥ ऐसे सव लोह स्वर्णादिकोंको मारे॥ इसप्रकार मारेहुवे लोहका गुण॥ लोह तिक्त सर शीतल कसेला मधुर भारी॥ रूखा वयके हितनेत्रके हित लेखन वातको करनें वाला है॥ १९५॥ और कफ पित्त विष शूल शोफ ववासीर पिलही पाण्डुता॥ मेदमेह क्रिमिकुष्ट इनको नाश करता है और उसका कीट उसीके समान गुणमें होता है॥ १९६॥

गुञ्जामेकां समारभ्य यावत्स्युर्नवरक्तिकाः। ताव
ल्लोहं समश्नीयाद्यथा दोषानलं नरः॥ १९७॥
कुष्माण्डं तिलतैलञ्च माषान्नं राजिकां तथा। मद्य
मम्लरसञ्चैव वर्जयेल्लोहसेवकः॥ १९८॥ शिला
गन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः। म्रियन्ते

द्वादश पुटैः सत्यं गुरु वचो यथा ॥ १९९ ॥

अथोपधातूनां मारण प्रकार माह ॥

तत्र स्वर्ण माक्षिक स्या शुद्धस्य दोष माह ॥ ॥

मन्दा नलत्व बलहानि मुग्रां विष्टम्भि तां नेत्र गदां शकु ष्टान्। मालां तथैव व्रण पूर्विकाञ्च कुर्याद शुद्धं खलु माक्षिकञ्च ॥ २०० ॥

भा० एक रत्ती से शुरू करके नौ रत्ती तक । मनुष्य दोष और अग्निबल के अनुसार सेवन करे ॥ १९७ ॥ पेठा तिलका तेल उड़द राई । तथा मद्य अम्ल रस इनको लोहका सेवन करनेवाला न सेवन करे ॥ १९८ ॥ मैनसिल गन्धक आकका दूध इनके साथ सुवर्णादि सब धातु ॥ बारह पुट से मरतेहैं सत्य गुरुके वचनानुसार ॥ १९९ ॥ अनंतर उपधातुवोंके मारणका प्रकार कहतेहैं । उसमें सोना मारवी अशुद्ध का दोष कहतेहैं ॥ अग्निमान्द्य बलहानि उग्र विष्टम्भिता नेत्र रोग शकुष्ट ॥ गंडमाला इनको विन सोधी सोना मारवी करती है ॥ २०० ॥

अतस्तस्य दोष शान्तये शोधन मभिधीयते । माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्यच । मातुलुङ्ग द्रवैर्वाथ जम्बीरस्य द्रवैः पचेत् ॥ २०१ ॥ चालयेल्लोहजे पात्रे यावत् पात्रं सुलोहितम् । भवेत्त तस्तु संशुद्धिः स्वर्ण माक्षिक मृच्छति ॥ २०२॥

भा० इसवास्ते उसकी दोष शान्तिके अर्थ शोधन कहतेहैं । सोनामारवीके तीन भाग एक भाग सैन्धव ॥ इनको नीम्बूके रससे अथवा जंबीरीके रससे पकावे ॥ २०१ ॥ लोहेके पात्रमें चलावे जबतक पात्र लाल हो ॥ उस्से सोना मारवी शुद्ध होतीहै ॥ २०२ ॥

अथ मारण विधि ॥

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत्। तक्रेण वाजमूत्रेण म्रियते स्वर्णमाक्षिकम्॥ २०३॥

[अथ तारमाक्षिकस्य शोधनमाह।]

सुवर्णमाक्षिकवद्दोषा विज्ञेयास्तारमाक्षिके। अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं शोधनं तस्य कथ्यते॥ २०४॥ कर्कोटीमेषशृङ्ग्युत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दिनम्। भावयेदातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम्॥ २०५॥

(क) विमला तारमाक्षिकम्। कर्कोटी खेखसा। मेषशृङ्गी मेढाशृङ्गी। [अथ मारणम्।]

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत्। तक्रेण वाजमूत्रेण तारमाक्षिकमृच्छति॥ २०६॥

भा० - अनंतर मारणविधि॥ कुरथीके काढेसे अथवा तेलसे घोंटकर पुटदेवे॥ अथवा मठेसे, या बकरीमूत्रसे सोना मारवी मरतीहै॥ २०३॥ अनंतर रूपा मारवीका शोधन कहतेहैं॥ सोना मारवीके समान दोष रूपा मारवीमें जानने चाहिये। इस वास्ते उस दोषकी शान्तीके अर्थ उसका शोधन कहतेहैं॥ २०४॥ खेखसा मेढासाङ्गी इनके रससे और जंभीरीके रससे दिनभर॥ तीक्ष्ण धूपमें भावना देवे। इससे रूपा मारवी अवश्य शुद्ध होतीहै॥ २०५॥ (क) रूपामारवी। खेखसा। मेढासीङ्गी। अनंतर मारण। कुरथीके काढेसे अथवा तेलसे पुटदेवे॥ मठेसे अथवा बकरीके मूत्रसे रूपा मारवी मरतीहै॥ २०६॥ - अथतयोर्विशिष्टा गुणाः

न केवलं स्वर्णरूप्यगुणास्तापीजयोर्मताः। द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणास्तयोः॥ २०७॥

माक्षिकं मधुरं तिक्तं स्वर्य्यं वृष्यं रसायनम्। चक्षुष्यं

वस्तिरुक्कुष्टपाण्डुमेहविषोदरम् ॥ २०८ ॥ अ
र्शः शोफं क्षयं कण्डूं त्रिदोषञ्च नियच्छति ।

[अथ तुत्थस्य शोधनमाह]

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारककपोतयोः । दशांशं
टङ्कणं दत्त्वा पचेल्लघुपुटेततः ॥ २०९ ॥ पुटं
दध्ना पुटं क्षौद्रे देयं तुत्थविशुद्धये ॥

भा० अनंतर उनके विशेषगुण । केवल सोना चान्दीके ही गुण सोना मारवी और रूपा मारवीमें नहीहै ॥ किन्तु द्रव्यान्तरके संसर्गसे उनमें और भी गुणहै ॥ २०७ ॥ सोना रूपा मारवी मधुर तिक्त स्वरके हित कामुक के हित रसायन ॥ नेत्रके हित वस्ति पीड़ा कुष्ट पांडुरोग प्रमेह विष उदर ॥ २०८ ॥ ववासीर सूजन क्षय खुजली और त्रिदोष इनको नाश करतीहै ॥ अनंतर नीला थोथेका शोधन कहतेहैं ॥ कबूतर और बिल्ली इनकी विष्टासे खरल करे ॥ दशवां भाग सोहागा देकर लघु पुटमेंपकावे उसके अनंतर ॥ २०९ ॥ नीला थोथेकी शुद्धिके अर्थ दही से और मधुसे पुट देनाचाहिये ॥

[एवं शुद्धस्य तुत्थस्य गुणाः] तुत्थकं कटुकं क्षा
रं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतञ्च क्षुष्यं
कफपित्तहृत् ॥ २१० ॥ विषाश्मकुष्टकण्डूघ्नं तद्गु
णं खर्परं मतम् । अथ कांस्यस्य रीतेश्च शोधनञ्च
भिधीयते ॥ पत्तलीकृतपत्राणि कांस्यस्याग्नौ प्र
तापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके
॥ २११ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये त्रित्रिधा त्रिधा ।
एवं कांस्यस्य रीतेश्च विशुद्धिः संप्रजायते ॥ २१२ ॥

भा० इसप्रकार शुद्ध लीला थोथेके गुण ॥ लीला थोथा कटुक खार कसेला वमन करानेवाला हलका ॥ लेखनभेदन शीतल नेत्रके हितकफ पित्तका नाशक ॥ २१ ॥ ९ ॥ और विषपथरी कुष्ट खुजली इनका नाशक है उसका गुण खपरियामें माना है ॥ अनंतर कांसा और पीतल का शोधन कहते हैं ॥ कासेके पतले पत्र करके आगमें तपावे ॥ तप्त तप्तोंको तेल मठा कांजी ॥ २११ ॥ और गोमूत्र तथा कुरथीके काढ़ा इनमें तीन २ वार बुझावे ॥ ऐसा कांसा और पीतल की शुद्धि होती है ॥ २१२ ॥

[अथ मारणविधिः ।] अर्कक्षीरेण संपिष्टो गन्धकस्तेन लेपयेत् । समेन कांस्यपत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ॥ २१३ ॥ ततोमूषापुटे धृत्वा पचेद्गजपुटे नच । एवंपुटद्वयात्कांस्य रीतिश्चम्रियतेध्रुवम् ॥ ॥ २१४ ॥ एवं मारितयोः कांस्यस्य रीतेश्च गुणाः । कांस्यं कषायं तीक्ष्णोष्णं लेखनं विशदं सरम् ॥ ॥ २१५ ॥ रीतिकातुभवेद्रूक्षा सतिक्ता लवणारसे । शोधिनी पाण्डुरोगघ्नी कृमिहृन्नातिलेखनी ॥ २१६ ॥

भा० अनंतर मारणविधि ॥ आकके दूधसे पीसे हुवे समभाग गन्धकसे ॥ कांसेके शुद्ध पत्र लेपकरे ॥ और खट्टेके रससे बाद ॥ २१३ ॥ उसके अनंतर मूषापुटमें रखकर गजपुटमें पकावे ॥ इसप्रकारके दोपुटसे कासा औरपीतल अवश्य मरता है ॥ २१४ ॥ इसप्रकार मारे हुवे कासा और पीतलके गुण । कांसा कसेला तीखा गरम लेखनविशद सर ॥ मारीनेत्र हितरूखा यरस कफ पित्तका नाशक है ॥ २१५ ॥ पीतल रूखातिक्त रसमें लवण शोधन पांडुरोगका नाशक कृमिनाशक नबहुत लेखन है ॥ २१६ ॥

(अथ सिन्दूरस्य शोधनमाह ।)

दुग्धाम्लयोगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिताबुधैः । अथ गुणाः । सिन्दूरउष्णो वीसर्पकुष्टकण्डूवियापहः ।

भग्नसन्धानजननो व्रणशोधनरोपणाम् ॥ २१७ ॥

अथ शिलाजतुनः शोधनमाह ।]तत्र शोधनायोग्य शिलाजतुमाह ।] गोमूत्रगन्धवत्कृष्णं स्निग्धं मृदु तथा गुरु । तिक्तं कषायं शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् ॥ २१८ ॥ (आयसम् अयस उपधातुः)

विन्ध्यादौ बहुलं तत्तु तत्र लोहं यतोऽधिकम् । तच्छोधनं विना व्यर्थमनेकमलमेलनात् ॥ २१९ ॥

भा० अनन्तर सिन्दूरका शोधन कहतेहैं । दूध और खटाईके योगसे शुद्धि इसकी पंडितोंने कहीहै ॥ अनंतर गुण ॥ सिन्दूर उष्ण है और वीसर्प कुष्ट खुजली बिष इनका नाशक ॥ टूटेको जोडनेवाला व्रण शोधन रोपण है ॥ २१७ अनंतर शिलाजीतका शोधन कहतेहैं ॥ उसमें शोधन योग्य शिलाजीत को कहतेहैं ॥ गोमूत्रकीसी गन्धवाला काला चिकना मृदु तथा भारी ॥ तिक्त कसेला शीत सबमें उत्तम ऐसा वोह लोहेका होताहै ॥ २१८ ॥ (लोहेका उपधातु) विन्ध्याचलमें वोह बहुत होताहै । क्योंकि उसमें लोहा अधिक है वोह शोधनके विना व्यर्थहै । अनेक मलके मिलेरहनेसे ॥ २१९ ॥

शिलाजतु समानीय सूक्ष्मं खण्डं विधाय च । निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ २२० ॥ मर्द्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् । स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ २२१ ॥ उपरिस्थं घनं यत्स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके । एवं पुनः पुनर्नीतं द्विमासाभ्यां शिलाजतु ॥ २२२ ॥ भवेत्कार्य्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिङ्गोपमं भवेत् । निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २२३ ॥ ॥ ॥

भा० शिलाजीतकोलाकार वारीक करके। बहुत गरम पानी में डालकें एक पहर रख छोड़े॥ २२०॥ उसको मलकर उसके अनंतर कपड़े से छानकर पानी लेलेवे॥ उसको मिट्टीके वरतन में रख कर धूपमें रखवावे॥ २२१॥ ऊपर जो गाढ़ा निकले उसको और वरतन में डाले॥ दो महिने में इसप्रकार फिर २ सेलिया हुवा शिलाजीत॥ २२२॥ काम करनेमें समर्थ होताहै और आगमें डालनेसे लिंगके समान होताहै॥ तथा निर्धूम भी होता है उसके अनंतर उसको सबकाममें योजना करे॥ २२३॥

(फ) अथान्य प्रकारः। तत्र प्रथमतस्तस्य वहिर्मलम पाकर्त्तुं केवल जलेन प्रक्षालनं कर्त्तव्यं। ततस्तदन्तर्गत मृत्तिका सिकतादि दोष दूरीकरणाय वक्ष्य माण क्वाथेन तत्र भावना देया।] तदाह वागूभटः [व्याधिव्याधित सात्म्यं समनुसरन् भावयेद यःपात्रे। प्राक्केवल जल धौतं शुष्कं क्वाथे स्ततो भाव्यम्॥ २२४॥ तुल्यं गिरिजेन जले वसु गुणिते भावनौषधं क्वाथ्यम्॥ तत्क्वाथे पादांशेघृते क्षिपेद्गिरिजम्॥ २२५॥ तत्समरसता ज्ञातं सशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे॥ भूयः स्वैः स्वैरेवं क्वाथे भाव्यं वारान् भवेत्सप्त॥ २२६॥

भा० (फ) अनंतर इस प्रकार। उसमें पहिले उसका वाहरका मैल दूर करनेके वास्ते केवल जलसे धोना चाहिये। उसके अनंतर उसके अंतर्गत मृत्तिका रेत आदिदोष दूर करनेको इसकाढेसे उसमें भावना देनी चाहिये॥ उसको वागभटने कहाहै। रोग रोगीके सात्म्यको अच्छीतरह अनुसरण करताहुवा लोहके पात्रमें॥ पहिले केवल जलसे धोके सुकाकर उसके अनन्तर काढेसे भावना देना चाहिये॥ २२४॥ अठगुने जलमें शिलाजीतके समान भावनाके औषधोंका काढा करना चाहिये॥ चौथाई।

वाकी छनेहुवे गरस उसकाढेमें शिलाजीतको डाले ॥ २२५ ॥ उसके समान पतले हुवेको सुकाके फिरसे रसमें डाले ॥ ऐसे अपने २ काढोंसे सातवार भावना देना चाहिये ॥ २२६ ॥

अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् । त्र्यहं युञ्जीत गिरिजमेकैकेन तथा त्र्यहम् ॥ २२७॥
फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च । शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ॥ २२८ ॥
[क्वाथ द्रव्याणि भावना फलञ्चाह हारीतः ॥]
लोहस्थितं निम्बगुडूचिसर्पिर्यवैर्यथावत्परिभावयेत्तत् । सन्तानिकाकीटपतङ्गदंशदुष्टौषधीदोषनिवारणाय ॥ २२९ ॥ (क) सन्तानिका तद्बहिः संलग्नमृत्तिकादिमयी । एवं भावनां दत्त्वा संशोष्य केवलेन जलेन शोधनं कर्त्तव्यम् ॥

भा० - अनंतर पटोलसे सिद्ध किया घृत स्निग्ध और शुद्धमें तीन दिन डाले ॥ वैसेही तीन दिन एक २ के काढेसे शिलाजीत शुद्ध करे ॥ २२७ त्रिफलाके पटोलके और महुवेके काढेमें योजना करे ॥ ऐसा शिलाजीत शरीरका अति उपकार कहाताहै ॥ २२८ ॥ क्वाथ औषध भावना फल कहाहै । हारीतने ॥ लोहेका मैल कीट पतंग इनका काटना और दुष्ट औषधिके दोष दूर करनेके अर्थ नीम गिलोय घृत जव इनसे उसको भावना देवे ॥ २२९ ॥ उसके बाहर लगीहुई मृत्तिका आदि वाले । ऐसी भावना देकर सुकाके केवल जलसे शोधन करना चाहिये ॥

तत्प्रकारमाह अग्निवेशः

उष्णे च काले रवितापयुक्ते व्यभ्रे नियाते समभूमिभागे चत्वारि पात्राण्ययितामसानि न्यस्यातये तत्र कृता

वधानः ॥ २३० ॥ शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षिप्य तस्माद् द्विगुणञ्च तोयम् । उष्णं तदर्द्धं क्वथितञ्च दत्त्वा विशोधयेत्तं मृदितं यथावत् ॥ २३१ ॥

भा० उस प्रकार को कहाहै अग्निवेशने ॥ उष्णकाल में अभ्ररहित सुर्ये तापयुक्त निवात समभूमिपर ॥ अति तामस चार पात्रोंको उनमें फरक करके धूपमें रखकर ॥ २३० ॥ पात्रमें उत्तम शिलाजीत को डालकर उस्से दुगना जल उसमें डालके ॥ उस्से आधा औटा गरम देकर उसको शोधन करे अच्छीतरह मलकर ॥ २३१ ॥

ततस्तु यत्कृष्णमुपैति चोर्द्धं सन्तानिकावद्रविरश्मितप्तम् । पात्रे तदन्यत्र ततो निदध्यात्तत्रापरं कोष्णजलं क्षिपेच्च ॥ २३२ ॥ पुनश्च तस्मादपरत्र पात्रे पश्चाच्च पात्रादपरत्र भूयः । यदा विशुद्धं जलमेव मूर्द्धे कृष्णं समस्तं मलमेत्यधस्तात् ॥ २३३ ॥ तदा त्यजेत्तत्सलिलं मलञ्च शिलाजतु स्याज्जलशुद्धमेवम् ।

भा० उसके अनन्तर ऊपर की सूर्यकी किरणों से सन्तप्त हुवी मलाई के समान काला ऊपर का जो होताहै उसको दूसरे पात्रमें डाले उसमें और शीतल गरम जलभी डाले ॥ २३२ ॥ फिर उस्से और पात्रमें डाले और पिछले बरतन से दूसरे में फिर से डाले ॥ जब शुद्ध जलही ऊपर है काला सब मैं नीचे रहजावे ॥ २३३ ॥ तब उस जलमल को त्याग देवे वोह शुद्ध जलही शिलाजीत है ॥

एवं शोधितस्य शिलाजतुनो गुणानाह ।

शिलाजतु स्मृतं तिक्तं कटूष्णं कटुपाकि च । रसायनं योगवाहि श्लेष्ममेहाश्मशर्करा ॥ २३४ ॥

मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं शोथमर्शांसि पाण्डुताम्। वातरक्तं तथाकुष्ठमपस्मारोदरं हरेत्॥ २३५॥

[अथरसस्य शोधनविधिः।] ततस्वेदनम्।

नाना धान्यैर्यथा प्राप्तैस्तुषवर्ज्जैर्जलान्वितैः। मृद्भाण्डं पूरितं रक्षेद यावदम्लत्वमाप्नुयात्॥ २३६॥

भा० इस प्रकार शोधेहुवे शिलाजीत का गुण कहतेहैं॥ शिलाजीत तिक्त कटु॥ उष्ण पाकमें कटु॥ रसायन योग वाहिहै और कफ प्रमेह पथरी शर्करा॥ २३४॥ मूत्र कृच्छ्र क्षय श्वास सूजन ववासीर पांडुता॥ वातरक्त तथा कुष्ट अपस्मार उदर रोग इनको नाशकरताहै॥ २३५॥ अनन्तर पारेकी शोधन विधि॥ उसमें स्वेदन। वे छिलके के अनेक प्रकार के धान्य जोमिलजावें उनको जलके युक्त। इनको मिट्टीके बरतनमें भरके रक्खे जवतक खट्टाहोवे॥ २३६॥

तन्मध्येभृङ्गराजमुण्डीविष्णुक्रान्तापुनर्नवा। मीनाक्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी॥ २३७॥ त्रिफला गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकम्। समूलं कुट्टयित्वा तु यथालाभं विनिःक्षिपेत्॥ २३८॥ पूर्वोक्त भाण्ड मध्ये तु धान्याम्लकमिदं स्मृतम्। स्वेदनादिषु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत्॥ २३९॥ विष्णुक्रान्ता गिरिकर्णीच अपराजितेव श्वेत नील पुष्प भेदात्। अत्यम्ल मारनालं वा तदभावे प्रयोजयेत्॥

भा० उसमें भाङ्गरा मुंडी विष्णुक्रान्त गदह पूरना मछछी नाग फनी सहदेई सतावर॥ २३७॥ त्रिफला नीलेफूल की कुंद हंसपदी चित्रक॥ मूलके सहितकूट कर जो मिले उसको डाले॥ २३८॥ पाहिल बरतन में जो खट्टे में येह धान्याम्ल कहाहै॥ पारेके स्वेदनादिक सब जगह में योजनाकरे॥ २३९॥ विष्णुक्रान्ता।

और गिरि कर्णी येह दोनो अपराजिताहि हे नीला और श्वेत पुष्पके भेद से ॥ उ सके अभावमें वहुत खट्टे आरना लको योजना करे ॥

(तदभावेधान्याम्लाभावे)

त्र्यूषणं लवणं जाजीरजनी त्रिफलार्द्रकम्। महाव ला नागबलामेघनादः पुनर्नवा ॥ २४०॥ मेषशृङ्गी चित्रकञ्च नवसारं समंसमम्। एतन्सम्सर्त्त वापूर्वाम्ले नैव पेषयेत्॥ २४१॥ आलेप्येत्तेन कल्केन वस्त्र मङ्गुलमात्रकम्। तन्मध्येनिःक्षिपेत्सूतं बद्ध्वा तत्त्रिदिनं पचेत्॥ २४२॥ दोला यन्त्रे ऽम्लसंयुक्ते जायते स्वेदितो रसः। (क) मेघनादः चवराई शाकविशेषः। मेषशृङ्गी मेढा शृङ्गी। तदलाभे कर्कट शृङ्गी ग्राह्या। नवसारं। नवसादरं।

भा०— धान्याम्लके अभावसे॥ त्रिकुटा लवण राई हलदी त्रिफला अद्रक॥ वरियाग गुलसकरी चवराई गदह पूरना ॥ २४०॥ मेढासींङ्गी चित्रक नवसादर येह सब समभाग ॥ इनसब को अलग २ अथवा एक साथ ही पहिली खटाई से पिसवावे ॥ २४१॥ उसकल्कसे अंगुल बराबर मोटा लेप कपडे परकरावे ॥ उसकपडेमें पारेको डालकर बान्धकर उसकोतीनदिन पकावे॥ २४२॥ अम्लयुक्त दोला यन्त्र मेंपारा स्वेदित होताहै ॥ (क) चवराई। मेढासींङ्गी। उस्के अभावमें काकडा सींङ्गी लेनीचाहिये ॥ नवसादर।

अन्यच्च। मूलकानल सिन्धूत्थ त्र्यूषणार्द्रक राजिका रसस्य षोडशांशेन द्रव्यं युञ्ज्यात पृथक्पृथक् २४३ द्रवेष्वम्लयुक्तमानेषु मतिमान भिलवुधैः॥ पट्टा द्रुनेषु चैतेषु सूतं प्रक्षिप्य काञ्जिकैः॥ २४४॥ स्वेदयेद्दिन मेकञ्च दोला यन्त्रे या युक्तिमान। स्वेदान्ते भवे

न्सूतो मर्द्दनाच्च सुनिर्मलः॥ २४५॥ (क) मूलक मुरई अनलश्चित्रकम्। त्र्यूषणं त्रिकटु राजिका राई अथमर्द्दनम्। इष्टिका चूर्णचूर्णाभ्यामादौ मर्द्यो रसस्ततः। दध्ना गुडेन सिन्धूत्थ राजिका गृहधूमकैः॥ अन्यच्च। कुमारिका चित्रक रक्त सर्षपैः कृतैः कषायैर्वृहतीविमिश्रितैः। फलत्रिकेणापि विमर्द्दितो रसो दिनत्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते। [अथमूर्च्छनम्।] त्र्यूषणं त्रिफला वन्ध्या कन्दैः क्षुद्रा द्वयान्वितैः॥ २४६॥

भा० औरभी। मूली चित्रक सेन्धव त्रिकुटा अदरक राई॥ पारेके सोलवें भागसे सबको अलग२ लेवे॥ २४३॥ जिसमें दवा की तोल नहीं कहीहै उनमें येह तोल पंडितोंने कहीहै॥ कपडेमें लेकर इनमें पारा डालके कांजीमें॥ २४४॥ एक दिन स्वेदनकरे दोला यन्त्रसे बुद्धिवान्॥ स्वेदसे पारा तीव्र होताहै और मर्द्दनसे निर्मल होताहै॥ २४५॥ (क) मूली चित्रक त्रिकुट राई अनंतर मर्दन। ईटका चूर्ण और चूना इनसे पहिले पारेको मर्दनकरना चाहिये उसके अनंतर॥ दही गुड सेन्धव राई घरका धूवां इनसे मर्दन करे॥ औरभी घीकुवांर चित्रक लाल सरसों कटेली इनेको मिलाके इनके काढेसे॥ त्रिफलासेभी मर्दन किया हुवा पारा तीन दिनमें सब मलोंसे छूट जाताहै॥ अनंतर मूर्च्छन। त्रिकुटा त्रिफला वांझ ककोरा दोनो कटेली इनसे युक्त॥ २४६

चित्रकोर्णा निशा क्षार कन्यार्क कनक द्रवैः। सूतं कृतेन यूषेण वारान् सप्ताभिमर्दयेत्॥ २४७॥ इत्थं संमूर्च्छितः सूतस्त्यजत्सप्तापि कञ्चुकान्।

भा० चित्रक पवाड हलदी क्षार घीकुवार आक धतूरा इनके रससे और कियेहुवे जूससे सात वार मर्द्दन करे॥ २४७॥ इसप्रकार समूर्छित पारा सातों कांचली को छोडताहै॥

(क) वन्ध्या कन्दः वांझ खेखसा कन्दः क्षुद्रा द्वयं छोटी कटाई बड़ी कटाई। उर्णा। उर्णा मेषका। निशा हरिद्रा क्षारः यवक्षारः। कन्या। कुमारिका अर्कपत्ररसः। कनक धत्तूर पत्ररसः। [अथोर्द्ध्वपातनम्] मयूर ग्रीवताप्याभ्या नष्टपिष्टी कृतस्यच। यन्त्रे विद्याधरे कुर्याद्रसेन्द्रस्योर्द्ध्व पातनम्॥२४८॥

भा० वांझ खेखसा दोनो कटेली। उर्णा मेषका। हल्दी। जवाखार। घीकुवार। आकके पत्तेका रस धतूरेके पत्तेका रस। अनंतर ऊर्द्ध्व पातन। लीला थोथा सोना माखी इनसे नष्ट और पीस गये पारेका॥ विद्याधर यन्त्र में ऊर्द्ध्व पातन करे॥ २४८॥

ताप्यंस सुवर्ण माखी। नष्टपिष्टी कृतस्य। कुमारिका द्रव योगेन तावन्मर्दनं कर्त्तव्यं यावत्पारदः पृथक् न दृश्यत इत्यर्थः। विद्याधर यन्त्रे डमरु यन्त्रे। अथाधः पातनम्। त्रिफला शिग्रु शिखिभिर्लवणा सुरिसं युतैः। नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्द्ध्व भाजनम्॥ २४९॥ ततो दीप्तैरधः पात मुपलैस्तस्य कारयेत्। यन्त्रे भूधर संज्ञेतु ततः सूतो विशुध्यति॥ २५०॥

भा० - सोना माखी। घीकुवांर के रससे तवतक मर्द्दन करनाचाहिये। जवतक पारा अलग न दिखाई देवे॥ डमरु यन्त्र में॥ अनंतर अधःपातन। त्रिफला सहिजना चित्रक निमक राई रसके सहित नष्ट पारेको करके ऊपरके वरतन में लेपकरे॥ २४९॥ उसके अनंतर बलते हुवे उपलोंसे उसका अधपातन करावे॥ भूधरनाम यन्त्रमें उसमें पारा शुद्ध होताहै॥ २५०॥

स्वेदनादिक्रियाभिस्तु शोधितो रसो यदाभवेत्। त
दा कार्याणि कुरुते प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥ २५१ ॥

अथ मुख्य दोष हरः शोधन विधिः

गृह कन्या हरति मलन्त्रिफलाग्निश्चित्रकोविषं
हन्ति। तस्मादेभिर्मिश्रैवारान् संमूर्च्छयेत् सप्त ॥

[अथ सर्व दोषहरः संक्षिप्त शोधन विधिः ॥]

कुमारिका चित्रक रक्तसर्षपैः कृतः कषायैर्बृहती
विमिश्रितैः। फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिन
त्रयं सर्व मलैर्विमुच्यते ॥ २५३ ॥

भा० जब स्वेदनादिक्रिया ओंसे येह शुद्ध होताहै ॥ तब कामोंकोकरता है तब सबकामोंमें योजना करना चाहिये ॥ २५१ ॥ अनन्तर मुख्य दोष नाशक शोधन विधि। घीकुवार मलको नाश करताहै त्रिफला अग्निको चित्रक बिषको नाशकरताहै ॥ इसवास्ते इनको मिलाके सातवार संमूर्छनकरावे ॥ २५२ ॥ अनंतरसर्व दोष नाशक संक्षिप्त शोधन विधि ॥ घीकुवार चित्रक लाल सरसो दोनों कटेली को मिलाके कियेहुवे काढ़ेसे ॥ और त्रिफलेसे भी मर्दन किया हुवा पारा तीन दिन में सब मलों से छूट जाता है ॥

कुमार्य्या च निशाचूर्णै दिनं सूतं विमर्दयेत्। एवं कद
र्थितः सूतो षण्डो भवति निश्चितम् ॥ २४ ४ ॥ वह्नौ
यथी कषायेण स्वेदितः सबली भवेत्। सर्पाक्षीचि
ञ्चिकावन्ध्या भृङ्गाब्दैः स्वेदितोबली ॥ २५५ ॥ त
तः स पावक द्रावैः स्विन्नः स्यादति दीप्तिमान्। सर्पा
क्षी। नाराफणी चिञ्चिका अम्बिली वन्ध्यावांझ खे
खसा भृङ्गः भृङ्गराजः। अब्दोमुस्ता पावकः चित्रकम्

भा० घीकुं वार मे और हल्दी के चूर्णसे दिन भर पारेको रगडे ॥ ऐसा दूषित पारा निश्चितस्य गड होताहै ॥ २५४ ॥ वहुत औषधियोंके कषायसे स्वेदित वोह पारा वली होताहै ॥ २५५ ॥ और नाग फन दुसल्ली खेखसा भाङ्गरा नागर मोथा ॥ उस्से चित्रक के रससे स्वेदन कियाहुवा अतिदीप्तिमान होताहै ॥ नागफनी । इसली । खेखसा । भांगरा । मोथा चित्रक ।

अथ रसस्य मारणविधिः।

धूम्रसारं रसं तोरी गन्धकं नव सादरम् । यामैकं मर्दये दम्लै र्भागं कृत्वा समं समम् ॥ २५६ ॥ काचकूप्यां विनिक्षिप्य ताञ्च मृद्वस्त्र मुद्रया । विलिप्य परितो वक्रे मुद्रान्दत्त्वा विशोषयेत् ॥ २५७ ॥ अधः सच्छिद्र पिठरी मध्ये कूपीं निवेशयेत् । पिठरीं वालुका पूरै र्भृत्वा चाकूपि कागलम् ॥ २५८ ॥ निवेश्य चुल्यां तदधो वह्निं कुर्य्याच्छनैः शनैः । तस्मा दप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वालयेत् क्रमात् ॥ २५९ ॥

भा० – अनंतर पारेकी। मारणविधि ॥ धूमसार पारा तोरी गन्धक नवसादर इनको समभाग लेकर खटाई से एक पहर घोटे ॥ २५६ ॥ कांचकी कूपीमें डालकर उसको मृदुवस्त्र कीमुद्रासे लीपकर मुखके आसपास और मुद्रादेकर सुकादेवे ॥ २५७ ॥ नीचेछिद्रसहित हांडीमें कुपीको डाले ॥ हांडीको रेतसे कूपीके गलेतक भरके ॥ २५८ ॥ चूल्हेपर रखके उस्के नीचे अग्नि धीरे २ वाले ॥ क्रमसे उस्सेभी कुछ अधिक अग्निको वाले ॥ २५९

एवं द्वादशभिर्यामै र्म्रियते रस उत्तमः । स्फोटयेत् स्वाङ्ग शीतं तमूर्द्धगङ्गन्धकं त्यजेत् ॥ २६० ॥ अधस्थञ्च मृतं सूतं गृह्णीयात्तन्तु मात्रया ॥ यथोचितानुपानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २६१ ॥

अथान्यप्रकारः] अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्। तत्संपुटे क्षिपेत्सूतं मल्लयू दुग्धमिश्रितम्॥ २६२॥ (मल्लयूकाष्ठोदुम्बरिका)॥ द्रोणपुष्पीप्रसूनानि विडङ्गं मरिमेदकः। एतच्चूर्णं मध्योर्द्ध्वं दत्त्वा मुद्रां प्रदीयते॥ २६३॥ तद्गोलं स्थापयेत् सम्यक् मृन्मूषासंपुटे पचेत्। एवमेव पुटेनैव सूतकस्भस्म जायते॥ २६४॥ तत्प्रयोज्यं यथा स्थाने यथा मात्रं यथा विधि॥ ॥ ॥

भा० – ऐसे वार पहरमें उत्तम पारा मर्ता है॥ स्वाङ्गशीत होनेपर उस्को तोड़ ऊपर का गलेमें लगा हुवा त्यागदेवे॥ २६०॥ नीचेका मरा हुवा पारा लेवे॥ उसको मात्रासे॥ यथोचित अनुपानके द्वारा सब कामोंमे योजना करावे॥ २६१॥ अनंतर दूसरा प्रकार॥ अपामार्ग के बीजोंकी दो घरिया बनावे॥ उस संपुटमें पारेको कठिया गूलरके दूधके साथ डाले॥ २६२॥ कठिया गूलर॥ गुम्मा के फूल वायबिडंग दुर्गन्धखदिर॥ इनका चूर्ण नीचे ऊपर देकर मुद्रा देवे॥ २६३॥ उस गोलक को अच्छी तरह स्थापन करे मिट्टीकी घरियांके संपुटमें पकावे॥ इसप्रकारके पुटसे पारा भस्म होताहै॥ २६४॥ उस्को यथास्थानमें यथामात्र यथा विधि योजना करना चाहिये॥

[अथान्यप्रकारः॥]

काष्ठोदुम्बरिकादुग्धे रसं किञ्चिद्विमर्दयेत्। तद्दुग्धघृष्टहिङ्गोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्॥ २६५॥ क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत्॥ घृत्वा तद्गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासंपुटेऽधिके॥ २६६॥

अन्यप्रकारः] नागवल्लीरसे घृष्टः कर्कोटीकन्दग

गर्भितः। मृन्मूषासंपुटे पक्वः सूतो यात्येव भस्मताम् ॥ २९७॥ [अथ कर्पूररसस्य विधिः] तत्र पारदस्य संक्षिप्तं शोधनं कर्त्तव्यं। शुद्धसूतसमं कुर्यात्प्रत्येकं गैरिकं सुधीः। इष्टिकां खटिकां तद्वत्स्फटिकां सिन्धुजन्म च ॥ २९८ ॥ वल्मीकं क्षारलवणं भाण्डरञ्जकमृत्तिकाम्। सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य वाससा चापि शोधयेत् ॥ २९९ ॥

भा० अनंतर दूसरा प्रकार ॥ कठिया गूलर के दूधसे पारेको थोड़ा मर्दन करे। हीङ्गको उस दूधसे पीसकर दो घरिया बनावे ॥ २९५॥ उस संपुट में पारेको डाल कर उसका मूं बन्द करे ॥ उस गोलकको मिट्टीके मूषा संपुट में डाले ॥ २९६ ॥ गजपुटमें ही पकावे पारा भस्म होताहै ॥ दूसरा प्रकार ॥ पान केरस से घोटा हुवा खैरखैके फन्दसे गर्भित ॥ मिट्टीके संपुट में पक्व पारा भस्म हो जाताहै ॥ २९७॥ अनंतर कपूररसकी विधि ॥ उसमें पारेका संक्षिप्त शोधन करना चाहिये। शुद्धपारेके समान हरएकको लेवे गेरू ॥ ईट खड़ी फिटकरी सैन्धव ॥ २९८॥ वमई खार लवण खपरा। इन सबको चूर्ण करके कपड़े से छाने ॥ २९९॥

खटिका खरी। स्फटिका फटकरी सिन्धुजन्म। सैन्धवम्। वल्मीकम् वंवडर क्षारलवणम्। खारीनोन भाण्डरञ्जक मृत्तिका। काविसा।
एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत्। तच्चूर्णसहितं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षिपेत् ॥ २७० ॥

भा० खड़ी। फटकरी। सैन्धव। वमई। खारीनिमक। खपरिया। इन चूर्णसे युक्त पारा एक पहर तक मर्दन करावे ॥ उस चूर्णके सहित पारा तसलेके बीचमें डाले ॥ २७० ॥

तस्या स्थाल्यामुखे स्थाली मपरां धारयेत्समाम् ॥ स व
स्त्र कुट्टितं मृदा मुद्रयेदनयो र्मुखम् ॥ २७१ ॥ संशोष्य मु-
द्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् ॥ सम्यग्विशोष्य मु
द्रां तां स्थालीञ्चुल्यां विधारयेत् ॥ २७२ ॥ अग्निं निर-
न्तरं दद्याद्यावद्दिन चतुष्टयम् ॥ अङ्गारोपरि तद्यन्त्रं
रक्षेद्यत्ना दहर्निशम् ॥ २७३ ॥ शनैरुद्घाटयेद्यन्त्र।
मूर्द्ध स्थाली गतं रसम् ॥ कर्पूरवत् सुविमलं गृह्णीया-
द् गुणवत्तरम् ॥ २७४ ॥ तदेव कुसुम चन्दन कस्तूरी कु
ङ्कुमैर्युतम् ॥ खादन् हरति फिरङ्गं व्याधिं सोपद्रवं स-
पदि ॥ २७५ ॥ विन्दतिं वन्हेर्दीप्तिं पुष्टिं वीर्यबलं वि
पुलम् ॥ रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः स
ततम् ॥ २७६ ॥ इति कर्पूर रसः ॥

भा॰ उस स्थालीके मुखपर दूसरी स्थालीको जोडे। इनका मुख वस्त्रके स-
हित कूटकर मिट्टीसे जोड़े ॥ २७१ ॥ सुकाके फिरसे कपड मिट्टी करे और फिर
से सुकावे ॥ अच्छीतरह मुद्राको सुकाकर स्थालीको चूल्हेपर रक्खे ॥ २७२ ॥
और चारदिन तक अग्नि निरन्तर देवे ॥ अङ्गारे के ऊपर उस यन्त्र को रक्खे यत्न
से रातदिन ॥ २७३ ॥ धीरेसे यन्त्रको खोले ऊपरकी स्थाली में लगा रस ॥ क
पूर के समान विमल कोले वे वोह वहुत अच्छा गुणमें होताहै ॥ २७४ ॥
उसी को लवङ्ग चन्दन कस्तूरी केसर इनसे युक्त ॥ को खाने से तत्काल उपद्रव
से सहित फिरंगरोग को नाश करता है ॥ २७५ ॥ अग्निदीपन होताहै और पुष्ट वी
र्य वल वहुत होताहै ॥ निरन्तर रसकपूर का सेवन करने वाला सो स्त्रियों को भोग
करताहै ॥ २७६ ॥ इति कर्पूर रसः ॥

[अथ सिन्दूर रसः ॥ शुद्धसूतस्य गृह्णीया द्विपरभाग च

तुष्टयम् ॥ शुद्धगन्धस्य भागैकं तावत्कृत्रिम गन्धकम् ॥ अथवा पारदस्यार्द्धं शुद्धगन्धक मेवहि ॥ तयोः कज्ज लिकां कुर्य्यादिन मेकं विमर्द्दयेत् ॥ २७८ ॥ मृत्तिकां वाससा सार्द्धं कुट्टयेदति यत्नतः ॥ तया वारत्रयं सम्यक्का चकूपीं प्रलेपयेत् ॥ २७९ ॥ मृत्तिकां शोषयित्वा तु कूप्यां कज्जलिकां क्षिपेत् ॥ तां कूपीं वालुकायन्त्रे स्था पयित्वा रसं पचेत् ॥ २८० ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद् या वद्दिन चतुष्टयम् ॥ गृह्णीयादूर्द्ध संलग्नं सिन्दूर सदृशं रसम् ॥ ॥इति सिन्दूररसः ॥

एवं मारितस्य मूर्च्छितस्य पारदस्य गुणाः ॥

भा० अनन्तर सिन्दूर रसः ॥ वैद्य शुद्धपारे के चारभाग लेवे ॥ और शुद्ध ग न्धक का एकभाग उतनाही कृत्रिम गन्धक ॥ २७७ ॥ अथवा पारेके आधा शुद्ध गन्धक ॥ उनकी कजली करके एकदिन घोटे ॥ २७८ ॥ मिट्टीको कपडे के साथ अतियत्न से कूटे ॥ उस्से तीनवार अच्छीतरह काचकूपी को लेपकरे ॥ २७९ ॥ मिट्टीको सुखाके कजलीको कुप्पीमें डाले ॥ उस कुप्पीको वालु का यन्त्रमें स्थापनकरके पारेको पकावे ॥ २८० ॥ अग्नि निरन्तर चारदिन तक देवे ॥ ऊपर लगाहुवा सिन्दूर के समान रसको लेवे ॥ इति सिन्दूर रसः ॥

पारदः कृमिकुष्ठघ्नो जयदो दृष्टि कृत्परः ॥ मृत्युहन्ता म हावीर्य्यो योगवाही ज्वरापहः ॥ २८१ ॥ स्मृत्योजो रूप दो दृष्यो वह्नि कृद्धातुवर्द्धनः ॥ षण्डत्वनाशनः शूरः खेचरः सिद्धिदः परः ॥ २८२ ॥ पारदः सकलरोगहा स्मृ त षड्रसो निखिलयोग वाहकः ॥ पञ्चभूतमय एष कीर्त्तितस्तेन तद्गुण गणो विराजते ॥ २८३ ॥

भा० इस प्रकार मारेहुवे मूर्च्छित पारे का गुण ॥ पारा कृमि कुष्ठनाशक जय को करनेवाला दृष्टि करनेवाला सर ॥ मृत्युनाशक महावीर्य्य योगवाही ज्वरनाशक ॥ २८१ ॥ मृत्युको जीतनेवाला रूपकोदेनेवाला शुक्रको करनेवाला वृद्धि करनेवाला धातु बढ़ानेवाला ॥ नपुंसकता का नाशक और खेचर सिद्धिको देनेवाला है ॥ २८२ ॥ पारा सब रोगोंका नाशक कहाहै यरससे युक्त संपूर्ण योग वाहक ॥ पंचभूत मय येह कहाहै इसवास्ते उसके गुण गणों से विराजताहै ॥ २८३ ॥

[रसामृते] यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सह योजितः ॥
रसेन्द्रो हन्तितं रोगं नर कुञ्जर वाजिनाम् ॥ २८४ ॥
[अथोपरसानां शोधनविधिः ।] तत्र हिङ्गुलस्य शोधन विधिः ।] मेषी क्षीरेण दरद मम्ल वर्गैश्च भावितम् ।
सप्त वारान् प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ २८५ ॥

भा० रसामृत में कहाहै । जिस रोगका जो योगहै उसीके साथ योजना कियाहुवा । पारा मनुष्य गज घोड़ा इनके उस रोगको नाश करता है ॥ २८४ ॥ [अनन्तर उपरसों की शोधन बिधिः । उसमें सिगरिफ का शोधन । भेढीके दूधसे और अम्लवर्ग से सातवार भावना दियाहुवा सिंगरिफ निश्चय शुद्धिको प्राप्त होताहै ॥ २८५ ॥

[एवं शोधितस्य हिङ्गुलस्य गुणाः ।] तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्त हारि । हृल्लास कण्डु ज्वर कामलांश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ २८६ ॥
[अथ हिङ्गुलाद्रसा कर्षण विधिः ।] निम्बू रसे र्निम्ब पत्र रसैर्वा याममात्रकम् । घृष्ट्वा दरद मूर्द्धन्तु पातयेत् सूत युक्तिवत् ॥ २८७ ॥ तत्रोर्द्ध पिठरीलग्नं गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् ॥ शुद्धमेव हितं सूतं सर्व कर्मसु योजयेत् ॥ २८८

भा० ऐसे शोधेहुवे सिंगरिफ़ का गुण। तिक्त कसैला कटु हिंगुल होता है और नेत्र रोगका नाशक कफ पित्तका नाशक ॥ हल्लास खुजली ज्वरका मला इन कोनाशकरताहै तथा पिलही आमवात और विष इनको नाशकरताहै ॥ २८६ ॥ अनन्तर सिंगरफ से पारा निकालने की विधि॥ निम्बूके रस से अथवा निम्बपत्र के रससे एक पहर ॥ सिंगरफ को घोटकर डमरू यंत्रसे निकाले ॥ २८७ ॥ उसमें ऊपर की हांडी में लगाहुवा उत्तम रसको निकाले ॥ शोधा पारा सब कामोंमें योजना करे वोह हित होताहै ॥ २८८ ॥

[अथ गन्धकस्याशुद्धस्य दोषमाह।] अशुद्धो गन्धकः कुर्य्यात्कुष्ठं पित्तरुजां भ्रमम् ॥ हन्ति वीर्य्यं बलं रूपं तस्मा च्छुद्धः प्रयुज्यते ॥ २८९ ॥

[अथ शोधनविधिः।] लोहपात्रे विनिःक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत् ॥ तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गन्धकजं रजः॥२९० विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा तनुवस्त्रे विनिःक्षिपेत् ॥ यथा वस्त्रा द्विनिःस्रुत्य दुग्धमध्येऽखिलं पतेत् ॥ २९१ ॥ एवं स गन्धकः शुद्धः सर्वकर्मोचितो भवेत् ॥

भा० अनन्तर अशुद्ध गन्धक के दोषोंको कहतेहैं ॥ अशुद्ध गन्धक कुष्ठ पित्तके रोग भ्रम ॥ इनको करता है और वीर्य बल रूप इनको नाश कर ताहै इसवास्ते शुद्ध प्रयोग करना चाहिये ॥ २८९ ॥ अनन्तर शोधन विधि ॥ लोहे के पात्रमें घृत डालकर आगपर तपावे ॥ तप्त घृतमें उसके समान गन्ध क का चूर्णडाले ॥ २९० ॥ गन्धक के गलनेपर उसको बारीक वस्त्रपर डाले ॥ जैसे कपड़े से निकलकर सम्पूर्ण दूधमें गिरजावे ॥ २९१॥ इस प्रकार वोह शु द्ध गन्धक सबकाम के योग्य होता है ॥

[एवं शुद्धस्य गन्धकस्य गुणाः।] गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्य्योष्णस्तुवरः सरः ॥ पित्तलः कटुकः पाके कण्डू

वीसर्पजन्तुजित् ॥ २६२ ॥ हन्ति कुष्ठक्षय प्लीह कफवाता न् रसायनम् ॥ [अथाभ्रकस्याशुद्धस्य दोषमाह।] पीडां विधत्ते विविधान्नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डु गदञ्च कुर्य्यात् ॥ हृत्पार्श्व पीडाञ्च करोत्यसह्यामशुद्धमभ्रं गुरु वन्हि हत्स्यात् ॥ २६३ ॥

[अथाभ्रकस्य शोधन विधिमाह।] कृष्णाभ्रकं धमे द्वन्हौ ततः क्षीरे विनिःक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा त राडुलीयाम्ल योर्द्रवैः ॥ २६४ ॥
भावयेदष्टयामं तदेवमभ्रं विशुद्ध्यति ॥

भा० ऐसे शुद्ध गन्धक के गुण। गन्धक कटुक तिक्त वीर्य्य उष्ण कसैला सर ॥ पित्तको करनेवाला पाकमें कटुहोता है और खुजली वीसर्प कृमि इन को जीतनेवालाहै ॥ २६२ ॥ और कुष्ट क्षय पिलही कफ वातके रोगों को नाश करताहै तथा रसायनहै ॥ [अनन्तर अशुद्ध अभ्रक का दोष कहते हैं।] मनुष्योंके अनेक प्रकारकी पीडाओंको करताहै और कुष्ठ क्षय पाण्डुरोग इन को भी करताहै ॥ तथा हृदय पसली इनकी असह्य पीडाको करता है अशुद्ध अभ्रक भारी अग्निनाशक है ॥ २६३ ॥

[अनन्तर अभ्रकके शोधनकी विधि कहते हैं।] काले अभ्रक को आगमें तपाकर उसके अनन्तर दूधमें डाले ॥ उसको अलग पत्र करके चव राई नीम्बू इनके रससे ॥ २६४ ॥ आठपहर भावनादेवे वोह अभ्रक इसप्रकार शुद्ध होताहै

[अथ तस्य मारणम्।] कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोषयित्वा य मर्दयेत् ॥ अर्क क्षीरे र्दिनं खल्वे चक्राकारं च कारयेत् ॥ २६५ ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गज पुटे पचेत् ॥ पुनर्मर्द्य पुनः पाच्यं सप्तवारान् पुनःपुनः ॥ २६६ ॥ ततो वट

जटा क्वाथे स्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥ म्रियते नात्र सन्देहः प्रयो ज्यं सर्वकर्मसु ॥ तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत् ॥ घृतेजीर्णे तदभ्रन्तु सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ २९८ ॥ [अथ धान्याभ्रकस्य विधिः॥] पादांशशालि संयुक्त मभ्रं बद्ध्वाथ कम्बले ॥ त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे नत् क्लिन्नं मर्दयेत्करैः ॥ २९९ ॥ कम्बलाद्गलितं सूक्ष्मं बालुका रहितञ्च यत् ॥ तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्त मभ्रमारण सिद्धये ॥ ३०० ॥ [एवं मारितस्याभ्रकस्य गुणाः।]

भा० अनन्तर उस्का मारण। धान्याभ्रक करके उस्को सुखाकर अनन्तर मले। आक के दूधमें एकदिन चक्राकार करे ॥ २९५॥ आकके पत्तों से लपेटकर अच्छी तरह गजपुट में फूकदेवे ॥ फिरसे घोटे फिरसे पकावे वार २ सात बार ॥ २९६ ॥ उस्के अनन्तर वटकी जटाके काढ़े से वैसेही तीन पुट देना चाहिये ॥ मरजाना है इसमें कोई सन्देह नहीं उस्को सब कर्म्म में योजना करना चाहिये ॥ २९७ ॥ मरहुवे अभ्रक के समान घृत कढ़ाई में पकावे ॥ घृतके जीर्ण होनेमें वोह अभ्रक सर्वयोग में योजना करे ॥ २९८ ॥
अनन्तर धान्याभ्रक की विधि ॥] चौथाई धानसंयुक्त अभ्रक को कंबलमें बान्धकर अनन्तर ॥ तीनदिन जलमें रक्खे उस गलेहुवे को हाथों से मर्द्दन करे ॥ २९९ ॥ कम्बल से गलित सूक्ष्म औरजो बालूसे रहित है ॥ उसको धान्याभ्रक कहाहै अभ्रक मारण सिद्धिके अर्थ ॥ ३०० ॥
इस प्रकार मारेहुवे अभ्रक का गुण ॥

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करं धातु विवर्द्धनञ्च ॥ हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेह कुष्ठं प्लीहोदरं ग्रन्थि विषकृमींश्च ॥ ३०१ ॥ रोगान् हन्ति दृढयति वपुर्वीर्य्यवृद्धिं विधत्ते ॥ तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥ ३०२ ॥ दीर्घायुष्कान् जनयति सुतान् सिंह

तुल्य प्रभावान् ॥ मृत्योर्भीतिं हरति सुतरां सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ ३०३ ॥ [अथ तालकस्याशुद्धस्य दोषमाह] अशुद्धं तालमायुर्हृत्कफ मारुतमेह कृत् ॥ तापस्फोटाङ्ग सङ्कोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ३०४ ॥

[अथ तालस्य शोधनमाह ।] तालकं ...शः कृत्वा तच्चूर्णं काञ्जिके पचेत् ॥ दोलायंत्रेण यामेकं ततः कूष्माण्डज द्रवे ॥ ३०५ ॥ तिलतैले पचेद्यामं यामञ्च त्रिफला जले ॥ एवंयंत्रे चतुर्यामं पक्वं शुद्ध्यति तालकम् ॥ ३०६ ॥

भा॰ अभ्रक कसेला मधुर सुशीत आयुको करनेवाला और धातु बढानेवाला है ॥ और व्रणप्रमेह कुष्ठ प्लीहोदर गांठ विषकृमि इनको नाश करताहै ॥ ३०१ ॥ रोगों को नाश करता है शरीरको दृढ़ करताहै और वीर्य्य वृद्धिको करता है ॥ तारुण्य से भराहुवा नित्यही सौ स्त्रियों से भोग करताहै ॥ ३०२ ॥ सिंह के समान प्रभाव वाले पुत्रोंको उत्पन्न करताहै । और मृत्युके भयको हरता है सेवन कियाहुवा अभ्रकभस्म ॥ ३०३ ॥

[अनन्तर अशुद्ध हरताल का दोष कहते हैं ।] अशुद्ध हरताल आयुनाशक कफ वात प्रमेह इनको करनेवाली ॥ ताप फोड़े शरीर संकोच इनको करतीहै ॥ इसवास्ते इसे शोधन करे ॥ ३०४ ॥

[अनन्तर हरताल का शोधन कहते हैं ॥] हरताल को बारीक पीसकर उस चूर्णको कांजी में दोलायंत्रसे पकावे ॥ एक पहर उसके अनन्तर पेठेके रस से पकावे ॥ ३०५ ॥ तिलके तेलमें एक पहर पकावे और एक पहर त्रिफलाके पानी में पकावे ॥ इस प्रकार यंत्रमें चार पहर पकीहुई हरताल शुद्ध होतीहै ॥ ३०६ ॥

[अथ तालस्य मारण विधिः ।] सदलं तालकं शुद्धं पौनर्नव रसेन तु ॥ खल्वे विमर्दयेदेकं दिनं पश्चाद्विशोषयेत् ॥ ३०७ ॥ ततः पुनर्नवाक्षारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत् ॥ तत्र तद्गोलकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ ३०८ ॥

आकराठं पिठरं तस्य पिधानं धारयेन्मुखे ॥ स्थालीचुल्यां समारोप्य क्रमाद्वन्हिं विवर्द्धयेत् ॥ ३०९ ॥ दिनान्यन्तर शून्यानि पञ्च वन्हिं प्रदापयेत् ॥ एवं तन्म्रियते तालं मात्रा तस्यैक रक्तिका ॥ ३१० ॥ अनुपानान्यनेकानि यथा योग्यं प्रयोजयेत् ॥

भा० अनन्तर हरताल की मारण विधि ॥ तबकी शुद्ध हरतालको गदह पूरना केरेस से एकदिन घोटे पीछे सुकादेवे ॥ ३०७ ॥ उसके अनन्तर पुनर्नवाके खार से आधीहांडी को भरदेवे उसमें उस गोले को धरके फिरसे उसी से भर देवे ॥ ३०८ ॥ गलेतक उसके मूं पर ढकना रखे ॥ हांडी को चूल्हे पर रखके क्रम से आंच बढ़ावे ॥ ३०९ ॥ ढाई दिन आगदेवे इस प्रकार हरताल मरती है ॥ उस को मात्रा एक रत्ती है ॥ ३१० ॥ यथोचित अनेक अनुपानों की योजना करे ॥

[एवं शोधितस्य मारितस्य तालकस्य गुणाः।] हरितालं कटुस्निग्धं कषायोष्णं हरे द्विषम् ॥ कण्डू कुष्ठास्य रोगास्र कफ पित्तक च व्रणान् ॥ ३११ ॥ [अन्यच्च] तालकं हरते रोगान् कुष्ठ मृत्यु ज्वरापहम् ॥ शोधितं कुरुते कान्तिं वीर्य्यवृद्धिं तथायुषम् ॥ ३१२ ॥

भा० इस प्रकार शोधके मारीहुई हड़तालका गुण ॥ हड़ताल कड़ुची चिकनी कसेली गरम होती है ॥ और कफ खुजली विष कुष्ट मुखरोग रक्त कफ पित्त कच व्रण इनको दूर करती है ॥ ३११ ॥ [औरभी।] हरताल रोगोंको हरती है और कुष्ठ मृत्युज्वर इनकी नाशक ॥ शोधी हुई कान्ती को करती है और वीर्य्यवृद्धि तथा आयुषको करती है ॥ ३१२ ॥

[अथ मनःशिलाया अशुद्धाया दोषमाह।] तालकस्यैव भेदोऽस्ति मनोगुप्ते स्तदन्तरम् ॥ तालकं त्वतिपीतं स्याद्रक्ता मनःशिला ॥ मनःशिलामन्द बलं करोति।

जन्तुं छक्वंशोधन मन्तरेण। मलस्य बन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदञ्च कुर्यात्॥ ३१४॥

[अथ तच्छोधनविधिः।] पचेत् त्र्यहमजामूत्रे दोला यन्त्रे मनः शिलाम्॥ भावयेत्तत्सप्तधा पित्ते रजायाः सा विशुद्ध्यति॥ ३१५॥ [एवं शोधितायाा मनः शिलाया गुणानाह।] मनः शिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः॥ तिक्ता स्निग्धा विषश्वास कास भूत विषास्त्रनुत्॥ १६॥

[अथ खर्परस्तुत्थभेदस्तस्य शोधन विधिः।] नरमूत्रे च गोमूत्रे सप्ताहं रसकम्पचेत्॥ दोलायंत्रेण शुद्धः स्यात्ततः कार्य्येषु योजयेत्॥ ३१७॥

भा॰ अनन्तर अशुद्ध मनसिल के दोष कहतेहैं।] हरताल का ही भेद है। मेनसिल का और उसका अन्तर येह है कि हरताल बहुत पीली होतीहै और मेनसिल लाल होताहै॥ ३१३॥ विनाशोधे मेनसिल मनुष्य को कमज़ोर करती है मलबन्ध मूत्रका अवरोध और शर्कराके सहित मूत्रकृच्छ्र को करतीहै॥ १४॥ [अनन्तर उसकी शोधन विधि॥ मेनसिल बकरीके मूत्र से दोला यंत्र में पकावे॥ और बकरीके पित्तेसे सात भावनादेवे इस प्रकार योह शुद्ध होतीहै॥ ३१५॥ [इस प्रकार शोधीहुई मेनसिल का गुण कहतेहैं॥ मेनसिल भारी रंगत को अच्छा करने वाली सर उष्ण लेखन कटु॥ तिक्त चिकनी होतीहै। और विष श्वास कास भूत विष रक्त इनकी नाशक है॥ ३१६॥

अनन्तर खपरिया लीला थोथे का भेदहै॥ उसकी शोधन विधि॥ नरमूत्र में और गोमूत्र में खपरिये को सात दिन॥ दोलायन्त्र से पकावे ऐसे शुद्ध होती है उसके अनन्तर काममें लावे॥ ३१७॥

[अथ तस्य गुणाः] खर्परं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु। लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत्॥ ३१७॥

विषाश्म कुष्ठकण्डूनां नाशनं परमं मतम् ॥

[अथ सर्वोपरसानां साधारण शोधनविधिः] सूर्य्यावर्तो वज्रकन्दः कदलीदेवदालिका ॥ शिग्रुः कोशातकी बन्धा काकमाची च बालकम् ॥ ३१८ ॥ एषामेकरसेनैव त्रिक्षारैर्लवणैः सह ॥ भावयेदम्लवर्गैश्च दिनमेकं प्रयत्नतः ॥ ३१९॥ ततः पचेच्च तद्द्रावैर्दोलायन्त्रे दिनं सुधीः ॥ एवं शुद्ध्यन्ति ते सर्वे प्रोक्ता उपरसा हि ये ॥ ॥ ३२०॥ [विशेषश्च] कङ्कुष्टं गैरिकं शङ्खः कासीसं टङ्कणं तथा ॥ नीलाञ्जनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सवराटकाः ॥ ३२१॥ जम्बीरवारिणा स्विन्नाः क्षालिताः कोष्णवारिणा ॥ शुद्धिमायान्त्यमी योज्या भिषग्भिर्योगसिद्धये ॥ ३२२ ॥

भा॰ अनन्तर उसका गुण। खपरिया कडुक क्षार कसैला वमन करानेवाला हलका ॥ लेखन भेदन शीतल नेत्रहित कफ पित्तका नाशक ॥ ३१७॥ और विष पथरी कुष्ठ खुजली इनका परम नाशक कहाहै ॥

[अनन्तर सब उपरसों की साधारण शोधन विधि ॥] सूर्य्यावर्त्त वज्रकन्द कदली घघरबेल ॥ सहिंजना तोरी खेखसा किमाच सुगन्धवाला ॥ ३१८॥ इनके एकही रससे तीनों क्षार लवणके साथ ॥ अम्लवर्ग से एकदिन यत्नके साथ भावना देवे ॥ ३१९॥ उसके अनन्तर उसके रसमें दोला यंत्र से एक दिन पकावे ॥ वोह कहेहुवे सब उपरस इसप्रकार शुद्ध होते हैं ॥ ३२० ॥

[विशेष] ककुष्ट गेरू शंख कसीस सोहागा ॥ तथा काली सुरमा सीपके भेद कौडियों के सहित ॥ ३२१ ॥ जम्बीरी के रससे स्विन्न सीलगरम जलसे धोये हुये ॥ येह शुद्ध होते हैं वैद्य योग सिद्धि के अर्थ इनकी योजना करे ॥२२॥

[एवं शोधितानामुपरसानां पृथग्गुणा गुणमध्ये द्रष्टव्याः।]

[अथ रत्नानां शोधनमारण विधिः] तत्राशुद्धस्य वज्रस्य दोषमाह। अभुद्दं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्व व्यथां तथा॥ पाण्डुता पङ्गुरत्वञ्च तस्मात् संशोध्य मारयेत् ॥ ३२३॥

[अथ वज्रस्य शोधन विधिः] कुलत्थ कोद्रवक्काथे दोला यन्त्रे विपाचयेत् ॥ व्याघ्री कन्दगतं वज्रं त्रिदिनं तद्विशुद्ध्यति ॥ ३२४॥ व्याघ्री कण्टकारिका। अन्यः शोधनविधिः।] गृहीत्वाऽन्हि शुभे वज्रं व्याघ्री कन्दोदरे क्षिपेत् ॥ माहिषी विष्ठया लिप्तं कारीषाग्नौ विपाचयेत् ॥ ३२५॥ त्रियामायां चतुर्यामं यामिन्यन्ते ऽश्वमूत्रके ॥ सेचयेत्पाचये देवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३२६॥

इसवास्ते शोधकर मारे ॥ ३२३॥

अनन्तर हीरेकी शोधन विधिः॥ कुरथी कोदोंके काढ़ेमें दोला यंत्रसे पकावे ॥ कटेली के कंद गत हीरा तीन दिनमें शुद्ध होताहै ॥ ३२४॥ कटेली।

[दूसरी शोधन विधिः। अच्छेदिन हीरा लाकर कटेली कंद के उदर में डाले ॥ भैसके गोबर से लीपकर करसीकी आगमें पकावे ॥ ३२५॥ तीन पहरमें और रातके अन्तमें चौथे पहार में घोड़ेके मूत्रसे पकावे। इस प्रकार सातदिन में हीरा शुद्ध होताहै ॥ ३२६॥

[अथ वज्रस्य मारणविधिः] हिङ्गु सैन्धव संयुक्ते क्षिपेत्क्वाथे कुलत्थजे ॥ तप्तं तप्तं पुन र्वज्रं भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ ३२७॥ [अन्य मारण प्रकारः]

मेषशृङ्गं भुजङ्गास्थि कूर्मपृष्ठाम्लवेतसम् ॥ शशदन्तं समम्पिष्ट्वा वज्रीक्षीरेण गोलकम् ॥ ३२८ ॥ कृत्वा तन्मध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातमेव हि ॥

[मारितस्य वज्रस्य गुणाः]

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ॥ सेवितं सर्वे रोगघ्नं मृतं वज्रं न शंसयः ॥ ३२९ ॥

[अथ शेषरत्नानां शोधनमारण विधिः] वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा ॥ शुद्धानां मारितानाञ्च तेषां शृणु गुणानपि ॥ ३३० ॥ मणयो वीर्यतः शीता मधुरास्तुवरा रसात् ॥ चक्षुष्या लेखनाश्चापि सारका विषहारकाः ॥ ३३१ ॥ धारणात्ते तु मङ्गल्या ग्रहदृष्टिहरा अपि ॥

[उपरत्नानां शोधनमारण विधिश्चिन्त्यः ॥

भा॰ अनन्तर हीरेकी मारण विधि ॥ हींङ्ग सेन्धा इनसे युक्त कुरथीके काढे में तपा तपा कर .. इक्कीसवार डालें ॥ ३२७ ॥ [दूसरा मारण प्रकार । मेंढे का सींग सांपकी हड्डी कछवेकी पीठ अमलवेत खरगोश का दांत इनको सम भाग लेकर थूहर के दूधसे पीसकर गोला करे ॥ ३२८ ॥ उसके बीचका हीरा धोंकनेसेही मरजाता है ॥ [मरे ह्रवे हीरेके गुण]

आयु पुष्टि बल वीर्य वर्ण सौख्य इनको करता है ॥ और सेवन किया ह्रवा हीरे का भस्म सब रोगोंका नाशक है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३२९ ॥

[अनन्तर बाक़ी रत्नोंका शोधन मारण विधि ।] हीरेके सदृश सब रत्नों को शोधन करे और मारे ॥ शुद्ध मारेह्रवे उनका गुण सुनों ॥ ३३० ॥ मणि वीर्यसे शीत मधुर कसेले रससे ॥ नेत्रके हित लेखन भी और सारक विष नाशक हैं ॥ ३३१ ॥ वे धारण से मंगल को देनेवाले और ग्रह दृष्टि के नाशक भी हैं ॥

उपरत्नों की शोधन मारण विधि चिन्तन योग्य है ॥

[अथ विषाणां शोधन विधिः]

[तत्र वत्सनाभस्य स्वरूप निरूपणम् ॥] सिन्दुवार सदृक् पत्रो वत्सनाभ्या कृतिस्तथा ॥ यत् पार्श्वेन नरोर्द्दद्धि र्वत्स नाभः स भाषितः ॥ ३३२॥

[विषस्य शोधन विधिः] गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्यं विषं तेन विशुद्ध्यति ॥ रक्त सर्षपतैलाक्ते तथा धार्य्यञ्च वाससि ॥ ३३३॥ ये गुणा गरले प्रोक्ता स्ते स्यु र्हीना विशोधनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगे तु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ३३४ ॥

[अथ विषस्य गुणाः।]

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ॥ आग्नेयं वात कफ हृत् योगवाहि मदावहम् ॥ ३३५॥

भा० अनन्तर विषोंकी शोधन विधि ॥ इसमें वचनाभ का स्वरूप कथन। सिन्दुवार के समान पत्र और वत्सनाभि का सा जो वृक्ष के बग़ल बढ़ताहै वोह वत्सनाभ कहाहे ॥ ३३२॥ [विषकी शोधन विधिः] गोमूत्र में तीन दिन रक्खे उससे विष शुद्ध होता हे ॥ वैसेही लाल सरसों के तेलसे डुबे हुवे कपड़े पर रक्खे ॥ जो गुण विषमें कहेहैं वोह शोधन करने से हीन हो जाते हैं ॥ इस वास्ते विषको प्रयोग में शोधन करके डाले ॥ ३३४॥
[अनन्तर विषके गुण] विष प्राण नाशक कहाहै और व्यवायि तथा विकाशि भी कहाहे ॥ आग्नेय वात कफ का नाशक योगवाही मोह करनेवालाहै ॥ ३३५॥

(क) व्यवायि सकल काय गुणव्यापन पूर्व्वक पाक गमन शीलं। विकाशि ओजः शोषण पूर्व्वक सन्धिबन्ध शिथली करण शीलम्। आग्नेयम् अधिकाग्न्यंशं। योगवाहि सङ्गि गुणग्राहकम्। मोहावहं तमोगुण प्राधान्येन बुद्धि विध्वंसकम् ॥

तदेव युक्तियुक्तन्तु प्राणदायि रसायनम् ॥ योगवाहि परं वात श्लेष्मजित् सन्निपात हृत् ॥ ३३६ ॥

भा० (क) संपूर्ण शरीर गुणव्यापन पूर्वक पाक होनेवाला। ओजको शोषण पूर्वक सन्धि बन्धको ढीला करनेवाला। अधिक अग्निअंशसाथीके गुणको लेनेवाला। तमो गुण की प्रधानता से बुद्धिनाशक। वोहि युक्ति युक्त प्राणको देनेवाला रसायन है॥ योगवाहि परम वात कफ को जीतनेवाला सन्निपात का नाशक है॥ ३३६॥

[अथोपविषाणां निरूपणम्।]

अर्कक्षीरं स्नुही क्षीरं लाङ्गली करवीरकः ॥ गुञ्जाहि फेनो धत्तूरः सप्तोप विषजातयः ॥ ३३७ ॥ एतेषां शोधनं चिन्त्यं गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः।

[अथ द्रव्याणां गुणवतामवधिः] गुणहीनं भवेद्वर्षा दूर्द्ध तद्रूपमौषधम् ॥ मास द्वयात् तथा चूर्णं लभते हीन वीर्य्यताम् ॥ ३३८ ॥ हीनत्वं गुटिका लेहौ लभेते वत्सरं यदि ॥ हीनास्यु र्घृत तैलाद्या श्चतुर्मासाधिका स्तथा ॥ ३३९ ॥

भा० अनन्तर उपविषों का निरूपण ॥ आकका दूध थूहरका दूध कारिहारी कनेर॥ गुंजा अफीम धतूरा यह सात जातके उपविष हैं॥ ३३७॥ इनका शोधन चिन्तन करना चाहिये गुण वहां २ पर देखने चाहियें॥

[अनन्तर गुणवाले द्रव्यों की अवधि॥ जैसे की वैसीही दवा बरस के ऊपर गुणहीन होजाती है॥ तथा दो महीने में चूर्ण वीर्य्य हीन होता है॥ ३३८॥ और एक बरस में गुटिका अवलेह हीनवीर्य्य होते हैं॥ घृत तैल आदि वैसेही चार महीने अधिकमें हीन होते हैं॥ ३३९॥

(क) घृत तैलाद्या इति योगविशेषणम्। चतुर्मासाधिकः वत्सरादुपरि चत्वारो मासा अधिकायेषु ते। घृत तैल यो र्विशे

षमाह। [तन्त्रान्तरे] घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्य्य त्व माप्नुयात्॥ तैलं पक्व मपक्वञ्च चिरस्थायि गुणाधिकम्॥ ३५०॥ (क) तदपि शोडश मासा भ्यन्तरिणं पक्वं तैलं गुणाधिकं बोद्धव्यम्।

औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्य्यो वत्सरात्परम्॥ औषध्यो धान्यादयः लघुपाकाः शीघ्रपाकाः निर्वीर्य्याः स्युः पुराणाः स्युर्गुणै र्युक्ता आसवा धातवो रसाः॥

[अथ स्नेह पान विधिः।]

भा० (क) घृत तैल आदि इस प्रकार योग विशेषण है वरस के ऊपर चार महीने। घृत तैल में विशेष कहते हैं। तन्त्रान्तरमें। पका घृत वरस के ऊपर हीन वीर्य्य होता है॥ तैल पक्व और अपक्व बहुतदिन रहताहै। और गुणाधिक है॥ ३५०॥ (क) वोहभी सोलह महीने भीतर का पकातैल गुणाधिक जानना चाहिये॥ वरस के ऊपर लघुपाक और निर्वीर्य्य होताहै॥ आसव धातु रस ये पुराने गुण युक्त होते हैं॥ [अनन्तर स्नेह पान की विधि।]

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृततैलं वसा तथा॥ मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ॥ ३५१॥ स्थावरो जङ्गमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते॥ तिलतैलं स्थावरेषु जङ्गमेषु घृतवरम्॥ ३५२॥ द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भि र्वा यमक स्त्रिवृतो महान्॥

भा० स्नेह चार प्रकार का कहाहै घृत तैल चरबी तथा गूदा॥ उनको मनुष्य कुछ दिन निकलने पर॥ ३५१॥ स्थावर और जंगम ऐसा दो योनि स्नेह कहाहै॥ स्थावर में तिल तैल और जंगम में घृत श्रेष्ठ है॥ ३५२॥ घृत तैल इन दो के मिलाने से यमक संज्ञक स्नेह होता है॥ और घृत तैल चरवी इनसे त्रिवृत तथा घृत तैल चरबी गूदा इनसे महान् होता है॥

(क) [अस्या यमर्थः] द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां घृत तैलाभ्यां

यमकाख्यः स्नेहः स्यात्। त्रिभिः स्नेहैः घृततैल
वसारूपैः त्रिवृत्ताख्यः स्यात्। चतुर्भिः घृततैलवसा-
मज्जाभिर्महान्महास्नेहः स्यादित्यर्थः। पिबेत् त्र्यहं
चतुरहं पञ्चाहं षडहानि चेति॥ [यदुक्तम्]

मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निग्धस्नेहोपसेवया॥ मध्यको-
ष्ठश्चतुर्भिश्च दिवसैः स्निह्यति ध्रुवम्॥ २४३॥ पञ्च-
भिर्वाथ षड्भिर्वा दिनैः क्रूरो विशुद्ध्यति॥ सप्तरात्रा-
त्परं स्नेहः सात्मी भवति सेवितः॥ २४४॥

भा० इसका यह अर्थ है कि। दोसे यमकाख्य स्नेह। तीनों से त्रिवृत्ताख्य चारोंसे महान् होता है॥ इनको तीन दिन चारदिन पांचदिन अथवा छः दिन पीवे॥ मृदु मध्य क्रूर कोष्ठकी अपेक्षा से तीनदिन चारदिन पांचदिन अथवा छः दिन पीवे। जैसे कि कहाहै। मृदुकोष्ठ तीन दिन में स्नेहके सेवन से स्निग्ध होता है॥ मध्यकोष्ठ चारदिन में अवश्य स्निग्ध होता है॥ २४३॥ क्रूरकोष्ठ पांच अथवा छःदिनमें शुद्ध होता है॥ सात दिनके परे सेवन कियाहुवा स्नेह सात्म्य होजाता है॥ २४४॥

(क) मृदुमध्यक्रूरकोष्ठानां सर्वेषां सप्तरात्रात्परं सात्मी
भवति। वातानुलोम्य वन्हिदीप्ति कोष्ठशुद्धि मृदुस्नि-
ग्धाङ्गता स्वरवचनाङ्गलाघव धातुपुष्टि द्विज दार्ढ्य नि-
र्जरता बलवर्णकारी भवति॥

ननु भक्तद्वये वातानुलोम्यादीन् करोति।

दोषकालवयो वन्हि बलान्यालोक्य योजयेत्॥
हीनाञ्च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान्॥
२४५॥ असात्म्या तथाऽकाले मिथ्याहारविहार

नः ॥ स्नेहः करोति शोथार्शस्तन्द्रा निद्रा विसंज्ञिताः ॥
॥ ३५६ ॥ देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्यैकपलोन्मिता ॥
मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी ॥ ३५७॥
(मध्यमाय मध्यमाग्नये जघन्याय हीनाग्नये)
अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोन्याः सर्वसम्मताः ॥ अ-
होरात्रेण महती जीर्येत्यह्नि तु मध्यमा ॥ ३५८ ॥
जीर्य्येत्यल्पा दिनार्द्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥
[अयमर्थः] याहोरात्रेण जीर्यति सा मात्रा महती ।
एवं मध्यमा कनिष्ठा च ज्ञेया ।
अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या स्वल्पदोषे प्रपूजिता ॥ मध्य
मा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी ॥ ३५९ ॥ ज्येष्ठा
कुष्ठविषोन्माद ग्रहापस्मार नाशिनी ॥

भा॰ (क) सब मृदु मध्य क्रूरकोष्ठ वालों के सातदिन के परे सात्म्य होता है वातको अनुलोम करके अग्निदीपन कोष्ठ शुद्धि मृदु स्निग्ध अङ्गता स्वर वचन शरीर लाघ बलवर्णको करनेवाला होता है ॥ नकि भक्त द्वयमें वातानु लोम्यादिकों को करताहै । दोषकाल वय अग्नि बल इनको देखकर स्नेहकी हीन मध्य अधिक मात्राको योजना करे ॥ ३५५ ॥ वे मात्रा के तथा अकाल में मिथ्या आहार विहार से । स्नेह सूजन बवासीर तन्द्रा निद्रा विसंज्ञिता इनको करताहै ॥ ३५६ ॥ दीप्ताग्नि को स्नेहकी एकपल प्रमाण मात्रा देनी चाहिये ॥ और मध्यम अग्निवाले को दो तोले देनी चाहिये ॥ ३५७ ॥ मध्यमाग्नि को और हीन अग्निवाले को । और सबके सम्मत तीन स्नेहकी मात्रा होती है ॥ बड़ीमात्रा जो दिनरात में पचतीहै और दिनमें जो पचजातीहै वोह मध्यम ॥ ३५८ ॥ और जो आधे दिन में पचतीहै उसको अल्पमात्रा जाननी चाहिये वोह सुखावह है ॥ (येह अर्थहै कि) जो रातदिन में पचती है वो बड़ी मात्रा है । ऐसेही मध्यम कनिष्ठ जाननी चाहिये । अल्प मात्रा

शुक्रको करनेवाली है । और अल्पदोष में पूजित है ॥ मध्यम स्नेहकी मात्रा पुष्ट भ्रम नाशक होती है ॥ ३४९ ॥ और वही कुष्ट विष उन्माद ग्रह अपस्मार इन की नाशक है ॥ [सुश्रुत: पुनरेवाह]

यामात्रा प्रथमे यामे गते जीर्य्यति वासरे ॥ सा मात्रा दीपयत्यग्नि मल्प दोषे च पूजिता ॥ ३५० ॥ या मात्रा वासर स्यार्द्धे व्यतीते परिजीर्य्यति ॥ सा वृष्या वृंहणी च स्या न्मध्यदोषे प्रपूजिता ॥ ३५१ ॥ या मात्रा चरमे यामे स्थितेऽन्हः परिजीर्य्यति ॥ सामात्रा स्नेहनी ज्ञेया बहु दोषे षु पूजिता ॥ ३५२ ॥ केवलं पैत्तिके सर्पि र्वातिके लवणान्वितम् ॥ देयं बहुकफे वह्नि व्योष क्षार समन्वितम् ॥ ३५३ ॥ रूक्षक्षत विषार्त्तानां वातपित्त विकारिणाम् ॥ हीनमेधा स्मृतीनाञ्च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ ३५४ ॥ क्रमिकोष्टा निलाविष्टा प्रवृद्ध कफ मेदसः ॥ पिवेयु स्तैल सात्म्यास्तु तैलं दार्ढ्यार्थिन स्तु ये ॥ ३५५ ॥ व्यायामा कर्षिताः शुष्क रेतोरक्ता महारुजाः ॥

भा० सुश्रुत ने फिरसेही कहाहै । जो मात्रा पहर भर गुज़रने पर पचतीहै । वोह मात्रा अग्निको दीपन करतीहै । और थोड़े दोषमें अच्छीहै ॥ ३५० ॥ जो मात्रा दो पहर गुज़रने पर पचतीहै वोह मात्रा शुक्रको करनेवाली पुष्ट होतीहै और मध्यदोष में अच्छी होती है ॥ ३५१ ॥ जो मात्रा दिनके चौथे पहर में पचती है उस मात्राको स्नेहनी जानना चाहिये वोह बहुत दोषमें पूजित होती है ॥ ३५२ ॥ पैत्तिक में खाली घृत और वातिकमें लवण के सहित ॥ देना चाहिये तथा बहुत कफमें चित्रक त्रिकुटा क्षार युक्त ॥ ३५३ ॥ देना चाहिये रूक्ष

क्षत विष इनसे पीड़ित वात पित्तके विकार वालों को ॥ और हीन मेधा स्मृति को घृतपान अच्छाहै ॥ ३५४ ॥ क्रमि कोष्ट वात इन करके आविष्ट और बढ़े हुवे कफ मेद वाले ॥ तथा दृढ़ता के चाहने वाले जो हैं वे तल सात्म्य रोगमें तेलको पीवें ॥ ३५५ ॥ कसरत से आकर्षित, शुष्क वीर्य्य वे रक्तवाले वडी पीड़ावाले येहभी तेल पीवें ॥

(क्रूराशयाः क्रूरकोष्ठाः सर्वतः सर्वस्मात् स्नेहात् ।)
शीतकाले दिवा स्नेहं मुष्णकाले पिबेन्निशि ॥ वात
पित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ ३५६ ॥
नस्याभ्यञ्जनं गण्डूषं मूर्द्ध कर्णादि तर्पणे ॥ तैलं
घृतं वा युञ्जीत दृष्ट्वा दोष बलाबलम् ॥ ३५७ ॥ घृ
ते कोष्णं जलं पेयं तैलेयूषः प्रशस्यते ॥ वसामज्ज्ञ
पिबेन्मण्ड मनुपानं सुखावहम् ॥ ३५८ ॥ स्नेह द्वि
षः शिशून् वृद्धान् सुकुमारान् कृशानपि ॥ तृष्णा
लुकां नुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत् ॥ ३५९ ॥
सर्पिष्मती बहुतिला यवागू स्वल्प तण्डुला ॥

भा० (क्रूर आशय क्रूरकोष्ठ सब स्नेह से सब तरफ) शीतकाल में दिनमें स्नेह और उष्णकाल मे रातको पीवे ॥ और वात पित्ताधिक में रातको और वात कफाधिकमें दिनमें ॥ ३५६ ॥ पीवे नास अभ्यंग गण्डूष और शिर कान नेत्र इनके तर्पण में ॥ तेल घृतकी योजना करे दोषोंके बलाबल देखकर ॥ ३५७ ॥ घृतपर सालगरम जल पीना चाहिये और तेल पर जूस प्रशस्त होताहै । वसा मज्जा पर अनुपान माड पीवे येह सुखावह है ॥ ३५८ ॥ स्नेह से द्वेष करने वालों को और बालक वृद्ध सुकुमार कृश इनको भी ॥ और तृषा वालेको उष्णकालमें भोजन के साथ पिलावे ॥ ३५९ ॥ घी की बहुत तिलसे युक्त थोड़े चावल वाली यवागू ॥

सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहन कारिणी ॥ ३६० ॥

शर्करा चूर्ण संयुक्ते दोहनस्थे घृते नु गाम् ॥ दुग्ध्वा क्षीरं पिवेद्रूक्षः सद्यः स्नेहन मुत्तमम् ॥ ३६१ ॥ मिथ्याचारा द्बहुत्वा द्वा यस्य स्नेहो न जीर्य्यति ॥ विष्टम्भा वापि जीर्य्येत वारिणोष्णेन वामयेत् ॥ ३६२ ॥ स्नेहस्याजीर्ण शङ्कायां पिवेदुष्णोदकं नरः ॥ तदोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्ते चाप्ति रुचिस्तथा ॥ ३६३ ॥ स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरी कृतः ॥ तदास्यो दीर्य्यते तृष्णां विषमान्नस्य पाययेत् ॥ ३६४ ॥ शीतलं पायसं तेन तृष्णा तस्य प्रशाम्यति ॥ अजीर्णी वर्जयेत् स्नेह मुदरी तरुण ज्वरी ॥ ३६५ ॥

भा० गरम शील सेवन की हुई तत्काल स्नेह न करनेवाली है ॥ ३६० ॥ दुहने के वर्तन में शर्करा चूर्ण से युक्त घृत मिलाके उसमें ॥ गाय का दूध दुहकर रूक्ष पुरुष पीवे वोह तत्काल उत्तम स्नेहन है ॥ ३६१ ॥ मिथ्याचार से अथवा बहुत होनेसे जिसका स्नेह नहीं पचता ॥ विष्टंभ होके भी पचजाता [illegible] जीर्ण शंकामें [illegible] में रुचि हो [illegible] ॥ तब इसको [illegible] से इसकी तृ [illegible] र वाला स्ने ह को न सेवन करे ॥ ३६५ ॥

॥ दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छार्त्तो मेद पीडितः ॥ दत्तवस्ति विरक्तश्च वान्तस्तृष्णा श्रमान्वितः ॥ ३६६ ॥ अकाल प्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥ स्नेह्यः संशोध्य मद्यस्त्री व्यायामासक्त चिन्तकाः ॥ ३६७ ॥

वृद्ध बाल कृशा रूक्षाः क्षीणास्राः क्षीणरेतसः ॥ वाता-र्त्तास्तिमिरार्त्ता ये तेषां स्नेहन मुत्तमम् ॥ ३६८ ॥ वाता नुलोम्यं दीप्ताऽग्नि र्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ मृदु-स्निग्धाङ्गता ग्लानिः स्नेह द्वेषोऽथ लाघवम् ॥ ३६९ विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्य्ययः ॥ भ-क्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ॥ ३७० ॥ तन्द्रातीसार षण्डत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥ रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहे रति स्निग्धस्य रूक्षणम् ॥ ३७१ ॥

भा० दुर्बल अरुचिवाला स्थूल मूर्च्छावाला प्रमेह से पीडित ॥ वस्ति दिया ऊवा विरेचन लिया ऊवा वमन लिया श्रम युक्त ॥ ३६६ ॥ और अकालमें प्रसूत ऊई येह त्यागदेवे और दुर्दिनमेंभी त्यागदेवे ॥ स्वेदन और संशोधन करके मद्य स्त्री कसरत इनको वऊत करनेवाले ॥ ३६७ ॥ वृद्ध बालक कृश रूखे क्षीण रक्तक्षीण धातु ॥ वात से पीड़ित तिमिर रोगवाले जो हैं उनको स्नेहन अच्छा है ॥ ३६८ ॥ वातका नीचे होना दीप्त अग्नि मल चिकना और ढीला ॥ मृदु और स्निग्धता सुस्ती स्नेह द्वेष और हलकापन ॥ ३६९ ॥ इन्द्रियोंकी स्वच्छता अच्छीतरह स्निग्ध होनेमें येह लक्षण होते हैं ॥ और रूक्षमें इस्से विरुद्ध लक्षण होतेहैं । भोजनमें द्वेष मुखस्राव गुदामें दाह प्रवाहिका ॥ ३७० ॥ तन्द्रा अतीसार नपुंसकता येह वऊत स्निग्धका लक्षण है ॥ रूक्षका स्नेहसे स्नेहन और स्निग्धका रूक्षण ॥ ३७१ ॥

श्यामाक चणका द्येश्च तक्रपिण्याक शक्तुभिः ॥ दीप्ताग्निः शुद्ध कोष्ठश्च पुष्टधातु दृढेन्द्रियः ॥ ३७२ ॥ निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेह सेवी भवेन्नरः ॥ स्नेहे व्यायामं संशीत वेगाघात प्रजागरान् ॥ ३७३ ॥ दिवास्व-प्नमभिष्यन्दि रूक्षान्नञ्च विवर्जयेत् ॥

[अथ पञ्च कर्माणि]

प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेक श्चानु वासनम् ॥ एतानि पञ्च कर्माणि निरूहो नावनं तथा ॥ ३७४॥

[अथ वमन विधिः] शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ॥ वमनं रेचनञ्चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ३७५॥ बलवन्तं कफव्याप्तं हृल्लासादि निपीड़ितम् ॥ तथा वमन सात्म्यञ्च धीर चित्तञ्च वामयेत् ॥ ३७६ ॥ विष दोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे ॥ हृद्रोगे कुष्ठवीसर्पे मेहाजीर्ण भ्रमेषु च ॥ विदारिका पचीकास श्वास पीनस वृद्धिषु ॥ अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ३७८ ॥ नासा तालोष्ठ पाकेषु कर्णस्रावे ऽधि जिह्वके ॥ गल शुण्ड्या मतीसारे पित्तश्लेष्म गदे तथा ॥ ३७९ ॥ मेदोगदे ऽरुचौ चैव वमनं कारयेद् भिषक् ॥

भा० सांवा चना आदिसे और मठा खल सत्तू इनसे करे ॥ दीप्त अग्नि शुद्ध कोष्ठ धातुपुष्ट दृढेन्द्रिय ॥ ३७२॥ निर्जर बल वर्णसे युक्त स्नेह सेवन करने वाला मनुष्य होताहै ॥ स्नेहमें व्यायाम बहुत शीत वेगोंका रोकना रात्रको जागना ॥ ३७३॥ दिनमें सोना अभिष्यन्दि रूखे अन्न इनको त्याग देवे ॥

[अनन्तर पंचकर्म्म] पहिले वमन पीछे विरेचन अनुवासन ॥ निरूह बस्ति नस्य येह पंच कर्म्म हैं ॥ ३७४॥ [अनन्तर वमन विधिः] शरद कालमे वसन्तमें और प्रावृट् कालमें भी मनुष्यों को ॥ वमन विरेचन कुशलवैद्य करावे ॥ ३७५॥ बलवान कफ से व्याप्त हृल्लास आदिसे पीड़ित इनको ॥ तथा वमन सात्म्य और धीर चित्तवाले को वमन करावे ॥ ३७६॥ विषदोष स्तन्यरोग मन्दाग्नि श्लीपद अर्बुद इनमें ॥ और हृद्रोग में कुष्ठमें वीसर्प प्रमेह

अजीर्ण भ्रम इनमें भी ॥ ३७७॥ तथा विदारिका अपचीकास श्वास पीनस अण्ड वृद्धि इनमें ॥ अपस्मार में ज्वर उन्माद तथा रक्तातिसार इनमें ॥ ३७८॥ और नाक तालु होठ इनके पाकमें कर्णस्राव में अधि जिह्वक में ॥ गल शुंडी अती सार तथा पित्त कफ के रोग ॥ ३७९॥ मेद रोग अरुचि मेंभी वैद्य वमन करावे। (दुष्ट दूध पीने से उत्पन्न हुवे बालक के रोग में भी वमन करावे।)

(स्तन्यरोगे दुष्ट दुग्ध जनिते बालस्य रोगे)

न वामनी यस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः ॥ नातिवृद्धो गर्भिणी च न स्थूलो न क्षतातुरः ॥ ३८०॥ मदार्त्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः ॥ उदावर्त्त्यूर्द्ध रक्ती च दुश्छर्द्यः केवलानिली ॥ ३८१॥ पाण्डुरोगी कृमीव्याप्तः पठनात् स्वरघातवान् ॥ एतेऽप्यजीर्ण व्यथिता वाम्या ये विषपीड़िताः ॥ ३८२॥ कफ व्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकक्वाथ पानतः ॥

भा० तिमिर रोगवाला गुल्म रोगवाला उदर रोगवाला कृश ॥ अतिवृद्ध गर्भिणी स्थूल क्षतातुर ॥ ३८०॥ मद पीड़ित बालक रूक्ष क्षुधित निरूवस्ति लियाहुवा ॥ उदावर्तवाला ऊर्द्ध रक्तवाला और केवल वातरोग वाला इनको वमन न देवे ॥ ३८१॥ पाण्डुरोग वाला कृमिसे व्याप्त पढ़नेसे स्वरघात हुवा ॥ येह अजीर्णसे पीड़ित होनेसे भी वमन करानी चाहिये और जो विषसे पीड़ितहैं वे भी वमन कराने चाहिये ॥ ३८२॥ कफ ने व्यापहुये महुवे के काढ़े के पानसे वमन कराने चाहियें ॥

(क) ऊर्द्ध रक्ती यस्य नासादि कर्णास्य मार्गे रक्ते प्रवर्त्तते सः। भुक्त रूक्ष कर्कश द्रव्यो दुश्छार्दीः मधुक स्थाने मधुकेति द्वितीयः पाठ।

सुकुमारं कृशम्बालं वृद्धं भीरुञ्च वामयेत् ॥ पाययित्वा यवागूं वा क्षीरं तक्रं दधीनि च ॥ ३८३॥

असात्म्यैः श्लेष्मलै भोंज्यै दोषानुत्क्लेश्य देहिनाम् ॥
स्निग्ध स्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्त्तते ॥ ३८४ ॥
वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधुवाहितम् ॥ वीभत्सं व
मनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ ३८५ ॥

(वीभत्सम् अरुच्यं विपरीतम् रुच्यम्।)

क्वाथ्य द्रव्यस्य कुडवं स्त्रपयित्वा जलाढके ॥ अर्द्ध
भागावशिष्टञ्च वमनेष्ववचारयेत् ॥ ३८६ ॥ क्का
थपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्त्तिता ॥ मध्यमा
षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ ३८७ ॥ वम
ने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ॥ अर्द्ध त्रयोद
श पलं प्रस्थमाहु र्मनीषिणः ॥ ३८८ ॥

(अर्द्ध त्रयोदश पलं सार्द्ध षट्कम्)

भा० (क) जिसके नाक आंख कान मुख इन मार्ग से रक्त निकलता है वो ह । खाया रूखा कर्कश ऐसा द्रव्य दुःच्छर्द्दी है । मधुक की जगह में मधुक ऐसा दूसरा पाठ है । सुकुमार कृश बालक वृद्ध भीरु इनको ॥ यवागू अथवा दूध मठा दही इनको पिलाकर वमन करावे ॥ ३८३ ॥ मनुष्यों के दोषों को असात्म्य कफकारी भोजनोंसे उखेड़ कर वमन करावे ॥ स्निग्ध स्विन्न वाले को वमन दिया हुवा अच्छी तरह होता है ॥ ३८४ ॥ सब वमनों में अथवा मधु येह हित है ॥ स्वादमें खराब वमन देवे और स्वादमें अच्छा विरेचन देवे ॥ ३८५ ॥ अरुचिको करने वाला । और रुचिको करने वाला । काढ़े की पाव भर दवाको चार सेर पानीमें भिजोयकर ॥ औटाके आधा पानी बाकी रहे को वमन में देवे ॥ ३८६ ॥ क्वाथ पावमें नौसेर बड़ी मात्रा कहीहै ॥ और मध्यम मात्रा छ सेर की कहीहै तथा हीनमात्रा तीनसेर की कही है ॥ ३८७ ॥ वमन में विरेचनमें तथा फस्तमें साढ़े छ पलका सेर मुनियों ने कहाहै ॥ ३८८

(साढ़े छ पल)

कल्क चूर्णावलेहानां त्रिपलं मात्रयोत्तमम् ॥ मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥ ३८९॥ वमने चाष्ट वेगास्तु : पित्तान्ता उत्तमास्तु ते ॥ षड्वेगा मध्यमा वेगा चत्वारस्त्वपरे मताः ॥ ३९०॥ कफं कटुक तीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादु हिमैर्जयेत् ॥ सस्वादु लवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ ३९१॥

भा० कल्कचूर्ण अवलेह इनकी मात्रा उत्तम तीन पलहै ॥ मध्यम दो पल और हीनपल भरकी होती है ॥ ३८९॥ वमन में पित्तान्त आठ वेग जोहोते हैं वोह उत्तमहै ॥ और छः वेग मध्यम तथा चार वेग हीनहैं ॥ ३९०॥ कफ कोकटु तीक्ष्ण इनसे पित्तको मधुर शीतलसे जीते ॥ मधुर के सहित अम्ल उष्ण इन से वात मिलेहुवे कफ को जीते ॥ ३९१॥

कृष्णां कट्फलं सिन्धुं च कफे कोष्णजलैः पिबेत् ॥ पटोल वासा निम्बाश्च पित्ते शीतजलैः पिबेत् ॥३९२॥ (कट्फलं मयनफलम्) सश्लेष्म वात पीड़ायां सक्षीरं मदनं पिबेत् ॥ अजीर्णे कोष्णपानीयं सिन्धुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ ३९३॥ (मदनं मयनफलम्) वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासने स्थितम् ॥ कण्ठमेरण्ड नालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ॥ ३९४॥ प्रसेको हृद्ग्रहः कोठः कण्डूदुश्छर्दिते भवेत् ॥ अतिवान्ते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारो विसंज्ञता ॥ ३९५॥ जिह्वा निःसरणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्ति हनु संहतिः ॥ रक्तछर्दिः ष्ठीवनञ्च कण्ठपीड़ा च जायते ॥ ३९६॥

भा० पीपल कायफल सेन्धव इनको कफमें सील गरम जलसे पीवें ॥ पटोल वा सा निम्ब इनको पित्तमें शीतल जलसे पीवे ॥ ३९२॥ (मैनफल) कफ के सहित वातकी पीडामें दूधके सहित मैनफल को पीवे ॥ ३९३॥ अजीर्ण मे सेन्धव सील गरम पानी से पीकर वमन करे ॥ मयनफल । वमन द्रव्यको पिलाकर घुटने से बैठकर ॥ कठकों अंडीके नालसे स्पर्श कराकर वमन करा वे ॥ ३९४ ॥ प्रसेक हृद ग्रहकोढ खुजली येह लक्षण दुच्छर्दित में होनाहै ॥ अतिवान्तमे तृषा हिचकी डकार विसज्ञता ॥ ३९५॥ जीभ का निकलना नेत्र पीडा आंखोंका निकलना मुखका खुला रहना ॥ रक्त की छर्दि थूक कठमे पीडा । येह लक्षण होतेहै ॥ ३९६ ॥

(हनु संहतिः हन्वो रमिलनम्) वमनस्याति योगे तु मृदुः कुर्य्याद्विरेचनम् ॥ वमने न प्रविष्टायां जिव्हायां कवलः ग्रहः ॥ ३९७ ॥ स्निग्धाम्ल लवणौ र्युक्तै र्घृत क्षीर रसैर्हितैः ॥ (रसैर्मांसरसैः) फलान्यम्लानि खादेयु स्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ॥ ३९८ ॥ निःस्रतान्तु तिलद्राक्षा कल्क लिप्तां प्रवेशयेत् ॥

(निःस्रतां जिह्वां) व्यावृत्ते ऽक्षिणि घृता भ्यक्ते पीडनञ्च शनैः शनैः ॥ हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यञ्च श्लेष्म वातहृत् ॥ ३९९ ॥ रक्तपित्त विधानेन रक्तष्ठीव मुपाचरेत् ॥ धात्री रसाञ्जनो शीर लाजा चन्दन वारिभिः ॥ ४००॥ मन्थंकृत्वा पाययेच्च सघृतं क्षौद्र शर्करम् ॥

भा०• जवड़े का नमिलना । वमन के अतियोगमे मृदु विरेचन करे ॥ वमन कर के प्रविष्ट जिह्वामे कवलग्रह ॥ ३९७॥ चिकना और लवण इनकरके घृत घृत क्षीर रस इन करके देवे ॥ रस अर्थात मांसरस । खट्टे फलोको खावेउस के पहले ॥ ३९८॥ और नि स्रतको तिलद्राक्षा के कल्क से भी लिप्त ओंगीतरको

व्यावृत्त नेत्रमें घृतसे अभ्यक्त को धीरे दबावे ॥ हनुमोक्ष में स्वेद कहाहै और नास कफवातका नाशक ॥ ३९९ ॥ रक्तपित्त विधानसे रक्तष्ठीव का उपचार करे ॥ आंवले रस वनखस खीला चन्दन सुगन्धवाला इनसे मन्थ ॥ करके घृत मधु शर्करा इनके साथ पिलावे ॥ ४००

शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्या रोगाश्छर्दि समुद्भवाः ॥ ४०१॥ हृत्कण्ठ शिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नित्वञ्च लाघवम् ॥ कफ पित्त विनाशश्च सम्यग्वान्तस्य लक्षणम् ॥ ४०२॥ ततोऽपराह्णे दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिक शालिभिः ॥ हृद्यैश्च जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषञ्च भोजयेत् ॥ ४०३॥ तन्द्रा निद्रास्य दौर्गन्ध्यं कण्डूञ्च ग्रहणीं विषम् ॥ सुवान्तस्य न पीडायै भवन्त्येते कदाचन ॥ ४०४॥ अजीर्णं शीत पानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ॥ स्नेहाभ्यङ्गञ्च रोषञ्च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ४०५॥

[इति वमनाधिकारः]

भा० इस्से तृषा आदिक रोग वमन से उत्पन्नहुवे शमन होतेहैं ॥ ४०१ ॥ हृदय कण्ठ शिर इनकी शुद्धि दीप्त अग्नि हलकायन कफ पित्तका नाश येह अच्छी तरह वमन कियेहुवेका लक्षणहै ॥ ४०२॥ उसके अनन्तर अपराह्ह कालमें दीप्त अग्निवाले को मूंग साठी चावल हृद्य जांगलरस से यूस करके भोजन करावे ॥ ४०३ ॥ तन्द्रा निद्रा मुखकी दुर्गन्धता खुजली संग्रहणी विष ये ॥ सुवान्त के पीडाके अर्थ कदाचित भी नहीं होते। ४०४ ॥ अजीर्ण शीतल जल कसरत तथा मैथुन तेलका लगाना क्रोध इनको एक दिन छोड़ देवे ॥ ४०५ ॥ [इति वमनाधिकार ।]

[अथ विरेचन विधिः ।]

स्निग्ध स्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग्विरेचनम् ॥

अवान्तस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥४०६॥ मन्दाग्निं गौरवं कुर्य्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ॥ अथ-वा पाचनैरामं बलासं परि पाचयेत् ॥ ४०७॥ ऋतौ वसन्ते शरदि देहशुद्धौ विरेचयेत् ॥ अन्यदात्ययि के कार्य्ये शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ ४०८॥

भा० अनन्तर विरेचनकी विधि ॥ स्निग्ध स्विन्न वान्तके अर्थ अच्छीतर ह विरेचन देवे ॥ अनन्तर वमन लियेकानी चे ज़ुवा कफ ग्रहणी को ढक देताहै ॥ ४०६॥ मन्दाग्नि भारीपन इनको करताहै ॥ और प्रवाहिका कोक रताहै अथवा पाचनोंसे आम और कफ इसको पकावे ॥ ४०७॥ वसन्त और शरदमें देह शुद्धिके अर्थ विरेचन लिवावे ॥ और अवश्यक कार्य्य में शोधनको करावे ॥ ४०८॥

(आत्ययिके प्राणसङ्कटे)

पित्ते विरेचनं युञ्ज्यादामोद्भूते गदे तथा ॥ उदरे च तथाध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः ॥ ४०९॥ दोषाःकदा चित्कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः ॥ शोधनैः शोधि ता ये तु नतेषां पुनरुद्भवः ॥ ४१०॥ बालो वृद्धो भृशं स्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः ॥ श्रान्तस्तृषार्त्तःस्थू लश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ ४११॥ नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ॥ शल्यार्द्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥ ४१२॥

भा०(प्राण संकट में। पित्तमें तथा आमके रोग मे विरेचन न देवे ॥ और उ दर में तथा आर्ध्मानमें विशेष करके कोष्ट शुद्धिमें विरेचन देवे ॥ ४०९॥ लंघन पाचन औषधि से दूर हुवेदोष कदाचित् फिरसे हो आते हैं ॥ और जो शोधन से शुद्ध किये जाते हैं वे फिरसे नही होते ॥ ४१०॥ बालक

वृद्ध अत्यन्त स्निग्ध क्षत क्षीण भययुक्त ॥ श्रान्त तृषासे पीड़ित स्थूल गर्भिणी नवज्वर वाला ॥ ४११ ॥ नव प्रसूत स्त्री मन्दाग्निवाला मदात्यय वाला ॥ शल्य से पीड़ित और रूक्ष येह जानने वालेके द्वारा विरेचन देनेके योग्य नहींहै ॥ ४१२ ॥

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरोगी भगन्दरी ॥ अर्शः पाण्डूदर ग्रन्थि हृद्रोगारुचि पीड़िताः ॥ ४१३ ॥ योनिरोग प्रमेहार्त्तो गुल्मप्लीह व्रणार्दितः ॥ विद्रधि च्छर्दि विस्फोट विसूची कुष्ठ संयुताः ॥ ४१४ ॥ कर्ण नासा शिरो वक्त्र गुद मेढ्रा मयान्विताः ॥ प्लीह शोथाक्षि रोगार्त्ताः क्रमिक्षार निलार्दिताः ॥ ४१५ ॥ शूलिनो मूत्रघातार्त्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥ बहु पित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ॥ ४१६ ॥ बहु-वात क्रूर कोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥ मृद्वीमात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमाः ॥ ४१७ ॥ क्रूरे तीक्ष्णा मता द्रव्ये मृदु मध्यम तीक्ष्णकैः ॥

भा० जीर्णज्वर वाला विषसे व्याप्त वातरोग वाला भगन्दर वाला ॥ ववासीर पांडु रोग उदरगांठ हृद्रोग अरुचि इनसे पीड़ित ॥ ४१३ ॥ योनिरोग प्रमेह से पीड़ित वायगोला पिलही व्रण से पीड़ित ॥ विद्रधि वमन विस्फोट विसूचि कुष्ठ इनसे युक्त ॥ ४१४ ॥ कान नाक शिर मुख गुदा लिंग इनके रोगोंसे युक्त ॥ पिलही सूजन नेत्ररोग इनसे पीड़ित क्रमि क्षार वात इनसे पीड़ित ॥ ४१५ ॥ शूल वाले मूत्रघात से पीड़ित ये मनुष्य विरेचन देनेके योग्यहै ॥ अधिक पित्त वाला मृदुकोष्ठ कहाहै और अधिककफ वाला मध्यकोष्ठ तथा अधिकवात वाला क्रूर कोष्ठ होता है वोह दुर्विरेच्य कहाहै ॥ मृदुकोष्ठ में मृदुमात्रा मध्य कोष्ठ में मध्यमात्रा ॥ ४१७ ॥ क्रूर कोष्ठमें तीक्ष्णमात्रा मृदु मध्य तीक्ष्ण द्रव्यों से कहीहै ॥

मृदु द्राक्षा पयश्चञ्चु तैलैरपि विरिच्यते ॥ मध्यम स्त्रि-
वृतातिक्ता राजवृक्षै विरिच्यते ॥ क्रूरार्क पयसा हेमक्षी
री दन्ती फलादिभिः ॥ ४१९ ॥

(क) चञ्चु तैलम् एरण्ड तैलम् । राजवृक्षः । धन बहेरा।
हेमक्षीरी । चोक । दन्तीफलम् । वृहद्दन्ती फलम् । जय
पालेति प्रसिद्धम् ॥

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः फलान्तकः ॥ वेगं
विंशति भिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥ ४२० ॥

भा० मृदुकोष्ठ वालेको दाख दूध अंडीका तेल इनसेभी दस्त होतेहैं ॥ ४१८
मध्य कोष्ट को निसोथ कुटकी अमलतास इनसे दस्त आतेहैं ॥ क्रूरको आं
क के दूधसे और चोक जमालगोटा आदिसे दस्त होतेहैं ॥ ४१९ ॥
(क) अंडीका तेल । अमलतास । चोक । वडाजमालगोटा । जुल्लाबकी
उत्तममात्रा तीसंदस्तोंसे होतीहै । वोह कफ नाशक होती है । वीस दस्तों से
मध्यम और दससे हीन मात्रा कही है ॥ ४२० ॥

द्विपलं श्रेष्ठमाख्या तं मध्यमं च पलं भवेत् ॥ पला
र्द्धञ्च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम् ॥ ४२१ ॥ क-
ल्क मोदक चूर्णानां कर्ष मध्वाज्य लेहतः ॥ कर्ष द्व
यं पलंवापि वयोरोगाद्य पेक्षया ॥ ४२२ ॥ पित्तोत्तरे
त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्वाथा दिभिः पिबेत् ॥ त्रिफला क्वा-
थ गोमूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः ॥ ४२३ ॥ त्रिवृत्सै
न्धव शुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ॥ वातार्दितो
विरेकाय जाङ्गलानां रसेन वा ॥ ४२४ ॥ एरण्ड तैलं
त्रिफला क्वाथेन द्विगुणेन वा ॥ युक्तं पीतं पयोभिर्वा

न चिरेण विरिच्यते ॥ ४२५॥

(शीघ्रमेव विरिच्यत इत्यर्थः) त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ समृद्वीका रसं क्षौद्रं वर्षा काले विरेचनम् ॥ ४२६॥ त्रिवृद्दुरालभा मुस्तशर्करोदीच्य चन्दनम् ॥ द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्व शीतलञ्च घनात्यये ॥ ४२७॥ (उदीच्यम्बाला घनात्यये शरदि)

भा० कषायों की मात्रा उत्तम दोपल मध्यम पलभर और हीन आधापल जुल्लाव की दवामें होती है ॥ ४२१॥ कल्क मोदक चूर्ण इनकी तोलाभर मधु घृत मिलाके ॥ दोतोले या चार तोले वयरोग आदिकी अपेक्षा से देवे ॥ ४२२॥ पित्ताधिकमें निसोथका चूर्ण दाख के काढेके साथ पीवे ॥ कफ से पीड़ित त्रिकुटाके चूर्ण को त्रिफला क्वाथ और गोमूत्रके साथ पीवे ॥ ४२३॥ वातार्दित मनुष्य विरेचन को निसोथ सेन्धा सोंठ इनका चूर्ण अम्लके साथ पीवे अथवा जाङ्गल मांस इसके साथ पीवे ॥ ४२४॥ अथवा अरण्डीके तेलको दुगने त्रिफला के काढे से ॥ अथवा दूधके साथ पीनेसे शीघ्र दस्त होते हैं ॥ ४२५॥ निसोथ इन्द्रजव पीपल सोंठ ॥ और मुनक्का इनका रस मधुके साथ वर्षाकाल में विरेचन देवे ॥ २६॥ निसोथ जवासा नागरमोथा शक्कर सुगन्धवाला चन्दन ॥ दाख के रससे मुलेहठीके सहित वीरणमूल इनको शरदकाल में देवे ॥ ४२७॥

(सुगन्धवाला शरद में।)

पिप्पलीनागरं सिन्धुं श्यामां त्रिवृतया सह ॥ लिह्यात् क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ॥ ४२८॥ (श्यामा कृष्णा सारङ) त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ अभया मरिचं शुण्ठी विडङ्गामलकानि च ॥ ४२९॥ पिप्पली पिप्पलामूलं त्वक् पत्रं मुस्तमेव च ॥ एतानि सम भागानि दन्ती तु त्रिगुणा भवेत् ॥ ४३०॥ त्रिवृताष्ट गुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥

भा॰ पीपल सोंठ सुफ़ेद सुहागा काली निसोथ के साथ चूर्ण करके मधुके साथ शिशिर में और वसंतमें भी जुल्लाब देवे ॥ ४२८ ॥ निसोथ शक्कर बराबर इनको ग्रीष्म में देवे ॥ हड़ मिरच सोंठ वायविड़ंग आंवले ॥ ४२९ ॥ पीपल पीपलामूल तज पत्रज नागर मोथा ॥ इनको समभाग और दन्ती तिगुनी ॥ ४३० ॥ निसोथ अठगुनी और इसमें छ गुनी शक्कर ॥

मधुना मोदकान् कृत्वा कर्षमात्रान् प्रमाणतः ॥ ४३१ ॥ एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतञ्चानु पिबेज्जलम् ॥ तावद्विरिच्यते जन्तु र्यावदुष्णं न सेवते ॥ ४३२ ॥ पानाहार विहारेषु भवेन्नियन्त्रणः सदा ॥ विषम ज्वर मन्दाग्नि पाण्डु कास भगन्दरान् ॥ ४३३ ॥ पृष्ठ पार्श्वोरु जघन जङ्घोदर रुजं जयेत् ॥ स्नेहा भ्यङ्गञ्च रोषञ्च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ४३४ ॥ सततं शीलना देव पलितानि प्रणाशयेत् ॥ अभया मोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ॥ ४३५ ॥

[इति अभयादि मोदकः]

भा॰ लेकर मधुकेसाथ कर्ष प्रमाण मोदक करके ॥ ४३१ ॥ एक २ प्रातःकाल खावें और पीछेसे शीतल जल पीवे ॥ तबतक दस्त भोतेहैं जबतक मनुष्य उष्णजल नहीं सेवन करता ॥ ४३२ ॥ खान पान विहारमें सदा पथ्यसे रहे ॥ विषमज्वर मन्दाग्नि पाण्डुरोग कास भगन्दर इनको ॥ ४३३ ॥ और पीठ पसली छाती कटिदेश जांघ उदर इनकी पीड़ा को जीतता है ॥ तेल लगाना और क्रोध इनको बुद्धिवान् एक दिन त्यागदेवे ॥ ४३४ ॥ निरन्तर सेवन करने सेही बालोंकी सुफ़ेदी दूर होती है ॥ येह रसायन में श्रेष्ठ अभया मोदक कहा है ॥ ४३५ ॥ इति अभयादि मोदक ॥

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी ॥ सुगन्धि किञ्चिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेद् बुधः ॥ ४३६ ॥

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न शयीत च ॥ शीताम्बु न स्पृशेत्क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ॥ ४३७ ॥ बलासौषधपित्तानि वायुर्वान्ते यथा व्रजेत् ॥ रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजञ्च कफो व्रजेत् ॥ ४३८ ॥ दुर्विरक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धता कुक्षिशूल रुक् ॥ पुरीषवातसङ्गश्च कण्डू मण्डल गौरवम् ॥ ४३९ ॥ विदाहोऽरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते ॥ तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्का स्निग्धन्तु रेचयेत् ॥ ४४० ॥ तेनास्योपद्रवा यान्ति दीप्ताग्नि लघुता भवेत् ॥ विरिक्तस्यातियोगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ॥ ४४१ ॥ शूलं कफातियोगः स्यान्मांस धावन सन्निभम् ॥ मेदो निभञ्जलाभासं रक्तञ्चापि विरिच्यते ॥ ४४२ ॥ तस्य शीताम्बु भिः सिक्त्वा शरीरं तण्डुलाम्बु भिः ॥ मधु मिश्रै स्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु ॥ ४४३ ॥

भा० जुल्लाव की दवाको पीकर ठंडेपानी से आँखोंको छपके देकर ॥ थोड़ी सी सुगन्ध वस्तुको सूंघकर पानखावे ॥ ४३६ ॥ निर्वात स्थानमें रहै और वेगोंको नरोके और सोवेभी नहीं ॥ शीतल जलको कहीं पर भी न छूवे गरम सील जलको वार २ पीवे ॥ ४३७ ॥ जैसे वमनमें कफ ओषध पित्त वायु निकलते हैं ॥ वैसे इससे मल पित्त और औषध तथा कफ येह भी निकलते हैं ॥ ४३८ ॥ अच्छे जुल्लाव न उतरेके नाभमें स्तब्धता कूखमें शूल पीड़ा ॥ मलवात सङ्ग खुजली चकत्ते भारीपन ॥ ४३९ ॥ विदाह अरुचि आध्मान भ्रम वमन येह होतेहैं ॥ उसको फिरसे पाचन स्नेह द्रव्योंसे पकाकर स्निग्ध उसे को दस्त करावे ॥ ४४० ॥ उस करके इसके उपद्रव दूर होते हैं और दीप्ताग्नि हल्कापन होताहै ॥ बहुत दस्तोंके होने से मूर्च्छा गुद भ्रंश ॥ ४४१ ॥ शूल कफ

का अतियोग मांस के धोवन के समान ॥ और मेदके समान जलसा तथा रक्तभी दस्त में निकलताहै ॥ उसका शरीर शीतलजल से सींच कर शीतल चावल के जलके मधु मिलाके उससे तथा शीतलजल वस्कसे मृदु वमन करावे ॥ ५५३॥

सहकार त्वचः कल्को दध्ना सौवीर केनवा ॥ पिष्टा नाभि प्रलेपेन हन्त्यतीसार मुल्बणम् ॥ ५५४ ॥ सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषीःकृतैः। (सौवीरं सन्धानम्) अजाक्षीरं रसञ्चापि वैष्किरं हारिणं तथा ॥ शालिभिः षष्टिकैस्तुल्यै मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ ५५५॥ वर्त्तिका- लाव विकर कपिञ्जलक तित्तिराः ॥ चकोर क्रकरा द्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥ ५५६॥ कपिञ्जल इति ख्यातो लोके कपिश तित्तिराः ॥

क्रकरः। कराट इति लोके। हारिणस्ताम्रवर्णःस्यान्मृगः।

भा॰ आमकी छालका कल्क दही अथवा सौवीरक के साथ पीस कर नाभि पर लेपकरने से उल्वण अतीसार नाश होताहै ॥ ५५४ ॥ वे छिलके के कच्चे वाप के जवोंसे कांजीके समान जो किया जाता है उसको सौवीर कहतेहैं ॥ बकरीका दूध बटेर आदिका रस तथा हरिण आदिका रस ॥ साठी चावलों के साथ अथवा मसूरकी दालके साथ भोजन करावे ॥ ५५५॥ बटेर लवा विकिर भूरे रंगका तीतर तीतर ॥ चकोर कराट आदि येह विष्किर कहे हैं ॥ ५५६॥ भूरे रंगके तीतर को लोकमें कपिंजल कहते हैं) कराट । हरिण लाल रंगका होताहै ।

शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ॥ लाघवे मनसस्तुष्टौ वातु लोमङ्गतेऽनिले ॥ ५५७॥ सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥ इन्द्रि- याणां बलं बुद्धेः प्रसादो वन्हि दीप्तिता ॥ ५५८ ॥

धातु स्थैर्य्यं वयस्थैर्य्यम्भवेद्रेच न सेवनात् ॥प्रता
प सेवां शीताम्बु स्नेहाभ्यङ्ग मजीर्णताम् ॥ ४४९ ॥
व्यायामं मैथुनञ्चैव न सेवेत विरेचितः ॥ शालि
षष्टि कमुद्गाद्यैर्यवागूम्भोजयेत् कृताम् ॥ ४५० ॥
जङ्गल्ल विष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥
हरिणैणा कुरङ्गर्ष्य वातायु मृगमात्रकाः ॥ ४५१ ॥

भा० हलकापन चित्तकी प्रसन्नता वातका अनुलोमन इस प्रकार के लक्षण होनेमें ॥ शीतल संग्राहि औषधी से वैद्य संग्रहण करे ॥ ४४७ ॥ अच्छी तरह दस्तहुवे मनुष्य को जानकर सायंकाल में पाचन पिलावे ॥ ॥ इन्द्रियोंका बल बुद्धि की स्वच्छता अग्निकी दीप्तिता ॥४४८॥ धातुकी स्थिरता वयकी स्थिरता येह विरेचन के सेवन से होता है ॥ धूप सेवा शीतल जल चिकनाई तेलका लगाना अजीर्णता ॥ ४४९ ॥ कसरत मैथुन इनको विरेचन लियाहुवा न सेवन करे ॥ साठी चावल मूंग आदि से य वागू को बनाकर भोजन करावे ॥ ४५० ॥ हिरण अथवा बंदर आदियों के मांस रससे चावल हितहैं ॥ हिरण एण कुरंग वातायु मृग मात्रक ॥ ५१

राजीवः पृषतश्चैव जङ्गलाः शरभादयः ॥

[अथ स्नेहवस्ति विधिः] वस्तिर्द्विधानु वासाख्यो नि
रुहश्च ततः परम् ॥ यः स्नेहो दीयते सः स्यादनु वा-
सननामकः ॥ ४५२ ॥ कषायक्षीर तैलैर्यो निरुहः
स निगद्यते ॥ वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्ति रि-
तिस्मृतः ॥ ४५३ ॥

(वस्तिभिः मृगादीनां मूत्राशयैः) तत्रानु वासना
ख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ॥ अनुवासन भेद
श्च मात्रा वस्तिरुदीरितः ॥ ४५४ ॥ पलद्वयन्तस्य

मात्रा तस्मादर्द्धापि वा भवेत् ॥ अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥ ४५५ ॥ नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥ नास्थाप्या नानुवास्याश्च जीर्णोन्माद तृडर्दिताः ॥ ४५६ ॥ शोथ मूर्च्छारुचि भय श्वास कास क्षयातुराः ॥ नेत्रं कार्य्यं सुवर्णादि धातुभिर्व्वृक्ष वेणुभिः ॥ ४५७ ॥

भा० राजीव पृषत और शरभ येह मृगके भेदहैं इनका खुलासा मांस वर्ग में देखलेना ॥ [अनन्तर स्नेह वस्ति की विधि ।]

वस्ति याने ऊकना येह दो प्रकारकी होती हैं अनुवासन और निरूह जो तैलादिक दियेजाते हैं वोह अनुवासन नाम वस्ति है ॥ ४५२ ॥ काढ़ा दूध तेल इनसे जो दिया जाता है उसको निरूह कहतेहैं ॥ जिस कारण वस्तिके द्वारा दिया जाता है इसवास्ते उसको वस्ति कहाहै ॥ ४५३ ॥ वस्ति अर्थात् मूत्राशय ॥ उसमें अनुवासन नाम वस्ति उसको यहांपर कहतेहैं ॥ अनुवासन का भेद मात्रा वस्ति कहीहै ॥ ४५४ ॥ उसकी मात्रा दो पलकी और आधी भी होती है रूखा तीक्ष्ण अग्नि वाला और केवल वातरोग वाला येह अनुवासन वस्तिके योग्यहैं ॥ ४५५ ॥ कुष्ठ रोग वाला प्रमेह वाला स्थूल तथा उदर रोगवाला ॥ येह आस्थापन वस्तिके योग्य नहीं हैं और न अनुवासन वस्तिके योग्य हैं ॥ और जीर्ण उन्माद तथा इनसे पीड़ित ॥ ४५६ ॥ तथा सूजन मूर्च्छा अरुचि भय श्वास कास क्षय इनसे पीड़ित येहभी आस्थापन और अनुवासन के योग्य नहीं हैं ॥ नली सुवर्णादि धातुवों की अथवा बांस की करनी चाहिये ॥ ४५७ ॥

नले दन्ते विषाणाग्रे मणिभिर्वा विधीयते ॥

(नेत्रं नाड़ी तथा चोक्तं विश्वप्रकाशे)

नेत्रं मन्थगुणे वस्त्रे तरुमूले विलोचने ॥ नेत्र बन्धेन्च नाड्यान्च नेत्रो नेतरि भेदवत् ॥ ४५९ ॥ षट्कव र्षाणु षड् वर्षाद यावन्मानं षडङ्गुलम् ॥ ततो द्वा

दश कं यावन्मानं स्यादष्ट सम्मितम् ॥ ४५९॥ ततः परं द्वादशभिरङ्गुलैर्नेत्र दीर्घता ॥ मुखच्छिद्रं कलायाभं च्छिद्रं कोलास्थि सन्निभम् ॥ ४६०॥ यथा सङ्ख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छ सन्निभम् ॥ गोपुच्छ सन्निभं मूले स्थूलं तस्मात् क्रमात्कृशम् ॥ ४६१॥

(क) मुखछिद्रादि प्रमाणं नेत्रं क्रमेण षड्वर्षा यद्वा दशवर्षाय तदूर्द्ध्व वर्षाय ज्ञेयम् ॥

आतुराङ्गुष्ठ मानेन मूले स्थूलं विधीयते ॥ कनिष्ठिका परीणाह मग्रे च गुटिकामुखम् ॥ ४६२॥

(परिणाहोऽत्र स्थौल्यम्)

तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्य्ये भागाच्चतुर्थकात् ॥ (कर्णिका गवादि कर्णवत्) योजयेत्तत्र वस्तिञ्च बन्धद्वय विधानतः ॥ मृगाज शूकर गवां महिषस्यापि वा भवेत् ॥ (वस्तिरिति शेषः)

भा० मर्कट दांत सींग अथवा मणि इनकी बनावे ॥ नेत्र अर्थात् नली उस प्रकार कहाहै विश्व प्रकाश में ॥ मथानी की रस्सी वस्त्र दरखत की जड़ आंख ॥ आंखों की पट्टी नली और पेशवाह इतने अर्थ नेत्र शब्द के हैं ऐसा विश्व प्रकाशमें कहाहै ॥ ४५८ ॥ एक बरस से छ बरस तक छ अंगुल नलीका प्रमाण कहाहै ॥ उसके ऊपर बारह बरसतक आठ अंगुलकी कहीहै ॥ ४५९ उसके ऊपर बारह अंगुलकी लंबाई होनी चाहिये नली की ॥ मुखका छिद्र मटरकी बराबर या झरबेरी के बराबर ॥ यथा संख्य नेत्र साफ न लगावडुम होवे ॥ (क) जड़में मोटा उसक्रमसे पतला ॥ मुखके छिद्रादिक का प्रमाण नाड़ीके क्रमसे छ बरसवालेको बारह बरसवाले को और उसके ऊपर बरस वालों को जानना चाहिये ॥ रोगीके अंगूठे के प्रमाणसे जड़में स्थूल कहाहै

और चिटली उंगली के बराबर मोटी आगे और मुख गोली के समान होनी चाहिये ॥ ४६१॥ (परिणाह यहांपर मोटाई। उसके मूलमें दोकान चौथाई भाग से करने चाहियें। गायके कानके समान उसमें सरक फांसकी तरह से मूत्रकी थैली लगावे। हरिन बकरी सूअर बैल और भैंसकी भी होवे ॥
मूत्रकी थैली येह शेष है ॥

मूत्र कोशस्य वस्तिस्तु तदलाभे तु चर्मणः ॥ कषायरक्तः स मृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ॥ ४६२॥ व्रण वस्तेस्तु नेत्रं स्यात् श्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम् ॥ मुद्ग छिद्रं गृध्रपक्ष नलिका परिणाहि च ॥ ४६३॥ शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्य मायुषः ॥ कुरुते परि वृद्धिञ्च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥ ४६४॥ दिवा शीते वसन्ते च स्नेह वस्तिः प्रदीयते ॥ ग्रीष्म वर्षा शरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥ ४६७॥ नचाति स्निग्धमशनं भोजयित्वा नुवासयेत् ॥ मदं मूर्च्छाञ्च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ ४६६॥

भा० मूत्रकी थैली उसके अभावमें चमड़े की थैली ॥ खाकी लाल मुलायम चिकनी मजबूत ऐसी वस्ति अच्छी होती है ॥ ४६२॥ व्रण वस्ति की नली साफ आठ अंगुल की होतीहै और मूङ्ग के बराबर छिद्र तथा गिद्धके परकी नली बराबर मोटाई कहीहै ॥ ४६३॥ अच्छी तरह वस्ति सेवन की हुई शरीर की पुष्टता बल वर्ण आरोग्य और आयु इनको करती है और तैय्यारी को भी करती है ॥ ४६४॥ दिन और शीतकाऋतु तथा वसन्त में स्नेह वस्ति दीजाती है ॥ ग्रीष्म वर्षा और शरत् काल तथा रात इनमें अनुवासन वस्ति होती है ॥ ९६५॥ अति स्निग्ध भोजन को खिलाकर अनुवासन न करावें ॥ दोबार स्नेह दियाहुवा मद और मूर्च्छा को करताहै ॥ ४६६॥

(द्विधा भोजने वस्तौ च)

रूक्षं भुक्तवतो त्यन्नं बलं वर्णञ्च ह्रापयेत् ॥ युक्त स्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वानु वासयेत् ॥ ४६७ ॥
(युक्तस्नेहं यथोचित स्नेहं भोज्यं भोजयित्वेत्यर्थः)
हीनमात्रा वुभौ वस्ती नातिकार्य्य करौ स्मृतौ ॥ अतिमात्रौ तथा नाह क्लमातीसार कारकौ ॥ ४६८ ॥
(उभौ वस्ती अनुवासन निरूहाख्यौ)

भा० भोजन में और वस्ती में। रूक्ष अत्यन्त भोजन करने वाले के बल और वर्ण की घटाताहै ॥ उचित स्नेह वाले मनुष्य को भोजन कराके अनुवासन करावे ॥ ४६७ ॥ यथोचित स्नेह भोज्यको भोजन कराके। हीन मात्र दोनो वस्ति अनिकार्य्य करनेवाली नहीं कहीहै ॥ तथा अतिमात्रदोनों वस्ति अफारा क्लम अतीसार इनको करने वाली हैं ॥ ४६८ ॥
(दोनों वस्ति अर्थात् अनुवासन निरूह)

उत्तमा स्या त्पलैः षड्भिर्मध्यमा स्यात्पलै स्त्रिभिः।
पला दर्द्धेन हीना स्यादुक्त मात्रानु वासने ॥ ४६९ ॥
शताह्वा सैन्धवाभ्याञ्च देयं स्नेहेच चूर्णकम् ॥
तन्मात्रो त्तम मध्यान्त्या षट् चतुर्द्वय माषकैः ॥४७०॥
विरेचना त्सप्तरात्रे गते जातबलाय च ॥ भुक्तान्ना यानु वास्याथ वस्तिर्देयो ऽनुवासनः ॥ ४७१ ॥ अथानुवास्यं स्वभ्यक्त मुष्णाम्बु स्वेदितं शनैः ॥ भोजयित्वा यथा शास्त्रं कृतञ्च ङ्क्रमणं नरः ॥ ४७२ ॥

भा० छ पलकी उत्तम तीन पलकी मध्यम और एक पलकी हीन यह अनुवासन में मात्रा कही है ॥ ४६९ ॥ सोंफ और सेन्धा इनसे स्नेहमें चूर्ण देना चाहिये ॥ उसकी मात्रा उत्तम मध्यम हीन छ चार और दो मासे से होती है ॥ ४७० ॥ विरेचन से सात दिन बीतने पर बल जिसको। भोजन कराके अनुवासन के योग्य

को अनुवासन वस्ति देनी चाहिये ॥ ४७१॥ अनन्तर स्वभ्यक्त गरम जल से स्नान किये हुवे अनुवासन के योग्यको भोजन कराके शास्त्रके अनुसार टहलाके उसके अनन्तर ॥ ४७२॥

उत्सृष्टानिल विण्मूत्रं योजयेत् स्नेह वस्तिना ॥

(उष्णाम्बु स्वेदितम् । उष्णाम्बुना स्नपितम्)

सुप्तस्य वामपार्श्वे न वामजङ्घा प्रसारिणः ॥ कुञ्चितापर जङ्घस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत् ॥ ४७३॥ बद्धं वस्ति मुखं सूत्रे वामहस्तेन धारयेत् ॥ पीड़ये द्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः ॥ ४७४॥ जृम्भाकासक्षवादींश्च वस्तिकाले न कारयेत् ॥ त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीड़ने ॥ ४७५॥ ततः प्रणिहिते स्नेहे उत्तानो वाक् शतं भवेत् ॥ स्वजानुनः करावर्त्तं कुर्य्याच्छोटिकया पुनः ॥ ४७६॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रै वैष निश्चयः ॥

भा० वात मल मूत्र कर चुके हुवेको स्नेह वस्ति वैद्य देवे ॥

(गरम जलसे स्नान कराये हुवे को ।) बायें करवट लेटे हुवे ॥ और बांई जांघ पसारे हुवे ॥ तथा दहिनी जांघको सिकोडे हुवे की गुदामें चिकनाई लगाकर नाड़ी को डाले ॥ ४७३॥ डोर से बन्धे हुवे वस्ति मुखको बायें हाथ से पकडे ॥ धीर बुद्धिवाला मनुष्य मध्य वेगमें दहने हाथ से दवावे ॥ ४७४॥ वस्ति समय में जंभाई खांसी छींक आदि न करावे ॥ तीस मात्रा काल वस्तिके पीडन में कहा है ॥ ४७५॥ उसके अनन्तर प्रणिहित स्नेहमें उत्तान सौ की गिनती तक रहे ॥ अपने घुटने पर हाथ फेरके चुटकी बजावे और फिरसे फेरे ॥ ४७६॥

यह एक मात्रा होती है सब जगह येह निश्चय है ॥

निमिषोन्मेषणं पुंसामङ्गुल्या च्छोटिकाथवा ॥
४७७॥ गुर्व्वक्षरोच्चारणं वा स्यान्मात्रेयं स्मृता बुधैः
॥प्रसारितैः सर्व्वगात्रै र्यथा वीर्य्यं प्रसर्पति ॥४७८॥
(यथा वीर्य्यं स्नेहादि)
ताडयेत्तलयोरेनं त्रींस्त्रीन्वारान् शनैः शनैः ॥
स्फिजोश्चैव तथा श्रोणिं शय्याञ्चैवोत्क्षिपेत्ततः॥
४७९॥ स्फिजोश्चैनं स्वपाणिभ्यां पूर्ववत्ताडयेद्बुधः॥
शय्याञ्च पदतस्तस्य त्रीन् वारानुत्क्षिपेत्ततः॥
४८०॥जाते विधाने तु ततः कुर्य्यान्निद्रां यथासुखम्
॥सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ॥४८१॥
उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥
(उपद्रवस्थाने तुषचोषाविति सुश्रुते पाठः)

भा॰ मनुष्यों के नेत्रोंका निमिष और उन्मेष अथवा अंगुली से चुटकी॥ ४७७॥ वा गुरु अक्षर का उच्चारण इसको मात्रा पंडितों ने कहीहै ॥ सब गात्र फैलाने से वीर्य्यके अनुसार फैल जाताहै ॥ ४७८॥ स्नेहादि । इसको तलुवे में धीरे २ तीन २ वार चोट देवे ॥ और चूतड़ तथा कमर इनमें भी धीरे २ थपेड़ देवे उसके अनन्तर खाटको पावोंकी तरफ से ऊंची करे ॥ ४७९ ॥ बुद्धिवान अपने हाथोंसे पूर्ववत् चूतड़ों में थपेड़ देवे ॥ उसके अनन्तर उसकी खाट को पांयनेकी तरफ से तीनवार उठावे ॥ ४८०॥ विधान के होनेपर उसके अनन्तर यथासुख निद्रा करे ॥ जिसके वात और मलके सहित स्नेह ॥ विना उपद्रव के शीघ्र लौट आताहै वोह अच्छा अनुवासन किया हुवा है ॥ (उपद्रव की जगहमें तुष चोष इस प्रकार सुश्रुत में पाठ है)

जीर्णान्न मथ सायान्हे स्नेहे प्रत्यागते पुनः ॥ लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ॥४८२॥

अनुवासिनाय दातव्य मितरे ऽन्हि सुखोदकम् ॥ धा
न्यशुण्ठी कषायं वा स्नेह व्यापत्ति नाशनम् ॥ ४८३

(सुखोदक मुष्णोदकं व्यापत्तिर्व्याधिः)

अनेन विधिना षड्वा सप्त वाष्टौ नवापि वा ॥ वि
धेया व स्तयस्तेषा मन्तेचैव निरूहणम् ॥ ४८४॥
दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद् वस्तिवङ्क्षणौ ॥
सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्द्धस्थ मनिलं जयेत् ॥
॥४८५॥ बलं वर्णञ्च जनये त्तृतीयस्तु प्रयोजितः।
चतुर्थ पञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजौ ॥ ४८६॥
षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एवच ॥ अष्टमो
नवमश्चापि मज्जानञ्च यथा क्रमम् ॥ ४८७॥
(यथा क्रम मिति वचना दष्टमोऽस्थि स्नेहयेत्)

भा॰ अनन्तर फिरसे स्नेह लौट आने पर सायंकाल में जीर्ण। और हलके अन्नको दीप्ताग्नि वाला मनुष्य भोजन करे ॥ ४८२॥ अनुवासिन को दूसरे दिन सील गरम जल देना चाहिये ॥ अथवा धनियाँ सोंट इनका काढ़ा देवे येह स्नेह व्याधिका नाशक है ॥ ४८३॥ सील गरम जल। रोग। इस विधिसे छ सात आठ अथवा नौ ॥ वस्ति करनी चाहिये उनके अखीर में निरूहण देना चाहिये ॥ ४८४ ॥ प्रथम दीहुई वस्ति पेडू और वंक्षण को तर करती है ॥ अच्छे पकार दीहुई दूसरी वस्ति ऊपर की वात को जीतती है ॥ ४८५॥ और तीसरी दीहुई बल वर्ण को करती है ॥ चौथी पांचवी दीहुई रस और रक्त को तर करती है ॥ ४८६॥ छठी मांस को स्नेह करती है। और सातवी मेद् को। अष्टम नवम क्रमके अनुसार तर करती है ॥ ॥ ४८७॥(यथा क्रम इस वचन से आठवीं अस्थि को चिकनी करती है

एवं शुक्रगता न्दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत् ॥

[अष्टादशा दधिक वस्तिः]

अष्टादशाष्ट दशकान् वस्तीनां यो निषेवते ॥ स कुञ्जरबलोऽश्वस्य जव तुल्योऽमर प्रभः ॥ ४८८ ॥ रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिं दिने दिने ॥ दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामग्न्या वाध भयात् त्र्यहात् ॥४८९॥ स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकाल मनत्ययः ॥ (अनत्ययः। अबाधः) तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ॥ अथ वा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ॥ ४९० ॥ तस्याप्यल्प तरो देयो न हि स्निग्धे ऽवतिष्ठते ॥

भा० इस प्रकार मुक्कगत दोषोंको दुगना अच्छा साधन करे ॥ अठारह से अधिक वस्ति। जो छत्तीस वस्ति सेवन करताहै। वोह गजके समान बल वाला और अश्वके तुल्य बल देवता के समान कान्ति युक्त होताहै ॥ ४८८ ॥ रूक्ष और बहुत वात वाले को स्नेह वस्ति प्रतिदिन देवे ॥ तथा वैद्य औरों की अग्नि वाधा भयसे तीसरे दिन देवे ॥ ४८९॥ रूक्षों को ऽल्पमात्र स्नेह बहुत कालतक अदोष होताहै ॥ वैसेहि स्निग्धोंको निरूह अल्पमात्र प्रशस्तहै ॥ अथवा जिसके केवल स्नेह तत्काल निकलताहै ॥ ४९०॥ उसको बहुत थोड़ा देना चाहिये स्निग्धके न रहनेमें ॥ (अवतिष्ठते दत्तः स्नेह इति शेषः)

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ॥ तदाङ्गसदनाध्माने शूलं श्वासश्च जायते ॥ ४९१॥ पक्काशये गुरुत्वञ्च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधैर्युक्तं फलवर्तिं मथापि वा ॥ ४९२॥ यथानुलोमनो वायुर्मलः स्नेहश्च जायते ॥ तथा विरेचनं दद्या त्ती

त्तं नस्यञ्च शस्यते ॥ ४९३॥ यस्य नोपद्रवं कुर्य्यात् स्नेह वर्त्तिरनिःसृतः ॥ सर्व्वोऽल्पो व्यावृतो रौक्ष्या दुपेक्ष्यः स विजानता ॥ ४९४॥ अनायान्तन्त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ॥ स्नेह बस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥ ४९५॥ गुडूच्येरण्ड पूतीक भार्गी वृषकरोहिषम् ॥ शतावरी सहचरं काकनासां पलोन्मिताम् ॥ ४९६॥ यवमाषातसी कोल कुलत्थान् प्रसृतोन्मितान् ॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोण शेषेण तेन च ॥ ४९७॥ पचेत्तैलाढकं सर्वैं र्जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ अनुवासन मेतद्धि सर्व वात विकारनुत् ॥४९८

भा० दीया हुवा स्नेह यह शेष है। जब फिरसे अशुद्ध का मलसे मिला हुवा स्नेह नहीं निकलता ॥ तब शरीरमें पीडा आध्मान शूल और श्वास येह होते हैं ॥ ४९१॥ पक्काशय में भारीपन होताहै उसमें निरूहण देवे ॥ तीक्ष्ण औषधों से युक्त तीक्ष्ण फल वर्त्ति अर्थात् गुदामें बत्ती देवे अनुलोमन होवे अथवा ॥ ४९२॥ जैसे वायु मल और स्नेह अनुलोम न होवे ॥ वैसे तीक्ष्ण विरेचन देवे और नासभी प्रशस्त है ॥ ४९३॥ जिसकी न निकली हुई स्नेह वस्ति उपद्रवको नहीं करती ॥ वो सर्वथा थोडा रूक्षता के कारण व्यावृत्त होता है इसवास्ते जाननेवाले के द्वारा उपेक्षा करने योग्य है ॥ ४९४॥ जो स्नेह दिन रात में भी नकिले उस्को संशोधन से निकाले ॥ स्नेह वस्तिके न निकलने में और स्नेह न विधान करे ॥ ४९५॥ गिलोय अंडी कांज भारंगी वांसा रामकपूर ॥ सतावर कटसरैया कौवाठोडी इनको एक पल लेवे ॥ ४९६॥ और जव उडद अलसी फरबेरी कुरथी इनको दो २ पललेवे ॥ चार द्रोण जलमे पकाकर चौथाई बाकी रहै तब उससे ॥ ४९७॥ सब जीवनीयगण की पल प्रमाण औषधिके साथ चार सेर तेल पकावे ॥ यह अनुवासन सब वात रोगोंकी नाशक है ॥ ४९८॥

(क) पूतीकः। करञ्जः। रौहिषं इषत् सुगन्धतृण विशेषः।

काक नासा । कौआ ठोठी । प्रसृतम् । पल द्वयम् । षोढ़ा सप्त व्यापदस्तु जायन्ते वस्ति कर्म्मणा:॥ दूषितानू स मुदायेन तांश्चिकित्स्याच्चु सुश्रुतान् ॥ ४९९॥ समु-दायेन समुचित नेत्रादि सामग्र्या। पानाहार विहा राश्च परिहाराश्च कृत्स्नशः॥ स्नेह पान समाः का र्य्या नात्र कार्य्या विचारणा ॥

भा॰ (क) करंज । रामकपूर । कौवा ठोढ़ी । दोपल । वस्ति कर्म्म से छः सात दोष होते हैं ॥ समुदाय करके दूषित उनकी सुश्रुत से चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४९९॥ समुचित नाड़ी आदि सामग्री से । पान आहार विहार और परिहार येह सम्पूर्ण स्नेह पान के समान करना चाहिये इसमें कोई विचार न करना चाहिये ॥

[अथ निरुहवस्ति विधिः।]

निरुह वस्ति बहुधा भिद्यन्त कारणान्तरैः॥ नैरेव तस्य नामानि धृतानि मुनिपुङ्गवैः॥ ५००॥

(कारणान्तरैः। समवायि कारण भेदैः)

निरुहस्या परन्नाम प्रोक्त मास्थापनं बुधैः॥ स्व-स्थाने स्थापना दोष धातूनां स्थापनं मतम् ॥ ५०१॥

निरुहस्य प्रमाणं तु प्रस्थ पादोत्तरं परम् ॥ मध्यमं प्रस्थ मुद्दिष्टं हीनञ्च कुडवास्त्रयः॥ ५०२॥

(परं श्रेष्ठम्) अति स्निग्धोऽक्लिष्ट दोषः क्षतः क्षीणः कृशस्तथा ॥ (अक्लिष्ट दोषः) अदत्तोत्क्लेशन इति यावत् ततो रूक्षः उरः क्षतवान् ॥

आध्मान छर्दि हिक्कार्शः कास श्वास प्रपीड़ितः।

भा॰ अनन्तर निरूहवस्तिकी विधि। निरूह वस्ति कारणान्तरोंसे अनेक प्रकारकी है॥ उन्हीं कारणोंसे उनके नाम मुनियोंने कियेहैं॥ ५००॥ समस्थायिकारणोंभेद से। बुद्धिवानोंने निरूह का नाम आस्थापन कहा है॥ दोष धातुवोंका अपने स्थानमें स्थापन होने से स्थापन कहा है॥ ५०१॥ निरूहका परम प्रमाण सवासेर कहाहै॥ और मध्यम सेरभर कहाहै॥ तथा हीन तीनपाव कहाहै॥ ५०२॥ अति स्निग्ध और अक्लिष्ट दोष क्षत क्षीण तथा कृश॥ न दियाहुवा उत्क्लेशन। उर क्षत वाला। आध्मान वमन हिचकी ववासीर कास श्वाससे पीड़ित।

गुद शोफातीसारार्त्तो विसूची कुष्ठ संयुतः॥ ५०३॥ गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी॥ वात व्याधावुदावर्त्ते वाधासृग्विषमज्वरे॥ ५०४॥ मूर्च्छा तृष्णोदरानाह मूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च॥ वृद्ध्यसृग्दर मन्दाग्नि प्रमेहेषु निरूहणम्॥ ५०५॥ शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजनम्॥ ५०६ मध्यान्हे गृहमध्ये च यथायोग्यं निरुहयेत्॥

भा॰ और गुद शोफ अतीसार इनसे पीड़ित विसूची कुष्ठ से युक्त॥ ५०३॥ गर्भिणी मधुमेह वाला और जलोदरी येह आस्थापन योग्य नहीं है॥ और वातरोगमें उदावर्त्त में वद रक्त विषमज्वर इनमें॥ ५०४॥ मूर्च्छा तृषा उदर आनाह मूत्रकृच्छ्र पथरी इनमें भि॥ अंडवृद्धि रक्त प्रदर मन्दाग्नि प्रमेह इनमें निरूहण देवे॥ ५०५॥ शूल अम्लपित्त हृद्रोग। इनमें भी विधि के अनुसार योजना करे॥ अधोवात मल मूत्र करचुके हुवे स्निग्ध और स्विन्न तथा भोजन न कियेको॥ ५०६॥ मध्यान्ह में घरके बीच यथायोग्य निरूहण करे॥

(स्निग्धम्। स्वभ्यक्तम्। स्विन्नम्। उष्णाम्बु स्नापितम्) स्नेह वस्ति विधानेन बुधः

कुर्य्यान्निरुहणम् ॥ जाते निरुहे च ततो भवेदुत्कट कासनः ॥ ५०७ ॥ तिष्ठेन्मुहूर्त्त मात्रन्तु निरुहागमनेच्छया ॥ अत्र मुहूर्त्त मात्र शब्दे ने तदपि बोधितम् निरुह प्रत्यागमनकालो मुहूर्त्त मात्रः ।

अनायातं मुहूर्त्ते तु निरुहं शोधनैर्हरेत् ॥ निरुहै रेव मतिमान् क्षार मूत्राम्ल सैन्धवैः ॥ ५०८ ॥

भा० तेल लगाया हुवा । गरम जलसे स्नान किया हुवा । पंडित स्नेह वस्ति की विधिसे निरूहण करे ॥ निरुह होनेपर उकडू हो के ॥ ५०७॥ दो घडी ठहरे निरूहके आनेकी इच्छासे । यहां पर मुहूर्त्तमात्र शब्द से यहभी जनाया है । निरूह के लौट आनेका काल मुहूर्त मात्र है ॥ दो घड़ीमें निरूह न आवेतो शोधन से निकाले । बुद्धिवान् क्षार मूत्र अम्ल सैन्धव इनसे युक्त निरुह से ही शोधन करे ॥ ५०८ ॥

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट् पित्त कफ वायवः ॥ लाघवं चोपजायेत सुनिरुहं तमादिशेत् ॥ ५०९ ॥

यस्य स्याद् वस्ति वन्धा ल्प वेगोहीन मलानिलः ॥ मूर्च्छार्त्ति जाड्या रुचिमान् दुर्निरुहं तमादिशेत् ॥ ॥५१०॥ विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधि निग्रहः । आस्थापने स्नेहवस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ॥ ५११॥ (विविक्तता । दत्तौषध निःसरणम्)

अनेन विधिना युञ्ज्यान्निरुहं वस्तिदानवित् ॥

भा० जिसके क्रमसे मल पित्त कफ वायु निकलते हैं । और हलका पन होताहै उसको निरूह कहते हैं । ५०९ ॥ वन्धन अथवा अल्प वेगहोताहै ॥ और हीन मलवान होताहै । तथा मूर्च्छा पीड़ा जाड्य अरुचि युक्त उसको दुर्निरूह जाने ॥ ५१० ॥ अलग होतो मनकी प्रसन्नता

स्निग्धता व्याधि निग्रह ॥ आस्थापन और स्नेहवस्ति के अच्छे देनेमें येह लक्षण हैं ॥ ५९१॥ दिये हुवे औषधका निकलना। वस्तिदान को जाननेवाला इस विधिसे निरूहको योजना करे ॥

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् ॥ ५९२॥ स स्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥ कषाय कटु मूत्राद्या कफे तूष्णा स्त्रयो हिताः ॥ ५९३॥ पित्त श्लेष्मा निलाविष्टं क्षीर यूष रसैः क्रमात् ॥ निरूहं भोजयित्वा च ततस्त मनु वासयेत् ॥ ५९४ ॥ सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ॥ वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बला युषी ॥ ५९५॥ दद्यादुत्क्लेशनं पूर्व्वं मध्यं दोष हरन्ततः ॥ पश्चात्संशमनीयञ्च दद्या द्वस्तिं विचक्षणः ॥ ५९६॥ एरण्डबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा ॥ हवुषा फल कल्कश्च वस्तिरुत् क्लेशनः स्मृतः ॥ ५९७॥ इत्युत्क्लेशन वस्तिः॥

भा० दूसरी तीसरी अथवा चौथी यथोचित योजना करे ॥ ५९२॥ वोह स्नेह वातमें एक पित्तमें दो पयके साथ ॥ और कफमें उष्ण कषाय कटु मूत्र आदि से तीन हितहैं ॥ ५९३॥ पित्त कफ वात इनकरके आविष्ट को दूध जूस रस इन से क्रमके साथ ॥ भोजन करा कर निरूह देवे उसके अनन्तर अनुवासन वस्ति देवे ॥ ५९४॥ सुकुमार बालक वृद्ध इनको मृदु वस्ति हितहै ॥ तीक्ष्ण वस्ति देनेसे उनका बल आयु नाश होता है ॥ ५९५॥ पहिले उत्क्लेशन देवे। मध्यमें दो पहर उसके ॥ पीछे संशमनीय देवे वस्ति चतुर ॥ ५९६॥ अंडीकी जड़ मऊवा पीपल सेन्धा वच ॥ हाउवेरके फलका कल्क यह। उत्क्लेशन वस्ति कही है ॥ ५९७॥ इति उत्क्लेशन वस्ति॥

शताह्वा मधुकं विल्वं कौटजं फल मेवच ॥ स काञ्जि

कः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ ५१८ ॥

[इति दोषहर वस्तिः]

प्रियङ्गु मधुकं मुस्ता तथैवच रसाञ्जनम् ॥ सक्षीरः पास्येत वस्ति दोषाणां शमनः स्मृतः ॥ ५१९ ॥

[इति शमन वस्तिः]

त्रिफला क्वाथ गोमूत्र क्षौद्र क्षार समायुता ॥ ऊषकादि प्रतीवापै वस्तयोः लेखनाः स्मृताः ॥ ५२० ॥

(ऊषकादि प्रतीवापाः। ऊषकादि गण विशेष चूर्ण प्रक्षेपाः) [इति लेखनवस्तयः]

बृंहण द्रव्य निष्क्वाथैः कल्कै मधुर कैर्युता ॥ सर्पिर्मांस रसोपेता वस्तयो बृंहणाः स्मृताः ॥ ५२१ ॥ इति बृंहण व-स्तयः] बदर्य्यैरावती शेलु शाल्मली पुष्पजाङ्कुराः ॥

भा० सोंफ महुवा बेल इन्द्रजव ॥ कांजी और गोमूत्र के साथ यह वस्ति दोष हर कहीहै ॥ ५१८ ॥ (इति दोषहर वस्ति)॥ प्रियंगु महुवा नागर मोथा वैसे ही रसोत ॥ दूधके सहित वस्ति प्रशस्त है। वोह दोषोंकी शमन कहीहै ॥ ५१९ (इति शमन वस्ति) ॥ त्रिफला का काढ़ा गोमूत्र मधु जवाखार इनसे युक्त ऊषकादि प्रतीवाप से लेखन वस्ति कहीहै ॥ ५२० ॥ ऊषकादि गण विशेषके चूर्णको डालना ॥ (इति लेखनवस्ति ॥) बृंहण द्रव्यके काढ़े मे मधु करके कल्क से युक्त ॥ और घृत मांस रस से युक्त बृंहण वस्ति कही है ॥ ५२१ ॥ (इति बृंहण वस्ति ।) बेर वटपत्री लिसोढ़ा सेमल के फूलों के अङ्कुर ॥

(ऐरावती । नारङ्गी । शेलुः । बहुआर ।)

क्षीर सिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिल संज्ञिताः ॥ अजोरभ्रैण रुधिरै र्युक्ता देया विचक्षणैः ॥ ५२२ ॥

(अजश्छागः। उरभ्रोमेषः। एण: कृष्णामृगः।)
मात्रा पिच्छिल वस्तीनां पले द्वादश भिर्मता॥
(इति पिच्छिलवस्तयः।) दत्वादौ सैन्धवस्याक्ष मधुनः
प्रसृति द्वयम्॥ ५२३॥

भा॰ नाड़ी। वहुवार। दूधसे सिद्ध किये मधुके युक्त येह पिच्छिल नाम वस्ति है॥ बकरा मेढ़ा काला हिरन इनके रुधिर से युक्त चतुर के द्वारा देनी चाहियें॥ ५२२॥ (बकरा मेढा कालाहिरन। पिच्छिल वस्ति की मात्रा बारह पल कही है॥ (इति पिच्छिल वस्ति))॥ दो पल मधु और एक तोला मधु पहिले देकर॥ ५२३॥

विनिर्मथ्य ततो दद्यात् स्नेहस्य प्रसृति त्रयम्॥ एकी
भूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत्॥ ५२४॥
संमूर्च्छिते कषायन्तु चतुः प्रसृति सम्मितम्॥ गृ
ह्णीयाच्च तदा वाय मन्ते द्विप्रसृतो न्मितम्॥ ५२५॥
क्षित्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक्॥
एवं प्रकल्पितो वस्ति र्द्वादश प्रसृति र्भवेत्॥ ५२६॥
वाते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात् स्नेहस्य षट् पलम्॥ पि
त्ते चतुष्पलं क्षौद्रं स्नेहं दद्यात्पलत्रयम्॥ ५२७॥
कफेतु षट्पलं क्षौद्रं दिपेत् स्नेहं चतुष्पलम्॥

भा॰ मथकर उसके अनन्तर स्नेहको छ पल देवे॥ उसके अनन्तर स्नेह के मिलजाने पर दोपल कल्क डाले॥ ५२४॥ स मूर्च्छित होनेपर कषाय आठ पल प्रमाण लेवे॥ अथ वातके अन्तमें इसको चार पल प्रमाण॥ ५२५॥ डालकर और मथके कुशल वैद्य निरूह को देवे॥ इस प्रकार कल्पना की हुई वस्ति बारह प्रसृति होती है॥ ५२६॥ वातमें चारपल मधु और स्नेह छ पल देवे॥ तथा पित्तमें चारपल मधु और स्नेह तीनपल देवे।

॥ ५२७॥ कफ में छे पल मधुस्नेह चार पल डाले ॥ इति निरुह वस्तिकी मात्रा

एरण्ड क्वाथ तुल्यांशं मधु तैलं पलाष्टकम् ॥ शतपुष्पा पलार्द्धेन सैन्धवार्द्धेन संयुतम् ॥ ५२८ ॥ मधु तैलक संज्ञोऽयं वस्तिर्दारु विलोडितः ॥ मेदो गुल्म कृमि प्लीह मलोदावर्त्त नाशनः ॥ ५२९ ॥ वल वर्ण कर श्चैव वृष्यो दीपन वृंहणः ॥ [मधु तैलक वस्तिः।]

क्षौद्राज्य क्षीरं तैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत् ॥ हवुषा सैन्धवा क्षांशो वस्तिः स्याद् यापनः परः ॥ ५३० ॥

[इति पाचन सारकः यापन वस्तिः]

भा॰ अंडी के काढ़ेके समान मधु तैल आठ पल ॥ सौंफ आधा पल सैन्धव एक तोला इनसे युक्त ॥ ५२८ ॥ मधु तैलक नाम येह वस्ति लकडीसे बिलोडइ हुई ॥ मेद वायु गोला कृमि पिलही मल उदावर्त्त इनकी नाशक है ॥ ५२९ ॥ और वल वर्ण को करनेवाला वृष्य दीपन पुष्टहे ॥ मधु तैलक वस्ति ॥ मधु घृत दूध तेल यह दो दो पल होवे ॥ हाउ बेर सैन्धव येह एक एक तोला येह पाचन वस्ति है ॥ ५३० ॥ [इति पाचन सारक पायन वस्ति]

एरण्ड मूल निष्क्वाथो मधु तैलं स सैन्धवम् ॥ एष युक्त रथो वस्तिः सवचा पिप्पली फलः ॥ ५३१ ॥ [युक्त रथो वस्तिः।] पञ्च मूलस्य निष्क्वाथे स्तैलं मागधिका मधु ॥ स सैन्धवः स यष्ट्याह्वः सिद्ध वस्तिरिति स्मृतः ॥ ५३२ ॥ ॥ इति सिद्ध वस्तिः।]

स्नान मुष्णो दकैः कुर्य्या द्दिवा स्वप्न मजीर्णताम् ॥ वर्जयेदपरं सर्व माचरेत् स्नेह वस्तिवत् ॥ ५३३ ॥

भा० अंडीकी जड़का काढ़ा मधु तेल और सैन्धवके सहित ॥ और वच पीपल के सहित येह युक्तरथो वस्तिहै ॥ ५३१॥ इति युक्तरथो वस्ति ॥]
पंच मूलके काढ़ेके साथ तेल पीपल मधु ॥ सैन्धव के सहित और मुलहठी के सहित सिद्ध वस्ति इस प्रकार कही है ॥ ५३२॥ सिद्धवस्ति ॥
गरम जलसेस्नान करे दिनमें सोता अजीर्णता इनको त्याग देवे बाकी सब स्नेह वस्ति के समान करे ॥ ५३३॥

[अथोत्तर वस्ति विधिः] अतः परम्प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तर संज्ञितम् ॥ निरुहादुत्तरो यस्मा त्तस्मादुत्तर संज्ञकः ॥ ५३४॥ द्वादशाङ्गुलकं नेत्रं मध्येच कृतकर्णिकम् ॥ मालती पुष्प वृन्ताभं छिद्रं सर्षप निर्गमम् ॥ ५३५ पञ्च विंशति वर्षाणा मधो मात्रा द्विकार्षिकी ॥ तदूर्द्ध म्पल मात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः ॥ ५३६॥ अथ स्थापन शुद्धस्य तृप्तस्य स्नान भोजनैः ॥ स्थितस्य जानु मात्रे च विष्टे स्निग्ध शलाकया ॥ ५३७ ॥ स्निग्धया मेढ्रमार्गे तु ततो नेत्र न्नियोजयेत् ॥ शनैः शनै र्घृता भ्यक्तं मेढ्र रन्ध्राङ्गुलानि षट् ॥ ५३८ ॥ ततोऽव पीडयेद् वस्तिं शनैर्नेत्रं विनिर्हरेत् ॥

भा० अनन्तर उत्तर वस्ति की विधि ॥ इसके उपरांत उत्तर संज्ञित वस्ति को कहता हूं ॥ जिसकारण निरूह से उत्तर कही है ॥ उस कारण उत्तर संज्ञक येह वस्ति है ॥ ५३४ ॥ बारह उंगल की नली के बीच में कान की ऊई चमेली के फूलके डंठल के समान छिद्र सरसों निकलने के माफिक होनी चाहिये ॥ ५३५॥ पच्चीस वरसके नीचे दो तोलेकी मात्राहै ॥ उसके ऊपर पलभर मात्रा स्नेहकी कही है ॥ ५३६ ॥ अनन्तर आस्थापन से शुद्ध और स्नान भोजन से तृप्त ॥ और घुटना टेककर बैठे को स्निग्ध ॥

॥ ५३७॥ लिंग मार्गमें चिकनी सलाई करके उसके अनन्तर नली लगा देवे ॥ धीरे २ घी लगाकर लिंग छिद्रमें छ अङ्गुल करे ॥ ५३८॥ उसके अनन्तर वस्ति को दवावे और धीरे २ नली को निकाल लेवे ॥

ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेह वस्तिक्रमो हितः ॥ ५३९ ॥
स्त्रीणां कनिष्ठिका स्थूल न्नेत्रं कुर्य्यादशाङ्गुलम् ॥
मुद्गप्रवेशयोग्यञ्च योन्यन्तश्चतुरङ्गुलम् ॥ ५४०॥
द्व्यङ्गुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं वियोजयेत् ॥ मूत्र
कृच्छ्र विकारेषु बालानां त्वेक मङ्गुलम् ॥ ५४१ ॥
शनै निष्कम्पमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः ॥ माल-
ती पुष्पवृन्ताभ न्नेत्र मित्युदितं पुनः ॥ ५४२ ॥

भा० उसके अनन्तर स्नेह लौट आनेपर स्नेहवस्ति क्रमहित है ॥ ५३९ ॥ स्त्री यों को चिठली उंगलियों के समान मोटी और दस अंगुल लम्बी नली करे ॥ और मूङ्ग जाने माफिक छिद्र करे तथा उस योनि के भीतर चार अंगुल करे ॥ ५५० ॥ सूक्ष्म नली दो अंगुल मूत्रमार्ग में योजना करे ॥ और मूत्र कृच्छ्र विकारमें बालकों को एक अंगुल ॥ ५४१ ॥ धीरे न कांपता हुवा सूक्ष्म नली को चतुर भीतर करे ॥ चमेली के फूल के डंठल की समान नली इस प्रकार कहा है ५५२॥

सूक्ष्म शब्दाभिधाने बालानां तुतोऽपि नेत्रस्य
सूक्ष्मता बोधनार्थे ॥ योनि मार्गेषु नारीणां स्नेह मात्रा द्वि
पालिकी ॥ मूत्र मार्गे पलोन्मानं बालानां च द्विकार्षिकी
॥ ५४३॥ उत्ताना ये स्त्रिये दद्या दूर्द्धजानु वै विचक्षणः
॥ अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्ता वुत्तर संज्ञिते ॥ ५४४ ॥
भूयोवस्तिं विदथ्याञ्च संयुक्तं शोधनैर्गुणैः ॥ फलव-
र्त्ति विदध्याद्वा योनिमार्गे दृढाम्भिषक ॥ ५४५ ॥

सूत्रे विनिर्मितां स्निग्धां शोधन द्रव्य संयुताम् ॥ दह्य-
माने तथा वस्तौ दद्याद्वस्तिं विशारदः ॥ ५५६ ॥ क्षीर
वृक्ष कषायेण पयसा शीतलेन वा ॥
(दह्यमाने वस्तौ) यस्मिन् स्थाने वस्ति दत्तस्तस्मिन्
वह्यमाने ॥] वस्ति शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणां मार्त्तव
जा रुजः ॥ ५५७ ॥ हन्यादुत्तर वस्तिस्तु नोचिनो मेह
नान् क्वचित् ॥ सम्यग्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रम
मेवच ॥ ५५८ ॥ वस्ते रुत्तर संज्ञस्य समानः स्नेह
वस्तिना ॥

भा० सूक्ष्म शब्द के कहने से बालकों की नली उससे भी सूक्ष्म होनी चाहिये। स्त्रियों को योनि मार्ग में दो पल की स्नेह मात्रा होनी चाहिये ॥ और मूत्र मार्ग में पलभर तथा बालकों को दो तोले की होनी चाहिये ॥ ५५३ ॥ चतुर ऊपर घुटने की हुई उत्तान स्त्री को पिचकारी देवे ॥ उत्तर वस्ति देने पर लौटकर न आवे तो वेद्य ॥ फिर से ॥ ५५४ ॥ शोधन गुणों से युक्त वस्ति को देवे ॥ अथवा योनि मार्ग में दृढफल वत्ति अर्थात वस्ति को देवे ॥ ५५५ ॥ सूत से बनाई हुई चिकनी शोधन द्रव्य से युक्त देवे ॥ तथा पेडू पर जलन होने में चतुर ॥ ५५६ ॥ क्षीर वृक्षों के काढ़े से अथवा शीतल जल से वस्ति देवे ॥ जहां वस्ति दीहै वहां पर जलन होने में। पुरुषों की वस्ति शुक्र की और स्त्रियों की आर्त्तव की पीडा ॥ ५५७ ॥ उत्तर वस्ति नाश करती है येत्त मूत्र मार्ग से और कहीं पर योग्य नहीं है ॥ अच्छी तरह दिये हुवेके लक्षण दोषका क्रमभी ॥ ५५८ ॥ स्नेह वस्ति के समान उत्तर वस्ति कही है ॥

[अथ फलवर्त्तिविधिः।] घृताभ्यक्ते गुदे दिप्त्वा श्ल-
क्ष्णा स्याङ्गुष्ठ सन्निभा ॥ मल प्रवर्त्तिनी वर्त्तिः फल
वर्त्तिश्च सा स्मृता ॥ १ ॥

[अथ नस्य ग्रहण विधिः]

नस्यं तत्कथ्यते धीरै र्नासा ग्राह्यं यदौषधम् ॥ नावनं नस्य कर्मेति तस्य नाम द्वयंमतम् ॥ २॥

(नस्यकर्म नासिकायां कर्म चिकित्सा येन तत् नस्यकर्म)

नस्य भेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ॥ रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं वृंहणं मतम् ॥ ३॥ कफ पित्तानि लध्वंसी पूर्व मध्या पराह्न के ॥ दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्वा वप्युत्कटे गदे ॥ ४॥

(दिनस्य। त्रिधा विभक्तस्य। पूर्व भागादौ।)

भा० अनन्तर फलवर्त्ति अर्थात् बत्ती देना उसकी विधि ॥ अपने अंगुठे के समान मोटी चिकनी बत्ती घृत लगाई हुई गुदा में डाली हुई और मलको निकालने वालीको फलवर्त्ति कहाहै ॥ १॥ [अनन्तर नास लेनेकी विधि ॥ जो औषध नाकसे ग्रहण करने योग्य है उसको धीर नास कहते हैं ॥ नावन और नस्य कर्म येह उसके दोनाम कहे हैं ॥ २॥
नाककी चिकित्सा। जिस्से वोहनस्य कर्महै ॥ नासका भेद दो प्रकार कहा है रेचन तथा स्नेहन ॥ रेचन घटाना कहाहै और स्नेहन बढ़ाना है ॥ ३॥ कफ पित्त वात का नाशक क्रमसे दिनके पूर्वान्ह मध्यान्ह और अपरान्ह ॥ में नास लिया जाता है और उत्कट रोग में रातको भी लिया जाता है॥ ४॥
(तीन प्रकार विभाग किये दिनके पूर्व भागादि में।)

नस्यन्त्यजे द्भोजनान्ते दुर्दिने चोपतर्पितः ॥ तथा नव प्रतिश्यायी गर्भिणी ज्वर दूषितः ॥ अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पीतस्नेहो दकासवः ॥ ५॥ क्रुद्धः शोकाभि भूतश्च तृषार्त्तो वृद्ध बालको ॥ वेगावरोधी श्रान्तश्च स्नातु कामश्च वर्ज्जयेत् ॥ ६॥ (नस्य निषेधः)

भा० भोजनान्तमें दुर्दिनमें नास नलेवे। और तर्पण लिया हुवा। नये नु काम [illegible]

ना गर्भिणी ज्वरसे दूषित ॥ अजीर्णवाला दीहुई बस्तिवाला और स्नेह अव्-क आसव पिया हुवा ॥ क्रुद्ध शोक करके अभिभूत प्यासे पीड़ित वृद्ध बालक ॥ वेगोंको रोकनेवाला थ्रान्त स्नान काम येहभी नास त्याग देवें ॥ ६॥ (नास येह शेष है)

अष्ट वर्षस्य बालस्य नस्य कर्म समाचरेत् ॥ अशीति वर्षा दूर्द्धञ्च नावनं नैव दीयते ॥ ७॥ अथ वैरेचनं नस्यं ग्राह्यं तैले सु तीक्ष्णकैः ॥ तीक्ष्णैं भेषज सिद्धैर्वा स्नेहैः काथैः रसैस्तथा ॥ ८॥ नासिका रन्ध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च विन्दवः॥ प्रत्येकं रेचनं योग्यं मुख्य मध्याल्प मात्रया ॥ ९॥ नस्य कर्म्मणि दातव्यं शाणेकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ हिङ्गुस्या द्यव मात्रन्तु माषिकं सैन्धवं मतम् ॥ १०॥ क्षीरञ्चैवाष्ट शाणं स्या त्पानीयञ्च त्रिकार्षिकम् ॥ कार्षिकं मधुर द्रव्यं नस्य कर्म्मणि योजयेत् ॥ ११॥ अवपीडः प्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ॥

भा० आठ वरसके बालक को नस्य कर्म करावे ॥ अस्सी वरस के ऊपर नास नहीं दियाजाता ॥ ७॥ अनन्तर विरेचन का नास तीक्ष्ण तेलसे लेना चाहिये ॥ अथवा तीक्ष्ण औषध से सिद्ध स्नेह क्वाथ तथा रस इनसे भी ॥ ८॥ दोनों नथनों में आठ छ और चार बूंदें ॥ हर एक रेचन योग्यको उत्तम मध्य अल्प मात्रासे लेना चाहिये ॥ ९॥ नस्य कर्म में तीक्ष्ण औषध चार मासे देना चाहिये ॥ हींङ्ग जव बराबर और एक मासे सैन्धव कहाहै ॥ १०॥ दूध बतीस मासे और पानी तीन तोले ॥ तथा एक तोला मधुर द्रव्य नस्य कर्म में योजना करे ॥ ११॥ अवपीड़ और प्रधमन दो भेद और कहेहैं ॥

शिरो विरेचन स्यार्थे तौ तु देयौ यथा यथम् ॥ १२॥

कल्को कृता दौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः ॥ सोऽवपीडः समुद्दिष्ट स्तीक्ष्णद्रव्य समुद्भवः ॥ १३ ॥ षडङ्गुला द्विवक्त्राया नाड़ी चूर्णान्तया धमेत् ॥ नीक्ष्णं कोल मितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हितम् ॥ १४ ॥ ऊर्द्ध्वजत्रु गते रोगे कफजे स्वर संक्षये ॥ अरोचके प्रतिश्याये शिरः शूले च पीनसे ॥ १५ ॥ शोफापस्मार कुष्ठेषु नस्यं वैरेचनं हितम् ॥ भीरुस्त्री कृश बालानां नस्यं स्नेहेन शस्यते ॥ १६ ॥ गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे ॥ मनो विकारे कृमिषु युज्यते चाव पीडिनम् ॥ अत्यन्तोत्कट दोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ॥ चूर्णं प्रधमनं धीरै स्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ १७ ॥ [नस्यं वैरेचनं यथा] नस्यं स्याद्गुड़ शुण्ठीभ्यां पिप्पली सैन्धवेनवा

भा० उनको शिरो विरेचन के अर्थ देने चाहियें ॥ १२॥ कल्क किये हुवे औषध के निचोड़नेसे जो निकला हुवा रसहै ॥ तीक्ष्ण द्रव्य से निकला वोह अवपीड़ कहाहै ॥ १३ ॥ छ अंगुल की दो मुखवाली जो नल्नी है उससे चूर्ण डालकर फूंके ॥ वोह चूर्ण कोल प्रमाण मुखके वातसे धोंकना हित होता है ॥ १४ ॥ जत्रुके ऊपर के रोग में कफके रोग में स्वर क्षय में ॥ अरुचि में जुकाम में शिर के शूलमें पीनस रोगमें ॥ १५ ॥ सूजन मिरगी कोढ़ इनमें वैरेचन नस्य हितहै ॥ भीरु कृश बालक इनको नास चिकनाई के साथ प्रशस्त है ॥ १६ ॥ गलरोग में सन्निपात में निद्रामें विषमज्वर में ॥ चित्तविकार में कृमि में अवपीड़क नस्य अच्छाहै ॥ १७ ॥ विष संज्ञ अत्यन्त उत्कट दोष में भी दिया जाता है ॥ धीर के द्वारा फूकना जो है वोह खूब तीक्ष्ण का है ॥ १८ ॥ वैरेचन नास जैसे । गुड़ सोंठ नास है अथवा पीपल सेन्धव ॥

॥ जलपिष्टेन कर्णाक्षि नासामूर्द्ध भवा गदाः ॥ १९ ॥

मन्याहनुगलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः॥ मधूक सार कृष्णाभ्यां वच मरिच सैन्धवैः॥२०॥ नस्यं कोष्णाम्भसा पिष्टं दद्यात् संज्ञा प्रबोधनम्॥ अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपाने ऽपतन्त्रके॥२१॥ सैन्धवं श्वेत मरिचं सर्षपा कुष्ठमेवच॥ बस्त मूत्रेण संपिष्टं नस्यन्तन्द्रा निवारणम्॥२२॥

(श्वेत मरिचं सहिजन का बीजं)

रोहितस्य च पित्तेन भावितं मरिचं वचा॥ कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः॥२३॥ अथ बृंहण नस्यस्य कल्पना कथ्यते ऽधुना॥ मर्षश्च प्रतिमर्षश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ॥२४॥

भा० इनको जलसे पीसके नास लेनेसे कान आंख नाक इनके ऊर्द्ध भव रोग॥१९॥ और मन्याहनु गला इनमें हुवे तथा भुजा और पीठ के रोग नाश होतेहैं॥ महुवे का साल पीपल और वच मिरच सैन्धव इनको॥२०॥ सील गरम जलसे पीसकर नास देवे यह संज्ञा प्रबोधन है॥ अपस्मार तथा उन्माद सन्निपात अपतन्त्रक इनमें॥२१॥ सेन्धव सफेद मिरच सरसों कूट॥ इनको बकरी के मूत्रसे पीसकर नास तन्द्रा का दूर करनेवालाहै॥ २२॥ सहिंजन का बीज। रोहु मछली के पित्तेसे भावना दियाहुवा मरिच वच। कायफल इनके चूर्णको बुद्धिवान् के द्वारा प्रधमन देना चाहिये॥ २३॥ अनन्तर बृंहण नासकी कल्पना कहताहूं॥ स्नेहनमें मर्श और प्रतिमर्श दो भेद कहे हैं॥२४॥

मर्षस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृता ऽष्टभिः॥ मध्यमा तु चतुःशाणैः हीना शाण मिता मता॥२५॥ एकैकास्मिंस्तु मात्रेयं देया नासा पुटे बुधैः॥ मर्षस्य हि त्रिविलं वा भीक्ष्य दोष बला-

वलम् ॥ २६ ॥ एकान्तरं द्व्यन्तरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ (एकान्तरम् एकं दिनमन्तरं नस्य शून्यं यत्र तदेकान्तरम् ॥) त्र्यहं पञ्चाहमथवा सप्ताहं वा सुयन्त्रितः ॥ (क) अथवा त्र्यहम् । त्रीण्यहानि यावत् । प्रतिदिनं एवं पञ्चाहं सप्ताहञ्च । सुयन्त्रितः । सावधानः । यथाऽच्छिक्कं न भवति । मर्मे शिरो विरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः ॥ दोषान् क्लेशान् तया चैव विज्ञेया स्ता यथाक्रमम् ॥ ॥ २७ ॥ दोषोत्क्लेश निमित्तासु युञ्ज्याद्वमन शोधनम् ॥ (वमनरूपं शोधनम् ।)

भा० मर्श की नर्यणी मुख्यमात्रा आठ शाण से कहीहै ॥ मध्यम चार शाण की और हीन चार माशेकी कहीहै ॥ २५ ॥ एक २ नासा पुट में इस मात्राके देना चाहिये ॥ मर्शकी दो तीनवार दोषके बलाबलको देखकर ॥ २६ ॥ एक दिन बीचमें देकर अथवा दो दिन बीचमें देकर बुद्धिवान नास देवे ॥ एक दिन बीचमें देनाहै । जिस्से । तीनदिन पांचदिन अथवा सातदिन सावधान होके देवे ॥ (क) अथवा तीन दिन । प्रतिदिन ऐसेही पांच दिन अथवा सात दिन । सावधान । जैसे वे छींक न होवे । मर्म के शिरो विरेकमें विविध रोग कहेहैं ॥ दोषके उत्क्लेश से और क्षय से वोह यथा क्रम जानने चाहियें ॥ २७ ॥ दोषोत्क्लेश निमित्त में वमन शोधन योजना करे ॥ (वमन रूप शोधन)

अथ क्षय निमित्तासु यथास्वं बृंहणं हितम् ॥ शिरो नासादि रोगेषु सूर्य्यावर्त्तार्द्ध भेदके ॥ २८ ॥ दन्त रोगेऽबले हीने मन्यावाह्वंशसे गदे ॥ मुखशोषे कर्णनादे वात पित्त गदे तथा ॥ २९ ॥ अकाल प-

अकालपलिते चैव केशश्मश्रु प्रपातने ॥ पूज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ॥ ३०॥

[बृंहणं नस्यं यथा] सशर्करं पयः पिष्टं भृष्टमाज्येन कुङ्कुमम् ॥ नस्य प्रयोगतो हन्या द्वात रक्त भवारुजः ॥ ३१॥ भ्रूशाङ्खाक्षि शिरः कर्ण सूर्य्यावर्त्तार्द्ध भेदकान् ॥ नस्यं स्यादणु तैलेन तथा नारायणेन वा ॥ ३२॥ माषादिना वा सर्पिर्भिस्तद्भेषज साधितैः ॥

भा॰ और क्षय निमित्त में बृंहण हितहै ॥ शिर नाक नेत्र इनके रोगों में और सूर्य्यावर्त्त अर्द्ध भेदक इनमें ॥ २८ ॥ दंत रोग में अवल में मन्या वाङ्कचा इनके रोगों में ॥ मुखरोग शोष में कर्णनाद में वात पित्त के रोग में तथा ॥ २९॥ अकालमें सिरके बाल पकनेमें केश और दाढी इनके गिर जाने में ॥ बृंहण नास हित है। अथवा मधुर द्रव और स्नेहसे हितहै ॥ ३०॥ बृंहण नस्य जैसे । शर्करा के सहित दूध और घृतसे भूनी ऽई केसर पीस के ॥ नस्य प्रयोग से वात रक्त की पीडा दूर होती है ॥ ३१॥ भंव शंख नेत्र शिर कान सूर्य्यावर्त्त अर्द्धभेदक इनको भी नाश करता है ॥ अणु तेलसे अथवा नारायण तेलसे नास देवे ॥ ३२॥ माष आदि करके अथवा उन औषधों से साधित घृत से नास देवे ॥

भा० अणु तैल सुश्रुतने कहाहै ।] (क) जैसे तिल पेरने उपकरण अर्थात् को ल्हू आदि के उनको लाकर जिनसे बहुत दिनतक तैल पेला गयाहो उनको टुकड़े २ करके ऊखलों कूट कर कढ़ाई में पानी से भिगोकर काढ़ा करे उ- स्से तैल निकलता है उस तैलको हाथ से जलमें से निकालकर वात नाशक औषध कल्क से पकावे वोह अणुतैल है वोह वातरोग का नाशक है ॥

तैलं कफे स्यात्तुते च केवले पवने तथा ॥ दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥ ३३ ॥ माषात्मगुप्तरास्नाभिर्वलारूवुकरौहिषैः ॥ कनोऽश्वगन्धया क्वाथो हिङ्गु सैन्धवसंयुतः ॥ ३४ ॥ कोष्णो नस्य प्रयोगेण पक्षाघातं सकम्पनम् ॥ जयेदर्दितवातञ्च मन्यास्तम्भापवाहकौ ॥ ३५ ॥ प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्वित्रिविन्दु मिता मता ॥ प्रत्येकशो नासिकया स्नेहनेऽति विनिश्चितम् ॥ स्नेह ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः ॥ ३६ ॥ तर्ज्जनीयं स्रवेद्विन्दुं सा मात्रा विन्दु संज्ञिता ॥

भा० तैल कफमे और वातमें भी तथा केवल वातमें भी नास देवे ॥ औ पित्तमें घृत मज्जा को भी देवे ॥ ३३ ॥ उड़द के वांच रास्ना वरियारा अंडी राम कपूर ॥ असगंध इनका बनाया काढ़ा हींग सैन्धवके साथ ॥ ३४ ॥ गरम सील नासके प्रयोग से सकंपन पक्षाघातको जीतता है ॥ और अर्दित वात मन्यास्तंभ अपवाहक ॥ ३५ ॥ इनको भी नाश करता है प्रतिमर्श की मात्रा दो विन्दु कही है ॥ हर एकसे नासिका के द्वारा स्नेहन में अति विनिश्चित है ॥ स्नेहमें ग्रन्थि द्वय तक डूबी और फिरसे निकाली हुई इस्से ॥ ३६ ॥ जो टपकानी है तर्जनी की बून्द उसमात्रा की विन्दु संज्ञा है ॥

एवं विधै विन्दुसंज्ञे दशाभिः एराण उच्यते ॥ ३७ ॥

सदैवो मर्शः नस्येषु प्रतिमर्शो द्विबिन्दुकः॥समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ता श्चतुर्दश ॥ ३८॥ प्रभाते दन्तकाष्ठान्ते गृहा न्निर्गमने तथा ॥ व्यायामाध्व व्यवायान्ते विण्मूत्रान्ते ऽञ्जने कृते ॥ ३९॥ कवला न्ते भोजनान्ते दिवास्वप्नो त्थिते तथा ॥वमनान्ते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते ॥ ४०॥ ईषदुच्छिङ्क नात् स्नेहो यथा वक्त्रं प्रपद्यते ॥ नस्ये निषिक्तन्तं विन्द्यात् प्रतिमर्शः प्रमाणतः ॥ ४१ ॥(साध्वायुक्तम्)

भा० इस प्रकार की आठ बून्दोंको ग्रहण कहते हैं ॥ ३७॥ वोह मर्श नासमें देना चाहिये और प्रतिमर्श दो बून्दकी होती है ॥ प्रति मर्श के समय पंडितों ने चौदह कहे हैं ॥ ३८ ॥ सवेरे दातवन के बाद घरसे निर्गमनमें तथा ॥ कसरत मार्ग चलना इनमें और मैथुन के अन्तमें मल मूत्रके अन्तमें अंजन करने पर ॥ ३९॥ कवल के अन्तमें भोजन के अन्तमें दिनमें सोके उठनेपर तथा ॥ वमन के अन्तमें तथा सायंकाल में प्रतिमर्श देवे ॥ ४०॥ थोड़ेसे छींकने से स्नेह जैसे मुखमें आजाता है ॥ नासमें दिये द्रवे उसको प्रमाण से प्रतिमर्श जाने ॥ ४१॥ (माध्वयुक्त ।

उच्छिष्टन्न पिबेचैन न्निष्ठीवे न्मुखमागतम्॥ (उच्छिष्टम् । नस्यावशिष्टं) क्षीणे तृष्णास्य शोषा र्त्ते बाले वृद्धे च पूज्यते ॥ ४२॥ प्रतिमर्शान्न जायन्ते रोगाश्चै वोर्द्ध जत्रुजाः॥ वली पलित नाशश्च दृढ मिन्द्रियजं भवेत् ॥ ४३॥ बिभीत निम्ब गम्भारी शिवा पीलुश्च काकिनी ॥ एकैक तैल नस्ये न पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ अथ नस्य विधिं वक्ष्ये

नस्य ग्रहण हेतवे ॥ देशे वातरजो मुक्ते कृतदन्त निघ-र्षणम् ॥ ४५ ॥ विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभाल गलं तथा ॥ उत्तान शायिनं किञ्चित् प्रलम्ब शिरसं नरम् ॥४६॥ आस्तीर्ण हस्तपादञ्च वस्त्राच्छादित लोचनम् ॥ समुन्नामित नासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ॥ ॥४७॥ कोष्णेनाच्छिन्न धारेण हेमतारादि शुक्तिभिः ॥ शुक्त्या वा यंत्र युक्त्या वा स्रोतैर्वा नस्य माचरेत् ॥ ॥ ४८ ॥ (स्रोते वस्त्रे तदुपलक्षिते स्तुलेरपि)

भा० उच्छीष्ट की नपीवे और मुखमें आयेहुये को थूंक देवे ॥ (नासकी बाक़ी) क्षीणमें तृषामें मुखशोष से पीड़ित में वृद्ध को बालकको भी प्रशस्त है ॥ ४२ ॥ ऊर्द्ध जत्रु के रोग प्रतिमर्श से नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ और झुर्रियां बालोंकी सुफ़ैदी इनका नाशक तथा इन्द्रियों को बल होता है ॥ ४३॥ बहेड़ा नीम कुम्हेर हड़ तिसोढ़ा कोयाठोढ़ी ॥ इनके एक २ के तेलकी नास से बालों की सफ़ेदी अवश्य नाश होती है ॥ ४४ ॥ [अनन्तर नास ग्रहण के हेतु नासकी विधि कहते हैं ॥]: वायु और धूल से रहित देशमें दातुन किया हुवा ॥ ४५ ॥ धूम्र पानसे विशुद्ध हुवा माथा और गले में चिकनाई लगाया हुवा ॥ चित्त लेटा हुवा कुछ सिरको नीचे किये हुवे ऐसे मनुष्य को ॥ ४६ ॥ हाथ पांव फैलाकर कपड़े से नेत्र ढक के ऊपर नाक के अग्रको करके वैद्य नास को डाले ॥ ४७ ॥ सील गरम बराबर धारसे सोना चांदी की हुतुही से ॥ अथवा सीपसे अथवा जिसे युक्तिके साथ फोवे से नास देवे ॥ ४८ ॥ (वस्त्र उसकरके उपलक्षित रुईसे भी)

नस्ये ब्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् ॥ न कुप्येन्न प्रभाषेत नो च्छिंकेन्न हसे तथा ॥ ४९ ॥ एतैर्हि विहितः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते ॥ ततः कास प्रतिश्याय शिरोऽक्षि गद सम्भवः ॥ ५० ॥ शृङ्गाट

कमभिव्याप्य स्थापयेन्न गिलेद् द्रवम् ॥ पञ्च सप्त दशौ वस्यमा, त्रा स्नेहस्य धारणे ॥ ५१॥ उपविश्या-थ निष्ठीवे न्नासा वक्त्रागतं द्रवम् ॥ वाम दक्षिण पार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्सं मुखेन हि ॥ ५२॥ नीते नस्ये मनस्तापं रजः क्रोधञ्च सन्त्यजेत् ॥ शयीत निद्रा न्त्यक्त्वाच प्रोत्तानो वाक् शतन्नरः ॥ ५३॥

भा० नास डालने के समय में शिरको न हिलावे ॥ न गुस्सा करे न बोले न छींके न हंसे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार किया हुवा नास स्नेह भीतर नहीं जाता ॥ उसे खांसी जुकाम सिर नेत्र इनके रोग होनेहैं ॥ ५० ॥ शृङ्गाटक में फैला कर स्थापन करे द्रवको निगले नहीं ॥ पांच सात दश मात्रा तक स्नेह धारण करे ॥ ५१ ॥ नाक से मुखमें आयेहुवे द्रवको बैठके थूंके ॥ बांयें दहने तरफ थूके और सामने न थूंके ॥ ५२ ॥ नास लेने पर मनस्ताप धूल और क्रोध इनको त्याग देवे लेटे नींद न लेवे तिन सौ की गिन्ती तक ठहरे ॥ ५३॥

तथा शिरो विरेकान्ते धूमो वाक्यलोहितः ॥ नस्येत्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः ॥ ५४ ॥ शुद्धहीनाति योगा हि विज्ञेया शास्त्र चिन्तकैः ॥ लाघवं मल संशुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ॥ ५५॥ चित्तेन्द्रिय प्रसादश्च शिरसः शुद्धि लक्षणम् ॥ कण्डू प्रदेहो गुरुता स्रोतसां कफ संस्रवः ॥ ५६ ॥ मूर्द्धि हीन विशुद्धे स्तु लक्षणं परिकीर्त्तितम् ॥

(हीन विशुद्धे हीन नस्ये न विशुद्धेः)

मस्तु लुङ्गागमो वात वृद्धि रिन्द्रिय विभ्रमः ॥ शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ ५७ ॥

भा॰ तथा शिरो विरेचन के अन्तमें कुल्का अथवा कबल दिनाहै ॥ नासमें क हे ऊवे तीन लक्षण प्रयोगसे ॥ ५४॥ शुद्धि हीन अतियोग शास्त्रके चिन्तक जाने ॥ हलकापन मलकी अच्छीतरह शुद्धि ॥ सोतोंके रोगका नाश ॥ ५५ चित्त इन्द्रियकी प्रसन्नता येह शिरके शुद्धिका लक्षण है ॥ शरीरमें खुन ली भारीपन सोतोंसे कफका स्राव ॥ ५६॥ शिरकी हीन शुद्धिका येह लक्ष ण कहाहै ॥ हीन नस्यसे विशुद्धिका। मग़ज़ का निकलना वातकी वृद्धि इन्द्रिय भ्रम ॥ शिरका सूनापन भी येह लक्षण शिरके अधिक विरेचनमें होते हैं ॥ ६७ ॥

मस्तुलुङ्गम् । मस्तकान्तः स्नेहः इन्द्रिय विभ्रमः। इन्द्रियाणामन्यथा विषय ग्रहणः। हीनाति शुद्धे शिरसि कफ वातघ्न माचरेत् ॥ तत्र हीनेन नस्येन शुद्धे वातघ्न माचरेत् ॥ ५८ ॥ सम्यक विशुद्धे शिरसि सर्प्पि र्नस्येन दीयते ॥ कफ प्रसेकः शिरसो गुरुते न्द्रिय विभ्रमः ॥ ५९ ॥ लक्षणन्तदति स्निग्धे तत्र रूक्षं प्रदापयेत् ॥ भोजयेच्चा नभिष्यन्दि नस्येवातिकं मा दिशेत् ॥ ६०॥ वातिकम् । वातलमुपदिशेत् ॥

इति पञ्च कर्म्माणि ॥

भा॰ सिरके भीतर का गूदा। इन्द्रियोंका अन्यथा विषय ग्रहण। हीन औ र अतिशुद्ध शिरमें कफ वात नाशक उपाय करे ॥ उसमें हीन नस्यसे शुद्ध में वात नाशक उपायकरे ॥ ५८ ॥ अच्छी तरह शुद्ध ऊवे शिरमें नाससे घृत दियाजाता है ॥ कफ स्राव शिरमें भारीपन इन्द्रिय भ्रम ॥ ५९ ॥ येह लक्षण स्निग्धमें होते हैं। उसमें रूक्ष औषध देवे ॥ और अनभिष्यन्दि भो जन करावे। और नासमें वातल वस्तु उपदेशकरे ॥ ६० ॥ वातल उप देश करे। इति पञ्च कर्म्म।

अथ धूम पान विधिः।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहण स्तथा ॥ रेचनः

कासहा चैव वामनो व्रण धूमनः ॥ ६१॥ शामनस्य तु पर्य्यायो मध्यः प्रायोगिकस्तथा ॥ वृंहणस्य च पर्यायो स्नेहनो मृदुरेव च ॥ ६२॥ रेचनस्यापि पर्यायो शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥ अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रान्तो भीतश्च दुःखितः ॥ ६३॥ दत्त-वस्ति विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पिपासितश्च दाहार्त्तस्तालुशोषी तथोदरी ॥ ६४॥ शिरोऽभितापी तिमिरी च्छर्द्याध्मान प्रपीड़ितः ॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्त्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी ॥ ६५॥ रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृत क्षीर क्षौद्र घृतासवः ॥ भुक्तान्न दधि मत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ ६६॥ अकाले चाति पीतश्च धूमः कुर्य्यादुपद्रवान् ॥

भा० अनन्तर धूम्रपान विधिः ॥ धूम छ प्रकारका कहाहै । शामन वृंहण तथा ॥ रेचन कास नाशक वमन व्रण धूमन येह है ॥ ६१॥ शामनका पर्य्याय मध्य तथा प्रायोगिक है ॥ और वृंहण का पर्य्याय स्नेहन तथा मृदु है ॥ ६२॥ रेचन का पर्य्याय शोधन और तीक्ष्ण है ॥ धूमके अयोग्य येहै ॥ श्रान्त भीत दुःखित ॥ ६३॥ वस्ति दिया ज़वा विरेचन लिया ज़वा रातमें जागा ज़वा ॥ प्यासा दाहसे पीड़ित तालु शोषवाला तथा उदरवाला ॥ ६४॥ शिरमें अभितापवाला तिमिर रोगवाला और वमन आध्मान इनसे पीड़ित ॥ उरक्षत वाला प्रमेह से पीड़ित पांडुरोग वाला गर्भिणी ॥ ॥ ६५॥ रूक्ष क्षीण दूध मधु घृत आसव इनको पीया ज़वा ॥ अन्न दही मछली इनको भोजन किया ज़वा और बाल वृद्ध दुबला ॥ ६६॥ अकालमें बज़त पीया ज़वा धूम उपद्रवों को करता है ॥

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जन तर्पणम् ॥ सर्पि

रिक्षु रसं द्राक्षां पयो वा शर्करम्बु वा ॥ मधुराम्लौ रसौ वापि वमनाय प्रदापयेत् ॥ ६८ ॥ धूमस्तु द्वादशात् वर्षात् गृह्यते शीतकात् न च ॥ कास श्वास प्रतिश्याया मन्याहनु शिरोरुजः ॥ ६९ ॥ वातश्लेष्म विकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः ॥ धूमोपयोगा त्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रिय वाङ्मनः ॥ ७० ॥ दृढकेश द्विजश्मश्रुः सुगन्धि वदनो भवेत् ॥ धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्व्विका ॥ ७१ ॥ कनिष्ठिका परीणाहा राजमाषा गमान्तरा ॥ ७२ ॥

[राजमाषागमः सुभक्ता नाडी]

भा॰ उससें घृतपान इष्ट है और नास अंजन तर्पण इष्ट है ॥ ६७ ॥ ईख का रस दाख दूध अथवा शर्बत ॥ अथवा मधुर अम्लरस वमनके अर्थ देवे ॥ ६८ ॥ धूम बारह वरस से ग्रहण किया जाता है और उस्सी से नहीं ग्रहण कियाजाता ॥ कास श्वास जुकाम मन्याहनु शिर इनकी पीड़ा ॥ ६९ ॥ वात कफ के रोग इनको अच्छी तरह योजना किया धूम नाश करता है ॥ धूम के उपयोग से पुरुष प्रसन्न इन्द्रिय वाणी और मन होता है ॥ ७० ॥ और केश दान्त दाड़ी येह दृढ़ होते हैं ॥ उसमें धूंवेंकी नली तीन टुकड़े का वा तीन पोर वाली ॥ ७१ ॥ चिटली उंगली के समान मोटी और बड़ा उड़द जाने मा फिक छिद्र वाली होनी चाहिये ॥

धूम नाड़ी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणोऽङ्गुलैः ॥ ७३ ॥ चत्वारिंशन्मिते स्तद्वद् द्वात्रिंश द्विस्नेहे मता ॥ (मृदौ बृंहणे) नीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशोन्मिते ॥ (तीक्ष्णे रेचने) दशाङ्गुले वामनीये तथा स्याद्व्रण नाडिका ॥ (तथा दशाङ्गुलमिता)

भा० रोगियों की शमन में चालीस अंगल लंबी धूवेकी नली होतीहै ॥ वैसेही बृंहण में बत्तीस उंगलकी कहीहै ॥७२॥ बृंहण में। रेचन न चौबीस अंगल खास नाशक में सोलह अंगल की नली कही है ॥ (रेचन में) वामनीय में दस अंगल और दस उंगलकी व्रणकी नली होती है ॥ (तथा व्रणाङ्गुल।)

कलाय मण्डलस्थूला कुलस्था गम रन्ध्रका ॥ अथै पिदां प्रलिम्पेत्तु सुश्लक्ष्णां द्वादशाङ्गुलाम् ॥ (इषिकाम् शरकाण्डम् ॥) धूम द्रव्येन कल्केन-लेपश्चाष्टाङ्गुलः स्मृतः ॥ कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा च्छाया शुष्कञ्च कारयेत् ॥ ७३॥ इषिका मपनी याथ स्नेहाक्तां वर्त्तिमादरात् ॥ अङ्गारे दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रन्ध्रके ॥ ७४॥ वदनेन पिबेद्धूमं व दनं नैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखे नैव वमेत्सुधीः ॥ ७५॥ शराव संपुटे क्षिप्त्वा कल्कम ङ्गार दीपिताम् ॥ छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥ ७६॥ एलादि कल्कं शमने स्निग्धं स-र्जरसं मृदौ ॥ रेचने तीक्ष्णं कल्कञ्च श्वासघ्न तु द्र कोपशम् ॥ ७७॥

भा० मटर के समान मोटी और कुलथी जाने लायक छिद्रवाली। अनन्तर बारह उंगल के माफ सरकंडे को। धूम द्रव्य के कल्क से आठ उंगल लेप कहा है ॥ तोलेभर कल्क का लेप करके छायामें सुकवावे ॥७३॥ सरकंडे को निकालकर स्नेह युक्त बत्ती को ॥ जलाके नली के छिद्र पर धरके ॥ ७४॥ मुख से धूवां पीवे और मुखसेही छोड़े ॥ और उसके अनन्तर नाससे पीकर मुखसे ही निकाले ॥ ७५॥ शराव संपुट में अंगारे से दीपित कल्क को डा-

ले कर नलीमें छिद्रमें लगाकर व्रणको उसी धूवेंसे धूपदेवे ॥ ७६॥ शमन में दलायची आदिका कल्क और बंहण में राल चिकनाई ॥ रेचन में दस्तावर कल्क कास नाशक में कटेली मरिच ॥ वमन में स्नायु चर्म्म से युक्त धूम पान देवे ॥ व्रणमें नीम वच आदि सब धूपन प्रशस्त है ॥ ७७॥

वमने स्नायु चर्माढ्यं दद्याद्धूमस्य पानकम् ॥ व्रणे निम्ब वचाद्यञ्च धूपनं संप्रशस्यते ॥ ७७ ॥ अन्येऽपि धूमा गेहेषु कर्त्तव्या रोग शान्तये ॥ [स यथा] मयूर पिच्छं निम्बस्य पत्राणि वृहती फलम् ॥ मरिचं हिङ्गु मांसी च वीजं कार्पास सम्भवम् ॥ ॥७८॥ छाग रोमाहि निर्मोको विष्ठा वैडालिकी तथा ॥ (अहि निर्मोकः सर्पकञ्चुकः) गज दन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद् घृत विमिश्रितम् ॥ गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बाल ग्रहान् हरेत् ॥८०॥ पिशाचान् राक्षसान् हत्वा सर्व्वज्वर हरं भवेत् ॥ [इत्यपराजितो धूमः।]

भा० रोग शान्तिके वास्ते औरभी धूवें घरमें करे ॥ वोहजैसे । मोर पंख नीम के पत्ते दोनों कटेली ॥ मरिच हीङ्ग जटा मासी कपास के बीज ॥७८॥ बकरे के रोवें सांपकी कैंचली बिल्लीकी विष्टा ॥ हाथीदन्त इनका चूर्ण थोड़े से घृतको मिलाके ॥ घरमें धूवां दिया हुवा सब बाल ग्रहोंको हरता है ॥८०॥ पिसाच और राक्षसों को मारके सबज्वरोंका नाशक है ॥ इति अपराजितो धूपः ॥

मनस्तापं रजः क्रोधो धूमपाने निवारयेत् ॥ नेत्राणि धातु जान्याहु र्नलं वंशादि जान्यपि ॥८१॥

[अथ गण्डूष कवल प्रतिसारण विधिः।]

तत्र गण्डूष कवल प्रतिसारणानां भेदकानि लक्षणा न्याह ॥] [तत्र गण्डूषः] स्नेह क्षीर कषायादि द्रवैः सम्पूर्ण माननम् ॥ आपूर्य्य स्थीयते तावद्विधि गण्डूष धारणे ॥ ८२ ॥ कफ पूर्णस्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ॥ नेत्र घ्राण स्रुति र्य्योर्व तावद्गण्डूष धारणम् ॥ ८३ ॥ गण्डूषान् सुस्थितः कुर्य्यात् स्विन्नभाल गलादिकः ॥ मनुष्यस्त्रीं स्तथा पञ्च सप्तवा दोष-नाशनात् ॥ ८४ ॥

गलादिक इत्यादि शब्देन गण्डकपोलौ गृह्येते सुश्रु-तोक्तत्वात् ॥ चतुर्विधः स्याद्गण्डूषः स्नेहनः शमनस्तथा ॥ शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तादृशः ॥ ८५ ॥

भा० मनका सन्ताप धूल क्रोध इनको धूम पानमें न करे ॥ तसीं धातुवोंकी अथवा बास आदिक की भी कहीहै ॥ ८१ ॥ अनन्तर कुल्ला कवल और मंजन इनकी विधि ॥ लक्षणोंको कहतेहैं

संपूर्ण मुख भरके ॥ तब तक रक्खा जाताहै गण्डूष धारण में ॥ ८२ ॥ तब तक में कफ से पूर्ण मुख होवे । और दोषका छेदन जब तक में हो ॥ तथा आंख नाक को बहना जब तक में हो तबै तक कुल्ले को धारण करना चाहिये ॥ ८३ ॥ स्वस्थ शिर गला आदिकमें चिकनाई लगाकर कुल्लोंको करे ॥ मनुष्य तीन तथा पांच सात दोष नाशन तक करे ॥ ८४ ॥ गलादिक इत्यादि शब्दसे गण्ड कपोल लियेहैं । सुश्रुत के कहने से । चार प्रकारको गण्डूष होताहै ॥ स्नेहन तथा शमन ॥ शोध और रोपण वैसेही कवल भी। ॥ ८५ ॥

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादु शीतैः प्रसादनः ॥

पित्ते कट्वम्ल लवणै रूक्षैः संशोधनङ्कफे ॥ ८६॥ कषाय तिक्त मधुरैः कटूष्णैः रोपणो व्रणे ॥ दद्याद्द्वेषु चूर्णञ्च गण्डूषे कोलमात्रकम् ॥ ८७॥ कर्षप्रमाणः कल्कश्च कवले दीयते बुधैः ॥ धार्यन्ते पञ्चमा द्वर्षा द्गण्डूषाः कवलादयः ॥ ८८॥ व्याधेरपचयस्तुष्टि वैशद्यं वक्त्र लाघवम् ॥ इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डूषे विधृते भवेत् ॥ ८९॥ हरेदास्यस्य वैरस्यं शोषपाकं व्रणं तृषाम् ॥ दन्त चालञ्च गण्डूषो वैशद्यं तु करोति हि ॥ ९०॥

[अथ कवलः] वात पित्त कफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे ॥ अर्द्धं निःक्षिप्य संचर्व्य निष्ठीवे त्कवले विधिः ॥ ९१॥ कवलः कुरुते काङ्क्षा म्भक्ष्येषु हरते कफम्।

भा० वातमें स्निग्ध उष्णसे स्नैहिक गण्डूष दियाजाताहै ॥ और पित्तमें मधुर शीतसे प्रसादन ॥ तथा कफमें कटु अम्ल लवण और रूक्ष इन से शोधन करे ॥ ८६॥ कषाय तिक्त मधुर से कटु उष्ण रोपण व्रणमें करे ॥ व्रण गण्डूषमें चूर्ण आठ मासे देवे ॥ ८७॥ एक तोला कल्क कवलमें दिया जाताहै ॥ पांच बरस से गंडूष कवलादिक लिये जातेहैं ॥ ८८॥ रोग का घटना प्रसन्नता वैशद्य मुखमें हलका पन ॥ इन्द्रियों की प्रसन्नता गण्डूष धारण में येह लक्षण होतेहैं ॥ ८९॥ मुख की विरसता शोष पाक व्रण तथा ॥ दांत का हिलना इनको दूर करता है ॥ और गण्डूष वैशद्य कोकरता है ॥ ९०॥ [अनन्तर कवल] वात पित्त कफ नाशक द्रव्य का कवल मुखमें ॥ आधा डालकर और चबा के उसको थूंके येह कवल की विधि ॥ ९१॥ कवल भोजनमें इच्छाको करताहै और कफको हरता है ॥

तृष्णां शोषञ्च वैरस्यं दन्त चालञ्च नाशयेत् ॥ ९२॥

[अथ प्रतिसारणम्] दन्त जिह्वा मुखानां यच्चूर्ण कल्का व लेहकैः ॥ शनैर्घर्षणं मङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ ९३ ॥ वैरस्यं मुखदौर्गन्ध्यं मुखशोकं तथा तृषाम् ॥ अरुचिर्दन्त पीडाञ्च निहन्ति प्रति सारणम् ॥ ९४ ॥ हीने जाड्य कफोत्क्लेशा-वरस ज्ञान मेवच ॥ अति योगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा वमिः क्लमः ॥ ९५ ॥ [अथ स्वेदविधिः।]

स्वेद श्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्म स्वेद संज्ञितः ॥ उपनाहो द्रवः स्वेदः स्वर्वे वातार्त्ति हारिणः ॥ ९६ ॥ तापस्वेद उष्मस्वेदश्च ताभ्यां संज्ञितः [उपनाहःस्वेदः]

भा० तथा तृषा शोष विरसता दांतों का हिलना इनको नाश करता है ॥ ९२ ॥ [अनन्तर मञ्जन ॥ दांत जीभ मुख इनको जो चूर्ण कल्क अवलेह इनसे ॥ धीरे २ अंगली से घिसना उसको प्रतिसारण कहाहै ॥ ९३ ॥ विरसता मुखकी दुर्गन्धि मुख शोष तथा तृषा ॥ अरुचि दांतों की पीड़ा इन को प्रतिसारण नाश करताहै ॥ ९४ ॥ हीनमें जड़ता कफ का उत्क्लेश रस का न जानना होता है ॥ और अतियोग से मुखमें पाक शोष तृषा वमन क्लम ॥ ९५ ॥ होताहै ॥ [अनन्तर स्वेद विधि ।]
स्वेद चार प्रकारका कहाहै । ताप उष्म स्वेद संज्ञित । उपनाह द्रव स्वेद येह सब वातकी पीड़ाके नाशक हैं ॥ ९६ ॥ ताप स्वेद उष्म स्वेद उनक एके संज्ञा किया गया ॥ [उपनाह स्वेद ।]

स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ ॥ उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसङ्गे द्रवोहितः ॥ ९७ ॥ (द्रवोहि द्रवस्वेद) महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान्स्मृतः ॥ दुर्बले दुर्बल स्वेदो मध्यमे म

ध्यमो मतः ॥ ९८॥ बलासे रूक्षणः स्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले ॥ (रूक्षणः रूक्षयतीति रूक्षणः नन्द्यादित्वाल्लु प्रत्ययः।) कफ मेदो वृते वाते कोष्णं गेहं रवेः करान् ॥ नियुद्धं मार्ग गमनं गुरु प्रावरणं ध्रुवम् ॥ ९९ ॥ चिन्ता व्यायाम भारांश्च सेवेतामय मुक्तये ॥ येषां नस्यं प्रदातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम् ॥ १००॥ शोधनीयाश्च ये केचित् पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः॥ स्वेद्या ऊर्द्धन्तरयोऽपीह भगन्दर्य्यर्शसस्तथा ॥ १०१ ॥ अश्मर्य्यां चातुरो जन्तुः शामये च्छस्त्र कर्मण ॥

भा० ताप और उष्मज स्वेद प्रायः कफ नाशक कहेहैं ॥ उपनाह वात नाशक है पित्त संङ्गमें द्रव हितहैं ॥ ९७॥ द्रव स्वेद। महामल पीन महा रोग में महान् स्वेद कहा है ॥ दुर्बल को दुर्बल स्वेद और मध्यम को मध्यम कहाहै ॥ ९८ ॥ कफ में रूक्षण स्वेद और कफ वातमें रूक्ष स्निग्ध स्वेद कहाहै ॥ जो रूक्षकरै वोह रूक्षण नन्द्यादित्व से ल्यु प्रत्यय होता है। कफ मेदसे घिरे वातमें गरम घर सूर्य्य के किरण ॥ लड़न्त रस्ते का चलना भारी ओढ़ना येह निश्चय हितहै ॥ ९९ ॥ और चिन्ता कसरत तथा भार इनको रोग दूर होनेके वास्ते सेवन करे ॥ जिन मनुष्यों को नास देना है और वस्ति भी जिनको देनी है ॥ १०० ॥ और जो कोई शोधनके योग्य है उनको पहिले स्वेदन करना चाहिये ॥ येह तीनो पश्चात् स्वेद न करने योग्य है भगंदर वाला बवासीर वाला ॥ १०१ ॥ और अश्मरी वाला। ये रोगी मनुष्य शस्त्र कर्म्म से अच्छे होते हैं ॥

(शास्त्र कर्मणः ऊर्ध्वं पश्चाच्चेति सुश्रुते)

पश्चात् स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भ गदे तथा ॥ काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात् स्वेद्या नितम्बिनी। १०२

सर्वान् स्वेदान् निवाते च जीर्णान्नेवा विचारयेत ॥ स्वेदाद्धातु स्थिता दोषाः स्नेह क्लिन्नस्य देहिनः ॥ २०३॥ द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्त गत्वा यान्ति विरेकताम् ॥ स्नेहाभ्यक्त शरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ॥ २०४ ॥

भा० शस्त्र कर्म्मके पश्चात् इस प्रकार सुश्रुत में कहाहै ॥ शल्य के निकालने में तथा मूढ गर्भ रोगमें पीछेसे स्वेदन करना चाहिये ॥ कालमें प्रसव हुई। अथवा अकालमें प्रसव हुई नितम्बवाली स्त्री को पीछेसे स्वेदन करना चाहिये ॥ २०२ ॥ सब स्वेदों को निवात स्थानमें और जीर्णके अन्तमें करे ॥ स्वेदसे स्नेह क्लिन्न वाले मनुष्य के धातुमेंके दोष ॥ २०३॥ पिघल कर कोष्ठ भीतर होके दस्त होके निकल जाते हैं ॥ शरीर में तेल लगायेहुवे के नेत्रों को शीतल से आच्छादन करके ॥ १०४ ॥

स्विद्यमान शरीरस्य : हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥ (शीतै राद्रैव स्त्रा दिभिः।) अजीर्णी दुर्बली मेही क्षतः क्षीणः पिपासितः ॥ अतीसारी रक्त पित्ती पाण्डुरोगी तथोदरी ॥ २०५॥ मेदस्वी गर्भिणी चैव नहि स्वेद्या विजानता ॥[स्वेदादेषां यान्ति देहो विनाशं,नि साध्यत्वं याति चैषां विकाराः।]

एतान्यपि मृदु स्वेदैः स्वेद साध्यान्तु पाचरेत् ॥ मृदु स्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हृन्मुष्क दृष्टिषु ॥ २०६ ॥ अति स्वेदात्सन्धि पीड़ा दाह स्तृष्णा क्लमो भ्रमः ॥

भा० शरीर का पसीना निकालेहुवे के हृदयको शीतल वस्त्रसे स्पर्शकरे ॥ (गीले कपडे आदिसे) अजीर्ण वाला दुर्बल प्रमेहवाला उर क्षतवाला क्षीण प्यासा ॥ अतीसार वाला रक्तपित्त वाला पांडुरोग वाला तथा उदर रोगवाला ॥ २०५ ॥ मेहवाला गर्भिणी इनको जानने वालेने स्वेदन न कराना चाहिये ॥ स्नेह

से इनके देहका नाश होताहै और इनके रोग साध्य नहीं होते ॥ इनको भी स्वेद साध्य होवेंतो मृदु स्वेद से उपचार करे ॥ तथा हृदय अण्ड कोश दृष्टि इनमें मृदु स्वेद करे ॥ २०६ ॥ अति स्वेद से सन्धिमें पीड़ा दाह तृषा ग्लानि भ्रम

पित्ता सृक पिडका कोपस्तत्र शीते रुपा चरेत् ॥ २०७॥

[तत्र ताप स्वेद माह] तेषु तापाभिधः स्वेदो वालुका वस्त्र पाणिभिः ॥ प्रतप्ते रम्ल सिक्तैश्च कार्यः लक्तक वेष्टिते ॥ २०८ ॥ [उष्म स्वेदमाह] अथवा वात निर्नाशि द्रव्य क्वाथ रसादिभिः ॥ उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे च्छिद्रं विधायच ॥ २०९ ॥ विमुद्यास्यं त्रिखण्डाञ्च धातुजां काष्ठजा मुत ॥ षडङ्गुला स्या ङ्गेपुच्छां नाडीं युञ्ज्याद्विहस्तकाम् ॥ २१० ॥ मुखोपविष्टं स्वभ्यक्त ङ्गुरु प्रावरणा वृतम् ॥ हस्ति शुण्डिकया नाड्या स्वेदये द्वात रोगिणाम् ॥ २११ ॥

भा० पित्त रक्तकी फुनसियों को होताहै उसमें शीतल उपचार करे ॥ २०७ ॥ उसमें तापस्वेद को कहतेहैं ॥ उसमें ताप नाम स्वेद रेत कपड़ा हाथ इनको ॥ तपाकर अम्ल द्रव्य सींचके चिथड़े से लपेटी हुई काया में किया जाताहै ॥ २०८ ॥ [उष्म स्वेद को किया जाताहै ॥ अथवा वात नाशक औषध का उष्ण काढ़ा रस आदिसे ॥ घड़ेको भरकर बगलमें छिद्र करके ॥ २०९ ॥ मुखको बन्द कर तीन टुकड़े वाली सुवर्णादि धातुकी अथवा लकड़ी की ॥ छः अंगुल मुखवाली गावदुम दो हाथकी नली उसमें लगावे ॥ २१० ॥ तेल लगाकर उष्ण और भारी कपड़ेको ओढ़के अच्छी तरह बैठे हुवे वातरोग वालेको हाथी सूंडका नाड़ी से स्वेदन करे ॥ ॥ २११ ॥

(क) त्रिखण्डामिति स्वेदमौकर्यार्थ म् षडङ्गुलास्या

मिति। मूले षड्ङ्गुलं विशालमुखं गोपुच्छमिव क्रमकृशाम् ॥ तेनाग्रे गोपुच्छाग्र परिमाणेन कृशाम् नाडीम् अन्तः सरन्ध्रां द्विहस्तिकाम् हस्तद्वय परिमाणाम् । हस्तिशुण्डिकयेति हस्तिशुण्डवत् क्रमशः कृत्वान्नाड्याश्चेयं संज्ञा ।

पुरुषा याममात्रां वा भूमिं संमार्ज्य खादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्ध्वा तथा भुक्त्य क्षीर धान्याम्ल वारिभिः ॥१२२॥ वातघ्न पत्रै राच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् ॥

भा० (क) तीन टुकड़े खैरकी आसानी के वास्ते। मूलमें छ अंगुल विशाल मुख गोपुच्छके समान क्रमसे पतली। उस्से अग्रमें गोपुच्छ परिमाण से पतली नाड़ी भीतर छिद्र सहित दोहाथकी हाथीकी सूंडके समान क्रमसे पतली होनेसे नाड़ी का येह नामहै ॥ अथवा साढ़े तीन हाथ भूमिको छिड़क के खैरकी लकड़ी से जलकर उसीप्रकार दूध धान्याम्ल जलसे छिड़क कर ॥१२२॥ अंडीके पत्तों से ढककर लेटे हुवे मनुष्य को स्वेदन करे ॥

एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेद माचरेत् ॥१२३

[उपनाह स्वेदः] तथो पनाह स्वेदञ्च कुर्य्याद्वातहरौषधैः ॥ प्रदह्य देहं वातार्त्तं क्षीर मांस रसादिभिः ॥१२४ अम्लपिष्टैः स लवणैः सुखोष्णैः स्नेह संयुतैः ॥ उत ग्राम्या नूपमांसै र्जीवनीय गणेन च ॥१२५॥ दधिसौवीरक क्षीरै वीर तरवादिना तथा ॥ कुलत्थ माष गोधूमै रतसीतिल सर्षपैः ॥ शतपुष्पा देवदारु शेफाली स्थूल जीरकैः ॥१२६॥

भा० इसप्रकार माषादि स्विन्न से लेटेहुवे का स्वेदन करे ॥१२३॥

उपनाह स्वेद। वैसेही वात नाशक औषधों से उपनाह स्वेद करे॥ दूध मांस रस आदियोंसे वातसे पीडित शरीर को गरम करके॥ २१४॥ कांजी से पीसा हुवा लवण के सहित तैलके सहित सील गरम से॥ या ग्राम्य अनूप मांस तथा जीवनीय गणसे॥ २१५॥ तथा दही सौवीरक दूध इन से और वीर तरादि से। तथा कुरथी उड़द गेहूं और अलसी तिल सरसों इनसे॥ सौंफ देवदारु शेफालि कालीजीरी॥ २१६॥

एरण्डमूल जीरैश्च रास्ना मूलक शिग्रुभिः॥ मिसिकृष्णा कुठेरैश्च लवणैरम्ल संयुतैः॥ २१७॥ प्रसारण्यश्व गन्धाभ्यां बलाभि र्दशमूलकैः॥ गुडूच्या वानरी बीजै र्यथा लाभ समाहृतैः॥ २१८॥ क्षुणैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम्॥ महा शाल्वण संज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्त्ति हृत्॥ २१९॥

(क)। अस्यायमर्थः। उपनाह स्वेदञ्च कुर्य्यात् केन प्रकारेण त्या काङ्क्षायां तत्प्रकार माह। वात हरौषधैः कथम्भूतैः। अम्ल पिष्टैः। अम्लेन काञ्जिक तक्रादिना पिष्टैः सलवणैः। स्नेह संयुतैः। क्षीर मांस रसान्वितैः। सुखोष्णैः। वातार्त्त देहं प्रदह्य प्रलिप्य स्वेदये दित्यर्थः।

भा॰ अरण्डी की जड़ और जीरा इनसे रासना मूली सहिजना इनसे। सौंफ पीपल। सफेद तुलसी और अम्ल से युक्त लवण इनसे॥ २१७॥ गंधप्रसारिणी असगंध इनसे बरियारा दशमूल इनसे॥ गिलोय किवांच के बीज इन से इनमें जो मिलजावे उसको लाकर॥ २१८॥ जव कूट करके स्वेदित करके वस्त्रसे बान्धकर उससे स्वेदन करे॥ महाशाल्वण नाम यह योग सब वातकी पीड़ा को नाश करताहै॥ २१९॥

(क) इसका यह अर्थहै कि उपनाह स्वेद करे किस प्रकार से। इस भा-

डांका में उस प्रकार की कहतेहैं ॥ वात नाशक औषधों से। कैसी कांजी से पीसी हुई। कांजी मठा आदिसे पीसी हुई। लवण के सहित। दूध मांस के रस से युक्त सील गरम। वात से पीड़ित देहको लेप करके स्वेदन करे ॥

अथवा म्लेन संपिष्टैः कोष्णैः सूक्ष्म पुटस्थितैः ॥ भेषजैः स्वेदयेत्किं वा स्विन्नैः कोष्णैः पटस्थितैः ॥ ॥ २३० ॥ [द्रवस्वेद माह] द्रव स्वेदस्तु वातघ्नो द्रव्य क्वाथेन पूरिते ॥ कटाहे कोष्ठके वापि सूप विष्टेव गाहयेत् ॥ २३१ ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं लौहञ्च दारुजम् ॥ कोष्ठकन्तत्र कुर्वीत स्वछाये षड्विंशदङ्गुलम् ॥ २३२ ॥ आयामे वा तदेव स्या च्चतुष्कोणन्तु चिक्कणम् ॥

भा० अथवा अम्लसे पीसे हुए सील गरम सूक्ष्म पुट स्थित। औषध से स्वेदन करे अथवा स्विन्न सील गरम कपड़े में स्थितसे स्वेदन करे ॥ २३० ॥ [द्रव स्वेदको कहतेहैं ॥ द्रव स्वेद वात नाशक है। औषधियों के काढ़े से भरी हुई कढ़ाई में अथवा हौज़ में भी बावड़ी में बैठ करके मांड़ै न्हावे ॥ २३१ ॥ सोनेका चान्दीका ताम्बेका लोहेका कोठक उसमें करे ऊंचाई में छबीस अंगुल ॥ २३२ ॥ और चौड़ाई में भी इतना ही होवे चौकोन साफ़ बनावे ॥

[पक्षान्तरमाह। नाभेः षडङ्गुलं यावन्मग्नं क्वाथस्य धारया ॥ कोष्णया: स्कन्धयोः सिक्त स्तिष्ठेत् स्निग्ध तनुर्नरः ॥ २३३ ॥ (क) [अय मर्थः।] प्रथम तो वातघ्न द्रव्य क्वाथेन कराठ पूरिते कोष्ठ के कटाहे वा सूपविष्ट स्तिष्ठेत् ॥ अथवा नाभेः षड़ङ्गुल मूर्द्ध यावत्क्वाथे मग्न उपविष्टः। पश्चा-

त्क्वाथस्य धारया स्कन्धयोः सिच्यमानस्तिष्ठेत् ॥
यावत्कोष्ठकं परिपूर्णं भवतीत्यर्थः। क्वाथपक्षे प्रथ-
तः स्नेहाभ्यक्त तनुरुप विशेत् ॥
मुहूर्त्तकं समारभ्य यावत्स्यात्त चतुष्टयम् ॥ तावत्त
दवगाहेत यावदारोग्य निश्चयः॥ २३४॥ एवं तैले
न दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् ॥ एकान्तरो द्व्यन्त
रो वा युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥ २३५॥

(क) एतावता क्वाथो दुग्धञ्च नित्यमेव युज्यते स्नेहस्तु
दिनमेकन्द्वे वा दिने गमयित्वा युक्तः। अग्निमान्द्य
शङ्कयेति भावः।

भा० पक्षान्तर को कहते हैं। नाभिसे छ अंगुल तक डूबा हुवा और गरम
तैल काढ़ेकी धारसे कंधोंपर सींचा हुवा स्निग्ध शरीर मनुष्य ठहरे ॥ २३३॥
(क) येह अर्थहै कि पहले वातनाशक औषधके काढ़े से गलेतक भरे
हुवे कोष्टकयाह में बैठा रहे ॥ अथवा नाभिसे छ अंगुल ऊपर जबतक काढ़े
में डूबा बैठा हुवा। पीछे से काढ़े की धार से कन्धोंपर सींचा हुवा ठहरे ॥
तब तक कोष्ट भरजावे। क्वाथ पक्षमें पहले से शरीर में तेल लगाया हुवा ठ
हरे। एक मुहूर्त्त से चार मुहूर्त्त तक। तब तक न्हावे जबतक आरोग्य निश्चय
है ॥ २३४॥ इस प्रकार तेल दूध और घृतसे मनुष्य को स्वेदन करे एक दिन
बीच देकर अथवा दोदिन बीच देकर स्नेह युक्त हुवा स्नान करे ॥ २३५॥
उससे काढ़ा दूध नित्यही योजना करे। और स्नेह एक या दो दिन बीचदेकर
योजना करे। अग्निमान्द्य की शंका से यह मतलब है ॥

शिरा मुखै र्लोम कूपै र्धमनीभिश्च तर्पयेत् ॥ शरीरे
बलमाधत्ते युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥ २३६॥ जलसि
क्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरादयः॥ तथैव धातु वृद्धि

र्हि स्नेह सिक्तस्य जायते ॥ १३७ ॥ नातःपरतरः कश्चि दुपायो वातनाशनः ॥ शीत शूलव्यु परमे स्तम्भ गौ- रव निग्रहे ॥ १३८ ॥ दीप्तेऽग्नौ मार्द्दवे जात स्वेदनादि रतिर्मता ॥

(अथ मूर्द्ध तैल विधिः)

अभ्यङ्गः परिषेकश्च पिचुर्वस्ति रिति क्रमात् ॥ मूर्द्ध तैलञ्च तुर्द्धास्याद् बलवत्त यथोत्तरम् ॥ १३९ ॥

(क) अभ्यङ्गः तैलेन शिरसो मर्द्दनम् । परिषेकः । शिर सि धारापातनं पिचुः । तैलाक्तं तूल । फाहा इति लोके वस्ति र्वक्ष्यमाणः ॥

भा० शिरा मुख लोम कूप धमनी के द्वारा तृप्त करे । स्नेह युक्त स्नान करने मे शरीर में बल होता है ॥ १३६ ॥ जैसे मूलमें जल सींचे से अंकुरादिक ब ढ़ते हैं । वैसेही स्नेह सींचे की धातुवृद्धि होती है ॥ १३७ ॥ इस्से सिवाय औ र कोई उपाय वात नाशक नहीं है ॥ शीत शूल का उपरम स्तम्भ और भारीपन इनका निग्रह ॥ १३८ ॥ दीप्त अग्नि मृदुता येह स्वेदनसे होते हैं ॥ [अनन्तर मूर्द्ध तैल विधि ॥ अभ्यंग परिषेक पिचु वस्ति इस क्रमसे ॥ मूर्द्ध तैल चार प्रकारके हैं वोह यथोत्तर बल वाले हैं ॥ १३९ ॥ (क) तैल से शिरका मलना । सिर पर धार देनी । फाहा । वस्ति वक्ष्यमा ण है ॥

त्रयोऽभ्यङ्गादयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्व्वतःस्मृ ताः ॥ शिरो वस्ति विधिश्चात्र प्रोच्यते सुश्रुतस्म तः ॥ १४० ॥ शिरो वस्तिश्चर्म्मणः स्याद्विमुखो द्वा दशा ङ्गुलः ॥ शिरः प्रमाणस्तं बद्धा मस्तके माष पिष्टकैः ॥ १४१ ॥ सन्धिरोधं विधायाशु स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ तावद्धार्य्यस्तु यावत्स्यान्नासा

कर्णामुख स्रुतिः ॥ १४२॥ वेदनोपशमो वापि मात्रा णां वा सहस्रकम् ॥ स्वजानुनः करावर्त्तं कुर्य्याच्छो टिकया युतम् ॥ १४३ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्व्व त्रैवैष निश्चयः ॥ विना भोजनमेवात्र शिरो वस्तिः प्रशस्यते ॥ १४४॥ प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्च सप्त दिनानि वा ॥ विमोच्य शिरसो वस्तिं गृह्णीया-च्च समन्ततः ॥ १४५॥

भा॰ अभ्यंगादिक तीन पहले सब तरफ प्रसिद्ध कहेहैं ॥ सूक्त सम्मती से शिरो वस्ति की विधि यहाँपर कहते हैं ॥ १४० ॥ शिरो वस्ति चमड़ेकी दो मुख बारह अङ्गुल होतीहै ॥ शिरके प्रमाण उसको मस्तक में बान्धकर उड़द की पीठी से ॥ १४१ ॥ शीघ्र सन्धिको वन्द करके सील गरम स्नेहसे भरदेवे । तब तक धारण करे जब तक नाक कान मुख इनमें से स्राव हो वे ॥ १४२॥ वेदना का शमन अथवा हजार मात्रा तक धारण करे ॥ अप ने घुटने पर हाथ फेरे । चुटकी के साथ ॥ १४३॥ येह एक मात्रा होती है सब जगह येह निश्चय है ॥ यहाँपर भोजनके विनाही शिरो वस्ति प्र शस्तहै ॥ १४४॥ शिरो वस्ति पाँच सात दिन देनी चाहिये ॥ शिरकी व स्ति को विमोचन करके आस पास से शिरपर ग्रहण भी करे इसके अ नन्तर सील गरम जलमें स्नान करे ॥

ऊर्द्ध कावन्ततः कोष्णे नीरे स्नानं समाचरेत् ॥ अ नेन दुर्ज्जया रोगा वातजा यान्ति सङ्क्षयम् ॥ १४६॥ शिरः कम्पादयस्तेन सर्व्व कालेषु युज्यते ॥

पञ्च सप्त दिनानि वेत्युक्ता सर्व्वकाले ष्विति शिरः कम्पादि रोगानु द्दिश्यो क्तयम् ॥

[अथ कर्णाविधिः]

स्विदये त्कर्णो देशान्तु किञ्चिन्नुः पार्श्व शायिनः॥
मूत्रैः स्नेहैः रसैरुष्णैः श्रोत्र रन्ध्रं प्रपूरयेत् ॥ २५७
कर्णाञ्च पूरितं रक्षेच्छत पञ्च शतानि वा ॥ सह-
स्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकण्ठ शिरोगुदे ॥ २५८ ॥
मूत्राद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक् प्रशस्यते ॥ तै-
लाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्त मुपागते ॥ २४९॥
[तद्यथा] कर्णे शूलाकुले कोष्णं वस्तमूत्रं ससैन्धवम्
।निः क्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूल पाकादिका रुजः॥
॥ २५०॥ शृङ्गवेरञ्च मधुकं सैन्धवं तैलमेवच ॥
कटूष्णं कर्णयोर्देय मेतत् स्याद् वेदनापहम्।२५१॥

भा॰ इस्से दुर्ज्जेय वालके रोग नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ २४६॥ उस्से शिरः कम्पादिक सब कालमें रहतेहैं ॥ पांच सात दिन इस प्रकार कहकर सबकाल में इस प्रकार शिरः कंपादि रोगकी अनुवृत्ति में जानना चाहिये ॥
[अनन्तर कर्ण विधि ॥ थोड़ेसे करवट कवेके कर्ण देशमें स्वेदन करे ॥ मूत्र स्नेह उष्ण रस इनसे कर्ण छिद्रको भरदेवे ॥ २५७ ॥ भरे हुवे कर्णकी रक्षा करे सौ पान्सौ ॥ अथवा हजार मात्रा कान कंठ और शिरके रोगमें ॥ २५८॥ कर्ण में मूत्रादिक से पूरण भोजन से पहिले प्रशस्त है ॥ कानमें तैलादिक का डालना सूर्य्यास्त होनेपर प्रशस्त है ॥ २४९॥ वोह जैसे] शूलसे व्याकुल कर्णमें सील गरम वकरी का मूत्र सैन्धव के सहित ॥ डाले वस्से शूलपाक आदि रोग शमन होते हैं ॥ २५०॥ अद्रक मधुवा सैन्धव तैल। कटु उष्ण इनको कानों में देना चाहिये ॥ येह वेदना का नाशक है ॥ २५१॥

पीतार्क पत्रमाज्येन लिप्तो वन्हौ प्रतापयेत् ॥ न
द्रसः घृतरो निसः कर्णशूल हरः परः॥२५२॥
[अथ लेप विधिः] आलेपस्य तु नामानि लेपो ले-

पन लिप्तकौ ॥ दोषघ्नो विषहा वर्ण्यः स च लेपस्त्रि धामतः ॥ १५३ ॥ त्रि प्रमाणश्चतुर्भाग स्त्रिभागार्द्धा ङ्गुलोन्नतः ॥ आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयति छविम् ॥ १५४ ॥

[चतुर्भाग त्रिभागार्द्धाङ्गुलोन्नतः दोषघ्नो लेपो यथा] शोथघ्न दारु सिद्धार्थ शुण्ठी शोभाञ्जनत्वचाम् ॥ आरनालेन पिष्टानां प्रलेपः सर्व्व शोथहा ॥१ १५५ ॥ (शोथघ्नी पुनर्नवा।)

भा० ज़र्द आंक के पत्तों को घृत लगाकर आग पर सेके ॥ उस का रस कान मे डालने से वोह अत्यन्त कर्णशूल का नाशक है ॥ १५२ ॥ [अनन्तर लेपविधि ।] आलेप के नाम । लेप लेपन लिप्तक । येह नाम हैं ॥ वे दोषघ्न विषनाशक वर्णको अच्छा करने वाले ऐसे तीन प्रकार कहेहैं ॥ १५३ ॥ तीन प्रमाण कहेहैं । चतुर्भाग त्रिभाग और अर्द्धा ङ्गुल ऊंचा ॥ वोह गीला रोग नाशक होता है । और सूका छवि को विगाड़ता है ॥ १५४ ॥ चतुर्भाग त्रिभाग और अर्द्धाङ्गुल ऊंचा दोष नाशक लेप जैसे । पुनर्नवा देवदारु सरसों सोंठ सहिंजने की छाल ॥ इसको आरनाल से पीस कर लेप सब शोथ नाशक है ॥ १५५ ॥
(आरनाल कां कों प्रकरण में देख लेना) (पुनर्नवा शोथ नाशक)

शिरीष मधु यष्टी च तगरं रक्तचन्दनम् ॥ एला मांसी निशा युग्मं कुष्टं वालकमेव च ॥ १५६ ॥ इति संचूर्ण्य लेपोऽयं पञ्चमांस घृतस्तुतः ॥ जलेन क्रियते सुज्ञै र्दशाङ्ग इति संज्ञितः ॥ १५५ ॥ वीसर्पञ्च विषस्फोटान् शोथ दुष्ट व्रणान् जयेत् ॥

[विषहा लेपो यथा] अजादुग्ध तिलैर्लेपो नवनी

तेन संयुतः ॥ शोथ मारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्ण मार्त्तिकः ॥ १५६॥ (नवनीते नार्द्धिकेण।)
[विषघ्ने लेपो यथा] रक्त चन्दन मञ्जिष्ठा लोध्र कुष्ठ प्रियङ्गवः ॥ वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुख कान्तिदाः ॥ १५७॥ अथ लेप विधिश्चैव प्रोच्यते सुज्ञ सम्मतः ॥ आलेपश्च प्रदेहश्च द्वौ भेदौ तस्य भाषितौ ॥ १५८ ॥ चर्माद्र माहिषं यद्वत्प्रोच्यते संमित स्तयोः ॥ शीतस्तनु र्विशोषी च प्रलेपः पित्त हृन्मतः ॥ १५९॥ आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः श्लेष्म वातहा ॥

भा० सिरीस मुलहठी नगर लालचन्दन । इलायची जटामांसी दोनों हलदी कूट सुगन्धवाला ॥ १५६॥ इनको पीस कर यह लेप पांचवां भाग घृत से युक्त ॥ जलसे कियाजाताहै इसको बुद्धि वानों ने दशाङ्ग ऐसा कहा है ॥ १५५॥ येह विसर्प विषफोड़े सूजन दुष्ट व्रण इनको शीतला है ॥ विष नाशक लेप जैसे ॥ बकरी के दूधसे तिलोंको पीस कर माखन के साथ ॥ येह लेप भिलावेकी सूजन को नाश करता है अथवा काली मिट्टी का लेप नाश करताहै ॥ १५६॥ (आधे माखन से) विषहा लेप जैसे । लाल चन्दन मजीठ लोध कूट प्रियङ्गु । वटके अङ्कुर मसूर इनका लेप व्यङ्ग नाशक मुखकी कान्ति को देने वाला है ॥ १५७॥ अनन्तर बुद्धि वानों की सम्मती से लेप विधि कहते हैं ॥ आलेप और प्रदेह येह दो भेद उसके कहे हैं ॥ १५८॥ उनका प्रमाण भैंसके गीले चमड़े के समान कहाहै ॥ शीतल पतला सूका करने वाला प्रलेप पित्त नाशक कहा है ॥ १५९॥ गीला गाढ़ा तथा उष्ण प्रदेह होताहै येह कफ वात का नाशक है ॥

न रात्रौ लेपनं कुर्य्या च्छुष्यमाणं न धारयेत् ॥१६०॥
शुष्यमाणा मुपेक्षेत प्रदेहं पीड़नम्प्रति ॥ तमसा

पिहितो ह्यूष्मा लोम कूप मुखे स्थितः ॥ २६१॥ विना लेपेन निर्याति रात्रौ न लेपयेदतः॥
(नमसा रात्र्यन्ध कारेण) रात्रावपि प्रलेपादि र्व्रणे देयो विचक्षणैः ॥ अपाकि न्यति गम्भीरे रक्तश्लेष्म समुद्भवे ॥ २६२॥ [अलेपो यथा]
मधुकं चन्दनं मूर्वा नलमूलञ्च पर्पटम् ॥ उशीरं बालकं पद्मं प्रलेपः पित्त शोथ हृत् ॥ २६३॥

भा० रात को लेप नकरे और सूके ज़ुवे को न धारण करे ॥ २६०॥ पीड़न के वास्ते सूके ज़ुवे को भी रहने देवे ॥ रोम कूपके मुखमें रहनेवाली गरमी नमसे ढकी रहती है ॥ २६१॥ वोह रातमें बिना लेपके निकलती है इसवास्ते लेप न करे ॥ (रात की अन्धेरी से) चतुरं व्रणमें रातको भी प्रलेपादि देना चाहिये ॥ कचे अति गम्भीर रक्तपित्त से उत्पन्न ज़ुवे में ॥ २६२॥
[प्रलेप जैसे । महुवा चन्दन मरोड़फली नरकटकी जड़ पित्त पापड़ा ॥ खस सुगंधवाला पद्माख इनका लेप पित्तके शोथ का नाशक है ॥ २६३ ॥

[प्रदेहो यथा। बीजपूर जटा हिंस्रा देवदारु महौषधम् ॥ रास्ना ऽरणिः प्रदेहोऽयं वात शोथ विनाशनः॥ ॥ २६४ ॥ (अरणि रग्निमन्थः) कृष्णा पुराण पिण्याक शिग्रु त्वक् सिकता शिवा ॥ गोमूत्र पिष्टः कोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्म शोथहा ॥ २६५॥

[अथ शोणितस्रावण विधिः]

भा० प्रदेह जैसे । बिजौरे की जड़ कटेली देवदारु सोंठ । रास्ना अरणी इनका यह प्रदेह वात शोथ का नाशक है ॥ २६४॥ अग्निमन्थ । पीपल पुरानी खल सहिंजने की छाल रेत हड़ ॥ गोमूत्र से पीसा ज़ुवा यह सील गरम प्रदेह कफ शोथ का नाशक है ॥ २६५॥ [अनन्तर रक्त स्रावण विधिः ।]

शोणितं स्रावयेज्जन्तोरामयं प्रसमीक्ष्य च ॥ प्रस्थं प्रस्थार्द्धमथवा प्रस्थार्द्धार्द्धमथापि वा ॥ २६६ ॥ शरत्काले स्वभावेन शोणितं स्रावयेन्नरः ॥ त्वग् दोष ग्रन्थि शोथाद्या नश्यन्ति रुधिरोद्भवाः ॥ २६७ ॥ व्यभ्रे वर्षासु विद्युत्सु शीते ग्रीष्मे शरद्यपि ॥ मध्याह्ने शीतकाले च रुधिरं स्रावयेद् बुधः ॥ २६८ ॥ मधुरं वर्णतो रक्तः मशीतोष्णं तथा गुरु ॥ शोणितं स्निग्ध विस्रञ्च विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ २६९ ॥ विस्रता द्रवता राग स्पन्दनं विलयस्तथा ॥ भूम्यादि पञ्च भूतानामेते रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ २७० ॥

भा० मनुष्य रोगको देख कर रुधिर निकलवावे ॥ प्रस्थभर आधप्रस्थ अथवा उससे भी आधा निकलवावे ॥ २६६ ॥ मनुष्य शरत्कालमें स्वभावसे ही रुधिर निकलवावे ॥ त्वचाके दोष गाँठ सूजन आदिक रक्तसे उपजे नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ २६७ ॥ बादल के न होनेमें बिजली संयुक्त वर्षामें शीत ग्रीष्म में शरद में भी । मध्यान्ह मे शीत कालमें भी बुद्धिवान् रुधिर निकलवावे ॥ २६८ मधुर वर्णसे रक्त अशीत उष्ण तथा भारी ॥ चिकनी दुर्गन्धि युक्त विदग्ध रुधिर पित्तको करने वाला होता है ॥ २६९ ॥ दुर्गन्धता पतलापन राग चलन तथा विलय ॥ भूमि आदि पांच भूतोंको यह गुण रक्तमें कहे हैं ॥ २७० ॥

रक्ते दुष्टे भवेच्छोथो रक्तमण्डलमेव च ॥ व्यथा दाहश्च पाकश्च कण्डूश्च पिडकाक्रमः ॥ २७१ ॥ दृष्टे रक्ताङ्गनेत्रत्वं शिराणां पूर्णता तथा ॥ गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ॥ २७२ ॥ क्षीणेऽस्रे मधुराकाङ्क्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता ॥ शैथि-

त्यञ्च शिराणां स्याद्वातादुन्मार्गगामिता ॥ १७३॥ (वातात् रूक्षदेशयज निनात्) अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम् ॥ आस्कन्दि सूचीनिस्तोदि रक्त स्याद्वात दूषितम् ॥ १७४॥ पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावञ्च विस्रकम् ॥ अस्वादूष्णं माक्षिकाणां पिपीलिकानामनिष्टकम् ॥ १७५॥ शीतलं बहुलं स्निग्धङ्गैरिकोदक सन्निभम् ॥ मांसपेशी प्रभं स्कन्दि मन्दगं कफ दूषितम् ॥ १७६॥ द्विदोष दुष्टं संसृष्टं त्रिदुष्टं पूति गन्धकम् ॥ सर्व लक्षण संयुक्तं काञ्जिकाभञ्च जायते ॥ १७७॥

भा० दुष्ट रक्तमें सूजन लाल चकत्ते। पीड़ा दाह पाक खुजली फुनसियां यह होतीहैं ॥ १७१॥ रक्त के बढ़ने में शरीर और नेत्र लाल शिराओंकी पूर्णता तथा ॥ अङ्गोंमें भारीपन निद्रा प्रमेह और दाह येह होतेहैं ॥ १७२॥ रक्त के क्षीणमें मधुरकी इच्छा मूर्च्छा त्वचामें रूक्षता। शिथिलता शिराओंकी होती है ॥ वात से उन्मार्ग गमन होताहै ॥ १७३॥ (रूक्ष और क्षीणता से) अरुण झागवाला रूखा कठोर सूक्ष्म शीघ्र चलनेवाला फुटकियों से युक्त सुई सी चुभनेवाला। ऐसा रक्त वातसे दूषित होता है ॥ १७४॥ पित्त से पीला हरा नीला काला दुर्गन्धि युक्त ॥ अमधुर ऊष्ण मक्षिका और चींटी इनको अप्रिय होताहै ॥ १७५॥ कफसे बिगड़ाहुवा शीतल मोटा चिकना गेरूकेजल सदृश ॥ मांसकी थैली समान गांठोंसे युक्त मन्द चलनेवाला होता है ॥ १७६॥ दो दोषों से बिगडा हुवा मिलेहुवे लक्षण होताहै तथा तीन दोषों से दुष्ट दुर्गन्धिवाला होता है ॥ सब लक्षणों से युक्त कांजी के समान होता है ॥ १७७॥

विषदुष्टं भवेत्श्यावं नासिकोन्मार्गगं तथा ॥ विस्रं काञ्जिक संकाशं सर्वकुष्ठकरं तथा ॥ १७८॥ इन्द्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थम संहतम् ॥ शोथे दाहे

ऽङ्गपाके च रक्तवर्णोऽसृजः स्रुती ॥ १७९॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीड़े दुर्जयेऽनिले ॥ पाण्डुरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥ १८०॥ ग्रन्थ्यर्बुदापचीक्षुद्र रोगाधि मन्थकाभिधे ॥ विदारी स्तन रोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥ १८१॥ रक्ताभिष्यन्द तन्द्रायां पूतिघ्राणास्य देहिके ॥ यकृत् प्लीह विसर्पेषु विद्रधौ पिडकोद्गमे ॥ १८२॥ कर्णौष्ठ घ्राण वक्त्राणां पाके दाहे शिरो रुजि ॥ उपदंशे रक्त पित्ते रक्त स्रावे प्रशस्यते ॥ १८३॥ दोषेष्वे षु प्रच्छनैर्वा जलौका लावुकादिभिः॥ अथवापि शिरा मोक्षैः कार्ये द्रक्त पातनम् ॥ १८४॥ न कुर्वीत शिरा मोक्षं कृशस्याति व्यवायिनः॥ क्लीवस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतायाः पाण्डु रोगिणः ॥ १८५॥

भा॰ विषसे उष्ण काला नाक से जानेवाला । दुर्गन्धि युक्त कांजी के समान सब कुष्ठों को करनेवाला होता है ॥ १७८॥ प्रक्रोनस्थ पतला और बड़दी के समान जानना चाहिये ॥ सूजन दाह अंगपाक रक्तवर्ण फस्त ॥ १७९॥ वात रक्त तथा कुष्ठ पीडाके सहित दुर्जय वातमें ॥ पाण्डुरोग श्लीपद विषसे दुष्ट रुधिर ॥ १८०॥ गांठ अर्बुद अपची क्षुद्ररोग अधिमन्थक ॥ विदारी स्तनरोग शरीरकी पीड़ा और भारीपन ॥ १८१॥ रक्ताभिष्यन्द तन्द्रा दुर्गन्धियुक्त नाक मुख देह वाला ॥ तिल्ली पिलही विसर्प विद्रधि और फुनसियों के होने में ॥ १८२॥ कान होठ नाक मुख इनका पाक दाह शिरकी पीड़ा ॥ उपदंश रक्त पित्त इनमें फस्त अच्छी है ॥ १८३॥ इन दोषों में पछने से अथवा जोक तूम्बी इनसे ॥ अथवा फस्त से रुधिर निकलवावे ॥ १८४॥ दुर्बल को नज़न मैथुन करनेवाले की नपुंसक की डरपोक की गर्भिणी की जच्चा की पाण्डुरोग वाले की ॥ १८५॥

पञ्च कर्म्म विशुद्धस्य पीत स्नेहस्य चार्शसाम् ॥ सर्वा

ङ्गशोथ युक्तानामुदरि श्वास कासिनाम् ॥२८६॥
छर्द्यतीसार कुष्ठाना मति स्विन्नतनोरपि ॥ऊन षोड़
श वर्षस्य गत सप्तति कस्य च ॥ २८७॥ आघातात्
स्नुत रक्तस्य शिरा मोक्षो न शस्यते ॥
(तथा च स्नुतरक्तस्य रक्त पित्तादिना गत रक्तस्य)
एषां चात्ययिके रोगे जलौका भिर्विनिर्हरेत ॥ तथा
च विष जुष्टानां शिरामोक्षो न शस्यते ॥२८८॥गो
शृङ्ग न जलौकाभिर लाबूभि रपि त्रिधा ॥ वातपित्त
कफैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद् बुधः ॥ २८९ ॥ द्विदोषा
भ्यान्तु दुष्टं यत् त्रिदोषै रपि दूषितम् ॥ दूषितं स्रा
वयेद् युक्त्या शिरामोक्षैः पदैस्तथा ॥ २९०॥ गृह्णा
ति शोणितं शृङ्गं दशाङ्गुल मितं म्बलात् ॥ जलौ
का हस्त मात्रं तु तुम्बी तु द्वादशा ङ्गुलम् ॥ २९१ ॥

भा० पंच कर्मसे शुद्ध की स्नेह पीयेकी बवासीर वालेकी ॥सब अंगमें शोथ युक्त की उदर वाला श्वास कास वाले की ॥२८६॥ वमन अतीसार कुष्ठ वाले की अति स्विन्न शरीर वालेकी ॥ सोलहवरस से कम की और सत्तर वरस वाले की ॥२८७॥ चोट से रुधिर निकले की इनको फस्त अच्छी नहीं है ॥उसी प्रकार रक्त पित्तादि निकसे रक्तका ॥ इनके रोग बहुत बढ़ जानेमें जोकों से रुधिर निकाले ॥ वैसेही विष युक्तों को शिरा मोक्ष अच्छा नहीं है ॥२८८॥ सीङ्ग से जोकों से और तूम्बी से भी तीन प्रकार ॥ वात पित्त कफ से दुष्ट रुधिर को बुद्धिवान निकलवावे ॥ २८९॥ दो दोषों से जो दुष्ट और जो तीनों दोषों से दूषित ॥ ऐसे विगड़े रुधिर को नस्तर से युक्ति के साथ निकलवावे ॥ २९०॥ दश अङ्गुल की सींगी के द्वारा बलात्कारसे निकलवावे ॥ और हाथभर की जोंक तथा बारह अंगल की तूम्बी ॥ २९१॥

पदमङ्गुल मात्रस्य शिरा सर्वाङ्ग शोधिनी॥ पीने

निरन्ने मूर्च्छार्त्ति निद्राभीति मदश्रमे ः॥ २६२॥ शु-
क्तेना स्रावयेद्रक्तं तथा विण्मूत्र सङ्गिनाम्॥ शो-
णिते चा प्रवृत्ते तु कुष्ठ त्रिकटु सैन्धवैः॥ २६३॥
मर्दयेद्व्रण वक्त्रञ्च तेन रक्तं प्रवर्त्तते॥ तस्मान्न
शीते नात्युष्णे ना स्विन्ने नाति तापिते॥ २६४॥ पी
त्वा यवागूं तृप्तस्य स्रावयेच्छोणितं बुधः॥ अति
स्विन्नस्योष्ण काले तथैवाति शिरा व्यधात्॥ २६५
अति प्रवर्त्तते रक्तं तत्र कुर्य्यात्प्रति क्रियाम्॥

भा० नस्तर एक अंगल का नस सरोरुह है॥ शीतमें उपवास में मूर्च्छा पीड़ा नि को
द्रा भय मद श्रम इनसे॥ २६२॥ युक्त में फस्त न खुलवावे और मल मूत्र सङ्गि
योंकी॥ रुधिर के न निकलने में कूट त्रिकुटा सैन्धव इनसे॥ २६३॥ व्रण का
मुख मले। उससे रक्त निकलता है॥ इस वास्ते न शीतमें न अति उष्ण में
न अति स्विन्न में न अति तापित में रुधिर निकलवावे॥ २६४॥ यवागू को
पीकर तृप्त हुवे की फस्त खुलवावे॥ अति स्विन्नकी उष्णकाल में वैसेही अ
ति शिरा व्यध से॥ २६५॥ रक्त बहुत निकलता है उसका इलाज करे॥

अति प्रवृत्ते रक्ते तु लोध्र सर्ज्जर साञ्जनैः॥ २६६॥ य
व गोधूम चूर्णैश्च धव धन्वन गैरिकैः॥ सर्प निर्म्मो
कि का चूर्णै क्षौमतः स्थापितं नरः॥ २६७॥ मुखं
व्रणस्य दद्याच्च शीते क्षौम चरे व्रणाम्॥ विध्ये
दूर्द्ध शिरान्तावद्दहेत् क्षारेण वह्निना॥ २६८॥ व्र
णं कषायं सन्धत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमः॥ व्रणास्यं
भोजयेत् क्षारो दाहः सङ्कोचयेच्छिराः॥ २६९॥

भा० वहुत रक्त के निकलने में लोध राल रसवत इनसे ॥ १९६॥ और जव गेहूं के चूर्णसे और धव जवासे गेरू इनसे ॥ और सांपकी कैंचली का चूर्ण वाएं तरफ रखके मनुष्य इनसे ॥ १९७॥ व्रण का मुख वान्धकर शीतल द्रव्यों से उपचार करे ॥ अथवा उसके ऊपर सिराको वान्धे । और क्षार अग्नि से जलावे ॥ १९८॥ व्रण को कषाय जोड़ना है और शीतल रक्तको जमाना है ॥ व्रणके मुखमें क्षार योजना करे और दाह सिरा का सङ्कोच करते हैं ॥ १९९ ॥

रक्ते दुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति ॥ अतो रक्षेत् सावशेषं रक्ते नाति स्रुति र्हिता ॥ २००॥ आन्ध्य मात्क्षेपकं तृष्णा न्तिमिरं शिरसो रुजः ॥ पक्षाघातं श्वास कासौ हिक्का दाहौ च पाण्डुताम् ॥२०१ कुरुतेऽतिस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च ॥ देहस्योत्पत्ति रसृजो देहस्ते नैव धार्य्यते ॥ २०२॥ रक्तं जीवस्य चाधार स्तस्मा द्रक्षेद सृग् बुधः ॥ शीतोप चारैः कुपिते स्रुत रक्तस्य मारुते ॥ २०३॥ कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत् ॥ क्षीरस्येण शशैरभ्र हरिण च्छाग मांसजः ॥२०४॥

भा० दुष्ट रक्तके वाक़ी रहने में भी व्याधी प्रकोप को नहीं प्राप्त होती ॥ इसवास्ते अवशेष के सहित रक्षा करो रक्त का वहुत निकलना हित नहीं है ॥ २००॥ अन्धापन आक्षेपक तृषा तिमिर शिरकी पीड़ा ॥ पक्षाघात श्वास कास हिचकी दाह पांडुता ॥ २०१॥ इनको वहुत निकला रक्त करता है ॥ और मरण को भी करता है । रक्त से शरीर की उत्पत्ति है और देह उसीसे रहता है ॥ २०२॥ रक्त जीवका आधार है इसवास्ते वुद्धिवान् रक्त की रक्षा करे ॥ ।फ़स्त लिये का शीत उपचार से कुपित हुवे वातमें ॥ २०३॥ सील गरम घृतसे पीड़ाके शोथको सींचे ॥ क्षीण को हरिण खरगोश उरभ्र लाल हिरन वकरा इनका ॥ २०४ ॥

रसः समुचितैः पाने क्षीरं षष्टिकया हितम् ॥ पीड़ा

शान्ति र्लघुत्वं च व्याध्युपद्रव संक्षय: ॥ २०५॥ मन: स्वास्थ्यम्भ वेच्चिन्हं सम्यक् नि:सारिते ऽसृजि ॥ व्यायाम मैथुनं क्रोध शीतस्नान प्रधानकान् ॥२०६ एकाशनं दिवानिद्रा क्षाराम्ल कटु भोजनम् ॥ शोकं वाद मजीर्णञ्च त्यजेदावल दर्शनात् ॥ २०७॥

[अथप्रसादनकर्म्माणि]

सेक आश्च्योतनं पिण्डी विडालस्तर्पणं तथा ॥ पुट पाकोऽञ्जनञ्चेति कृत्वा नेत्र मुपाचरेत् ॥२०८॥

भा० शोरुवा प्रशस्त है और पीनेमें साठी चावलके साथ दूध हित है ॥पीड़ा की शान्ति हलकापन रोगके उपद्रवों का नाश ॥ २०५॥ मनकी स्वस्थता होती है । अच्छी तरह फस्त लियेमें येह लक्षण होते हैं ॥ कसरत मैथुन क्रोध शीतलस्नान कठोरबान इनको ॥ २०६॥ एकबार भोजन दिनमें शयन क्षार अम्ल कटु इन रसोंका भोजन ॥ शोक वाद और अजीर्ण इनको बल आने तक त्यागदेवे ॥ २०७॥

[अनन्तर नेत्र की स्वच्छता के कर्म्म ।] सेक आश्च्योतन पिंडी विडाल तर्पण तथा ॥ पुट पाक अञ्जन इनको करके नेत्रका इलाज करे ॥ २०८ ॥

[अथ कल्पो विधि: तत्र सेक विधि:।]

सेकस्तु सूक्ष्म धाराभि: सर्वस्मिन्नयने हित: ॥ मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेय श्चतुरङ्गुलात् ॥ २०९॥ स सस्नेहो भवेत् वाते पित्ते रक्ते च रोपण: ॥ लेखन स्तु कफे कार्य्य स्तस्य मात्राभि धीयते ॥२१०॥ षड्भिर्वाचः शतैः स्नेहे चतुर्भिश्चैव रोपणे ॥ तै स्त्रिभिर्लेखने कार्य्यः सेको नेत्र प्रसादने ॥ २११ ॥

भा० [अनन्तर कल्प विधि ।] उसमें सेक विधि ॥ मनुष्य की आँख बन्द कर वा कर चार उंगल ऊपर से सेक देना चाहिये । येह सब प्रकार के नेत्र रोग में हित है ॥ २०९ ॥ स्नेह के सहित वातमें हितहै और पित्त तथा रक्त में रोपण ॥ कफ में लेखन करना चाहिये उसकी मात्रा कहता हूं ॥ २१० ॥ स्नेहमें छ सौ मात्रा और रोपण में चारसौ मात्रा तथा तीनसौ मात्रा लेखन में नेत्र प्रसादन सेक करना चाहिये ॥ २११ ॥

निमेषोन्मेषणं पुंसा मङ्गुल्या च्छोटिकाथ वा ॥ गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ २१२ ॥ सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रो चात्यन्तिके गदे ॥ एरण्डस्य दलैः पिष्टैः पक्कमाज्यं पयो हितम् ॥ २१३ ॥ सुखोष्णं नेत्रयो रन्तः सिक्तं वातार्त्ति नाशनम् ॥

भा० मनुष्यों का निमेष और उन्मेष उंगली की चुटकी ॥ अथवा गुरु अक्षरका उच्चारण इसको बुद्धिवानों ने वाङ्मात्रा कहाहै ॥ २१२ ॥ सेक दिनमें करना चाहिये और रातमें अत्यान्तिक रोगमें करना चाहिये ॥ अरण्डी के पत्ते पीसकर उससे पकाया हुवा बकरी का दूध हितहै ॥ २१३ ॥ सील गरम नेत्र के भीतर सींचा हुवा वात की पीडा को नाशक है ॥

[अथाश्च्योतन विधिः।]

क्वाथ दोग्धासव स्नेह विन्दुना यत्तु पातनम् ॥ द्वङ्गुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हितम् ॥ २१४ ॥ विन्दवोऽष्टौ लेखने षु रोपणे दश विन्दवः ॥ स्नेहे ने द्वादश प्रोक्ताः शीतले कोष्ण रूपिणः ॥ २१५ ॥ उष्णे तु शीत रूपाः स्युः सर्वत्रै वैष निश्चयः ॥ वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुर शीतलम् ॥ २१६ ॥ कफे तिक्तोष्ण रूक्षं क्रमादा श्च्योतनं हितम् ॥ आश्चो

नलानां सर्वेषां मात्रास्या द्वाक् शतोन्मिता ॥ २१७॥
ततः परं लोचनाम्भे षजा नामयोगतः ॥ आश्च्यो
तनं न कर्त्तव्यं निशायां केन् चित् क्वचित् ॥ २१८॥
[तद्यथा] किल्वादि पञ्च मूलेन वृहत्ये रण्ड शिग्रुभिः
॥क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाता भिष्यन्द नाशनः॥
२१६॥ [अथ पिण्डी विधिः।] युक्त भेषज कल्क
स्य पिण्डीक वल मात्रया ॥ वस्त्र खण्डेन संबद्धा ने
त्रेःभिष्यन्द नाशिनी ॥ २२०॥

भा० अनन्तर आश्च्योतन विधि ॥ काढ़ा मधु आसव स्नेह इनको दो उंगल ऊं चे से नेत्र में जोबून्द २ टपकाना है उसको आश्च्योतन कहा है वोह हित है ॥
॥ २१४॥ लेखन में आठ बून्द रोपण में दशबून्द ॥ स्नेह में बारह बून्द कहे हैं ॥ शीतल में सील गरम ॥ २१५॥ उष्ण में शीत होवे ऐसे सब जगह निश्च यहै । वात में तिक्त तथा स्निग्ध पित्त में मधुर और शीतल ॥ २१६॥ कफ में ति क्त उष्ण रूक्ष क्रमसे आश्च्योतन हित है ॥ सब आश्च्योतनोंकी सौ मा त्रा होती हैं॥ २१७॥ उसके अनन्तर नेत्रों को औषधों के प्रयोग से ॥ आश्च्यो तन न करना चाहिये रातमें किसी से कभी ॥ २१८ ॥ [वोह जैसे]
बेल आदि पञ्चमूल और कटेली अंडी सहिंजन इनका ॥ काढ़ा आश्च्योतन में गरम सील वाताभिष्यन्द का नाशक है ॥ २१९ ॥ [अनन्तर पिंडी विधि]
युक्त औषध के कल्क की पिंडी कवल मात्रा से ॥ वस्त्र के टुकड़े से बन्धी हुई नेत्र के अभिष्यन्द को नाशक है ॥ २२०॥

स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्तेसा शीतला मता ॥
रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥
२२१॥ [सा यथा।] धात्री विरचिता पित्ते शिग्रु प
त्र कृता कफे ॥ [अथ विडालक विधिः।].
विडालको वहिर्लेपो नेत्र पक्ष्म विवर्जितः॥ तस्य

मात्रा परि ज्ञेया मुखालेप विधानवत् ॥ २२२॥ यष्टी
गैरिक सिन्धूत्थ दार्वी तार्क्ष्यैः समांशकैः ॥ जलपि
ष्टैर्बहि र्लेपः सर्व नेत्रामया पहः ॥ २२३॥

[अथ तर्पण विधिः] वाता तप रजोहीने वेश्मन्युत्तान
शायिनः ॥ अभितो माष चूर्णेन क्लिन्नेन परि पिण्ड
तौ ॥ २२४॥ समौ दृढौ च संबाधौ कर्त्तव्यौ नेत्र कोशयोः
॥ पूरयेत् घृत मण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ २२५॥
सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेनवा ॥

भा० स्निग्ध उष्ण पिंडिका वात में और पित्तमें वो शीतल कही है ॥ रूखी उष्ण कफ में कही है ॥ येह विधि बुद्धि वानों ने कहीहै ॥ २२१॥ वोह जैसे। आवलों से बनाई हुई टिकिया पित्तमें। सहिंजने के पत्तों की कफमें हित है ॥

[अनन्तर विड़ालक विधि ॥ नेत्र पक्ष्मसे रहित बाहर लेपको विड़ालक कहतेहैं ॥ उसकी मात्रा मुख आलेप के विधान समान जाननी चाहिये ॥ २२२॥ मुलहठी गेरू सैन्धव दारहरदी रसौत इनको सम भाग लेकर ॥ जलसे पीसके बाहर लेप किया हुवा सब नेत्र रोगोंका नाशक है ॥ २२३॥

[अनन्तर तर्पण विधिः।] वात आतप धूल इनसे रहित घरमें चित सोये हुवे के ॥ नेत्र में चारों तरफ उड़द के गीले चून को लगावे ॥ २२४॥ सम और दृढ़ आंखों के चारों तरफ से घेर करे जैसे कवेरी होती है ॥ उसके भीतर ढिघला घृत वा मांड वा सील गरम जल इसे ॥ २२५॥ अथवा सौवारका धोया घृत या दूधका घृत इनसे भरे ॥

निमग्नान्यदि पक्ष्माणि यावत् स्यु स्तावदेव हि ॥
॥ २२६॥ पूरयेत् मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः॥
भिषग्भिरेष विख्यात स्तर्पणस्योदितो विधिः॥२२७॥
यद्रूक्षञ्च परिष्यन्दि नेत्रं कुटिल माविलम्॥ शीर्ण

पक्ष्म शिरोत्पात कृच्छ्रोन्मीलनं संयुतम् ॥ २२८ ॥
तिमिरार्जुन शुक्राद्ये रभिष्यन्दाधि मन्थकैः॥ शु-
ष्काक्षि पाक शोथाभ्यां युतं वात विपर्य्ययैः॥२२९
दत्तेन तर्पयेत् सम्यङ् नेत्र रोग विशारदः॥ तर्पणं
धारये द्वर्त्म रोगे वातां शतं वुधैः॥ २३०॥ स्वस्थे क
फे सन्धि रोगे वाचां पञ्च शतानि च॥ षट् शता
नि कफे कृष्ण रोगे सप्त शतानि हि॥ २३१॥ दृष्टि
रोग शता न्यष्टा वधिमन्थे सहस्रकम् ॥

भा० निमग्न नेत्र पक्ष्म जब तक होते हैं तब तक ही भरे ॥ २२६॥ उसके अनन्तर धीरे २ खोले ॥ वैद्यों ने येह तर्पण की विधि प्रसिद्ध कही है ॥ २२७॥ जो रूखा परिष्यन्दि कुटिल मैला ॥ नेत्र पलकें गिरीहुई शिरोत्पात कष्टसे उन्मीलन से युक्त ॥ २२८॥ तिमिर अर्जुन शुक्र आदिसे युक्त और अभिष्यन्द अधि मन्थक इनसे ॥ तथा शुष्क नेत्र पाक शोथ इनसे युक्त वात विरुद्धों से॥२२९॥ दिये हुवे औषध से अच्छी तरह पर नेत्र रोग का जानने वाला तर्पण करे॥ व र्त्म रोगमें सौमात्रा तर्पण धारण करे ॥ २३०॥ स्वस्थ में कफ के सन्धिरोग में पा न सौ ॥ और छ सौ तथा कफ के कृष्ण रोग में सात सौ ही ॥ २३१॥ दृष्टि रोग में आठसौ अधिमन्थ में हजार ॥

सहस्रं वात रोगेषु धार्य्यमेवहि तर्पणम् ॥ २३२॥ पूर्णो
चापाङ्ग मार्गेण स्रावयित्वाक्षि शोधयेत् ॥ स्विन्नेन
यव पिष्टेन स्नेह वीर्य्ये रितं ततः॥ २३३॥ यथा स्वन्धू
म पानेन कफमस्य विरेचयेत्॥ एकाहं वा त्र्यहं वा
पि पञ्चाहं तर्पणञ्चरेत् ॥२३४॥ तर्पणे तृप्ति लि
ङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् ॥ सुखं स्वभाववोध
त्वं वैशद्यं नेत्रपाटवम् ॥२३५॥ निर्वृत्ति र्व्याधिशा

न्तिष्व क्रिया लाघव मेवच ॥

(क) निर्वृत्तिः सुखं क्रियालाघवम्। नेत्रस्य क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुता। गुर्वाविल मति स्निग्ध मश्रु कण्डूप देहवत् ॥ घर्षतोद युतं नेत्र मतित र्पित मादिशेत् ॥ २३६ ॥ आस्राव शोफ पीडाद्य मुपदेह समाकुलम् ॥ रूक्ष मस्राव मरुणं नेत्रं स्याद्धीन तर्पितम् ॥ २३७ ॥ अनयोर्दोष बाहुल्या त् प्रयतेत् चिकित्सिते ॥ रूक्ष स्निग्धोपचारा भ्या मेतयोः स्यात्प्रति क्रिया ॥ २३८ ॥

(अनयोः अतितर्पित हीन तर्पितयोः)

भा० और वातरोग में हज़ार मात्रा तर्पण रखना ही चाहिये ॥ २३३ ॥ अपाङ्ग मार्ग से पूर्ण में स्राव कराकर नेत्र शोधन करावे ॥ स्विन्न जवके आटे से स्नेह वीर्य में जो कहा है उस्से ॥ २३३ ॥ अपने तौर पर धूम पान करके इसके कफको निकाले ॥ एकदिन वा तीनदिन अथवा पांचदिन तर्पण करे ॥ २३४ ॥ तर्पण इन नेत्रके तृप्ति लक्षणों को जानलेवे ॥ सुख स्वप्न अवबोधता वैशद्य नेत्र की पटुता ॥ २३५ ॥ सुख क्रिया लाघव रोगको शान्ति येह लक्षण हैं ॥

(क) सुख। नेत्रकी क्रिया में अर्थात् निमेष उन्मेष आदि में लघुता। भारी मैला अति स्निग्ध और अश्रु खुजली इन्के मानिन्द ॥ घर्ष तोद से युक्त अर्थात् पीडा विशेष इनसे युक्त नेत्र को अति तर्पित कहे ॥ २३६ ॥ आस्राव सूजन पीड़ा इन्हकी सी व्याकुल ॥ रूखी पानीका जाना अरुण नेत्र होते हैं हीन तर्पण से ॥ २३७ ॥ इनकी दोषों की अधिकता से चिकित्सा में यत्न करे ॥ रूक्ष स्निग्ध उपचार से इनकी चिकित्सा होती है ॥ २३८ ॥

(अति तर्पित और हीन तर्पितों की)

दुर्दिना त्युष्ण शीतेषु चिन्तायां संभ्रमेषु च ॥ अ- शान्तो पद्रवे चापि तर्पणं न प्रशस्यते ॥ २३९ ॥

[अथ पुटपाक विधिः] द्वे बिल्वे स्निग्ध मांसस्य परद्र व्य पलं मतम्॥ द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेष- येत् ॥ २४०॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरि वेष्टि- तम् ॥ पुट पाक विधानेन तत् पश्चात्तद्रसं बुधैः॥ ॥२४१॥ तर्पणोक्तेन विधिना यथा वदव धारयेत् ॥ दृष्टि मध्ये निषेच्यः स्यान्नित्य मुत्तान शायिनः॥ २४२॥ स्नेहनो लेखन श्चैव रोपण श्चेति स त्रिधा। हितः स्निग्धोऽति रूक्षस्य स्निग्धस्य स तु लेखनः॥४३

भा० दुर्दिन से अतिशीत में उष्ण में चिन्ता में संभ्रम में ॥ उपद्रव के शान्त न होने में नेत्र तर्पण प्रशस्त नहीं है ॥२३९॥ [अनन्तर पुटपाक विधिः।] हरिण आदि का मांस दो पल और औषध पल २ भर ॥ और द्रव पावभर सब को एक जगह पीसे ॥ २४०॥ इन सबको एक जगह मिलाकर पत्तोंसे अच्छी त रह लपेटके ॥ पुटपाक के विधान से उसको पकाकर उसके अनन्तर उस र सको ॥ २४१॥ तर्पण में कहे हुवे विधानसे अच्छी तरह पर धारण करे॥ नि त्य चित सुलाकर दृष्टि के बीचमें डाले ॥ २४२॥ वोह स्नेहन लेखन रोपण ऐसे तीन प्रकार होता है ॥ अति रूक्ष को स्निग्ध हित होता है और स्निग्धको लेख न हित है ॥ २४३॥

(क) दृष्टे र्बलार्थ मितरः पित्तासृग्व्रण वातनुत्।

(इतरो रोपणः) स्नेह मांस वसा मज्ज मेदः स्वादौष धैः कृतः॥ स्नेहनः पुटपाकः स्याद्धार्योऽयं वाक् श तं नरः॥ २४४॥ जाङ्गलानां यकृन्मांसै र्लेखन द्रव्य संयुतैः॥ कृष्ण लोह रजस्ताम्र शङ्ख विद्रुम सिन्धु जैः॥ २४५॥ समुद्र फेन कासीसं स्रोतोऽञ्जन दधि म स्तुभिः॥ लेखनो वाक् शतं तस्य परन्धारण मिष्य-

ते ॥ स्तन्य जाङ्गल मध्वाज्य तिक्त द्रव्य विपाचितम् ॥

भा० दृष्टि के बलके वास्ते और बाक़ी पित्त रक्त व्रण वात इनके नाशक हैं ॥ रोपण । तेल मांस वसा मज्जा मेद औषध से पकाये हुवे । येह स्नेहन पुट पाक है ॥ इस मनुष्य सौ मात्रा तक धारण करे ॥ २५४॥ हरिण आदिकों के यकृत् मांस लेखन द्रव्य से युक्त ॥ कान्ति लोह का चूरा ताम्बा पारद मूंगा सैन्धव ॥२५५॥ समुद्र फेन कसीस सुरमा दही का पानी इनसे लेखन सौ मात्रा तक रखे ॥ २५६॥ स्त्री का दूध मृगमांस मधु तिक्त द्रव्य से पकाया घृत ॥

लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुट पाकस्तु रोपणः ॥ [तिक्तक द्रव्याण्याह] निम्बामृता वृष पटोल निदिग्धिकाभिः स्यात् पञ्च तिक्तक इति प्रथितो गणोऽयम् ॥ २५८॥ आचरेत् तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्ति दर्शने ॥ व्यापत्ति दर्शने मिथ्या कृत पुटपाक जनित व्याधि दर्शने ॥

तेजांस्यनिल माकाश मादर्शम्भा स्वराणि च ॥ नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ २५९॥

भा० येह रोपण पुटपाक लेखन से तिगुना धारण करना चाहिये ॥ २५७॥ तिक्तक द्रव्यों को कहते हैं ॥ नीम गिलोय वांसा पटोल कटेली आदसे ॥ पंच तिक्तक होता है ॥ इस प्रकार यह गण कहा है ॥ २५८॥ रोग दर्शन में तर्पण में कही किया करे ॥ (क) मिथ्या किये हुवे पुटपाक से उत्पन्न रोगों के देखने में । तेज वात आकाश आइना और प्रकाशवाली वस्तु इनको ॥ तर्पण किया हुवा और पुटपाक किया हुवा न देखे ॥ २५९॥

[अथाञ्जन विधिः।] अथ संपक्व दोषस्य प्राप्त मञ्जन माचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनम् मतम् ॥ २६०॥ [तद्यथा] रसो वटीस्तथा

चूर्ण मिति त्रिविध मञ्जनम् ॥ यथा पूर्वं बलं तेषु स्नेह माहु र्मनीषिणः ॥ २५१ ॥ तत्र प्रत्येकं त्रिधा प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहन ञ्चेति लिङ्गानि तेषां विस्तरतः शृणु ॥ २५२ ॥ लेखनं क्षार तीक्ष्णा म्ल रसै रञ्जन मुच्यते ॥ नेत्र वर्त्म शिराजाल स्रोत शृङ्गाटक स्थितम् ॥ २५३ ॥ मुख नासाक्षि भिर्दोष मुत्क्लिश्य स्रावये च्च तत् ॥ कषायं तिक्तकं चापि सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ २५४ ॥ स्नेहस्य शैत्यात् व-र्ण्यं स्यात् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेह मण्डं तदञ्जनं स्यात् प्रसादनम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर अञ्जन विधिः। अनन्तर पकेऊवे दोषवाले को अञ्जन करे ॥ जिससे अञ्जन किया जाता है उस द्रव्यको अञ्जन कहते हैं ॥ २५० ॥ वोह जैसे] रसबती तथा चूर्ण ऐसे तीन प्रकार अंजन होता है ॥ उनमें पहले २ स्नेह - बलयुक्त मुनियों ने कहा है ॥ २५१ ॥ वोह हरएक तीन प्रकार लेखन रोपण तथा ॥ स्नेह न इस प्रकार उनके लक्षण विस्तार से सुनो ॥ २५२ ॥ क्षार तीक्ष्ण अम्ल रसों से लेखन अञ्जन कहते हैं ॥ नेत्र वर्त्म शिराजालका शृङ्गाटक में स्थित ॥ २५३ ॥ मुख नाक आंख इनसे दोषको उखेड़ कर वोह बहाता है ॥ कषाय तिक्तभी स्नेहके सहित रोपण कहा है ॥ स्नेहको शीतला होनेसे व्रणको हित होता है और दृष्टि के बलको बढ़ाने वाला है ॥ मधुर स्नेह से युक्त जो अञ्जन होता है प्रसादन है ॥ २५५ ॥

दृष्टि दोष प्रसादार्थं स्नेह नार्थञ्च तद्धितम् ॥ रेखाङ्क मात्रा वर्त्ति स्तु लेखनी स्यात् प्रमाणतः ॥ २५६ ॥ सार्द्धे करेणु कमिता रोपणी वर्त्ति रिष्यते ॥ क्रियते स्नेहनी वर्त्ति र्द्वि करेणु कमात्रया ॥ २५७ ॥

ते ॥ स्तन्य जाङ्गल मध्वाज्य तिक्त द्रव्य विपाचितम् ॥

भा० दृष्टि के बलके वास्ते और बाक़ी पित्त रक्त व्रण वात इनके नाशक हैं ॥ रोपण । तेल मांस वसा मज्जा मेद औषध से पकाये द्रवे । येह स्नेहन पुट पाक है ॥ इस मनुष्य सौ मात्रा तक धारण करे ॥ २५४॥ हरिण आदिकों के यकृत् मांस लेखन द्रव्य से युक्त ॥ कान्ति लोह का चूरा तास्वा शंख मूंगा सैन्धव ॥ २५५॥ समुद्र फेन कसीस सुरमा दहीका पानी इनसे लेखन सौ मात्रा तक रखे ॥ २५६॥ स्त्री का दूध मृगमांस मधु तिक्त द्रव्य से पकाया घृत ॥

लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुट पाकस्तु रोपणः॥ [तिक्तक द्रव्याण्याह] निम्बामृता वृष पटोल निदिग्धिकाभिः स्यात् पञ्च तिक्तक इति प्रथितो गणोऽयम् ॥ २५८॥ आचरेत् तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्ति दर्शने ॥ व्यापत्ति दर्शने मिथ्या कृत पुटपाक जनित व्याधि दर्शने ॥

तेजांस्यनिल माकाश मादर्शम्भा स्वराणि च ॥ नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुट पाकवान् ॥ २५६॥

भा० येह रोपण पुटपाक लेखन से तिगुना धारण करना चाहिये ॥ २५७॥ तिक्तक द्रव्यों को कहते हैं ॥ नीम गिलोय वांसा पटोल कटेली आदसे ॥ पंच तिक्तक होता है ॥ इस प्रकार यह गण कहा है ॥ २५८॥ रोग दर्शन में तर्पण में कही क्रिया करें ॥ (क) मिथ्या किये हुवे पुटपाक से उत्पन्न रोगों के देखने में। तेज वात आकाश आइना और प्रकाशवाली वस्तु इनको ॥ तर्पण किया हुवा और पुटपाक किया हुवा न देखे ॥ २५६॥

[अथाञ्जन विधिः।] अथ संपक्क दोषस्य प्राप्त मञ्जन माचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनम् मतम् ॥ २६०॥ [तद्यथा] रसो वटीस्तथा

चूर्णमिति त्रिविध मञ्जनम् ॥ यथा पूर्व्वं बलं तेषु स्नेह माहुर्मनीषिणः ॥ २५१ ॥ तत्प्रत्येकं त्रिधा प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहनञ्चेति लिङ्गानि तेषां विस्तरतः शृणु ॥ २५२ ॥ लेखनं क्षार तीक्ष्णा म्ल रसै रञ्जन मुच्यते ॥ नेत्र वर्त्म शिराजाल स्रोत शृङ्गाटक स्थितम् ॥ २५३ ॥ मुख नासादि भिर्दोष मुत्क्लिश्य स्रावयेच्च तत् ॥ कषायं तिक्तकं चापि सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ २५४ ॥ स्नेहस्य शैत्यात् वर्ण्यं स्यात् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेह सम्पन्नं तदञ्जनं स्यात् प्रसादनम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर अञ्जन विधिः। अनन्तर पकेहुवे दोषवाले को अञ्जन करे ॥ जिससे अञ्जन किया जाता है उस द्रव्यको अञ्जन कहते हैं ॥ २५० ॥ वोह जैसे] रसवटी तथा चूर्ण ऐसे तीन प्रकार अंजन होता है ॥ उनमें पहले २ स्नेह . बलयुक्त मुनियों ने कहा है ॥ २५१ ॥ वोह हरएक तीन प्रकार लेखन रोपण तथा ॥ स्नेह न इस प्रकार उनके लक्षण विस्तार से सुनो ॥ २५२ ॥ क्षार तीक्ष्ण अम्ल रसों से लेखन अञ्जन कहते हैं ॥ नेत्र वर्त्म शिराजालका शृङ्गाटक में स्थित ॥ २५३ ॥ मुख नाक आंख इनसे दोषको उखेड़कर वोह बहाता है ॥ कषाय तिक्तभी स्नेहके सहित रोपण कहा है ॥ स्नेहको शीतता होनेसे व्रणकी हित होना है और दृष्टि के बलको बढ़ाने वाला है ॥ मधुर स्नेह से युक्त जो अञ्जन होना है प्रसादन है ॥ २५५ ॥

दृष्टिदोष प्रसादार्थं स्नेह नार्थञ्च तद्धितम् ॥ ऐरण्ड मात्रा वर्त्तिस्तु लेखनी स्यात् प्रमाणतः ॥ २५६ ॥ सार्द्धं करेण कमिता रोपणी वर्त्तिरिष्यते ॥ क्रियते स्नेहनी वर्त्ति र्द्वि हरेणु कमात्रया ॥ २५७ ॥

स्य मात्रानु पिष्टा वर्त्ति मिता मता ॥ चूर्णे तु लेखनं वैद्यै र्द्वि शलार्कं प्रदीयते ॥ २५८ ॥ रोपणं त्रिशला कं स्या च्चतस्रः स्नेह नाञ्जने ॥

(चतस्रः शलाकाः स्नेहना ञ्जने चूर्णे)

मुखेयां मुकुला कारा कलाय परि मण्डला ॥ अ ष्टाङ्गुला शलाका स्या दश्मजा धातुजाथवा ॥ ५९ ॥

(कलाय परि मण्डला अग्रे कलाय वद्वर्त्तु ला ।)

ताम्र लोहाश्म संजाता शलाका लेखने मता ॥ सु वर्ण रजतोद्भूता स्नेहने समुदा हृता ॥ २६० ॥

भा॰ दृष्टि दोष की सफ़ाई के अर्थ और स्नेहन के अर्थ दोन्ह दिन है ॥ प्रमाण से अंडी के बीज के समान लेखनी बत्ती होती है ॥ २५६ ॥ और डेढ़ में बड़ी के बीज समान रोपणी वत्ति कही है ॥ और स्नेहनी वत्ति दो में बड़ी के बीज के समान जानी है ॥ रसांजन की मात्रा पिष्ट बत्ती के समान होती है ॥ लिखन चूर्ण वैद्यों के द्वारा दो सलाई दिया जाता है ॥ रोपण तीन सलाई और स्नेहन अञ्जन में चार सलाई दिया जाता है ॥

जो मुख में फूल की कली के समान मटर के बराबर गोलाई ॥ आठ उं गल की सलाई होती है पत्थर की अथवा धातु की ॥ २५८ ॥ अग्र में मट र के समान गोल । ताम्बा लोहा पत्थर इनकी सलाई लेखन में कही है ॥ सोने चान्दी की सलाई स्नेहन में कही है ॥ २६० ॥

अङ्गुली च मृदुत्वे न रोपणे संप्रयुज्यते ॥ कृष्ण भा गा दधिं त्निम्ब्या दपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ २६१ ॥ हे मन्ते शिशिरे चैव मध्यान्हे ऽञ्जन मिष्यते ॥ पूर्वा न्हे वापराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ २६२ ॥ व र्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते तु सदैव हि ॥ अथवा

सर्वदा प्रातः सायं वाञ्जन माचरेत् ॥ २६३॥ नाति
शीतोष्ण वाताभ्र वेलायां तत् प्रयुज्यते ॥ श्रान्तोऽ
थ रुदिते भीते पीत मद्ये नवज्वरे ॥ २६४॥ अजीर्णे
वेगघाते च नाञ्जनं संप्रयुज्यते ॥ रागोप देशो तिमि
रं शूलं संरम्भ मेवच ॥ २६५॥ निद्रा क्षयञ्च कु-
रुते निषिद्धे युक्त मञ्जनम् ॥

भा० अंगुली मुलायम होने से रोपण में दीजाती है ॥ अञ्जन कृष्ण भाग को छोड़ कर अपाङ्ग तक् लगावे ॥ २६१॥ हेमन्त और शिशिर में मध्यान्ह में अञ्जन कहा है ॥ पूर्वान्ह अथवा अपरान्ह में ग्रीष्म शरद में कहा है ॥ २६२ ॥ वर्षा में बादल न होने पर न बहुत गरमी में और वसन्त में सदा ही अञ्जन देवे ॥ अथवा सर्वदा सांझ सवेरे अञ्जन लगावे ॥ २६३॥ उसको अति शीत उष्ण वात अभ्र ऐसे समय में न लगावे ॥ श्रान्त रुदित भीत इनको और मद्य पीये की नवज्वर वालेको ॥ २६४॥ अंजन न करे और अजीर्ण में वेगके अव रोध में भी अञ्जन नहीं लगाया जाता है ॥ राग उपदेश तिमिर शूल संरम्भ ॥ २६५॥ और निद्रा नाश इनको निषिद्ध में किया हुवा अञ्जन करता है ॥

[अथ वर्त्तीलेखनी यथा]

शङ्खनाभि विभीतस्य मज्जापथ्या मनःशिलाः ॥ पि
प्पली मरिचं कुष्ठं वचाचेति समांशकम् ॥ २६६ ॥
छाग क्षीरेण संपिष्य वर्त्तिं कुर्याद् यवोन्मिताम् ॥
एरण्ड मात्रां संपिष्य जलैः कुर्याद्यथाञ्जनम् ॥ २६७
॥ तिमिरं मांस वृद्धिञ्च काचं पटल मर्बुदम् ॥ रात्र्य
न्धं वार्षिकं पुष्पं वर्त्तिश्चन्द्रोदया हरेत् ॥ २६८ ॥

[इति चन्द्रोदया वर्त्ति लेखनी]

भा० अनन्तर लेखनी वर्त्ती जैसे। शंख की नाभ बहेड़े की गिरी हड़ मैनसिल

पीपल मिरिच कूठ वच इनको बराबर लेकर ॥ २६६॥ बकरी के दूधसे पीस के जव बराबर वत्ती करे ॥ अरंडी के बराबर जलसे पीसकर अंजन करे ॥ ॥ २६७॥ तिमिर मांस वृद्धि काच पदल अर्बुद ॥ रात्र्यन्ध बरसानी फूली । इनको यह चन्द्रोदय वर्त्ति नाश करती है ॥ २६८॥

[इति चन्द्रोदयवर्त्ति लेखनी ।]

[अथ रोपणी वर्त्तिः। अशीति स्तिल पुष्पाणि षष्टि पिप्पलि तण्डुलाः ॥ जाती पुष्पाणि पञ्चाशन्मरि चानि तु षोडश ः ॥ २६९॥ सूक्ष्म पिष्टाम्बुना वर्त्तिः कृता कुसुम का भिधा ॥ तिमिरा र्जुन शक्राणां नाशि नी मांस वृद्धि नुत ॥ एतस्या अञ्जने प्रोक्ता मात्रा सा र्द्ध हरेणुका ॥ (इति कुसुमिका रोपणी वटी)

भा० अनन्तर रोपणी वर्त्ति ॥ अस्सी तिलके फूल साठ पीपल के दाने । चमेली के फूल पचास सोलह मिरच ॥ २६९॥ जल से इनको बारीक पीस कर कुसुमि का नाम वत्ती बनावे ॥ यह तिमिर अर्जुन शक्र इनको नाश करने वाली और मांस वृद्धि की नाशक है ॥ २७०॥ अंजन में इसकी मात्रा डेढ़ मेवड़ी के समान कही है ॥ ॥ इति कुसुमिका रोपणी वटी ॥

[अथ स्नेहनी वर्त्तिः] धात्र्यक्ष पथ्या बीजानि एक द्वि त्रि गुणानि च ॥ पिष्ट्वा वर्त्तिं जलैः कुर्य्या दञ्जनं द्वि हरेणुकम् ॥ २७१॥ नेत्र स्रावं हरत्याशु वातरक्त रु जन्तथा ॥ [अथ रस क्रिया लेखनी यथा]

तुत्थ माक्षिक सिन्धूत्था सिता शंख मनः शिलाः ॥ गैरिकं सिन्धु फेनञ्च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ २७२॥ संयोज्य मधुना कुर्य्या दञ्जनार्थं रस क्रियाम् ॥

वर्त्म रोगार्म्मति मिरङ्गा च शुक्रहरीं पराम् ॥ २७३॥
[अथ रोपणी रस क्रिया] रसाञ्जनं सर्ज्जरसो जातीपु
ष्पं मनःशिलाः ॥ समुद्र फेणी लवणं गैरिकं मारि-
चन्तथा ॥ २७४॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्न
वर्त्मने ॥ अञ्जनं क्लेद कण्डूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोह-
णम् ॥ २७५॥

भा० अथ स्नेहनी वर्त्ति ॥ आंवले बहेड़े हड इनके बीज क्रमसे एक दो तीन गुना ॥ इनको जलसे पीसकर दो मेवड़ी के बीज समान अञ्जन करे ॥ २७१॥ येह नेत्र स्रावको शीघ्र नाश करता है ॥ तथा वात रक्त की पीड़ा को नाश करता है ॥ [अनन्तर रसक्रिया लेखनी जैसे। लीला थोथा सोना माखी सैन्धव मिश्री शंख मेनसिल ॥ गेरू समुद्रफेन मिरच इनको पिसवावे ॥ ॥ २७२॥ मधुके साथ मिलाकर अञ्जनके अर्थ रस क्रिया करे ॥ येह वर्त्म रोग अर्म्म तिमिर कांच शुक्र इनको नाश करने वाली है ॥ २७३॥ [अनन्तर रोपण रस क्रिया ॥ रसवत राल चमेली के फूल मैनसिल ॥ समुद्र फेन लवण गेरू तथा मरिच के साथ पीसके प्रक्लिन्न वर्त्मन में अञ्जन क्लेद कण्डूका नाशक और पलकों का प्ररोहण है ॥ २७५॥

[अथ स्नेहनी रस क्रिया] कनकस्य फलं घृष्ट्वा मधु
ना नेत्रमञ्जयेत् ॥ ईषत्कर्पूर सहितंस्तत नेत्र प्र
सादनम् ॥ २७६॥ [अथ चूर्ण तल्लेखनं यथा]
दत्ताण्डत्व ग्छिलांकाच शङ्ख चन्दन सैन्धवैः॥
अञ्जनं हरते नित्यं सर्वानक्षि गदान् बलात् ॥ २७७॥
(दत्तः कुक्कुटः तथा च निघण्टुः)
कृकवाकुस्तथा दत्तः कालज्ञोऽथ शिखण्डिक इति।

भा॰ अनन्तर स्नेहनी रस क्रिया ॥ निर्मली के फल को मधुके साथ घिसकर नेत्र में अंजन करे ॥ थोड़े से कपूर के साथ नेत्र प्र सादन कहाहै ॥ २७६ ॥
अनन्तर लेखन चूर्ण जैसे । मुरगे के अंडेके छिलके शंख चन्दन सैन्धव ॥ इनका अञ्जन सब नेत्र के रोगोंको बलात् कारसे नाश करताहै ॥ २७७ ॥
मुरगा । उस प्रकार निघंटु में कहाहै ॥ कृक वाकु तथा दक्ष कालज्ञ और शिखंडिक इति ॥

[अथ रोपण चूर्णम् ।]

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सव्यगा स्राव्य वारिणा ॥ गृह्णी या त्तज्जलं सर्वन्त्यजे चूर्ण मधोगतम् ॥ २७८ ॥
शुष्कं तच्च जलं सर्व्वं पर्पटी सन्निभं भवेत् ॥ विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक् त्रिवेलं त्रिफला रसैः ॥ २७९ ॥
कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निःक्षिपेत् ॥ अञ्जये न्नयनन्तेन सर्वदोष प्रशान्तये ॥ २८० ॥ समस्त नेत्र रोगघ्नं चूर्ण मेतन्न संशयः ॥

भा॰ अनन्तर रोपण चूर्ण ॥ सिलपर खपरिया को पीसकर अच्छी तरह पानी से घोलकर ॥ उसका सब जल ग्रहण करे और नीचे के चूर्णको त्यागदेवे ॥ २७८ ॥ जब वोह सब जल सूक जावे तब वोह पपड़ी के समान होजाता है ॥ पीस कर तीन वार त्रिफला के रस से भावना देवे ॥ २७९ ॥ उसमें कपूर का चूरण दसवां हिस्सा डाले । उसे सब दोषों की शान्ति के अर्थ नेत्र को आंजे। २८० ॥ यह चूर्ण सब रोग का नाशक है इसमें कुछ संशय नहीं ॥

अथ स्नेहनं चूर्णम् । अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेन् त्रिफला रसैः ॥ सप्त वेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ २८१ ॥ (सौवीरं श्वेत मञ्जनम् ।)
अञ्जयेत्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषो हितम् ॥ सर्व्वा न क्षि विकारां स्तु हन्या देतन्न संशय ॥ २८२ ॥

भा॰ अनन्तर स्नेहन चूर्ण॥ आगमें तपाया हुवा सुरमा त्रिफला के रसमें बुझा वे॥ सात बार तथा स्त्री के दूधसे सींच के बारीक पीसकर॥ २८०॥ उसे नेत्रमें हर रोज अंजन करे वोह नेत्रके हित है॥ सब नेत्रके रोगोंको नाश करता है इ-समें कोई संशय नहीं॥ २८१॥

[अथ प्रत्यञ्जन विधिः]

गत दोष मपेताश्रु प्रपश्यत् सम्यगम्भसि॥ प्रत्ता ल्यादि यथा दोषं कार्य्यं प्रत्यञ्जनन्ततः॥ २८२॥

तथा निर्वात देशेदि धावनं सम्प्रयोजयेत्॥ प्रत्य-ञ्जने कृते दद्याच्चूर्णं तीक्ष्ण प्रसादनम्॥ २८३॥

[तद्यथा] शुद्ध नागेन्द्र तुल्यन्तु पाद्रं सूतं विनिःक्षिपेत्। कृष्णाञ्जनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत्॥ २८४॥

दशमांसेन कर्पूरं तस्मिं चूर्णे विनिः क्षिपेत्॥ एतत्प्र त्यञ्जनं नेत्रे गद जिन्नयनामृतम्॥ २८५॥

(कृष्णाञ्जनं स्रोतोऽञ्जनम्) [तथा च मदनपालः]

स्रोतोऽञ्जनन्तु तद्विद्या दञ्जनाभं यदञ्जनम्॥

भा॰ अनन्तर प्रत्यञ्जन की विधि॥ गत दोष और गत अश्रुपानी में अच्छी तरह देखे॥ आंखों को धोके दोषके अनुसार प्रत्यञ्जन करना चाहिये॥ तथा निर्वात देशमें नेत्र धोवे॥ प्रत्यञ्जन करने के अनन्तर प्रसादन तीक्ष्ण चूर्ण देवे॥ २८३॥ (वोह जैसे) शुद्ध शीशे के बराबर शुद्धपारा डाले॥ काला सुरमा इन दोनों के बराबर इन सबको एक जगह पीसे॥ २८४॥ उस चूर्ण में दसवां हिस्सा कपूर डाले॥ यह प्रत्यञ्जन नेत्र रोग का जीतने वाला नेत्रा मृत है॥ २८५॥ काला सुरमा। वैसे मदनपाल ने कहा है॥ स्रोतोऽञ्जन उस को जानना चाहिये जो काजल के समान होता है॥

[नयनामृतं प्रत्यञ्जनम्]

[अथ दृष्टिप्रसादनी शलाका]
त्रिफला भृङ्ग शुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा ॥ गोमूत्र मध्वजा क्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ २८५ ॥
तच्छलाकां हरत्येव सर्वान् नेत्र भवान् गदान् ॥

[इति भेषजानां विधानानि]

[अथ भेषज्ज भक्षण समयः ॥ भैषज्य मभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ॥ कषायांस्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥ ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्य ग्रहणे नृणाम् ॥ किञ्चित्सूर्य्योदये जाते तथा दिवस भोजने ॥ २ ॥ सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥

भा० अनन्तर दृष्टि प्रसादनी शलाका ॥ त्रिफला भङ्गरा सोंठ इनका रस वैसेही घृत ॥ गोमूत्र मधु बकरी का दूध इनसे सीसे को तपाकर सींचे ॥ २८५ ॥ उसकी सलाई सब नेत्र के रोगों को नाश करती है ॥ ॥ इस प्रकार औषधों के विधान ॥ [॥ अनन्तर औषध भक्षण का समय ॥]
बुद्धिवान् प्रायशः औषधको सवेरे सेवन करे ॥ और कषायोंको विशेषकरके सवेरे सेवन करे । उसमें भेद कहा है ॥ १ ॥ मनुष्योंकी औषध ग्रहण में पांच प्रकार का काल जानना चाहिये ॥ कुछेक सूर्य्योदय के होनेमें तथा दिनके भोजनमें ॥ २ ॥ सायंकाल में और सायंकाल के भोजन में तथा फिरसे रात्रको ॥ येह पांच समय हैं ॥

तत्र प्रथम कालः] प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ॥ लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत् ॥ ३ ॥ [अथ द्वितीय कालः । भैषज्यं वि-

गुणे वाते भोजनाग्रे प्रशस्यते ॥ अरुचौ चित्र भोज्यै श्च मिश्रं रुचिर माहरेत् ॥४॥ समानवाते विगुणे मन्दे ऽग्नावपि दीपनम् ॥ दद्याद्भोजन मध्ये च भेषज्यं कुशलो भिषक् ॥५॥ व्यानकोपे तु भेषज्यं भोजनान्ते समाहरेत् ॥ हिक्का क्षेपक कम्पेषु पूर्वम- न्ते च भोजनात् ॥६॥ [अथ तृतीय कालः] उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादि कारिणि ॥ ग्रासे ग्रा- सान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्य भोजने ॥७॥ प्राणे प्रदु ष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते प्रदीयते ॥ औषधं प्राय शो धीरैः कालोऽयं स्यात् तृतीयकः ॥ ८ ॥

भा॰ उसमें प्रथम काल । प्रायः पित्त कफ के बढ़ने में विरेचन वमन के अर्थ ॥ और लेखन के अर्थ प्रातःकाल में विना भोजन किये औषध सेवन करे ॥ ३॥ [दूसरा काल । अपान वात के प्रकोपमें भोजन के पहिले औषध प्रशस्त है ॥ अरुचि में अच्छे स्वाद युक्त भोजनों में मिलाके सेवन करे ॥ ॥४॥ समान वात के बिगड़ने में और मन्दाग्नि में अतिदीपन ॥ औषध भोजन के बीचमें कुशल वैद्य देवे ॥ ५॥ व्यान वायुके कोपमें भोजन के अन्त में औषध सेवन करे ॥ हिचकी आक्षेप कम्प इनमें भोजन से पहिले और अन्त में औषध देवे ॥ ६॥ अनन्तर तीसरा काल ॥ स्वरभंगादि करनेवाले उदान वातके कोपमें सायंकाल के भोजनमें ग्रास २ के बीचमें औषध देना चाहिये ॥ ७ ॥ प्राण वात के दुष्ट होनेमें सायंकाल के भोजन के अन्तमें प्रायः औषधि दिया जाता है येह तीसरा काल है ॥ ८ ॥

[अथ चतुर्थ कालः] मुहुर्मुहु श्च तृट्छर्दि हिक्का श्वास गरेषु च ॥ सान्नञ्च भेषजं दद्या दिति काल श्चतुर्थकः ॥ ९ ॥ [अथ पञ्चम कालः]

ऊर्द्धजत्रु विकारेषु लेखने बृंहणे तथा ॥ पाचने श मने देया भनन्नं भेषजं निशि ॥ २०॥

[इति पञ्चम काल : ॥] [निरन्नस्य भेषजस्य गुण- माह] वीर्य्याधिकं भवति भेषज मन्नहीनम् ॥ ह- न्यात्तदामयम संशय माशु चैव ॥ तद्बाल वृद्ध युवती मृदुभिश्च पीतम् ॥ ग्लानिं परान्नयति चाशु बल क्षयञ्च ॥ २१ ॥ [सान्नस्य भेषजस्य गुणमाह] शीघ्रं विपाक मुपयाति बलं न हिंस्या। दन्ना वृतन्न च मुहुर्वदना न्निरेति ॥ एतद्धितं स्थविर बाल कृ शाङ्गनाभ्य: । प्राग्भोजना यदशितं किल तच्च तद्वत् ॥ २२ ॥

भा० अनन्तर चौथा काल । तथा वमन हिचकी श्वास विष इनमें अन्नके सहित औषध देवे यह काल चौथा है ॥ ९॥ अनन्तर पंचम काल ॥ गलेकी हड्डी के ऊपर के रोगोंमें और लेखन बृंहण में तथा ॥ पाचन शम न में रातको विना भोजन के औषध देवे ॥ २०॥ इति पंचम काल ॥ निरन्न औषध का गुण कहते हैं ॥ अन्नहीन औषध वीर्य्याधिक होता है ॥ और उनरोगों को निःसंशय शीघ्र नाश करता है ॥ और वोह बालक वृद्ध युवती तथा मृदु इनका पीया हुवा ॥ अत्यन्त ग्लानिको करता है और शीघ्र बलका नाश करता है ॥ २१ ॥ [अन्नके सहित औषधका गुण॥] अन्न से युक्त औषध शीघ्र विपाक को प्राप्त होता है और बलको नाश नहीं करता उसको मुखसे फि र न निकाले ॥ येह वृद्ध बालक दुर्बल स्त्री इनको हित है ॥ जो भोजन के पहिले सेवन किया गया है वोह उसीके समान है ॥ २२॥

(अन्नावृत वत् भेषज मिति शेष:)

औषध शेषे भुक्तं भोजन शेषे यदौषधं पीतम् ॥ न करोति गदोप शमनं प्रकोप यत्यन्य रोगांश्च ॥ २३॥

(पीतमित्युपलक्षणं लीढादिकं च।)

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता॥
लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः॥२४॥
क्लमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रममूर्च्छा शिरोरुजः॥ अर
तिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः॥ २५॥

[अथ भेषजलक्षणविधिमाह चरकः]

देवान् गुरूंस्तथा विप्रान् पूजयित्वा प्रणम्य च॥ आ
शिषश्च समादाय श्रद्धया भेषजं भजेत्॥२६॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा॥ सुधेवो
त्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते॥ २७॥

भा० अन्नसे युक्त औषध। औषधशेषमें भोजन किया हुवा और जो औषध भोजन के शेषमें पीया गया। रोगोंका शमन नहीं करता और अन्य रोगों को प्रकोप करता है॥ २३॥ खाया आदिभी। वातका अनुलोम स्वस्थता क्षुधा तृषा चित्तकी प्रसन्नता॥ हलकापन इन्द्रियों में डकार येह जीर्ण औषधका लक्षण है॥ २४॥ क्लम दाह शरीर में पीड़ा भ्रम मूर्च्छा शिरमें पीड़ा॥ बेचैनी बलकी हानी साव शेष औषध का लक्षण है॥ २५॥

अनन्तर औषधलक्षण विधि कही है चरक ने॥ देव गुरू तथा ब्राह्मण इन का पूजन करके और नमस्कार करके॥ आशिर्वाद लेकर श्रद्धासे औषधका सेवन करे॥२६॥ येह आशिर्वाद। इसका अर्थ। ऋषियों की रसायन के समान और जैसे देवताओं को अमृत॥ उत्तम नागों की सुधा के समान तुमको येह दवा होवे॥ २७॥

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः॥ दे
वाश्च सौषधिग्रामा भूमिदेवाश्च पान्तु वः॥२८॥
औषधं हेमरजतमृद्भाजनपरिस्थितम्॥ पिबेदास

जनस्याग्रे प्रसन्न वदनेक्षणः ॥ २९ ॥ विश्रान्तस्तूप विश्याथ पीत्वा पात्र मधोमुखम् ॥ निःक्षिप्याच स्य सलिलं ताम्बूलाद्युप योजयेत् ॥ ३० ॥

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन् मिश्रभाव विरचिते विरचिते भावप्रकाशे पञ्चमं प्रकरणं चिकित्सायां सप्ताङ्गानि संपूर्णानि ॥ ५ ॥ ॥

भा० ब्रह्मा दक्ष प्रजापति अश्विनीकुमार इन्द्र पृथ्वि चन्द्र सूर्य वात अग्नि। देव औषधि के सहित ग्राम देवता और भूमिदेव तुम्हारी रक्षा करो ॥ २८ ॥ इति । औषध को सोने चान्दी अथवा मिट्टी के बरतन में रख के । प्रसन्न मुख दृष्टि हो के दुष्ट जनों के आगे पीवे ॥ २९ ॥ विश्रान्त होके बैठ के पीकर पात्रको औंधा करके ॥ जल से आचमन करके पान इलायची आदिकोखावे ॥ ३० ॥ इतिश्री मिश्र लटकन पुत्र श्री भाव मिश्र विरचित भाव प्रकाशमें पांचवां प्रकरण चिकित्सा में सात अंग संपूर्ण ॥

[अथ चिकित्सार्थं रोगिणः परीक्षा तत्र वाग्भटः।]

दर्शन स्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेत रोगिणम् ॥ आयुरादि दृशः स्पर्शा च्छीतादि प्रश्नतः परम् ॥ १ ॥

(क) आयुरादि आदि शब्दात्साध्य त्वा साध्यत्वादि दृशा दर्शनेन अत्र सम्पदादि भ्यश्च भावे क्विप् । स्पर्शन शीतादि शीतोष्ण मृदु कठिनत्वादि नाड़ी परीक्षणम् वा । प्रश्नः उदर लाघव गौरव तृषाऽतृषा बुभुक्षाऽबुभुक्षा बलाबलादि ॥

भा० अनन्तर चिकित्सा के अर्थ रोगी की परीक्षा ॥ उसमें वाग्भट ने कहा है।

दर्शन स्पर्श प्रश्न इनसे रोगी की परीक्षा करे ॥ दृष्टि से आयु आदिके स्पर्शसे शीतादिक प्रश्नसे और परीक्षा करे ॥१५

(क) आदि शब्द से साध्यता और असाध्यता आदि। दर्शन से। यहां पर संपदादि से भावमें क्यि होता है। स्पर्शन शीतादि। शीत उष्ण मृदु कठिन आदि अथवा नाडी परीक्षा ॥ प्रश्नसे पेटका हलकापन भारीपन प्यासका होना न होना। भूखका होना न होना बल अबल आदि ॥

मिथ्या दृष्टा विकारा हि दुराख्याता स्तथैव च ॥ तथा दुष्परि दृष्टाश्च मोहयेयु श्चिकि त्सकान् ॥ २॥

(तत्र दर्शनं नेत्र जिह्वा मूत्रा दीनां कर्त्तव्यम्)

[तत्र नेत्र परीक्षा यथा] नेत्रं स्यात पवना द्रूक्षं धूम्रवर्णं तथारुणम् ॥ कोणं गतं प्रविष्टं च तथा स्तब्ध विलोकनम् ॥ ३॥ हरिद्रा खण्ड वर्णं वा रक्तं वा हरितं तथा ॥ दीपद्वेषि सदाहञ्च नेत्रं स्या त्पित्त कोपतः ॥ ४॥ चक्षु र्बलास बाहुल्यात् स्निग्धं स्यात्स लिल स्रुतम् ॥ तथा धवल वर्णञ्च ज्योति र्हीनं बलान्वितम् ॥ ५॥

भा० मिथ्या देखेहुवे रोग तथा दुराख्यात तथा दुष्परिदृष्ट येह वैद्यों को मोह करताहै ॥ २॥ उसमें नेत्र दर्शन जिव्हा मूत्र आदियों का करना चाहिये ॥

[उसमें नेत्र परीक्षा जैसे] रूक्ष धूम्र वर्ण तथा अरुण ॥ कोना निकला हुवा और दवाहुवा तथा स्तब्ध देखना ऐसे नेत्र वात से होते हैं ॥ ३॥ हरदी की गांठ के समान वर्ण अथवा लाल वा हरित ॥ तथा दीवे का दुष्मन दाह के सहित नेत्र पित्तप्रकोप से होते हैं ॥ ४॥ कफ की अधिकता से नेत्र चिकने पानी भरेहुवे ॥ तथा श्वेत वर्ण ज्योति हीन बल युक्त होते हैं ॥ ५॥

नेत्रं द्विदोष बाहुल्यात्स्या द्दोषद्वय लक्षणम् ॥

त्रिदोष लिङ्ग सङ्गेन तन्मारयति रोगिणम् ॥ ६ ॥
त्रिदोष दूषितं नेत्र मन्तर्भग्नं भृशं भवेत् ॥ त्रिलिङ्ग
सलिल स्रावि प्रान्ते नोन्मील यत्यपि ॥७॥
[अथ जिह्वा परीक्षा] शाक पत्र प्रभा रूक्षा स्फुटना
रसना निलात् ॥ रक्ता श्यावा भवेत्पित्ता ल्लिप्तार्द्रा
धवला कफात् ॥ ८ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा कृष्णा दो
ष त्रयेऽधिके ॥ सैव दोष द्वया धिक्ये दोष द्वितय
लक्षणम् ॥ ९ ॥

भा॰ दो दोषों की अधिकता से नेत्र दो दोषों के लक्षण होते हैं ॥ त्रिदोष के ल
क्षण मिलजाने से वोह रोगी को नाश करता है ॥ ६ ॥ त्रिदोष से दूषित नेत्र
भीतर अत्यन्त भग्न होता है ॥ तीनों के लक्षणों संयुक्त जलको बहने वाला
प्रान्तमें उन्मीलन भी नहीं होता ॥ ७ ॥
[अनन्तर जीभकी परीक्षा ॥ शाक पत्रके समान रूखी फटी जीभ बात से हो
ती है ॥ लाल भूरी पित्तसे होती है । और लिसी गीली सफ़ेद कफसे होती है ॥
॥ ८ ॥ फुलसी ख़ुर्दरी खरदरी काली त्रिदोष की अधिकता में होती है ॥ वोही दो
दोषों के अधिक में दो दोषों के लक्षण वाली होती है ॥ ९ ॥

[अथ मूत्र परीक्षा] वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलञ्च पि
त्ततः ॥ रक्त मेव भवेद्रक्ता द्धवलं फेनिलं कफात् ॥
॥ १० ॥ (अथ शरीरस्य शैत्योष्ण त्वादि ज्ञानार्थं स्प-
र्शनं कार्य्यम्) [तत्र नाड़ी परीक्षा माह]
पुंसो दक्षिण हस्तस्य स्त्रियो वाम करस्य तु ॥ अङ्गु
ष्ठ मूलगां नाड़ीं परीक्षेत् भिषग्वरः ॥ ११ ॥ अङ्गुली
भि स्तु तिसृभि र्नाड़ीं सवहितः स्पृशेत् ॥ तच्चेष्टया

सुखं दुःखं जानीयात्कुशलोऽखिलम् ॥ २२॥ सद्यः स्नानस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णा तप शीलिनः ॥ व्यायाम श्रान्त देहस्य सम्यक् नाड़ी न बुध्यते ॥ २३॥ वातेऽधिके भवेन्नाड़ी प्रव्यक्ता तर्जनी तले ॥ पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयाङ्गुलिका कफे ॥ २४॥ तर्जनी मध्यमा मध्ये वात पित्ताधिके स्फुटा ॥ अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वात कफे भवेत् ॥ २५॥ मध्यमा नामिका मध्ये स्फुटा पित्त कफेऽधिके ॥ अङ्गुलि त्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सान्नि पाततः ॥ २६॥ वाताद्वक्रू गतिन्धत्ते पित्तात्दुत्प्लुत्य गामिनी ॥

भा॰ अनन्तर मूत्र परीक्षा ॥ वात से मूत्र सफ़ेद और पित्त से लाल नीला ॥ और रक्त से लालही होता है तथा कफसे काग से युक्त धौला होता है ॥ २०॥ अनन्तर शरीर के शैत्य उष्णत्व ज्ञान के अर्थ स्पर्शन करना चाहिये ॥

[इसमें नाड़ी परीक्षा कहते हैं] पुरुष के दाहिने हाथकी और स्त्रियों के वामें हाथकी ॥ अंगुष्ठ मूलसे गई हुई नाड़ी की वैद्य परीक्षा करे ॥ २१ ॥ जाना हुवा तीन अंगुलियोंसे नाड़ीको स्पर्शकरे ॥ कुशल उसकी चेष्टा से संपूर्ण सुख दुःख को जाने ॥ २२॥ तत्काल स्नान किये की सोके हुवे की क्षुधा तृषा युक्त की ॥ कसरत से थके हुवे की इन सबकी नाड़ी अच्छी तरह नहीं मालूम होती ॥ २३॥ वातके अधिक में नाड़ी तर्जनी के नीचे प्रव्यक्त होती है ॥ पित्ताधिक में मध्यमा में व्यक्त होती है ॥ और तीसरी उंगली के नीचे कफमें व्यक्त होती है ॥ २४॥ तर्जनी मध्यमा के बीचमें वात पित्ताधिक में स्फुट होती है ॥ अनामिका और तर्जनी में वात कफ में प्रगट होती है ॥ २५॥ मध्यमा और अनामिका के मध्यमें पित्त कफ में प्रगट होती है ॥ सन्निपात से तीनों उंगली के नीचे व्यक्त होती है ॥ २६॥ वात से वक्र गतिको धारण करती है पित्तसे उछल के चलती है ॥

कफान्मन्दगति र्ज्ञेया सन्निपाता दति द्रुता ॥ २७ ॥ व
क्र मुत्प्लुत्य चलति धमनी वातपित्ततः ॥ वहेद्व
क्र ञ्च मन्दञ्च वात श्लेष्मा धिकं त्वतः ॥ २८ ॥ उत्
प्लुत्य मन्दञ्चलति नाड़ी पित्त कफेऽधिके ॥ कामा
त् क्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिन्ता भयप्लुता ॥ २९ ॥
स्थित्वा स्थित्वा च लेखा सा हन्तिस्था न च्युता तथा ॥
अति क्षीणा च शीता च प्राणान् हन्ति न संशयः ॥
२० ॥ ज्वर कोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥

भा० कफ से मन्द गति जाननी चाहिये और सन्निपात से बहुत शीघ्र गति चलती है ॥ २७ ॥ पित्त के कोप से धमनी टेढ़ी उछल के चलती है ॥ वात कफाधिक से टेढ़ी और मन्द चलती है ॥ २८ ॥ पित्त कफ के अधिक में नाड़ी उछल के मन्द चलती है । काम और क्रोध से वेगसे चलती है चिन्ता और भय से युक्त, क्षीण होती है ॥ २९ ॥ जो ठहर २ के चलती है वोह स्थान च्युत वोह नाश करती है ॥ अति क्षीण और शीत प्राणों को नाश करती है । इसमें कोई संशय नहीं ॥ २० ॥ धमनी ज्वर कोप से गरम और वेगवाली होती है ॥

मन्दाग्नेः क्षीण धातो श्च सैवं मन्दतरा मता ॥ २१ ॥
चपला क्षुधितस्य स्यात् तृप्तस्य भवति स्थिरा ॥ सु
खिनो स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ २२ ॥

[अथ येन येन रोगाणां ज्ञानं स्यात्त तदाह]

हेतुस्तदनु संप्राप्तिं पूर्व रूपञ्च लक्षणम् ॥ तथैवो
पशयः पञ्च रोग विज्ञान हेतवः ॥ २३ ॥

[तत्र हेतो लक्षण माह]

भा॰ मन्दाग्नि वालेकी और क्षीण धातु वालेकी वोही मन्द वहन होती है ॥ २१॥ क्षुधित की चपल और तृप्तकी स्थिर होती है ॥ सुखी की भी स्थिर जाननी चाहिये ॥ तथा बलवती होती है ॥ २२॥

[अनन्तर जिस २ से रोगका ज्ञान होता है उस २को कहते हैं] कारण उस्के पश्चात् सम्प्राप्ति और पूर्वरूप लक्षण। तथा उपशय येह पांच रोगों के विशेष ज्ञान के हेतु हैं॥ २३॥ [उस्मे हेतु का लक्षण कहते हैं]

यत्तु न स्याद्विना येन तस्य तद्धेतु रुच्यते ॥ शास्त्रे सं व्यवहाराय तत् पर्य्यायान् प्रचक्ष्महे ॥ २४ ॥ निदानं कारणं हेतु र्निमित्तं च निबन्धनम् ॥ मूल मायतनं तत्त प्रत्ययोऽपि निगद्यते ॥२५॥

(तत्र हेतु र्व्याधीनां ज्ञानाय हेतुर्यथा)

(क) वर्षारूक्ष श्रमहिमानशनानि मैथुन शोक चिन्ता भयादयो वातप्रकोप हेतवो वातजान् व्याधीन् बोधयन्ति। शरत् कट्वम्लोषण तीक्ष्ण क्रोध तृषाक्षुधाभिघाता तपादयः पित्त प्रकोप हेतुः पित्तजान् व्याधीन् बोधयन्ति। वसन्त मधुर स्निग्ध शीतादयः कफ प्रकोपहेतवः कफजान् व्याधीन् बोधयन्ति ॥

भा॰ जिसके विना जो नहीं होता वोह उसका हेतु कहते हैं ॥ शास्त्र में व्यवहार के अर्थ उसके पर्यायों को कहता हूं ॥ २४॥ निदान कारण हेतु निमित्त और निबन्धन ॥ मूल आयतन और प्रत्यय भी कहते हैं ॥२५॥ उस्में हेतु व्याधि के ज्ञान के अर्थ हेतु जैसे ॥—

(क) वर्षा रूक्ष श्रम शीतल भोजन मैथुन शोक चिन्ता भयादिक वात प्रकोप के हेतु वातके रोगों को जताते हैं ॥ शरद कटु अम्ल उष्ण तीक्ष्ण क्रोध तृषा क्षुधा अभिघात आत प आदिक पित्त प्रकोपके कारणपित्त के रोगोंको जताता

है। वसन्त मधुर चिकनाई स्निग्धादिक कफ के कोपका कारण कफके रोगों को जनाना है॥

[अथ संप्राप्ते लक्षण माह] यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानु विसर्पता॥ उत्पत्ति रामयस्या सौ संप्राप्ति र्जा ति रागतिः॥ २६॥ (क) यथा दुष्टेन दोषेण यथा कारण भेदेन दोषेण यथा चानु विसर्पिता। अनेकधा दोषाणां विसर्पता मूर्द्धाध स्तिर्यगा दि गतिभेदेन। तथा च विसर्पता। आमयस्य या उत्पत्तिः। असौ संप्राप्तिः। शास्त्र व्यवहाराय संप्राप्तेः पर्य्यायानाह जाति रागति। रिति। संप्राप्ते रौपाधिक भेदानाह।

भा० [अनन्तर सम्प्राप्ति का लक्षण कहते हैं] जैसे दुष्ट दोष से जैसे अनेक प्रकार फैलने से जो रोग की उत्पत्ति है येह संप्राप्ति जाति आगति है॥ २६॥
(क) जैसे दुष्ट दोष से अर्थात् जैसे कारण भेददोषकरके। अनेक प्रकार दोषों का ऊपर नीचे तिर्य्यक् आदि भेदसे। तथा फैली हुई। रोग की जो उत्पत्ति है। येह संप्राप्ति है। शास्त्र व्यवहार के अर्थ संप्राप्ति के पर्य्यायों को कहते हैं॥ जाति आगति। संप्राप्ति के औपाधिक भेदों को कहते हैं॥

सङ्ख्या विकल्प प्राधान्य बलकाल विशेषनः॥ सा भिद्यते यथा त्रैव वक्ष्यन्ते ऽष्टौ ज्वरा इति॥२७॥ (ख) सङ्ख्या दि रूप विशेषास्तेभ्यः सा संप्राप्ति र्भिद्यते भेदवती क्रियत इत्यर्थः। तत्र संख्यां विवृणोति। यथा ज्वरो ऽष्टधा अतीसारः षड्विध इत्यादि विकल्पं विवृ णोति। दोषाणां समवेतानां विकल्पो ऽशांश कल्पना समवेतानां समुदिता नां दोषाणां अशांश कल्पनाहीन म-

ध्याधिक भेदैर्भाग कल्पना विकल्पः। प्राधान्यं विवृणोति। (ख) स्वातन्त्र्य पारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्य मादिशेत्॥ व्याधेः स्वातन्त्र्येण प्राधान्यं पारतन्त्र्येण ऽप्राधान्यञ्च वदेदित्यर्थः। यथा स्वतन्त्रस्य ज्वरस्य प्राधान्यं ज्वराधीनानां श्वासादीनाम प्राधान्यम्॥

भा॰ संख्या विकल्प प्राधान्य बल काल इनके विशेष से वो भेद को प्राप्त है जैसे वहीं पर कहा है आठ ज्वर इस प्रकार॥ २७॥ संख्यादि रूप विरोध उनसे वोह संप्राप्ति भेदको प्राप्त है उसमें संख्या को कहते हैं॥ जैसे ज्वर आठ प्रकार अतीसार छ प्रकार इत्यादि। विकल्प को कहते हैं। मिले हुवे दोषों की अंशांश कल्पना। हीन मध्य अधिक भेदसे भाग कल्पना विकल्प है। (प्राधान्य को कहते हैं)
(ख) स्वतन्त्रता और परतन्त्रता इनसे रोगका प्राधान्य कहैं॥ रोगकी स्वतन्त्रता से प्रधानता और परतंत्रता से अप्रधानता कहे। जैसे स्वतंत्र ज्वरका प्राधान्य और ज्वरके आधीन श्वास आदियोंकी अप्रधानता होती है॥

(ग) [बलं विवृणोति] हेत्वादि कार्त्स्न्या वयवै र्बलाबल विशेषम्। अत्रापि व्याधिरित्यनुवर्त्तते हेत्वादेः हेतु पूर्वरूप रूपाणाम्। कार्त्स्न्येन साकल्येन अवयवैः एकदेशेन व्याधेर्बलाबलयो र्विशेषणम्। विशेष बोधः। कालं विवृणोति।

भा॰ बलको कहते हैं। कारणादि संपूर्ण अवयवों से बल और अबल विशेषण है। यहां भी रोग के येह फिर से कहा है। हेतु आदिका अर्थात् कारण पूर्व रूपोंका। संपूर्णता करके एक देश से रोगका बलाबल में विशेषण है विशेष बोध। कालको कहते हैं।

(घ) नक्तं दिनर्त्तु भुक्तांशै र्व्याधि कालो यथा मलम् ॥

नक्त मव्याव्ययं रात्रि वाचकम्। एतेनैतदुक्तं यस्मिन्न क्तादि रंशो यस्य दोषस्य प्रकोप उक्तोऽस्ति सोऽंशस्त स्य दोषजस्य व्याधेः काल इत्यर्थः। नक्तादि रंशेषु वातादे प्रकोपे उक्तो वाग्भटेन।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्यो रधो मध्योर्द्ध संश्रयाः। वयोऽहो रात्रि भुक्ता नामन्त मध्या दिगाः क्रमा दिति ॥ २८ ॥ वात पित्त कफाः। ऋतुषु वातादिको यथा। वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरदि उष्णके ॥ वसन्ते तु कफः कुप्ये देषा प्रकृति रार्त्तवी ॥ २९ ॥

भा॰ रात दिन ऋतु और भोजन कियाहुवा इनके अंशोंसे दोषके अनुसार व्याधि कालहै ॥ (घ) नक्त यहां पर अव्यय रात्रि वाचक है। इसे यह कहा है कि जिसे रात्रि आदि अंश जिस दोषका प्रकोप कहा है वोह अंश उस दोषके रोगका काल येह अर्थ है। नक्तादि के अंश में वातादि प्रकोप कहा है वागभट ने। वात पित्त कफ संपूर्ण शरीर में फैलेहुवे भी हृदय नाभ के नीचे वायु हृदय नाभके बीचमें पित्त और हृदय नाभके ऊपर कफ। इस क्रमसे रहते हैं॥ वय दिन रात और भोजन कियेहुवे इनके अन्त मध्य आदि क्रमसे रहते हैं ॥ २८ ॥ वात पित्त कफ। ऋतु में वातादिक जैसे। शीत वर्षा में वायु। उष्ण शरद में पित्त। और वसन्त में तो कफ कुपित होताहै। येह ऋतु की प्रकृति है ॥ २९ ॥

[संप्राप्ति र्व्याधीनां ज्ञानाय हेतु र्यथा]

(क) मिथ्याहार विहार कुपिता वाताद्या मामाशय गमन रस दूषण कोष्ठाग्नि वहिर्नि स्सरण रूप ज्वरोत्पत्ति प्र-

कारं बोधयन्ति। तथा व्याधीनां सङ्ख्या दोषांश कल्पना प्राधान्य बलकालांश्च बोधयन्ति। तेषु ज्ञातेषु चिकित्सा विशेषश्च स्यात्॥

[अथ पूर्वरूपस्य लक्षणमाह]

पूर्वरूपन्तु तद्येन विद्याद्भाविन मामयम्॥ सामान्यं च विशिष्टं च द्विविधन्तदुदाहृतम्॥ ३०॥ सामान्यं तत्र दोषाणां विशेषैरनधिष्ठितम्॥ विशिष्ट मीषद्व्यक्तं स्याद्विशेषैश्च समन्वितम्॥ ३१॥

(८८क) दोषाणां विशेषाः जृम्भातिशयनेत्रदाहाग्निमान्द्यादयः। तत्र पूर्वरूपं व्याधीनां ज्ञानाय हेतुर्यथा। श्रमादयो भाविनं ज्वरं बोधयन्ति। अयञ्च अतएव श्रमादयोऽतिशयित जृम्भायुक्ता भाविनं वातज्वरं नेत्रदाहयुक्ताः पित्तज्वरं वन्हिमान्द्ययुक्ता भाविनं कफज्वरं बोधयन्ति॥

भा॰ संप्राप्ति रोगोंके ज्ञानार्थ हेतु जैसे। (क) मिथ्या आहार विहार से कुपित वातादि आमाशय में जाकर रसको विगाड़ के कोष्ठाग्नि को बाहर निकाल कर ज्वरकी उत्पत्ति को जमाताहै। वैसे रोगों की संख्या दोषकी अंश कल्पना प्राधान्य बल कालों को जनाताहै। उनके जानने में चिकित्सा विशेष होताहै। [अनन्तर पूर्वरूपका लक्षण कहतेहैं]

पूर्वरूप वोह है जिस्से होनेवाला रोग जाना जाता है। सामान्य और विशिष्ट दो प्रकार वोह कहा है॥ ३०॥ सामान्य वोह है जो दोष विशेषों अधिष्ठित नहीं है॥ विशिष्ट वोह है जो थोड़ा व्यक्त और विशेष करके युक्त है॥ ॥ ३१॥ (क) दोषोंके विशेष जंभाई की अधिकता नेत्रदाह अग्निमान्द्य

आदिक। उस्में रोगोंके पूर्वरूप ज्ञानके अर्थ कारण जैसे। श्रमादिक होने वाले ज्वरको जनाते हैं। और इसी वास्ते श्रम आदिक अधिक जम्भाई से युक्त होने वाले ज्वर को और नेत्र दाहादि युक्त पित्तज्वर को जनाते हैं। तथा अग्निमान्द्य कफज्वर को जनाते हैं॥

[अथ लक्षणस्य लक्षण माह।] पूर्वरूपं विशिष्टं यद्व्यक्तं तत् लक्षणं स्मृतम्॥ संस्थानं लिङ्ग चिन्हञ्च व्यञ्जनं रूप माकृतिः॥ ३२॥

(क) विशिष्टं पूर्वरूपम्। ईषद्व्यक्तं रूपम्। तदेव सम्यग् व्यक्तं लक्षणं स्मृतं तस्य शास्त्रे व्यवहाराय पर्यायानाह संस्थान मित्यादि लक्षणं व्याधेर्ज्ञानाय हेतुर्यथा। स्वेदा वरोधः सन्तापः सर्वाङ्ग ग्रहण न्तथा॥ युगपद् यत्र रोगेतु स ज्वरः परि कीर्त्तितः॥ ३३॥
युगपदे तल्लक्षणं ज्वरं बोधयति।

भा० अनन्तर लक्षण का लक्षण कहते हैं। पूर्वरूप विशिष्ट जो व्यक्त होता है उसको लक्षण कहा है। संस्थान लिंग चिन्ह व्यंजन रूप आकृति येह उस्के पर्य्याय हैं॥ ३२॥ (क) पूर्वरूप विशिष्ट। थोड़ा व्यक्त रूप। वोही अच्छी तरह व्यक्त लक्षण कहा है। उसका शास्त्रमें व्यवहार के वास्ते पर्य्यायों को कहते हैं। संस्थान इत्यादि लक्षण रोग ज्ञानके अर्थ कारण जैसे। पसीने का अवरोध सन्ताप तथा शरीर में अकड़ाव। येह एक साथ जिस रोगमें होते हैं वोह ज्वर कहा है॥ ३३॥
(एक साथ येह लक्षण ज्वर को जनाता है)

[अथोप शमस्य लक्षण माह]

औषधान्न विहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥ नृणा मुपशमं विद्यात् सहि सात्म्य मिति स्मृतः॥ ३४॥

[तत्र वातस्योपशममाह]

मधुर लवण साम्ल स्निग्ध नस्योष्ण निद्रा गुरु रवि
कर वस्ति स्वेदसं मर्दनानि। दधि जलद प्रोषाभ्यङ्ग
सन्तर्पणानि। प्रकुपित पवमानं शान्त मेतानि कु
र्युः ॥३५॥ [अथ पित्तस्योपशममाह।]

तिक्त स्वादु कषाय शीत पवनच्छाया निशाव्यंजन
ज्योत्स्ना भूगृह यन्त्र वारिद जलजं स्त्री गात्र संस्प
र्शनम्। सर्पिः क्षीर विरेक सेक रुधिर स्राव प्रदेहादि
कम् ॥ पानाहार विहार भेषज मिदं पित्ते प्रशान्तिं
नयेत् ॥ ३६॥ [अथ कफस्योपशममाह]

रूक्षाहार कषाय तिक्त कटुक व्यायाम निष्ठीवनम्।
धूमान्युष्ण शिरो विरेक वमन स्वेदोप वासादिकम्॥
स्त्री सेवाध्वनि युद्ध जागर जलक्रीडाङ्गना सेवनम
पानाहार विहार भेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं हरेत् ॥३७

भा० अनन्तर उपशम का लक्षण कहते हैं। औषध अन्न विहारों का सुख
वह उपयोग है उसको मनुष्यों का उपशम जाने उसे सात्म्य ऐसा कहा है
॥ ३४ ॥ [उसमें वातका उपशम कहते हैं। मधुर लवण अम्लके सहित स्निग्ध
नास उष्ण निद्रा भारी सूर्य्य की किरण वस्ति स्वेद संमर्द्दन। दधि जलद
संपूर्ण अभ्यंग सन्तर्पण येह प्रकोप को प्राप्त ऊवे वातको शमन करते हैं॥
॥ ३५॥ [अनन्तर पित्तका उपशम कहते हैं। तिक्त मधुर कषाय शीत
वात छाया रात पंखा चान्दनी तहखाना यंत्र मेघ और जलज स्त्रीके शरीर
का सस्पर्श। घृत दूध और जुलाब सेक रक्त स्राव प्रदेह आदिक। येह पान
आहार विहार और औषध पित्तको शमन करते हैं ॥ ३६॥

अनन्तर कफ का उपशम कहते हैं ॥ रूक्ष क्षार कषाय तिक्त कटु कसरत नि ष्ठीवन धूम उष्ण शिरो विरेचन वमन स्वेद उपवासादिक ॥ मैथुन मार्ग चल ना रात्रीजागना जल क्रीड़ा स्त्री सेवन ॥ पान आहार विहार येह औषध उग्र कफको हरना है ॥ ३७ ॥

(क) जलक्रीड़ा कफं कथं हरति। तदाह। जलक्रीड़ा जनित शैत्ये नावरुद्धोष्मा पङ्क लिप्ता भितः पाकाग्नि रिवोग्रो भूत्वा कफं शोषयतीति समाधिः॥ उपशमो व्याधेर्ज्ञानाय हेतु र्यत उक्त ञ्चरकेण। गूढ़ लिङ्ग संकीर्ण लक्षणञ्च व्याधि मुपशमानुपशमाभ्यां परीक्षेदिति ॥

[तथा च सुश्रुते] अभ्यङ्ग स्वेदन स्नेहै र्विकारो वातिकस्तु यः॥ न शाम्येत्तत्र विज्ञेयो रक्तमत्रास्ति दूषितम्॥ ३८॥ सर्वेषा मेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः॥ तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधा हित सेवनम्। ॥ ३९॥ (क) सर्वेषां रोगाणां निदानं सन्निकृष्टं कारणम्। कुपिताः स्व हेतु दुष्टा मलाः वात पित्त कफा एवेत्यन्वयः॥

भा० जल क्रीड़ा कफ को कैसे हरता है सो कहते हैं। जल क्रीडा की शैत्यता से अवरुद्ध उष्मा पङ्क लिप्त आस पास पाकाग्नि के समान उग्र होकर कफ को सुकाता है इस प्रकार की समाधि है। उपशम रोग के ज्ञानके अर्थ कारण जैसे कि कहाहै चरक ने ॥ संकीर्ण लक्षण रोग उपशम अनुशम से परीक्षा करे ॥ [वैसे सुश्रुतने कहा है] अभ्यंग स्वेद स्नेह इनसे रोग वातिक न शमन होवे उसमें जानना चाहिये इसमें रक्त दूषित है ॥ ३८ ॥ उन रोगों के कारण कुपित मलहैं ॥ उनके प्रकोप का कारण अनेक प्रकारका

अहित सेवन है ॥ ३९॥ (क) सब रोगों का निदान सन्नि कृष्ट कारण। अपने कारण से दुष्ट मल वात पित्त कफ है इस प्रकार अन्वय है ॥

[तथा च वाग्भटः] दोषा एवहि सर्वेषां रोगाणा मेक कारण मिति। (क) नन्वा गन्तुज व्याधिषु व्यभिचारः स्यात्। नन्न। तत्राप्युत् पत्त्य नन्तरं दोष प्रकोपस्यावश्यम्भावित्वात्। उत्पन्न द्रव्येषु गुणयोग स्येव। [उक्तञ्च चरके] आगन्तु हि यथा पूर्वो जायते। पश्चान्निजे दोषै रनु बध्यत इति। तत्प्रकोपस्य तु। दोष प्रकोपस्य तु। निदानम्। विविधानि नाना विधानि। यान्य हितान्य सात्म्यान्या हार विहारा दीनि। तेषां सेवनं यथा वायोः प्रकोपस्य निदानानि।

नीवार स्त्रिपुटः सतीन चणकः श्यामा कमुद्गाढ़की।
निष्पावश्च मकुष्ठ कश्च वरटा मङ्गल्यकः कोद्रवः।
यद् द्रव्यं कटुकं सतिक्त तुवरं शीतञ्च रूक्षंलघु। स्वल्पाशो विषमाशनं निरशनं भुक्तेह्यजीर्णे ऽशनम् ॥४०॥

भा० उस प्रकार वाग्भट ने कहा है। दोष ही सब रोगों का एक कारण है ॥ (क) शंका। आगन्तुक रोग में व्यभिचार होता है ॥ उत्पन्न द्रव्य में गुण योग का सी कहा है। चरक में। आगन्तुक पहले होता है। पीछे से निज दोषों से युक्त होता है। दोष प्रकोप का निदान नाना प्रकार के जो असात्म्य आहार विहारादिक। उनका सेवन। जैसे वायु के प्रकोप का निदान। तिन्नी के चावल खेसारी मटर चना सांवा कंगुनी मूङ्ग अरहर। सेमके बीज मकुष्ट वररैमसूर कोद्रव ॥ और जो द्रव्य कटु कसैला तिक्त कसैला शीतल रूखा हलका स्वल्प भोजन करनेवाले विषम भोजन लंघन अजीर्ण में भोजन।

भुक्त जीर्णतरं परिश्रम भरो गर्त्तादि कोष्णं घनम्॥ वाङ्कुम्यांन्तरणन्तनोः प्रतपनं मार्गेऽति यानम्पदा। दण्डादि प्रहृति स्तथोच्च पतनम् धातुक्षयो जागरः। मार्गस्या वरणं व्यवाय भृशता वा तादि वेगाहतिः॥ ४१॥ अत्यर्थं वमनं विरेचन मति स्रावोऽधिक श्चा सृजो। रोगान्मांस विहीनता ति मदन श्चिन्ताच शोको भयम्। वर्षावे शिशिरे दिनस्य रजने-र्भागो तृतीयो घनाः। प्राग्वातस्तु हिनं शरीर मरुतो दुष्टे रमी हेतवः। ४२॥

भा॰ भोजन किया बहुत जीर्ण हो जावे परिश्रम भार गर्तादिक उष्ण घन। वाङ्कवोंसे तैरना वृत्त से गिरना पैदल मार्ग बहुत चलना दंड आदि की चोट। यार्ऊ चे से गिरना धातुक्षय रातका जागना मार्ग का आवरण मैथुन की अधिकता वातादि वेगसे नष्ट॥ ४१॥ अत्यन्त वमन विरेचन अति स्राव अधिक रक्त के। रोग मांस विहीनता अतिकाम चिन्ता शोक भय। वर्षा शिशिर दिन और रात का तीसरा भाग और मेघ। प्रागवात हिन शरीर के दुष्ट वात होने में येह कारण है॥ ४२॥

(क) नीवारः प्रसाधिकाः। तीनी इति लोके। त्रिपुटः खेसारी इति लोके। सतीनः वर्त्तुलकलायः निष्पावः। कोलशिम्बी सदृश फला। राज शिम्बि स्तस्या बीजमन्नं भवति। वरटि वराटिका। कुसुम्भ बीजम्। वररै इति लोके। सङ्गल्यको मसूरः। विषमाशनम्। बहुस्तोक मकाले वा भुक्तं नहिषमाशनम्।

(ख) अतियानम्। पादाभ्यामति चलनम्। तरोः प्रपतनम्। तरोरित्युप लक्षणम्। जागरः रात्रौ। वातादि वेगाहतिः। आदि शब्देन विरामूत्राश्रु छिक्कोद्गार छर्दि शुक्र क्षुत्तृषो च्छ्वास निद्राः संगृह्यन्ते। दिनस्य त्रिधा विभक्तस्य। एवं रजनेश्च। यस्य पुनरुक्तिस्तेन तेन वातस्याति दुष्टि र्बोद्धव्या।

भा० (क) दूध थोडा व बहुत वे समय में भोजन किया अवा विषनाशन है। वातादि वेगों का रोकना आदि शब्द से मल मूत्र आंसु छींक डकार वमन शुक्र क्षुधा तृषा उच्छ्वास निद्रा लीगई है। तीन प्रकार विभक्त दिनका। ऐसे ही रातका। जिसकी पुनरुक्ति उस २से वातकी अति दुष्टि जाननी चाहिये।

[अथ पित्तस्य प्रकोप कारणानि यथा]

कट्वम्लोष्ण विदाहि तीक्ष्ण लवण क्रोधोपवासा तप स्त्री सम्भोग तृषा क्षुधाभि हनन व्यायाम मद्यादिभिः। भुक्ते जीर्य्यति भोजने च शरदि ग्रीष्मे तथा प्राणिनाम् मध्यान्हे च तथार्द्ध रात्र समये पित्त प्रकोपो भवेत् ॥ ४३॥ [विदाहि लक्षणम्]

विदाहि द्रव्य मुद्गार मम्लं कुर्य्यात्तथा तृषाम्। हृदि दाहञ्च जनयेत्पाकङ्गच्छति नाच्चिरात् ॥ ४४॥

[अन्यच्च] माषै स्तिलैः कुलत्थैश्च मत्स्यै र्मेषा मिषेण च। गव्येण दधि तक्रेण नृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ ४५॥

भा० अनन्तर पित्तके प्रकोप कारण जैसे। कटु अम्ल उष्ण विदाही तीक्ष्ण लवण क्रोध उपवास आतप। स्त्री संभोग तृषा क्षुधा अभिघात कसरत मद्य

आदि से। भोजन के पचनेपर शरद ग्रीष्म में। तथा प्राणियों का मध्यान्हमें तथा अर्धरात्रि के समयमें पित्त प्रकोप होता है ॥ ४३॥
[विदाहि लक्षण] विदाही द्रव्य खट्टी डकार तथा तृषा और हृदय में दाह उत्पन्न करता है। उस का देरसें पाक होता है ॥ ४४॥ औरभी। माष तिल कुरथी मछली मेंढेका मांस। इन द्रव्यों से तथा दही मट्ठे से मनुष्यों का पित्त कुपितहोता है ॥ ४५॥

[अथ श्लेष्म प्रकोप कारणा नि यथा।]

गुरु पटु मधुराम्ल स्निग्ध माषे स्तिलैश्च। द्रव दधि दिन निद्रा शीत सर्पिः प्रपूरैः। प्रथम दिवस भागे रात्रि भागेऽपि चाद्ये। भवति हि कफ कोपो भुक्त मात्रे वसन्ते ॥ ४६॥ (क) प्रथम दिवसभागे त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य प्रथम भागे। एवं रात्रे श्चाद्यभागे। ननु सर्व्वेषां रोगाणां निदानं दोषा एव किमन्य दप्यस्ती ति संशये चरक आह।

निदानार्थ करो रोगो रोगस्या प्युप लक्ष्यते ॥
इति रोगस्य निदानार्थ करः निदानस्य रोगोऽपि उप लक्ष्यते दृश्यते। अत्र दृष्टान्तमाह।

भा० अनन्तर कफ प्रकोप कारण जैसे। भारी लवण अम्ल स्निग्ध तिल उड़द इनसे ॥ और द्रव दही दिनका सोवना शीत घृत प्रपूर इनसे प्रथम दिनके भागमें ॥ तथा रात्रिके भी प्रथम भागमें ॥ तथा भुक्तमात्रमें वसन्त में कफ प्रकोप होता है ॥ ४६॥ (क) प्र०) सब रोगों का निदान दुष्ट दोष ही है की और भी है। इस संशय में चरक ने कहा है ॥ रोगका निदानार्थक रोगभी दिखाई देता है। इसमे दृष्टान्त कहा है ॥

तद्यथा ज्वर सन्तापा द्रक्त पित्त मुदीर्य्यते ॥ रक्त पित्ता ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चा प्युप जायते ॥ ४७॥ प्लीहा

भि दृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ अर्शोभ्यौं जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युप जायते ॥ ५८॥ प्रतिश्यायाद्योत्कासः कासात्संजायते क्षयः ॥

(क) अन्येत्वाहु मधुकोशे । रोगस्य रोगश्चे न्निदानं तथा निदान मित्येवोच्यते । तद्विहाय निदानार्थकर इति वचन मेतद् बोधयति । रोगस्य रोगो निदानार्थ करः । निदान कार्य्ये करणे सहायः । निदानन्तु रक्तपित्तादीन् कतिचिद्रोगान् प्रतिज्वरादि रेव हेतु रिति सिद्धान्तः ।

भा० वोह जैसे । ज्वर सन्ताप से रक्त पित्त प्रकोप होता है ॥ रक्त पित्त से ज्वर उन से श्वास होता है ॥ ५७॥ पिलही की वृद्धि से उदर रोग और उदर रोग से सूजन व ववासीर से जाठर रोग और वायगोला भी होता है ॥ ५८ ॥ जुकाम से कास और खांसी से क्षय होता है ॥

(क) औरों ने कहा है । मधुकोशमें । रोग का रोगकारण होनेसो वैसे निदान ऐसाही कहे ॥ उसको छोड़कर निदानार्थकर इस प्रकार येह वचन बोध करता है । रोग का रोग निदानार्थ कर । अर्थात् निदान कार्य करने में सहाय । निदान तो रक्त पित्तादी कुछ रोगों को प्रति ज्वरादिक ही कारण येह सिद्धान्त है ॥

अत एवाग्रे स्पष्टमेव चरकः । कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वेति । प्रथमस्य रोगस्य ज्वरादेर्यो दुष्टो दोषो हेतुः स एव पश्चाद्भाविनो रक्तपित्तादे रपि रोगस्य हेतुः सर्वेषा मेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥

(क) इति नियमात् नतु यदा रक्त पित्तादे रुपद्रव लक्षण योगेन रोगत्व विधानः स्यात्तदा सर्वेषामिति वचनं सामान्यम् । निदानार्थकर इति विशेष वचनात् ।

भा॰ इसीवास्ते आगे स्पष्ट ही कहा है चरकने ॥ कोई रोग रोगका कारण हो के इस प्रकार। प्रथम रोग ज्वरादिक का जो दुष्ट दोष कारण है। वोही पीछे से होने वाले रक्तपित्तादिक दोषों का भी हेतु होता है ॥ सब ही रोगोंका निदान कुपित मल है ॥ (क) इस प्रकार के नियम से उसमें जब रक्त पित्त आदिके उपद्रव लक्षण ही योगसे रोगत्व विधान होता है। इसवास्ते सर्वोंका येह वचन सामान्य है। निदानार्थकर इस प्रकार के विशेष वचन से।

रोगस्य हेतौ रोगस्य वैचित्र्यमाह। कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति। (ख) यथा ज्वरो रक्त पित्त मुत्पाद्य स्वयं प्रशाम्यति ननु यो दोषो द्रेकेण ज्वरो रक्त पित्त मुत्पादित वांस्तस्मिन् सति सतु ज्वरः कथं शाम्यति। तत्र व्याधि स्वभाव एव कारण मिति न दोषः।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥

(ग) अन्यो हेत्वर्थमपि कुरुते स्वयञ्च न प्रशाम्यति। यथा प्रतिश्याय: कासं करोति स्वयञ्च न प्रशाम्यति। तथार्शो जठर गुल्मौ करोति स्वयञ्च न निवर्त्तत इति।

[अथ दोष धातु मलानां क्षीणानाञ्च चिकित्सामाह सुश्रुतः]

भा॰ रोगके कारणसे रोगकी विचित्रताको कहते हैं। कोई रोग रोग का हेतु होके शमन होजाता है ॥ (ख) जैसे ज्वर रक्तपित्त को उत्पन्न करके आप शमन होता है। [शंका] जो दोष प्रकोप से ज्वर रक्त पित्तको उत्पन्न करता भया उसके रहते वोह ज्वर कैसे शमन होता है। उसमें रोग स्वभावही कारण है दूसरे दोष नहीं है। और शमन नहीं होते तथा हेत्वर्थ को करेभीहैं। (ग) और हेत्वर्थ को करते भी हैं आप शमन नहीं होते। जैसे जुकाम खांसी को करता है और आप शमन नहीं होता ॥ वैसेही ववासीर जठर वायगोले

को करतीहै और नहीं हरती ॥ [अनन्तर दोष धातु मल क्षीणों की चिकित्सा कहते हैं सुश्रुत ॥]

अत्यन्त कुत्सिता वेतौ सदा स्थूल कृशौ नरौ ॥ श्रेष्ठो मध्य शरीर स्तु स्थूलः क्षीणो न पूजितः ॥ ४९ ॥ क र्षयेद् वृंहये च्चापि सदा स्थूल कृशौ नरौ ॥ रक्षण ञ्चापि मध्यस्य कुर्व्वीत कुशलो भिषक् ॥ ५० ॥

[अन्यच्च] क्षपयेद्दृंहयेच्चापि दोषधातु मलान् भिष क् ॥ नरो रोगान्वितो याव द्रोगेण रहितो भवेत् ॥ ॥ ५१ ॥ (क) क्षपयेदति प्रवृद्धा न्दोषधातु मलां स्त त्र क्षेण्य हेतुभिरौषधान्न विहारै ह्रास यित्वा समी कु र्य्यात्। वृंहयेत्। क्षीणान् दोषादींस्त त्तद् वृद्धि हेतुभि रौषधान्न विहारै र्वर्द्ध यित्वा समी कुर्य्यात्।

भा० येह स्थूल और कृश अत्यन्त निन्दित है। इनमें मध्य शरीर श्रेष्ठ है और स्थूल क्षीण अच्छे नहीं ॥ ४९ ॥ कुशल वैद्य मोटेको दुबला करे और कृशको पुष्टकरे और मध्यको रक्षण करे ॥ ५० ॥ (औरभी) वैद्य दोष धा तु मल इनको घटावे और बढावे। रोगयुक्त मनुष्य जबतक रोग रहित होवे। ॥ ५१ ॥ (क) बढे हुवे दोष धातु मलों को घटावे उसमें क्षीण करनेवाले औषध अन्न विहार से घटाके समकरे। क्षीण दोषादियों को उनको बढाने वा ले औषध अन्न विहार से बढ़ाकर सम करे ॥

अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः ॥ तमे व कारये द्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ ५२ ॥

[स्वस्थस्य लक्षण माह] समदोषः समाग्निश्च समधा तु मलक्रियः ॥ प्रसन्नात्मे न्द्रिय मनाः स्वस्थ इत्य

भि र्धीयते ॥ ५३॥ समक्रियः। शारीरानुरूपकर्मा।
आत्मा शरीरं। तन्त्रान्तरेऽपि।

दिरामूत्राखिल दोष धातु समता काङ्क्षान्नपाने रुचि
र्भुक्तं जीर्य्यति पुष्टये परिणतिः स्वमावबोधैः सुख
म् ॥ ५४॥ गृह्णीतो विषयान्यथा स्वमुचितान् वृ
त्तिं मनोवृत्तितः॥ स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दश विधं
जन्तोरिदं लक्षणम् ॥ ५५॥

भा० स्वस्थ मनुष्य जिस विधिसेस्वस्थ होताहै। उसी को वैद्य करावे जिस्से कि सदा स्वस्थ होवे ॥ ५२॥ स्वस्थ का लक्षण कहते हैं। सम दोष सम अग्नि सम धातु मल क्रिय। और प्रसन्न आत्मा इन्द्रिय मन ऐसे को स्वस्थ ऐसा कहते हैं ॥ ५३॥ शरीर के अनुसार कर्म करने वाला ॥ आत्मा शरीर तन्त्रान्तरमेंभी। मल मूत्र संपूर्ण दोष धातु समता इच्छा अन्नपानमें रुचि भोजन किया पचजाये पुष्टिके अर्थ परिणाम। सोने जागने से सुख ॥ ५४॥ मनोवृत्तिसे अपने यथोचित विषयों को ग्रहण करना॥ स्वस्थ मनुष्य का यह चौदह प्रकारका लक्षण कहाहै ॥ ५५॥

(क) रुचिः शरीर कान्तिः नन्व
हर्निशर्तु भुक्तवस्तु दोषाणां वृद्धेः कथं समदोषता।
उच्यते। अहोरात्र प्रथम भागादिषु तत्तद्दोष वृद्धेः स्वस्थ
वृत्तोक्त विधिभिरुपशमात्सम दोषतेति न दोषः।
[किञ्च] यत्समत्वं हि दोषाणां भिषग्भिर वधार्य्यते।
अत्र तत् स्वास्थ्यं बिना वक्तुं शक्यमन्येन हेतुना ॥ ५६॥
(क) तेन समदोष स्वस्थयो लक्षणमन्योन्यापेक्ष या

पञ्च स्वस्थानु वृत्तिङ्करोति। ऋतुचर्य्याध्याये सेव्यत्वे नो-क्तम्। तथा मात्रा शीलयेन तृतीये ऽध्याये रक्तशालिः षष्ठिक यव गोधूम जाङ्गल मांस जीवन्ती शाकादि मोदक क्षीरादि। तथा यदोजस्करं रसायनं वाजीकरणं सर्व्वदा शीलनीयत्वेन निर्द्दिष्टम् ॥

भा० (क) रुचि अर्थात् कान्ति। शंका। रात दिन और भोजन किये में दोषों के बढ़ने से कैसी सम दोषता कहते हैं॥ दिन रात के प्रथम भागादिक में उन २ दोषों की वृद्धि को स्वस्थ वृत्तमें कही हुई विधि करके शमन होनेसे सम दोषता कही है। इससे दोष नहीं है॥ किन्तु। वैद्यों ने दोषोंकी समता जो मानी है। वोह स्वस्थ्य के विना और रीतसे नहीं कहे सक्ते ॥५६॥

(क) इस समदोष और स्वस्थ के लक्षण अन्योन्य की अपेक्षा करके स्वस्थ समदोष स्वस्वस्थ में हित वोह स्वप्रमाण स्थित दोष धातु मल इनकी साम्यानुवृत्ति करता सुख स्वस्थानु वृत्तिको करता है। ऋतुचर्य्याध्यायमें सेव्यत्व करके कहा है। इस प्रकार मात्रा सेवन करे। तीसरे अध्याय में लालधान साठी जव गेहू जांगलमांस जीवन्ति शाकादि लड्डू दूध आदि। तथा जो ओज करनेवाला रसायन वाजीकरण यह सर्वदा शीलनी यत्व करके कहा है॥

[अथ दोष धातु मलानां वृद्धे निदानान्याह।

तत्तद् वृद्धि करा हार विहाराति निषेवणात् ॥ दोष धातु मलानां हि वृद्धि रुक्ता भिषग्वरैः ॥ ५७॥

[अति वृद्धानां तेषां लक्षणान्याह]

वाते वृद्धे भवेत्कार्श्यं पारुष्यं चोष्ण कामिता ॥ गाढं मलं वलन्चाल्पं गात्रस्फूर्त्ति र्विनिद्रता ॥ ५८ ॥

विण्मूत्र नेत्र गात्राणां पीतत्वं क्षीण मिन्द्रियम् ॥ शीतेच्छा तापमूर्च्छाः स्युः पित्ते वृद्धेऽल्पनिद्रता ॥ ५९ ॥

भा० अनन्तर दोष धातु मल इनकी वृद्धिके कारणों को कहते हैं ॥ उन २ के बढ़ने वाले आहार विहार के नङ्गन सेवन से। दोष धातु मल इनकी वृद्धि वै द्यो ने कही है ॥ ५७॥ [अति वृद्ध उनके लक्षणों को कहते हैं] वात वृद्धि में कृशता कठोरता उष्ण पदार्थ की इच्छा ॥ गाढमल अल्प बल शरीर में स्फूर्ति निद्राका, थोड़ा आना येह लक्षण हैं ॥ ५८॥ मल मूत्र ने त्र शरीर में पीला पन क्षीण इन्द्रिय ॥शीत की इच्छा ताप मूर्च्छा और अल्प मूत्र ता यह लक्षण पित्त बढ़ने में होते है ॥ ५९॥

विड़ादि शौल्यं शीतत्वं गौरवञ्चाति निद्रता ॥ स न्धि शैथिल्य मुत्क्लेदो मुखसेक : कफे ऽधिके ॥ ॥ ६०॥ रसे वृद्धे ऽन्न विद्वेषो जायते गात्र गौरवम् ॥ ला ला प्रसेक श्छर्दिश्च मूर्च्छा सादो भ्रमः कफः॥ ६१॥ प्रवृद्धं रुधिरं कुर्य्या द्गात्र मारक्त वर्णकम् ॥ लोचन ञ्च तथा रक्तं शिराः पूरयते ऽपि च ॥ ६२॥ [अन्यच्च] रक्तन्तु कुरुते वृद्धं विसर्प प्लीह विद्रधीन् ॥ कुष्ठं वातास्त्रकं गुल्म शिरा पूर्णं त्व कामले ॥ ६३॥ गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ॥ व्यङ्गाग्नि साद संमोह रक्त त्वङ्नेत्र मूत्रता ॥ ६४ ॥ गुद मेढ्रा स्य पाकार्श : पिड़का मशका स्तथा ॥

भा० मलादिकों की शुक्लता शीतता भारीपन अति निद्रता। सन्धिमें शिथि लता। मतली मुखमें पानी छूटना कफके अधिक होनेमें यह लक्षण होते हैं ॥ ६०॥ रसकी वृद्धिमें अन्नका द्वेष और शरीरमें भारीपन होना है॥ और लार बहना वमन मूर्च्छा वीर्य भ्रम कफ येह होते हैं ॥ ६१॥ बढ़ा हुवा रुधिर शरीर का लाल वर्ण ॥ तथा लाल नेत्र और नसों को भर ना भी है ॥ ६२॥

औरभी। कुष्ठ रक्त विसर्प पिलही विद्रधि इनको करता है॥ कोढ वातरक्त वायगोला प्रिरापूर्णत्व कामला ॥ ६३॥ शरीर में भारीपन निद्रा मद और दाह होता है ॥ व्यङ्ग अग्निमान्द्य मोह रक्त त्वचा नेत्र मूत्रता ॥ ६४॥ गुदा लिंग मुख इनमें पाक ववासीर फुनसी मस्से ॥

इन्द्रलुप्ताङ्ग मर्दास्रग् दरास्तापं कराङ्घ्रिषु ॥ ६५॥ प्रामयेद्रक्त वृद्धुत्थान् रक्तस्रुति विरेचनैः ॥ मांसवृद्धस्तु गण्डौष्ठ स्फिगुपस्थोरु बाहुषु ॥ ६६॥ जङ्घयोः कुरुते वृद्धिं तथा गात्रस्य गौरवम् ॥ उदर पार्श्वयोर्वृद्धिं कास श्वासादय स्तथा ॥ ६७॥ दौर्गन्ध्यं स्निग्धता गात्रे मेदोवृद्धौ भवेदिति ॥ अन्यच्च ॥ प्रवृद्धं कुरुते मेदः श्रममल्पेऽपि चेष्टिते ॥ तृट् स्वेद गलगण्डौष्ठं रोग मेहादि जन्म च ॥ ६८॥ श्वासं स्फिग् जठर ग्रीवा स्तनानां लम्बनं तथा ॥ वृद्धान्यस्थीनि कुर्व्वन्ति अस्थीन्यन्यानि चास्थिषु ॥ ६९॥ आचरन्ति तथा दन्तान् विकटान्मद्दन स्तथा ॥ मज्जा वृद्ध समस्ताङ्ग नेत्र गौरव माचरेत् ॥ ७०॥

भा० इन्द्रलुप्त अंगमर्द रक्त प्रदर हाथ पावों में जलन ॥ रक्त वृद्धि के रोगों को रक्त स्राव विरेचन इनसे शमन करे॥ मांस वृद्धि गाल होठ चूतड़ लिंग जांघ बाहु इनमें ॥ ६६॥ और जांघोंमें वृद्धि करता है। तथा शरीर का भारीपन पेट पसलीयों में वृद्धि कास श्वास आदिक होते हैं ॥ ६७॥ मेद वृद्धि में दुर्गन्धता शरीर में और चिकनापन होता है ॥ ॥ औरभी ॥ बढ़ा हुवा मेद थोड़े से काम में श्रम ॥ तृषा पसीना गलगंड होठ इनमें रोग और प्रमेह आदिकों उत्पत्ति ॥ ६८॥ श्वास चूतड़ पेट गरदन छाती इनका लटकना।

इनको करना है ॥ वृद्ध अस्थि हड्डी में और हड्डी को करती है ॥ ६९॥ तथा दांत विकट और बड़े होते हैं ॥ बढ़ी मज्जा समस्त शरीर नेत्र इनमें भारीपन को करती है ॥७०॥

शुक्राश्मरी शुक्र वृद्धौ शुक्रस्याति प्रवर्त्तनम् ॥ मल प्रवृद्धा वाटोपो जायते जठरे व्यथा ॥ ॥७१॥ मूत्रे मुहुर्मुहुर्मूत्र माध्मानं वस्ति वेदना ॥ स्वेदे वृद्धे तु दौर्गन्ध्यं त्वचि कण्डूश्च जायते ॥७२॥ आर्त्त वाति प्रवृत्ति स्या दौर्गन्ध्य ञ्चार्त्तवे भवेत् ॥ अङ्गमर्दश्च जायेत लिङ्गस्यार्त्तवेऽधिके ॥७३॥ स्तनयो रति पीनत्वं क्षीर स्रावो मुहुर्मुहुः ॥ तोदश्च तत्र भवति स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥७४॥ उदरादि प्रवृद्धिस्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते ॥ स्वेदश्च गर्भवत्याः स्यात्प्रसवे व्यसनं महत् ॥७५॥

भा० शुक्रवृद्धि में शुक्र अश्मरी गर्भ और शुक्र का वहुत निकलना होता है ॥ मल वढ़नेमें उदर में गुड़ २ शब्द होता है ॥७१॥ मूत्र वृद्धि में वार वार मूत्र पेट का फूलना वस्ति की पीड़ा ॥ पसीने वढ़नेमें दुर्गन्धता त्वचामें और खाज होनी है ॥७२॥ आर्त्तव के अधिक होने में आर्त्तवकी वहुत प्रवृत्ति और इसमें वहुत दुर्गन्धता होती है ॥ वदन टूटता भी है यह लक्षण हैं ॥७३॥ चूचियों का वहुत भर जाना दूधका स्राव वार वार और उसमें चुभन होती है ॥ येह अधिक दुग्धका लक्षण है ॥७४॥ गर्भ के वढ़नेमें उदर आदि वढ़ जाते हैं ॥ और पसीना तथा गर्भवति को प्रसवमें वहुत क्लेश होता है ॥७५॥

[अथाति वृद्धानां दोषाणां मलानां ह्रासनमाह]

तत्तद्ध्रासकराहार विहार परिवेषणात् ॥ दोषधा
तु मलानां हि ह्रासो निगदितो नृणाम् ॥ ७६ ॥ पूर्वः
पूर्वोऽति वृद्धत्वाद्वर्द्धयेद्धि परस्परम् ॥ तस्मादति
प्रवृद्धानां धातूनां ह्रसनं हितम् ॥ ७७ ॥

[अथ दोष धातु मलानां क्षयस्य निदानान्याह]

असात्म्यान्न सदाक्रोध शोक चिन्ता भयश्रमैः ॥
अति व्यवायानशनान्यर्थ संशोधनैरपि ॥ ७८ ॥
वेगानां धारणाच्चापि साहसादभिघाततः ॥ दो
षाणां मथ धातूनां मलानाञ्च भवेत् क्षयः ॥ ७९ ॥

भा० अनन्तर बहुत बढ़े हुवे दोषमें इनका घटना कहते हैं ॥ उनको घटाने वाले आहार विहार के सेवन से। दोष धातु मलों का घटना कहाहै ॥ ७६ ॥ पहिले २ बहुत बढ़ने से उत्तर २ के बहुत बढ़ते हैं ॥ इसवास्ते बहुत बढ़े हुवे धातुवों का घटाना हितहै ॥ ७७ ॥ अनन्तर दोषधातु मलोंके क्षयके निदानों को कहते हैं ॥ असात्म्य अन्न सदा क्रोध शोक चिन्ता भय श्रम ॥ अतिमैथुन सवारी लंघन बहुत वमन विरेचनादि लेना इनसे ॥ ७८ ॥ चौदह वेगों के धारणसे भी और साहस अभिघात इनसे ॥ दोष धातु मल इनका क्षय होना है ॥ ७९ ॥

[तेषां क्षीणानां लक्षणान्याह]

वात क्षयेऽल्प चेष्टत्वं मन्दवाक्त्वंविसंज्ञता ॥ पित्त
क्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निमान्द्यं प्रभाद पः ॥ ८० ॥
सन्धयः शिथिला मूर्च्छा रौक्ष्यन्दाहः कफक्षये ॥
हृत्पीड़ा कण्ठशोषौ त्वक् शून्या तृट् रस क्षये ॥ ८१

शिरा: श्लथा हिमाश्लेष्टा त्वक् पारुष्यं क्षयेऽसृजः॥ गण्डौष्ठ कन्धरास्क न्धवक्षो जठर सन्धिषु॥ ८२॥ उ पस्थ शोष पिण्डीषु शुष्कता गात्र रूक्षता॥ तोदो धम न्यः शिथिला भवेयु र्मांस संक्षये॥ ८३॥ प्लीहाभिवृ द्धिः सन्धीनां शून्यता तनु रूक्षता॥ प्रार्थना स्निग्धमां सस्य लिङ्गं स्यान्मेदसः क्षये॥ ८४॥ अस्थि शूल न्त नो रौक्ष्यं नखदन्त त्रुटिस्तथा॥ अस्थि क्षये लिङ्गमे तद्वैद्यैः सर्वै रुदाहृतम्॥ ८५॥ शुक्राल्पत्वं पर्वभेद स्तोदः शून्यत्व मस्थिनि॥ लिङ्गा न्येतानि जायन्ते नराणां मज्ज संक्षये॥ ८६॥ शुक्र क्षये रते शक्ति र्व्य था शेफसि मुष्कयोः॥ चिरेण शुक्र सेकः स्यात्से के रक्ताल्प शुक्रता॥ ८७॥

भा० उनक्षीणों के लक्षणों को कहते हैं॥ वातक्षयमें अल्पचेष्टा मन्दवाक्य सं ज्ञान होना॥ पित्त क्षयमें अधिक कफ अग्निमान्द्य कान्तिक्षय॥ ८०॥ जोडों में ढीलापन मूर्च्छा रूक्षता दाह होना है॥ कफ क्षय में हृदयमें पीडा कंठ शो ष त्वचाकी शून्यता तृषा होती है॥ रस क्षय में॥ ८१॥ ढीली नसें शीतल और खट्टे की इच्छा त्वचामें कठोरता रक्त क्षयमें॥ गाल होठ गरदन कंधा छाती उ दर जोड़ इनमें॥ ८२॥ और लिङ्ग चूतड़ पिंडलि इनमें सूकापन गात्रकी रूक्ष ता। चुभन धमनीकी शिथिलता होती है मांस क्षयमें॥ ८३॥ पिलहीका बढ ना सन्धियों में शून्यता शरीरमें रूखापन॥ चिकना मांसकी इच्छा येह ल क्षण होते हैं मेदक्षयमें॥ ८४॥ अस्थि शूल शरीर में रूक्षता नख दांतका टूटना॥ अस्थि क्षय में येह लक्षण सब वैद्योंने कहा है॥ ८५॥ मनुष्योंके मज्जा क्षय में शुक्रकी अल्पता पोरोंमे पीड़ा चुभन शून्यता अस्थिमें॥ येह लक्ष ण होतेहैं॥ ८६॥ शुक्र क्षयमें मैथुन में अशक्ति लिङ्ग आंडोंमें पीड़ा॥ देरमें शुक्र निकलता है और स्खलित होनेमें थोड़ारक्त शुक्र होता है॥ ८७॥

[अथौजः क्षयस्य निदान माह]

ओजः संक्षीयते कोपा च्चिन्ता शोक श्रमादिभिः॥ रू क्ष तीक्ष्णोष्ण कटुकैः कर्षणै रपरै रपि ॥८८॥

[अथ क्षीणौजसो लक्षण माह]

बिभेति दुर्बलो ऽभीक्ष्ण न्चिन्त ये द्व्यथितेन्द्रियः॥ अभ्युत्थायोऽमना रूक्षः क्षामः स्यादोजसः क्षये॥ ॥८९॥ पुरीषस्य क्षये पार्श्वे हृदये च व्यथा भवेत्॥ स शब्दस्या निलस्योर्द्ध गमनं कुक्षि संहतिः॥ ९०॥ [उदर सङ्कोच] मूत्र क्षयेऽल्प मूत्रत्वं वस्तौ तोदश्च जायते॥ स्वेद नाशे त्वचो रौक्ष्य न्च क्षुषो रपि रूक्षता॥ ॥९१॥ स्तब्धाश्च रोम कूपाः स्यु लिङ्गं स्वेद क्षये भवेत्। ॥आर्त्तवस्य स्वकाले चा भावस्तस्याल्पता थवा॥९२॥

भा० अनन्तर ओज क्षय निदान कहते हैं। क्रोधसे और श्रम शोक आदिसे। तथा रूक्ष तीक्ष्ण कटु के और कर्षणों से भी ओज क्षीण होता है॥ ८८॥
अनन्तर क्षीण ओजका लक्षण कहते हैं॥ डरता है दुर्बल सर्वदा चिन्तन करता है॥ पीड़ित इन्द्रिय उठनेके वास्ते चंचल चित्त रूक्ष क्षाम ओजक्षयमें होता है॥ ॥८९॥ [मल क्षयमें पसली और हृदय में पीड़ा होती है। शब्द के सहित वात का ऊपर होना उदर का संकोच॥ ९०॥ मूत्र क्षयमें अल्प मूत्र पेड़ूमें चुभन होती है॥ पसीने के क्षयमें त्वचामें रूक्षता नेत्रों में भी रूक्षता॥ ९१॥ स्तब्ध रोम कूप येह लक्षण स्वेद क्षयमें होता है॥ आर्त्तवक्षय में आर्त्तवके कालमें अभाव अथवा इस्की कमी॥ ९२॥

जायते वेदना योनौ लिङ्गं स्यादार्त्त वक्षये॥ अभावः स्वल्पता वास्थौन स्तनस्य भवनस्तथा॥ ९३॥ म्लानौ पयोधरौ चैतल्लक्षणं स्तन्य संक्षये॥ अनुन्नतो भवेत्

कुक्षि गर्भस्या स्पन्दन न्तथा ॥ ६४॥ इति गर्भक्षये प्रा
प्तै लक्षणं समुदाहृतम् ॥

[अथ क्षीणानां धातु दोष मलानां वर्द्धन माह]

तत्तत् संवर्द्ध नाहार विहाराति निषेवणात् ॥ तत्तत्
प्राप्य नरः शीघ्रं तत्तत् क्षयमपोहति ॥ ६५॥ ओ
जस्तु वर्द्धते नृणां सुस्निग्धैःस्वादुभिस्तथा ॥ वृष्यै
रन्यै र्विशेषात्तु क्षीरमांस रसादिभिः ॥ ६६॥

[अन्यच्च] दोषधातु मलक्षीणो बलक्षीणोऽपि मानवः।
तत्तत् संवर्द्धनं यत्त दन्नपानं प्रकाङ्क्षति ॥ ६७॥ यद्य
दाहार जातन्तु क्षीणः प्रार्थयते नरः॥ तस्य तस्य
स लाभेन तत्तत् क्षयमपोहति ॥ ६८॥

[तत्र केन क्षीणः किङ्काङ्क्षतीत्य काङ्क्षया माह]

भा०. योनि में पीड़ा येह लक्षण होते हैं। दुग्धका न होना अथवा थोड़ा होना ॥ ६३॥ म्लान कुचा यह लक्षण दुग्ध क्षयमें होता है ॥ पटका पेट गर्भका न हीं लना ॥ ६४॥ इस प्रकार बुद्धिवानों ने गर्भक्षय लक्षण कहा है ॥
अनन्तर क्षीण धातु दोष मल इनका बढ़ना कहते हैं ॥ उन २ को बढ़ाने वा ले आहार विहार इनके बढ़न सेवन से ॥ मनुष्य उन २ को पाकर उन २ क्षय को खोता है ॥ ६५॥ मनुष्य का ओज स्निग्ध मधुर ॥ वृष्य और विशेष करके दूध मांस रस आदियों से बढ़ता है ॥ ६६॥ औरभी। दोष धातु मल क्षीण था बलक्षीण मनुष्य ॥ उन २ को बढ़ानेवाले अन्नपान को चाहता है ॥ ६७॥ क्षीण मनुष्य जो २ हार चाहता है। उस २ केमिलने में पीछ २ क्षय नष्ट होता है ॥ ६८ ॥ ३ [उसमें किससे क्षीण क्या चाहता है इस आकांक्षा में कहते हैं।]

कषाय कटु तिक्तानि रूक्ष शीत लघूनि च ॥ यव मुद्ग प्रियङ्गूश्च वातक्षीणेऽभि काङ्क्षति ॥ ९९ ॥

[पित्तक्षीणः किं काङ्क्षतीत्या काङ्क्षया माह]

तिल माष कुलत्थादि पिष्टान्न विकृतिस्तथा ॥ यस्तु शुक्ताम्ल तक्राणि काञ्जिकञ्च तथा दधि ॥ १०० ॥

कट्वम्ल लवणोष्णानि तीक्ष्णं क्रोधं विदाहि च ॥ समयं देश मुष्णञ्च पित्त क्षीणेऽभि काङ्क्षति ॥ १०१ ॥

मधुरं स्निग्ध शीतानि लवणाम्ल गुरूणि च ॥ दधि क्षीरं दिवा स्वप्नं कफ क्षीणेऽभि काङ्क्षति ॥ १०२ ॥

रसक्षीणो नरः काङ्क्षत्यम्भोऽति शिशिरं मुहुः ॥ रात्रि निद्रां हिमं चन्द्रं भोकुञ्च मधुरं रसम् ॥ १०३

इक्षु मांस रसं मन्थं मधु सर्पि गुडोदकम् ॥ द्राक्षा दाड़िम शुक्तानि सस्नेह लवणानि च ॥ १०४ ॥

भा० कषाय कटु तिक्त रूक्ष शीतल हलका ॥ जव मूंग कंगनी इनको वात क्षीण चाहता है ॥ ९९ ॥ पित्त क्षीण क्या चाहता है । इस आकांक्षा में कहते हैं ॥ तिल उड़द कुलथी बड़े आदि । दहीका पानी सिरका खटाई मठा कांजी तथा दही ॥ १०० ॥ कटु लवण अम्ल उष्ण तीक्ष्ण क्रोध विदाही ॥ समदेश उष्ण इनको पित्त क्षीण चाहता है ॥ १०१ ॥ मधुर स्निग्ध शीत लवण अम्ल भारी ॥ दूध दही दिनका सोना इनको कफ क्षीण चाहता है ॥ १०२ ॥ रस क्षीण मनुष्य बहुत शीतल जल बार बार चाहता है ॥ रात्रि निद्रा शीतल चन्द्र भोजनको मधुर रस ॥ १०३ ॥ ईख मांस रस मन्थ मधु घृत गुड़ोदक । दाख अनार शुक्त स्नेह लवण सहित ॥ १०४ ॥

रक्त सिद्धानि मांसानि रक्त क्षीणेऽभिकाङ्क्षति ॥

अन्नानि दधि सिद्धानि षाड़वांश्च बहूनपि ॥२०५॥ स्थूल क्रव्यादमांसानि मांसक्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ षाड़वा मधुराम्लादि रस संयोग पाचिताः गुड़ाव प्रभृतयः ॥ मेदः सिद्धानि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च सक्षाराणि विशेषेण मेदः क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥२०७॥ अस्थि क्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थि स्नेह संयुतम् ॥ स्वाद्वम्ल संयुतं द्रव्यं मज्जा क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥२०८॥ शिखिनः कुक्कुटस्याण्डं हंस सारस योस्तथा ॥ ग्राम्यानूपौदकानाञ्च शुक्र क्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥२०९॥ यवान्नं यवकान्नञ्च शाकानि विविधानि च ॥ मसूर माष यूषञ्च मल क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥२१०॥

भा० रक्त सिद्ध मांस रक्त क्षीण चाहता है ॥ दधि सिद्ध अन्न बहुतसे खाडव ॥ २०५॥ स्थूल क्रव्याद मांस मांस क्षीण चाहता है ॥ षाडव मधुर अम्ल आदि रस के संयोग से पकावे ॥२०६॥ मेद सिद्धमांस ग्राम्य आनूप औदक ॥ क्षारके सहित विशेषकरके मेद क्षीण चाहता है ॥ २०७॥ अस्थि क्षीण वैसे ही मांस मज्जा अस्थिसे युक्त ॥ मधुर अम्लयुक्त द्रव्य मज्जा क्षीण चाहता है ॥ २०८॥ मोर मुर्गे के अण्डे और हंस सारस के भी ॥ ग्राम्य आनूप औदक इनको शुक्र क्षीण चाहता है ॥ २०९॥ जव छोटे जव अनेक प्रकार के शाक ॥ मसूर उड़द इनका जूस इनको मलक्षीण चाहता है ॥ २१०॥

पेय मिक्षुरसं क्षीरं सगुडम्बदरोदकम् ॥ मूत्र क्षीणोऽभि लषति त्रपुसे र्वारुकाणि च ॥ २११॥ अस्थ्क्षो ह्रत्तने मद्यं निवात शयनासने ॥ गुरु प्रावरणं

देव स्वेद क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ ११२ ॥ कट्वम्ल लव णोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ फल शाका नि पानानि स्त्री काङ्क्षत्यार्त्तव क्षये ॥ ११३ ॥ सुरा शाल्यन्न मांसानि गोक्षीरं शर्करान्तथा ॥ आसवं दधि हृद्यानि स्तन्यक्षीणोऽभि वाञ्छति ॥ ११४ ॥ मृगाजा विवहौरोणां गर्भान्वाञ्छति संस्कृतान् ॥ वसा भृल्य मकारादीन् भोक्तुं गर्भ परिक्षये ॥ ११५ ॥

भा० पेय ईखरस गुड़के सहित वदरीहक ॥ और खीरा ककड़ी इनको चाहता है ॥ १११ ॥ अभ्यङ्ग उबटना मद्य निवात में शयन आसन ॥ भारी कपड़ेका ओढ़ना स्वेदक्षीण चाहता है ॥ ११२ ॥ कटु अम्ल लवण उष्ण विदाही भारी ॥ फल शाक पान इनको स्त्री आर्तव क्षयमें चाहती है ॥ ११३ ॥ मदिरा चावल मांस गायका दूध शर्करा ॥ आसव दही हृद्य इनको दुग्ध क्षीण वाली चाहती है ॥ ११४ ॥ गर्भ क्षयमें मृग बकरी भेड़ सूवर इनके बनायेहु वेगर्भों को चाहती है ॥ और चरबी कबाब आदिक खानेको चाहती है ॥ ११५ ॥

[अथ बल लक्षण माह सुश्रुत मते]

रसादि शुक्र पर्य्यन्तं पुष्ट धातु निमित्त कम् ॥ चेष्टा सु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते ॥ ११६ ॥

[अथ बलस्य क्षय निदान माह] अभिघाताङ्क्षयात् क्रोधा च्चिन्तया च परिश्रमात् ॥ धातूनां सङ्क्षया च्छोका द्बलं संक्षीयते नृणाम् ॥ ११७ ॥

[अथ बलक्षयस्य लक्षणम्] गौरवं स्तब्धता गात्रे मुख म्लानि विवर्णता ॥ तन्द्रा निद्रा वात शोथो बल व्यापत्ति लक्षणम ॥ ११८ ॥

सूचीपत्र

ज्ञातव्य स्थानः राय भवानी परशाद व

गिरधर लाल साके देहली

बाज़ार दरीबे कलाँ

पुस्तक	क़ीमत	पुस्तक	क़ीमत
माधव निदान सटीक छापा बंबई	३॥)	शार्ङ्गधर छापा लखनऊ	१=)
माधव निदान सटीक छापा देहली	१)	निघंट भाषा छा॰ मेरठ व आगरा	।=)॥
बाग भट मूल छापा कलकत्ता	४)	माधव निदान मूल	॥)
चरक मूल छापा कलकत्ता	१२)	अमर विनोद	≈)॥
सुश्रुत मूल छापा कलकत्ता	४)	अमृत सागर छापा मेरठ आगरा	१=)
रसेन्द्र चिन्तामणि रसरत्नाकर छा	६)	योग चिन्तामणि छा॰ मेरठ आगरा	।=)
पा कलकत्ता ॥	*	चिकित्सा धातु सार भाषा	=)
वीरसिंहावलोकन	१॥)	औषध सार भाषा	=)॥
अमृत सागर छापा बंबई	३=)	कूटमुद्गर	≡)
योग चिन्तामणि भाषा टीका	१॥)	पाकावली बालबोध	≡)
चिकित्सा क्रम कल्पवल्ली	३॥)	बाल चिकित्सा	≈)।
वैद्यक कल्पद्रुम	१)	वैद्यक सार	≡)
लोलिंबराज	११)	वैद्य रत्न	≡)

पुस्तकें जो टीका होके छप रही हैं	क़ीमत	
वाग्भट सटीक	पेशगी ७) रु॰	मा बाद ११) रु॰
अमरकोश दोहा चौपाई में	१॥) रु॰	२) रुपये
[illegible]		
सुश्रुत चरक		

मिलेंगे आयुर्वेद चन्द्रिका